लेख सूचि

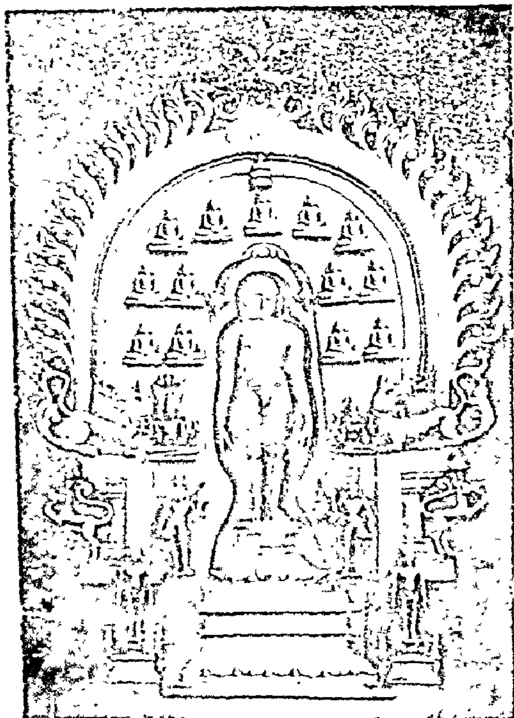
प्रकाशक—

जैन साहित्य संशोधक कार्यालय.

ठि. भारत जैन विद्यालय—पूना शहर.

ज्येष्ठ, विक्रम सं. १९७९] महावीर नि. सं २४४९ [जुलाई १९२३.





वेनूर (दक्षिण कर्णाटक) स्थान स्थित मनुष्याकार दिगम्बर जैन प्रतिमा

॥ ॐ अर्हम् ॥

॥ नमोऽस्तु श्रमणाय भगवते महावीराय ॥

जैन साहित्य संशोधक

'पुरिसा! सच्चमेव समभिजाणाहि। सच्चस्साणाए उवट्ठिए मेहावी मारं तरइ।'

' जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ, जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ। '

' दिट्ठं, सुयं, मयं, विण्णायं जं एत्थ परिकहिज्जइ।'

—निर्ग्रन्थप्रवचन—आचारांगसूत्र।

खंड २] हिंदी लेख विभाग. [अंक १

योगदर्शन

(लेखकः—पं. सुखलालजी न्यायाचार्य)

प्रत्येक मनुष्य व्यक्ति अपरिमित शक्तियोंके तेजका पुञ्ज है, जैसा कि सूर्य। अत एव राष्ट्र तो मानों अनेक सूर्योंका मण्डल है। फिर भी जब कोई व्यक्ति या राष्ट्र असफलता या नैराश्यके भँवरमें पडता है तब यह प्रश्न होना सहज है कि इसका कारण क्या है? । बहुत विचार कर देखनेसे मालूम पडता है कि असफलता व नैराश्यका कारण योगका (स्थिरताका) अभाव है, क्यों कि योग न होनेसे बुद्धि संदेहशील बनी रहती है, और इससे प्रयत्नकी गति अनिश्चित हो जानेके कारण शक्तियां इधर उधर टकरा कर आदमीको बरबाद कर देती हैं। इस कारण सब शक्तियोंको एक केन्द्रगामी बनाने तथा साध्यतक पहुचानेके लिये अनिवार्यरूपसे सभीको योगकी जरूरत है। यही कारण है कि प्रस्तुत व्याख्यानमालामें योगका विषय रक्खा गया है।

---

* गूजरात पुरातत्त्व मंदिरकी ओरसे होनेवाली आर्यविद्याव्याख्यानमालामें यह व्याख्यान पढा गया था।

इस विषयकी शास्त्रीय मीमांसा करनेका उद्देश यह है कि हमें अपने पूर्वजोंकी तथा अपनी सभ्यताकी प्रकृति ठीक मालूम हो, और तद्द्वारा आर्यसंस्कृतिके एक अंशका थोडा, पर निश्चित रहस्य विदित हो।

योगदर्शन यह सामासिक शब्द है। इसमें योग और दर्शन ये दो शब्द मौलिक हैं।

योग शब्दका अर्थ—योग शब्द युज् धातु और घञ् प्रत्ययसे सिद्ध हुवा है। युज् धातु दो हैं। एकका अर्थ है जोडना[1] और दूसरेका अर्थ है समाधि[2]—मनःस्थिरता। सामान्य रीतिसे योगका अर्थ संबन्ध करना तथा मानसिक स्थिरता करना इतना ही है, परंतु प्रसंग व प्रकरणके अनुसार उसके अनेक अर्थ हो जानेसे वह बहुरूपी बन जाता है। इसी बहुरूपिताके कारण लोकमान्यको अपने गीतारहस्यमें गीताका तात्पर्य दिखानेके लिये योगशब्दार्थनिर्णयकी विस्तृत भूमिका रचनी पडी है[3]। परंतु योगदर्शनमें योग शब्दका अर्थ क्या है यह बतलानेके लिये उतनी गहराईमें उतरनेकी कोई आवश्यकता नहीं है; क्यों कि योगदर्शनविषयक सभी ग्रन्थोंमें जहां कहीं योग शब्द आया है वहां उसका एक ही अर्थ है, और उस अर्थका स्पष्टीकरण उस उस ग्रन्थमें ग्रन्थकारने स्वयं ही कर दिया है। भगवान् पतंजलिने अपने योगसूत्रमें[4] चित्तवृत्तिनिरोधको ही योग कहा है, और उस ग्रन्थमें सर्वत्र योग शब्दका वही एक मात्र अर्थ विवक्षित है। श्रीमान् हरिभद्र सूरिने अपने योग विषयक सभी ग्रन्थोंमें[5] मोक्ष प्राप्त कराने वाले धर्मव्यापारको ही योग कहा है; और उनके उक्त सभी ग्रन्थोंमें योग शब्दका वही एक मात्र अर्थ विवक्षित है। चित्तवृत्तिनिरोध और मोक्षप्रापक धर्मव्यापार इन दो वाक्योंके अर्थमें स्थूल दृष्टिसे देखने पर बडी भिन्नता मालूम होती है, पर सूक्ष्म दृष्टिसे देखने पर उनके अर्थकी अभिन्नता स्पष्ट मालूम हो जाती है। क्यों कि 'चित्तवृत्तिनिरोध' इस शब्दसे वही क्रिया या व्यापार विवक्षित है जो मोक्षके लिये अनुकूल हो और जिससे चित्तकी संसाराभिमुख वृत्तियां रुक जाती हों। 'मोक्षप्रापक धर्मव्यापार' इस शब्दसे भी वही क्रिया विवक्षित है। अत एव प्रस्तुत विषयमें योग शब्दका अर्थ स्वाभाविक समस्त आत्मशक्तियोंका पूर्ण विकास करानेवाली क्रिया अर्थात् आत्मोन्मुख चेष्टा इतना ही समझना चाहिये[6]। योगविषयक वैदिक, जैन और बौद्ध ग्रन्थोंमें योग, ध्यान, समाधि ये शब्द बहुधा समानार्थक देखे जाते हैं।

दर्शन शब्दका अर्थ—नेत्रजन्यज्ञान,[7] निर्विकल्प (निराकार) बोध,[8] श्रद्धा,[9] मत[10] आदि अनेक अर्थ दर्शन शब्दके देखे जाते हैं। पर प्रस्तुत विषयमें दर्शन शब्दका अर्थ मत यही एक विवक्षित है।

योगके आविष्कारका श्रेय—जितने देश और जितनी जातियोंके आध्यात्मिक महान् पुरुषोंकी जीवनकथा तथा उनका साहित्य उपलब्ध है उसको देखनेवाला कोई भी यह नहीं कह सकता है कि आध्यात्मिक विकास अमुक देश और अमुक जातिकी ही बपौती है, क्यों कि सभी देश और सभी जातियोंमें न्यूनाधिक रूपसे आध्यात्मिक विकासवाले महात्माओंके पाये जानेके प्रमाण मिलते हैं[11]। योगका संबन्ध आध्यात्मिक विकाससे है। अत एव यह स्पष्ट है कि

---

1 युजृंपी योगे,—७ गण हेमचंद्र धातुपाठ. 2 युजिंच् समाधौ,—४ गण हेमचंद्र धातुपाठ.

3 देखो पृष्ठ ५५ से ६०। 4 पा. १ सू. २—योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। 5 योगबिन्दु श्लोक ३१—
अध्यात्मं भावनाऽऽध्यानं समता वृत्तिसंक्षयः। मोक्षेण योजनाद्योग एष श्रेष्ठो यथोत्तरम्॥ योगविंशिका गाथा॥१॥

6 लॉर्ड एवबरीने जो शिक्षाकी पूर्ण व्याख्या की है वह इसी प्रकारकी है:— "Education is the harmonious developement of all our faculties." 7 दृशूं प्रेक्षणे—१ गण हेमचन्द्र धातुपाठ. 8 तत्त्वार्थ अध्याय २ सूत्र ९—श्लोक वार्तिक. 9 तत्त्वार्थ अध्याय १ सूत्र २. 10 षड्दर्शन समुच्चय—श्लोक २—"दर्शनानि षडेवात्र" इत्यादि. 11 उदाहरणार्थ जरथोस्त, इसु, महम्मद आदि.

योगका अस्तित्व सभी देश और सभी जातियोंमें रहा है। तथापि कोई भी विचारशील मनुष्य इस बातका इनकार नहीं कर सकता है कि योगके आविष्कारका या योगको पराकाष्ठा तक पहुंचानेका श्रेय भारतवर्ष और आर्यजातिको ही है। इसके सबूतमें मुख्यतया तीन बातें पेश की जा सकती हैं। १ योगी, ज्ञानी, तपस्वी आदि आध्यात्मिक महापुरुषोंकी बहुलता; २ साहित्यके आदर्शकी एकरूपता; और ३ लोकरुचि।

१. योगी, ज्ञानी, तपस्वी आदि आध्यात्मिक महापुरुषोंकी संख्या भारतवर्षमें पहिलेसे आज तक इतनी बडी रही है कि उसके सामने अन्य सब देश और जातियोंके आध्यात्मिक व्यक्तियोंकी कुल संख्या इतनी अल्प जान पडती है जितनी कि गंगाके सामने एक छोटीसी नदी।

२. साहित्यके आदर्शकी एकरूपता—तत्त्वज्ञान, आचार, इतिहास, काव्य, नाटक आदि साहित्यका कोई भी भाग लीजिये उसका अन्तिम आदर्श बहुधा मोक्ष ही होगा। प्राकृतिक दृश्य और कर्मकाण्डके वर्णनने वेदका बहुत बडा भाग रोका है सही, पर इसमें संदेह नहीं कि वह वर्णन वेदका शरीर मात्र है; उसकी आत्मा कुछ और ही है—और वह है परमात्मचिंतन या आध्यात्मिक भावोंका आविष्करण। उपनिषदोंका प्रासाद तो ब्रह्मचिन्तनकी बुनियाद पर ही खडा है। प्रमाणविषयक, प्रमेयविषयक कोई भी तत्त्वज्ञान संबन्धी सूत्रग्रन्थ हो; उसमें भी तत्त्वज्ञानके साध्यरूपसे मोक्षका ही वर्णन मिलेगा[1]। आचारविषयक सूत्र स्मृति आदि सभी ग्रन्थोंमें आचारपालनका मुख्य उद्देश मोक्ष ही माना गया[2] है। रामायण, महाभारत आदिके मुख्य पात्रोंकी महिमा सिर्फ इस लिये नहीं कि वे एक बडे राज्यके स्वामी थे, पर वह इस लिये है कि अंतमें वे संन्यास या तपस्याके द्वारा मोक्षके अनुष्ठानमें ही लग जाते हैं। रामचन्द्रजी प्रथम ही अवस्थामें वशिष्ठसे योग और मोक्षकी शिक्षा पा लेते[3] हैं। युधिष्ठिर भी युद्ध रस लेकर बाण शय्यापर सोये हुए भीष्मपितामहसे शान्तिका ही पाठ पढते[4] हैं। गीता तो रणांगणमें भी मोक्षके एकतम साधन योगका ही उपदेश देती है। कालिदास जैसे शृंगारप्रिय कहलानेवाले कवि भी अपने मुख्य पात्रोंकी महत्ता मोक्षकी ओर झुकनेमें ही देखते हैं[5]। जैन आगम और बौद्ध पिटक तो निवृत्तिप्रधान होनेसे मुख्यतया मोक्षके सिवाय अन्य विषयोंका वर्णन करनेमें बहुत ही संकुचाते हैं। शब्दशास्त्रमें

—1 वैशेषिकदर्शन, अ० १ सू० ४ धर्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां 'साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम्। —न्यायदर्शन अ० १ सू० १ प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम् ॥ सांख्यदर्शन, अ. १ अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः ॥— वेदान्तदर्शन अ०४, पा० ४, सू० २२ अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात् ॥ — जैनदर्शन तत्त्वार्थ अ० १ सू० १ सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥ 2 याज्ञवल्क्यस्मृति अ. ३ यतिधर्मनिरूपणम्; मनुस्मृति अ. १२ श्लोक ८३. 3 देखो योगवासिष्ठ. 4 देखो महाभारत–शान्तिपर्व. 5 कुमारसंभव–सर्ग ३ तथा ५ तपस्या वर्णनम्. शाकुन्तल नाटक अंक ४ कण्वोक्ति.

भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी, दौष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं निवेश्य ।
भर्त्रा तदर्पितकुटुम्बभरेण सार्धं, शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन् ॥

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानाम् यौवने विषयैषिणाम् । वार्द्धके मुनिवृत्तीनाम् योगेनान्ते तनुत्यजाम् ॥८॥ सर्ग १

अथ स विषयव्यावृत्तात्मा यथाविधि सूनवे, नृपतिककुदं दत्त्वा यूने सितातपवारणम् ।
मुनिवनतरुच्छायां देव्या तया सह शिश्रिये, गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रतम् ॥ ७० ॥ रघुवंश. ३

भी शब्दशुद्धिको तत्त्वज्ञानका द्वार मान कर उसका अन्तिम ध्येय परम श्रेय ही माना है । विशेष क्या ! कामशास्त्र तकका भी आखिरी उद्देश मोक्ष है । इस प्रकार भारतवर्षीय साहित्यका कोई भी स्रोत देखिये उसकी गति समुद्र जैसे अपरिमेय एक चतुर्थ पुरुषार्थकी ओर ही होगी ।

३ लोकरुचि—आध्यात्मिक विषयकी चर्चावाला और खासकर योगविषयक कोई भी ग्रन्थ किसीने भी लिखा कि लोगोंने उसे अपनाया । कंगाल और दीन हीन अवस्थामें भी भारतवर्षीय लोगोंकी उक्त अभिरुचि यह सूचित करती है कि योगका सम्बन्ध उनके देश व उनकी जातिमें पहलेसे ही चला आता है। इसी कारणसे भारतवर्षकी सभ्यता अरण्यमें उत्पन्न हुई कही जाती है 1। इस पैतृक स्वभावके कारण जब कभी भारतीय लोग तीर्थयात्रा या सफरके लिये पहाड़ों, जंगलों और अन्य तीर्थस्थानोंमें जाते हैं तब वे डेरा तंबू डालनेसे पहले ही योगियोंको, उनके मठोंको और उनके चिन्ह तकको भी ढूंढा करते हैं । योगकी श्रद्धाका उद्रेक यहां तक देखा जाता है कि किसी नंगे बावेको गांजेकी चिलम फूंकते या जटा बढाते देखा कि उसके मुंहके धुंएमें या उसकी जटा व भस्मलेपमें योगका गन्ध आने लगता है । भारतवर्षके पहाड, जंगल और तीर्थस्थान भी बिलकुल योगिशून्य मिलना दुःसंभव है । ऐसी स्थिति अन्य देश और अन्य जातिमें दुर्लभ है । इससे यह अनुमान करना सहज है कि योगको आविष्कृत करनेका तथा पराकाष्ठा तक पहुंचानेका श्रेय बहुधा भारतवर्षको और आर्यजातिको ही है । इस बातकी पुष्टि मेक्षमूलर जैसे विदेशीय और भिन्न संस्कारी विद्वान्के कथनसे भी अच्छी तरह होती है ।2

आर्यसंस्कृतिकी जड और आर्यजातिका लक्षण—ऊपरके कथनसे आर्यसंस्कृतिका मूल आधार क्या है, यह स्पष्ट मालूम हो जाता है । शाश्वत जीवनकी उपादेयता ही आर्यसंस्कृतिकी भित्ति है । इसी पर आर्यसंस्कृतिके चित्रोंका चित्रण किया गया है । वर्णविभाग जैसा सामाजिक संगठन और आश्रमव्यवस्था जैसा वैयक्तिक जीवनविभाग उस चित्रणका अनुपम उदाहरण है । विद्या, रक्षण, विनिमय और सेवा ये चार जो वर्णविभागके उद्देश्य हैं, उनके प्रवाह गार्हस्थ्य जीवनरूप मैदानमें अलग अलग बह कर भी वानप्रस्थके मुहानेमें मिलकर अंतमें संन्यासाश्रमके अपरिमेय समुद्रमें एकरूप हो जाते हैं । सारांश यह है कि सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि सभी संस्कृतियोंका निर्माण, स्थूलजीवनकी परिणामविरसता और आध्यात्मिक-जीवनकी परिणामसुन्दरता ऊपर ही किया गया है । अत एव जो विदेशीय विद्वान् आर्यजातिका लक्षण स्थूलशरीर, उसके डीलडौल, व्यापार-व्यवसाय, भाषा, आदिमें देखते हैं वे एकदेशीय मात्र हैं । खेतीबारी, लड़ाकूपना, चनुओंको चराना आदि जो जो अर्थ आर्यशब्दसे निकाले गये हैं वे आर्यजातिके असाधारण लक्षण नहीं हैं । आर्यजातिका असाधारण लक्षण तो परलोकमात्रकी कल्पना भी नहीं है, क्यों कि उसकी दृष्टिमें यह लोक भी त्याज्य है । उसका सच्चा और अन्तरंग लक्षण स्थूल जगत्के उसपार वर्तमान परमात्मतत्त्वकी एकाग्रबुद्धिसे उपासना करना यही है । इस सर्वव्यापक उद्देशके कारण आर्यजाति अपनेको अन्य सब जातियोंसे श्रेष्ठ समझती आई है ।

१. द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत् । शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥
व्याकरणात्पदसिद्धिः पदसिद्धेरर्थनिर्णयो भवति । अर्थात्तत्त्वज्ञानं तत्त्वज्ञानात्परं श्रेयः ॥
श्रीहैमशब्दानुशासनम् अ. १ पा. १ सू. २ लघुन्यास.

२. " स्थाविरे धर्मं मोक्षं च " कामसूत्र अ. २ सू. ११ Bombay Edition.

1 देखो कविवर टागोर कृत " साधना " पृ. ४.
" Thus in India it was in the forests that our civilization had its birth......etc "

2 This concentrtion of thought (एकाग्रता) or one-pointedness as the Hindus called it, Is something to us almost unknown.
इत्यादि देखो. पृ. २३-वोल्युम १-सेक्रेड बुक्स ऑफ धि ईस्ट, मेक्षमूलर-प्रस्तावना.

ज्ञान और योगका संबन्ध तथा योगका दरजा—व्यवहार हो या परमार्थ, किसी भी विषयका ज्ञान तभी परिपक्व समझा जा सकता है जब कि ज्ञानानुसार आचरण किया जाय। असलमें यह आचरण ही योग है। अत एव ज्ञान योगका कारण है। परन्तु योगके पूर्ववर्ति जो ज्ञान होता है वह अस्पष्ट होता है[1]। और योगके बाद होनेवाला अनुभवात्मक ज्ञान स्पष्ट तथा परिपक्व होता है। इसीसे यह समझ लेना चाहिये कि स्पष्ट तथा परिपक्व ज्ञानकी एक मात्र कुंजी योग ही है। आधिभौतिक या आध्यात्मिक कोई भी योग हो, पर वह जिस देश या जिस जातिमें जितने प्रमाणमें पुष्ट पाया जाता है उस देश या उस जातिका विकास उतना ही अधिक प्रमाणमें होता है। सच्चा ज्ञानी वही है जो योगी है[2]। जिसमें योग या एकाग्रता नहीं होती वह योगवाशिष्ठकी परिभाषामें ज्ञानबन्धु है[3]। योगके सिवाय किसी भी मनुष्यकी उत्क्रान्ति हो ही नहीं सकती, क्यों कि मानसिक चंचलताके कारण उसकी सब शक्तियां एक ओर न बह कर भिन्न भिन्न विषयोंमें टकराती हैं, और क्षीण हो कर यों ही नष्ट हो जाती हैं। इसलिये क्या किसान, क्या कारीगर, क्या लेखक, क्या शोधक, क्या त्यागी सभीको अपनी नाना शक्तियोंको केन्द्रस्थ करनेके लिये योग ही परम साधन है।

व्यावहारिक और पारमार्थिक योग—योगका कलेवर एकाग्रता है, उसकी आत्मा अहंत्व ममत्वका त्याग है। जिसमें सिर्फ एकाग्रताका ही संबन्ध हो वह व्यावहारिक योग, और जिसमें एकाग्रताके साथ साथ अहंत्व ममत्वके त्यागका भी संबन्ध हो वह पारमार्थिक योग है। यदि योगका उक्त आत्मा किसी भी प्रवृत्तिमें—चाहे वह दुनियाकी दृष्टिमें बाह्य ही क्यों न समझी जाती हो—वर्तमान हो तो पारमार्थिक योग ही समझना चाहिये। इसके विपरीत स्थूलदृष्टिवाले जिस प्रवृत्तिको आध्यात्मिक समझते हों, उसमें भी यदि योगका उक्त आत्मा न हो तो उसे व्यवहारिक योग ही कहना चाहिये। यही बात गीताके साम्यगर्भित कर्मयोगमें कही गई है[4]।

योग की दो धाराएं—व्यवहारमें किसी भी वस्तुको परिपूर्ण स्वरूपमें तैयार करनेके लिये पहले दो बातोंकी आवश्यकता होती है। जिनमें एक ज्ञान और दूसरी क्रिया है। चितेरेको चित्र तैयार करनेसे पहले उसके स्वरूपका, उसके साधनोंका और साधनोंके उपयोगका ज्ञान होता है, और फिर वह ज्ञान के अनुसार क्रिया भी करता है। तभी वह चित्र तैयार कर पाता है। वैसे ही आध्यात्मिक क्षेत्रमें भी मोक्षके जिज्ञासुके लिये बन्धमोक्ष, आत्मा और बन्धमोक्षके कारणोंका, तथा उनके परिहार, उपादानका ज्ञान होना जरूरी है। एवं ज्ञानानुसार प्रवृत्ति भी आवश्यक है। इसी से संक्षेपमें यह कहा गया है कि "ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः"। योग क्रियामार्गका नाम है। इस मार्गमें प्रवृत्त होनेसे पहले अधिकारी, आत्मा आदि आध्यात्मिक विषयोंका आरंभिक ज्ञान शास्त्रसे, सत्संगसे, या स्वयं प्रतिभा द्वारा कर लेता है। यह तत्त्वविषयक प्राथमिक ज्ञान प्रवर्तक ज्ञान कहलाता है। प्रवर्तक ज्ञान प्राथमिक दशाका ज्ञान होनेसे सबको एकाकार और एकसा नहीं हो सकता। इसीसे योगमार्गमें तथा उसके परिणामस्वरूप मोक्षस्वरूपमें तात्त्विक भिन्नता न होने पर भी योगमा-

---

1 इसी अभिप्रायसे गीता योगिको ज्ञानीसे अधिक कहती है। गीता अ. ६ श्लोक ४६—
तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद् योगी भवार्जुन॥

2 गीता अ. ५ श्लोक ५—
यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते। एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति॥

3 योगवाशिष्ठ निर्वाण प्रकरण, उत्तरार्ध, सर्ग २१—
व्याचष्टे यः पठति च शास्त्रं भोगाय शिल्पिवत्। यतते न त्वनुष्ठाने ज्ञानबन्धुः स उच्यते॥
आत्मज्ञानमनासाद्य ज्ञानान्तरलवेन ये। सन्तुष्टाः कष्टचेष्टं ते स्मृता ज्ञानबन्धवः॥ इत्यादि।

4 अ. २ श्लोक ४८—
योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनञ्जय। सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

र्गके प्रवर्तक प्राथमिक ज्ञानमें कुछ भिन्नता अनिवार्य है। इस प्रवर्तक ज्ञानका मुख्य विषय आत्माका अस्तित्व है। आत्माका स्वतंत्र अस्तित्व माननेवालोंमें भी मुख्य दो मत हैं--पहला एकात्मवादी और दूसरा नानात्मवादी। नानात्मवादमें भी आत्माकी व्यापकता, अव्यापकता, परिणामिता, अपरिणामिता माननेवाले अनेक पक्ष हैं। पर इन वादोंको एकतरफ रख कर मुख्य जो आत्माकी एकता और अनेकताके दो वाद हैं उनके आधार पर योगमार्गकी दो धारायें हो गई हैं। अत एव योगविषयक साहित्य भी दो मार्गोंमें विभक्त हो जाता है। कुछ उपनिषदें,[1] योगवाशिष्ठ, हठयोगप्रदीपिका आदि ग्रन्थ एकात्मवादको लक्ष्यमें रख कर रचे गये हैं। महाभारतगत योग प्रकरण, योगसूत्र तथा जैन और बौद्ध योगग्रन्थ नानात्मवादके आधार पर रचे गये हैं।

योग और उसके साहित्यके विकासका दिग्दर्शन—आर्यसाहित्यका भाण्डार मुख्यतया तीन मार्गोंमें विभक्त है-वैदिक, जैन और बौद्ध। वैदिक साहित्यका प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद है। उसमें आधिभौतिक और आधिदैविक वर्णन ही मुख्य है। तथापि उसमें आध्यात्मिक भाव अर्थात् परमात्मचिन्तनका अभाव नहीं है[2]। परमात्मचिंतनका भाग उसमें थोडा है सही, पर वह इतना अधिक स्पष्ट, सुन्दर और भावपूर्ण है कि उसको ध्यानपूर्वक देखनेसे यह साफ मालूम पड जाता है कि तत्कालीन लोगोंकी दृष्टी केवल बाह्य न[3] थी

---

1 ब्रह्मविद्या, क्षुरिका, चूलिका, नादबिन्दु, ब्रह्मबिन्दु, अमृतबिन्दु, ध्यानबिन्दु, तेजोबिन्दु, शिखा, योगतत्त्व, हंस. इत्यादि।

2 देखो " भागवताचा उपसंहार " पृष्ठ २५२.

3 उदाहरणार्थ कुछ सूक्त दिये जाते हैं। ऋग्वेद मं. १ सू. १६४-४६-

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

भाषांतरः--लोग उसे इन्द्र, मित्र, वरुण, या अग्नि कहते हैं। वह सुंदर पांखवाला दिव्य पक्षी है। एक ही सत्का विद्वान् लोग अनेक प्रकारसे वर्णन करते हैं। कोई उसे अग्नि, यम या वायु भी कहते हैं।

ऋग्वेद मण्ड. ६ सू. ९-

वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुर्वीदं ज्योतिर्हृदय आहितं यत्।
वि मे मनश्चरति दूर आधीः किंस्विद् वक्ष्यामि किमु नु मनिष्ये॥ ६॥
विश्वे देवा अनमस्यन् भियानास्त्वामग्ने! तमसि तस्थिवांसम्। वैश्वानरोऽवतूतये नोऽमर्त्योऽवतूतये नः॥ ७॥

भाषांतरः—मेरे कान विविध प्रकारकी प्रवृत्ति करते हैं। मेरे नेत्र, मेरे हृदयमें स्थित ज्योति और मेरा दूरवर्ती मन [भी] विविध प्रवृत्ति कर रहा है। मैं क्या कहुं और क्या विचार करुं! । ६। अंधकार-स्थित हे अग्नि! तुजको अंधकारसे भय पानेवाले देव नमस्कार करते हैं। वैश्वानर हमारा रक्षण करे। अमर्त्य हमारा रक्षण करे। ७।

ऋग्वेदः—पुरुषसूक्त, मण्डल १० सू० ९०
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥ १॥
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥ २॥
एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पूरुषः। पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥ ३॥

भाषांतरः—(जो) हजार सिरवाला, हजार आंखवाला, हजार पैरवाला पुरुष (है) वह भूमिको चारों ओरसे घेर कर (फिर भी) दस अंगुल बढ कर रहा है। १। पुरुष ही यह सब कुछ है-जो भूत और जो भावि। (यह) अमृतत्वका ईश अन्नसे बढता है। २। इतनी इसकी महिमा--इससे भी यह पुरुष अधिकतर है। सारे भूत इसके एक पाद मात्र हैं-इसके अमर तीन पाद स्वर्गमें हैं। ३

इसके सिवा उसमें ज्ञान1, श्रद्धा2, उदारता3, ब्रह्मचर्य4, आदि आध्यात्मिक उच्च मानसिक भावोंके चित्र भी बडी खूबीवाले मिलते हैं। इससे यह अनुमान करना सहज है कि उस जमानेके लोगोंका झुकाव अध्यात्मिक अवश्य था। यद्यपि ऋग्वेदमें योगशब्द अनेक स्थानोंमें आया है5, पर सर्वत्र उसका अर्थ प्रायः जोडना इतना ही है, ध्यान या समाधि अर्थ नहीं है। इतना ही नहीं बल्कि पिछले योग विषयक साहित्यमें ध्यान, वैराग्य, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि जो योगप्रक्रिया-प्रसिद्ध शब्द पाये जाते हैं वे ऋग्वेदमें बिलकुल नहीं हैं। ऐसा होनेका कारण जो कुछ हो, पर यह निश्चित है कि तत्कालीन लोगोंमें ध्यानकी भी रुचि थी। ऋग्वेदका ब्रह्मस्फुरण जैसे जैसे विकसित होता गया और उपनिषदके जमानेमें उसने जैसे ही विस्तृत रूप धारण किया वैसे वैसे ध्यानमार्ग भी अधिक पुष्ट और साङ्गोपाङ्ग होता चला। यही कारण है कि प्राचीन उपनिषदोंमें भी समाधि अर्थमें योग ध्यान आदि शब्द पाये जाते हैं6। श्वेताश्वतर उपनिषदमें तो स्पष्ट रूपसे योग तथा योगोचित स्थान, प्रत्याहार, धारणा आदि योगाङ्गोंका वर्णन है7। मध्यकालीन और अर्वाचीन अनेक उपनिषदें तो सिर्फ योगविषयक ही

ऋग्वेदः— पु० सूक्त मं. १९ सू. १२१

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ ॥
य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २ ॥

भाषांतरः—पहले हिरण्यगर्भ था। वही एक भूत मात्रका पति बना था। उसने पृथ्वी और इस आकाशको धारण किया। किस देवको हम हविसे पूजें? । १ । जो आत्मा और बलको देनेवाला है। जिसका विश्व है। जिसके शासनकी देव उपासना करते हैं। अमृत और मृत्यु जिसकी छाया है। किस देवको हम हविसे पूजें? । २ ।

ऋग्वेद मं. १०–१२९–६ तथा ७—

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत आ जाता कुत इयं विसृष्टिः। अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आ बभूव ॥
इयं विसृष्टिर्यत आ बभूव यदि वा दधे यदि वा न। यो अस्याध्यक्ष परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥

भाषांतरः—कौन जानता है—कौन कह सकता है कि यह विविध सृष्टि कहाँसे उत्पन्न हुई! देव इसके विविध सर्जनके बाद (हुवे) हैं। कोन जान सकता है कि यह कहांसे आई? यह विविध सृष्टि कहांसे आई और स्थितिमें है वा नहीं है? यह बात परम व्योममें जो इसका अध्यक्ष है वही जाने—कदाचित् वह भी न जानता हो।

1 मं. १० सू. ७१ । 2 मं. १० सू. १५१ । 3 मं. ११ सू. ११७ । 4 मं. १४ सू. १०

5 मंडल १ सूक्त ३४ मंत्र ९। मं. १० सू. १६६ मं. ५। मं. १ सू. १८ मं. ७। मं. १ सू. ५ मं. ३। मं. २ सू. ८ मं. १। मं. ९ सू. ५८ मं. ३।

6 (क) तैत्तिरिय २–४। कठ २–६–११। श्वेताश्वतर २–११, ६–३। (ख) छान्दोग्य ७–६–१, ७–६–२, ७–७–१, ७–२६–१। श्वेताश्वतर १–१४। कौशीतकि ३–२, ३–३, ३–४, ३–६।

7 श्वेताश्वतरोपनिषद् अध्याय २—

त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा संनिरुध्य।
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान्स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि ॥ ८ ॥
प्राणान्प्रपीड्येह संयुक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत।
दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान्मनो धारयेताप्रमत्तः ॥ ९ ॥
समे शुचौ शर्करावह्निवालुकाविवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः।
मनोनुकूले न तु चक्षुपीडने गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत्॥ १० ॥ इत्यादि.

है, जिनमें योगशास्त्रकी तरह सांगोपांग योगप्रक्रियाका वर्णन है8। अथवा यह कहना चाहिये कि ऋग्वेदमें जो परमात्मचिन्तन अंकुरायमाण था वही उपनिषदोंमें पल्लवित-पुष्पित हो कर नाना शाखा-प्रशाखाओंके साथ फल अवस्थाको प्राप्त हुवा। इससे उपनिषदकालमें योगमार्गका पुष्टरूपमें पाया जाना स्वाभाविक ही है।

उपनिषदोंमें जगत, जीव और परमात्मसम्बन्धी जो तात्त्विक विचार है, उसको भिन्न भिन्न ऋषियोंने अपनी दृष्टिसे सूत्रोंमें ग्रथित किया, और इस तरह उस विचारको दर्शनका रूप मिला। सभी दर्शनकारोंका आखिरी उद्देश मोक्ष* ही रहा है, इससे उन्होंने अपनी अपनी दृष्टिसे तत्त्वविचार करनेके बाद भी संसारसे छुट कर मोक्ष पानेके साधनोंका निर्देश किया है। तत्त्वविचारणामें मतभेद हो सकता है, पर आचरण यानी चारित्र एक ऐसी वस्तु है जिसमें सभी विचारशील एकमत हो जाते हैं। विना चारित्रका तत्त्वज्ञान कोरी बातें हैं। चारित्र यह योगका किंवा योगांगोंका संक्षिप्त नाम है। अत एव सभी दर्शनकारोंने अपने अपने सूत्रग्रंथोंमें साधन रूपसे योगकी उपयोगिता अवश्य बतलाई है। यहां तक कि–न्यायदर्शन, जिसमें प्रमाण पद्धतिका ही विचार मुख्य है, उसमें भी महर्षि गौतमने योगको स्थान दिया है1। महर्षि कणादने तो अपने वैशेषिक दर्शनमें यम, नियम, शौच आदि योगांगोंका भी महत्त्व गाया है2। सांख्यसूत्रमें योगप्रक्रियाके वर्णनवाले कई सूत्र हैं3। ब्रह्मसूत्रमें महर्षि बादरायणने तो तीसरे अध्यायका नाम ही साधन अध्याय रखा है, और उसमें आसन ध्यान आदि योगांगोंका वर्णन किया है4। योगदर्शन तो मुख्यतया योगविचारका ही ग्रन्थ ठहरा, अत एव उसमें सांगोपांग योगप्रक्रियाकी मीमांसाका पाया जाना सहज ही है। योगके स्वरूपके सम्बन्धमें मतभेद न होनेके कारण और उसके प्रतिपादनका उत्तरदायित्व खासकर योगदर्शनके उपर होनेके कारण अन्य दर्शनकारोंने अपने अपने सूत्र ग्रन्थोंमें थोडासा योगविचार करके विशेष जानकारीके लिये जिज्ञासुओंको योगदर्शन देखनेकी सूचना दे दी है5। पूर्वमीमांसामें महर्षि जैमिनिने योगका निर्देश तक नहीं किया है सो ठीक ही है, क्यों कि उसमें सकाम कर्मकाण्ड अर्थात् धूम–मार्गकी ही मीमांसा है। कर्मकाण्डकी पहुंच

---

8 ब्रह्मविद्योपनिषद्, क्षुरिकोपनिषद्, चूलिकोपनिषद्, नादबिन्दु, ब्रह्मबिन्दु, अमृतबिन्दु, ध्यानबिन्दु, तेजोबिन्दु, योगशिखा, योगतत्त्व, हंस इत्यादि। देखो डुसेनकृत–Philosphy of the Upanishads

*–प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः। गौ० सू० १, १, १॥–धर्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम्॥ वै० सू० १. १, ४॥–अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः। सां० द० १. १॥–पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति। यो० सू० ४, ३३॥–अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात्। ब्र. सू. ४, ४, २२।–सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः। तत्त्वार्थ सू० १–१ जैन० द०।–बौद्ध दर्शनका तीसरा निरोध नामक आर्यसत्य ही मोक्ष है।

1 समाधिविशेषाभ्यासात् ४–२–३८। अरण्यगुहापुलिनादिषु योगाभ्यासोपदेशः ४–२–४२। तदर्थं यमनियमाभ्यामात्मसंस्कारो योगाच्चाध्यात्मविध्युपायैः ४–२–४६॥

2 अभिषेचनोपवासब्रह्मचर्यगुरुकुलवासवानप्रस्थयज्ञदानप्रोक्षणदिङ्नक्षत्रमन्त्रकालनियमाश्चादृष्टाय। ६–२–२। अयतस्य शुचिभोजनादभ्युदयो न विद्यते, नियमाभावाद्, विद्यते वाऽर्थान्तरत्वाद् यमस्य। ६–२–८।

3 रागोपहतिर्ध्यानम्। ३–३०। वृत्तिनिरोधात् तत्सिद्धिः ३–३१। धारणासनस्वकर्मणा तत्सिद्धिः ३–३२। निरोधश्छर्दिविधारणाभ्याम् ३–३३। स्थिरसुखमासनम् ३–३४।

4 आसीनः संभवात् ४–१–७। ध्यानाच्च ४–१–८। अचलत्वं चापेक्ष्य ४–१–९। स्मरन्ति च ४–१–१०। यत्रैकाग्रता तत्राविशेषात् ४–१–११।

5 योगशास्त्राच्चाध्यात्मविधिः प्रतिपत्तव्यः। न्यायदर्शन ४–२–४६ भाष्य।

स्वर्गतक ही है, मोक्ष उसका साध्य नहीं । और योगका उपयोग तो मोक्षके लिये ही होता है ।

जो योग उपनिषदोंमें सूचित और सूत्रोंमें सूत्रित है, उसीकी महिमा गीतामें अनेक रूपसे गाई गई है । उसमें योगकी तान कभी कर्मके साथ, कभी भक्तिके साथ और कभी ज्ञानके साथ सुनाई देती है1 । उसके छट्ठे और तेरहवें अध्यायमें तो योगके मौलिक सब सिद्धान्त और योगकी सारी प्रक्रिया आ जाती है2 । कृष्णके द्वारा अर्जुनको गीताके रूपमें योगशिक्षा दिला कर ही महाभारत सन्तुष्ट नहीं हुआ । उसके अथक स्वरको देखते हुए कहना पड़ता है कि ऐसा होना संभव भी न था । अत एव शान्तिपर्व और अनुशासनपर्वमें योगविषयक अनेक सर्ग वर्तमान हैं, जिनमें योगकी अथेति प्रक्रियाका वर्णन पुनरुक्तिकी परवा न करके किया गया है3 । उसमें बाण-शय्यापर लेटे हुए भीष्मसे बार बार पूछनेमें न तो युधिष्ठिरको ही कंटाला आता है, और न उस सुपात्र धार्मिक राजाको शिक्षा देनेमें भीष्मको ही थकावट मालूम होती है ।

योगवाशिष्ठका विस्तृत महल तो योगकी ही भूमिकापर खड़ा किया गया है । उसके छह4 प्रकरण मानों उसके सुदीर्घ कमरे हैं, जिनमें योगसे सम्बन्ध रखनेवाले सभी विषय रोचकतापूर्वक वर्णन किये गये हैं । योगकी जो जो बातें योगदर्शनमें संक्षेपमें कही गई हैं, उन्हींका विविधरूपमें विस्तार करके ग्रन्थकारने योगवाशिष्ठका कलेवर बहुत बढ़ा दिया है, जिससे यही कहना पड़ता है कि योगवाशिष्ठ योगका ग्रन्थराज है ।

पुराणमें सिर्फ पुराणशिरोमणि भागवतको ही देखिये, उसमें योगका सुमधुर पद्योंमें पूरा वर्णन है5 ।

योगविषयक विविध साहित्यसे लोगोंकी रुचि इतनी परिमार्जित हो गई थी कि तान्त्रिक संप्रदायवालोंने भी तन्त्रग्रन्थोंमें योगको जगह दी, यहां तक कि योग तन्त्रका एक खासा अंग बन गया । अनेक तान्त्रिक ग्रन्थोंमें योगकी चर्चा है, पर उन सबमें महानिर्वाणतन्त्र, षट्चक्रनिरूपण आदि मुख्य हैं6 ।

---

1 गीताके अठारह अध्यायोंमें पहले छह अध्याय कर्मयोग प्रधान, बीचके छह अध्याय भक्तियोग प्रधान और अंतिम छह अध्याय ज्ञानयोग प्रधान हैं ।

2 योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः । एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥ १० ॥
शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः । नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ ११ ॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः । उपविश्यासने युञ्ज्याद् योगमात्मविशुद्धये ॥ १२ ॥
समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः । संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ १३ ॥
प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः । मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥१४॥ अ० ६

3 शान्तिपर्व १९३, २१७, २४६, २५४, इत्यादि । अनुशासनपर्व ३६, २४६ इत्यादि ।

4 वैराग्य, मुमुक्षुव्यवहार, उत्पत्ति, स्थिति, उपशम और निर्वाण । 5 स्कन्ध ३ अध्याय २८; स्कन्ध ११— अ० १५, १९, २० आदि । 6 देखो महानिर्वाणतन्त्र ३ अध्याय । देखो षट्चक्रनिरूपण—

ऐक्यं जीवात्मनोराहुर्योगं योगविशारदाः । शिवात्मनोरभेदेन प्रतिपत्तिं परे विदुः ॥ पृष्ठ ८२
Tantrik Texts में छपा हुआ ।

समत्वभावनां नित्यं जीवात्मपरमात्मनोः । समाधिमाहुर्मुनयः प्रोक्तमष्टाङ्गलक्षणम् ॥ पृ० ९१ ,,
यदत्र नात्र निर्भासः स्तिमितोदधिवत् स्मृतम् । स्वरूपशून्यं यद् ध्यानं तत्समाधिर्विधीयते ॥ पृ० ९० ,,
त्रिकोणं तस्यान्तः स्फुरति च सततं विद्युदाकाररूपं ।
तदन्तः शून्यं तत् सकलसुरगणैः सेवितं चातिगुप्तम् ॥ पृ. ६० ,,
" आहारनिर्हारविहारयोगाः सुसंवृता धर्मविदा तु कार्याः । पृ० ६१ ,,
ध्यै चिन्तायाम् स्मृतो धातुश्चिन्ता तत्त्वेन निश्चला । एतद् ध्यानमिह प्रोक्तं सगुणं निर्गुणं द्विधा ।
सगुणं वर्णभेदेन निर्गुणं केवलं तथा ॥ पृ० १३४ ,,

जब नदीमें बाढ आती है तब वह चारों ओरसे बहने लगती है। योगका यही हाल हुवा, और वह आसन, मुद्रा, प्राणायाम आदि बाह्य अंगोंमें प्रवाहित होने लगा। बाह्य अंगोंका भेद प्रभेद पूर्वक इतना अधिक वर्णन किया गया और उसपर इतना अधिक जोर दिया गया कि जिससे यह योगकी एक शाखा ही अलग बन गई, जो हठयोगके नामसे प्रसिद्ध है।

हठयोगके अनेक ग्रंथोंमें हठयोगप्रदीपिका, शिवसंहिता, घेरंडसंहिता, गोरक्षपद्धति, गोरक्षशतक आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं, जिनमें आसन, बन्ध, मुद्रा, षट्कर्म, कुंभक, रेचक, पूरक आदि बाह्य योगांगोंका पेट भर भरके वर्णन किया है; और घेरण्डने तो चौरासी आसनको चौरासी लाख तक पहुंचा दिया है।

उक्त हठयोगप्रधान ग्रन्थोंमें हठयोगप्रदीपिका ही मुख्य है, क्यों कि उसीका विषय अन्य ग्रन्थोंमें विस्तार रूपसे वर्णन किया गया है। योगविषयक साहित्यके जिज्ञासुओंको योगतारावली, बिन्दुयोग, योगबीज और योगकल्पद्रुमका नाम भी भूलना न चाहिये। विक्रमकी सत्रहवी शताब्दीमें मैथिल पण्डित भवदेवद्वारा रचित योगनिबन्ध नामक हस्तलिखित ग्रन्थ भी देखनेमें आया है, जिसमें विष्णुपुराण आदि अनेक ग्रन्थोंके हवाले देकर योगसम्बन्धी प्रत्येक विषयपर विस्तृत चर्चा की गई है।

संस्कृत भाषामें योगका वर्णन होनेसे सर्व साधारणकी जिज्ञासाको शान्त न देखकर लोकभाषाके योगियोंने भी अपनी जबानमें योगका आलाप करना शुरु कर दिया।

महाराष्ट्रीय भाषामें गीताकी ज्ञानदेवकृत ज्ञानेश्वरी टीका प्रसिद्ध है, जिसके छट्ठे अध्यायका भाग बडा ही हृदयहारी है। निःसन्देह ज्ञानेश्वरी द्वारा ज्ञानदेवने अपने अनुभव और वाणीको अवन्ध्य कर दिया है। सुहीगेवा भोथिये रचित नाथसम्प्रदायानुसारी सिद्धान्तसंहिता भी योगके जिज्ञासुओंके लिये देखनेकी वस्तु है।

कबीरका बीजक ग्रन्थ योगसम्बन्धी भाषासाहित्यका एक सुन्दर मणका है।

अन्य योगी सन्तोंने भी भाषामें अपने अपने योगानुभवकी प्रसादी लोगोंको चखाई है, जिससे जनताका बहुत बडा भाग योगके नाम मात्रसे मुग्ध बन जाता है।

अत एव हिन्दी, गुजराती, मराठी, बंगला आदि प्रसिद्ध प्रत्येक प्रान्तीय भाषामें पातञ्जल योगशास्त्रका अनुवाद तथा विवेचन आदि अनेक छोटे बडे ग्रन्थ बन गये हैं। अंग्रेजी आदि विदेशीय भाषामें भी योगशास्त्रका अनुवाद आदि बहुत कुछ बन गया है[1], जिसमें वूड्का भाष्यटीका सहित मूल पातञ्जल योगशास्त्रका अनुवाद विशेष उल्लेख योग्य है।

जैन सम्प्रदाय निवृत्ति-प्रधान है। उसके प्रवर्तक भगवान् महावीरने बारह सालसे अधिक समय तक मौन धारण करके सिर्फ आत्मचिन्तनद्वारा योगाभ्यासमें ही मुख्यतया जीवन बिताया। उनके हजारों शिष्य[2] तो ऐसे थे जिन्होंने घरबार छोड कर योगाभ्यासद्वारा साधुजीवन बिताना ही पसंद किया था।

जैन सम्प्रदायके मौलिक ग्रन्थ आगम कहलाते हैं। उनमें साधुचर्याका जो वर्णन है, उसको देखनेसे यह स्पष्ट जान पडता है कि पांच यम; तप, स्वाध्याय आदि नियम; इन्द्रिय-जय-रूप प्रत्याहार इत्यादि जो योगके खास अङ्ग हैं, उन्हींको साधुजीवनका एक मात्र प्राण माना[3] है।

---

1 प्रो॰ राजेन्द्रलाल मित्र, स्वामी विवेकानंद, श्रीयुत रामप्रसाद आदि कृत।

2 " चउद्दसहिं समणसाहस्सीहिं छत्तीसाहिं अज्जिआसाहस्सीहिं " उववाइसूत्र।

3 देखो आचाराङ्ग, सूत्रकृताङ्ग, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, मूलाचार, आदि।

जैनशास्त्रमें योगपर यहां तक भार दिया गया है कि पहले तो वह मुमुक्षुओंको आत्मचिंतनके सिवाय दूसरे कार्योंमें प्रवृत्ति करनेकी संमति ही नहीं देता, और अनिवार्य रूपसे प्रवृत्ति करनी आवश्यक हो तो वह निवृत्तिमय प्रवृत्ति करनेको कहता है। इसी निवृत्तिमय प्रवृत्तिका नाम उसमें अष्टप्रवचनमाता1 है। साधुजीवनकी दैनिक और रात्रिक चर्यामें तीसरे प्रहरके सिवाय अन्य तीनों प्रहरोंमें मुख्यतया स्वाध्याय और ध्यान करनेको ही कहा गया है2।

यह बात भूलनी न चाहिये कि जैन आगमोंमें योगअर्थमें प्रधानतया ध्यानशब्द प्रयुक्त है। ध्यानके लक्षण, भेद प्रभेद, आलम्बन आदिका विस्तृत वर्णन अनेक जैन आगमोंमें है3। आगमके बाद निर्युक्तिका नंबर है4। उसमें भी आगमगत ध्यानका ही स्पष्टीकरण है। वाचक उमास्वाति कृत तत्त्वार्थसूत्रमें5 भी ध्यानका वर्णन है, पर उसमें आगम और निर्युक्तिकी अपेक्षा कोई अधिक बात नहीं है। जिनभद्रगणी क्षमाश्रमणका ध्यानशतक6 आगमादि उक्त ग्रन्थोंमें वर्णित ध्यानका स्पष्टीकरण मात्र है। यहां तकके योगविषयक जैन विचारोंमें आगमोक्त वर्णनकी शैली ही प्रधान रही है। पर इस शैलीको श्रीमान् हरिभद्रसूरिने एकदम बदलकर तत्कालिन परिस्थिति व लोकरुचीके अनुसार नवीन परिभाषा दे कर और वर्णनशैली अपूर्वसी बनाकर जैन योग–साहित्यमें नया युग उपस्थित किया। इसके सबूतमें उनके बनाये हुए योगबिन्दु, योगदृष्टीसमुच्चय, योगविंशिका, योगशतक7, षोडशक ये ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इन ग्रन्थोंमें उन्होंने सिर्फ जैन–मार्गानुसार योगका वर्णन करके ही संतोष नहीं माना है, किन्तु पातंजल योगसूत्रमें वर्णित योगप्रक्रिया और उसकी खास परिभाषाओंके साथ जैन संकेतोंका मिलान भी किया है8। योगदृष्टिसमुच्चयमें योगकी आठ दृष्टियोंका9 जो वर्णन है, वह सारे योगसाहित्यमें एक नवीन दिशा है।

श्रीमान् हरिभद्रसूरिके योगविषयक ग्रन्थ उनकी योगाभिरुचि और योगविषयक व्यापक बुद्धिके खासे नमुने हैं।

इसके बाद श्रीमान् हेमचन्द्रसूरिकृत योगशास्त्रका नंबर आता है। उसमें पातञ्जल-योगशास्त्र-निर्दिष्ट आठ योगांगोंके क्रमसे साधु और गृहस्थ जीवनकी आचार-प्रक्रियाका जैन शैलीके अनुसार वर्णन है, जिसमें आसन तथा

---

1 देखो उत्तराध्ययन अ० २४।

2 दिवसस्स चउरो भाए, कुज्जा भिक्खु विअक्खणो। तओ उत्तरगुणे कुज्जा, दिणभागेसु चउसु वि ॥ ११॥
पढमं पोरिसि सज्झायं, बिइअं झाणं झिआयइ। तइआए गोअरकालं, पुणो चउत्थिए सज्झायं ॥ १२॥
रत्तिं पि चउरो भाए, भिक्खु कुज्जा विअक्खणो। तओ उत्तरगुणे कुज्जा, राईभागेसु चउसु वि ॥ १७॥
पढमं पोरिसि सज्झायं, बिइअं झाणं झिआयइ।
तइआए निद्दमोक्खं तु, चउत्थिए भुज्जो वि सज्झायं ॥ १८॥—उत्तराध्ययन अ० २६।

3 देखो स्थानाङ्ग अ० ४ उद्देश १। समवायाङ्ग स० ४। भगवती शतक २५–उद्देश ७। उत्तराध्ययन अ० ३०, गा० ३५। 4 देखो आवश्यकनिर्युक्ति कायोत्सर्ग अध्ययन गा. १४६२–१४८६।

5 देखो अ० ९ सू० २७ से आगे। 6 देखो हारिभद्रीय आवश्यक वृत्ति प्रतिक्रमणाध्ययन पृ० ५८१

7 यह ग्रन्थ जैन ग्रन्थावलिमें उल्लिखित है, पृ० ११३।

8 समाधिरेष एवान्यैः संप्रज्ञातोऽभिधीयते। सम्यक्प्रकर्षरूपेण वृत्त्यर्थज्ञानतस्तथा ॥ ४१८॥
असंप्रज्ञात एषोऽपि समाधिर्गीयते परैः। निरुद्धाशेषवृत्त्यादितत्स्वरूपानुवेधतः ॥ ४२०॥ इत्यादि, योगबिन्दु।

9 मित्रा तारा बला दिप्रा स्थिरा कान्ता प्रभा परा। नामानि योगदृष्टीनां लक्षणं च निबोधत ॥ १३॥

इन आठ दृष्टियोंका स्वरूप, दृष्टान्त आदि विषय, योगजिज्ञासुओंके लिये देखने योग्य है। इसी विषयपर यशोविजयजीने २१, २२, २३, २४ ये चार द्वात्रिंशिकायें लिखी हैं। साथ ही उन्होंने संस्कृत न जाननेवालोंके हितार्थ आठ दृष्टियोंकी सज्झाय भी गुजराती भाषामें बनाई है।

प्राणायामसे संबन्ध रखनेवाली अनेक बातोंका विस्तृत स्वरूप है; जिसको देखनेसे यह जान पडता है कि तत्कालीन लोगोंमें हठयोग-प्रक्रियाका कितना अधिक प्रचार था। हेमचन्द्राचार्यने अपने योगशास्त्रमें हरिभद्रसूरिके योगविषयक ग्रन्थोंकी नवीन परिभाषा और रोचक शैलीका कहीं भी उल्लेख नहीं किया है, पर शुभचन्द्राचार्यके ज्ञानार्णवगत पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ, और रूपातीत ध्यानका विस्तृत व स्पष्ट वर्णन किया है[1]। अन्तमें उन्होंने स्वानुभवसे विक्षिप्त, यातायात, श्लिष्ट और सुलीन ऐसे मनके चार भेदोंका वर्णन करके नवीनता लानेका भी खास कौशल दिखाया है[2]। निस्सन्देह उनका योगशास्त्र जैन तत्त्वज्ञान और जैन आचारका एक पाठ्य ग्रन्थ है।

इसके बाद उपाध्याय-श्रीयशोविजयकृत योगग्रन्थोंपर नजर ठहरती है। उपाध्यायजीका शास्त्रज्ञान, तर्ककौशल और योगानुभव बहुत गम्भीर था। इससे उन्होंने अध्यात्मसार, अध्यात्मोपनिषद तथा सटीक बत्तीस बत्तीसियाँ योग संबन्धी विषयोंपर लिखी हैं, जिनमें जैन मन्तव्योंकी सूक्ष्म और रोचक मीमांसा करनेके उपरांत अन्य दर्शन और जैनदर्शनका मिलान भी किया है[3]। इसके सिवा उन्होंने हरिभद्रसूरिकृत योगविंशिका तथा षोडशकपर टीका लिख कर प्राचीन गूढ तत्त्वोंका स्पष्ट उद्घाटन भी किया है। इतना ही करके वे सन्तुष्ट नहीं हुए, उन्होंने महर्षि पतञ्जलिकृत योगसूत्रोंके उपर एक छोटीसी वृत्ति भी लिखी है। यह वृत्ति जैन प्रक्रियाके अनुसार लिखी हुई है, इसलिये उसमें यथासंभव योगदर्शनकी भित्ति–स्वरूप सांख्य–प्रक्रियाका जैन-प्रक्रियाके साथ मिलान भी किया है, और अनेक स्थलोंमें उसका सयुक्तिक प्रतिवाद भी किया है। उपाध्यायजीने अपनी विवेचनामें जो मध्यस्थता, गुणग्राहकता, सूक्ष्म समन्वयशक्ति और स्पष्टभाषिता दिखाई है[4] ऐसी दूसरे आचार्योंमें बहुत कम नजर आती है[5]।

एक योगसार नामक ग्रन्थ भी श्वेताम्बर साहित्यमें है। कर्ताका उल्लेख उसमें नहीं है, पर उसके दृष्टान्त आदि वर्णनसे जान पडता है कि हेमचन्द्राचार्यके योगशास्त्रके आधारपर किसी श्वेताम्बर आचार्यके द्वारा वह रचा गया है। दिगम्बर साहित्यमें ज्ञानार्णव तो प्रसिद्ध ही है, पर ध्यानसार और योगप्रदीप ये दो हस्तलिखित ग्रन्थ भी हमारे देखनेमें आये हैं, जो पद्यबन्ध और प्रमाणमें छोटे हैं। इसके सिवाय श्वेताम्बर दिगम्बर संप्रदायके योगविषयक ग्रन्थोंका कुछ विशेष परिचय जैन ग्रन्थावलि पृ० १०६ से भी मिल सकता है। बस यहां तकहीमें जैन योगसाहित्य समाप्त हो जाता है।

बौद्ध सम्प्रदाय भी जैन सम्प्रदायकी तरह निवृत्तिप्रधान है। भगवान् गौतम बुद्धने बुद्धत्व प्राप्त होनेसे पहले छह वर्षतक मुख्यतया ध्यानद्वारा योगाभ्यास ही किया। उनके हजारों शिष्य भी उसी मार्ग पर चले। मौलिक बौद्धग्रन्थोंमें जैन आगमोंके समान योग अर्थमें बहुधा ध्यान शब्द ही मिलता है, और उसमें ध्यानके

---

1 देखो प्रकाश ७-१० तक। 2 १२ वाँ प्रकाश-श्लोक २–३–४। 3 अध्यात्मसारके योगाधिकार और ध्यानाधिकारमें प्रधानतया भगवद्गीता तथा पातञ्जलसूत्रका उपयोग करके अनेक जैनप्रक्रियाप्रसिद्ध ध्यानविषयोंका उक्त दोनों ग्रन्थोंके साथ समन्वय किया है, जो बहुत ध्यानपूर्वक देखने योग्य है। अध्यात्मोपनिषद्के शास्त्र, ज्ञान, क्रिया और साम्य इन चारों योगोंमें प्रधानतया योगवाशिष्ठ तथा तैत्तिरीय उपनिषद्के वाक्योंका अवतरण दे कर तात्त्विक ऐक्य बतलाया है। योगावतार बत्तीसीमें खास कर पातञ्जल योगके पदार्थोंका जैन प्रक्रियाके अनुसार स्पष्टीकरण किया है।

4 इसके लिये उनका ज्ञानसार ग्रन्थ जो उन्होंने अंतिम जीवनमें लिखा मालूम होता है वह ध्यानपूर्वक देखना चाहिए। शास्त्रवार्तासमुच्चयकी उनकी टीका (पृ० १०,) भी देखनी आवश्यक है।

5 इसके लिए उनके शास्त्रवार्तासमुच्चयादि ग्रन्थ ध्यानपूर्वक देखने चाहिए, और खास कर उनकी पातञ्जल सूत्रवृत्ति मननपूर्वक देखनेसे हमारा कथन अक्षरशः विश्वसनीय मालूम पडेगा।

चार भेद नजर आते हैं। उक्त चार भेदके नाम तथा भाव प्रायः वही हैं, जो जैनदर्शन तथा योगदर्शनकी प्रक्रियामें हैं[1]। बौद्ध सम्प्रदायमें समाधि राज नामक ग्रन्थ भी है। वैदिक, जैन और बौद्ध संप्रदायके योगविषयक साहित्यका हमने बहुत संक्षेपमें अत्यावश्यक परिचय कराया है, पर इसके विशेष परिचयके लिये-कॅटलोगस् कॅटलॉगोरम्[2], वो० १ पृ० ४७७ से ४८१ पर जो योगविषयक ग्रन्थोंकी नामावलि है वह देखने योग्य है।

यहां एक बात खास ध्यान देनेके योग्य है, वह यह कि यद्यपि वैदिक साहित्यमें अनेक जगह हठयोगकी प्रथाको अग्राह्य कहा है[3], तथापि उसमें हठयोगकी प्रधानतावाले अनेक ग्रन्थोंका और मार्गोंका निर्माण हुआ है। इसके विपरीत जैन और बौद्ध साहित्यमें हठयोगने स्थान नहीं पाया है, इतना ही नहीं, बल्कि उसमें हठयोगका स्पष्ट निषेध भी किया है[4]।

---

1. सो खो अहं ब्राह्मण विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमज्झानं उपसंपज्ज विहासिं; वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं संपसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियज्झानं उपसंपज्ज विहासिं; पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहासिं; सतो च संपजानो सुखं च कायेन पटिसंवेदेसिं, यं तं अरिया आचिक्खन्ति-उपेक्खको सतिमा सुखविहारीऽति ततियज्झानं उपसंपज्ज विहासिं; सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना पुब्बेऽव सोमनस्स दोमनस्सानं अत्थंगमा अदुक्खमसुखं उपेक्खासति पारिसुद्धिं चतुत्थज्झानं उपसंपज्ज मज्झिमनिकाये भयभेरवसुत्तं विहासिं।

इन्हीं चार ध्यानोंका वर्णन दीघनिकाय सामञ्ञफलसुत्तमें है। देखो प्रो. सि. वि. राजवाडे कृत मराठी अनुवाद पृ. ७२।

यही विचार प्रो. धर्मानंद कौशाम्बी लिखित बुद्धलीलासारसंग्रहमें है। देखो पृ १२८।

जैनसूत्रमें शुक्लध्यानके भेदोंका विचार है, उसमें उक्त सवितर्क आदि चार ध्यान जैसा ही वर्णन है। देखो तत्त्वार्थ अ० ९ सू० ४१—४४।

योगशास्त्रमें संप्रज्ञात समाधि तथा समापत्तिओंका वर्णन है। उसमें भी उक्त सवितर्क निर्वितर्क आदि ध्यान जैसा ही विचार है। पा. सू. पा. १-१७, ४२, ४३, ४४।

2 थिओडोर आउफ्रेक्टकृत, लिप्झिगमें प्रकाशित १८९१ की आवृत्ति।

3 उदाहरणार्थः—

सतीषु युक्तिष्वेतासु हठान्नियमयन्ति ये। चेतस्ते दीपमुत्सृज्य विनिघ्नन्ति तमोऽञ्जनैः ॥ ३७ ॥
विमूढाः कर्तुमुद्युक्ता ये हठाच्चेतसो जयम्। ते निबध्नन्ति नागेन्द्रमुन्मत्तं बिसतन्तुभिः ॥ ३८ ॥
चित्तं चित्तस्य वाऽदूरं संस्थितं स्वशरीरकम्। साधयन्ति समुत्सृज्य युक्तिं ये तान्हतान् विदुः ॥ ३९ ॥

योगवाशिष्ठ—उपशम प्र० सर्ग ९२.

4 इसके उदाहरणमें बौद्ध धर्ममें बुद्ध भगवान्ने तो शुरुमें कष्टप्रधान तपस्याका आरंभ करके अंतमें मध्यमप्रतिपदा मार्गका स्वीकार किया है—देखो बुद्धलीलासारसंग्रह.

जैनशास्त्रमें श्रीभद्रबाहुस्वामिने आवश्यकनिर्युक्तिमें " ऊसासं ण णिरुंभइ " १५२० इत्यादि उक्तिसे हठयोगका ही निराकरण किया है। श्रीहेमचन्द्राचार्यने भी अपने योगशास्त्रमें

" तन्नाप्नोति मनःस्वास्थ्यं प्राणायामैः कदर्थितं। प्राणस्यायमने पीडा तस्यां स्यात् चित्तविप्लवः ॥ "

इत्यादि उक्तिसे उसी बातको दोहराया है। श्रीयशोविजयजीने भी पातञ्जलयोगसूत्रकी अपनी वृत्तिमें (१-३४) प्राणायामको योगका अनिश्चित साधन कह कर हठयोगका ही निरसन किया है।

योगशास्त्र—ऊपरके वर्णनसे मालूम हो जाता है कि–योगप्रक्रियाका वर्णन करनेवाले छोटे बडे अनेक ग्रन्थ हैं। इन सब उपलब्ध ग्रन्थोंमें महर्षि–पतञ्जलिकृत योगशास्त्रका आसन ऊंचा है। इसके तीन कारण हैं –१ ग्रन्थकी संक्षिप्तता तथा सरलता, २ विषयकी स्पष्टता तथा पूर्णता, ३ और मध्यस्थभाव तथा अनुभवसिद्धता यही कारण है कि योगदर्शन यह नाम सुनते ही सहसा पातञ्जल योगसूत्रका स्मरण हो आता है। श्रीशंकराचार्यने अपने ब्रह्मसूत्रभाष्यमें योगदर्शनका प्रतिवाद करते हुए जो " अथ सम्यग्दर्शनाभ्युपायो योगः " ऐसा उल्लेख किया है[1], उससे इस बातमें कोई संदेह नहीं रहता कि उनके सामने पातञ्जल योगशास्त्रसे भिन्न दूसरा कोई योगशास्त्र रहा है। क्यों कि पातञ्जल योगशास्त्रका आरम्भ " अथ योगानुशासनम् " इस सूत्रसे होता है, और उक्त भाष्योल्लिखित वाक्यमें भी ग्रन्थारम्भसूचक अथ शब्द है, यद्यपि उक्त भाष्यमें अन्यत्र और भी योगसम्बन्धी दो उल्लेख हैं[2] जिनमें एक तो पातञ्जल योगशास्त्रका संपूर्ण सूत्र ही है[3] और दूसरा उसका अविकल सूत्र नहीं, किन्तु उसके सूत्रसे मिलता जुलता है[4]। तथापि " अथ सम्यग्दर्शनाभ्युपायो योगः " इस उल्लेखकी शब्दरचना और स्वतन्त्रताकी और ध्यान देनेसे यही कहना पडता है कि पिछले दो उल्लेख भी उसी भिन्न योगशास्त्रके होने चाहिये, जिसका अंश " अथ सम्यग्दर्शनाभ्युपायो योगः " यह वाक्य माना जाय। अस्तु, जो कुछ हो, आज हमारे सामने तो पतञ्जलिका ही योगशास्त्र उपस्थित है, और वह सर्वप्रिय है; इसलिये बहुत संक्षेपमें भी उसका बाह्य तथा आन्तरिक परिचय कराना अनुपयुक्त न होगा।

इस योगशास्त्रके चार पद और कुल १९५ सूत्र हैं। पहले पादका नाम समाधि, दूसरेका साधन, तीसरेका विभूति, और चौथेका कैवल्यपाद है। प्रथमपादमें मुख्यतया योगका स्वरूप, उसके उपाय और चित्तस्थिरताके उपायोंका वर्णन है। दूसरे पादमें क्रियायोग, आठ योगाङ्ग, उनके फल तथा चतुर्व्यूहका[5] मुख्य वर्णन है॥

तीसरे पादमें योगजन्य विभूतियोंके वर्णनकी प्रधानता है। और चौथे पादमें परिणामवादके स्थापन, विज्ञानवादके निराकरण तथा कैवल्य अवस्थाके स्वरूपका वर्णन मुख्य है। महर्षि पतञ्जलिने अपने योगशास्त्रकी नींव सांख्यसिद्धान्तपर डाली है। इसलिये उसके प्रत्येक पादके अन्तमें " योगशास्त्रे सांख्यप्रवचने " इत्यादि उल्लेख मिलता है। " सांख्यप्रवचने " इस विशेषणसे यह स्पष्ट ध्वनित होता है कि सांख्यके सिवाय अन्यदर्शनके सिद्धांतोंके आधारपर भी रचे हुए योगशास्त्र उस समय

---

1 ब्रह्मसूत्र २–१–३ भाष्यगत।

2 " स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोगः " ब्रह्मसूत्र १–३–३३ भाष्यगत। योगशास्त्रप्रसिद्धाः मनसः पञ्च वृत्तयः परिगृह्यन्ते, " प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः नाम " २–४–१२ भाष्यगत।

पं. वासुदेव शास्त्री अभ्यंकरने अपने ब्रह्मसूत्रके मराठी अनुवादके परिशिष्टमें उक्त दो उल्लेखोंका योगसूत्ररूपसे निर्देश किया है, पर " अथ सम्यग्दर्शनाभ्युपायो योगः " इस उल्लेखके संबंधमें कहीं भी ऊहापोह नहीं किया है।

3 मिलाओ पा. २ सू. ४४। 4 मिलाओ पा. १ सू. ६।

5 हेय, हेयहेतु, हान, हानोपाय ये चतुर्व्यूह कहलाते हैं। इनका वर्णन सूत्र १६–२६ तकमें है।

मौजुद थे या रचे जाते थे। इस योगशास्त्रके ऊपर अनेक छोटे बडे टीका ग्रन्थ[1] हैं, पर व्यासकृत भाष्य और वाचस्पतिकृत टीकासे उसकी उपादेयता बहुत बढ गई है।

सब दर्शनोंके अन्तिम साध्यके सम्बन्धमें विचार किया जाय तो उसके दो पक्ष दृष्टिगोचर होते हैं प्रथम पक्षका अन्तिम साध्य शाश्वत सुख नहीं है। उसका मानना है कि मुक्तिमें शाश्वत सुख नामक कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है, उसमें जो कुछ है वह दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्ति ही। दूसरा पक्ष शाश्वतिक सुखलाभको ही मोक्ष कहता है। ऐसा मोक्ष हो जानेपर दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्ति आप ही आप हो जाती है। वैशेषिक नैयायिक[2], सांख्य[3], योग[4], और बौद्धदर्शन[5] प्रथम पक्षके अनुगामी हैं। वेदान्त[6] और जैनदर्शन[7], दूसरे पक्षके अनुगामी हैं।

योगशास्त्रका विषय-विभाग उसके अन्तिमसाध्यानुसार ही है। उसमें गौण मुख्य रूपसे अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित हैं, पर उन सबका संक्षेपमें वर्गीकरण किया जाय तो उसके चार विभाग हो जाते हैं। १ हेय, २ हेय-हेतु, ३ हान, ४ हानोपाय। यह वर्गीकरण स्वयं सूत्रकारने किया है; और इसीसे भाष्यकारने योगशास्त्रको चतुर्व्यूहात्मक कहा है[8]। सांख्यसूत्रमें भी यही वर्गीकरण है। बुद्ध भगवान्‌ने इसी चतुर्व्यूहको आर्य-सत्य नामसे प्रसिद्ध किया है; और योगशास्त्रके आठ योगाङ्गोंकी तरह उन्होंने चौथे आर्य-सत्यके साधनरूपसे आर्य अष्टाङ्गमार्गका[9] उपदेश किया है।

दुःख हेय है[10], अविद्या हेयका कारण है[11], दुःखका आत्यन्तिक नाश हान है[12], और विवेक-ख्याति हानका उपाय है[13]।

उक्त वर्गीकरणकी अपेक्षा दूसरी रीतिसे भी योगशास्त्रका विषय-विभाग किया जा सकता है। जिससे कि उसके मन्तव्योंका ज्ञान विशेष स्पष्ट हो। यह विभाग इस प्रकार है-१ ज्ञाता, २ ईश्वर, ३ जगत्, ४ संसार-मोक्षका स्वरूप, और उसके कारण।

१. ज्ञाता दुःखसे छुटकारा पानेवाले द्रष्टा अर्थात् चेतनका नाम है। योग-शास्त्रमें सांख्य[14]

---

1 व्यास कृत भाष्य, वाचस्पतिकृत तत्त्ववैशारदी टीका, भोजदेवकृत राजमार्तंड, नागोजीभट्ट कृत वृत्ति, विज्ञानभिक्षु कृत वार्तिक, योगचन्द्रिका, मणिप्रभा, भावागणेशीय वृत्ति, बालरामोदासीन कृत टिप्पण आदि।

2 " तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः " न्यायदर्शन १-१-२२। 3 ईश्वरकृष्णकारिका १। 4 उसमें हानतत्व मान कर दुःखके आत्यन्तिक नाशको ही हान कहा है। 5 बुद्ध भगवान्‌के तीसरे निरोध नामक आर्यसत्यका मतलब दुःख नाशसे है। 6 वेदान्त दर्शनमें ब्रह्मको सच्चिदानंदस्वरूप माना है, इसीलिये उसमें नित्यसुखकी अभिव्यक्तिका नाम हि मोक्ष है। 7 जैन दर्शनमें भी आत्माको सुखस्वरूप माना है, इसलिये मोक्षमें स्वाभाविक सुखकी अभिव्यक्ति ही उस दर्शनको मान्य है।

8 यथा चिकित्साशास्त्रं चतुर्व्यूहम्-रोगो रोगहेतुरारोग्यं भैषज्यमिति, एवमिदमपि शास्त्रं चतुर्व्यूहमेव। तद्यथा-संसारः संसारहेतुर्मोक्षो मोक्षोपाय इति। तत्र दुःखबहुलः संसारो हेयः। प्रधानपुरुषयोः संयोगो हेयहेतुः। संयोगस्यात्यन्तिकी निवृत्तिर्हानम्। हानोपायः सम्यग्दर्शनम्। पा० २ सू० १५ भाष्य।

9 सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाचा, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि। बुद्धलीलासार संग्रह. पृ. १६०। 10 " दुःखं हेयमानागतम् " २-१६ यो. सू.। 11 " द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः २-१७। " तस्य हेतुरविद्या " २-२४ यो. सू.।

12 " तदभावात् संयोगाभावो हानं तद् दृशेः कैवल्यम् " २०-२६ यो. सू.। 13 " विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः " २-२६. यो. सू.। 14 " पुरुषबहुत्वं सिद्धं " ईश्वरकृष्णकारिका- १८।

वैशेषिक[1]-नैयायिक, बौद्ध, जैन[2] और पूर्णप्रज्ञ (मध्व[3]) दर्शनके समान द्वैतवाद अर्थात् अनेक चेतन माने गये हैं[4]।

योगशास्त्र चेतनको जैन दर्शनकी तरह[5] देहप्रमाण अर्थात् मध्यमपरिमाणवाला नहीं मानता, और मध्वसम्प्रदायकी तरह अणुप्रमाण भी नहीं मानता[6] किन्तु सांख्य[7] वैशेषिक[8],-नैयायिक और शांकरवेदान्तकी[9] तरह वह उसको व्यापक मानता है[10]।

इसी प्रकार वह चेतनको जैनदर्शनकी तरह[11] परिणामि-नित्य नहीं मानता, और न बौद्ध दर्शनकी तरह उसको क्षणिक—अनित्य ही मानता है, किन्तु सांख्य आदि उक्त शेष दर्शनोंकी तरह[12] वह उसे कूटस्थ—नित्य मानता[13] है।

२. ईश्वरके सम्बन्धमें योगशास्त्रका मत सांख्य-दर्शनसे भिन्न है। सांख्य दर्शन नाना चेतनोंके अतिरिक्त ईश्वरको नहीं मानता[14], पर योगशास्त्र—सम्मत ईश्वरका स्वरूप नैयायिक—वैशेषिक आदि दर्शनोंमें माने गये ईश्वरस्वरूपसे कुछ भिन्न है। योगशास्त्रने ईश्वरको एक अलग व्यक्ति तथा शास्त्रोपदेशक माना है सही, पर उसने नैयायिक आदिकी तरह ईश्वरमें नित्यज्ञान, नित्यईच्छा और नित्यकृतिका सम्बन्ध न मान कर इसके स्थानमें

---

1 "व्यवस्थातो नाना" ३-२-२०. वैशेषिकदर्शन। 2 "पुद्गलजीवास्त्वनेकद्रव्याणि" ५-५. तत्त्वार्थसूत्र—भाष्य।

3 जीवेश्वरभिदा चैव जडेश्वरभिदा तथा। जीवभेदो मिथश्चैव जडजीवभिदा तथा॥
मिथश्च जडभेदो यः प्रपञ्चो भेदपञ्चकः। सोऽयं सत्योऽप्यनादिश्च सादिश्चेन्नाशमाप्नुयात्॥
—सर्वदर्शनसंग्रह पूर्णप्रज्ञदर्शन।

4 " कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात् " २—२२ यो. सू.। 5 असंख्येयभागादिषु जीवानाम् "। १५। " प्रदेशसंहारविसर्गाभ्यां प्रदीपवत् " १६—तत्त्वार्थसूत्र अ० ५।

6 देखो " उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम् "। ब्रह्मसूत्र २—३—१८ पूर्णप्रज्ञ भाष्य। तथा मिलान करो अभ्यंकरशास्त्री कृत मराठी शांकरभाष्य अनुवाद भा. ४ पृ. १५३ टिप्पण ४६।

7 " निष्क्रियस्य तदसम्भवात् " सां. सू. १—४९, निष्क्रियस्य–विभोः पुरुषस्य गत्यसम्भवात्--भाष्य विज्ञानभिक्षु।

8 विभवान्महानाकाशस्तथा चात्मा।" ७—१—२२—वै. द.। 9 देखो ब्र. सू. २—३—२९· भाष्य।

10 इसलिये कि योगशास्त्र आत्मस्वरूपके विषयमें सांख्यसिद्धान्तानुसारी है।

11 "नित्यावस्थितान्यरूपाणि" ३। " उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् "। २९। " तद्भावाव्ययं नित्यम् ३०। तत्त्वार्थसूत्र अ० ५ भाष्य सहित.

12 देखो ई० कृ० कारिका ६३ सांख्यतत्त्वकौमुदी। देखो न्यायदर्शन ४—१—१०। देखो ब्रह्मसूत्र २—१—१४। २—१—२७; शांकरभाष्य सहित।

13 देखो योगसूत्र. " सदाज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्य अपरिणामित्वात् " ४—१८। " चितेरप्रतिसंक्रमायास्तदाऽकारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम् " ४—२२। तथा " द्वयी चेयं नित्यता, कूटस्थनित्यता, परिणामिनित्यता च। तत्र कूटस्थनित्यता पुरुषस्य, परिणामिनित्यता गुणानाम् " इत्यादि ४—३३ भाष्य।

14 देखो सांख्यसूत्र १—९२ आदि।

सत्त्वगुणका परमप्रकर्ष मान कर तद्द्वारा जगत्‌उद्धारादिकी सब व्यवस्था घटा[1] दी है।

३ योगशास्त्र दृश्य जगत्‌को न तो जैन, वैशेषिक, नैयायिक दर्शनोंकी तरह परमाणुका परिणाम मानता है, न शांकरवेदान्त दर्शनकी तरह ब्रह्मका विवर्त या ब्रह्मका परिणाम ही मानता है, और न बौद्धदर्शनकी तरह शून्य या विज्ञानात्मक ही मानता है; किन्तु सांख्य दर्शनकी तरह वह उसको प्रकृतिका परिणाम तथा अनादि—अनन्त–प्रवाहस्वरूप मानता है।

४ योगशास्त्रमें वासना क्लेश और कर्मका नाम ही संसार है, तथा वासनादिका अभाव अर्थात् चेतनके स्वरूपावस्थानका नाम मोक्ष[2] है। उसमे संसारका मूल कारण अविद्या और मोक्षका मुख्य हेतु सम्यग्दर्शन अर्थात् योगजन्य विवेकख्याति माना गया है।

महर्षि पतञ्जलिकी दृष्टिविशालता—यह पहले कहा जा चुका है कि सांख्य सिद्धान्त और उसकी प्रक्रियाको ले कर पतञ्जलिने अपना योगशास्त्र रचा है, तथापि उनमें एक ऐसी विशेषता अर्थात् दृष्टिविशालता नजर आती है जो अन्य दार्शनिक विद्वानोंमें बहुत कम पाई जाती है। इसी विशेषताके कारण उनका योगशास्त्र मानों सर्वदर्शनसमन्वय बन गया है। उदाहरणार्थ सांख्यका निरीश्वरवाद जब वैशेषिक, नैयायिक आदि दर्शनोंके द्वारा अच्छी तरह निरस्त हो गया और साधारण लोक-स्वभावका झुकाव भी ईश्वरोपासनाकी ओर विशेष मालूम पड़ा, तब अधिकारिभेद तथा रुचिविचित्रताका विचार करके पतञ्जलिने अपने योगमार्गमें ईश्वरोपासनाको भी स्थान[3] दिया, और ईश्वरके स्वरूपका उन्होंने निष्पक्ष भावसे ऐसा निरूपण[4] किया है जो सबको मान्य हो सके।

पतञ्जलिने सोचा कि उपासना करनेवाले सभी लोगोंका साध्य एक ही है, फिर भी वे उपासनाकी भिन्नता और उपासनामें उपयोगी होनेवाली प्रतीकोंकी भिन्नताके व्यामोहमें अज्ञानवश आपस आपसमें लड मरते हैं, और इस धार्मिक कलहमें अपने साध्यको लोक भूल जाते हैं। लोगोंको इस अज्ञानसे हटा कर सत्‌पथपर लानेके लिये उन्होंने कह दिया कि तुम्हारा मन जिसमे लगे उसीका ध्यान करो। जैसी प्रतीक तुम्हें पसंद आवे वैसी प्रतीककी[5] ही उपासना करो, पर किसी भी तरह अपना मन एकाग्र व स्थिर करो, और तद्द्वारा परमात्म-चिन्तनके सच्चे पात्र बनो। इस उदारताकी मूर्तिस्वरूप मतभेदसहिष्णु आदेशके द्वारा पतञ्जलिने सभी उपासकोंको योग-मार्गमें स्थान दिया, और ऐसा करके धर्मके नामसे होनेवाले कलहको कम कर-

---

1 यद्यपि यह व्यवस्था मूल योगसूत्रमें नहीं है, परन्तु भाष्यकार तथा टीकाकारने इसका उपपादन किया है। देखो पातञ्जल यो. पा. १ सू. २४ भाष्य तथा टीका।

2 तदा द्रष्टुः स्वरूपावस्थानम्। १–३ योगसूत्र।

3 " ईश्वरप्रणिधानाद्वा " १–२३।

4 " क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः " " तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् "। " पूर्वेषामपि गुरुः कालेनाऽनवच्छेदात् "। (१–२४, २५, २६)

5 " यथाऽभिमतध्यानाद्वा " १–३९ इसी भावकी सूचक महाभारतमें—

ध्यानमुत्पादयत्यत्र, संहितावलसंश्रयात्। यथाभिमतमन्त्रेण, प्रणवाद्यं जपेत्कृती॥
(शान्तिपर्व प्र० १९४ श्लो. २०) यह उक्ति है। और योगवाशिष्ठमें—
यथाभिवाञ्छितध्यानाच्चिरमेकतयोदितान्। एकतत्त्वघनाभ्यासात्प्राणस्पन्दो निरुध्यते॥
(उपशम प्रकरण सर्ग ७८ श्लो. १६।) यह उक्ति है।

नेका उन्होंने सच्चा मार्ग लोगोंको बतलाया। उनकी इस दृष्टिविशालताका असर अन्य गुण-ग्राही आचार्यों-पर भी पडा1, और वे उस मतभेदसहिष्णुताके तत्त्वका मर्म समझ गये।

वैशेषिक, नैयायिक आदिकी ईश्वरविषयक मान्यताका तथा साधारण लोगोंकी ईश्वरविषयक श्रद्धाका योगमार्गमें उपयोग करके ही पतञ्जलि चुप न रहे, पर उन्होंने वैदिकेतर दर्शनोंके सिद्धान्त तथा प्रक्रिया जो योगमार्गके लिये सर्वथा उपयोगी जान पडी उसका भी अपने योगशास्त्रमें बडी उदारतासे संग्रह किया। यद्यपि बौद्ध विद्वान् नागार्जुनके विज्ञानवाद तथा आत्मपरिणामित्ववादको युक्तिहीन समझ कर या योगमार्गमें अनुपयोगी समझ कर उसका निरसन चौथे पादमें किया2 है, तथापि उन्होंने बुद्धभगवान्के परमप्रिय चार आर्यसत्योंका3 हेय, हेयहेतु, हान और हानोपाय रूपसे स्वीकार निःसंकोच भावसे अपने योगशास्त्रमें किया है।

---

1 पुष्पैश्च बलिना चैव वस्त्रैः स्तोत्रैश्च शोभनैः। देवानां पूजनं ज्ञेयं शौचश्रद्धासमन्वितम्॥
अविशेषेण सर्वेषामधिमुक्तिवशेन वा। गृहिणां माननीया यत्सर्वे देवा महात्मनाम्॥
सर्वान्देवान्नमस्यन्ति नैकं देवं समाश्रिताः। जितेन्द्रिया जितक्रोधा दुर्गाण्यतितरन्ति ते॥
चारिसंजीवनीचारन्याय एष सतां मतः। नान्यथात्रेष्टसिद्धिः स्याद्विशेषेणादिकर्मणाम्॥
गुणाधिक्यपरिज्ञानाद्विशेषेऽप्येतदिष्यते। अद्वेषेण तदन्येषां वृत्ताधिक्ये तथात्मनः॥
योगबिन्दु श्लो. १६-२०

जो विशेषदर्शी होते हैं, वे तो किसी प्रतीक विशेष या उपासना विशेषको स्वीकार करते हुए भी अन्य प्रकारकी प्रतीक माननेवालों या अन्य प्रकारकी उपासना करनेवालोंसे द्वेष नहीं रखते, पर जो धर्माभिमानी प्रथमाधिकारी होते हैं वे प्रतीकभेद या उपासनाभेदके व्यामोहसे ही आपसमें लड मरते हैं। इस अनिष्ट तत्त्वको दूर करनेके लिये ही श्रीमान् हरिभद्रसूरिने उक्त पद्योंमें प्रथमाधिकारीके लिये सब देवोंकी उपासनाको लाभदायक बतलानेका उदार प्रयत्न किया है। इस प्रयत्नका अनुकरण श्रीयशोविजयजीने भी अपनी " पूर्वसेवाद्वात्रिंशिका " " आठदृष्टियोंकी सज्झाय " आदि ग्रन्थोंमें किया है। एकदेशीय सम्प्रदायाभिनिवेशी लोगोंको समजानेके लिये ' चारिसंजीवनीचार ' न्यायका उपयोग उक्त दोनों आचार्योंने किया है। यह न्याय बडा मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद है।

इस समभावसूचक दृष्टान्तका उपनय श्रीज्ञानविमलने आठदृष्टिकी सज्झाय पर किये हुए अपने गूजराती टबेमें बहुत अच्छी तरह घटाया है, जो देखने योग्य है। इसका भाव संक्षेपमें इस प्रकार है। कीसी स्त्रीने अपनी सखीसे कहा कि मेरा पति मेरे अधीन न होनेसे मुझे बडा कष्ट है। यह सुन कर उस आगन्तुक सखीने कोई जडी खिला कर उस पुरुषको बैल बना दिया, और वह अपने स्थानको चली गई। पतिके बैल बन जानेसे उसकी पत्नी दुःखित हुई, पर फिर वह पुरुषरूप बनानेका उपाय न जाननेके कारण उस बैलरूप पतिको चराया करती थी, और उसकी सेवा किया करती थी। कीसी समय अचानक एक विद्याधरके मुखसे ऐसा सुना कि अगर बैलरूप पुरुषको सजीवनी नामक जडी चराई जाय तो वह फिर असली रूप धारण कर सकता है। विद्याधरसे यह भी सुना कि वह जडी अमुक वृक्षके नीचे है। पर उस वृक्षके नीचे अनेक प्रकारकी वनस्पति होनेके कारण वह स्त्री संजीवनीको पहचाननेमें असमर्थ थी। इससे उस दुःखित स्त्रीने अपने बैलरूपधारि पतिको सब वनस्पतियाँ चरा दीं। जिनमें संजीवनीको भी वह बैल चर गया। जैसे विशेष परीक्षा न होनेके कारण उस स्त्रीने सब वनस्पतियोंके साथ संजीवनी खिला कर अपने पतिका कृत्रिम बैलरूप छुडाया, और असली मनुष्यत्वको प्राप्त कराया, वैसे ही विशेष परीक्षाविकल प्रथमाधिकारी भी सब देवोंकी समभावसे उपासना करते करते योगमार्गमें विकास करके इष्ट लाभ कर सकता है।

2 देखो सू० १५, १८। 3दुःख, समुदय, निरोध और मार्ग।

जैन दर्शनके साथ योगशास्त्रका सादृश्य तो अन्य सब दर्शनोंकी अपेक्षा अधिक ही देखनेमें आता है। यह बात स्पष्ट होनेपर भी बहुतोंको विदित ही नहीं है। इसका सबब यह है कि जैनदर्शनके खास अभ्यासी ऐसे बहुत कम हैं जो उदारता पूर्वक योगशास्त्रका अवलोकन करनेवाले हों, और योगशास्त्रके खास अभ्यासी भी ऐसे बहुत कम हैं जिन्होंने जैनदर्शनका बारीकीसे ठीक ठीक अवलोकन किया हो। इसलिये इस विषयका विशेष खुलासा करना यहाँ अप्रासङ्गिक न होगा।

योगशास्त्र और जैनदर्शनका सादृश्य मुख्यतया तीन प्रकारका है। १ शब्दका, २ विषयका और ३ प्रक्रियाका।

१ मूल योगसूत्रमें ही नहीं किन्तु उसके भाष्यतकमें ऐसे अनेक शब्द हैं जो जैनेतर दर्शनोंमें प्रसिद्ध नहीं हैं, या बहुत कम प्रसिद्ध हैं, किन्तु जैन शास्त्रमें खास प्रसिद्ध हैं। जैसे–भवप्रत्यय,1 सवितर्क–सविचार-निर्विचार2, महाव्रत3, कृत-कारित-अनुमोदित4, प्रकाशावरण5, सोपक्रम-निरुपक्रम6, वज्रसंहनन7, केवली8, कुशल9, ज्ञानावरणीयकर्म10, सम्यग्ज्ञान,11 सम्यग्दर्शन,12 सर्वज्ञ,13 क्षीणक्लेश,15 चरमदेह16 आदि।

---

1 "भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम्" योगसू. १–१९। "भवप्रत्ययो नारकदेवानाम्" तत्त्वार्थ अ. १–२२।

2 ध्यानविशेषरूप अर्थमें ही जैनशास्त्रमें ये शब्द इस प्रकार हैं "एकाश्रये सवितर्के पूर्वे" (तत्त्वार्थ अ. ९–४३) "तत्र सविचारं प्रथमम्" भाष्य "अविचारं द्वितीयम्" तत्त्वा० अ० ९–४४। योगसूत्रमें ये शब्द इस प्रकार आये हैं–"तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः" "स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का" "एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता" १–४२, ४३, ४४।

3 जैनशास्त्रमें मुनिसम्बन्धी पाँच यमोंके लिये यह शब्द बहुत ही प्रसिद्ध है। "सर्वतो विरतिर्महाव्रतमिति तत्त्वार्थ" अ० ७–२ भाष्य। यही शब्द उसी अर्थमें योगसूत्र २–३१ में है।

4 ये शब्द जिस भावके लिये योगसूत्र २–३१ में प्रयुक्त हैं, उसी भावमें जैनशास्त्रमें भी आते हैं, अन्तर सिर्फ इतना है कि जैनग्रन्थोंमें अनुमोदितके स्थानमें बहुधा अनुमतशब्द प्रयुक्त होता है। देखो–तत्त्वार्थ, अ. ६–९।

5 यह शब्द योगसूत्र २–५२ तथा ३–४३ में है। इसके स्थानमें जैनशास्त्रमें 'ज्ञानावरण' शब्द प्रसिद्ध है। देखो तत्त्वार्थ. ६–११ आदि।

6 ये शब्द योगसूत्र ३–२२ में हैं। जैन कर्मविषयक साहित्यमें ये शब्द बहुत प्रसिद्ध हैं। तत्त्वार्थमें भी इनका प्रयोग हुआ है, देखो—अ. २–५२ भाष्य।

7 यह शब्द योगसूत्र ३–४६ में प्रयुक्त है। इसके स्थानमें जैन ग्रन्थोंमें 'वज्रऋषभनाराचसंहनन' ऐसा शब्द मिलता है। देखो तत्त्वार्थ अ० ८–१२ भाष्य।

8 योगसूत्र २–२७ भाष्य, तत्त्वार्थ अ० ६–१४।

9 देखो योगसूत्र २–२७ भाष्य, तथा दशवैकालिकनिर्युक्ति गाथा १८६।

10 देखो योगसूत्र २–१६ भाष्य, तथा आवश्यकनिर्युक्ति गाथा ८९३।

11 योगसूत्र २–२८ भाष्य, तत्त्वार्थ अ० १–१।

12 योगसूत्र ४–१५ भाष्य, तत्त्वार्थ अ० १–२।

13 योगसूत्र ३–४९ भाष्य, तत्त्वार्थ ३–४९।

14 योगसूत्र १–४ भाष्य। जैन शास्त्रमें बहुधा 'क्षीणमोह' 'क्षीणकषाय' शब्द मिलते हैं। देखो तत्त्वार्थ अ० ९–३८।

15 योगसूत्र २–४ भाष्य, तत्त्वार्थ अ० २–५२

२ प्रसुप्त, तनु आदिक्लेशावस्था1, पाँच यम,2 योगजन्य विभूति,3 सोपक्रम निरुपक्रम4 कर्मका स्वरूप, तथा उसके दृष्टान्त, अनेक कार्योंका5 निर्माण आदि ।

---

1 प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार इन चार अवस्थाओंका योगसूत्र २-४ मे वर्णन है । जैन-शास्त्रमे वही भाव मोहनीयकर्मकी सत्ता, उपशमक्षयोपशम, विरोधिप्रकृतिके उदयादिकृत व्यवधान और उदयावस्थाके वर्णनरूपसे वर्तमान है । देखो योगसूत्र २-४ की यशोविजयकृत वृत्ति ।

2 पॅाच यमोका वर्णन महाभारत आदि ग्रन्थोंमे है सही, पर उसकी परिपूर्णता "जातिदेशकालसमयाऽनवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्" योगसूत्र २-३१ में तथा दशवैकालिक अध्ययन ४ आदि जैनशास्त्रप्रतिपादित महाव्रतोंमें देखनेमें आती है ।

3 योगसूत्रके तीसरे पादमे विभूतियोंका वर्णन है, वे विभूतियाँ दो प्रकारकी हैं । १ वैज्ञानिक २ शारीरिक । अतीताऽनागतज्ञान, सर्वभूतरुतज्ञान, पूर्वजातिज्ञान, परचित्तज्ञान, भुवनज्ञान, ताराव्यूहज्ञान, आदि ज्ञानविभूतियॉ हैं । अन्तर्धान, हस्तिबल, परकायप्रवेश, अणिमादि ऐश्वर्य तथा रूपलावण्यादि कायसंपत्. इत्यादि शारीरिक विभूतियॉ है । जैनशास्त्रमे भी अवधिज्ञान, मनःपर्यायज्ञान, जातिस्मरणज्ञान, पूर्वज्ञान आदि ज्ञानलब्धियॉ हैं, और आमौषधि, विप्रुडौषधि, श्लेष्मौषधि, सर्वौषधि, जंघाचारण-विद्याचारण, वैक्रिय, आहारक आदि शारीरिक लब्धियाँ हैं । देखो गा० ६९, ७० आवश्यकनिर्युक्ति लब्धि यह विभूतिका नामान्तर है ।

4 योगभाष्य और जैनग्रन्थोंमे सोपक्रम निरुपक्रम आयुष्कर्मका स्वरूप बिल्कुल एकसा है, इतना ही नहीं बल्कि उस स्वरूपको दिखाते हुए भाष्यकारने यो. सू. ३-२२ के भाष्यमे आर्द्र वस्त्र और तृणराशिके जो दो दृष्टान्त लिखे हैं, वे आवश्यकनिर्युक्ति (गाथा-९५६) तथा विशेषावश्यक भाष्य (गाथा-३० ६१) आदि जैनशास्त्रमें सर्वत्र प्रसिद्ध हैं. पर तत्त्वार्थ (अ० -२५२) के भाष्यमे उक्त दो दृष्टान्तोंके उपरान्त एक तीसरा गणितविषयक दृष्टान्त भी लिखा है । इस विषयमे उक्त व्यासभाष्य और तत्त्वार्थभाष्यका शाब्दिक सादृश्य भी बहुत अधिक और अर्थसूचक है ।

"यथाऽऽर्द्रवस्त्र वितानितं लघीयसा कालेन शुष्येत् तथा सोपक्रमम् । यथा च तदेव संपिण्डितं चिरेण संशुष्येद् एवं निरुपक्रमम् । यथा चाग्निः शुष्के कक्षे मुक्तो वातेन वा समन्ततो युक्तः क्षेपीयसा कालेन दहेत् तथा सोपक्रमम् । यथा वा स एवाऽग्निस्तृणराशौ क्रमशोऽवयवेषु न्यस्तश्चिरेण दहेत् तथा निरुपक्रमम्" योग ३-२२ भाष्य । यथाहि संहतस्य शुष्कस्यापि तृणराशेरवयवशः क्रमेण दह्यमानस्य चिरेण दाहो भवति, तस्यैव शिथिलप्रकीर्णोपचितस्य सर्वतो युगपदादीपितस्य पवनोपक्रमाभिहतस्याशु दाहो भवति, तद्वत् । यथा वा संख्यानाचार्यः करणलाघवार्थं गुणकारभागहाराभ्यां राशिं छेदादेवापवर्तयति न च संख्येयस्यार्थस्याभावो भवति, तद्वदुपक्रमाभिहतो मरणसमुद्घातदुःखार्त्तः कर्मप्रत्ययमनाभोगयोगपूर्वकं करणविशेषमुत्पाद्य फलोपभोगलाघवार्थं कर्मापवर्तयति न चास्य फलाभाव इति ॥ किं चान्यत् । यथा वा धौतपटो जलार्द्र एव संहतश्चिरेण शोषमुपयाति । स एव च वितानितः सूर्यरश्मिवाय्वभिहतः क्षिप्रं शोषमुपयाति ।" तत्त्वा० अ० २-५२ भाष्य ।

5 योगबलसे योगी जो अनेक शरीरोंका निर्माण करता है, उसका वर्णन योगसूत्र ४-४ में है, यही विषय वैक्रिय-आहारक-लब्धिरूपसे जैनग्रन्थोंमे वर्णित है ।

३ परिणामि-नित्यता अर्थात् उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यरूपसे त्रिरूप वस्तु मान कर तदनुसार धर्मधर्मीका विवेचन[1] इत्यादि।

इसी विचारसमताके कारण श्रीमान् हरिभद्र जैसे जैनाचार्योंने महर्षि पतञ्जलिके प्रति अपना हार्दिक आदर प्रकट करके अपने योगविषयक ग्रन्थोंमें गुणग्राहकताका निर्भीक परिचय पूरे तौरसे दिया है[2], और जगह जगह पतञ्जलिके योगशास्त्रगत खास साङ्केतिक शब्दोंका जैन सङ्केतोंके साथ मिलान करके सङ्कीर्ण-दृष्टिवालोंके लिये एकताका मार्ग खोल दिया है[3]। जैन विद्वान् यशोविजयवाचकने हरिभद्रसूरिसूचित एकताके मार्गको विशेष विशाल बनाकर पतञ्जलिके योगसूत्रको जैन प्रक्रियाके अनुसार समझानेका थोडा किन्तु मार्मिक प्रयास किया है[4]। इतना ही नहीं बल्कि अपनी बत्तीसियोंमें उन्होंने पतञ्जलिके योगसूत्रगत कुछ विषयोंपर खास बत्तीसियाँ भी रची हैं[5]। इन सब बातोंको संक्षेपमें बतलानेका उद्देश्य यही है कि महर्षि पतञ्जलिकी दृष्टिविशालता इतनी अधिक थी कि सभी दार्शनिक व साम्प्रदायिक विद्वान् योगशास्त्रके पास आते ही अपना साम्प्रदायिक अभिनिवेश भूल गये और एकरूपताका अनुभव करने लगे। इसमें कोई संदेह नहीं कि महर्षि पतञ्जलिकी दृष्टि-विशालता उनके विशिष्ट योगानुभवका ही फल है, क्योंकि-जब कोई भी मनुष्य शब्द ज्ञानकी प्राथमिक भूमिकासे आगे बढ़ता है तब वह शब्दकी पूंछ न खींचकर चिन्ताज्ञान तथा भावनाज्ञानके[6] उत्तरोत्तर अधिकाधिक एकतावाले प्रदेशमें अभेद आनंदका अनुभव करता है।

आचार्य हरिभद्रकी योगमार्गमें नवीन दिशा-श्रीहरिभद्र प्रसिद्ध जैनाचार्योंमें एक हुए। उनकी बहुश्रुतता, सर्वतोमुखी प्रतिभा, मध्यस्थता और समन्वयशक्तिका पूरा परिचय करानेका यहाँ प्रसंग नहीं है। इसके लिए

---

1 जैनशास्त्रमें वस्तुको द्रव्यपर्यायस्वरूप माना है। इसीलिये उसका लक्षण तत्त्वार्थ (अ० ५-२९) में "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्" ऐसा किया है। योगसूत्र (३-१३, १४) में जो धर्मधर्मीका विचार है वह उक्त द्रव्यपर्यायउभयरूपता किंवा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य इस त्रिरूपताका ही चित्रण है। भिन्नता सिर्फ दोनोंमें इतनी ही है कि-योगसूत्र सांख्यसिद्धान्तानुसारी होनेसे "ऋते चितिशक्तेः परिणामिनो भावाः" यह सिद्धान्त मानकर परिणामवादका अर्थात् धर्मलक्षणावस्था परिणामका उपयोग सिर्फ जडभागमें अर्थात् प्रकृतिमें करता है, चेतनमें नहीं। और जैनदर्शन तो "सर्वे भावाः परिणामिनः" ऐसा सिद्धान्त मानकर परिणामवाद अर्थात् उत्पादव्ययरूप पर्यायका उपयोग जड चेतन दोनोंमें करता है। इतनी भिन्नता होनेपर भी परिणामवादकी प्रक्रिया दोनोंमें एक सी है।

2 उक्तं च योगमार्गज्ञैस्तपोनिर्धूतकल्मषैः। भावियोगहितायोच्चैर्मोहदीपसमं वचः॥
(योगबिं. श्लो. ६६) टीका 'उक्तं च निरूपितं पुनः योगमार्गज्ञैरध्यात्मविद्भिः पतञ्जलिप्रभृतिभिः॥
"एतत्प्रधानः सच्छ्राद्धः शीलवान् योगतत्परः। जानात्यतीन्द्रियानर्थांस्तथा चाह महामतिः"॥ (योगदृष्टिसमुच्चय श्लो. १००) टीका 'तथा चाह महामतिः पतञ्जलिः'। ऐसा ही भाव गुणग्राही श्रीयशोविजयजीने अपनी योगावतारद्वात्रिंशिकामें प्रकाशित किया है। देखो-श्लो० २० टीका।

3 देखो योगबिन्दु श्लोक ४१८, ४२०। 4 देखो उनकी बनाई हुई पातञ्जलसूत्रवृत्ति।

5 देखो पातञ्जलयोगलक्षणविचार, ईशानुग्रहविचार, योगावतार, क्लेशहानोपाय और योगमाहात्म्य द्वात्रिंशिका।

6 शब्द, चिन्ता तथा भावनाज्ञानका स्वरूप श्रीयशोविजयजीने अध्यात्मोपनिषद्में लिखा है, जो आध्यात्मिक लोगोंको देखने योग्य है। अध्यात्मोपनिषद् श्लो. ६५, ७४।

जिज्ञासु महाशय उनकी कृतियोंको देख लेवें। हरिभद्रसूरिकी शतमुखी प्रतिभाके स्रोत उनके बनाये हुए चार अनुयोगविषयक[1] ग्रंथोंमें ही नहीं बल्कि जैन न्याय तथा भारतवर्षीय तत्कालीन समग्र दार्शनिक सिद्धांतोंकी चर्चावाले[2] ग्रन्थोंमें भी बहे हुए हैं। इतना करके ही उनकी प्रतिभा मौन न हुई; उसने योगमार्गमें एक ऐसी दिशा दिखाई जो केवल जैन योगसाहित्यमें ही नहीं बल्कि आर्यजातीय संपूर्ण योगविषयक साहित्यमें एक नई वस्तु है। जैनशास्त्रमें आध्यात्मिक विकासके क्रमका प्राचीन वर्णन चौदह गुणस्थानरूपसे, चार ध्यान रूपसे और बहिरात्म आदि तीन अवस्थाओंके रूपसे मिलता है। हरिभद्रसूरिने उसी आध्यात्मिक विकासके क्रमका योगरूपसे वर्णन किया है। पर उसमें उन्होंने जो शैली रक्खी है वह अभीतक उपलब्ध योगविषयक साहित्यमेंसे किसी भी ग्रंथमें कमसे कम हमारे देखनेमें तो नहीं आई है। हरिभद्रसूरि अपने ग्रन्थोंमें अनेक योगियोंका नामनिर्देश करते हैं[3], एवं योगविषयक[4] ग्रन्थोंका उल्लेख करते हैं जो अभी प्राप्त भी नहीं हैं। संभव है उन अप्राप्य ग्रन्थोंमें उनके वर्णनकीसी शैली रही हो, पर हमारे लिये तो यह वर्णनशैली और योग विषयक वस्तु बिल्कुल अपूर्व है। इस समय हरिभद्रसूरिके योगविषयक चार ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं जो हमारे देखनेमें आये हैं। उनमेंसे षोडशक और योगविंशिकाके योगवर्णनकी शैली और योगवस्तु एक ही है। योगबिंदुकी विचारसरणी और वस्तु योगविंशिकासे जुदा है। योगदृष्टिसमुच्चयकी विचारधारा और वस्तु योगबिंदुसे भी जुदा है। इस प्रकार देखनेसे यह कहना पडता है कि हरिभद्रसूरिने एक ही आध्यात्मिक विकासके क्रमका चित्र भिन्न भिन्न ग्रन्थोंमें भिन्न भिन्न वस्तुका उपयोग करके तीन प्रकारसे खींचा है।

कालकी अपरिमित लंबी नदीमें वासनारूप संसारका गहरा प्रवाह बहता है, जिसका पहला छोर [मूल] तो अनादि है, पर दूसरा [उत्तर] छोर सान्त है। इसलिये मुमुक्षुओंके वास्ते सबसे पहले यह प्रश्न बडे महत्त्वका है कि उक्त अनादि प्रवाहमें आध्यात्मिक विकासका आरंभ कबसे होता है ? और उस आरंभके समय आत्माके लक्षण कैसे हो जाते हैं? जिनसे कि आरंभिक आध्यात्मिक विकास जाना जा सके। इस प्रश्नका उत्तर आचार्यने योगबिंदुमें दिया है। वे कहते हैं कि–" जब आत्माके ऊपर मोहका प्रभाव घटनेका आरंभ होता है तभीसे आध्यात्मिक विकासका सूत्रपात हो जाता है। इस सूत्रपातका पूर्ववर्ती समय जो आध्यात्मिकविकासरहित होता है, वह जैनशास्त्रमें अचरमपुद्गलपरावर्तके नामसे प्रसिद्ध है। और उत्तरवर्ती समय जो आध्यात्मिक विकासके क्रमवाला होता है, वह चरमपुद्गलपरावर्तके नामसे प्रसिद्ध है। अचरमपुद्गलपरावर्तन और चरमपुद्गलपरावर्तनकालके परिमाणके बीच सिंधु[5] और बिंदुका सा अंतर होता है। जिस आत्माका संसारप्रवाह चरमपुद्गलपरावर्तपरिमाण शेष रहता है, उसको जैन परिभाषामें ' अपुनर्बंधक ' और सांख्यपरिभाषामें ' निवृत्ताधिकार प्रकृति ' कहते हैं[6]। अपुनर्बन्धक या निवृत्ताधिकारप्रकृति आत्माका आंतरिक परिचय इतना ही है कि उसके ऊपर मोहका दबाव कम होकर उलटे मोहके ऊपर उस आत्माका दबाव शुरू होता है। यही आध्यात्मिक विका-

---

1 द्रव्यानुयोगविषयक–धर्मसंग्रहणी आदि १, गणितानुयोगविषयक–क्षेत्रसमास टीका आदि २, चरणकरणानुयोगविषयक–पञ्चवस्तु, धर्मबिंदु आदि ३, धर्मकथानुयोगविषयक–समराइच्चकहा आदि ४ ग्रन्थ मुख्य हैं।

2 अनेकान्तजयपताका, षड्दर्शनसमुच्चय, शास्त्रवार्तासमुच्चय आदि।

3 गोपेन्द्र (योगबिन्दु श्लोक २००) कालातीत (योगबिन्दु श्लोक ३००)। पतञ्जलि, भदन्तभास्करबन्धु, भगवदन्त (त्त) वादी (योगदृष्टि० श्लोक १६ टीका)।

4 योग–निर्णय आदि (योगदृष्टि० श्लोक १ टीका)

5 देखो मुक्त्यद्वेषद्वात्रिंशिका २८। 6 देखो योगबिंदु १७८, २०१।

सका बीजारोपण है। यहींसे योगमार्गका आरंभ हो जानेके कारण उस आत्माकी प्रत्येक प्रवृत्तिमें सरलता, नम्रता, उदारता, परोपकारपरायणता आदि सदाचार वास्तविक रूपमें दिखाई देते हैं; जो उस विकासोन्मुख आत्माका बाह्य परिचय है"। इतना उत्तर देकर आचार्यने योगके आरंभसे लेकर योगकी पराकाष्ठा तकके आध्यात्मिक विकासकी क्रमिक वृद्धिको स्पष्ट समझानेके लिये उसको पाँच भूमिकाओंमें विभक्त करके हर एक भूमिकाके लक्षण बहुत स्पष्ट दिखाये हैं[1], और जगह जगह जैन परिभाषाके साथ बौद्ध तथा योगदर्शनकी परिभाषाका मिलान करके[2] परिभाषाभेदकी दिवारको तोड़कर उसकी ओटमें छिपी हुई योगवस्तुकी भिन्नभिन्नदर्शनसम्मत एकरूपताका स्फुट प्रदर्शन कराया है। अध्यात्म, भावना, ध्यान, समता और वृत्तिसंक्षय ये योगमार्गकी पाँच भूमिकायें हैं। इनमेंसे पहली चारको पतंजलि संप्रज्ञात, और अन्तिम भूमिकाको असंप्रज्ञात कहते हैं[3]। यही संक्षेपमें योगबिन्दुकी वस्तु है।

योगदृष्टिसमुच्चयमें आध्यात्मिक विकासके क्रमका वर्णन योगबिन्दुकी अपेक्षा दूसरे ढंगसे है। उसमें आध्यात्मिक विकासके प्रारंभके पहलेकी स्थितिको अर्थात् अचरमपुद्गलपरावर्त्तपरिमाण संसारकालीन आत्माकी स्थितिको ओघदृष्टि कहकर उसके तरतम भावको अनेक दृष्टांत द्वारा समझाया है[4], और पीछे आध्यात्मिक विकासके आरंभसे लेकर उसके अंततकमें पाई जानेवाली योगावस्थाको योगदृष्टि कहा है। इस योगावस्थाकी क्रमिक वृद्धिको समझानेके लिये संक्षेपमें उसे आठ भूमिकाओंमें बाँट दिया है। वे आठ भूमिकायें उस ग्रन्थमें आठ योगदृष्टिके नामसे प्रसिद्ध हैं[5]। इन आठ दृष्टियोंका विभाग पातंजलयोगदर्शन-प्रसिद्ध यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि आठ योगांगोंके आधार पर किया गया है, अर्थात् एक एक दृष्टिमें एक एक योगांगका सम्बन्ध मुख्यतया बतलाया है। पहली चार दृष्टियां योगकी प्रारम्भिक अवस्थारूप होनेसे उनमें अविद्याका अल्प अंश रहता है। जिसको प्रस्तुत ग्रंथमें अवेद्यसंवेद्यपद कहा है[6]। अगली चार दृष्टियोंमें अविद्याका अंश बिल्कुल नहीं रहता। इस भावको आचार्यने वेद्यसंवेद्यपद शब्दसे जनाया[7] है। इसके सिवाय प्रस्तुत ग्रंथमें पिछली चार दृष्टियोंके समय पाये जानेवाले विशिष्ट आध्यात्मिक विकासको इच्छायोग, शास्त्रयोग और सामर्थ्ययोग ऐसी तीन योग भूमिकाओंमें विभाजित करके उक्त तीनों योगभूमिकाओंका बहुत रोचक वर्णन किया है[8]।

आचार्यने अन्तमें चार प्रकारके योगियोंका वर्णन करके योगशास्त्रके अधिकारी कौन हो सकते हैं, यह भी बतला दिया है। यही योगदृष्टिसमुच्चयकी बहुत संक्षिप्त वस्तु है।

योगविंशिकामें आध्यात्मिक विकासकी प्रारंभिक अवस्थाका वर्णन नहीं है, किन्तु उसकी पुष्ट अवस्थाओंका ही वर्णन है। इसीसे उसमें मुख्यतया योगके अधिकारी त्यागी ही माने गये हैं। प्रस्तुत ग्रन्थमें त्यागी गृहस्थ और साधुकी आवश्यक-क्रियाको ही योगरूप बतलाकर उसके द्वारा आध्यात्मिक विकासकी क्रमिक वृद्धिका वर्णन किया है। और उस आवश्यक-क्रियाके द्वारा योगको पाँच भूमिकाओंमें विभाजित किया है। ये पांच भूमिकायें उसमें स्थान, शब्द, अर्थ, सालंबन और निरालंबन नामसे प्रसिद्ध हैं। इन पाँच भूमिकाओंमें कर्मयोग और ज्ञानयोगकी घटना करते हुए आचार्यने पहली दो भूमिकाओंको कर्मयोग और पिछली तीन भूमिकाओंको ज्ञानयोग कहा है। इसके सिवाय प्रत्येक भूमिकामें इच्छा, प्रवृत्ति, स्थैर्य और सिद्धिरूपसे आध्यात्मिक विकासके तरतम भावका प्रदर्शन कराया है: और उस प्रत्येक भूमिका तथा

---

1 योगबिंदु, ३१, ३५७, ३५९, ३६१, ३६३, ३६६।

2 "यत्सम्यग्दर्शनं बोधिस्तत्प्रधानो महोदयः। सत्त्वोऽस्तु बोधिसत्त्वस्तद्धन्तैषोऽन्वर्थतोऽपि हि ॥ २७३॥ वरबोधिसमेतो वा तीर्थकृद्यो भविष्यति। तथाभव्यत्वतोऽसौ वा बोधिसत्त्वः सतां मतः" ॥ २७४॥ योगबिन्दु।

3 देखो योगबिंदु ४१८, ४२०।

4 देखो, योगदृष्टिसमुच्चय १४। 5 १३। 6 ७५। 7 ७३। 8 २-१२।

इच्छा, प्रवृत्ति आदि अवान्तर स्थितिका लक्षण बहुत स्पष्टतया वर्णन किया है[1]। इस प्रकार उक्त पाँच भूमिकाओंकी अन्तर्गत भिन्न भिन्न स्थितियोंका वर्णन करके योगके अस्सी भेद किये हैं, और उन सबके लक्षण बतलाये हैं, जिनको ध्यानपूर्वक देखनेवाला यह जान सकता है कि मैं विकासकी किस सीढीपर खड़ा हूँ। यही योगविंशिकाकी संक्षिप्त वस्तु है।

उपसंहार—विषयकी गहराई और अपनी अपूर्णताका खयाल होते हुए भी यह प्रयास इस लिये किया गया है कि अवतकका अवलोकन और स्मरण संक्षेपमें भी लिपिबद्ध हो जाय, जिससे भविष्यत्में विशेष प्रगति करना हो तो इस विषयका प्रथम सोपान तैयार रहे। इस प्रवृत्तिमें कई मित्र मेरे सहायक हुए हैं जिनके नामोल्लेख मात्रसे मैं कृतज्ञता-प्रकाशित करना नहीं चाहता। उनकी आदरणीय स्मृति मेरे हृदयमें अखंड रहेगी।

पाठकोंके प्रति एक मेरी सूचना है। वह यह कि इस निबंधमें अनेक शास्त्रीय पारिभाषिक शब्द आये हैं। खासकर अन्तिम भागमें जैन-पारिभाषिक शब्द अधिक हैं, जो बहुतोंको कम विदित होंगे; उनका मैंने विशेष खुलासा नहीं किया है, पर खुलासावाले उस उस ग्रन्थके उपयोगी स्थलोंका निर्देश कर दिया है जिससे विशेष जिज्ञासु मूलग्रन्थद्वारा ही ऐसे कठिन शब्दोंका खुलासा कर सकेंगे। अगर यह संक्षिप्त निबंध न हो कर खास पुस्तक होती तो इसमें विशेष खुलासोंका भी अवकाश रहता।

इस प्रवृत्तिके लिये मुझको उत्साहित करनेवाले गुजरात पुरातत्त्व संशोधन मंदिरके मंत्री परीख रसिकलाल छोटालाल हैं जिनके विद्याप्रेमको मैं नहीं भूल सकता।

संवत् १९७८ पौष
वदि ९
भावनगर.

लेखक—
सुखलाल संघजी.

1 योगविंशिका गा॰ ५, ६।

कुंरपाल सोणपाल प्रशस्ति

(लेखक—बनारसी दास जैन, एम० ए०, ओरियंटल कालेज, लाहोर.)

१. सन १९२० में एस० एस० जैन कान्फ्रेन्स की तरफ से इन्दौर वासी सेठ केसरी चन्द भण्डारी ने मुझे लिखा कि उक्त कान्फ्रेन्स का जो प्राकृत कोश बन रहा है आप उसे देख-कर उस के विषय में अपनी तथा अन्य प्राकृत विद्वानों की सम्मति लेकर लिखें। इस सम्बन्ध में मुझे उस साल कई नगरों में जाना पड़ा। जब मैं आगरे में था तो मेरा समागम पं० सुखलालजी से हुआ, उन्हों ने मुझे बतलाया कि यहां के मन्दिर में एक नया शिला लेख निकला है [1] जिसको अभी किसी ने नहीं देखा। मैं मुनि प्रतापविजयजी को साथ लेकर उसे देखने गया। परन्तु उस समय छाप उतारने की सामग्री विद्यमान न थी इस लिये उस समय मैं वहां अधिक ठहरा भी नहीं क्योंकि लेख को देखने के दो तीन घंटे पीछे मैं वहां से चल पड़ा था।

२. फिर अप्रैल सन १९२१ में मैं पंजाब यूनिवर्सिटी के एम. ए. तथा बी. ए. क्लासों के संस्कृत विद्यार्थियों को लेकर कलकत्ता, पटना, लखनऊ आदि बड़े बड़े नगरों के अजायब घर (Museums) देखने जा रहा था, तब आगरे में भी ठहरा और उपरोक्त शिलालेख की छाप तय्यार की, परन्तु अब वहां न तो पं. सुखलालजी थे न ही मुनि प्रतापविजयजी थे। बाबू दयालचन्दजी भी कारण वश बाहिर गए हुए थे। इन के अतिरिक्त और कोई श्रावक मुझ से परिचित न थे इसलिये उस वक्त वह छाप मुझ को न मिल सकी। अब कलकत्ता निवासी श्रीयुत बाबू पूरणचन्द नाहर द्वारा मैं ने वह छाप प्राप्त की है और उसी के आधारपर पाठकों को इस शिलालेख का परिचय दे रहा हूं।

३. यह लेख लाल पत्थर की शिला पर खुदा हुआ है जो लग भग दो फुट लम्बी और दो फुट चौड़ी है। लेख खोदने से पहिले शिला के चारों और दो दो इंच का हाशिया (margin) छोड कर रेखा डाल दी गई है। रेखा के बाहिर ऊपर की तरफ " पातसाहि श्री जहांगीर " उभरे हुए अक्षरों में खुदा हुआहै। बाकी का सारा लेख गहिरे अक्षरों में खुदा हुआ है। रेखाओं के अन्दर लेख की ३३ पंक्तियां हैं मगर उन में लेख समाप्त न हो सका इस लिये रेखाओं के बाहिर नीचे दो पंक्तियां (नं ३४ और ३८) दाई ओर एक पंक्ति (नं० ३९) और बाई ओर दो पंक्तियां [नं० ३६–३७] और खोदी गई हैं। शिला के दाई ओर नीचे का कुछ भाग टूट गया है जिस से लेख की पंक्ति २८–३४ और ३८ के अन्त के आठ नौ अक्षर और पंक्ति ३९ के आदि के १४, १९ अक्षर टूट गए हैं। इस से कुँवरपाल सोनपाल के उस समय वर्तमान परिवार के प्रायः सब नाम नष्ट हो गए हैं। पंक्ति ३६–३७ के भी कुछ अक्षर पढ़े नहीं गए।

---

1 मन्दिर की एक कोठडी में बहुत से पत्थर पडे थे। जब अप्रैल मई सन् १९२० में उन पत्थरों को निकालने लगे तो उन में से यह लेख भी निकला। अब यह शिला लेख मन्दिर में ही पडा है॥

४. लेख के अक्षर शुद्ध जैन लिपि के हैं जो कि हस्त लिखित पुस्तकों (Mss.) में पाए जाते हैं। पुस्तकों की भांति लेख की आदि में 'र्द०' यह चिन्ह है जो शायद 'ओम्' शब्द का द्योतक है, क्योंकि प्राचीन शिलालेख तथा ताम्रशासनों में 'ओम्' के लिये कुछ ऐसा ही चिन्ह हुआ करता था। 'च' और 'व' की आकृति बहुत कुछ मिलती जुलती है। पंक्ति ६ और ८ में मार्ग्ग और वर्ग्ग शब्दों में 'ग्ग' के लिये 'ग्र' [1] चिन्ह आया है जो जैन लिपि का खास चिन्ह है।

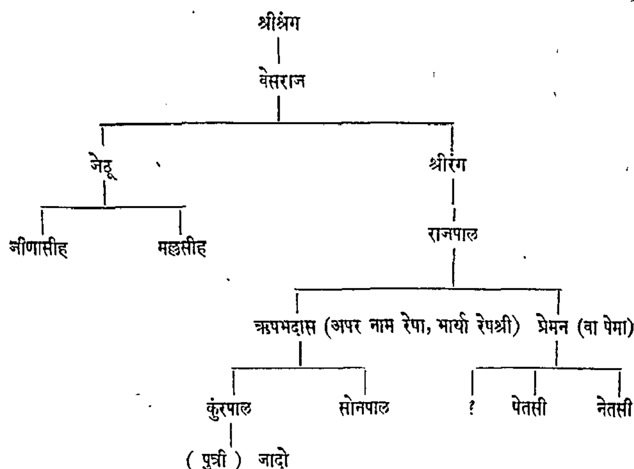
५. वर्णविन्यास (Spelling) में विशेपता यह है कि "परसवर्ण" कहीं नहीं किया गया अर्थात् स्पर्शीय अक्षरों के पूर्व नासिक्य के स्थान में सर्वदा अनुस्वार लिखा गया है जैसे पंक्ति २ में पङ्कज, बिम्ब, चन्द्र के स्थान में पंकज, बिंव, चंद्र लिखे हैं। इसी प्रकार श्लोकार्ध वा श्लोक के अन्त में म् के स्थान में अनुस्वार ही लिखा है जैसे पंक्ति १६ में अठारहवें अर्धश्लोक के अन्त में 'श्रुत्वा कल्याणदेशनां।' पंक्ति २० अर्धश्लोक २१ 'वित्तबीजमनुत्तरं।' पंक्ति २२ श्लोकान्त २३ 'चित्तरंजकं।' पंक्ति २६ श्लोकान्त २८ 'कारितं।' इत्यादि। पंक्ति ९ में षट्त्रिंशत् के स्थान में षड्त्रिंशत् लिखा है। विराम का चिन्ह '।' श्लोकपादों के अन्त में भी लगाया है, कहीं कहीं पंक्ति के अन्त में अक्षर के लिये पूरा स्थान न होने से विराम लिख दिया है जैसे पंक्ति ७, ९, १२, १९ आदि में।

६. पट्टावलि को छोड़ कर बाकी तमाम लेख श्लोकबद्ध है। इसकी भाषा शुद्ध संस्कृत है परन्तु पंक्ति १९ में पति शब्द का सप्तमी एक वचन 'पतौ' लिखा है जो व्याकरण की रीति से 'पत्यौ' होना चाहिये था। यद्यपि पंक्ति १६ में 'कारिता' और पंक्ति २६ में 'कारितं' शब्द आए हैं तथापि पंक्ति ३२ में कारिता के लिये 'कारापिता' लिखा है। यह शब्द जैन लेखकों के संस्कृत ग्रन्थों में बहुधा पाया जाता है और प्राकृत से संस्कृत प्रयोग बना है। पंक्ति १७ में प्राकृत शैली से आनन्द श्रावक का नाम 'आणंद' लिखा है और पंक्ति ११ में 'उत्सुकौ' के स्थान में 'उच्छुकौ' शब्द प्रतीत होता है।

७. यह प्रशस्ति जहांगीर बादशाह के समय की है। विक्रम सं० १६७१ में आगरा निवासी कुंरपाल सोनपाल नाम के दो भाइयों ने वहां श्री श्रेयांस नाथ जी का मन्दिर बनवाया था जिस की प्रतिष्ठा अंचल गच्छ के आचार्य श्री कल्याणसागर जी ने कराई थी। उस समय यह प्रशस्ति लिखी गई। मन्दिर की प्रतिष्ठा के साथ ४५० अन्य प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा भी हुई थी जिन में से ६, ७ प्रतिमाओं के लेख बाबू पूर्णचन्द नाहर ने अपने "जैन लेख संग्रह" में दिये हैं। (देखिये उक्त पुस्तक, लेख नं० ३०७–३१२, ४३३)। इन लेखों से कुंरपाल सोनपाल के पूर्वजों का कुछ हाल मालूम नहीं होता लेकिन प्रशस्ति में उन की वंशावलि इस प्रकार दी है।

---

1 डाक्टर वेबर (Weber.) इसको ग्र (ग्‌*र) पढते हैं जैसा कि बर्लिन नगर के जैन पुस्तकों की सूचि के पृष्ट ५७६ पर आए pograla. शब्द से स्पष्ट प्रतीत होता है, वास्तव में यह शब्द पोग्गल (Poggla.) है। इसी प्रकार पृष्ठ ५२५ पर मियग्गाम को miyagrama. (मियग्राम) लिखा है। Weber's datalogue of Crakrit Mss in the Royal Lidrary at Berlin.



कुंरपाल सोनपाल ओसवाल जाति के लोढा गोत्रीय थे। इन को जहांगीर बादशाह का अमात्य (मंत्री) करके लिखा है। जहांगीर के राज्य सम्बन्धी एक दो फारसी कितावें देखीं परन्तु उन में इन का नाम उपलब्ध नहीं हुआ।

८. मूर्तियों के लेखों[1] से मालूम होता है कि कुंरपाल सोनपाल के वंश को गाणी वंश कहते थे और इन लेखों से उन के परिवार के कुछ नामों का भी पता चलता है जो प्रशस्ति में पढ़े नहीं जाते जैसे कि:— ऋषभदास के कुंरपाल सोनपाल के सिवाय रूपचंद, चतुर्भुज, धनपाल, दुनीचंद आदि और भी पुत्र थे।

प्रेमन की भार्या का नाम शक्ता देवी था।

पेतसी की भार्या का नाम भक्ता देवी था उन का पुत्र०सांग था।

९. इस के अतिरिक्त " जैनसाहित्य संशोधक " खण्ड १ अंक ४ में जो सं.१६६७ का " आगरा संघनो सचित्र सांवत्सरिक पत्र " प्रकाशित हुआ है, उस में कुछ नाम प्रशस्ति के नामों से मिलते हैं परन्तु यहगत निश्चयपूर्वक नहीं कही जा सक्ती कि दोनों लेखों में एक ही व्यक्ति का उल्लेख है या भिन्न २ का:—

1 येह लेख पैरेग्राफ १३ मे उध्दृत किये गए हैं।

सांवत्सरिक	पत्र	पंक्ति	३०	साः	पेमन, सं: नेतसी
"	"	"	३३	साः	पेतसी
"	"	"	३४	साः	नेतसी, सं: रीपभदास
"	"	"	३५	"	रीपभदास सोनी

१०. प्रशस्ति के समय के संबंध में यह बात बडी ध्यान देने योग्य है कि प्रशस्ति में तो साफ़ तौर पर वैशाख शुदि ३, विक्रम सं० १६७१ गुरुवासर (बृहस्पतिवार) लिखा है परंतु मूर्तियों के लेखों में वैशाख शुदि ३ विक्रम सं. १६७१ शनि (सनीचर वार) लिखा है [1]। यह ऐसा विरोध है कि इस के लिये कोई हेतु नहीं दिया जा सक्ता; क्योंकि एक ही स्थान पर एक ही तिथि में वारभेद कैसे हो सक्ता है। यदि तृतीया वृद्धि तिथि होती तो भी कह सक्ते कि बृहस्पति वार की रात्रि के पिछले पहर में और शनि को दिन के पहिले पहर में तृतीया थी। मगर तृतीया वृद्धि तिथि न थी जैसा कि इंडियन् कैलेंडर [2] में दी हुई सारिणी (Tables) के अनुसार गणित करने पर गत संवत् (Expired) १६७१ वैशाख सुदि ३ शनिवार २ अप्रैल सन् १६१४ (Old Style) को आती है और उस दिन वह तिथि १७ घडी के अनुमान बाकी थी। रोहिणी नक्षत्र सूर्योदय से १३ घडी पीछे लगा। वैशाख वदि १३ (अमान्त मासों से चैत्र वदि १३) वृद्धि तिथि आती है।

११. प्रशस्ति में दी हुई अंचल गच्छ की पट्टावलि से ज्ञात होता है कि उस गच्छ के प्रवर्तक आचार्य, श्री आर्यरक्षित सूरि, भगवान महावीर स्वामी से ४८ वें पट्ट पर बैठे थे और श्री कल्याण सागर सूरि गच्छ के १८ वें आचार्य थे। अंचल गच्छ की पट्टावलि डा. भांडारकर और डा. ब्यूलर ने भी छापी है। इन में डा. भांडारकर तो पांचवें आचार्य श्री सिंहप्रभ सूरि का नाम छोड़ गए हैं [3] और डा. ब्यूलर छठे आचार्य श्री अजितसिंहसूरि अपरनाम श्री जिनसिंह सूरि का नाम छोड़ गए हैं [4]। हालां कि जिन आधारों परसे उन्हों ने यह पट्टावलि छापी है उन में साफ़ तौर पर उक्त दोनों आचार्यों के नाम यथास्थान दिये हुए हैं। [5]

---

1 जैन लेख संग्रह, लेख नं. ३०८–११ " श्री मत्संवत १६७१ वर्षे वैशाप सुदि ३ शनौ "

2 The Indian Calendar dy Sewel and Balkrishna Dikshit, 1896.

3 Report on the Search for Sanskrit manuscripts for the year 1883-84 Bomday 1887 p. 130

4 Epigraphia Indica p.39

5 भांडारकर--उक्त पुस्तक पृष्ठ ३२१

४८ श्रीआर्यरक्षितसूरिः चंद्रगच्छे श्रीअंचलगच्छस्थापना शुद्धविधिप्रकाशनात् सं. ११५९

४९ श्रीविजयसिंह सूरिः ५० श्रीधर्मघोष सूरिः

५१ श्रीमहेंद्रसिंह सूरिः ५२ श्रीसिंहप्रभ सूरिः

५३ श्रीअजितसिंहसूरिः पारके चित्रावालगच्छतो निर्गता सं. १२८५ तपगच्छमतं. वस्तुपालतः गच्छस्थापना

१२. अंत में मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि इस प्रशस्ति के संबंध में दो बातों की अधिक खोज आवश्यक है एक तो यह कि मुगल बादशाहों के इतिहास में कुं[व]रपाल और सोनपाल या उन के पिता का नाम ढूंडना चाहिये, और दूसरी यह कि वैसाख सुदि ३ को बहस्पति और शनि क्योंकर हो सक्ते हैं; इस का समाधान करना चाहिये ॥

[—१३. मूर्तियों के लेख: जैन लेख संग्रह: पृष्ठ ७८, ७९, १०९

नं० ३०७. सम्वत १६७१ आगरावास्तव्य ओसवाल ज्ञातीय लोढा गोत्रे गाणी वंसे सं० ऋषभदास भार्या सु: रेप श्री तत्पुत्र संघराज सं० रूपचन्द चतुर्भुज सं० धनपालादि युते श्री मदंचलगच्छे पूज्य श्री ९ धर्ममूर्ति सूरि तत् पट्टे पूज्य श्री कल्याणसागर सूरीणामुपदेशेन विद्यमान श्री विसाल जिनबिंब प्रति....

नं० ३०८. संवत १६७१ वर्षे ओसवाल ज्ञातीय लोढा गोत्रे गाणी वंसे साह कुंरपाल[1] सं० सोनपाल प्रति० अंचलगच्छे श्री कल्याणसागर सूरीणामुपदेशेन वासुपूज्यबिंबं प्रतिष्ठापितं ॥

नं० ३०९. ॥ श्रीमत्संवत १६७१ वर्षे वैशाष सुदि ३ शनौ आगरा वास्तव्योसवाल ज्ञातीय लोढा गोत्रे गावंसे संघपति ऋषभदास भा० रेपश्री पुत्र सं० कुंरपाल सं० सोनपाल प्रवरौ स्वपितृ ऋषभदास पुन्यार्थं श्रीमदंचलगच्छे पूज्य श्री ९ कल्याणसागरसूरीणामुपदेशेन श्री पदमप्रभु जिनबिंबं प्रतिष्ठापितं सं० चागाकृतं ॥

नं० ३१०. श्रीमत्संवत १६७१ वर्षे वैशाष सुदि ३ शनौ श्री आगरावास्तव्य उपकेस ज्ञातीय लोढा गोत्र सा० प्रेमन भार्या शक्तादे पुत्र सा० पेतसी लघुभ्राता सा० नेतसी[2] सुतेन श्रीमदंचलगच्छे पूज्य श्री ९ कल्याणसागरसूरीणामुपदेशेन श्री वासपूज्यबिंबं प्रतिष्ठापितं सं० कुंरपाल सं० सोनपाल प्रतिष्ठितं।

लर—उक्त (Epig. Ind.) Jaina inscriptions from Satrunjaya, Nos. XXI, XXVII, और CV.

XXI यह लेख स० १६७५ का है—

श्रीसिंहप्रभसूरीशाः सूरयोऽजितसिंहकाः। श्रीमद्देवेन्द्रसूरीशाः श्रीधर्मप्रभसूरयः ॥ ८ ॥
श्रीसिंहतिलकाव्हाश्च श्रीमहेन्द्रप्रभाभिधाः। श्रीमन्तो मेरुतुङ्गाख्या बभूवुः सूरयस्ततः ॥ ९ ॥

XXVII यह लेख सं० १६८३ का है—

तेभ्यः क्रमेण गुरवो जिनसिंहगोत्राः बभूवुरथ पूज्यतमा गणेशाः ॥
देवेन्द्रसिंहगुरवोऽखिललोकमान्याः धर्मप्रमा मुनिवरा विधिपक्षनायाः ॥ ९ ॥
पूज्याश्च सिंहतिलकास्तदनु प्रभूत—भाग्या महेन्द्रविभवा गुरवो बभूवुः ॥
चक्रेश्वरी भगवती विहितप्रसादाः श्रीमेरुतुङ्गसूरो नरदेववन्द्याः ॥ १० ॥

CV यह लेख सं १९२१ का है। इस में आचार्य कल्याणसागर तक लेख नं XXVII के ही श्लोक उध्दृत किये हैं। इन लेखों की भाषा जैन संस्कृत है।

1 सिवाय लेख ४३३ के और सब जगह कुंर को क्षुंर या क्षुर पढा है।

2 प्रशस्ति में तथा मूर्ति के अन्य लेखों मे नेतसी।

नं० ३११. श्रीमत्संवत् १६७१ वैशाप सुदि ३ शनौ श्री आगरानगरे ओसवाल ज्ञाती लोढा गोले—गावंसे सा० पेमन भार्या श्री शक्तादे पुत्र सा० पेतसी भा० भक्तादे पुत्र सा०—सांग— श्री अंचलगच्छे पूज्य श्री ९ कल्याणसागरसूरीणामुपदेशेन श्री विमलनाथ बिंबं प्रतिष्ठापितं सा० कुंरपाल.... ।

नं० ३१२. [सं० १६७१] ॥ संघपति श्री कुंरपाल सं० सोनपालैः स्वमातृपुन्यार्थ श्री अंचलगच्छे पूज्य श्री ९ श्री धर्म्ममूर्तिसूरि पट्टाम्बुजहंस श्री ९ श्री कल्याणसागरसूरीणामुपदेशेन श्रीपार्श्वनाथबिंबं प्रतिष्ठापितं पूज्यमानं चिरं नंदतु ॥

नं० ४३३. श्रीमत्संवत १६७१ वर्षे वैशाप सुदि ३ शनौ श्री आगरावास्तव्योसवाल ज्ञातीय लोढा गोत्रे गावं—ज्ञा स० ऋषभदास भार्या रेषश्री तत्पुत्र श्री कुंरपाल सोनपाल संघाधिपे स्वानुजवर दुनीचंदस्य पुण्यार्थं उपकाराय श्री अंचलगच्छे पूज्य श्री ९ कल्याणसागरसूरीणामुपदेशेन श्री आदिनाथबिंबं प्रतिष्ठापितं ॥]

प्रशस्ति की नकल

(नोटः— [ ] इन चिन्हों में दिये अक्षर टूट गए हैं या साफ नहीं पढे जाते)

॥ पातसाहि श्री जहांगी[र] ॥

१. ॥ ॐ ॥ श्री सिद्धेभ्यो नमः ॥ स्वस्ति श्री विष्णुपुत्रो निखिलगुणयुतः पारगो वीतरागः । पायाद् वः क्षणिकर्म्मा सुरशिखरिसमः क [ल्प]—

२. तीर्थप्रदाने ॥ श्री श्रेयान् धर्म्ममूर्तिर्भविकजनमनःपंकजे बिम्ब[1]भानुः । कल्याणाम्भोधिचन्द्रः सुरनरनिकरैः सेव्य [मा]—

३. नः कृपालुः ॥ १ ॥ ऋषभप्रमुखाः सार्वा[2] । गौतमाद्या मुनीश्वराः । पापकर्म्मविनिर्मुक्ताः क्षेमं कुर्व्वन्तु सर्वदा ॥ २ ॥ कुंर—

४. पालस्वर्ण्णपालौ । धर्मकृत्यपरायणौ । स्ववंशकुजमार्चण्डौ । प्रशस्तिर्लिख्यते तयोः ॥ ३ ॥ श्रीमति हायने रम्ये चन्द्रर्षिरस—

५. भूमिते १६७१ । पड्[3]त्रिंशत्तिथिशाके १५३६ विक्रमादित्यभूपतेः ॥ ४ ॥ राधमासे वसन्तर्तौ शुक्लायां तृतीयातिथौ । युक्के तु

६. रोहिणीभेन निर्दोषे गुरुवासरे ॥ ५ ॥ श्री मदञ्चल[4]गच्छाख्ये । सर्वगच्छावतंसके । सिद्धान्ताख्यातमार्ग्गेण । राजिते विश्वविस्तृते । ६ ।उग्रसे—

---

1 लेख में विंब

2 विसर्ग खोदकर काटी गई है जिस से विराम सा प्रतीत होता है ।

3 षट्० चाहिये ।

4 " ल " खोदने से रह गया या । पीछे च ग के नीचे खोदा गया है ।

5 र्ग के लिये प्र चिन्ह लिखा गया है ।

७. नपुरे रम्ये निरातङ्करसाश्रये । प्रासादमन्दिराकीर्ण्णे । सद्ज्ञातौ ह्युपकेशवे । ७ । लोढा गोत्रे विवस्वाँस्त्रिजगति सुयशा ब्रह्मच–

८. र्यादियुक्तः । श्रीश्रङ्गख्यातनामा गुरुवचनयुतः कामदेवादितुल्यः । जीवाजीवादितत्वे पर-रुचिरमतिर्लौकवर्गेषु याव–। ज्जीया–

९. श्चन्द्रार्कविम्बं परिकरभृतकैः सेवितस्त्वं मुदा हि । ८ । लोढा सन्तानविज्ञातो । धनराजे/ गुणान्वितः । द्वादशव्रतधारी च । शुभ–

१०. कर्म्मणि तत्परः । ९ । तत्पुत्रो वेसराजश्च । दयावान् सुजनप्रियः । तूर्यव्रतधरः श्रीमान् चातुर्यादिगुणैर्युतः । १० । तत्पुत्रौ द्वा–

११. वभूतां च । सुरागावर्धितो सदा । जेठू श्रीरङ्गगोत्रौ च । जिनाज्ञापालनोच्छुकौ[1] । ११ । तौ जीणासीहमल्लाख्यौ जेठ्वात्मजौ वभूवतु–

१२. : । धर्म्मविदौ च दक्षौ च । महापूज्यौ यशोधनौ । १२ । आसीच्छ्री[2]रङ्गजो नूनं जिन-पादार्चने रतः । मनीषी सुमना भव्यो राजपा–

१३. ल उदारधीः । १३ । आर्या । धनदौ चर्पमदास । पेमाख्यौ विविधसौख्यधनयुक्तौ । आस्तां प्राज्ञौ दौ च तत्त्वज्ञौ तौ तु तत्पु–

१४. त्रौ । १४ । रेपाभिधस्तयोर्ज्येष्ठः । कल्पद्रुरिव सर्वदः । राजमान्यः कुलाधारो । दयालुर्धर्म्मकर्म्मठः । १५ । रेपश्रीस्तत्प्रिया

१५. भव्या । शीलालङ्कारधारिणी । पतिव्रता पतौ[3] रक्ता । सुल्शारेवतीनिमा । १६ । श्री पद्मप्रभविम्बस्य नवीनस्य जिनाल–

१६. ये । प्रतिष्ठा कारिता येन सत्श्राद्धगुणशालिना[4] । १७ । ललौ तूर्यव्रतं यस्तु । श्रुत्वा कल्याणदेशनां । राजश्रीनन्दनः

१७. श्रेष्ठ । आनन्द[5]श्रावकोपमः । १८ । तत्सूनुः कुंरपालः । किल विमलमतिः स्वर्णपालो द्वितीय–। श्चातुर्यौदार्यधैर्यप्रमु–

१८. खगुणनिधिर्भाग्यसौभाग्यशाली । तौ द्वौ रूपाभिरामौ । विविधजिनवृपध्यानकृत्यैकनिष्ठौ । त्यागैः कर्ण्णावतारौ निज–

१९. कुलतिलकौ वस्तुपालोपमार्हौ । १९ । श्री जहांगीरभूपालामात्यौ धर्म्मधुरन्धरौ । धनिनौ पुण्यकर्तारौ । विख्यातौ भ्रा–

२०. तरौ भुवि । २० । याम्यामुप्तं नवक्षेत्रे । वित्तबीजमनुत्तरम् । तौ धन्यौ कामदौ लोके । लोढागोत्रावतंसकौ । २१ । अवा–

---

1 च्छ के लिये जैन लिपि का चिन्ह ।
2 लेख में आसीद्श्रीरंग० लिखा है ।
3 पत्यौ होना चाहिये था ।
4 सच्छ्राद्ध० या सच्छ्राद्ध० होना चाहिये था ।
5 लेख में आणंद० लिखा है ।

२१. प्य शासनं चारु । जहांगीरपतेर्नेनु । कारयामासतुर्धर्म्मं । क्रियासर्वं सहोदरौ । २२ । शालां पोषधपूर्वां वै यकाभ्यां सा[1]
२२. विनिर्मिता । अधित्यकान्तिकं यत्र राजते चित्तरञ्जकम् । २३ । समेतशिखरे भव्ये शत्रुञ्जयेर्बुदाचले । अन्येष्वपि च तीर्थेषु गि–
२३. रिनारिगिरौ[2] तथा । २४ । सङ्घाधिपत्यमासाद्य । ताभ्यां यात्रा कृता मुदा । महध्द्या सर्वसामग्र्या । शुद्धसम्यक्त्वहेतवे । २५ । तुरङ्गा–
२४. णां शतं कान्तं । पञ्चविंशतिपूर्वकम् । दत्तं तु तीर्थयात्रायै । गजानां पञ्चविंशतिः । २६ । अन्यदपि धनं वित्तं । प्रत्तं संख्यातिगं खलु
२५. अर्जयामासतुः कीर्ति-। मित्थं तौ वसुधातले । २७ । उत्तुङ्गं गगनालम्बि । सचित्रं सध्वजं परम् । नेत्रासेचनकं ताभ्यां । युग्मं चैत्य–
२६. स्य[3] कारितम् । २८ । अथ गद्यम् । श्री अञ्चलगच्छे । श्री वीरादष्टचत्वारिंशत्तमे पट्टे । श्रीपावकगिरौ श्रीसीमन्धरजिनवचसा श्रीचक्रे [श्वरीद]–
२७. त्तवराः । सिद्धान्तोक्तमार्गप्ररूपकाः । श्रीविधिपक्षगच्छसंस्थापकाः । श्रीआर्यरक्षित सूरय-१ । स्तत्पदे श्रीजयसिंहसूरि [२ श्री धर्म घो]–
२८. पसूरि ३ श्रीमहेन्द्रसूरि ४ श्रीसिंहप्रभसूरि ५ श्री जिनसिंहसूरि ६ श्रीदेवेन्द्रसिंहसूरि ७ श्रीधर्मप्रभसूरि ८ श्री[सिंहतिलकसू]—
२९. रि ९ श्रीमहेन्द्रप्रभसूरि १० श्रीमेरुतुङ्गसूरि ११ श्रीजयकीर्तिसूरि १२ । श्रीजय-केशरिसूरि १३ श्रीसिद्धान्तसागर [सूरि १४ श्री भावसा]
३०. गरसूरि १५ श्रीगुणनिधानसूरि १६ श्रीधर्म्ममूर्तिसूरय १७ स्तत्पट्टे सम्प्रति विराज-मानाः । श्रीभट्टारक पुरवराः [– – – – – – – – –][4]
३१. णयः श्रीयुगप्रधानाः । पूज्य भट्टारक श्री ५ श्री कल्याणसागर सूरय १८ स्तेषामुप-देशेन श्रीश्रेयांसजिनबिम्बा [दीना – – – – – – –][5]
३२. कुंरपालसोनपालाभ्यां प्रतिष्ठा कारापिता । पुनः श्लोकाः । श्रीश्रेयांसजिनेशस्य बिम्बं स्थापितमुत्तमं प्रति [ि – – – – – – – – –]
३३. णामुपदेशतः । २९ । चत्वारि शतमानानि । सार्धान्युपरि[6] तत्क्षणे । प्रतिष्ठितानि बिम्बानि जिनानां सौख्यकारि [णाम् । ३० । – – – –]

---

1 सा शब्द का I चिन्ह २२ वीं पंक्ति में है ।

2 गिरिनार० चाहिये था क्यों कि यह शब्द गिरिनगर का अपभ्रंश है ।

3 चैत्ययोः चाहिये था ।

4 यहां से सात आठ अक्षर टूट गए हैं ।

5 यहां से पांच अक्षर टूट गए हैं ।

6 सार्द्धा० लिखा है ।

३४, तु लेभाते । प्राज्यपुण्यप्रभावतः देवगुर्व्वोः सदा भक्तौ । शश्वची नन्दतां चिरम् । ३१ ।
अथ तयोः परिवारः । सङ्घराज [‒ ‒ ‒ ‒ । ‒ ‒1
३५. ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ । ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ । ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ । ३२ । सूनयः
स्वर्णपाल ‒ । ‒ ‒ ‒ ‒ [चतुर्भुज] ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ [पुत्री] युगलमुत्तमम्
। ४३ । प्रेमनस्य त्रयः पु [त्राः ‒ ‒ ‒]
३६. पेतसी तथा । नेतसी विद्यमानस्तु सच्छीलेन सुदर्शनः । ३४ । धीमतः सङ्घराजस्य ।
तेजस्विनो यशस्विनः । चत्वारस्तनुजन्मान ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ मताः ।३५कुंरपालस्य स—
३७. द्भार्या । ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ । ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ । ‒ ‒ ‒ ‒ पतिप्रिया
। ३६ । तदङ्गजास्ति गम्भीरा जादो नाम्नी [स] ‒ ‒ ‒ । ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ ‒
ज्येष्ठमल्लो गुणाश्रयः । ३७ ।
३८. सङ्घश्रीतुलसश्रीदौ । दुर्गश्रीप्रमुखैर्निजैः । वधूजनैर्युतौ भातां । रेषश्री नन्दनौ सदा
। ३८ । भूमण्डलसमारङ्ग । सिन्धवर्कयुक्त [‒ ‒ ‒ । ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ । ‒ ‒ ‒
‒ ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ । ३८] 2



लेख का सारांश

(लेख की भाषा सरल होने के कारण पूरा अनुवाद नहीं दिया)

पंक्ति १–३ मंगलाचरण ।
" ४–५ प्रशस्ति का रचना काल । विक्रम संवत् चन्द्र ऋषि रस भू अर्थात् १६७१,शक संवत् १५३६, राध (वैशाख) मास, वसंत ऋतु, शुक्ल पक्ष, तृतीया तिथी, गुरुवार रोहिणी नक्षत्र ।
" ६ अंचल गच्छ की प्रशंसा ।
" ७ उग्रसेनपुर (आगरा नगर) की शोभा का वर्णन ।
" ८–९ उपकेश (ओसवाल) ज्ञातीय, लोढा गोत्रीय, श्रीश्रंग की स्तुति ।
१० उस के पुत्र वेसराज के गुणों का वर्णन ।
११ वेसराज के पुत्र जेठू और श्रीरंग का वर्णन ।
" ११–१२ जेठू के पुत्र जीणासींह और मल्ल[सीह] का वर्णन ।
" १२ श्रीरंग का पुत्र राजपाल, तिस का वर्णन ।
" १३ राजपाल की राज दरबार में बड़ी प्रतिष्ठा थी, और उस के ऋषभदास और प्रेमन दो पुत्र थे ।
" १४ उन में ऋषभदास (अपरनाम रेषा) बड़ा था । इस की भार्या रेषश्री ।
" १५–१६ ऋषभदास ने मंदिर में श्रीपद्मप्रभ के नये बिंब की प्रतिष्ठा कराई थी । और

---

१ यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि पंक्ति ३४ के अंत और पंक्ति ३५ के आदि में कितने अक्षर टूटे हैं ।

२ प्रतीत होता है कि प्रशस्ति यहां समाप्त हो गई ।

„　　किसी आचार्य की कल्याणकारी देशना को सुनकर राजश्री के पुत्रने ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया।

„　१७–१८ ऋषभदास के पुत्र कुंरपाल स्वर्णपाल (सोनपाल)। तिन के गुणों का वर्णन। दान देने में उन की कर्ण से उपमा।

„　१९–२० ये जहांगीर बादशाह के अमात्य (मंत्री) थे; बडे धनवान थे; सदा शुभकाम करते और पुण्य क्षेत्रों में धन लगाते थे।

„　२१ जहांगीर की आज्ञा से दोनों भाई धर्म का काम करते थे।

„　२२–२३ उन्हों ने तीन भवन वाली एक पौषधशाला बनवाई। संघाधिपति बनकर समेतशिखर, शत्रुंजय, आबू, गिरनार तथा अन्य तीर्थों की यात्रा की।

„　२४ १२५ घोडे, २५ हाथी यात्रा के लिये जुदा कर छोडे थे।

„　२५ उन्हों ने दो चैत्य बनवाए जो बहुत ही ऊंचे, चित्रों और झंडों से सजे हुये थे।

„　२६ अंचल गच्छ की उत्पत्ति। भगवान महावीर से ४८ वें पट्ट पर श्री आर्य रक्षित सूरि हुए। उन्हों ने श्री सीमंधर[3] स्वामी की आज्ञा पूर्वक चक्रेश्वरी देवी से वर प्राप्त करके विधिपक्ष अर्थात् अंचलगच्छ चलाया।

„　२७–३० पट्टावलि।

„　३१–३२ कुंरपाल सोनपालने श्री कल्याणसागरके उपदेश से श्रेयांस नाथजी का मंदिर बनवाया।

„　३३–३४ और उसी समय ४५० अन्य प्रतिमाओं[4] की प्रतिष्ठा हुई। इस से उन की बडी कीर्ती हुई।

„　३५ संघराजँ...बेटे सोनपाल...चतुर्भुज...दो बेटियां। प्रेमन के तीन पुत्र...

„　३६ देवसी और नेतसी जो शीलपालने से मानो सुदर्शन ही विद्यमान था। बुद्धिमान, तेजस्वी और यशस्वी संघराज के चार बेटे थे।

„　३७ कुंरपाल की भार्या.........उस की पुत्री का नाम जादो था। जेष्ठमल गुणों का धाम ......

„　३८ रेषश्री के दोनो पुत्र (कुंरपाल सोनपाल) अपनी पुत्रवधुओं संघश्री, सुलसश्री, दुर्गश्री आदि के गुणों से शोभा पावें रहें। आशीर्वाद (जिस के बहुत से अक्षर टूट गए हैं) ॥

---

१ कल्याणदेशना से शायद श्रीकल्याणसागर जी के उपदेश का आशय हो।

२ शायद ऋषभदास की माता का नाम राजश्री था।

३ महाविदेह क्षेत्र में वर्तमान तीर्थंकर।

४ इन प्रतिमाओं का पता लगाना चाहिये।

५ यहां से लेख का सम्बंध ठीक नहीं बैठता।

[टिप्पणी—कुंवरपाल सोनपालकी प्रशंसामें किसीएक कविने हिन्दी भाषामें एक कविता लिखी है जो पाटणके किसीएक भंडारमें हमारे देखनेमें आई थी और जिसकी नकल हमने अपनी नोटबुकमें कर ली थी। उसका संबंध इस लेखके साथ होनेसे हम यहां उसे प्रकट किये देते हैं।—संपादक।]

कोरपाल सोनपाल लोढा गुणप्रशंसा

कवित्त

सगर भरथ जगि, जगडु जावड भये । पेमराय सारंग, सुजश नाम धरणी ॥ १
सेत्रुंजे संघ चलायो, सुधन सुखेत वायो । संघपतिपद पायो, कवि कोटि किर्ति बरणी ॥ २
लंहनि कडाहि ठांम, ठांम द्रग भांन कहि । आनंद मंगल घरि घरि गावे घरणी ॥३
वस्तपाल तेजपाल, हुये रेखचंद नंद । कोरपाल सोनपाल, कीनी भली करणी ॥ ४
कहि लखमण लोढा, दूनींकुं दिखाइ देख । लछिको प्रमान जोपे, एसो लाह लीजिये ॥ ५
आंन संघपति भेउ, संघ जोपे कीयो चाहि । कोरपाल सोनपाल,-को सो संघ कीजिये ॥ ६
सबल राय विभार, निबल थापना चार । बाधा राइ बंदि छोर, अरि उर साजको ॥ ७
अडेराय अवठंभ, खितीपती रायखंभ । मंत्रीराय आरंभ, प्रगट सुभ साजको ॥ ८
कवि कहि रूप भूप, राइन मुकटमनि । त्यागी राई तिलक, बिरद गज बाजको ॥ ९
हय गय हेमदांन, मांन नंदकी समांन । हिंदु सुरताण, सोनपाल रेखराजको ॥ १०
सैन घर आसनके, पैजपर पासनके । निजदल रंजन, भंजन पर दलको ॥ ११
मदमतवारे, विकरारे,अति भारे भारे । कारे कारे बादरसे, बासव सुजलके ॥ १२
कवि कहि रूप, नृप भुपतिनिके सिंगार । अति वडवार ऐरापति समबलके ॥ १३
रेखराजनंदकोर पाल सोनपालचंद । हेतवांनि देत ऐसे हाथिनिके हलके ॥ १४

सोमदेवसूरिकृत नीतिवाक्यामृत ।

(ग्रन्थ परिचय)

[लेखक—श्रीयुत पं० नाथूरामजी प्रेमी.]

[श्रीयुत पं० नाथूरामजी प्रेमीकी देखरेखमें बम्बईसे जो माणिकचन्द्र-दिगम्बर-जैनग्रन्थ-माला प्रकट होती है, उसमें अभी हाल ही सोमदेवसूरिकृत नीतिवाक्यामृत नामका एक अमूल्य ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है । इस ग्रन्थके कर्ता और विषय आदिका विस्तृत परिचय करानेके लिए प्रेमीजीने ग्रन्थके प्रारंभमें एक पाण्डित्यपूर्ण और अनेक ज्ञातव्य बातोंसे भरपूर सुन्दर प्रस्तावना लिखी है जो प्रत्येक साहित्य और इतिहास प्रेमीके लिए अवश्य पठनीय और मननीय है । इस लिए हम लेखक महाशयकी अनुमति लेकर, जैनसाहित्यसंशोधकके पाठकोंके ज्ञानार्थ, उस प्रस्तावनाको अविकलतया यहाँ पर प्रकट करते हैं—संपादक ।]

श्रीमत्सोमदेवसूरिका यह ' नीतिवाक्यामृत ' संस्कृत साहित्य-सागरका एक अमूल्य और अनुपम रत्न है । इसका प्रधान विषय राजनीति है । राजा और उसके राज्यशासनसे सम्बन्ध रखनेवाली प्रायः सभी आवश्यक बातोंका इसमें विवेचन किया गया है । यह सारा ग्रन्थ गद्यमें है और सूत्रपद्धतिसे लिखा गया है । इसकी प्रतिपादनशैली बहुत ही सुन्दर, प्रभावशालिनी और गंभीरतापूर्ण है । बहुत बड़ी बातको एक छोटेसे वाक्यमें कह देनेकी कलामें इसके कर्त्ता सिद्धहस्त हैं । जैसा कि ग्रन्थके नामसे ही प्रकट होता है, इसमें विशाल नीतिसमुद्रका मन्थन करके सारभूत अमृत संग्रह किया गया है और इसका प्रत्येक वाक्य इस बातकी साक्षी देता है । नीतिशास्त्रके विद्यार्थी इस अमृतका पान करके अवश्य ही सन्तृप्त होंगे ।

यह ग्रन्थ ३२ समुद्देशोंमें × विभक्त है और प्रत्येक समुद्देशमें उसके नामके अनुसार विषय प्रतिपादित है ।

प्राचीन राजनीतिक साहित्य ।

राजनीति, चार पुरुषार्थोंमेंसे दूसरे अर्थपुरुषार्थके अन्तर्गत है । जो लोग यह समझते हैं कि प्राचीन भारतवासियोंने ' धर्म ' और ' मोक्ष ' को छोड़कर अन्य पुरुषार्थोंकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया, वे इस देशके प्राचीन साहित्यसे अपरिचित हैं । यह सच है कि पिछले समयमें इन विषयोंकी ओरसे लोग उदासीन होते गये, इनका पठन पाठन बन्द होता गया और इस कारण इनके सम्बन्धका जो साहित्य था, वह धीरे धीरे नष्टप्राय होता गया । फिर भी इस बातके प्रमाण मिलते हैं कि राजनीति आदि विद्याओंकी भी यहाँ खूब उन्नति हुई थी और इनपर अनेकानेक ग्रन्थ लिखे गये थे ।

वात्स्यायनके कामसूत्रमें लिखा है कि प्रजापतिने प्रजाके स्थितिप्रबन्धके लिए त्रिवर्गशासन—(धर्म-अर्थ-काम विषयक महाशास्त्र) बनाया जिसमें एक लाख अध्याय थे । उसमेंके एक एक भागको लेकर मनुने धर्माधिकार, बृहस्पतिने अर्थाधिकार, और नन्दीने कामसूत्र, इस प्रकार तीन अधिकार बनाये * । इसके बाद इन तीनों विषयोंपर उत्तरोत्तर

× " समुद्देशश्च संक्षेपाभिधानम् "—कामसूत्रटीका, अ० ३ ।

* " प्रजापतिर्हि प्रजाः सृष्ट्वा तासां स्थितिनिबन्धनं त्रिवर्गस्य साधनमध्यायानां शतसहस्रेणाग्रे प्रोवाच । तस्यैकदेशिकं मनुः स्वायंभुवो धर्माधिकारकं पृथक् चकार । बृहस्पतिरर्थाधिकारम् । नन्दी सहस्रेणाध्यायानां पृथक्कामसूत्रं चकार । "—कामसूत्र अ० १ ।

संक्षिप्त ग्रन्थोंका निर्माण हुआ। पुराणोंमें भी लिखा है कि प्रजापतिके उक्त एक लाख अध्यायवाले त्रिवर्ग-शासनके नारद, इन्द्र, बृहस्पति, शुक्र, भारद्वाज, विशालाक्ष, भीष्म, पराशर, मनु, अन्यान्य महर्षि और विष्णुगुप्त (चाणक्य) ने संक्षिप्त करके पृथक् पृथक् ग्रन्थोंकी रचना की +। परन्तु इस समय उक्त सब साहित्य प्रायः नष्ट हो गया है। कामपुरुषार्थ पर वात्स्यायनका कामसूत्र, अर्थपुरुषार्थ पर विष्णुगुप्त या चाणक्यका अर्थशास्त्र और धर्मपुरुषार्थ पर मनुके धर्म-शास्त्रका संक्षिप्तसार '**मानव धर्मशास्त्र**'—जो कि भृगु नामक आचार्यका संग्रह किया हुआ है और मनुस्मृतिके नामसे प्रसिद्ध है—उपलब्ध है।

उक्त ग्रन्थोंमेंसे राजनीतिका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ '**कौटिलीय अर्थशास्त्र**' अभी १३-१४ वर्ष पहले ही उपलब्ध हुआ है और उसे मैसूरकी यूनीवार्सिटीने प्रकाशित किया है। यह अबसे लगभग २२०० वर्ष पहले लिखा गया था। सुप्रसिद्ध मौर्यवंशीय सम्राट् चन्द्रगुप्तके लिए—जो कि हमारे कथाग्रन्थोंके अनुसार जैनधर्मके उपासक थे और जिन्होंने अन्तमें जिनदीक्षा धारण की थी *—आर्य चाणक्यने इस ग्रन्थको निर्माण किया था ×। नन्दवंशका समूल उच्छेद करके उसके सिंहासन पर चन्द्रगुप्तको आसीन करानेवाले चाणक्य कितने बड़े राजनीतिज्ञ होंगे, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है। उनकी राजनीतिज्ञताका सबसे अधिक उज्ज्वल प्रमाण यह अर्थशास्त्र है। यह बड़ा ही अद्भुत ग्रन्थ है और उस समयकी शासनव्यवस्था पर ऐसा प्रकाश डालता है जिसकी पहले किसीने कल्पना भी न की थी। इसे पढ़नेसे मालूम होता है कि उस प्राचीन कालमें भी इस देशने राजनीतिमें आश्चर्यजनक उन्नति कर ली थी। इस ग्रन्थमें मनु, भारद्वाज, उशना (शुक्र), बृहस्पति, विशालाक्ष, पिशुन, पराशर, वातव्याधि, कौणपदन्त और बाहुदन्तीपुत्र नामक प्राचीन आचार्योंके राजनीतिसम्बन्धी मतोंका जगह जगह उल्लेख मिलता है। आर्य चाणक्य प्रारंभमें ही कहते हैं कि पृथिवीके लाभ और पालनके लिए पूर्वाचार्योंने जितने अर्थशास्त्र प्रस्थापित किये हैं, प्रायः उन सबका संग्रह करके यह अर्थशास्त्र लिखा जाता है +। इससे मालूम होता है कि चाणक्यसे भी पहले इस विषयके अनेकानेक ग्रन्थ मौजूद थे और चाणक्यने उन सबका अध्ययन किया था। परन्तु इस समय उन ग्रन्थोंका कोई पता नहीं है।

चाणक्यके बादका एक और प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध है जिसका नाम '**नीतिसार**' है और जिसे संभवतः चाणक्यके ही शिष्य कामन्दक नामक विद्वानने अर्थशास्त्रको संक्षिप्त करके लिखा है ÷। अर्थशास्त्र प्रायः गद्यमें है; परन्तु नीतिसार श्लोकबद्ध है। यह भी अपने ढंगका अपूर्व और प्रामाणिक ग्रन्थ है और अर्थशास्त्रको समझनेमें इससे बहुत सहायता मिलती है। इसमें भी विशालाक्ष, पुलोमा, यम आदि प्राचीन नीतिग्रन्थकर्त्ताओंके मतोंका उल्लेख है।

+ ब्रह्माध्यायसहस्राणां शतं चक्रे स्वबुद्धिजम्। तन्नारदेन शक्रेण गुरुणा भार्गवेण च॥
भारद्वाजविशालाक्षभीष्मपाराशरैस्तथा। संक्षिप्तं मनुना चैव तथा चान्यैर्महर्षिभिः॥
प्रजानामायुषो ह्रासं विज्ञाय च महात्मना। संक्षिप्तं मनुना चैव तथा चान्यैर्महर्षिभिः॥
प्रजानामायुषो ह्रासं विज्ञाय च महात्मना। संक्षिप्तं विष्णुगुप्तेन नृपाणामर्थसिद्धये॥

ये श्लोक हमने गुजरातीटीकासहित कामन्दकीय नीतिसारकी भूमिका परसे उध्दृत किये हैं; परन्तु उससे यह नहीं मालूम हो सका कि ये किस पुराणके हैं।

* सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ मि॰ विन्सेण्ट स्मिथ आदि विद्वान् भी इस बातको संभव समझते हैं कि चन्द्रगुप्त मौर्य जैनधर्मके उपासक थे। 'त्रिलोकप्रज्ञप्ति' नामक प्राकृत ग्रन्थमें—जो विक्रमकी पाँचवीं शताब्दिके लगभगका है—लिखा है कि मुकुटधारी राजाओंमें सबसे अन्तिम राजा चन्द्रगुप्त था जिसने जिनदीक्षा ली।—देखो जैनहितैषी वर्ष १३, अंक १२।

× सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य प्रयोगानुपलभ्य च। कौटिल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधिः कृतः॥
येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः। अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम्॥

+ पृथिव्या लाभे पालने च यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्रस्थापितानि प्रायशस्तानि संहृत्यैकमिदमर्थशास्त्रं कृतम्।

÷ देखो गुजराती प्रेस बम्बईके 'कामन्दकीय नीतिसार' की भूमिका।

कामन्दकके नीतिसारके बाद जहां तक हम जानते हैं, यह नीतिवाक्यामृत ग्रन्थ ही ऐसा बना है, जो उक्त दोनों ग्रन्थोंकी श्रेणीमें रक्खा जा सकता है और जिसमें शुद्ध राजनीतिकी चर्चा की गई है। इसका अध्ययन भी कौटिलीय अर्थशास्त्रके समझनेमें बड़ी भारी सहायता देता है।

नीतिवाक्यामृतके कर्त्ताने भी अपने द्वितीय ग्रन्थ (यशस्तिलक) में गुरु,शुक्र,विशालाक्ष, भारद्वाजके नीतिशास्त्रोंका उल्लेख किया है*। मनुके भी बीसों श्लोकोंको उद्धृत किया है +। नीतिवाक्यामृतमें विष्णुगुप्त या चाणक्यका और उनके अर्थशास्त्रका उल्लेख है×। बृहस्पति, शुक्र, भारद्वाज, आदिके अभिप्रायोंको भी उन्होंने नीतिवाक्यामृतमें संग्रह किया है जिसका स्पष्टीकरण नीतिवाक्यामृतकी इस संस्कृत टीकासे होता है। स्मृतिकारोंसे भी वे अच्छी तरह परिचित मालूम होते हैं †। इससे हम कह सकते हैं कि नीतिवाक्यामृतके कर्ता पूर्वोक्त राजनीतिके साहित्यसे यथेष्ट परिचित थे। बहुत संभव है कि उनके समयमें उक्त सबका सब साहित्य नहीं तो उसका अधिकांश उपलब्ध होगा। कमसे कम पूर्वोक्त आचार्योंके ग्रन्थोंके सार या संग्रह आदि अवश्य मिलते होंगे।

इन सब बातोंसे और नीतिवाक्यामृतको अच्छी तरह पढ़नेसे हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि नीतिवाक्यामृत प्राचीन नीतिसाहित्यका सारभूत अमृत है। दूसरे शब्दोंमें यह उन सबके आधारसे और कविकी विलक्षण प्रतिभासे प्रसूत हुआ संग्रह ग्रन्थ है। जिस तरह कामन्दकने चाणक्यके अर्थशास्त्रके आधारसे संक्षेपमें अपने नीतिसारका निर्माण किया है, उसी प्रकार सोमदेवसूरिने उनके समयमें जितना नीतिसाहित्य प्राप्त था उसके आधारसे यह नीतिवाक्यामृत निर्माण किया है ÷। दोनोंमें अन्तर यह है कि नीतिसार श्लोकबद्ध है और केवल अर्थशास्त्रके आधारसे लिखा गया है, परन्तु नीतिवाक्यामृत गद्यमें है और अनेकानेक ग्रन्थोंके आधारसे निर्माण हुआ है, यद्यपि अर्थशास्त्रकी भी इसमें यथेष्ट सहायता ली गई है।

कौटिलीय अर्थशास्त्रकी भूमिकामें श्रीयुत शामशास्त्रीने लिखा है कि, " यच्च यशोधरमहाराजसमकालेन सोमदेवसूरिणा नीतिवाक्यामृतं नाम नीतिशास्त्रं विरचितं तदपि कामन्दकीयमिव कौटिलीयार्थशास्त्रादेव संक्षिप्य संगृहीतमिति तद्ग्रन्थपदवाक्यशैलीपरीक्षायां निस्संशयं ज्ञायते।" अर्थात् यशोधर महाराजके समकालिक सोमदेवसूरिने जो ' नीतिवाक्यामृत ' नामका ग्रन्थ लिखा है उसके पद और वाक्योंकी शैलीकी परीक्षासे यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि वह भी कामन्दकके नीतिसारके समान कौटिलीय अर्थशास्त्रसे ही संक्षिप्त करके लिखा गया है *।" परन्तु हमारी समझमें

---

*" न्यायादवसरमलभमानस्य चिरसेवकसमाजस्य विज्ञप्तय इव नर्मसचिवोक्तयः प्रतिपन्नकामचारव्यवहारेषु स्वैरविहारेषु मम गुरुशुक्रविशालाक्षपरीक्षितपराशरभीमभीष्मभारद्वाजादिप्रणीतनीतिशास्त्रश्रवणसनाथं श्रुतपथमभजन्त।"—यशस्तिलकचम्पू, आश्वास ३, पृ० ३३६।

+" **दूषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः। समं सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम्॥**

इति कथमिदमाह वैवस्वतो मनुः।" —यशस्तिलक आ० ४, पृष्ठ १००। यह श्लोक मनुस्मृति अ० ६ का ६६ वाँ श्लोक है। इसके सिवाय यशस्तिलक आश्वास ४, पृ० ९०—९१—११६ (**प्रोक्षितं भक्षयेत्**), ११७ (**क्रीत्वा स्वयं**), १२७ (सभी श्लोक), १४९ (सभी श्लोक), २८७ (अधीत्य) के श्लोक भी मनुस्मृतिमें ज्योंके त्यों मिलते हैं। यद्यपि वहाँ यह नहीं लिखा है कि ये मनुके हैं। ' उक्तं च ' रूपमें ही दिये हैं।

× नीतिवाक्यामृत पृष्ठ० ३६ सूत्र ९, पृ० १०७ सूत्र ४, पृ० १७१ सूत्र १४ आदि।

† "विप्रकीतावूढापि पुनर्विवाहदीक्षामर्हतीति स्मृतिकाराः"—नी०वा०पृ०३७७,सू०२७; "श्रुतेःस्मृतेर्बाह्यबाह्यतरे;" यशस्तिलक आ० ४, पृ० १०५; " श्रुतिस्मृतीभ्यामतीव बाह्ये"—यशस्तिलक आ० ४, पृ० १११; "तथा च स्मृतिः" पृ० ११६; और " इति स्मृतिकारकीर्तितमप्रमाणीकृत्य " पृ० २८७।

÷ यशस्तिलक आ० ४ पृ० १०० में नीतिकार **भारद्वाज**के षाड्गुण्य प्रस्तावके दो श्लोक और **विशालाक्ष**के कुछ वाक्य दिये हैं। ये विशालाक्ष संभवतः वे ही नीतिकार हैं जिनका उल्लेख अर्थशास्त्र और नीतिसारमें किया गया है।

* शास्त्रीजीका यह बड़ा भारी भ्रम है, जो सोमदेवसूरिको वे यशोधर महाराजके समकालिक समझते हैं। यशोधर जैनोंके एक पुराणपुरुष हैं। इनका चरित्र सोमदेवसे भी पहले पुष्पदन्त, वच्छराय आदि कवियोंने लिखा है। पुष्पदन्तका समय शकसंवत् ६०६ के लगभग है। और वच्छराय पुष्पदन्तसे भी पहले हुए हैं।

शास्त्रीजीने उक्त परीक्षा बारीकीसे या अच्छी तरह विचार करके नहीं की है। यह हम मानते हैं कि नीतिवाक्यामृतकी रचनामें अर्थशास्त्रकी सहायता अवश्य ली गई है, जैसा कि आगे दिये हुए दोनोंके अवतरणोंसे मालूम होगा। पाठक देखेंगे कि दोनोंमें विलक्षण समता है, कहीं कहीं तो दोनोंके पाठ बिल्कुल एकसे मिल गये हैं। परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि नीतिवाक्यामृत अर्थशास्त्रका ही संक्षिप्त सार है। अर्थशास्त्रका अनुधावन करनेवाला होकर भी वह अनेक अंशोंमें बहुत कुछ स्वतंत्र है। अर्थशास्त्रके अतिरिक्त अन्यान्य नीतिशास्त्रोंके अभिप्राय भी उसमें अपने ढंगसे समावेशित किये गये हैं। इसके सिवाय ग्रन्थकर्त्ताने अपने देश-काल पर दृष्टि रखते हुए बहुत सी पुरानी बातोंको—जिनकी उस समय जरूरत नहीं रही थी या जो उनकी समझमें अनुचित थीं—छोड़ दिया है या परिवर्तित कर दिया है। साथ ही बहुतसी समयोपयोगी बातें शामिल भी कर दी हैं।

यहाँ हम अर्थशास्त्र और नीतिवाक्यामृतके ऐसे अवतरण देते हैं जिनसे दोनोंकी समानता प्रकट होती है:—

१—दुष्प्रणीतः कामक्रोधाभ्यामज्ञानाद्वानप्रस्थपरिव्राजकानपि कोपयति, किमङ्ग पुनर्गृहस्थान्। अप्रणीतो हि मात्स्यन्यायमुद्भावयति। बलीयानबलं ग्रसते दण्डधराभावे। —अर्थशास्त्र पृ० ९।

दुष्प्रणीतो हि दण्डः कामक्रोधाभ्यामज्ञानाद्वा सर्वजनविद्वेषं करोति। अप्रणीतो हि दण्डो मात्स्यन्यायमुद्भावयति। बलीयानबलं ग्रसते (इति मात्स्यन्यायः)। —नीतिवा० पृ० १०४-५।

२—ब्रह्मचर्यं चाषोडशाद्वर्षात्। अतो गोदानं दारकर्म च। —अर्थ० पृ० १०।

ब्रह्मचर्यमाषोडशाद्वर्षात्ततो गोदानपूर्वकं दारकर्म चास्य। —नी० १६७।

३—पुरोहितमुदितोदितकुलशीलं षडङ्गे वेदे दैवे निमित्ते दण्डनीत्यां च अभिविनीतमापदां दैवमानुषीणां अथर्वभिरुपायैश्च प्रतिकर्त्तारं कुर्वीत। —अर्थ० पृ० १५-१६।

पुरोहितमुदितकुलशीलं षडंगवेदे दैवे निमित्ते दण्डनीत्यामभिविनीतमापदां दैवीनां मानुषीणां च प्रतिकर्त्तारं कुर्वीत। —नीति० पृ० १५९।

४ परमर्मज्ञः प्रगल्भः छात्रः कापटिकः।—अर्थ पृ० १८।

परमर्मज्ञः प्रगल्भः छात्रः कापटिकः। — नी० पृ० १७३।

५—श्रूयते हि शुकसारिकाभिः मन्त्रो भिन्नः श्वभिरन्यैश्च तिर्यग्योनिभिः। तस्मान्मन्त्रोद्देशमनायुक्तो नोपगच्छेत्। —अर्थ० पृ० २६।

अनायुक्तो न मन्त्रकाले तिष्ठेत्। श्रूयते हि शुकशारिकाभ्यामन्यैश्च तिर्यग्भिर्मन्त्रभेदः कृतः। —नीति० पृ० ११८।

६—द्वादशवर्षा स्त्री प्राप्तव्यवहारा भवति। षोडशवर्षः पुमान्। —अर्थ० १५४।

द्वादशवर्षा स्त्री षोडशवर्षः पुमान् प्राप्तव्यवहारौ भवतः। —नीति० ३७३।

इस तरहके और भी अनेक अवतरण दिये जा सकते हैं।

यहाँपर पाठकोंको यह भी ध्यानमें रखना चाहिए कि चाणक्यने भी तो अपने पूर्ववर्ती विशालाक्ष, भारद्वाज, बृहस्पति आदिके ग्रन्थोंका संग्रह करके अपना ग्रन्थ लिखा है*। ऐसी दशामें यदि सोमदेवकी रचना अर्थशास्त्रसे मिलती जुलती हो, तो क्या आश्चर्य है। क्योंकि उन्होंने भी उन्हीं ग्रन्थोंका मन्थन करके अपना नीतिवाक्यामृत लिखा है। यह दूसरी बात है कि नीतिवाक्यामृतकी रचनाके समय ग्रन्थकर्ताके सामने अर्थशास्त्र भी उपस्थित था।

परन्तु पाठक इससे नीतिवाक्यामृतके महत्त्वको कम न समझ लें। ऐसे विषयोंके ग्रन्थोंका अधिकांश भाग संग्रहरूप ही होता है। क्योंकि उसमें उन सब तत्त्वोंका समावेश तो नितान्त आवश्यक ही होता है जो ग्रन्थकर्त्ताके पूर्वलेखकों द्वारा उस शास्त्रके सम्बन्धमें निश्चित हो चुके हैं। उनके सिवाय जो नये अनुभव और नये तत्त्व उपलब्ध होते हैं उन्हें ही वह विशेषरूपसे अपने ग्रन्थमें लिपिबद्ध करता है। और हमारी समझमें नीतिवाक्यामृत ऐसी बातोंसे खाली नहीं है। ग्रन्थकर्त्ताकी स्वतंत्र प्रतिभा और मौलिकता उसमें जगह जगह प्रस्फुटित हो रही है।

---

* देखो पृष्ठ ५ की टिप्पणी 'पृथिव्या लाभे' आदि।

ग्रन्थकर्ताका परिचय ।

गुरुपरम्परा ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है नीतिवाक्यामृतके कर्त्ता श्रीसोमदेवसूरि हैं । ये देवसंघके आचार्य थे । दिगम्बर-सम्प्रदायके सुप्रसिद्ध चार संघोंमेंसे यह एक है । भंगराज कविके कथनानुसार यह संघ सुप्रसिद्ध तार्किक **भट्टाकलंकदेवके** बाद स्थापित हुआ था । अकलंकदेवका समय विक्रमकी ९ वीं शताब्दिका प्रथम पाद है । *

सोमदेवके गुरुका नाम नेमिदेव और दादागुरुका नाम **यशोदेव था** । यथा:—

श्रीमानस्ति स देवसंघतिलको देवो यशःपूर्वकः,
शिष्यस्तस्य बभूव सद्गुणनिधिः श्रीनेमिदेवाह्वयः ।
तस्याश्चर्यतपः स्थितेस्त्रिनवतेर्जेतुर्महावादिनां,
शिष्योऽभूदिह सोमदेव इति यस्तस्यैष काव्यक्रमः ॥ —यशस्तिलकचम्पू ।

नीतिवाक्यामृतकी गद्यप्रशस्तिसे भी यह मालूम होता है कि वे नेमिदेवके शिष्य थे । साथ ही उसमें यह भी लिखा है कि वे **महेन्द्रदेव** भट्टारकके अनुज थे । इन तीनों महात्माओं—**यशोदेव, नेमिदेव** और **महेन्द्रदेवके** सम्बन्धमें हमें और कोई भी बात मालूम नहीं है । न तो इनकी कोई रचना ही उपलब्ध है और न अन्य किसी ग्रन्थादिमें इनका कोई उल्लेख ही मिला है । इनके पूर्वके आचार्योंके विषयमें भी कुछ ज्ञात नहीं है । सोमदेवसूरिकी शिष्यपरम्परा भी अज्ञात है । यशस्तिलकके टीकाकार श्रुतसागरसूरिने एक जगह लिखा है कि वादिराज और वादीभसिंह, दोनों ही सोमदेवके शिष्य थे ×; परन्तु इसके लिए उन्होंने जो प्रमाण दिया है वह किस ग्रन्थका है, इसके जाननेका कोई साधन नहीं है । यशस्तिलककी रचना शकसंवत् ८८१ (विक्रम १०१६) में समाप्त हुई है और वादिराजने अपना पार्श्वनाथचरित शकसंवत् ९४७ (वि० १०८२) में पूर्ण किया है; अर्थात् दोनोंके बीचमें ६६ वर्षका अन्तर है । ऐसी दशामें उनका गुरु शिष्यका नाता होना दुर्घट है । इसके सिवाय वादिराजके गुरुका नाम मतिसागर था और वे द्रविड संघके आचार्य थे । अब रहे वादीभसिंह, सो उनके गुरुका नाम पुष्पषेण था और पुष्पषेण अकलंकदेवके गुरुभाई थे, इसलिए उनका समय सोमदेवसे बहुत पहले जा पड़ता है । ऐसी अवस्थामें वादिराज और वादीभसिंहको सोमदेवका शिष्य नहीं माना जा सकता । ग्रन्थकर्ताके गुरु बड़े भारी तार्किक थे । उन्होंने ९३ वादियोंको पराजित करके विजयकीर्ति प्राप्त की थी +।

इसी तरह महेन्द्रदेव भट्टारक भी दिग्विजयी विद्वान् थे । उनका ' वादीन्द्रकालानल ' उपपद ही इस बातकी घोषणा करता है ।

तार्किक सोमदेव ।

श्रीसोमदेवसूरि भी अपने गुरु और अनुजके सदृश बड़े भारी तार्किक विद्वान् थे । वे इस ग्रन्थकी प्रशस्तिमें कहते हैं:—

अल्पेऽनुग्रहधीः समे सुजनता मान्ये महानादरः, सिद्धान्तोऽयमुदात्तचित्रचरिते श्रीसोमदेवे मयि ।
यः स्पर्धेत तथापि दर्पदृढताप्रौढिप्रगाढाग्रह—स्तस्याखर्वितगर्वपर्वतपविर्मद्वाक्कृतान्तायते ॥

सारांश यह कि मैं छोटोंके साथ अनुग्रह, बराबरीवालोंके साथ सुजनता और बड़ोंके साथ महान् आदरका बर्ताव करता हूँ । इस विषयमें मेरा चरित्र बहुत ही उदार है । परन्तु जो मुझे ऐंठ दिखाता है, उसके लिए, गर्वरूपी पर्वतको विध्वंस करनेवाले मेरे वज्र-वचन कालस्वरूप हो जाते हैं ।

---

* देखो जैनहितैषी भाग ११, अंक ७—८ ।

× "उक्तं च वादिराजेन महाकविना—......................स वादिराजोऽपि श्रीसोमदेवाचार्यस्य शिष्यः— **वादीभसिंहोऽपि मदीयशिष्यः श्रीवादिराजोऽपि मदीयशिष्यः'** इत्युक्तत्वाच्च ।" —यशस्तिलकटीका आ० २, पृ० २६५ ।

+ यशस्तिलकके ऊपर उद्धृत हुए श्लोकमें उन महावादियोंकी संख्या—जिनको श्रीनेमिदेवने पराजित किया था—तिरानवे बतलाई है; परन्तु नीतिवाक्यामृतकी गद्यप्रशस्तिमें पचपन है । मालूम नहीं, इसका क्या कारण है ।

दर्पान्धबोधबुधसिन्धुरसिंहनादे , वादिद्विपोद्दलनदुर्धरवाग्विवादे ।
श्रीसोमदेवमुनिपे वचनारसाले, वागीश्वरोऽपि पुरतोऽस्ति न वादकाले ॥

भाव यह कि अभिमानी पण्डित गजोंके लिए सिंहके समान ललकारनेवाले और वादिगजोंको दलित करनेवाला दुर्धर विवाद करनेवाले श्रीसोमदेव मुनिके सामने, वादके समय वागीश्वर या देवगुरु बृहस्पति भी नहीं ठहर सकते हैं ।

इसी तरहके और भी कई पद्य हैं जिनसे उनका प्रखर और प्रचण्ड तर्कपाण्डित्य प्रकट होता है ।

यशस्तिलक चम्पूकी उत्थानिकामें कहा है:—

आजन्मकृदभ्यासाच्छुष्कात्तर्कात्तृणादिव ममास्याः ।
मतिसुरभेरभवदिदं सूक्तपयः सुकृतिनां पुण्यैः ॥ १७

अर्थात् मेरी जिस बुद्धिरूपी गौने जीवन भर तर्करूपी सूखा घास खाया, उसीसे अब यह काव्यरूपी दुग्ध उत्पन्न हो रहा है । इस उक्तिसे अच्छी तरह प्रकट होता है कि श्रीसोमदेवसूरिने अपने जीवनका बहुत बड़ा भाग तर्कशास्त्रके अभ्यासमें ही व्यतीत किया था । उनके स्याद्वादाचलसिंह, वादीभपंचानन और तार्किकचक्रवर्ती पद भी इसी बातके द्योतक हैं ।

परन्तु वे केवल तार्किक ही नहीं थे—काव्य, व्याकरण, धर्मशास्त्र और राजनीति आदिके भी धुरंधर विद्वान् थे ।

महाकवि सोमदेव ।

उनका यशस्तिलकचम्पू महाकाव्य—जो निर्णयसागरकी काव्यमालामें प्रकाशित हो चुका है—इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि वे महाकवि थे और काव्यकला पर भी उनका असाधारण अधिकार था । समूचे संस्कृत साहित्यमें यशस्तिलक एक अद्भुत काव्य है और कवित्वके साथ उसमें ज्ञानका विशाल खजाना संगृहीत है । उसका गद्य भी कादम्बरी तिलकमञ्जरी आदिकी टक्करका है । सुभाषितोंका तो उसे आकर ही कहना चाहिए । उसकी प्रशंसामें स्वयं ग्रन्थकर्त्ताने यत्रतत्र जो सुन्दर पद्य कहे हैं, वे सुनने योग्य हैं:—

असहायमनादर्शं रत्नं रत्नाकरादिव ।
मत्तः काव्यमिदं जातं सतां हृदयमण्डनम् ॥ १४ —प्रथम आश्वास ।

समुद्रसे निकले हुए असहाय, अनादर्श और सज्जनोंके हृदयकी शोभा बढ़ानेवाले रत्नकी तरह मुझसे भी यह असहाय (मौलिक), अनादर्श (बेजोड़) और हृदयमण्डन काव्यरत्न उत्पन्न हुआ ।

कर्णाञ्जलिपुटैः पातुं चेतः सूक्तामृते यदि ।
श्रूयतां सोमदेवस्य नव्याः काव्योक्तियुक्तयः ॥ २४६ ॥ —द्वितीय आ० ।

यदि आपका चित्त कानोंकी अँजुलीसे सूक्तामृतका पान करना चाहता है, तो सोमदेवकी नई नई काव्योक्तियाँ सुनिए ।

लोकवित्त्वे कवित्वे वा यदि चातुर्यचञ्चवः ।
सोमदेवकवेः सूक्तिं समभ्यस्यन्तु साधवः ॥ ५१३ ॥ —तृतीय आ० ।

यदि सज्जनोंकी यह इच्छा हो कि वे लोकव्यवहार और कवित्वमें चातुर्य प्राप्त करें तो उन्हें सोमदेव कविकी सूक्तियोंका अभ्यास करना चाहिए ।

मया वागर्थसंभारे भुक्ते सारस्वते रसे ।
कवयोऽन्ये भविष्यन्ति नूनमुच्छिष्टभोजनाः ॥ —चतुर्थ आ०, पृ० १६५ ।

मैं शब्द और अर्थपूर्ण सारे सारस्वत रस (साहित्य रस) का स्वाद ले चुका हूँ, अतएव अब जितने दूसरे कवि होंगे, वे निश्चयसे उच्छिष्टभोजी या जूठा खानेवाले होंगे—वे कोई नई बात न कह सकेंगे ।

अरालकालव्यालेन ये लीढा साम्प्रतं तु ते ।
शब्दाः श्रीसोमदेवेन प्रोत्थाप्यन्ते किमद्भुतम् ॥ —पंचम आ०, पृ० २६६ ।

समयरूपी विकट सर्पने जिन शब्दोंको निगल लिया था, अतएव जो मृत हो गये थे, यदि उन्हें श्रीसोमदेवने उठा दिया, जिला दिया—तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए । (इसमें ' सोमदेव ' शब्द श्लिष्ट है । सोम चन्द्रवाची है और चन्द्रकी अमृत-किरणोंसे विषमूर्छित जीव सचेत हो जाते हैं ।)

उद्धृत्य शास्त्रजलधेर्नितले निमग्नैः
पर्यागतैरिव चिरादभिधानरत्नैः ।
या सोमदेवविदुषा विहिता विभूषा
वाग्देवता वहतु सम्प्रति तामनर्घाम् ॥ —पं० आ०, पृ० २६६ ।

चिरकालसे शास्त्रसमुद्रके बिलकुल नीचे डूबे हुए शब्द-रत्नोंका उद्धार करके सोमदेव पण्डितने जो यह बहुमूल्य आभूषण (काव्य) बनाया है, उसे श्रीसरस्वती देवी धारण करें ।

इन उक्तियोंसे इस बातका आभास मिलता है कि आचार्य सोमदेव किस श्रेणीके कवि थे और उनका उक्त महाकाव्य कितना महत्त्वपूर्ण है । पूर्वोक्त उक्तियोंमें अभिमानकी मात्रा विशेष रहने पर भी वे अनेक अंशोंमें सत्य जान पड़ती हैं । सचमुच ही यशस्तिलक शब्दरत्नोंका बड़ा भारी खजाना है और यदि माघकाव्यके समान कहा जाय कि इस काव्यको पढ़ लेने पर फिर कोई नया शब्द नहीं रह जाता, तो कुछ अत्युक्ति न होगी । इसी तरह इसके द्वारा सभी विषयोंकी व्युत्पत्ति हो सकती है । व्यवहारदक्षता बढानेकी तो इसमें ढेर सामग्री है ।

महाकवि सोमदेवके वाक्कल्लोलपयोनिधि, कविराजकुंजर और गद्यपद्यविद्याधरचक्रवर्ती विशेषण, उनके श्रेष्ठकवित्वके ही परिचायक हैं ।

धर्माचार्य सोमदेव ।

यद्यपि अभीतक सोमदेवसूरिका कोई स्वतंत्र धार्मिक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है; परन्तु यशस्तिलकके अन्तिम दो आश्वास—जिनमें उपासकाध्ययन या श्रावकोंके आचारका निरूपण किया गया है—इस बातके साक्षी हैं कि वे धर्मके कैसे मर्मज्ञ विद्वान् थे । स्वामी समन्तभद्रके रत्नकरण्डके बाद श्रावकोंका आचारशास्त्र ऐसी उत्तमता, स्वाधीनता और मार्मिकताके साथ इतने विस्तृतरूपमें आजतक किसी भी विद्वान्की कलमसे नहीं लिखा गया है । जो लोग यह समझते हैं कि धर्मग्रन्थ तो परम्परासे चले आये हुए ग्रन्थोंके अनुवादमात्र होते हैं--उनमें ग्रन्थकर्ता विशेष क्या कहेगा, उन्हें यह उपासकाध्ययन अवश्य पढ़ना चाहिए और देखना चाहिए कि धर्मशास्त्रोंमें भी मौलिकता और प्रतिभाके लिए कितना विस्तृत क्षेत्र है । खेद है कि जैनसमाजमें इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थके पठन पाठनका प्रचार बहुत ही कम है और अब तक इसका कोई हिन्दी अनुवाद भी नहीं हुआ है । नीतिवाक्यामृतकी प्रशस्तिमें लिखा है:—

सकलसमयतर्के नाकलंकोऽसि वादिन् न भवसि समयोक्तौ हंससिद्धान्तदेवः ।
न च वचनविलासे पूज्यपादोऽसि तत्त्वं वदसि कथमिदानीं सोमदेवेन सार्धम् ॥

अर्थात् हे वादी, न तो तू समस्तदर्शन शास्त्रों पर तर्क करनेके लिए अकलंकदेवके तुल्य है, न जैनसिद्धान्तको कहनेके लिए हंससिद्धान्तदेव है और न व्याकरणमें पूज्यपाद है, फिर इस समय सोमदेवके साथ किस बिरते पर बात करने चला है ? *

इस उक्तिसे स्पष्ट है कि सोमदेवसूरि तर्क और सिद्धान्तके समान व्याकरणशास्त्रके भी पण्डित थे ।

राजनीतिज्ञ सोमदेव ।

सोमदेवके राजनीतिज्ञ होनेका प्रमाण यह नीतिवाक्यामृत तो है ही, इसके सिवाय उनके यशस्तिलकमें भी यशोधर महाराजका चरित्रचित्रण करते समय राजनीतिकी बहुत ही विशद और विस्तृत चर्चा की गई है । पाठकोंको चाहिए कि वे इसके लिए यशस्तिलकका तृतीय आश्वास अवश्य पढ़ें ।

यह आश्वास राजनीतिके तत्त्वोंसे भरा हुआ है । इस विषयमें वह अद्वितीय है । वर्णन करनेकी शैली बड़ी ही सुन्दर है । कवित्वकी कमनीयता और सरसतासे राजनीतिकी नीरसता मालूम नहीं कहाँ चली गई है । नीतिवाक्यामृतके

* **अकलंकदेव**—अष्टशती, राजवार्तिक आदि ग्रन्थोंके रचयिता । **हंससिद्धान्तदेव**—ये कोई सैद्धान्तिक आचार्य जान पड़ते हैं । इनका अब तक और कहीं कोई उल्लेख देखनेमें नहीं आया । **पूज्यपाद**—देवनन्दि, जैनेन्द्र व्याकरणके कर्ता ।

अनेक अंशोंका अभिप्राय उसमें किसी न किसी रूपमें अन्तर्निहित जान पड़ता है + ।

जहाँ तक हम जानते हैं जैनविद्वानों और आचार्योंमें—दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनोंमें—एक सोमदेवने ही 'राजनीतिशास्त्र' पर कलम उठाई है । अतएव जैनसाहित्यमें उनका नीतिवाक्यामृत अद्वितीय है । कमसे कम अब तक तो इस विषयका कोई दूसरा जैनग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ है ।

ग्रन्थ-रचना ।

इस समय सोमदेवसूरिके केवल दो ही ग्रन्थ उपलब्ध हैं —**नीतिवाक्यामृत** और **यशस्तिलकचम्पू** । इनके सिवाय—जैसा कि नीतिवाक्यामृतकी प्रशस्तिसे मालूम होता है— तीन ग्रन्थ और भी हैं—१ **युक्तिचिन्तामणि**, २ **त्रिवर्गमहेन्द्रमातलिसंजल्प** और ३ **षण्णवतिप्रकरण** । परन्तु अभीतक ये कहीं प्राप्त नहीं हुए हैं । उक्त ग्रन्थोंमेंसे **युक्तिचिन्तामणि** तो अपने नामसे ही तर्कग्रन्थ मालूम होता है और दूसरा शायद नीतिविषयक होगा । महेन्द्र और उसके सारथी मातलिके संवादरूपमें उसमें त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और कामकी चर्चा की गई होगी। तीसरेके नामसे सिवाय इसके कि उसमें ९६ प्रकरण या अध्याय हैं, विषयका कुछ भी अनुमान नहीं हो सकता है ।

इन सब ग्रन्थोंमें नीतिवाक्यामृत ही सबसे पिछला ग्रन्थ है । यशोधरमहाराजचरित या यशस्तिलक इसके पहलेका है । क्योंकि नीतिवाक्यामृतमें उसका उल्लेख है । बहुत संभव है कि नीतिवाक्यामृतके बाद भी उन्होंने ग्रन्थरचना की हो और उक्त तीन ग्रन्थोंके समान वे भी किसी जगह दीमक या चूहोंके खाद्य बन रहे हों, या सर्वथा नष्ट ही हो चुके हों ।

विशाल अध्ययन ।

यशस्तिलक और नीतिवाक्यामृतके पढ़नेसे मालूम होता है कि सोमदेवसूरिका अध्ययन बहुत ही विशाल था । ऐसा जान पड़ता है कि उनके समयमें जितना साहित्य—न्याय, व्याकरण,काव्य, नीति,दर्शन आदि सम्बन्धी—उपलब्ध था, उस सबसे उनका परिचय था । केवल जैन ही नहीं, जैनेतर साहित्यसे भी वे अच्छी तरह परिचित थे । यशस्तिलकके चौथे आश्वासमें (पृ० ११३ में) उन्होंने लिखा है कि इन महाकवियोंके काव्योंमें नग्न क्षपणक या दिगम्बर साधुओंका उल्लेख क्यों आता है ? उनकी इतनी अधिक प्रसिद्धि क्यों है ?– **उर्व, भारवि, भवभूति, भर्तृहरि, भर्तृमेण्ठ, कण्ठ, गुणाढ्य, व्यास, भास,* वोस, कालिदास×, बाण+, मयूर, नारायण, कुमार, माघ और राजशेखर** ।

इससे मालूम होता है कि वे पूर्वोक्त कवियोंके काव्योंसे अवश्य परिचित होंगे । प्रथम आश्वासके ९० वें पृष्ठमें उन्होंने **इन्द्र, चन्द्र, जैनेन्द्र, आपिशल** और **पाणिनि**के व्याकरणोंका जिकर किया है । पूज्यपाद

+ नीतिवाक्यामृत और यशस्तिलकके कुछ समानार्थक वचनोंका मिलान कीजिए:—

१—बुभुक्षाकालो भोजनकाल:— नी० वा०, पृ० २५३ ।

चारायणो निशि तिमिः पुनरस्तकाले, मध्ये दिनस्य धिषणश्चरकः प्रभाते ।
भुक्तिं जगाद नृपते मम चैष सर्गस्तस्याः स एव समयः क्षुधितो यदैव ॥३२८॥ –यशस्तिलक,आ० ३।

(पूर्वोक्त पद्यमें चारायण, तिमि, धिषण और चरक इन चार आचार्योंके मतोंका उल्लेख किया गया है ।)

२—कोकवद्दिवाकामः निशि भुञ्जीत । चकोरवन्नक्तंकामः दिवापक्वम् ।– नी० वा० पृ० २५७ ।

अन्ये त्विदमाहु:—

यः कोकवद्दिवाकामः स नक्तं भोक्तुमर्हति ।
स भोक्ता वासरे यश्च रात्रौ रक्ता चकोरवत् ॥ ३३० ॥ —यशस्तिलक, आ० २

* भास महाकविका 'पेया सुरा प्रियतमामुखमीक्षणीयं' आदि पद्य भी पाँचवें आश्वासमें (पृ० २५०) उद्धृत है । × रघुवंशका भी एक जगह (आश्वास ४, पृ० १९४) उल्लेख है । + बाण महाकविका एक जगह और भी (आ० ४, पृ० १०१) उल्लेख है और लिखा है कि उन्होंने शिकारकी निन्दा की है ।

(जैनेन्द्रके कर्ता) और **पाणिनिका** उल्लेख और भी एक दो जगह हुआ है।[1] **गुरु, शुक्र, विशालाक्ष, परीक्षित, पराशर, भीम, भीष्म, भारद्वाज** आदि नीतिशास्त्रप्रणेताओंका भी वे कई जगह स्मरण करते हैं। कौटिलीय **अर्थशास्त्रसे** तो वे अच्छी तरह परिचित हैं ही। हमारे एक पण्डित मित्रके मतानुसार नीतिवाक्यामृतमें सौ सवा सौ के लगभग ऐसे शब्द हैं जिनका अर्थ वर्तमान कोशोंमें नहीं मिलता। अर्थशास्त्रका अध्येता ही उन्हें समझ सकता है। **अश्वविद्या, गजविद्या, रत्नपरीक्षा, कामशास्त्र, वैद्यक** आदि विद्याओंके आचार्योंका भी उन्होंने कई प्रसंगोंमें जिकर किया है। प्रजापतिप्रोक्त **चित्रकर्म**, वराहमिहिरकृत **प्रतिष्ठाकाण्ड, आदित्यमत, निमित्ताध्याय, महाभारत, रत्नपरीक्षा, पतंजलिका योगशास्त्र** और **वररुचि, व्यास, हरप्रबोध, कुमारिलकी** उक्तियोंके उद्धरण दिये हैं। सैद्धान्तवैशेषिक, तार्किक वैशेषिक, पाशुपत, कुलाचार्य, सांख्य, दशबलशासन, जैमिनीय, बार्हस्पत्य, वेदान्तवादि, काणाद, ताथागत, कापिल, ब्रह्माद्वैतवादि, अवधूत आदि दर्शनोंके सिद्धान्तोंपर विचार किया है। इनके सिवाय **मतङ्ग, भृगु, भर्ग, भरत, गौतम, गर्ग, पिंगल, पुलह, पुलोम, पुलस्ति, पराशर, मरीचि, विरोचन, धूमध्वज, नीलपट, ग्रहिल,** आदि अनेक प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध आचार्योंका नामोल्लेख किया है। बहुतसे ऐतिहासिक दृष्टान्तोंका भी उल्लेख किया गया है। जैसे यवनदेश (यूनान?) में **मणिकुण्डला** रानीने अपने पुत्रके राज्यके लिए विषदूषित शराबके कुरलेसे **अजराजाको**, सूरसेन (मथुरा) में **वसन्तमतिने** विषमय आलतेसे रंगे हुए अधरोंसे **सुरतविलास** नामक राजाको, दशार्ण (भिलसा) में **वृकोदरीने** विषलिप्त करधनीसे **मदनार्णव** राजाको, मगध देशमें **मदिराक्षीने** तीखे दर्पणसे **मन्मथविनोदको**, पाण्ड्य देशमें **चण्डरसा** रानीने कबरीमें छुपी हुई छुरीसे **मुण्डीर** नामक राजाको मार डाला *। इत्यादि। पौराणिक आख्यान भी बहुतसे आये हैं। जैसे प्रजापति ब्रह्माका चित्त अपनी लड़की पर चलायमान हो गया, वररुचि या कात्यायनने एक दासीपर रीझकर उसके कहनेसे मद्यका घड़ा उठाया, आदि ×। इन सब बातोंसे पाठक जान सकेंगे कि आचार्य सोमदेवका ज्ञान कितना विस्तृत और व्यापक था।

उदार विचारशीलता।

यशस्तिलकके प्रारंभके २० वें श्लोकमें सोमदेवसूरि कहते हैं:—

लोको युक्तिः कलाश्छन्दोऽलंकाराः समयागमाः।
सर्वसाधारणाः सद्भिस्तीर्थमार्ग इव स्मृताः॥

अर्थात् सज्जनोंका कथन है कि व्याकरण, प्रमाणशास्त्र (न्याय), कलायें, छन्दःशास्त्र, अलंकारशास्त्र और (आर्हत, जैमिनि, कपिल, चार्वाक, कणाद, बौद्धादिके) दर्शनशास्त्र *तीर्थमार्गके समान सर्वसाधारण* हैं। अर्थात् जिस तरह गंगादिके मार्ग पर ब्राह्मण भी चल सकते हैं और चाण्डाल भी, उसी तरह इनपर भी सबका अधिकार है। +

१—" पूज्यपाद इव शब्देतिहेषु...पाणिपुत्र इव पदप्रयोगेषु " यश० आ० २, पृ० २३६। —२, ३, ४, ५, ६—" रोमपाद इव गजविद्यासु रैवत इव हयनयेषु शुकनाश इव रत्नपरीक्षासु, दत्तक इव कन्तुसिद्धान्तेषु "—आ० ४, पृ० २३६–२३७। 'दत्तक' कामशास्त्रके प्राचीन आचार्य हैं। वात्स्यायनने इनका उल्लेख किया है। 'चारायण' भी कामशास्त्रके आचार्य हैं। इनका मत यशस्तिलकके तीसरे आश्वासके ५०९ पृष्ठमें चरकके साथ प्रकट किया गया है।

१, २, ३, ४, ५—उक्त पाँचों ग्रन्थोंके उद्धरण यश० के चौथे आश्वासके पृ० ११२–१३ और ११९ में उद्धृत हैं। महाभारतका नाम नहीं है, परन्तु– **पुराणं मानवो धर्मः साङ्गो वेदश्चिकित्सितम्'** आदि श्लोक महाभारतसे ही उद्धृत किया गया है।

६—तदुक्तं रत्नपरीक्षायाम्—' **न केवलं** ' आदि; आश्वास ५, पृ० २५६।

७—यशस्तिलक आ० ६, पृ० २७६–७७। ८—९–आ० ४, पृ० ९९।१०,११–आ० ५, पृ०२५१–५४।

१२–इन सब दर्शनोंका विचार पाँचवें आश्वासके पृ० २६९ से २७७ तक किया गया है।

१३—देखो आश्वास ५, पृ० २५२–५५ और २९९।

* यशस्तिलक आ० ४, पृ० १५३। इन्हीं आख्यानोंका उल्लेख *नीतिवाक्यामृत* (पृ० २३३) में भी किया गया है। आश्वास ३- पृ० ४३१ और ५५० में भी ऐसे ही कई ऐतिहासिक दृष्टान्त दिये गये हैं।

× यश० आ० ४, पृ० १३८—३९।

+ " लोको व्याकरणशास्त्रम्, युक्तिः प्रमाणशास्त्रम्, ...समयागमाः जिनजैमिनिकपिलकणचरचार्वाकशाक्यानां सिद्धान्ताः। सर्वसाधारणाः सद्भिः कथिताः प्रतिपादिताः। क इव तीर्थं मार्ग इव। यथा तीर्थमार्गे ब्राह्मणाश्चलन्ति, चाण्डाला अपि गच्छन्ति, नास्ति तत्र दोषः। "—श्रुतसागरी टीका।

इस उक्तिसे पाठक जान सकते हैं कि उनके विचार ज्ञानके सम्बन्धमें कितने उदार थे। उसे वे सर्वसाधारणकी चीज समझते थे और यही कारण है जो उन्होंने धर्माचार्य होकर भी अपने धर्मसे इतर धर्मके माननेवालोंके साहित्यका भी अच्छी तरहसे अध्ययन किया था, यही कारण है जो वे पूज्यपाद और भट्ट अकलंकदेवके साथ पाणिनि आदिका भी आदरके साथ उल्लेख करते हैं और यही कारण है जो उन्होंने अपना यह राजनीतिशास्त्र बीसों जैनेतर आचार्योंके विचारोंका सार खींचकर बनाया है। यह सच है कि उनका जैन सिद्धान्तों पर अचल विश्वास है और इसीलिए यशस्तिलकमें उन्होंने अन्य सिद्धान्तोंका खण्डन करके जैनसिद्धान्तकी उपादेयता प्रतिपादन की है; परन्तु इसके साथ ही वे इस सिद्धान्तके पक्के अनुयायी हैं कि ' **युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः।** ' उनकी यह नीति नहीं थी कि ज्ञानका मार्ग भी संकीर्ण कर दिया जाय और संसारके विशाल ज्ञान-भाण्डारका उपयोग करना छोड़ दिया जाय।

समय और स्थान।

नीतिवाक्यामृतके अन्तकी प्रशस्तिमें इस बातका कोई जिकर नहीं है कि वह कब और किस स्थानमें रचा गया था; परन्तु यशस्तिलक चम्पूके अन्तमें इन दोनों बातोंका उल्लेख है:—

" **शकनृपकालातीतसंवत्सरशतेष्वष्टस्वेकाशीत्यधिकेषु गतेषु अङ्कतः (८८१) सिद्धार्थसंवत्सरान्तर्गतचैत्रमासमदनत्रयोदश्यां पाण्ड्य-सिंहल-चोल-चेरमप्रभृतीन्महीपतीन्प्रसाध्य मेलपाटीप्रवर्धमानराज्यप्रभावे श्रीकृष्णराजदेवे सति तत्पादपद्मोपजीविनः समधिगतपञ्चमहाशब्दमहासामन्ताधिपतेश्चालुक्यकुलजन्मनः सामन्तचूडामणेः श्रीमदरिकेसरिणः प्रथमपुत्रस्य श्रीमद्वद्यगराजस्य लक्ष्मीप्रवर्धमानवसुधारायां गङ्गाधारायां विनिर्मापितमिदं काव्यमिति।** "

अर्थात् चैत्र सुदी १३, शकसंवत् ८८१ (विक्रम संवत् १०१६) को जिस समय **श्रीकृष्णराजदेव** पाण्ड्य सिंहल, चोल, चेर आदि राजाओं पर विजय प्राप्त करके मेलपाटी नामक राजधानीमें राज्य करते थे और उनके चरणकमलोपजीवी सामन्त **वद्दिग**—जो चालुक्यवंशीय **अरिकेसरी**के प्रथम पुत्र थे—गंगाधाराका शासन करते थे, यह काव्य समाप्त हुआ।

दक्षिणके इतिहाससे पता चलता है कि ये **कृष्णराजदेव** राष्ट्रकूट या राठौर वंशके महाराजा थे और इनका दूसरा नाम **अकालवर्ष** था। यह वही वंश है जिसमें भगवज्जिनसेनके परमभक्त महाराज **अमोघवर्ष** (प्रथम) उत्पन्न हुए थे। अमोघवर्षके पुत्र **अकालवर्ष** (द्वितीय कृष्ण) और अकालवर्षके **जगत्तुंग** हुए *। इन जगत्तुंगके दो पुत्रों—**इन्द्र** या नित्यवर्ष और **वद्दिग** या अमोघवर्ष (तृतीय) मेंसे—**अमोघवर्ष** तृतीयके पुत्र कृष्णराजदेव या तृतीय कृष्ण थे। इनके समयके शक संवत् ८६७, ८७३, ८७६, और ८८१ के चार शिलालेख मिले हैं, इससे इनका राज्यकाल कमसे कम ८६७ से ८८१ तक सुनिश्चित है। ये दक्षिणके सार्वभौमराजा थे और बड़े प्रतापी थे। इनके अधीन अनेक माण्डलिक या करद राज्य थे। कृष्णराजने—जैसा कि सोमदेवसूरिने लिखा है—सिंहल, चोल, पाण्ड्य और चेर राजाओंको युद्धमें पराजित किया था। इनके समयमें कनड़ी भाषाका सुप्रसिद्ध कवि **पोन्न** हुआ है जो जैन था और जिसने

१ पाण्ड्य=वर्तमानमें मद्रासका ' तिनेवली '। सिंहल=सिलोन या लंका। चोल=मद्रासका कारोमण्डल। चेर=केरल, वर्तमान त्रावणकोर। २ मुद्रित ग्रन्थमें ' मेल्पाटी ' पाठ है। ३ मुद्रित पुस्तकमें ' श्रीमद्वागराजप्रवर्धमान—' पाठ है।

* जगत्तुंग गद्दीपर नहीं बैठे। अकालवर्षके बाद जगत्तुंगके पुत्र तृतीय इन्द्रको गद्दी मिली। इन्द्रके दो पुत्र थे—अमोघवर्ष (द्वितीय) और गोविन्द (चतुर्थ)। इनमेंसे द्वितीय अमोघवर्ष पहले सिंहासनारूढ हुए; परन्तु कुछ ही समयके बाद गोविन्द चतुर्थने उन्हें गद्दीसे उतार दिया और आप राजा बन बैठे। गोविन्दके बाद उनके काका अर्थात् जगत्तुंगके दूसरे पुत्र अमोघवर्ष (तृतीय) गद्दीपर बैठे। अमोघवर्षके बाद ही कृष्णराजदेव सिंहासनासीन हुए। इन सबके विषयमें विस्तारसे जाननेके लिए डा० भाण्डारकरकृत ' हिस्ट्री आफ दी डेक्कन ' या उसका मराठी अनुवाद पढ़िए।

शान्तिपुराण नामक श्रेष्ठ ग्रन्थकी रचना की है। महाराज कृष्णराज देवके दरबारसे इसे 'उभयभाषाकविचक्रवर्ती' की उपाधि मिली थी।

निजामके राज्यमें मलखेट नामका एक ग्राम है जिसका प्राचीन नाम 'मान्यखेट' है। यह मान्यखेट ही अमोघवर्ष आदि राष्ट्रकूट राजाओंकी राजधानी थी × और उस समय बहुत ही समृद्ध थी। संभव है कि सोमदेवने इसीको मेलपाटी या मिलपाटी लिखा हो। 'हिस्टरी आफ कनारी लिटरेचर' के लेखकने लिखा है कि पोन्न कविको उभयभाषाकविचक्रवर्तीकी उपाधि देनेवाले राष्ट्रकूट राजा कृष्णराजने मान्यखेटमें० सन् ९३९ से ९६८ तक राज्य किया है। इससे भी मालूम होता है कि मान्यखेटका ही नाम मेलपाटी होगा; परंतु यदि यह मेल्पाटी कोई दूसरा स्थान है तो समझना होगा कि कृष्णराज देवके समयमें मान्यखेटसे राजधानी उठकर उक्त दूसरे स्थानमें चली गई थी। इस बातका पता नहीं लगता कि मान्यखेटमें राष्ट्रकूटोंकी राजधानी कब तक रही।

राष्ट्रकूटोंके समयमें दक्षिणका चालुक्यवंश (सोलंकी) हतप्रभ हो गया था। क्योंकि इस वंशका सार्वभौमत्व राष्ट्रकूटोंने ही छीन लिया था। अतएव जब तक राष्ट्रकूट सार्वभौम रहे तब तक चालुक्य उनके आज्ञाकारी सामन्त या माण्डलिक राजा बनकर ही रहे। जान पड़ता है कि **अरिकेसरिका पुत्र वद्दिग** ऐसा ही एक सामन्तराजा था जिसकी गंगाधारा नामक राजधानीमें यशस्तिलककी रचना समाप्त हुई है।

चालुक्योंकी एक शाखा 'जोल' नामक प्रान्तपर राज्य करती थी जिसका एक भाग इस समयके धारवाड़ जिलेमें आता है और श्रीयुक्त आर. नरसिंहाचार्यके मतसे चालुक्य अरिकेसरीकी राजधानी 'पुलगेरि'में थी जो कि इस समय 'लक्ष्मेश्वर'के नामसे प्रसिद्ध है।

इस अरिकेसरीके ही समयमें कनड़ी भाषाका सर्वश्रेष्ठ कवि **पम्प** हो गया है जिसकी रचना पर मुग्ध होकर अरिकेसरीने धर्मपुर नामका एक ग्राम पारितोषिकमें दिया था। पम्प जैन था। उसके बनाये हुए दो ग्रन्थ ही इस समय उपलब्ध हैं—एक **आदिपुराण चम्पू** और दूसरा **भारत** या **विक्रमार्जुनविजय**। पिछले ग्रन्थमें उसने अरिकेसरीकी वंशावली इस प्रकार दी **है—युद्धमल्ल - अरिकेसरी—नारसिंह-युद्धमल्ल - वद्दिग - युद्धमल्ल- नारसिंह और अरिकेसरी**। उक्त ग्रन्थ शक संवत ८६१ (वि० ९९८ में) समाप्त हुआ है, अर्थात् वह यशस्तिलकसे कोई १८ वर्ष पहले बन चुका था। इसकी रचनाके समय अरिकेसरी राज्य करता था, तब उसके १८ वर्ष-बाद—यशस्तिलककी रचनाके समय—उसका पुत्र राज्य करता होगा, यह सर्वथा ठीक जँचता है।

काव्यमाला द्वारा प्रकाशित यशस्तिलकमें अरिकेसरीके पुत्रका नाम '**श्रीमद्वागराज**' मुद्रित हुआ है; परन्तु हमारी समझमें वह अशुद्ध है। उसकी जगह '**श्रीमद्वद्दिगराज**' पाठ होना चाहिए। दानवीर सेठ माणिकचंदजीके सरस्वतीभंडारकी वि० सं० १४६४ की लिखी हुई प्रतिमें 'श्रीमद्वयगराजस्य' पाठ है और इससे हमें अपने कल्पना किये हुए पाठकी शुद्धतामें और भी अधिक विश्वास होता है। ऊपर जो हमने **पम्पकवि-लिखित अरिकेसरीकी** वंशावली दी है, उस पर पाठकोंको जरा बारीकीसे विचार करना चाहिए। उसमें **युद्धमल्ल** नामके तीन, **अरिकेसरी** नामके दो और **नारसिंह** नामके दो राजा हैं। अनेक राजवंशोंमें प्रायः यही परिपाटी देखी जाती है कि पितामह और पौत्र या प्रपितामह और प्रपौत्रके नाम एकसे रक्खे जाते थे, जैसा कि उक्त वंशावलीसे प्रकट होता है *। अतएव हमारा अनुमान है कि इस वंशावलीके अन्तिम राजा **अरिकेसरी** (पम्पके आश्रयदाता) के पुत्रका नाम **वद्दिग** × ही होगा जो कि लेखकोंके प्रमादसे 'वद्यग' या 'वाग' बन गया है।

× महाराजा अमोघवर्ष (प्रथम) के पहले शायद राष्ट्रकूटोंकी राजधानी मयूरखण्डी थी जो इस समय नासिक जिलेमें मोरखण्ड किलेके नामसे प्रसिद्ध है।

* दक्षिणके राष्ट्रकूटोंकी वंशावलीमें भी देखिए कि अमोघवर्ष नामके चार, कृष्ण या अकालवर्ष नामके तीन, गोविन्द नामके चार, इन्द्र नामके तीन और कर्क नामके तीन राजा लगभग २५० वर्षके बीचमें ही हुए हैं।

× श्रद्धेय पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझाने अपने 'सोलंकियोंके इतिहास' (प्रथम भाग) में लिखा है कि सोमदेवसूरिने अरिकेसरीके प्रथम पुत्रका नाम नहीं दिया है; परन्तु ऐसा उन्होंने यशस्तिलककी प्रशस्तिके अशुद्ध पाठके कारण समझ लिया है; वास्तवमें नाम दिया है और वह 'वद्दिग' ही है।

' गंगाधारा ' स्थान के विषयमें हम कुछ पता न लगा सके जो कि वद्दिगकी राजधानी थी और जहाँ यशस्तिलककी रचना समाप्त हुई है। संभवतः यह स्थान धारवाड़के ही आसपास कहीं होगा।

श्रीसोमदेवसूरिने नीतिवाक्यामृतकी रचना कब और कहाँ पर की थी, इस बातका विचार करते हुए हमारी दृष्टि उसकी संस्कृत टीकाके निम्नलिखित वाक्यों पर जाती है।

" अत्र तावदखिलभूपालमौलिलालितचरणयुगलेन रघुवंशावस्यायिपराक्रमपालितकस्य (कर्णस्य) कर्णकुब्जेन महाराजश्रीमहेन्द्रदेवेन पूर्वाचार्यकृतार्थशास्त्रदुरवबोधग्रन्थगौरवखिन्नमानसेन सुबोधललितलघुनीतिवाक्यामृतरचनासु प्रवर्तितः सकलार्थिदरवार्नीतिग्रन्थस्य नानादर्शनप्रतिबद्धश्रोतॄणां तत्तदभीष्टश्रीकण्ठाच्युतविरंच्यर्हतां वाचानिकमनस्कृतिसूचनं तथा स्वगुरोः सोमदेवस्य च प्रणामपूर्वकं शास्त्रस्य तत्कर्तृत्वं ख्यापयितुं सकलसत्त्वकृताभयप्रदानं मुनिचन्द्राभिधानः क्षपणकमतधर्ता नीतिवाक्यामृतकर्त्ता निर्विघ्नसिद्धिकरं...श्लोकमेकं जगाद–" पृष्ठ २.

इसका अभिप्राय यह है कि कान्यकुब्जनरेश्वर महाराजा **महेन्द्रदेव**ने पूर्वाचार्यकृत अर्थशास्त्र (कौटिलीय अर्थशास्त्र ?) की दुर्बोधता और गुरुतासे खिन्न होकर ग्रन्थकर्त्ताको इस सुबोध, सुन्दर और लघु नीतिवाक्यामृतकी रचना करनेमें प्रवृत्त किया।

कन्नौजके राजा **महेन्द्रपालदेव**का समय वि० संवत् ९६० से ९६४ तक निश्चित हुआ है। कर्पूरमंजरी और काव्यमीमांसा आदिके कर्त्ता सुप्रसिद्ध कवि **राजशेखर** इन्हीं महेन्द्रपालदेवके उपाध्याय थे *। परन्तु हम देखते हैं कि यशस्तिलक वि० संवत् १०१६ में समाप्त हुआ है और नीतिवाक्यामृत उससे भी पीछे बना है। क्योंकि नीतिवाक्यामृतकी प्रशस्तिमें ग्रन्थकर्त्ताने अपनेको यशोधरमहाराजचरित या यशस्तिलक महाकाव्यका कर्त्ता प्रकट किया है और इससे प्रकट होता है कि उक्त प्रशस्ति लिखते समय वे यशस्तिलकको समाप्त कर चुके थे। ऐसी अवस्थामें महेन्द्रपालदेवसे कमसे कम ५०–५१ वर्ष बाद नीतिवाक्यामृतका रचनाकाल ठहरता है। तब समझमें नहीं आता कि टीकाकारने सोमदेवको महेन्द्रपालदेवका सामयिक कैसे ठहराया है। आश्चर्य नहीं जो उन्होंने किसी सुनी सुनाई किंवदन्तीके आधारसे पूर्वोक्त बात लिख दी हो।

नीतिवाक्यामृतके टीकाकारका समय अज्ञात है; परंतु यह निश्चित है कि वे मूलग्रन्थकर्तासे बहुत पीछे हुए हैं, क्योंकि और तो क्या वे उनके नामसे भी अच्छी तरह परिचित नहीं हैं। यदि ऐसा न होता तो मंगलाचरणके श्लोककी टीकामें जो ऊपर उद्धृत हो चुकी है, वे ग्रंथकर्ताका नाम ' **मुनिचन्द्र** ' और उनके गुरुका नाम ' **सोमदेव** ' न लिखते। इससे भी मालूम होता है कि उन्होंने ग्रन्थकर्त्ता और महेन्द्रदेवका समकालिकत्व किंवदन्तीके आधारसेही लिखा है।

सोमदेवसूरिने यशस्तिलकमें एक जगह जो प्राचीन महाकवियोंकी नामावली दी है, उसमें सबसे अन्तिम नाम **राजशेखर**का है ×। इससे मालूम होता है कि राजशेखरका नाम सोमदेवके समयमें प्रसिद्ध हो चुका था, अत एव राजशेखर उनसे अधिक नहीं तो ५० वर्ष पहले अवश्य हुए होंगे और महेन्द्रदेवके वे उपाध्याय थे। इससे भी नीतिवाक्यामृतका उनके समयमें या उनके कहनेसे बनना कम संभव जान पड़ता है।

और यदि कान्यकुब्जनरेशके कहनेसे सचमुच ही नीतिवाक्यामृत बनाया गया होता, तो इस बातका उल्लेख ग्रन्थकर्ता अवश्य करते; बल्कि महाराजा महेन्द्रपालदेव इसका उल्लेख करनेके लिए स्वयं उनसे आग्रह करते।

पहले बतलाया जा चुका है कि सोमदेवसूरि देवसंघके आचार्य थे और जहाँ तक हम जानते हैं यह संघ दक्षिणमें ही रहा है। अब भी उत्तरमें जो भट्टारकोंकी गद्दियाँ हैं, उनमेंसे कोई भी देवसंघकी नहीं है। यशस्तिलक भी दक्षिणमें ही बना है और उसकी रचनासे भी अनुमान होता है कि उसके कर्ता दाक्षिणात्य हैं। ऐसी अवस्थामें उनका

* देखो नागरीप्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण), भाग २, अंक १ में स्वर्गीय पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरीका ' अवन्तिसुन्दरी ' शीर्षक नोट।

×" तथा—उर्व-भारवि-भवभूति-भर्तृहरि-भर्तृमेण्ठ-गुणाढ्य-व्यास-भास-वोस-कालिदास-बाण-मयूर-नारायण-कुमार-माघ-राजशेखरादिमहाकविकाव्येषु तत्र तत्रावसरे भरतप्रणीते काव्याध्याये सर्वजनप्रसिद्धेषु तेषु तेषूपाख्यानेषु च कथं तद्विषया महती प्रसिद्धिः।"
—यशस्तिलक आ० ४, पृ० ११३।

निर्ग्रन्थ होकर भी कान्यकुब्जके राजाकी सभामें रहना और उसके कहनेसे नीतिवाक्यामृतकी रचना करना असंभव नहीं तो विलक्षण अवश्य जान पड़ता है।

मूलग्रन्थ और उसके कर्त्ताके विषयमें जितनी बातें मालूम हो सकीं उन्हें लिखकर अब हम टीका और टीकाकारका परिचय देनेकी ओर प्रवृत्त होते हैं:—

टीकाकार।

जिस एक प्रतिके आधारसे यह टीका मुद्रित हुई है, उसमें कहीं भी टीकाकारका नाम नहीं दिया है। संभव है कि टीकाकारकी भी कोई प्रशस्ति रही हो और वह लेखकोंके प्रमादसे छूट गई हो। परन्तु टीकाकारने ग्रन्थके आरंभमें जो मंगलाचरणका श्लोक लिखा है, उससे अनुमान होता है कि उनका नाम बहुत करके 'हरिबल' होगा।

हरिं हरियलं नत्वा हरिवर्णं हरिप्रभम् ।
हरीज्यं च ब्रुवे टीका नीतिवाक्यामृतोपरि ॥

यह श्लोक मूल नीतिवाक्यामृतके निम्नलिखित मंगलाचरणका बिल्कुल अनुकरण है:—

सोमं सोमसमाकारं सोमाभं सोमसंभवम् ।
सोमदेवं मुनिं नत्वा नीतिवाक्यामृतं ब्रुवे ॥

जब टीकाकारका मंगलाचरण मूलका अनुकरण है और मूलकारने अपने मंगलाचरणमें अपना नाम भी पर्यायान्तरसे व्यक्त किया है, तब बहुत संभव है कि टीकाकारने भी अपने मंगलाचरणमें अपना नाम व्यक्त करनेका प्रयत्न किया हो और ऐसा नाम उसमें **हरियल** ही हो सकता है जिसके आगे मूलके सोमदेवके समान 'नत्वा' पद पड़ा हुआ है। यह भी संभव है कि हरिबल टीकाकारके गुरुका नाम हो और यह इसलिए कि सोमदेवको उन्होंने मूलग्रन्थकर्त्ताके गुरुका नाम समझा है। यद्यपि यह केवल अनुमान ही है, परन्तु यदि उनका या उनके गुरुका नाम **हरियल** हो, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

टीकाकारने मंगलाचरणमें हरि या वासुदेवको नमस्कार किया है। इससे मालूम होता है कि वे वैष्णव धर्मके उपासक होंगे।

वे कहांके रहनेवाले थे और किस समयमें उन्होंने यह टीका लिखी है, इसके जाननेका कोई साधन नहीं है। परन्तु यह बात निःसंशय होकर कही जा सकती है कि वे बहुश्रुत विद्वान् थे और एक राजनीतिके ग्रन्थपर टीका लिखनेकी उनमें यथेष्ट योग्यता थी। इस विषयके उपलब्ध साहित्यका उनके पास काफी संग्रह था और टीकामें उसका पूरा पूरा उपयोग किया गया है। नीतिवाक्यामृतके अधिकांश वाक्योंकी टीकामें उस वाक्यसे मिलते जुलते अभिप्रायवाले उद्धरण देकर उन्होंने मूल अभिप्रायको स्पष्ट करनेका भरसक प्रयत्न किया है। विद्वान् पाठक समझ सकते हैं कि यह काम कितना कठिन है और इनके लिए उन्हें कितने ग्रन्थोंका अध्ययन करना पड़ा होगा; स्मरणशक्ति भी उनकी कितनी प्रखर होगी।

यह टीका पचासों ग्रन्थकारोंके उद्धरणोंसे भरी हुई है। इसमें किन किन कवियों, आचार्यों या ऋषियोंके श्लोक उद्धृत किये गये हैं, यह जाननेके लिए ग्रन्थके अन्तमें उनके नामोंकी और उनके पद्योंकी एक सूची वर्णानुक्रमसे लगा दी गई है, इसलिए यहाँ पर उन नामोंका पृथक् उल्लेख करनेकी आवश्यकता नहीं है। पाठक देखेंगे कि उसमें अनेक नाम बिल्कुल अपरिचित हैं और अनेक ऐसे हैं जिनके नाम तो प्रसिद्ध हैं; परन्तु रचनायें इस समय अनुपलब्ध हैं। इस दृष्टिसे यह टीका और भी बड़े महत्त्वकी है कि इससे राजनीति या सामान्यनीतिसम्बन्धी प्राचीन ग्रन्थकारोंकी रचनाके सम्बन्धमें अनेक नई नई बातें मालूम होंगी।

संशोधकके आक्षेप।

इस ग्रन्थकी प्रेसकापी और प्रुफ संशोधनका काम श्रीयुत पं० पन्नालालजी सोनीने किया है। आपने केवल अपने उत्तरदायित्व पर, मेरी अनुपस्थितिमें, कई टिप्पणियाँ ऐसी लगा दी हैं जिनसे टीकाकारके और उसकी टीकाके विषयमें एक बड़ा भारी भ्रम फैल सकता है अतएव यहाँ पर यह आवश्यक प्रतीत होता है कि उन टिप्पणियों पर भी एक नजर डाल ली जाय। सोनीजीकी टिप्पणियोंके आक्षेप दो प्रकारके हैं:—

१—टीकाकारने जो मनु, शुक्र और याज्ञवल्क्यके श्लोक उद्धृत किये हैं, वे मनुस्मृति, शुक्रनीति और याज्ञवल्क्यस्मृतिमें, नहीं हैं। यथा पृष्ठ १६५ की टिप्पणी—" श्लोकोऽयं मनुस्मृतौ तु नास्ति। टीकाकर्त्रा स्वदौष्ट्येन ग्रन्थकर्तृपराभवाभिप्रायेण बहवः श्लोकाः स्वयं विरचय्य तत्र तत्र स्थलेषु विनिवेशिताः।' अर्थात् यह श्लोक मनुस्मृतिमें तो नहीं है, टीकाकारने अपनी दुष्टतावश मूलकर्त्ताको नीचा दिखानेके अभिप्रायसे स्वयं ही बहुतसे श्लोक बनाकर जगह जगह घुसेड़ दिये हैं।

२—इस टीकाकारने—जो कि निश्चयपूर्वक अजैन है—बहुतसे सूत्र अपने मतके अनुसार स्वयं बनाकर जोड़ दिये हैं। यथा पृष्ठ ४९ की टिप्पणी—"अस्य ग्रन्थस्य कर्त्ता कश्चिदजैनविद्वानस्तीति निश्चितं। अतस्तेन स्वमतानुसारेण बहूनि सूत्राणि विरचय्य संयोजितानि। तानि च तत्र तत्र निवेदयिष्यामः।"

पहले आक्षेपके सम्बन्धमें हमारा निवेदन है कि सोनीजी वैदिक धर्मके साहित्य और उसके इतिहाससे सर्वथा अनभिज्ञ हैं; फिर भी उनके साहसकी प्रशंसा करनी चाहिए कि उन्होंने मनु या शुक्रके नामके किसी ग्रन्थके किसी एक संस्करणको देखकर ही अपनी अद्भुत राय दे डाली है। खेद है कि उन्हें एक प्राचीन विद्वानके विषयमें—केवल इतने कारणसे कि वह जैन नहीं है इतनी बड़ी एकतरफा डिक्री जारी कर देनेमें जरा भी झिझक नहीं हुई !

सोनीजीने सारी टीकामें मनुके नामके पाँच श्लोकोंपर, याज्ञवल्क्यके एक श्लोकपर, और शुक्रके दो श्लोकोंपर अपने नोट दिये हैं कि ये श्लोक उक्त आचार्योंके ग्रन्थोंमें नहीं हैं। सचमुच ही उपलब्ध मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति और शुक्रनीतिमें उद्धृत श्लोकोंका पता नहीं चलता। परन्तु जैसा कि सोनीजी समझते हैं, इसका कारण टीकाकारकी दुष्टता या मूलकर्त्ताको नीचा दिखानेकी प्रवृत्ति नहीं है।

सोनीजीको जानना चाहिए कि हिन्दुओंके धर्मशास्त्रोंमें समय समय पर बहुत कुछ परिवर्तन होते रहे हैं। अपने निर्माणसमयमें वे जिस रूपमें थे, इस समय उस रूपमें नहीं मिलते हैं। उनके संक्षिप्त संस्करण भी हुए हैं और प्राचीन ग्रन्थोंके नष्ट हो जानेसे उनके नामसे दूसरोंने भी उसी नामके ग्रन्थ बना दिये हैं। इसके सिवाय एक स्थानकी प्रतिके पाठोंसे दूसरे स्थानोंकी प्रतियोंके पाठ नहीं मिलते। इस विषयमें प्राचीन साहित्यके खोजियोंने बहुत कुछ छानबीन की है और इस विषय पर बहुत कुछ प्रकाश डाला है। कौटिलीय अर्थशास्त्रकी भूमिकामें उसके सुप्रसिद्ध सम्पादक पं० आर. शामशास्त्री लिखते हैं:—

" अतश्च चाणक्यकालिकं धर्मशास्त्रमधुनातनाद्याज्ञवल्क्यधर्मशास्त्रादन्यदेवासीदिति प्रतिभाति। एवमेव ये पुनर्मानव-बार्हस्पत्यौशनसा भिन्नाभिप्रायास्तत्र तत्र कौटिल्येन परामृष्टाः न तेऽधुनोपलभ्यमानेषु तत्तद्धर्मशास्त्रेषु दृश्यन्त इति कौटिल्यपरामृष्टानि तानि शास्त्राण्यन्यान्येवेति बाढं सुवचम्।"

अर्थात् इससे मालूम होता है कि चाणक्यके समयका याज्ञवल्क्य धर्मशास्त्र वर्तमान याज्ञवल्क्य शास्त्र (स्मृति) से कोई जुदा ही था। इसी तरह कौटिल्यने अपने अर्थशास्त्रमें जगह जगह बार्हस्पत्य, औशनस आदिसे जो अपने भिन्न अभिप्राय प्रकट किये हैं वे अभिप्राय इस समय मिलनेवाले उन धर्मशास्त्रोंमें नहीं दिखलाई देते। अतएव यह अच्छी तरह सिद्ध होता है कि कौटिल्यने जिन शास्त्रोंका उल्लेख किया है, वे इनके सिवाय दूसरे ही थे।

स्वर्गीय बाबू रमेशचन्द्र दत्तने अपने 'प्राचीन सभ्यताके इतिहास' में लिखा है कि प्राचीन धर्मसूत्रोंको सुधार कर उत्तरकालमें स्मृतियाँ बनाई गई हैं—जैसे कि मनु और याज्ञवल्क्यकी स्मृतियाँ। जो धर्मसूत्र खोये गये हैं उनमें एक मनुका सूत्र भी है जिससे कि पीछेके समयमें मनुस्मृति बनाई गई है। ऽ

याज्ञवल्क्य स्मृतिके सुप्रसिद्ध टीकाकार विज्ञानेश्वर लिखते हैं:—" याज्ञवल्क्यशिष्यः कश्चन प्रश्नोत्तररूपं याज्ञवल्क्यप्रणीतं धर्मशास्त्रं संक्षिप्य कथयामास, यथा मनुप्रोक्तं भृगुः।' अर्थात् याज्ञवल्क्यके किसी शिष्यने याज्ञवल्क्यप्रणीत धर्मशास्त्रको संक्षिप्त करके कहा—जिस तरह कि भृगुने मनुप्रणीत धर्मशास्त्रको संक्षिप्त करके मनुस्मृति लिखी है। इससे मालूम होता है कि उक्त दोनों स्मृतियाँ, मनु और याज्ञवल्क्यके प्राचीन शास्त्रोंके उनके

ऽ रमेशबाबूने अपने इतिहासके चौथे भागमें इस समय मिलनेवाली पृथक् पृथक् बीसों स्मृतियों पर अपने विचार प्रकट किये हैं और उसमें बतलाया है कि अधिकांश स्मृतियाँ बहुत पीछेकी बनी हुई हैं और बहुतोंमें—जो प्राचीन भी हैं—बहुत पीछे तक नई नई बातें शामिल की जाती रही हैं।

शिष्यों या परम्पराशिष्यों द्वारा निर्मित किये हुए सार हैं और इस बातको तो सभी जानते हैं कि उपलब्ध मनुस्मृति भृगुप्रणीत है-स्वयं मनुप्रणीत नहीं।

बम्बईके गुजराती प्रेसके मालिकोंने कुल्लूकभट्टकी टीकाके सहित मनुस्मृतिका एक सुन्दर संस्करण प्रकाशित किया है। उसके परिशिष्टमें ३५५ श्लोक ऐसे दिये हैं जो वर्तमान मनुस्मृतिमें तो नहीं मिलते हैं; परन्तु हेमाद्रि, मिताक्षरा, पराशरमाधवीय, स्मृतिरत्नाकर, निर्णयसिन्धु आदि ग्रन्थोंमें मनु, वृद्धमनु और बृहन्मनुके नामसे 'उक्तंच' रूपमें उद्धृत किये हैं। इसके सिवाय सैकड़ों श्लोक क्षेपकरूपमें भी दिये हैं, जिनकी कुल्लूक भट्टने भी टीका नहीं की है।

हमारे जैनग्रन्थोंमें भी मनुके नामसे अनेक श्लोक उद्धृत किये गये हैं जो इस मनुस्मृतिमें नहीं है। उदाहरणार्थ स्वनामधन्य पं० **टोडरमलजी**ने अपने **मोक्षमार्गप्रकाशके** पाँचवें अधिकारमें मनुस्मृतिके तीन श्लोक दिये हैं, जो वर्तमान मनुस्मृतिमें नहीं हैं ×। इसी तरह '**द्विजवदनचपेट**' नामक दिगम्बर जैनग्रन्थमें भी मनुके नामसे ७ श्लोक उद्धृत हैं जिनमेंसे वर्तमान मनुस्मृतिमें केवल २ मिलते हैं, शेष ५ नहीं हैं।*

शुक्रनीति जो इस समय मिलती है उसके विषयमें तो विद्वानोंकी यह राय है कि वह बहुत पीछेकी बनी हुई है— पाँच छः सौ वर्षसे पहलेकी तो वह किसी तरह हो ही नहीं सकती। शुक्रका प्राचीन ग्रन्थ इससे कोई पृथक् ही था +। कौटिलीय अर्थशास्त्रमें लिखा है कि शुक्रके मतसे दण्डनीति एक ही राजविद्या है, इसीमें सब विद्यायें गर्भित हैं; परन्तु वर्तमान शुक्रनीतिका कर्त्ता चारों विद्याओंको राजविद्या मानता है—'**विद्याश्चतस्र एवैताः**' आदि (अ० १ श्लो० ५१)। अतएव इस शुक्रनीतिको शुक्रकी मानना भ्रम है।

इन सब बातों पर विचार करनेसे हम टीकाकार पर यह दोष नहीं लगा सकते कि उसने स्वयं ही श्लोक गढ़कर मनु आदिके नाम पर मढ़ दिये हैं। हम यह नहीं कहते कि वर्तमान मनुस्मृति उक्त टीकाकारके बादकी है, इस लिए उस समय यह न उपलब्ध होगी। क्योंकि टीकाकारसे भी पहले मूलकर्त्ता श्रीसोमदेवसूरिने भी मनुके बीसों श्लोक उद्धृत किये हैं और वे वर्तमान मनुस्मृतिमें मिलते हैं; अतएव टीकाकारके समयमें भी यह मनुस्मृति अवश्य होगी; परन्तु इसकी जो प्रति उन्हें उपलब्ध होगी, उसमें टीकोद्धृत श्लोकोंका रहना असंभव नहीं माना जा सकता। यह भी संभव है कि किसी दूसरे ग्रन्थकर्त्ताने इन श्लोकोंको मनुके नामसे उद्धृत किया हो और उस ग्रन्थके आधारसे टीकाकारने भी उद्धृत कर लिया हो। जैसे कि अभी मोक्षमार्गप्रकाशके या द्विजवदनचपेटके आधारसे उनमें उद्धृत किये हुए मनुस्मृतिके श्लोकोंको, कोई नया लेखक अपने ग्रन्थमें भी लिख दे।

याज्ञवल्क्यस्मृतिके श्लोकके विषयमें भी यही बात कही जा सकती है। अब रही शुक्रनीति, सो उसकी प्राचीनतामें तो बहुत ही संदेह है। वह तो इस टीकाकारसे भी पीछेकी रचना जान पड़ती है। इसके सिवाय शुक्रके नामसे तो टीकाकारने दो चार नहीं १७० के लगभग श्लोक उद्धृत किये हैं। तो क्या टीकाकारने वे सबके सब ही मूलकर्त्ताको नीचा दिखानेकी गरजसे गढ़ लिये होंगे? और मूलकर्त्ता तो इसमें अपनी कोई तौहीन ही नहीं समझते हैं। उन्होंने ही अपने यशस्तिलकमें न जाने कितने विद्वानोंके वाक्य और पद्य जगह जगह उद्धृत करके अपने विषयका प्रतिपादन किया है।

सोनीजीका दूसरा आक्षेप यह है कि टीकाकारने स्वयं ही बहुतसे सूत्र (वाक्य) गढ़कर मूलमें शामिल कर दिये हैं। विद्यावृद्धसमुद्देशके, नीचे लीखे २१ वें, २३ वे और २५ वे सूत्रोंको आप टीकाकर्त्ताका बतलाते हैं:—

१—"**वैवाहिकः शालीनो यायावरोऽघोरो गृहस्थाः॥**" २१

२—"**वालाखिल्य औदुम्बरी वैश्वानराः सद्यःप्रक्षल्यकश्चेति वानप्रस्थाः**" ॥ २३

× देखो मोक्षमार्गप्रकाशका बम्बईका संस्करण, पृष्ठ० २०१।

* 'द्विजवदनचपेट' संस्कृत ग्रन्थ है, कोल्हापुरके श्रीयुत पं० कलाप्पा भरमाप्पा निटवेने 'जैनबोधक' में और स्वतंत्र पुस्तकाकार भी, अबसे कोई १२-१४ वर्ष पहले, मराठी टीकासहित प्रकाशित किया था।

+ [illegible] गुजराती प्रेसकी शुक्रनीतिकी भूमिका।

३—" कुटीरकबहोदक -हंस-परमहंसा यतयः" ॥ २५

इसका कारण आपने यह बतलाया है कि मुद्रित पुस्तकमें और हस्तलिखित मूलपुस्तकमें ये सूत्र नहीं हैं। परन्तु इस कारणमें कोई तथ्य नहीं दिखलाई देता। क्योंकि—

१—जब तक दश पाँच हस्तलिखित प्रतियाँ प्रमाणमें पेश न की जासकें, तब तक यह नहीं माना जा सकता कि मुद्रित और मूलपुस्तकमें जो पाठ नहीं है वे मूलकर्त्ताके नहीं हैं-ऊपरसे जोड़ दिये गये हैं। इस तरहके हीन अधिक पाठ जुदी जुदी प्रतियोंमें अकसर मिलते हैं।

२—मूलकर्त्ताने पहले वर्णोंके भेद बतलाकर फिर आश्रमोंके भेद बतलाये हैं-ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और यति। फिर ब्रह्मचारियोंके उपकुर्वाण, नैष्ठिक, और क्रतुप्रद ये तीन भेद बतलाकर उनके लक्षण दिये हैं। इसके आगे गृहस्थ, वानप्रस्थ और यतियोंके लक्षण क्रमसे दिये हैं; तब यह स्वाभाविक और क्रमप्राप्त है कि ब्रह्मचारियोंके समान गृहस्थों, वानप्रस्थों और यतियोंके भी भेद बतलाये जाय और वे ही उक्त तीन सूत्रोंमें बतलाये गये हैं। तब यह निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि प्रकरणके अनुसार उक्त तीनों सूत्र अवश्य रहने चाहिए और मूलकर्त्ताने ही उन्हें रचा होगा। जिन प्रतियोंमें उक्त सूत्र नहीं हैं; उनमें उन्हें भूलसे ही छूटे हुए समझना चाहिए।

३—यदि इस कारणसे ये मूलकर्त्ताके नहीं हैं कि इनमें बतलाये हुए भेद जैनमतसम्मत नहीं हैं, तो हमारा प्रश्न है कि उपकुर्वाण, क्रतुप्रद आदि ब्रह्मचारियोंके भेद भी किसी जैनग्रन्थमें नहीं लिखे हैं, तब उनके सम्ब-न्धके जितने सूत्र हैं, उन्हें भी मूलकर्त्ताके नहीं मानने चाहिए। यदि सूत्रोंके मूलकर्ताकृत होनेकी यही कसौटी सोनीजी ठहरा देवें, तब तो इस ग्रन्थका आधेसे भी अधिक भाग टीकाकारकृत ठहर जायगा। क्योंकि इसमें सैकड़ों ही सूत्र ऐसे हैं जिनका जैनधर्मके साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है और कोई भी विद्वान् उन्हें जैनसम्मत सिद्ध नहीं कर सकता।

४—जिसतरह टीकापुस्तकमें अनेक सूत्र अधिक हैं और जिन्हें सोनीजी टीकाकर्ताकी गढ़न्त समझते हैं, उसी प्रकार मुद्रित और मूलपुस्तकमें भी कुछ सूत्र अधिक हैं (जो टीकापुस्तकमें नहीं हैं), तब उन्हें किसकी गढ़न्त समझ-नी चाहिए? विद्यावृद्धसमुद्देशके ५९ वे सूत्रके आगे निम्नलिखित पाठ छूटा हुआ है जो मुद्रित और मूलपुस्तकमें मौजूद है:—

" सांख्यं योगो लोकायतं चान्वीक्षिकी। बौद्धार्हतोः श्रुतेः प्रतिपक्षत्वात् (नान्वीक्षिकीत्वं), प्रकृतिपुरुषज्ञो हि राजा सत्त्वमवलम्बते। रजः फलं चाफलं च परिहरति, तमोभिर्नाभिभूयते।"

भला इन सूत्रोंको टीकाकारने क्यों छोड़ दिया? इसमें कही हुई बातें तो उसके प्रतिकूल नहीं थीं? और मुद्रित तथा मूलपुस्तक दोनों ही यदि जैनोंके लिए विशेष प्रामाणिक मानी जावें तो उनमें यह अधिक पाठ नहीं होना चाहिए था। क्योंकि इसमें वेदविरोधी होनेके कारण जैन और बौद्धदर्शनको आन्वीक्षिकीसे बाहर कर दिया है। और मुद्रित पुस्तकमें तो मूलकर्ताके मंगलाचरण तकका अभाव है। वास्तविक बात यह है कि न इसमें टीकाकारका दोष है और न मुद्रित करानेवालेका। जिसे जैसी प्रति मिली है उसने उसीके अनुसार टीका लिखी है और पाठ छपाया है। एक प्रतिसे दूसरी और दूसरीसे तीसरी इस तरह प्रतियां होते होते लेखकोंके प्रमादसे अकसर पाठ छूट जाते हैं और टिप्पण आदि मूलमें शामिल हो जाते हैं।

हम समझते हैं कि इन बातोंसे पाठकोंका यह भ्रम दूर हो जायगा कि टीकाकारने कुछ सूत्र स्वयं रचकर मूलमें जोड़ दिये हैं। यह केवल सोनीजीके मस्तककी उपज है और निस्सार है। खेद है कि हमें उनकी भ्रमपूर्ण टिप्पणियोंके कारण भूमिकाका इतना अधिक स्थान रोकना पड़ा।

एक विचारणीय प्रश्न।

इस आशासे अधिक बढ़ी हुई भूमिकाको समाप्त करनेके पहले हम अपने पाठकोंका ध्यान इस ओर विशेषरूपसे आकर्षित करना चाहते हैं कि वे इस ग्रन्थका जरा गहराईके साथ अध्ययन करें और देखें कि इसका जैनधर्मके साथ क्या सम्बन्ध है। हमारी समझमें तो इसका जैनधर्मसे बहुत ही कम मेल खाता है। राजनीति यदि धर्मनिरपेक्ष है, अर्थात् वह किसी विशेष धर्मका पक्ष नहीं करती, तो फिर इसका जिस प्रकार जैनधर्मसे कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है

उसी प्रकार और धर्मोंसे भी नहीं रहना चाहिए था । परंतु हम देखते हैं कि इसका वर्णाचार और आश्रमाचारकी व्यवस्थाके लिए वैदिक साहित्यकी ओर बहुत अधिक झुकाव है । इस ग्रन्थके विद्यावृद्ध, आन्वीक्षिकी और त्रयी समुद्देशोंको अच्छी तरह पढ़नेसे पाठक हमारे अभिप्रायको अच्छी तरह समझ जावेंगे । जैनधर्मके मर्मज्ञ विद्वानोंको चाहिए कि वे इस प्रश्नका विचारपूर्वक समाधान करें कि एक जैनाचार्यकी कृतिमें आन्वीक्षिकी और त्रयीको इतनी अधिक प्रधानता क्यों दी गई है ।

यशस्तिलकके नीचे लिखे पद्योंको भी इस प्रश्नका उत्तर सोचते समय सामने रख लेना चाहिए:—

द्वौ हि धर्मौ गृहस्थानां लौकिकः पारलौकिकः ।
लोकाश्रयो भवेदाद्यः परस्यादागमाश्रयः ॥
जातयोऽनादयः सर्वास्तत्क्रियापि तथाविधा ।
श्रुतिः शास्त्रान्तरं वास्तु प्रमाणं कात्र न क्षतिः ॥
स्वजात्यैव विशुद्धानां वर्णानामिह रत्नवत् ।
तत्क्रियाविनियोगाय जैनागमविधिः परम् ॥
यद्भवभ्रान्तिनिर्मुक्तिहेतुधीस्तत्र दुर्लभा ।
संसारव्यवहारे तु स्वतःसिद्धे वृथागमः ॥
तथा च— सर्व एव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः ।
यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र न व्रतदूषणम् ॥

कहीं श्रीसोमदेवसूरि वर्णाश्रमव्यवस्था और तत्सम्बन्धी वैदिक साहित्यको लौकिक धर्म तो नहीं समझते हैं ? और इसी लिए तो यह नहीं कहते हैं कि यदि इस विषय में श्रुति (वेद) और शास्त्रान्तर (स्मृतियां) प्रमाण माने जायँ तो हमारी क्या हानि है ? राजनीति भी तो लौकिक शास्त्र ही है ।

हमको आशा है कि विद्वज्जन इस प्रश्नको ऐसा ही न पड़ा रहने देंगे ।

मुद्रण–परिचय ।

अबसे कोई २५ वर्ष पहले बम्बईकी मेसर्स गोपाल नारायण कम्पनीने इस ग्रन्थको एक संक्षिप्त व्याख्याके साथ प्रकाशित किया था और लगभग उसी समय विद्याविलासी बड़ोदानरेशने इसके मराठी और गुजराती अनुवाद प्रकाशित कराये थे । उक्त तीनों संस्करणोंको देखकर—जिन दिनों मैं स्वर्गीय स्याद्वादवारिधि पं॰ गोपालदासजीकी अधीनतामें जैनमित्रका सम्पादन करता था—मेरी इच्छा इसका हिन्दी अनुवाद करनेकी हुई और तदनुसार मैंने इसके कई समुद्देशोंका अनुवाद जैनमित्रमें प्रकाशित भी किया; परन्तु इसके आन्वीक्षिकी और त्रयी आदि समुद्देशोंका जैनधर्मके साथ कोई सामञ्जस्य न कर सकनेके कारण मैं अनुवादकार्यको अधूरा ही छोड़ कर इसकी संस्कृत टीकाकी खोज करने लगा ।

तबसे, इतने दिनोंके बाद, यह टीका प्राप्त हुई और अब यह माणिकचन्द्रग्रन्थमालाके द्वारा प्रकाशित की जा रही है । खेद है कि इसके मध्यके २५–२६ पत्र गायब है और वे खोज करनेपर भी नहीं मिले । इसके सिवाय इसकी कोई दूसरी प्रति भी न मिल सकी और इस कारण इसका संशोधन जैसा चाहिए वैसा न कराया जा सका । दृष्टिदोष और अनवधानतासे भी बहुतसी अशुद्धियां रह गई हैं । फिर भी हमें आशा है कि मूलग्रन्थके समझनेमें इस टीकासे काफी सहायता मिलेगी और इस दृष्टिसे इस अपूर्ण और अशुद्धरूपमें भी इसका प्रकाशित करना सार्थक होगा ।

हस्तलिखित प्रतिका इतिहास ।

पहले जैनसमाजमें शास्त्रदान करनेकी प्रथा विशेषतासे प्रचलित थी । अनेक धनी मानी गृहस्थ ग्रन्थ लिखा लिखाकर जैनसाधुओं और विद्वानोंको दान किया करते थे और इस पुण्यकृत्यसे अपने ज्ञानावरणीय कर्मका निवारण करते थे । बहुतोंने तो इस कार्यके लिए लेखनशालायें ही खोल रक्खी थीं जिनमें निरन्तर प्राचीन अर्वाचीन ग्रन्थोंकी प्रतियाँ होती रहती थीं । यही कारण है जो उस समय मुद्रणकला न रहने पर भी ग्रन्थोंका यथेष्ट प्रचार रहता था और ज्ञानका प्रकाश मन्द नहीं होने पाता था । स्त्रियोंका इस ओर और भी अधिक लक्ष्य था । हमने ऐसे पचासों हस्तलिखित ग्रन्थ देखे हैं जो धर्मप्राणा स्त्रियोंके द्वारा ही दान किये गये हैं ।

इस शास्त्रदान प्रथाको उत्तेजित करनेके लिए उस समयके विद्वान् प्रायः प्रत्येक दान किये हुए ग्रन्थके अन्तमें दाताकी प्रशस्ति लिख दिया करते थे जिसमें उसका और उसके कुटुम्बका गुणकीर्तन रहा करता था। हमारे प्राचीन पुस्तक-भंडारोंके ग्रन्थोंमेंसे इस तरहकी हजारों प्रशस्तियोंका संग्रह की जा सकती है जिनसे इतिहास-सम्पादनके कार्यमें बहुत कुछ सहायता मिल सकती है।

नीतिवाक्यामृतटीकाकी यह प्रति भी जिसके आधारसे यह ग्रन्थ मुद्रित हुआ है इसी प्रकार एक धनी गृहस्थकी धर्मप्राणा स्त्रीके द्वारा दान की गई थी। ग्रन्थके अन्तमें जो प्रशस्ति दी हुई है, उससे मालूम होता है कि कार्तिक सुदी ५ विक्रमसंवत् १५४१ को, हिसार नगरके चन्द्रप्रभचैत्यालयमें, सुलतान बहलोल (लोदी) के राज्यकालमें, यह प्रति दान की गई थी।

नागपुर या नागौरके रहनेवाले खण्डेलवालवंशीय क्षेत्रपालगोत्रीय संघपति **कामा**की भार्या साध्वी **कमलश्री**ने हिसार निवासी पं० मेहा या मीहाको इसे भक्तिभावपूर्वक भेट किया था।

कल्हू नामक संघपतिकी भार्याका नाम **राणी** था। उसके चार पुत्र थे—**हंबा, धीरा, कामा** और **सुरपति**। इनमेंसे तीसरे पुत्र संघपति कामाकी भार्या उक्त साध्वी कमलश्री थी जिसने ग्रन्थ दान किया था। कमलश्रीसे **भीवा** और **चच्छूक** नामके दो पुत्र थे। इनमेंसे भीवाकी भार्या **भिउंसिरिके गुरुदास** नामक पुत्र था जिसकी **गुणश्री** भार्याके गर्भसे **रणमल्ल** और **जट्ट** नामके दो पुत्र थे। दूसरे **चच्छूक**की भार्या **चउसिरिके रावणदास** पुत्र था जिसकी स्त्रीका नाम **सरस्वती** था। पाठक देखें कि यह परिवार कितना बड़ा और कितना दीर्घजीवी था। कमलश्रीके सामने उसके प्रपौत्र तक मौजूद थे।

पण्डित मेहा या मीहाका दूसरा नाम पं० मेधावी था। ये वही मेधावी हैं जिन्होंने **धर्मसंग्रहश्रावकाचार** नामका ग्रन्थ बनाया है और जो मुद्रित हो चुका है। पं० मीहा अपनी गुरुपरम्पराके विषयमें कहते हैं कि नन्दिसंघ, बलात्कारगण और सरस्वतीगच्छके भट्टारक **पद्मनन्दि**के शिष्य भ० **शुभचन्द्र** और उनके शिष्य भ० **जिनचन्द्र** मेरे गुरु थे। जिनचन्द्रके दो शिष्य और थे—एक रत्ननन्दि और दूसरे विमलकीर्ति।

यह पुस्तकदाताकी प्रशस्ति पं० मेधावीकी ही लिखी हुई मालूम होती है। उन्होंने **त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति**, मूलाचारकी **वसुनन्दिवृत्ति** आदि ग्रन्थोंमें और भी कई बड़ी बड़ी प्रशस्तियाँ लिखी हैं। वसुनन्दि वृत्तिकी प्रशस्ति वि० सं० १५१६ की और त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति की १५१९ की लिखी हुई है *। धर्मसंग्रहश्रावकाचार उन्होंने कार्तिक वदी १३ सं० १५४१ को समाप्त किया है। नीतिवाक्यामृतटीकाकी यह प्रशस्ति धर्मसंग्रहके समाप्त होनेके कोई आठ दिन बाद ही लिखी गई है।

धर्मसंग्रहमें पं० मेधावीने अपने पिताका नाम **उद्धरण**, माताका **भीपुही** और पुत्रका **जिनदास** लिखा है। वे अग्रवाल जातिके थे और अपने समयके एक प्रसिद्ध विद्वान् थे। उन्होंने दक्षिणके पुस्तकगच्छके आचार्य **श्रुतमुनिसे** अन्य कई विद्वानोंके साथ **अष्टसहस्री** (विद्यानन्दस्वामीकृत) पढी थी। जान पड़ता है कि उस समय हिसारमें जैन विद्वानोंका अच्छा समूह था। भट्टारकोंकी गद्दी भी शायद वहीं पर थी।

यह टीकापुस्तक हिसारसे आमेरके पुस्तक भंडारमें कब और कैसे पहुँची, इसका कोई पता नहीं है। आमेरके भंडारमेंसे सं० १९६४ में भट्टारक महेन्द्रकीर्ति द्वारा यह बाहर निकाली गई और उसके बाद जयपुर निवासी पं० इन्द्रलालजी शास्त्रीके प्रयत्नसे हमको इसकी प्राप्ति हुई। इसके लिए हम भट्टारकजी और शास्त्रीजी दोनोंके कृतज्ञ हैं।

इस प्रतिमें १३३ पत्र हैं और प्रत्येक पृष्ठमें प्रायः २० पंक्तियाँ हैं। प्रत्येक पत्रकी लम्बाई ११॥ इंच और चौड़ाई ५॥ इंचसे कुछ कम है। ५१ से ७५ तकके पृष्ठ मौजूद नहीं हैं।

बम्बई।
पौषशुक्ला तृतीया १९७९ वि०।

निवेदक—
नाथूराम प्रेमी।

* देखो जैनहितैषी भाग १५, अंक ३-४।

[नोटः—' भारतीय वाङ्मय ' का जर्मन भाषामें विस्तृत और परिपूर्ण इतिहास लिखनेवाले प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् डॉ॰ विण्टरनिट्स्, जो वर्तमानमें बङ्गीय साहित्य सम्राट् कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर संस्थापित शांतिनिकेतनकी विश्व-भारती संस्थाको अपने ज्ञानका दान कर रहे हैं; उनके पास ' नीतिवाक्यामृत ' की १ प्रति अभिप्रायार्थ भेट की गई थी। इस भेटके स्वीकाररूपमें डॉ॰ महाशयने ग्रन्थमालाके मंत्री और इस प्रस्तावनाके लेखक श्रीयुत प्रेमीजीके पास जो एक पत्र भेजा है वह यहांपर मुद्रित किया जाता है। इससे, सोमदेवसूरिके नीतिवाक्यामृतके बारेमें डॉ॰ महाशयका कैसा अभिप्राय है वह थोडेमें ज्ञात हो जाता है। इस ग्रन्थके बारेमें, जैसा कि डॉ॰ महाशयने अपने इस पत्रमें सूचित किया है, विशेष उल्लेख, उन्होंने अपने भारतीय वाङ्मयके इतिहासके तीसरे भाग, (जो हालहीमें प्रकाशित हुआ है) पृ॰ ५०२७–५३० में किया है। —संपादक।

(Santiniketana, Birbhum, Bengal)
Srinagar (Kashmir) 25-4-23,

To Nathurama Premi, Mantri,
Manikachanda-Jaina Granthamala,
Bombay.

Dear Sir,

I beg to acknowledge the receipt of one copy of Nitivakyamritam Satikam, published in the Jaina Granthamala. As I have pointed out in the third volume of my 'History of Indian Literature,' the work is of the greatest importance both on account of its contents and especially as the date of its author is well known. Though quoting largely from the Kautilya Arthasastra, Somadeva is yet quite on original writer and treats his subject from a different point of view. The late Jainacharya Vijaya Dharma Suri had lent me a copy of the old edition of the book which is very rare. I often urged upon him the necessity of a new edition of this important work. I am very glad that the work is now accessible in such a handy and excelent edition, and I am very much obliged to you for sending me a copy.

It is a pity that the introduction is not in English or in Sanskrit, as few Europeans read the Vernacular.

Yours truly,
M. WINTERNITZ.

(शान्तिनिकेतन, वीरभूम बंगाल)
श्रीनगर (काश्मीर) ता. २५-४-२३

नाथूराम प्रेमी, मंत्री
माणिकचन्द्र जैन ग्रंथमाला मुंबई.

प्रिय महाशय,

आपकी जैन ग्रंथमालामें प्रकाशितक सटीक नीतिवाक्यामृतकी पुस्तक मुझे मिली। जैसा कि मैंने अपने ' भारतीय वाङ्मयका इतिहास ' नामक ग्रन्थके तीसरे भागमें लिखा है, यह ग्रन्थ, अन्दरके विषय और इसके कर्ताके समयकी दृष्टिसे बहुत महत्वका है। यद्यपि कौटिल्यके ग्रन्थका इसमें अनुसरण किया गया है तथापि सोमदेवसूरि स्वतंत्र लेखक हो कर विषय प्रतिपादनकी शैली उनकी निराली ही है। जैनाचार्य विजयधर्मसूरिने इस ग्रन्थकी अत्यंत दुर्लभ्य ऐसी एक प्रति मुझे दी थी और इस महत्त्वके ग्रन्थकी दूसरी आवृत्ति प्रकट करनी चाहिए ऐसा मैने आग्रह भी उनसे किया था। अब इस ग्रन्थकी सुन्दर आकारमें उत्तम रीतीसे प्रकट की हुई इस आवृत्तिको देख कर मुझे आनंद होता है और आपने जो इसकी एक प्रति मुझे भेजी इस लिए मैं आपका बहुत ही उपकृत हूं।

इसकी प्रस्तावना इंग्रेजी या संस्कृतमें नहीं लिखी गई इस लिए मुझे खेद होता है, क्यों कि देशभाषा जानने वाला युरपियन क्वचित् ही होता है।

आपका,
एम्. विंटरनित्स

कीर ग्रामनो जैन शिलालेख.

[पंजाब प्रांतना कांगडा जिल्लामां कीरग्राम करीने एक स्थान छे अने त्यां शिव-वैद्यनाथनुं प्राचीन अने प्रख्यात धाम छे. ए वैद्यनाथना मंदिरमां कोई जैन प्रतिमानुं पाषाणनुं सिंहासन क्यांएथी आवी गएलुं छे जेना उपर नीचे आपेलो लेख कोतरेलो छे. [1] ए लेख एपिग्राफिआ इंडिकाना, १ ला भागना, ११८ पान उपर डॉ० जी. बुल्हरे संक्षिप्त विवेचन साथे प्रकट करेलो छे. ए विवेचन अने लेख आ प्रमाणे छे.— संपादक]

नीचे आपेलो लेख कांगडानां कीरग्राममां आवेला शिव-वैद्यनाथना देवालयमांथी मळी आवेलो छे. ए लेख जैन नागरी अक्षरोमां बे लीटिओमां लखेलो छ. आ लीटिओ महावीरनी प्रतिमानी बेठकनी त्रण बाजुए चार मोटा अने बे नाना भागमां वहेंचाएली छे. लेख लगभग सारी स्थितिमां छे. एमां दोल्हण अने आल्हण नामना बे व्यापारिओए आ प्रतिमा बनाव्या विषे तथा देवभद्रसूरिए एनी प्रतिष्ठा कर्या विषे उल्लेख करेलो छे. वळी कीरग्राममां आ बंने भाईओए महावीरनुं एक मंदिर बंधाव्यानी नोंध पण एमां करेली छे. वर्तमानमां, कीरग्राममां कोई पण जूना जैन मंदिरनी हयाती जणाती नथी तेथी एम लागे छे के ए मंदिर नष्ट थई गयुं छे अने आ बेसणी कोईए त्यांथी उपाडी लाथी शिवना देवालयमां मूकी दीधी छे. ए देवालयना अधिकारिओनी अजाणताने लीधे आ लेख सही सलामत रहेवा पाम्यो होय एम लागे छे.

मूर्ति अने मंदिर बनावनारा गुजराती होवा जोईए; पंजाबी नहीं. प्रतिष्ठा करनार सूरि पण गुजरातना हता. कारण के दोल्हण अने आल्हण ब्रह्मक्षत्र गोत्र अगर ज्ञातिना हता के जे ज्ञाति गुजरातमां वधारे छे. १८८१ ना सेन्सस रीपोर्ट प्रमाणे पंजाबमां ते ज्ञाति जणाती नथी. सूरी देवभद्रनो गुजरात साथे संबंध तेमना गुरु अभयदेवना लीधे छे. आ अभयदेवने 'रुद्रपल्लीय' कहेवामां आवे छे; अने ते जिनवल्लभ सूरिनी शिष्यसंततिमांना हता. आ जिनवल्लभ ते खरतर गच्छनी पट्टावलीमां कहेला जे ४३ मां पट्टधर अने युगप्रधान पदधारी छे ते ज छे. तेओ एक नवो संप्रदाय जेने अहीं 'संतान' ना विशेषणथी उल्लेखेलो छे ते चलाव्या पछी वि. सं. ११६७ मां स्वर्गस्थ थया हता. तेमना पछी थएला आचार्य जिनदत्तना वखतमां खरतर गच्छनी रुद्रपल्लीय शाखानी स्थापना जिनशेखराचार्ये वि. सं. १२०४ मां करी हती. तेथी आ लेखमां जणावेला देवभद्रसूरि श्वेतांबर मतना खरतर गच्छनी एक शाखाना हता. जूनी परंपरा प्रमाणे खरतर गच्छनी स्थापना गुजरातना अणहिलवाड पाटणमां थई हती. लेखनी मिति 'संवत एटले वि. सं. १२९६ फाल्गुण वदि ५; रविवार' ते डॉक्टर स्क्रेम (Dr. Sohram) नी गणना प्रमाणे ई. स. १२४० नी १५ जान्यूआरी बराबर थाय छे. जनरल सर कनिंगहाम जेणे आ लेख प्रथम शोधी काढ्यो हतो तेमणे पोताना आर्किओलॉजिकल रीपोर्टस् (पु. ५ पान १८३) मां ए लेखनी जे नकल आपी छे, ते अधूरी छे. कारण के तेमां 'क्षेत्रगोत्रो' थी 'पुत्राभ्यां' अने 'प्रति-

---

[1] अहीं आपेली लेखनी नकल-पंजाब आर्किआलॉजिकल व्हर्से तरफथी मळेली एक सारी छाप उपरथी पाडेली छे.

[2] जुओ-क्लॅट (klata) इं. एं., पु. ११, पा० २४७ अने २५४.

ष्ठितं ' थी ' संतानीय ' सूधीनी बे लीटिओ मूकी दीधेली छे. आने लीधे तेमां ज केटलाक खोटा-पाठोने लीधे तेमनी नकल उपरथी भाषांतर करवुं केवळ अशक्य छे'.

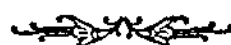
मू ळ ले ख

१. ओ० संवत् १२९६ वर्षे फाल्गुण वदि ५ रवौ कीरग्रामे ब्रह्मक्षत्र गोत्रोत्पन्न व्यव० मानू पुत्राभ्यां व्य० दोल्हण आल्हणाभ्यां स्वकारित श्रीमन्महावीर देव चैत्ये ॥

२. श्रीमहावीर जिन मूल बिंबं आत्मश्रेयो [र्थं] कारितं । प्रतिष्ठितं च श्रीजिनवल्लभ सूरि-संतानीय रुद्रपल्लीय श्रीमदभयदेवसूरि शिष्यैः श्रीदेवभद्र सूरिभिः ॥

भा षां त र

ॐ. (लौकिक) वर्ष १२९६ ना फाल्गुण वदि पंचमीने [दिवसे]—कीरग्राममां ब्रह्मक्षत्र ज्ञातिना व्यापारी मानूना बे पुत्रो व्यापारी दोल्हण अने आल्हणे पोते बंधावेला श्रीमन्महावीर देवना मन्दिरमां श्री महावीर जिननी मुख्य प्रतिमा, पोताना कल्याणमाटे करावी. तेनी प्रतिष्ठा श्रीजिनवल्लभ सूरिना ' संतानीय ' रुद्रपल्लीय श्रीमत्सूरि अभयदेवना शिष्य श्रीसूरि देवभद्रे करी.



३. जनरल कनिंगहाम कहे छे के शिववैद्यनाथना देवालयना इतिहास साथे आ लेखनो कांई संबंध नथी.

४. पंक्ति १ ली—ओं वांचवुं; कीरग्रामे ना र तथा म जोडेला छे ते मूल छे; ब्रह्म वांचवुं; ह्म नी उपर एक भूलथी करेल मात्र काढी नांखेल छे; कदाच 'मातृपुत्राभ्यां' खरो पाठ होय. कारण के त तथा न ओळखाय तेवा नथी. [पण ते बराबर नथी; ' मानू ' शब्द ज बराबर छे. कारण के तेनी पहेलां व्य०=व्यवहारी शब्द पडेलो छे जे मातृपुत्रा० पाठ लेतां निरर्थक अने असंबद्ध थई जाय छे–संपादक.]

५. पंक्ति २ जी–श्रेयोर्थ नो थ जतो रह्यो छे; संतानीय नो ता स्पष्ट नथी.

६. वर्षनुं भाषांतर लौकिक वर्ष करूं छुं, कारण के विक्रम संवत् पछी वर्षने बदले घणीवार लौकिक वर्ष वापरवामां आवे छे. पश्चिम तथा उत्तर पश्चिम हिंदुस्थानमां विक्रम संवत्‌ना वर्षोने लौकिक वर्षो कहे छे. अने शाक संवत्‌ने शास्त्रीय वर्षो कहे छे. कारण के ते ज्योतिष विगेरे विषयोमां आवे छे.

७. लेखमां जे फागुण लख्युं छे ते अर्ध प्राकृत अने अर्ध संस्कृत रूप छे.

८. मूल बिंब शब्दने भाषांतर कर्यां शिवाय ज हुं रहेवा दउं छुं. तेनो खास अर्थ शो छे तेनी खबर नथी. हुं धारुं छुं के बीजी नानी मोटी प्रतिमाओथी तेने खास ओळखावा माटे तेनुं नाम आवुं पाड्युं हशे. एनो अर्थ कदाच ' मुख्य प्रतिमा ' थई शके. [ए ज अर्थ थाय छे. सं०]

९. प्रतिष्ठितं च ए संस्कृतना नियम प्रमाणे शुद्ध नथी. पण जैन पुस्तकोमां ए घणां ठेकाणे जोवामां आवे छे. खरी रीते प्रतिष्ठापितं च अगर प्रतिष्ठा कृता च एवो पाठ जोईए.

महाकवि पुष्पदन्त और उनका महापुराण।

[अपभ्रंश भाषा का एक महाकवि और महान् ग्रन्थ।]

(लेखक—श्रीयुत पं. नाथूरामजी प्रेमी।)

भारत में अनेक शताब्दियों तक जो आर्य भाषायें प्रचलित रही हैं, वे सब प्राकृत कहलाती हैं। प्राकृत शब्द का अर्थ है स्वाभाविक—कृत्रिमता के दोष से रहित और संस्कृत का अर्थ है संस्कार की हुई मार्जित भाषा। वैदिक सूक्त जिस सरल और प्रचलित भाषा में लिखे गये थे, उस भाषा को प्राकृत ही कहना चाहिए। इस आदि प्राकृत भाषा से जिन सब आर्य भाषाओं का विकास हुआ है, उनकी गणना दूसरी श्रेणी की प्राकृत में होती है। यह द्वितीय श्रेणी की प्राकृत अशोक के शिलालेखों में मिलती है। बौद्धशास्त्रों की प्रधान भाषा पाली भी इसी दूसरी श्रेणी की प्राकृतों में से है। इस समय प्राकृत कहने से पाली की अपेक्षा उन्नत भाषा का बोध होता है।

अशोक के समय की आर्य भाषा की दो प्रधान शाखायें थीं, एक पश्चिमी प्राकृत और दूसरी पूर्वीय प्राकृत। पश्चिमी प्राकृत को सौरसेनी या सूरसेन (मथुरा) की भाषा कहते थे और पूर्वीय को मागधी या मगध की भाषा। इन दोनों पूर्वीय और पश्चिमी भाषाओं के बीचों बीच एक और भाषा बोली जाती थी जो अर्ध मागधी के नाम से प्रसिद्ध थी। कहा जाता है कि भगवान् महावीर ने इसी भाषा के द्वारा अपने सिद्धांतों का प्रचार किया था। प्राचीन जैन ग्रन्थ इसी भाषा में लिखे गये थे। प्राचीन मराठी के साथ इस भाषा का बहुत ही निकट सम्बन्ध है। प्राचीन प्राकृत काव्य इसी प्राचीन मराठी में लिखे गये हैं।

उक्त दूसरी श्रेणी की प्राकृत भाषाओं के बाद की भाषा अपभ्रंश कहलाती है। जो दूसरी श्रेणी की प्राकृत का पिछला और विशेष विकसित रूप है। यों अपभ्रंश का साधारण अर्थ दूषित या विकृत होता है; परन्तु भाषा के सम्बन्ध में प्रयुक्त होने पर इस का अर्थ उन्नत या विकसित होता है। वर्तमान प्रचलित आर्य भाषायें जिन भाषाओं से निकली हैं, उनकी गणना अपभ्रंश में होती है। इन अपभ्रंश भाषाओं में भी एक समय अनेकानेक ग्रन्थ लिखे गये थे जिनमें से बहुत से इस समय भी मिलते हैं। जान पड़ता है, इन भाषाओं का साहित्य बहुत प्रौढ़ हो गया था और सर्वसाधारण में बहुत ही आदर की दृष्टि से देखा जाता था। इस साहित्य में हम उस समय की बोलचाल की भाषाओं की अस्पष्ट छाया पा सकते हैं। विक्रम की सातवीं शताब्दि तक के अपभ्रंश साहित्य का पता लगा है। इसके बाद जान पड़ता है कि इस भाषा का प्रचार नहीं रहा। अपभ्रंश के पहले की प्राकृत भाषाओं का प्रचार दसवीं शताब्दि के बाद नहीं रहा।

उक्त अपभ्रंश भाषाओं की गणना दूसरी श्रेणी की ही प्राकृत में की जाती है। उनके बाद आधुनिक भाषाओं का काल आता है जिन्हें हम तीसरी श्रेणी की प्राकृत में गिनते हैं। इन भाषाओं का निदर्शन हम तेरहवीं शताब्दि के लगभग पाते हैं। अतएव मोटे हिसाब से कहा जा सकता है कि दशवीं शताब्दि से आधुनिक आर्य भाषाओं का प्रचलन आरम्भ हुआ है और अपभ्रंश से ही इन सब का विकास हुआ है। संक्षेप में प्राकृत भाषाओं का यही इतिहास है।

इस लेख में हम जिस महाकवि का परिचय देना चाहते हैं, उसकी रचना इन्हीं अपभ्रंश भाषाओं में की एक भाषा में हुई है जिसे हम दाक्षिण महाराष्ट्र की अपभ्रंश कह सकते हैं। दक्षिण की होने पर भी पाठक देखेंगे कि इसकी प्रकृति हमारी हिन्दी, गुजराती और राजस्थानी भाषाओं से कितनी मिलती जुलती हुई है।

हमें पुष्पदन्त से भी पहले के अपभ्रंश साहित्य के कुछ ग्रन्थ मिले हैं जिन का परिचय हम आगे के किसी अंक में देना चाहते हैं।

महाकवि पुष्पदन्त कहां के रहनेवाले थे, इसका पता नहीं लगता। उनके ग्रन्थों में जो कुछ लिखा है उसके अनुसार हम उन्हें सब से पहले मेलाड़ि नगर में जो संभवतः मान्यखेट का ही दूसरा नाम है, पाते हैं। वहां वे पृथ्वी पर भ्रमण करते हुए आ पहुंचते हैं और वहीं से उनके कवि-जीवन का प्रारम्भ होता है।

वे काश्यपगोत्रीय ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम केशव और माता का मुग्धादेवी था। एक जगह उन्होंने अपने पिता का नाम कन्हड़ लिखा है* जो केशव के ही पर्यायवाची शब्द कृष्ण का अपभ्रंश रूप है। 'खण्ड' यह शायद उनका प्रचलित नाम था जो उनके ग्रन्थों में जगह २ व्यवहृत हुआ है। अभिमानमेरु, काव्यरत्नाकर, कव्वपिसल्ल (काव्यपिशाच) या काव्यराक्षस, कविकुलतिलक, सरस्वतीनिलय आदि उनके उपनाम थे।

वे शरीर से कृश थे, कृष्णवर्ण थे, कुरूप थे परन्तु सदा प्रसन्नमुख रहते थे। उन्होंने आपको स्त्रीपुत्र हीन लिखा है; परन्तु संभव है यह उस समय की ही अवस्था का द्योतक हो जब वे मान्यखेटपुर में थे और अपने (उपलब्ध) ग्रन्थों को रचना कर रहे थे। इसके पहले जहां के वे रहनेवाले थे वहां शायद वे गृहस्थ रहे हों और विवाह आदि भी हुआ हो। यद्यपि अपने ग्रन्थों में उन्होंने अपना बहुत कुछ परिचय दिया है; परन्तु उससे यह नहीं मालूम होता है कि मान्य-खेट में आने के पहले उनकी क्या अवस्था थी और न यही स्पष्ट होता है कि वास्तव में उन्होंने अपनी जन्मभूमि क्यों छोड़ी थी। केवल यही मालूम होता है कि दुष्टों ने उनको अपमानित किया था और उन्हीं से संत्रस्त होकर वे भटकते भटकते बड़े ही दुर्गम और लम्बे रास्ते को तय करके मान्यखेट तक आये थे। उनके हृदय पर कोई बड़ी ही गहरी ठेस लगी थी और इस से उन्हें सारी पृथ्वी दुर्जनों से ही भरी हुई दिखलाई देती थी। लोगों की इस दुर्जनता का और संसार की नीरसता का उन्होंने अपने ग्रन्थों की उत्थानिकाओं में बार बार और बहुत अधिक वर्णन किया है। अपने समय को भी उन्होंने खूब ही कोसा है, उसे कलिमलमलिन, निर्दय, निर्गुण, दुर्नीतिपूर्ण और विपरीत विशेषण दिये हैं और कहा है कि "जो जो दीसई सो सो दुज्जणु, णिप्फलु नीरसु णं सुक्कउ वणु।" अर्थात् जो जो दिखते हैं वे सब दुर्जन हैं, सूखे हुए वन के समान निष्फल और नीरस हैं।

ऐसा जान पड़ता है कि वे किसी राजा के द्वारा सताये हुए थे और उसी के कारण उन्हें अपनी जन्मभूमि छोड़नी पड़ी थी। इसी कारण उन्होंने कई जगह राजाओं पर गहरे कटाक्ष किये हैं। उनके भ्रकुटित नेत्रों और प्रभुवचनों को देखने सुनने की अपेक्षा मर जाना अच्छा बतलाया है। वे भरत मंत्री से कहते हैं कि—"यह लक्ष्मी किस काम की जिसने ढुरते हुए चँवरों की हवा से सारे गुणों को उड़ा दिया है, अभिषेक के जल से सुजनता को धो डाला है, और जो विद्वानों से विरक्त रहती है। × × इस समय लोग नीरस और निर्विशेष हो गये हैं, वे गुणीजनों से द्वेष करते हैं, इसी लिए मुझे इस वन को शरण लेनी पड़ी है।"

* गंधव्वेकण्हडणं दणेण आयई भवाइं किय थिर मणेण।—यशोधरचरित्र।

जिस राजासे संत्रस्त होकर पुष्पदन्तकवि मान्यखेट में आये वह शायद वीरराव था। आदिपुराण के प्रभाचन्द्रकृत टिप्पण में इस शब्द पर 'शूद्रक' और 'कावीपति' टिप्पण दिया है और हमारी समझ में 'कांची' की जगह कावी लिपिकर्त्ता के दोष से लिख गया है ×। इस से मालूम होता है कि वीरराव कांची (काञ्जीवरम्) का राजा होगा और शूद्रक उसका नामान्तर होगा। यह संभवतः पल्लववंशका था। आदिपुराणकी उत्थानिका के 'णिय सिरि विसेस' और 'पइमएणइ' आदि दो पद्यों का अभिप्राय अच्छी तरह स्पष्ट नहीं होता है, फिर भी ऐसा भास होता है कि पुष्पदन्त का उक्त वीरराव से पहले सम्बन्ध था और उस के सम्बन्ध में उस ने कुछ काव्य रचना भी की थी। शायद इसी कारण भरतमंत्री ने पुष्पदन्त से कहा है कि वीरराव का वर्णन करने से जो मिथ्यात्व भाव उत्पन्न हुआ है, उस के प्रायश्चित्तस्वरूप यदि तुम आदिनाथ के चरित की रचना करो तो तुम्हारा परलोक सुधर जाय *। जान पड़ता है कि वीरराव कोई दुष्ट और जैनधर्म का द्वेषी राजा था।

पुष्पदन्त भ्रमण करते करते मान्यखेट के बाहर किसी उद्यान में पड़े हुए थे। वहां अम्मइय और इन्द्रराज नामक दो पुरुषों ने आकर उनसे कहा कि आप इस निर्जन स्थान में क्यों पड़े हुए हैं, पास ही यह बड़ा नगर है वहां चलिए। वहां शुभतुंगराजा के महामात्य भरत बड़े विद्याप्रेमी और कवियों के लिए कामधेनु हैं। भरत की लोकोत्तर प्रशंसा सुन कर पुष्पदन्त नगर में गये। वहां भरतमंत्री ने उनका बहुत ही सत्कार किया और उन्हें अपने पास रक्खा। कुछ दिनों के बाद भरत ने उन से काव्यरचना करने के लिए कहा। इस पर कवि ने कहा कि यह समय बहुत बुरा है। संसार दुर्जनों से भरा हुआ है। जहां तहां छिद्रान्वेषी ही दिखलाई देते हैं। प्रवरसेन के सेतुबन्ध जैसे उत्कृष्ट काव्य को भी जब लोग निन्दा करते हैं, तब मुझे इस कार्य में कीर्ति कैसे मिलेगी? इस पर भरत ने कहा कि दुर्जनों का तो यह स्वभाव ही है, उल्लू को सूर्य भी अच्छा नहीं लगता। उनकी आप को परवा न करनी चाहिए। इस के उत्तर में कवि ने अपनी लघुता प्रकट की और कहा कि मैं दर्शन, व्याकरण, काव्य, छन्दशास्त्र आदि के ज्ञान से कोरा हूं, ऐसी दशा में मुझ से महापुराण की रचना कैसे होगी, यह तो समुद्र को एक कूंडे में भरने जैसा अशक्य कार्य है, फिर भी आप के आग्रह से और जिन भक्ति वश मैं इस की रचना में प्रवृत्त होता हूं, मधुकर जैसा क्षुद्र प्राणी भी विशाल आकाश में भ्रमण कर सकता है।

उक्त सब बातें आदिपुराण की उत्थानिका से ली गई हैं। इस के बाद उत्तरपुराण का प्रारंभ होता है। उस समय कविराज का चित्त उद्विग्न हो उठा। रचना से उन का जी उचट गया। तब एक दिन सरस्वती देवी ने उन्हें स्वप्न में दर्शन दिया और कहा कि अरिहंत भगवान् को नमस्कार करो। यह सुनते ही कविराज जाग उठे। उन्हों ने चारों ओर देखा; परन्तु कहीं कोई भी दिखलाई न दिया। बड़ा आश्चर्य हुआ। इस के बाद भरतमंत्री उन से मिले। उन्हों ने कहा कि, क्या आप सचमुच ही पागल हो गये हैं? आप का मुख उतरा हुआ है, चित्त ठिकाने नहीं है। ग्रन्थरचना क्यों नहीं करते? क्या मुझसे आप का कोई अपराध बन पड़ा? क्या बात है। मैं हाथ जोड़ कर प्रार्थना करता हूँ। मैं आपका चाहा हुआ सब कुछ देने के लिए तैयार हूँ। यह जीवन अस्थिर और असार है। जब आप को सरस्वती कामधेनु सिद्ध है, तब आप उसका नवरसरूप दूध क्यों नहीं दोहते? इस पर कविराज ने फिर वही समय

× पुरानी लिपि में 'व' और 'च' लगभग एक से लिखे जाते हैं और इस कारण पीछे के लेखकों ने इन दोनों के भेद को अच्छी तरह न समझने के कारण अकसर 'च' को 'व' लिखा है।

* पई मण्णिउं वण्णिउं वीर राउ, उप्पण्णउं जो मिच्छत्त भाउ।
पच्छित्तु तासु जइ करहि अज्ज, ता घडइ तुज्झ परलोयकज्जु॥

की और दुर्जनों की शिकायत की और कहा कि इस कारण मुझ से एक पद भी नहीं लिखा जाता है। अन्त में उन्हों ने कहा कि फिर भी मैं तुम्हारी प्रार्थना को नहीं टाल सकता। तुम मेरे मित्र हो और शालिवाहन तथा श्रीहर्ष से भी बढ़कर विद्वानों का आदर करनेवाले हो। तुमने मुझे सदा प्रसन्न रक्खा है। परन्तु जो यह कहा कि मैं सब कुछ देने के लिए तैयार हूँ, सो मैं तुम से अकृत्रिम धर्मानुराग के सिवाय और कुछ भी नहीं चाहता हूँ। धन को मैं तिनके के समान गिनता हूँ। मेरा कवित्व केवल जिनचरणों की भक्ति से ही प्रस्फुटित होता है— जीविका की मुझे जरा भी परवा नहीं है। ये सब बातें कविने उत्तरपुराणकी उत्थानिका में प्रकट की हैं।

पुष्पदन्त दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के अनुयायी थे; परन्तु वे अपने किसी गुरु का कहीं कोई उल्लेख नहीं करते हैं। इसका कारण यही हो सकता है कि वे गृहत्यागी साधु नहीं थे। यह भी संभव है कि पहले वे वेदानुयायी रहे हों और पीछे किसी कारण से जैनधर्म पर उनकी श्रद्धा हो गई हो, अथवा भरतमंत्री के संसर्गसे ही वे जैनधर्म के उपासक बन गये हों, किसी जैन साधु या मुनिसे उनका परिचय न हुआ हो। उन्होंने अपने को जगह जगह जिनपदभक्त, धर्मासक्त, व्रतसंयुक्त (व्रतीश्रावक) और विगलितशंक (शंका रहित सम्यग्दृष्टी) आदि विशेषण दिये हैं, इस लिए उनके दृढ़ जैन होने में कोई सन्देह नहीं हो सकता। अपने ग्रन्थों में जैनधर्म के तत्त्वों का भी उन्होंने बड़ी योग्यतासे प्रतिपादन किया है।

पुष्पदन्त का स्वभाव एक विचित्र ही प्रकार का मालूम होता है। उनका 'अभिमानमेरु' नाम उनके स्वभाव को और भी विशेषता से स्पष्ट करता है। 'मान' के सिवाय वे और किसी चीज के भूखे नहीं जान पड़ते। एक बड़े भारी राजा के वैभवशाली मन्त्री का आश्रय पाकर भी वे धन वैभव से अलिप्त ही रहे जान पड़ते हैं। महापुराण के अन्त में उन्होंने अपने लिये जो विशेषण दिये हैं, वे ध्यान देने योग्य हैं—शून्यभवन और देवकुलिकाओं में रहनेवाले, विना घर-द्वार के, स्त्री-पुत्र रहित, नदी वापी और तालाबों में स्नान करनेवाले, फटे कपड़े और वल्कल पहिननेवाले, धूलिधूसरित, जमीन पर सोनेवाले तथा अपने हाथों को ही ओढ़ना बनानेवाले, और समाधि मरण की आकांक्षा रखनेवाले। ये विशेषण इस आकिञ्चन महाकवि के चित्र को आँखों के सामने खड़ा कर देते हैं।

सचमुच ही पुष्पदन्त अद्भुत कवि थे। वे अपने हृदय के आवेगों को रोक नहीं सकते हैं। वे जिसे हृदय से चाहते हैं उसकी प्रशंसा के पुल बांध देते हैं और जिससे घृणा करते हैं उस की निन्दा करने में भी कुछ उठा नहीं रखते। अपनी प्रशंसा करने में भी उनकी कविता का प्रवाह स्वच्छन्द गति से प्रवाहित हुआ है। इस प्रशंसा के औचित्य अनौचित्य का विचार भी उनका स्वेच्छाचारी कविहृदय नहीं कर सका है। जी खोलकर उन्होंने अपनी प्रशंसा की है। संभव है, इस समय की दृष्टि से वह ठीक मालूम न हो; परन्तु उन की सरस और सुन्दर रचना को देखते हुए तो उस में कोई अत्युक्ति नहीं जान पड़ती।

पुष्पदन्तने अपना आदिपुराण सिद्धार्थसंवत्सर में लिखना शुरू किया था जिस समय तुडिगु नाम के राजा राज्य करते थे और उन्होंने किसी चोल राजा का मस्तक काटा था। इस 'तुडिगु' शब्द पर इस ग्रन्थ की प्रायः सभी प्रतियों में 'कृष्णराजः' टिप्पणी दी हुई है। इसी ग्रन्थ में उक्त राजा का एक जगह 'शुभतुंगदेव' और दूसरी जगह 'भैरवनरेन्द्र' नाम से उल्लेख किया गया है और दोनों जगह उक्त नामों पर टिप्पणी दे कर 'कृष्णराजः' लिखा है। इसी तरह यशोधर चरित्र में 'वल्लभनरेन्द्र' नाम से उल्लेख किया है और वहां भी टिप्पणी में 'कृष्णराजः' लिखा है। अर्थात् तुडिगु, शुभतुंगदेव, भैरवनरेन्द्र, वल्लभनरेन्द्र और कृष्णराज ये पाँचों एक ही

राजा के नाम हैं और इन्हीं के समय में पुष्पदन्तने अपने ग्रन्थों की रचना की है। एक जगह तुडिग को 'भुवनैकराम' विशेषण दिया है, जो कि उसकी एक विरुद थी। इसके सिवाय उसे 'राजाधिराज' लिखा है। आदिपुराण के २७ वें परिच्छेद के प्रारंभ में भरतमन्त्री की प्रशंसा करते हुए उसे 'भारत' (महाभारत) की उपमा दी है:—"गुरु धर्मोद्भवपावनमभिनन्दित-कृष्णार्जुनगुणोपेतं। भीमपराक्रमसारं भारतमिव भरत तव चरितम्॥" इसका 'अभिनन्दित कृष्णार्जुनगुणोपेतम्' विशेषण निश्चय से कृष्णराज को लक्ष्य करके ही लिखा गया है।

उत्तरपुराण के अन्त में ग्रन्थ के समाप्त होने का समय संवत् ६०६, आसाढ़ सुदी १०, क्रोधनसंवत्सर लिखा है। क्रोधनसंवत्सर से ६ वर्ष पहले सिद्धार्थसंवत्सर आता है, अतः आदिपुराण की रचना का समय संवत् ६०० होना चाहिए। दक्षिण में शक संवत् का ही प्रचार अधिक रहा है, अतएव उक्त ६०० और ६०६ को शक संवत् ही मानना चाहिए।

उत्तरपुराण की प्रशस्ति से मालूम होता है कि उक्त ग्रन्थ मान्यखेट नगर में बनाया गया था, जो इस समय मालखेड नाम से प्रसिद्ध है और निजाम के राज्य में है। उत्तरपुराण के ५०. वें परिच्छेद के प्रारंभ में लिखा है:—

दीनानाथधनं सदाबहुजनं प्रोत्फुल्लवल्लीवनम्,
मान्याखेटपुरं पुरंदरपुरीलीलाहरं सुन्दरम्।
धारानाथनरेन्द्रकोपशिखिना दग्धं विदग्धप्रियम्,
क्वेदानीं वसतिं करिष्यति पुनः श्री पुष्पदन्तः कविः॥

इससे मालूम होता है, शक संवत् ६०० और ६०६ के बीच में किसी समय धारानगरी के किसी राजा ने इस बड़े भारी वैभवशाली नगर को बरबाद किया था।

पुष्पदन्तने अपना महापुराण पूर्वोक्त शुभतुंग या कृष्णराज के महामात्य भरत के आग्रह से और यशोधर चरित भरतमंत्री के पुत्र णण्ण या णण्णराज के लिए कर्णाभरणस्वरूप बनाया है। णण्ण भी अपने पिता के सदृश वल्लभनरेन्द्र या कृष्णराज का महामात्य हो गया था। भरत और णण्ण की पुष्पदन्तने बहुत ही प्रशंसा की है और उन के लोकोत्तर गुणों का वर्णन किया है। महापुराण के सब मिलाकर १०२ परिच्छेद हैं, जिन में से कोई ४० परिच्छेदों के प्रारंभ में पुष्पदन्त ने भरतमंत्री की प्रशंसा के सूचक सुन्दर संस्कृत पद्य दिये हैं जिन्हें हमने इस लेख के अन्त में उध्दृत कर दिया है। उन्हें पढ़ने से पाठकों को भरत की महिमा का बहुत कुछ परिचय हो जायगा। इसी तरह यशोधर चरित के चार परिच्छेदों में णण्णराज की प्रशंसा के जो पद्य हैं, वे भी उध्दृत कर दिये गये हैं।

उक्त प्रशस्ति-पद्यों के सिवाय पुष्पदन्तने आदि और उत्तरपुराण की उत्थानिकाओं में भरत-मंत्री को निःशेष कलाविज्ञानकुशल, प्राकृतकविकाव्यरसावलुब्ध, अमत्सर, सत्यप्रतिज्ञ, योद्धा परस्त्रीपराङ्मुख, त्यागभोगभावोद्गमशक्तियुक्त, कविकल्पवृक्ष आदि अनेक विशेषण दिये हैं।

यशोधरचरित में भरत के पुत्र नन्न का गोत्र कौण्डिण्य बतलाया है। अतः संभवतः ये ब्राह्मण ही होंगे; परन्तु जैनधर्म के प्रगाढ़ भक्त थे। भरत के पिता का नाम ऐयण या अण्णय्या और माता का श्रीदेवी था। उन के सात पुत्र थे—१ देवल्ल, २ भोगल्ल, ३ णण्ण, ४ सोहण, ५ गुणवर्म, ६ दंगइया, और ७ संतइया। इन में तीसरा पुत्र णण्ण था, और भरत के बाद, इसी ने महामात्य या प्रधान-मंत्री के पद को सुशोभित किया था। आदिपुराण के ३४ वें परिच्छेद के प्रारंभ में नीचे लिखा हुआ एक संस्कृत पद्य दिया है:—

तीव्रापद्दिवसेषु बन्धुरहितेनैकेन तेजस्विना
सन्तानक्रमतो गतापि हि रमाऽऽकृष्टा प्रभोः सेवया ।
यस्याचारपदं वदन्ति कवयः सौजन्यसत्यास्पदं
सोऽयं श्रीभरतो जयत्यनुपमः काले कलौ साम्प्रतम् ॥

अर्थात् बड़ी ही विपत्ति के दिनों में जिस अकेले और बन्धुरहित तेजस्वी ने सन्तानक्रम से चली गई हुई भी लक्ष्मी को अपने प्रभु की सेवा से फिर आकृष्ट कर ली और कविगण जिस के चारित्र को सौजन्य और सत्य का स्थान बतलाते हैं, वह भरत इस कलिकाल में अपनी जोड़ नहीं रखता।

इससे जान पड़ता है कि भरत के पूर्वजों के हाथ से उक्त मंत्रीपद चला गया था और उसे भरत ने ही अपनी योग्यता से फिर से प्राप्त किया था। अपनी पूर्वावस्था में उन्होंने बड़ी विपत्ति भोगी थी और उस समय उन का कोई बन्धु या सहायक नहीं था।

यशोधरचरित की रचना महापुराण के कितने समय बाद हुई, इस के जानने का कोई साधन नहीं है। यशोधरचरित में समय सम्बन्धी कोई उल्लेख नहीं है; परन्तु यह निश्चय है कि उस समय राजसिंहासन को वल्लभनरेन्द्र या कृष्णराज ही सुशोभित करते थे। हाँ, मंत्री का पद भरत के पुत्र णण्ण को मिल गया था। णण्ण के उस समय कई पुत्र भी मौजूद थे जिन को यशोधरचरित्र के दूसरे परिच्छेद के प्रारंभ में आशीर्वाद दिया गया है। मालूम नहीं उस समय भरत जीते थे या नहीं। महापुराण जिस समय बनाया गया है उस समय पुष्पदन्त—भरत के ही घर रहते थे—"देवीसुअ सुदणिहि तेण हउं णिलए तुहारए अच्छमि।" ६७ वें परिच्छेद के प्रारंभ में कहा है:—

इह पठितमुदारं वाचकैर्गीयमानं इह लिखितमजस्रं लेखकैश्चारुकाव्यम् ।
गतवति कविमित्रे मित्रतां पुष्पदन्ते भरत तव गृहेऽस्मिन्भाति विद्याविनोदः ॥

इस से भी आभास मिलता है कि कविराज भरत के ही गृह में रहते थे और उन का काव्य वहीं पढ़ा, गाया और लिखा जाता था।

इस के बाद यशोधरचरित जब लिखा गया है, तब वे णण्ण के ही घर रहते थे—"णण्णहु मंदिरणिवसंतु संतु, अहिमाणमेरु कविपुष्फयंतु।" परन्तु इसी ग्रन्थ के अन्त में लिखा है कि गन्धर्व (नगर ?) में कन्हड़ (केशव) के पुत्र ने पूर्वभवों का वर्णन स्थिर मन होकर किया—"गंधव्वें कण्हडणंदणेण" इत्यादि। तब क्या यह गन्धर्व नगर कोई दूसरा स्थान है ? संभव है, यह मान्यखेटका ही दूसरा नाम हो अथवा कोई दूसरा स्थान हो जहाँ कुछ समय टिककर कविने ग्रन्थ का उक्त अंश लिखा हो। यह भी संभव है कि णण्ण के महल का ही नाम गन्धर्व या गन्धर्वभवन हो।

यशोधरचरित जिस समय समाप्त हुआ है उस समय कोई बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ा था जिस का वर्णन कविने इन शब्दों में किया है—'जगह जगह मनुष्यों की खोपड़ियां और ठठरियां पड़ी थीं, रंक ही रंक दिखलाई पड़ते थे। बड़ा भारी दुष्काल था। ऐसे समय में भी णण्णने मुझे रहने को अच्छा स्थान, खाने को सरस आहार, पहिनने को स्वच्छ वस्त्र देकर उपकृत किया।" जान पड़ता है यह घटना उस समय की होगी; जब धारानरेशने मान्यखेट को लूट कर बरबाद कर दिया था। ऐसी सैनिक लूटों के बाद अक्सर दुर्भिक्ष पड़ा करते हैं।

महापुराण में कविने नीचे लिखे ग्रन्थकारों और ग्रन्थों का उल्लेख किया है। कवि के समय निरूपण में इन नामों से बहुत सहायता मिल सकती है—

१ अकलंक, २ कपिल, ३ कणचर या कणाद, ४ द्विज (ब्राह्मण), ५ सुगत (बौद्ध), ६ पुरन्दर (चार्वाक), ७ दत्तिल, ८ विशाख, ९ लुद्धाचार्य, १० भरत (नाट्य शास्त्र कर्त्ता), ११ पतंजलि (व्याकरण भाष्यकार), १२ इतिहासपुराण, १३ व्यास, १४ कालिदास, १५ चेतुर्मुख स्वयंभू, १६ श्रीहर्ष, १७ द्रोण, १८ कवि ईशान बाण, १९ धवल जय धवल सिद्धान्त, २० रुद्रट, २१ न्यासकार, और २२ जसचिन्ह (प्राकृत लक्षण कर्त्ता), २३ जिनसेन, २४ वीरसेन।

यशोधर चरित के अन्त में केवल एक ही ग्रन्थकार कवि 'वच्छराय' (वत्सराज) का उल्लेख किया गया है जिस के कथासूत्र के आधार पर उक्त चरित की रचना की गई है— "महु दोसु ण दिज्जइ पुव्वे कइइ कइवच्छराय तं सुत्तु लइइ।" यह तो कहने की आवश्यकता नहीं कि ये वच्छराय कोई जैनकवि ही थे। क्योंकि यशोधर की कथा जैनसाहित्य की ही चीज है।

उत्तरपुराण के अन्त में महावीर भगवान् के निर्वाण के बाद की गुरुपरम्परा दी गई है। उसमें लोहाचार्य तक की परम्परा त्रिलोकप्रज्ञप्ति, जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति, गुणभद्रकृत उत्तरपुराण, इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतार के ही समान है। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में जहां जसबाहु नाम है, वहां इसमें भद्रबाहु है। एक बड़ा भारी अन्तर यह है कि इसमें गोवर्धन के बाद भद्रबाहु का नाम ही नहीं है, साथ उसके बदले कोई दूसरा नाम भी नहीं दिया है। इतिहासज्ञों के लिए यह बात खास ध्यान देने योग्य है। सब के बाद इसमें जिनसेन और वीरसेन का नाम दिया हुआ है, जो आचारांग के एकदेश के ज्ञाता थे। जान पड़ता है ये जिनसेन संस्कृत आदिपुराण के कर्त्ता से भिन्न हैं।

आदिपुराण (पुष्पदन्तकृत) के पांचवे परिच्छेद में नीचे लिखे देशों के नाम दिये हैं जिन्हें भगवान् ऋषभदेव ने बसाया था—

पल्लव, सैन्धव (सिन्ध), कौंकण, कौशल, टक्क, आभीर, कीर, खस, केरल, अंग, कलिंग, वंग, जालंधर, वत्स, यवन, कुरु, गुर्जर, वर्बर, द्रविड, गौड, कर्णाट, वराडिव (वैराट?), पारस, पारियात्र, पुन्नाट, सूर, सोरठ, विदेह, लाड, कोंग, वेंगि, मालव, पांचाल, मगध, भट्ट, भोट (भूटान), नेपाल, ओण्ड्र, पौण्ड्र, हरि, कुरु, बंगाल।

पुष्पदन्त के बनाये हुए दो ग्रन्थ हमें प्राप्त हुए हैं, एक तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकार जिस का दूसरा नाम महापुराण है और जिसके आदिपुराण और उत्तरपुराण ये दो भाग हैं। इसकी श्लोकसंख्या १३ हजार के लगभग है और इसमें सब मिलाकर १०२ परिच्छेद हैं। आदिपुराण में प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ का और उत्तरपुराण में शेष २३ तीर्थंकरों का और अन्य शलाका-पुरुषों का चरित्र है। उत्तरपुराण में पद्मपुराण और हरिवंशपुराण भी शामिल हैं और ये पृथक् रूप में भी अनेक पुस्तकभण्डारों में मिलते हैं। पुष्पदन्त का दूसरा ग्रन्थ यशोधर चरित है जिस के चार परिच्छेद हैं और छोटा है। इसमें यशोधर नामक राजा का चरित्र वर्णित है जो कोई पुराण पुरुष था।

उक्त दो ग्रन्थों के सिवाय नागकुमार चरित नाम का एक ग्रन्थ है जो कारंजा (बरार) के पुस्तकभण्डार में है और जिस के प्राप्त करने के लिए हम प्रयत्न कर रहे हैं।

---

१ यह एक जैन कवि है। इस के बनाये हुए दो ग्रन्थ हमें प्राप्त हुए हैं—'पउमचरिय' या रामायण जिसके पिछले कुछ सर्ग उस के पुत्र त्रिभुवन स्वयंभुदेवने पूर्ण किए हैं और दूसरा हरिवंशपुराण जिस का उद्धार विक्रम की १६ वीं शताब्दि के एक दूसरे विद्वान्ने किया है। शायद इसका अधिकांश नष्ट हो गया था। ये दोनों ग्रन्थ अपभ्रंश भाषा में ही हैं। इनका विस्तृत परिचय शीघ्र ही दिया जायगा।

हमें सब से पहले बंबई के सुप्रसिद्ध सेठ सुखानन्दजी की कृपा से पुष्पदन्त का आदिपुराण देखने को मिला और उसी को देखकर हमें इस कवि का परिचय लिखने का उत्साह हुआ। सेठजी इस ग्रन्थ को फतेहपुर (जयपुर) के सरस्वतीभण्डार से लाये थे। उक्त सरस्वतीभण्डार का यह ८६ वें नम्बर का ग्रन्थ है और बहुत ही शुद्ध है। उसमें कहीं कहीं टिप्पणी भी दी है, वि० संवत्१५२८ का लिखा हुआ है उसमें प्रति करानेवाले की एक विस्तृत प्रशस्ति दी हुई है जो उपयोगी समझ कर इस लेख के परिशिष्ट में दे दी गई है।

इस ग्रन्थ की दो प्रतियां हमें पूने के भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टिटयूट में मिलीं जिनमें से एक वि० सं० १८९५ की लिखी हुई है* और दूसरी वि० सं० १८८३ की लिखी हुई है×। इस ग्रन्थ का एक टिप्पण भी हमें उक्त संस्था में मिला जो प्रभाचन्द्र कृत है और जिसकी श्लोकसंख्या ११५० है*। इसमें प्रति लिखने का और टिप्पणकार का समय आदि नहीं दिया है।

इसके बाद उक्त इन्स्टि० में हमें उत्तरपुराण की भी एक शुद्धप्रति मिल गई जो बहुत ही शुद्ध है और सं० १६३० की लिखी हुई है। इस पर यत्र तत्र टिप्पणियां भी दी हुई हैं× ।

यशोधर चरित की एक प्रति हमें बंबई के तेरहपन्थी मन्दिर के पुस्तकभण्डार से प्राप्त हुई जो बहुत ही पुरानी है अर्थात् १३९० की लिखी हुई है और प्रायः शुद्ध है, और दूसरी भाण्डारकर इन्स्टि० से, जो वि० संवत् १६१५ की लिखी हुई है†।

इस इन्स्टिटयूट में हरिवंशपुराण की भी एक बहुत ही शुद्ध, टिप्पणयुक्त, और प्राचीन प्रति है, मिलान करने से मालूम हुआ कि यह उत्तरपुराण का ही एक अंश है। ÷

पुष्पदन्त के ग्रन्थ पूर्वकाल में बहुत प्रसिद्ध रहे हैं और इस कारण उनकी प्रतियां अनेक भण्डारों में मिलती हैं। उन पर टिप्पणपंजिकायें और टिप्पणग्रन्थ भी लिखे गये हैं और तलाश करने से अब भी प्राप्त हो सकते हैं। जयपुर के पाटोदी के मन्दिर में उत्तरपुराण का एक टिप्पण ग्रन्थ है जिसके कर्त्ता श्रीचन्द्र (?) मुनि मालूम होते हैं और जो विक्रम संवत् १०८०में भोजदेव के राज्य में बनाया गया है।० जयपुर के बाबा दुलीचन्दजो के भण्डार में पुष्पदन्त के प्रायः सभी ग्रन्थों की पंजिकायें हैं; आगरे के मोतीकटरे के मन्दिर में उत्तरपुराण की पंजिका है। प्रयत्न करने पर भी हम इन्हें प्राप्त नहीं कर सके।

इस समय हम पुष्पदन्त के नागकुमार चरित और उनके ग्रन्थों की पंजिकाओं को प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं। उनके मिल जाने पर आगामी अंक में पुष्पदन्त का समय निर्णय किया जायगा और उनके ग्रन्थों में जिन जिन व्यक्तियों का उल्लेख हुआ है उन सब के समय पर विचार करके निश्चित किया जायगा कि वास्तव में पुष्पदन्त के ग्रन्थ कब बने हैं।

आगामी अंक में पुष्पदन्त की भाषा और उनके कवित्व की भी आलोचना करने का विचार है।

परिशिष्ट में पुष्पदन्त के ग्रन्थों के वे सब अंश दे दिये गये हैं जो महत्वपूर्ण हैं और जिनके आधार से यह लेख लिखा गया है। अधिक प्रयोजनीय अंशों का अनुवाद भी टिप्पणी में दे दिया है।

इस लेख के तैयार करने में श्रीमान् मुनिमहोदय जिनविजयजी से बहुत अधिक सहायता मिली है। इसकी बहुत कुछ सामग्री भी उन्हीं की कृपा से प्राप्त हुई है, अतएव मैं उनका बहुत ही कृतज्ञ हूं।

---

* नं. ११३९ आफ १८९१–९५। × नं. १०५० आफ १८८७–९१।

* नं. ५६३ आफ १८७५–७६। × नं ११०६ आफ १८८४–८७। † नं. ११६३ आफ १८९१–९५। ÷ ११३५ आफ १८८४-८७। ० देखो जैनमित्र, गुरुवार, आश्विन सुदी ५ वीर सं. २४४७ में श्रीयुत पं. पन्नालालजी बाकलीवाल का "सं. वि. १०८० के प्रभाचन्द्र" शीर्षक लेख।

परिशिष्ट नं० १

(आदिपुराण के प्रारंभ का कुछ अंश ।)

ओं नमो वीतरागाय ।

सिद्धिवहूमणरंजणु परमनिरंजणु भुअणकमलसरणेसरु ।
पणवेवि विग्घविणासणु णिरुवमसासणु रिसहणाहपरमेसरु ॥ ध्रुवकम् ॥

× × ×

तं कहमि पुराणु पसिद्धणामु, सिद्धत्थवरिसे भुवणाहिरामु ।
उवद्धजूडु भूभंगभीसु, तोडेप्पिणु चोडहो तणउं सीसु ॥ १ ॥
भुवणेक्करामु रायाहिराउ, जहिं अच्छइ तुडिगु महाणुभाउ ।
तं (वं?) दीण दिण्ण धणकणयपयरु, महिपरिभमंत मेवाडिणयरु ॥ २ ॥
अवहेरिय खलयणु गुणमहंतु, दियहेहिं पराइउ पुप्फयंतु ।
दुग्गमदीहरपंथेणरीणु, णव इंदु जेम देहेण खीणु ॥ ३ ॥
तरुकुसुमरेणुरंजियसमीर, मायंदगुंछ गुंदलियकीर ।
णंदणवणे किर वीसमइ जाम, तहिं विण्णि पुरिस संपत्त ताम ॥ ४ ॥
पणवेप्पिणु तेहिं पवुत्त एव, भो खण्डई गलिय पावावलेव ।
परिभमिरभमररवगुमुगुमंत, किं किर णिवसहि णिज्जणवणंत ॥ ५ ॥
करिसरवहिरिय दिग्घक्कवाले, पइसरहि ण किं पुरवरविसाले ।
तं सुणेवि भणइ अहिमाणमेरु, वरि खज्जउ गिरिकंदरकसेरु ॥ ६ ॥
णउ दुज्जणभउंहा वंकियाइं, दीसंतु कलुसभावंकियाइं ॥

घत्ता ।

वरु णरवरु धवलच्छिहे, होउ मकुच्छिहे, मरउ सोणिमुहणिग्गमे ।
खलकुच्छियपहुवयणइं, भिउडियणयणइं, म णिहालउ सूरुग्गमे ॥ ७ ॥
चमराणिलउड्डावियगुणाएं, अहिसेयधोयसुयणत्तणाए ।

भावार्थ—इस प्रसिद्ध पुराणको मैं सिद्धार्थ संवत्सर में कहता हूं जब राजाधिराज भुवनैकराम तुडिगने चोड राजा का सुन्दर जटायुक्त और भ्रकुटि भंगिसे भीषण मस्तक काटा ॥ १ ॥ उन्हों ने दीन दुखियों को प्रचुर धन दिया । इसी समय पृथ्वी पर भ्रमण करते हुए और खलजनों द्वारा अपमानित हुए पुष्पदन्त कवि मेवाटि या मेलाटी नगरी में आये । दुर्गम और लम्बा रास्ता तय करते करते उनका शरीर नवीन चन्द्रमा के समान क्षीण हो गया था । २–३ ॥ वे नन्दन वन नामक उद्यान में विश्राम ले रहे थे जहां का वायु पुष्पों के पराग से महक रहा था और आम्रवृक्षों पर शुकों के झुण्ड क्रीड़ा कर रहे थे । इतने में ही वहां दो पुरुष पहुंचे ॥ ४ ॥ उन्होंने प्रणाम करके कहा कि हे निष्पाप खंडकवि, आप इस निर्जन वन में जो भ्रमरों के गुंजार से गूंज रहा है क्यों ठहरे हैं ? हाथियों के शब्दों से दिशाओं को बधिर करनेवाले इस विशाल नगर में क्यों नहीं चलते ? यह सुन कर अभिमानमेरु पुष्पदन्तने कहा कि गिरिकन्दराओं के जंगली फल खा लेना अच्छा, परन्तु दुर्जनों की कलुषित टेढ़ी भौंहें देखना अच्छा नहीं ॥ ५–६ ॥ उज्ज्वल नेत्रोंवाली माता की कूंख से जन्म लेते ही मर जाना अच्छा परन्तु प्रभु के दुष्ट वचन और भ्रकुटित नयन सवेरे सवेरे देखना अच्छा नहीं ॥ ७ ॥

वह लक्ष्मी किस मतलब की जिसने ढुरते हुए चँवरों की हवा से सारे गुणों को उड़ा दिया हो, अभिषेक के जल

---

१ सिद्धार्थ संवत्सरे । २ विरुदः । ३ कृष्णराजः । ४ दुर्गमदीर्घतराकाशमार्गेणागतः । ५ मन्दतेजः । ६ मिलित ७ पुष्पदन्तः । ८ हस्तिशब्दात् । ९ दिक्चक्रवलये ।

अविवेयएं दप्पुत्तालियाएं, मोहंधयाएं मारणसीलयाएं ॥ ८ ॥
सत्तंगरज्जभरभारियाएं, पिउपुत्तरमणरसयारियाएं ।
विससहजम्मएं जडरत्तियाएं, किं लच्छिए विउसविरत्तियाएं ॥ ९ ॥
संपइ जणु णीरसु णिव्विसेसु, गुणवंतउ जहिं सुरगुरुवि देसु ।
तहिं अम्हहं लइ काणणु जे सरणु, अहिमाणें सहुं वरि होउ मरणु ॥ १० ॥
अम्मइय इंदरायहिं तेहिं, आयाणिय तं पहसिय मुहेहिं ।
गुरुविणयपणयपणवियसिरेहिं, पडिवयणु दिण्णु णायरणरेहिं ॥ ११ ॥

घत्ता ।

जणमणतिमिरोसारण, मयतरुवारण, णियकुलगयणदिवायर ।
भो भो केसवतणुरुह, णवसररुहमुह, कव्वरयणरयणायर ॥ १२ ॥
बंभंडमंडवारूढकित्ति, अणवरय रइय जिणणाहभत्ति ।
सुहतुंगदेवकमकमलभसलु, णीसेसकलाविण्णाणकुसलु ॥ १३ ॥
पाययकइकव्व रसावलुद्धु, संपीय सरासइसुरहिदुद्धु ।
कमलच्छु अमच्छरु सच्चसंधु, रणभरधुरधरणुग्घिट्ठखंधु ॥ १४ ॥
सविलासविलासिणिहियय थेणु, सुपसिद्ध महाकइकामधेणु ।
काणीणदीणपरिपूरियासु, जसपसरपसाहियदसदिसासु ॥ १५ ॥
पररमणिपरम्मुह सुद्धसीलु, उण्णयमइ सुयणुद्धरणलीलु ।
गुरुयणपयपणवियउत्तमंगु, सिरिदेविअंबगब्भुब्भवंगु ॥ १६ ॥
अण्णइयतणउं तणुरुहु पसत्थु, हत्थिवदाणोल्लियदीहहत्थु ।
महमत्तवं सधयवडु गहीरु, लक्खणलक्खंकिय वरसरीरु ॥ १७ ॥

से सुजनता को धो डाला हो, अविवेक से दर्प को बढ़ाया हो, जो मोहसे अन्धी हो, मारणशील हो, सप्तांग राज्य के भार से लदी हुई हो, पिता और पुत्र-दोनों में रमण करनेवाली (घृणितव्यभिचारिणि) हो, विषके साथ जिसका जन्म हुआ हो, जो जड़ (या जल) में रक्त हो, और जो विद्वानों से विरक्त रहती हो ॥ ८-९ ॥

इस समय लोग नीरस और विशेषतारहित हो गये हैं। अब तो गुणवन्त बृहस्पति का भी द्वेष किया जाता है। इसी लिए मैंने इस वन का शरण लिया है। मैंने सोचा है कि इस तरह अभिमान के साथ मर जाना भी अच्छा है ॥१०॥

कवि के ये वचन सुनकर उन दो आगत नागरिकोंने—अम्मइय (?) और इन्द्रराजने—प्रसन्न मुख से और बड़े विनय से मस्तक झुकाकर कहा—" हे मनुष्यों के हृदयान्धकार को दूर करनेवाले, नवीन कमलसदृश मुखवाले, मद-रहित, अपने कुलरूपी आकाश के चन्द्रमा, काव्यरत्नरत्नाकर, और केशव के पुत्र पुष्पदन्तजी, क्या आपने भरत (मंत्री) का नाम नहीं सुना ? जिस की कीर्ति ब्रम्हाण्डरूपमण्डपपर आरूढ हो रही है, जो निरन्तर जिन भगवान की भक्ति में अनुरक्त रहता है, शुभतुंगदेव (राजा और इस नाम का मन्दिर) के चरणकमलों का भ्रमर है, सारी कला और विद्याओं में कुशल है, प्राकृत कवियों के काव्यरसपर लुब्ध रहेता है और जिसने सरस्वतीरूप सुरभि का खूब दूध पिया है, लक्ष्मी जिसे चाहती है, जो मत्सर रहित है, सत्यप्रतिज्ञ है, युद्धों के बोझे को ढोते ढोते जिस के कन्धे घिस गये हैं, जो विलासवती सुन्दरियों के हृदय का चुरानेवाला है, बड़े बड़े प्रसिद्ध महाकवियों के लिए कामधेनु है, दीन दुखियाओं की आशाओं को पूरा करनेवाला है, जिस के यश ने दशों दिशाओं को जीत लिया है, जो पराश्रियों की ओर कभी नजर नहीं उठाता, शुद्ध शीलयुक्त है, जिस की मति उन्नत है, लीला मात्र से जो सुजनों का उद्धार कर देता है, गुरुजनों के चरणोंपर जिस का मस्तक सदैव झुका रहता है, जो श्रीदेवी माता और अण्णय पिता का पुत्र है, जिस के हाथ हाथी के समान दान (या मदजल) से आर्द्र रहते हैं, जो महामात्यवंशका ध्वजपट है, गंभीर है, जिस का शरीर शुभ लक्षणों से युक्त है और जो दुर्व्यसनरूपी सिंहों के लिए जो अष्टापद के समान है ॥ ११-१७ ॥ आइए, उसके नेत्रों

दुव्वेसए सीहसंघायसरहु, णवि याणहि किं णामेण भरहु ।

घत्ता ।

आउ जाहुं तहो मंदिरु णयणाणंदिरु सुकइकइत्तणु जाणइं ।
सो गुणगणतत्तिल्लउ तिहुअणिभल्लउ णिच्छउ पइं सम्माणइं ॥ १८ ॥
जो विहिणा णिम्मिउं कव्वपिंडु, तं णिसुणेवि सो संचलिउ खंडु ।
आयंतु दिट्ठु भरहेण केम, वाईसरिसरिकल्लोलु जेम ॥ १९ ॥
पुणु तासु तेण विरइउ पहाणु, घरु आयहो अब्भागयविहाणु ।
संभासणु पियवयणेहिं रम्मु, णिम्मुक्कडंभु णं परमधम्मु ॥ २० ॥
तुहुं आयउ णं गुणमणिणिहाणु, तुहुं आयउ णं पंकयहो भाणु ।
पुणु एम भणेप्पिणु मणहराइं, पहखीणसरीरतणु सुहयराइं ॥ २१ ॥
वर ण्हाणविलेवणभूसणाइं, दिण्णइं देवंगइणिवसणाइं ।
अच्चंत रसालइं भोयणाइं, गलियाइं जाम कइवय दिणाइं ॥ २२ ॥
देवीसुएण कइ भणिउं ताम, भो पुप्फयंत ससिलिहियणाम ।
णियसिरिविसेसणिज्जियसुरिंदु, गिरिधीरु वीरु भइरव णरिंदु ॥ २३ ॥
पइं मण्णिउं वण्णिउं वीरराउ, उप्पण्णउं जो मिच्छत्तभाउ ।
पच्छित्तु तासु जइ करहि अज्ज, ता घडइ तुज्झु परलोयकज्जु ॥ २४ ॥
तुहुं देउ कोवि भव्वयणबंधु, पुरुएवचरियभारस्स खंधु ।
अब्भत्थिओसि देवेहि तेम, णिव्विग्घें लच्छु णिव्वहइ जेम ॥ २५ ॥

घत्ता ।

अइललियएं गंभीरएं सालंकारएं वायएं ता किं किज्जइ ।
जइ कुसुमसरवियारउ अरुहु भडारउ सब्भावें ण थुणिज्जइ ॥ २६ ॥

को आनन्द देनेवाले मन्दिर में चालिए । वह सुकवियों के कवित्वका मर्मज्ञ है, गुणगणों से तृप्त है और तीनों भुवनों के लिए भला है, वह निश्चय से आप का सम्मान करेगा ॥ १८ ॥

यह सुन कर वह खण्ड कवि—जिस के शरीर को मानों विधाताने काव्य का मूर्तिमान पिण्ड ही बनाया है—उस ओर को चल दिया । उस समय भरत मंत्रीने उस को इस तरह आते देखा जिस तरह सरस्वतीरूपी सरिता की एक तरंग ही आ रही है ॥ १९ ॥ तब उस ने अभ्यागत विधान के अनुसार उस का सब प्रकार से आतिथिसत्कार किया और बहुत ही प्रिय, दंभरहित धर्मवचनों से संभाषण किया ॥ २० ॥ कहा—हे गुणमणिनिधान, आप भले पधारे, कमल के लिए जैसे सूर्य प्रसन्नताका कारण है, उसी तरह आप मेरे लिए हैं । ऐसा कहकर उस के मार्ग श्रम से क्षीण हुए शरीर को सुख देनेवाले मनोहर स्नान, विलेपन और आभूषणों से उस का सत्कार किया और देवों के निवास करने योग्य स्थान में ठहराया । इसके बाद अत्यन्त रसाल भोजन से उसे तृप्त किया । इस तरह कुछ दिन बीत गये ॥ २१-२२ ॥ देवी सुत (भरत) ने कहा—हे श्लाघनीय नामधारी पुष्पदन्त, भैरव नरेन्द्र (कृष्णराज) अपने वैभव से सुरेन्द्र को भी जीतनेवाले और पर्वत के समान धीर वीर हैं ॥ २३ ॥ तुमने कांची नरेश वीरराज शूद्रक (?) का वर्णन किया है, और उसे माना है अतः इस से जो मिथ्यात्वभाव उत्पन्न हुआ है उस का यदि तुम आज प्रायश्चित्त कर डालो तो इस से तुम्हारा परलोक का कार्य बन जाय ॥ २४ ॥ भव्यजनों के लिए बन्धुतुल्य तुम्हें पुरुदेव (आदिनाथ) चरित्र की रचना करनी चाहिए । मैं तुम्हारी अभ्यर्थना करता हूं । इस काव्यरचना से तुम निर्विघ्नता पूर्वक निर्वृति प्राप्त करोगे ॥ २५ ॥ वह अतिशय ललित, गंभीर और अलंकारयुक्त रचना भी किस काम की जिस में कामबाणों को व्यर्थ करनेवाले अर्हंत भटारक की सद्भावपूर्वक स्तुति न की गई हो ? ॥ २६ ॥

१ भइरव—कृष्णराजः ।

सियदंतपंतिधवलीकयासु, ता जंपइ वरवायाविलासु ।
भो देवीणंदण जयसिरीह, किं किज्जइ कव्वु सुपुरिससीह ॥ २७ ॥
गोधज्जिपहिं एं घणदिणेहिं, सुरवरचावेहिं वणिगुणेहिं ।
मइलियचित्तहिं एं जरघरेहिं, छिद्दण्णेसिहिं एं विसहरेहिं ॥ २८ ॥
जडवाइएहिं एं गयरसेहिं, दोसायरेहिं एं रक्खसेहिं ।
आचविखय परपुंट्ठीपलेहिं, वर कइ णिंदिज्जइ हयखलेहिं ॥ २९ ॥
जो बाल वुड्ढ संतोसहेउ, रामाहिरामु लक्खणसमेउ ।
जो सुम्मइ कइवइ विहियसेउ, तासु वि दुज्जणु किं परे म होउ ॥ ३० ॥

घत्ता ।

णउ महु बुद्धिपरिग्गहु, णउ सुयसंगहु, णउ कासुवि केरउ बलु ।
भणु किह करमि कइत्तणु, ण लहमि कित्तणु, जगु जे पिसुणसयसंकुलु ॥ ३१ ॥
तं णिसुणेवि भरहें वुत्तु ताव, भो कइकुलतिलय विमुक्कताव ।
सिमिसिमिसिमिंतकिमि भरियरंधु, मेल्लेवि कलेवरु कुणिमगंधु ॥ ३२ ॥
ववगयविवेउ मसिकसणकाउ, सुंदरपएसे किं रमइ काउ ।
णिक्कारणु दारुणु बद्धरोसु, दुज्जणु ससहावें लेइ दोसु ॥ ३३ ॥
हयतिमिरणियरु वरकरणिहाणु, ण सुहाइ उलूयहो उइउ भाणु ।
जइ ता किं सो मंडियसराहं, णउ रुच्चइ वियसियसिरिहराहं ॥ ३४ ॥
को गणइ पिसुणु अविसाहियतेउ, भुक्कउ छणयंदहो सारमेउ ।
जिण चलणकमल भत्तिल्लएण, ता जंपिउ कव्वपिसल्लएण ॥ ३५ ॥

घत्ता ।

णउ हउं होमि वियक्खणु, ण मुणमि लक्खणु, छंदु देसि णवि याणमि ।

तब उस वाणी विलास कवि ने अपनी श्वेत दन्तावली से दिशाओं को उज्ज्वल करते कहा–हे देवीनन्दन (भरत) हे सुपुरुषसिंह, मैं काव्य क्या करूं ? श्रेष्ठ कवियों की खलजन निन्दा करते हैं । वे मेघों से घिरे हुए दिन के समान गोवर्जित (प्रकाशरहित और वाणीरहित), इन्द्रधनुष के समान निर्गुण, जीर्ण गृह के समान मलिनचित्त (चित्र), सर्प के समान छिद्रान्वेषी, गत रस के समान जडवादी, राक्षसों के समान दोषायर (दोषाचर और दोषाकर) और पीठ पीछे निन्दा करनेवाले होते हैं । कविपति प्रवरसेन के सेतुबन्ध (काव्य) की भी जब इन दुर्जनों ने निन्दा की तब फिर औरों की तो बातही क्या है ? ॥ २९–३० ॥

फिर न तो मुझ में बुद्धि है, न शास्त्रज्ञान है और न और किसी का बल है, तब बतलाइए कि मैं कैसे काव्य-रचना करूं ? मुझे इस कार्य में यश कैसे मिलेगा ? यह संसार दुर्जनों से भरा हुआ है ॥ ३१ ॥

यह सुनकर भरत ने कहा–हे कविकुलतिलक और हे विमुक्तताप, जिस में कीड़े बिलबिला रहे हैं और बहुत ही घृणित दुर्गन्ध निकल रही है, ऐसी लाशको छोड़ कर विवेकरहित काले कौए क्या और किसी सुन्दर स्थान में क्रीड़ा कर सकते हैं । अकारण ही अतिशय रुष्ट रहनेवाले दुर्जन स्वभाव से ही दोषों को ग्रहण करते हैं ॥ ३२–३३ ॥ उल्लुओं को यदि अन्धकार का नाश करनेवाला और तेजस्वी किरणोंवाला ऊगा हुआ सूर्य नहीं सुहाता तो क्या सरोवरों की शोभा बढानेवाले विकसित कमलों को भी न सुहायेगा ? ॥ ३४ ॥ इन खलजनों की परवा कौन करता है ? हाथी के पीछे कुत्ते भौंकते ही रहते हैं ।

यह सुनकर जिन भगवान के चरणकमलों की भक्ति में लीन रहनेवाले काव्यराक्षस (पुष्पदन्त) ने कहा ॥ ३५ ॥ आप का यह कथन ठीक है, परन्तु न तो मैं विचक्षण हूं और न व्याकरण, छन्द आदि जानता

---

१ परपृष्ठिमांसैः परोक्षवादैश्च । २ बाला अंगदादयः; वृद्धा जांबवदादयः अन्यत्र श्रुतहीनाः श्रुताढ्याश्च । ३ हनुमान । ४ कृतसमुद्रबंधः अन्यत्र कृतसेतुबंध नाम काव्यं । ५ पद्मानां । ६ काव्यराक्षसेन । ७ कुक्कुरः ।

जो विरइय जयवंदहिं आसिमुणिंदहिं सा कह केम समाणमि ॥ ३६ ॥
अकलंक कविल कणयर मयाइं, दिय सुगय पुरंदर णय सयाइं।
दन्तिलविसाहि लुद्धारियाइं, णउ णायइं भरह वियारियाइं ॥ ३७ ॥
णउ पीयइ पायंजलिजलाइं, अइहास पुराणइं णिम्मलाइं।
भावाहिउ भारह-भासि वासु, कोहलु कोमलगिरु कालिदासु ॥ ३८ ॥
चउमुहुं सयंभु सिरिहरिसु दोणु, णालोइउ कइ ईसाणु बाणु।
णउ धाउ ण लिंगु ण गुणसमासु, णउ कम्मु करणु किरिया विसेसु ॥ ३९ ॥
णउ संधि ण कारउ पयसमत्ति, णउ जाणिय मइं एक्कवि विहत्ति।
णउ बुज्झिउ आयम सद्दधामु, सिद्धंतु धवल जयधवल णामु ॥ ४० ॥
पडुरुद्दडु जड णिरवसेसयारु, परियंच्छिउ णालंकारसारु।
पिंगल पत्थारु समुद्दे पडिउ, ण कयाइ महारइ चित्ते चडिउ ॥ ४१ ॥
जैसइंधु सिंधु कल्लोलसित्तु, ण कलाकोसले हियवउ णिहित्तु।
हउं वप्प निरक्खरु कुक्खिमुक्खु, णरवेसें हिंडमि चम्मरुक्खु ॥ ४२ ॥
अइ दुग्गमु होइ महापुराणु, कुंडएण मवइ को जलविहाणु।
अमरासुरगुरुयणमणहरेहिं, जं आसि कयउ मुणिगणहरेहिं ॥ ४३ ॥
तं हउं कहमि भत्तीभरेण, किं णहे ण ममिज्जइ महुअरेण।
पहु विणउ पयासिउ सज्जणाहं, मुहे मसि कुच्चउ कउ दुज्जणाहं ॥ ४४ ॥

हूं, ऐसी दशा में जिस चरित को बड़े बड़े जगद्वन्द्य मुनियों ने रचा है उसे मैं कैसे बना सकूंगा ? ॥ ३६ ॥ मैं अकलंक (जैन दार्शनिक), कपिल (सांख्यकार), कणचर (कणाद) के मतों का ज्ञाता नहीं हूं, दिय (ब्राह्मण), सुगत (बौद्ध), पुरन्दर (चार्वाक), आदि सैकड़ों नयों को, दन्तिल, विशाख,लुब्ध (प्राकृतलक्षणकर्त्ता) आदि को नहीं जानता। भरत के नाट्यशास्त्र से मैं परिचित नहीं ॥ ३७ ॥ पतंजलि (भाष्यकार) के और इतिहास पुराणों के निर्मल जल को मैंने पिया नहीं, भावों के अधिकारी भारतभाषी व्यास, कोमलवाणीवाले कालिदास, चतुर्मुख स्वयंभु कवि, श्रीहर्ष, द्रोण, कवीश्वर बाण का अवलोकन नहीं किया। धातु, लिंग, गुण, समास, कर्म, करण, क्रिया-विशेषण, सन्धि, पदसमास, विभक्ति इन सब में से मैं कुछ भी नहीं जानता। आगम शब्दों के स्थानभूत धवल और जयधवल सिद्धान्त भी मैंने नहीं पढ़े ॥ ३८-४० ॥ चतुर रुद्रट का अलंकार शास्त्र भी मुझे परिज्ञात नहीं, पिंगल प्रस्तार आदि भी कभी मेरे चित्तपर नहीं चढ़े ॥ ४१ ॥ यशः चिन्हकवि के काव्यसिन्धु की कल्लोलों से मैं कभी सिक्त नहीं हुआ। कलाकौशल से भी मैं कोरा हूं। इस तरह मैं बेचारा निरक्षर मूर्ख हूं, मनुष्य के वेष में पशु के तुल्य घूमता फिरता हूं ॥ ४२ ॥ महापुराण बहुत ही दुर्गम है। समुद्र कहीं एक कूंडे में भरा जा सकता है ? फिर भी जिसे सुर असुरों के मनको हरनेवाले मुनि गणधरों ने कहा था, उसे अब मैं भक्ति भाववश करता हूं। भौंरा छोटा होनेपर भी क्या विशाल आकाश में भ्रमण नहीं करता है ? अब मैं सज्जनों से यही विनती करता हूं कि आप दुर्जनों के मुंह पर स्याही की कूंची फेर दें ॥ ४४ ॥

---

८ सांख्यमते मूलकारः। ९ वैशेषिकमते मूलकारः। १० चार्वाकमते ग्रन्थकारः। ११ पाणिनिव्याकरणभाष्यं (पतंजलि)। १२ एकपुरुषाश्रित कथा। १३ भारतभाषी व्यास। १४ श्रीहर्ष। १५ कवि ईशानः बाणः। १६ परिज्ञातः। १७ प्राकृत लक्षण कर्ता।

परिशिष्ट नं० २

(उत्तर पुराण के मंगलाचरण के बाद का अंश ।)

मणे जापए किं पि अमणोज्जे, कइवयइं दिअहेँ केण विकज्जें ।
णिव्विण्णउ ट्ठिउ जाम महाकइ, ता सिविणंतरि पत्त सराहइ ॥ १ ॥
भणइं भडारी सुहयरुमेहं, पणवह अरुहं सुहयरुमेहं ।
इय णिसुणेवि विउद्धउ कइवरु, सयलकलायरु णं छण ससहरु ॥ २ ॥
दिसउ णिहालइ किं पि ण पेच्छइ, जा विंभियमइ णियघरे अच्छइ ।
ताम पैराइएण णयवंतें, मउलिय, करयलेण पणवंतें ॥ ३ ॥
दस दिस पसरिय जसतरुकंदें, वरमहमत्तवंसणहचंदें ।
छणससिमंडल सण्णिह वयणें, णव कुवलयदलदीहरणयणें ॥ ४ ॥

घत्ता ।

खल संकुले काले कुसीलमइ विणउ करेप्पिणु संवेरिय ।
वच्चंति विसुण्णसुण्णवहे जेणसरासइ उद्धरिय ॥ ५ ॥
ऍयणु देवियव्वतणुजाएं, जयदुंदुहिसरगहिरणिणाएं ।
जिणवरसमयणिहेलणखंभें, दुत्थियमित्तें ववगयडंभें ॥ ६ ॥
परउवयारहारणिव्वहणें, विउसविहुर सयभय णिम्महणें ।
ते ओहामिय पवरक्खरेहें, तेय विणेयें भव्वें भरहें ॥ ७ ॥
वोल्लाविउ कइ कव्वपिसल्लउ, किं तुहुं सच्चउ वप्पगहिल्लउ ।
किं दीसहि विच्छायउ दुम्मणु, गंथकरणे किं ण करहि णियमणु ॥ ८ ॥
किं किउ काइं वि मइं अवराहउ, अवरु कोवि किं वि रैंसुम्माहउ ।

कुछ दिनों के बाद मन में कुछ बुरा मालूम हुआ । जब महाकवि निर्विण्ण हो उठा तब सरस्वती देवी ने स्वप्न में दर्शन दिया ॥ १ ॥ भट्टरिका सरस्वती बोली कि पुण्यवृक्ष के लिए मेघतुल्य और जन्ममरणरूप रोगों के नाशक अरहंत भगवान को प्रणाम करो । यह सुनकर तत्काल ही सकलकलाओं के आकर कविवर जाग उठे और चारों ओर देखने लगे परन्तु कुछ भी दिखलाई नहीं दिया । उन्हें बड़ा विस्मय हुआ । वे अपने घर ही थे कि इतने में नयवन्त भरत मंत्री प्रणाम करते हुए वहां आये, जिन का यश दशोंदिशाओं में फैल रहा है, जो श्रेष्ठ महामात्यवंशरूप आकाश के चन्द्रमा है, जिन का मुख चन्द्रमण्डल के समान और नेत्र नवीन कमलदलों के समान हैं, ॥ २–४ ॥ जिन्हों ने इस खलजन संकुल काल में विनय करके शून्यपथ में जाती हुई सरस्वती को रोक रक्खा और उस का उद्धार किया ॥ ५ ॥ जो ऐयण पिता और देवी माता के पुत्र हैं, जो जिनशासनरूप महल के खंभ हैं, दुस्थितों के मित्र हैं, दंभरहित हैं, परोपकार के भार को उठानेवाले हैं, विद्वानों को कष्ट पहुँचानेवाले सैकड़ों भयों को दूर करनेवाले हैं, तेज के धाम हैं, गर्वरहित हैं और भव्य हैं ॥ ६–७ ॥ उन्हों ने काव्यराक्षस पुष्पदन्त से कहा कि भैया, क्या तुम सचमुच ही पागल हो गये हो ? तुम उन्मना और छायाहीनसे क्यों दिखते हो ? ग्रन्थरचना करने में तुम्हारा मन क्यों नहीं लगता ? ॥ ८ ॥ क्या मुझ से तुम्हारा

---

१ सरस्वती । २ सुष्ठु हतो रुजां रोगाणामोघः संघातो येन स तं । ३ पुण्यतरुमेघं । ४ गतनिद्रो जागरितः । ५आकार । ६ पश्यति । ७ भरतमंत्रिणेति सम्बन्धः श्रीपुष्पदन्तः आलापितः । ८ कन्दो मेघः । ९ महामात्र-महत्तर । १० चन्द्रेण ११ संवृता रक्षिताः सरस्वती । १२ एयण पिता देवी माता तयोः पुत्रेण भरतेन । १३ प्रासाद । १४ मयि पुष्पदन्ते उपकार-भावनिर्वाहकेन । १५ निर्मथकेन । १६ रयेन विमानेन । १७ गर्व रहितेन । १८ कोमलालापे । १९ अपराधः । २० अन्यकाव्यकरणवांछः किं त्वं ।

भणु भणु भणियउं सयलु पडिच्छेमि, हउ कयपंजलियरु ओहच्छमि[23] ॥ ९ ॥

घत्ता।

अथिरेण असारें जीविएण, किं अप्पउ सम्मोहहि।
तुहु सिद्धहे वाणीधेणुअहे, णवरसखीरु ण दोहहि ॥ १० ॥
तं णिसुणेप्पिणु दर विहसंतें मित्तमुहारविंदु जोयंतें।
कसणसरीरें सुद्धकुरूवें, मुद्धापविगब्भि संभूवें ॥ ११ ॥
कासव गोत्तें केसव पुत्तें, कइ कुलतिलयं सरसयणिलयं।
उत्तमसत्तें, जिणपयभत्तें ॥ १२ ॥ (?)
पुप्फयंत कइणा पडिउत्तउ, भो भो भरह णिसुणि णित्तक्खुत्त।
कलिमलमलिणु कालु विवरेरउं, णिग्घिणु णिग्गुणु दुण्णयगारउ ॥ १३ ॥
जो जो दीसइ सो सो दुज्जणु, णिप्फलु णीरसु णं सुक्कउ वणु।
राउ राउ णं संझहे केरउ, अंतये पयट्टइ मणु ण महार उ।
उव्वेउ जे वित्थरइ णिरारिउ, एक्कु वि पउं विरयवउ मारिउ ॥ १४ ॥

घत्ता।

दोसेवें होउ तं णउ भणमि चोज्जु अवरुमणे थक्कउ।
जगुपइ चडावियउ चीवउजिह तिह गुणेण सहवंकउ ॥
जयवि तो वि जिणगुणगणु वण्णमि, किं इं पइं अब्भत्थिउ अवगण्णमि।

कोई अपराध बन पड़ा है अथवा और किसी रस का उमाह हुआ है अर्थात् कोई दूसरा काव्य बनाने की इच्छा हुई है ? बोलो, बोलो, मैं हाथ जोड़ कर तुम्हारे सामने खड़ा हूँ, तुम जो कुछ कहोगे मैं सब कुछ देने के लिए तैयार हूं ॥ ९ ॥

इस अस्थिर और असार जीवन से तुम क्यों आप को सम्मोहित कर रहे हो ? तुम्हें वाणीरूप कामधेनु सिद्ध हो गई है, उस से तुम नवरसरूप दूध क्यों नहीं दोहते ? ॥ १० ॥

यह सुनकर मुसकराते हुए और अपने मित्र के मुखकमल की, ओर निहारते हुए कृशशरीर, अतिशय कुरूप, मुग्धादेवी और केशव ब्राह्मण के पुत्र, काश्यपगोत्रीय, कविकुलतिलक, सरस्वतीनिलय, दृढव्रत और जिनपदभक्त पुष्पदन्त कवि ने प्रत्युत्तर दिया कि, हे भरत, यह निश्चय है कि इस कलिमलमालिन, निर्दय, निर्गुण और दुर्नीतिपूर्ण विपरीत काल में जो जो दिखते हैं सो सब दुर्जन हैं, सब सूखे हुए वन के समान निष्फल और नीरस हैं। राजा लोग सन्ध्याकाल की लालिमा के सदृश हैं। इस लिए मेरा मन अर्थ में अर्थात् काव्य रचना में प्रवृत्त नहीं होता है। इस समय मुझे जो उद्वेग हो गया है, उस से एक पद बनाना भी मेरे लिए भारी हो गया है ॥ ११–१४ ॥

यह जगत यदि दोष से वक्र होता तो मेरे मन में आश्चर्य नहीं होता किन्तु यह तो चढ़ाये हुए चाप (धनुष) सदृश गुण से भी वक्र होता है (धनुष की डोरी ' गुण ' कहलाती है। धनुष गुण या डोरी चढ़ा ने से टेढा होता है) ॥ १५ ॥

यद्यपि जगत की यह दशा है तो भी मैं जिन गुणवर्णन करूंगा। तुम मेरी अभ्यर्थना करते हो, तब मैं तुम्हारी अवगणना कैसे कर सकता हूं ? तुम त्याग भोग और भावोद्गम शक्ति से और निरन्तर की जानेवाली कविमैत्री से

२१ सर्वं प्रतीच्छामि। २२ एष तिष्ठामि। २३ तव सिद्धायाः।

१ भरतस्य। २ सुष्ठु कुरूपेण। ३ मुग्धादेवी। ४ वाणीनिलयेन मन्दिरेण। ५ सत्वेन दृढव्रतेन। ६ निश्चितं। ७ विपरीतः। ८ शुष्कवनमिव जनः। ९ राजा सन्ध्यारागसदृशः। १० शब्दार्थे न प्रवर्तते। ११ एकमपि पदं रचितुं भारो महान्। १२ दोषेण यह जगत् चेत् वक्रं भवति तदाश्चर्यं न, किन्तु गुणेनापि यह वक्रं तदाश्चर्यमाचित्ते। १३ चापः।

चायें भोय भाउग्गमसत्तिए, पइं अणवरय रइय कइमित्तिए ॥ १६ ॥
राउ सालियाहणु वि विसेसिउ, पइं णियजसु भुवणयले पयासिउ।
कालिदासु जें खंधें णीयउ, तहो सिरिहरिसहो तुहुं जगि वीयउं ॥ १७ ॥
तुहुं कइकामधेणु कइवच्छलु, तुहुं कइकप्परुक्खु ढोइयफलु।
तुहुं कइ सुरवरकीलागिरिवरु, तुहुं कइ रायहंसमाणससरु ॥ १८ ॥
मंदु मयालसु मयणुम्मत्तउ, लोउ असेसुवि लिट्ठए मुत्तउ।
केण वि कव्वपिसल्लउ मण्णिओ, केण वि थट्ठु भणेवि अवगण्णिउ॥
णिच्चमेव सब्भाव पउंजिउं, पइं पुणु विणउ करे वि हउं रंजिउं ॥ १९ ॥

घत्ता।

धणु तणुसमु मज्झु ण तं गहणु णेहु णिकारिमु इच्छमि।
देवीसुअ सुदणिहि तेण हउं णिलए तुहारए अच्छमि ॥ २० ॥
महु समयागमे जायहे ललियहे, घोल्लइ कोइल अंबयकलियहे।
काणणे चंचरीउ रुणुरुंटइ, कीरु किएण हरिसेण विसट्टइ ॥ २१ ॥
मज्झु कइत्तणु जिणपयभत्तिहे, पसरइ णउ णियजीवियवित्तिहे।
विमलगुणाहरणंकियदेहउ, पइ भरह णिसुणइ पइं जेहउं ॥ २२ ॥
कमलगंधु घिप्पइ सारंगें, णउ सालूरें णीसारंगें।
गमणलील जा कयसारंगें सा किं णासिज्जइ सारंगे ॥ २३ ॥
वड्ढियसज्जणदूसणघसणें, सुक्कइ कित्ति किं हम्मइ पिसुणें।
कहमि कव्वु वम्महसंहारणु, अजियपुराणु भवण्णवतारणु ॥ २४ ॥

शालिवाहन राजा से भी बढ़ गये हो और अपने यश को तुमने पृथ्वीतलपर प्रकाशित कर दिया है। इस समय जगत में तुम दूसरे श्रीहर्ष हो जिसने कविकालिदास को अपने कन्धे पर चढ़ा लिया था। १६- १७ ॥ तुम कविकामधेनु, कविवत्सल, कविकल्पवृक्ष, कविनन्दनवन और कविराजहंस समान सरोवर हो ॥१८॥ ये सारे लोग मूर्ख, मदालस, और मदोन्मत्त बने रहें, (इन से मुझे कुछ प्रयोजन नहीं)। किसी ने मुझे काव्यराक्षस कह कर माना और किसी ने ढूंठ कह कर मेरी अवमानना की। परन्तु तुमने सदा ही सद्भावों का प्रयोग करके और विनय करके मुझे प्रसन्न रक्खा है ॥ १९ ॥

मैं धन को तिन के के समान गिनता हूं और उसे नहीं चाहता हूं। हे देवीसुत श्रुतनिधि भरत, मैं अकारण प्रेम का भूखा हूं और इसी से तुम्हारे महल में रहता हूं ॥ २० ॥

वसन्त का आगमन होनेपर जब आमों में सुन्दर मौर आते हैं तब कोयल बोलती है और बगीचों में भौंरे गुंजारव करते हैं, ऐसे समय में क्या तोते भी हर्ष से नहीं बोलने लगते हैं ? ॥ २१ ॥ जिन भगवान के चरणों की भक्ति से ही मेरी कविता स्फुरायमान होती है अपने जीविल की वृत्ति से या जीविकानिर्वाह के खयाल से नहीं। हे विमलगुणाभरणांकित हे भरत, अब मेरी यह रचना सुन ॥ २२ ॥ कमलों की सुगन्ध भ्रमरगण ग्रहण करते हैं, निःसार शरीर मेंढ़क नहीं। हाथी या हंस जिस चाल से चलते हैं, उस से क्या हरिण चल सकते हैं? इसी तरह से जिन्हें सज्जनों को दोष लगाने की आदत पड़ गई है, ऐसे दुर्जन क्या सुकवियों की कीर्ति को मिटा सकते हैं ? अब मैं मन्मथसंहारक और भवसमुद्रतारक अजितपुराण नामक काव्य को कहता हूं।

---

१४ त्यागः। १५ स्कन्धे धृतो येन श्रीहर्षेण। १६ तेन सदृशो महान् त्वं। १७ मूर्खो लोकः। १८ सद्भाव। १९ अकृत्रिम धर्मानुरागं।

१ वसन्तसमागमे। २ जातायाः सहकारकलिकायाः। ३ आम्र कलिकानिमित्तं। ४ गृह्यते। ५ भ्रमरेण। ६ भेकेन। ७ निःसारांगेण निकृष्ट शरीरेण। ८ हस्तिना हंसेन वा। ९ मृगेण। १० हन्यते। ११ कथयामि। १२ मन्मथ।

परिशिष्ट नं० ३

(उत्तरपुराण के अन्त का कुछ अंश ।)

णिव्वुए वीरे गलियमयरायउ इंदभूइ गणि केवलि जायउ ।
सो विउलइरिहे गउ णिव्वाणहो कम्मविमुक्कओ सासयठाणहो ॥ १ ॥
तहि वासरे उप्पण्णउ केवलु मुणि हे सुधम्महो पक्खालियमलु ।
तं णिव्वाणए जंबू णामहो पंचमु दिव्वणाणु हयकामहो ॥ २ ॥
णंदि सुणंदिमित्तु अवराइ मुणि, गोवद्धणु चउत्थु जलहरझुणि ।
ए पच्छए समत्थ सुयपारय णिरासियमिच्छामयमवणीरय ॥ ३ ॥
पुणु वि विसहु जइ पोट्ठिलु खत्तिउ जयणाउ वि सिद्धत्थुह यत्तिउ ।
दिहिसेणक्कउ विजउ बुद्धिल्लउ, गंगु धम्मसेणु वि णीसल्लउ ॥ ४ ॥
पुणु णक्खत्तउ पुणु जसवालउ, पंडु णामु धुवसेणु गुणालउ ।

घत्ता ।

अणु कंसउ अप्पउ जिणे वि थिउ पुणु सुहद्दु जगसुहयरु ।
जसभद्दु अखुद्दु अमंदमइ णाणें णावइ गणहरु ॥ ५ ॥
भद्दबाहु लोहंकु भडारउ आयारंगधारि जससारउ ।
एयहिं सव्वु सत्थु मणे माणिउ, सेसहिं एक्कु देसु परियाणिउं ॥ ६ ॥
जिणसेणेण वीरसेणेण वि जिणसासणु सेविउ मयगिरिपवि ।
पुव्वयाले णिसुणिउं सइं भरहें, राएं रिउ-बहुदावियविरहें ॥ ७ ॥

× × ×

एवं रायपरिवाडिए णिसुणिउं, धम्मु महामुणिणाहहिं पिसुणिउ ।
सेणियराउ धम्म सोयारहं, पच्छिल्लउ वज्जियभयभारहं ॥ ८ ॥
ताहमि पच्छए बहुरसणडिए, भरहें काराविउ पद्धडियए ।
पढेवि सुणेवि आयण्णेवि हयकले, पयडिउ मम्म(?)एं इय माहियले ॥ ९ ॥
कम्मक्खयकारणु गणे दिट्ठउं, एम महापुराणु मइं सिट्ठउं ।
एत्थु जिणिंद मग्गे ओणाहिउ, बुद्धिविहीणें जं मइं साहिउ । १० ॥
तं महो खमहो तिलोयहो सारी, अरुहुग्गय सुअएवि भडारी ।
चउवीस वि महुं कलुस खयंकर, देंतु समाहि बोहि तित्थंकर ॥ ११ ॥

घत्ता ।

दुहुं छिंदउ णंदउ भुयणयले णिरुवम कण्णरसायणु ।
आयण्णउ मण्णउ ताम जणु जाम चंदु तारायणु ॥ १२ ॥
वरिसउ मेहजालु वसुहारहिं, महि पिच्चउ बहु धण्णपयारहिं ।
णंदउ सासणु वीर जिणेसहो, सेणिउ णिग्गउ णरयणिवासहो ॥ १३ ॥
लग्गउ ण्हवणारंभहो सुरवइ, णंदउ पय सुहुं णंदउ णरवइ ।
णंदउ देसु सुभिक्खु वियंभउ, जणु मिच्छत्तु दुचित्तु णिसुंभउ ॥ १४ ॥

दुःखों का नाश हो और यह कर्णरसायन काव्य पृथ्वीतल पर विस्तार लाभ करे । जब तक चन्द्रमा और तारे हैं, तब तक लोग इसे सुनें और इसका आदर करें ॥ १२ ॥

पृथ्वी पर मेघ खूब बरसें और तरह तरह के धान्य पकें, वीरभगवान का शासन बढ़े, राजा श्रेणिक नरक निवास से बाहर निकले और (तीर्थंकर होने पर) इन्द्र उस का जन्माभिषेक करें । प्रजा का सुख बढ़े और राजा आनन्दित हो । देश में सुभक्ष (सुकाल) हो और लोगों का मिथ्यात्व भाव नष्ट हो ॥ १३–१४ ॥ अंगीकृत

पडियएएए पडिपालए सूरहो, होउ संति भरहहो गिरिधीरहो।
होउ संति बहु गुणगुणवंतहं, संतहं दयवंतहं भयवंतहं ॥ १५ ॥
होउ संति बहु गुणहि महल्लहो, तासु जे पुत्तहो सिरि देवल्लहो।
एउं महापुराणु रयणुज्जले, जे पयडेवउ सयले धरायले ॥ १६ ॥
चउविह दाणुज्जय कयचित्तहो, भरह परमसब्भाव सुमित्तहो।
भोगल्लहो जयजसविच्छुरियहो, होउ संति णिरु णिरुवमचरियहो ॥ १७ ॥
होउ संति णण्णहो गुणवंतहो, कुलवच्छल सामत्य महंतहो।
णिच्चमेव पालियजिणधम्महं, होउ संति सोहण गुणवम्महं ॥ १८ ॥
होउ संति सुअणहो दंगइयहो, होउ संति संतहो संतइयहो।
जिणपयपणमण वियलियगव्वहं, होउ संति णीसेसहं भव्वहं ॥ १९ ॥

घत्ता।

इय दिव्वहो कव्वहो तणउं फलु लहुं जिणणाहु-पयच्छउ।
सिरि भरहहो अरुहहो जहिं गमणु पुप्फयंतु तहिं गच्छउ ॥ २० ॥
सिद्धिविलासिणि मणहरदूयं, मुद्धाएवी तणुसंभूयं।
णिद्धणसधणलोयसमचित्तें, सव्वजीवणिक्कारणमित्तें ॥ २१ ॥
सद्दसलिल परिवड्ढियसोत्तें, केसवपुत्तें कासवगुत्तें।
विमल सरासइ जणियविलासें, सुण्णभवण-देवउलणिवासें ॥ २२ ॥
कलिमल पवल पडल परिचत्तें, णिग्घरेण णिप्पुत्तकलत्तें।
णइवावीतलाय सरण्हाणें, जर चीवरवक्कल परिहाणें ॥ २३ ॥
धीरें धूलीधूसरियंगें, दूरयरुज्झिय दुज्जणसंगें।
महि सयणयलें करपंगुरणें, मग्गिय पंडियपंडियमरणें ॥ २४ ॥
मण्णखेडपुरवरे णिवसंतें, मणे अरहंतु देउ झायंतें।
भरहमणणिज्जें णयणिलयं, कव्वपबंधजणियजणपुलयं ॥ २५ ॥
पुप्फयंतकयणा धुयपंकें, जइ अहिमाणमेरुणामंकें।

गलन में शूर और पर्वत के समान धीर भरत (मंत्री) को शान्ति प्राप्त हो। गुणवन्त, दयावन्त, ज्ञानवन्त सज्जनों को शान्ति प्राप्त हो ॥ १५ ॥ उस क (भरत के ?) पुत्र अतिशय गुणवन्त श्री देवल्ल को शान्ति मिले जिस ने कि इस महापुराण को रत्नोज्ज्वल धरातल पर फैलाया और जिस का चित्त चारों प्रकार के दान करने में उद्यत रहता है तथा जो भरत के लिए परम सद्भावयुक्त मित्र के तुल्य है। जिस का यश संसार में फैल रहा है और जिस का चरित्र उपमारहित है, उस भोगल्ल को शान्ति प्राप्त हो ॥ १६–१७ ॥ कुलवत्सल, समर्थ, गुणवन्त और महन्त णण्ण को शान्ति प्राप्त हो। निरन्तर जैन धर्म का पालन करनेवाले सोहण और गुणवर्म को शान्ति मिले ॥ १८ ॥ सुजन दंगइय और सन्त संतइय को शान्ति प्राप्त हो। जिनभगवान के चरणों में मस्तक झुकानेवाले और *गर्वरहित अन्य सब भव्यजनों को* भी शान्ति मिले ॥ १९ ॥

इस दिव्य काव्य की रचना का फल जिननाथ की कृपा से मैं यह चाहता हूं कि श्री भरत और अर्हत का गमन जहां हो पुष्पदन्त भी वहीं जावे ॥ २० ॥ सिद्धिरूपी विलासिनी के मनोहर दूत, मुग्धादेवी के पुत्र, निर्धनों और सधनों को बराबर समझनेवाले, सर्वजीवों के निष्कारण मित्र, शब्द सलिल से बंढा है काव्य स्रोत जिन का, केशवके पुत्र, काश्यप गोत्रीय, विमल सरस्वती से उत्पन्न विलासोंवाले, शून्य भवन और देव कुलों में रहनेवाले, कलिकाल के मत के प्रबल पटलों से रहित, बिना घरद्वार के, पुत्रकलत्रहीन, नदी, वापिका और सरोवर में स्नान करनेवाले, फटे कपड़े और वल्कल पहननेवाले, धूलिधूसरित अंग, दुर्जनों के संग से दूर रहनेवाले, जमीन पर सोनेवाले, अपने हाथों को ही ओढनेवाले, पाण्डितपाण्डितमरण की प्रतीक्षा करनेवाले, मान्यखेट पुर में निवास करनेवाले, मन में अरहन्त देवका ध्यान करनेवाले, भरतमंत्रीद्वारा सम्मानित, नीति के निलय, अपने काव्यरचनासे लोगों को पुलकित करनेवाले, पापरूप कीचड़ जिन क

कंयउं कव्वु भत्तिए परमत्थें, छसय छडोत्तर कयसामत्थें ॥ २६ ॥
कोहण संवच्छरे आसाढए, दहमए दियहे चंदरुइरूढए ॥
घत्ता ।
सिरि अरुहहो भरहहो बहुगुणहो कइकुलतिलएं भासिउ ।
सुपहाणु पुराणु तिसट्ठिहिमि पुरिसहं चरिउ समासिउ ॥ २७ ॥

इय महापुराणे तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारे महाभव्वभरहाणुमण्णिए महाकइपुप्फयंत विरइए महाकव्वे दुइसरसइमो परिच्छेओ समत्तो ॥ १०२ ॥

(प्राचीन पत्र) संवत् १६३० वर्षे भाद्रपदमासे शुक्लपक्षे पूर्णिमातिथौ कविवासरे उत्तरा भाद्रपद नक्षत्रे नेमिनाथचैत्यालये श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्रीकुंदकुंदाचार्यान्वये भ० श्रीपद्मनंदिदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीशु [भचन्द्रदेवास्त] त्पट्टे भ० श्रीजिनचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीप्रभाचन्द्रदेवास्तात्सिष्य मं० श्रीध..............स्तत्सिष्य मं० श्री ललितकीर्ति देवास्तशिष्य मं० श्री चंद्रकीर्ति देवास्तद............(खंडेल) वालान्वये सावडा गोत्रे सा० धेल्हा तद्भार्या धिल्हसरिस्तत्पुत्रौ द्वौ प्र० सा..............छायलदे तत्पुत्रः सा० वीरम तद्भार्या वीरमदे तत्पुत्रः सा० नाथू तद्भार्या..............तीय जिनपूजापुरंदर सा० श्री धणराज तद्भार्ये द्वे प्र० सती सीताक..............

परिशिष्ट नं० ४

(महापुराण के परिच्छेदों के प्रारंभिक पद्य)

१ आदित्योदयपर्वतादुरुतराचन्द्रार्कचूडामणे-
राहेमाचलतः कुबेरनिलयादासेतुबन्धाद्दृढात् ।
आपातालतलादहीन्द्रभवनादास्वर्गमार्गं गता
कीर्तिर्यस्य न वेत्ति भद्र भरतस्याभाति खण्डस्य च ॥

२ बलिजीमूतदधीचिषु सर्वेषु स्वर्गतामुपगतेषु ।
संप्रत्यनन्यगतिकस्त्यागगुणो भरतमावसति ॥

४ आश्रयवसेन भवति प्रायः सर्वस्य वस्तुनोऽतिशयः ।
भरताश्रयेण संप्रति पश्य गुणा मुख्यतां प्राप्ताः ॥

५ भ्रूलीलां त्यज मुंच संगतकुचद्वंद्वादिगर्व्यांक्षमा,
मा त्वं दर्शय चारुमध्यलतिकां तन्वंगि कामाहता ।
मुग्धे श्रीमदनिंद्यखंडसुकवेर्बंधुर्गुणैरुन्नतः
स्वप्नेप्येष परांगनां न भरतः शौचांबुधेर्वांछति ॥

६ श्रीर्वाग्देव्यै कुप्यति वाग्देवी द्वेष्टि संततं लक्ष्म्यै ।
भरतमनुगम्य सांप्रतमनयोरात्यंतिकं प्रेम ॥

७ हंहो भद्र प्रचंडावनिपतिभवने त्यागसंख्यातकर्त्ता
कोयं श्यामप्रधानं प्रवरकरिकराकारबाहुः प्रसन्नः ।
धन्यः प्रालेयपिण्डोपमधवलयशा धौतधात्रीतलांतः-
ख्यातो बन्धुः कवीनां भरत इति कथं पांथ जानासि नो त्वं ॥

धो गया है और अभिमानमेरु जिन का चिन्ह या उपनाम है, उन पुष्पदन्त कवि ने यह काव्य भक्ति के वश हो कर ६०६ के क्रोधन नामक संवत्सर में आसाढ़ के दसवें दिन सोमवार को बनाया ॥ २५-२६ ॥ कविकुलतिलक ने पुराणप्रसिद्ध त्रेसठ पुरुषों का चरित संक्षेप से वर्णन किया ॥ २७ ॥

८ मातर्वसुंधरि कुतूहलिनो ममैतदापृच्छतः कथय सत्यमपास्य साँव्यं ।
त्यागी गुणी प्रियतमः सुभगोऽभिमानी किं वास्ति नास्ति सदृशो भरतार्यतुल्यः ॥

९ एको दिव्यकथाविचारचतुरः श्रोता बुधोऽन्यः प्रिय
एकः काव्यपदार्थसंगतमतिश्चान्यः परार्थोद्यतः ।
एकः सत्कविरन्य एक महतामाधारभूतो बुधा
द्वावेतौ सखि पुष्पदन्त-भरतौ भद्रे भुवो भूषणौ ॥

१० जेगं रम्मं रम्मं दीवओ चंदाविंबं धरत्ती पल्लंको दो वि हत्या सुयत्यं ।
पिया णिद्दा णिद्धं कव्वकीलाविणोओ अदीणत्तं वित्तं ईसरो पुप्फयंतो ॥

११ सूर्यात्तेज गभीरिमा जलनिधेः स्थैर्यं सुराद्रेर्विधोः
सौम्यत्वं कुसुमायुधात्तु सुभगं त्यागं बलेः संभ्रमात् ।
एकीकृत्य विनिर्मितोऽतिचतुरो धात्रा सखे सांप्रतं
भरतार्यो गुणवान् सुलब्धयशसः खण्डः कवेर्वल्लभः ॥

१४ कैलासुम्मासिकंदा धवलदिसिगओगिण्णदंतांकुरोहा,
सेसाही बद्धमूला जलहिजलसमुब्भूयडिंडीरपत्ता ।
बंभंडे वित्थरंती अमयरसमयं चंदबिंबं फलंती,
फुल्लंती तारओहं जयइ णवलया तुज्झ भरहेसकित्ती ॥

१५ त्यागो यस्य करोति याचकमनस्तृष्णांकुरोच्छेदनं,
कीर्तिर्यस्य मनीषिणां वितनुते रोमांचचर्चं वपुः ।
सौजन्यं सुजनेषु यस्य कुरुते प्रेमांतरां निर्वृतिं,
श्लाघ्योऽसौ भरतः प्रभुर्वत भवेऽत्कार्भिर्गिरां सूक्तिभिः ॥

१६ प्रतिगृहमटति यथेष्टं वंदिजनैः स्वैरसंगमावसति ।
भरतस्य वल्लभाऽसौ कीर्तिस्तदपीह चित्रतरं ॥

१७ बलिभंगकंपिततनु भरतयशः सकलपाण्डुरितकेशम् ।
अत्यंतवृद्धिगतमपि भुवनं बंभ्रमति तच्चित्रम् ॥

१८ शशधरबिम्बात्कान्तिस्तेजस्तपनाद्गभीरतामुदधेः ।
इति गुणसमुच्चयेन प्रायो भरतः कृतो विधिना ॥

१९ श्यामरुचिनयनसुभगं लावण्यप्रायमंगमादाय ।
भरतच्छलेन संप्रति कामः कामाकृतिमुपेतः ॥

२१ यस्य जनप्रसिद्धमत्सरभरमनवमपास्य चारुणि,
प्रतिहतपक्षपातदानश्रीरुरसि सदा विराजते ।
वसति सरस्वती च सानन्दमनाविलवदनपंकजे,
स जयति जयतु जगति भरतेश्वर सुखमयममलमंगलः ॥

२२ मदकरदलितकुम्भमुक्ताफलकरभरभासुराननाः,
मृगपतिनादरेण यस्योऽद्धृतमनघमनर्घमासनम् ।
निर्मलतरपवित्रभूषणगणभूषितवपुरदारुणा,
भारतमल्ल साऽस्तु देवी तव बहुविधमंबिका मुदे ॥

२३ अंगुलिदलकलापमसमद्युति नखनिकुरंबकर्णिकं

---

१ यही पद्य ५० वें परिच्छेद के प्रारंभ में भी दिया है। २ यह पद्य ९५ वें परिच्छेद के प्रारंभ में भी है। ३ यह १०२ वें परिच्छेद मे भी है। ४ यह ३९ वें परि० में भी है

सुरपतिमुकुटकोटिमाणिक्यमधुव्रतचक्रचुंबितम् ।
विलसद्गुणप्रतापनिर्मलजलजन्मविलासकोमलं
घटयतु मंगलानि भरतेश्वर तव जिनपादपंकजम् ॥

२४ हिमगिरिशिखरनिकरपरिपंडुरधवलियगगनमण्डलं
पुलकमिवातनोति केतकतरुवरतरुकुसमसंकटे ।
विकसितपणिफणासु सुरसरितामणिरुचिगतमधः-
क्षितेरिदमतिचित्रकारि भरतेश्वर जगतस्तावकं यशः ॥

२५ उन्नतातिमनुमात्रपात्रता भाति भद्र भरतस्य भूतले ।
काव्यकीर्तिघटारवो गृहे यस्य पुष्पदंतो दिशागजः ॥

२६ घनधवलताश्रयाणामचलस्थितिकराणां मुहुर्भ्रमताम् ।
गणनैव नास्ति लोके भरतगुणानामरीणां च ॥

२७ गुरुधर्मोद्भवपावनमभिनंदितकृष्णार्जुनगुणोपेतम् ।
भीमपराक्रमसारं भारतमिव भरत तव चरितं ॥

२८ मुखमलिनोदरसद्मनि गुणहृतहृदये सदैव यद्वसति ।
चित्रमिदमत्र भरते शुक्लापि सरस्वती रक्ता ॥

२९ तंत्रीवाद्यैरनिद्यैर्वरकविरचितैर्गद्यपद्यैरनेकैः,
कांतं कुंदावदातं दिशि दिशि च यशो यस्य गीतं सुरौघैः ।
काले तृष्णाकराले कलिमलकलितेप्यद्य विद्याविनोदो
सोयं संसारसारः प्रियसखि भरतो भाति भूमण्डलेऽस्मिन् ॥

३ वंभंडाहंडलखोणिमंडलुच्छलियकित्तिपसरस्स ।
खंडस्स समं समसीसियाए कइणो ण लज्जंति ॥

३३ विनयांकुरसातवाहनादौ नृपचक्रे दिवमीयुषि क्रमेण ।
भरत तव योग्यसज्जनानामुपकारो भवति प्रसक्त एवं ॥

३४ तीव्रापद्दिवसेषु बन्धुरहितेनैकेन तेजस्विना
सन्तानक्रमतो गतापि हि रमाकृष्टा प्रभोः सेवया ।
यस्याचारपदं वदंति कवयः सौजन्यसत्यास्पदं
सोऽयं श्रीभरतो जयत्यनुपमः काले कलौ सांप्रतम् ॥

३५ इति भरतस्य जिनेश्वरसामायिकशिरोमणेर्गुणान्वक्तुम् ।
मातुं च वार्धितोयं चुलुकैः कस्यास्ति सामर्थ्यम् ॥

५६ अत्र प्राकृतलक्षणानि सकला नीतिः स्थितिश्छन्दसा-
मर्थालंकृतयो रसाश्च विविधास्तत्त्वार्थनिर्णीतयः ।
किंचान्यद्यदिहास्ति जैनचरिते नान्यत्र तद्विद्यते
द्वेवे तौ भरतेश-पुष्पदसनौ सिद्धं ययोरीदृशम् ॥

६३ बन्धुः सौजन्यवार्द्धेः कविखलधिषणाध्वांतविध्वंसभानुः
प्रौढालंकारसारामलतनुविभवा भारती यस्य नित्यम् ।
वक्त्रांभोजानुरागक्रमनिहितपदा राजहंसीव भाति
प्रोद्यद्गंभीरभावा स जयति भरते धार्मिके पुष्पदन्तः ॥

६४ आखंडोड्डमरारूचंडमरुकं चंडीशमाश्रित्य यः
कुर्वन्काममकांडतांडवविधिं डिंडीरपिंडच्छविः ।
हंसाडंवरमुंडमंडललसद्भागीरथीनायकं

---

१ यही पद्य २७ वें परिच्छेद में भी दिया है। २ यही पद्य ८८ वें परिच्छेद में भी है। ३ यही पद्य ४० वें परिच्छेद में भी है। ४ पूने की प्रति में यह पद्य तेरहवें परिच्छेद में भी लिखा है।

वांछन्नित्यमहं कुतूहलवती खंडस्य कीर्तिः कृतेः।

६५ आजन्मं कवितारसैकधिषणा सौभाग्यभाजो गिरां
दृश्यन्ते कवयो विशालसकलग्रन्थानुगा बोधतः।
किंतु प्रौढनिरूढगूढमतिना श्रीपुष्पदंतेन भोः
साम्यं बिभ्रति नैव जातु कविना शीघ्रं त्वतः प्राकृतैः॥

६६ यस्येह कुंदामलचन्द्ररोचिः समानकीर्तिः ककुभां मुखानि।
प्रसाधयंती ननु बंभ्रमीति जयत्वसौ श्रीभरतो नितान्तम्॥
पीयूषसूतिकिरणा हरहासहारकुंदप्रसूनसुरतीरिणिशक्रनागाः।
क्षीरोदशेषबलसत्तमहंस चैव किं खंडकाव्यधवला भरतस्तु यूयम्॥

६७ इह पठितमुदारं वाचकैर्गीयमानं इह लिखितमजस्रं लेखकैश्चारुकाव्यम्।
गतवति कविमित्रे मित्रतां पुष्पदन्ते भरत तव गृहेस्मिन्भाति विद्याविनोदः॥

६८ चंचच्चंद्रमरीचिचंचुरचुरचातुर्यचकोरचिता
चंचंती विचरच्चमत्कृतिकविः प्रोद्दामकाव्यक्रियाम्।
अर्चंती त्रिजगत्सुकोमलतया वांधुर्यधुर्या रसैः
खण्डस्यैव महाकवेः सभरताम्नित्यं कृतिः शोभते॥

८० लोके दुर्जनसंकुले हतकुले तृष्णावसे नीरसे
सालंकारवचोविचारचतुरे लालित्यलीलाधरे।
भद्रे देवि सरस्वति प्रियतमे काले कलौ सांप्रतं
कं यास्यस्यभिमानरत्ननिलयं श्रीपुष्पदंतं विना॥

परिशिष्ट नं० ५

(यशोधरचरित के कुछ अंश।)

तिहुयणसिरिकंतहो अइसयवंतहो अरहंतो वम्महहो।
पणविवि परमेट्ठिहिं पविमलदिट्ठिहिं चरणजुयलु णयसयमहहो॥ ध्रुवकम्।
कुंडिल्लगुत्तणहदिणयरासु, वल्लहनरिंदघरमहयरासु।
णण्णहु मंदिरणिवसंतु संतु, अहिमाणमेरु कइ पुप्फयंतु॥
चिंतइ हो वण्ण नारीकहाए, पज्जत्तउ कय दुक्खयपहाए।
कय धम्मणिवद्धी कावि कहवि, कहियाइं जाइ सिव सोक्खलहमि॥

× × ×

अग्गइ कइराउ पुप्फयंत सरसइणिलओ।
देवियहं सरूओ वण्णइ कइयणकुलतिलओ॥[९]

× × ×

इय जसहरमहारायचरिए महामहल्ल णण्णकण्णाहरणे महाकइ पुप्फयंतविरइए महाकव्वे जसहररायपदबंधो नाम पढमो परिच्छेओ सम्मत्तो॥ १॥

निल्यं यो हि पदारविन्दयुगलं भक्त्या नमत्यर्हता-
मर्थं चिंतयति त्रिवर्गकुशलो जैनश्रुतानां भृशम्।
साधुभ्यश्च चतुर्विधं चतुरधीर्दानं ददाति त्रिधा
स श्रीमानिह भूतले सह सुतैर्नन्नाभिधो नंदतात्॥

× × ×

१ शोभमान। २ चपल। ३ चौर्य। ४ समूह। ५ शोभमाना। ६ विगुतत् चमत्कृत्या कवयो यया। ७ अर्च्छंती ८ मनोहरता। ९ यह पद्य बम्बई की प्रति में नहीं है।

नक्षत्राधीशरोचिप्रचयशुचितरोद्दामकीर्त्या निकेतो,
निर्णीताशेषशास्त्रस्त्रिदशपतिनुताशेषवित्पादभक्तः ।
भ्राता भव्यप्रजानां सततमिह भवाम्भोधिसंसारभीरु-
र्नीतिज्ञो निर्जिताक्षः प्रणयधिनयतान्नंदतान्नन्ननामा ॥[1]

× × ×

आश्रान्तदानपरितोषितवन्धवृन्दो दारिद्ररौद्रकरिकुंभविभेददक्षः ।
श्रीपुष्पदन्तकविकाव्यरसाभितृप्तः श्रीमान्सदा जगति नंदतु नन्ननामा ॥[2]

× ×

गंधव्वें कण्हडणंदणेण आयइं भवाइं किय थिरमणेण ।
महु दोसु ण दिज्जइ पुव्वें कइउ कइवच्छराय तं सुत्तु लहई ॥[3]

× ×

पावनिसुंभणि मुद्दावंभणि, उअरुप्पण्णि सामलवण्णि ।
कासवगुत्ति केसवपुत्ति, जिणपयभत्ति धम्मासत्ति ॥
वयसंजुत्तं उत्तमसत्तं, वियलियसंकं अहिमाणंकं ।
पहसियतुंडं कयणा खंडं, रंजियबुहसह कयजसहरकह ॥
जो आयएणइ चंगउ मण्णइ, लिहइ लिहावइ पढइ पढावइ ।
जो मणसावइ सो नर पावइ, विहुणियघणरय सासयसंपय ॥
जणवयनीरसि दुरियमलीमसि, कयनिंदायरि दूसहि दुहयरि ।
पडियकवालए नरकंकालए, बहुरंकालए अइदुक्कालए ॥
पवरागारि सरसाहारि, सन्हइ चेलइ वरतंबोलइ ।
महु उवयारिउ पुण्णिपेरिउ, गुणभत्तिल्लउ णण्णमहल्लउ ॥
होउ चिराउसु वरिसउ पाउसु, तिप्पउ मेइणि धणकणदाइणि ।
विलसउ गोविणि णच्चउ कामिणि, घुम्मउ मद्दलु पसरउ मंगलु ॥
सत्ति वियंभउ दुक्ख निसुंभउ, धम्मुच्छाहिं सहुनरनाहिं ।
सुह नंदउ पय जय परमप्पय, जय जय जिणवर जय भवभयहर ॥
विमलु सुकेवलणाणसमुज्जलु, मह उप्पज्जउ इच्छिउ दिज्जउ ।
मइ अमुणंतइ कव्वु कुणंतइ, जं हीणाहिउ काइवि साहिउ ॥

घत्ता—तं माइ महासइ देवि सरासइ निहयसयलसंदेह दुह ।
महु खमहु भडारी तिहुयणसारी पुप्फयंत जिणवयणरुह ॥ २३ ॥

इयजसहरमहारायचरिए.............चउत्थो परिच्छेओ सम्मत्तो ॥ छ ॥ मंगलमस्तु ।
संवत् १३९० वर्षे आषाढ सुदि १३ शनौ अद्येह श्रीमहाराजाधिराज श्रीसुरत्राण महमदराज्ये दुर्गमंडप पडिगनायागे वगडी नामनि प्राग्वाटवंशीय सा० भावडसंताने सा० मल्हौ पुत्र रामा भ्रातृ देल्हाकेन द्वाभ्यां जसोधरपुस्तिका लेखिता । सा चिरं नंदतु ॥ छ ॥ शुभमस्तु ॥

परिशिष्ट नं० ६

(आदिपुराण की प्रति लिखानेवाले की प्रशस्ति ।)

पणविवि रिसहेसरु थिणिहयपणसरु लोयालोय पयासणु ।
वरमुत्तिरमणवरु जम्ममरणहरु कम्ममहारि विणासणु ॥
भयनयणवाणससहरमिएसु संवच्छरेसु पच्छइ गएसु ।
चित्तकमरायहो सुइसेयपक्ख णवमी बुहवारे सचित्तरिक्ख ॥
गोवगिरीणयरि णिउ डुंगरिंदु, हुउ पयपाडियसामंतविंदु ।

१ यह पद्य तीसरे परिच्छेद के प्रारंभ में है। २ यह पद्य चौथे परिच्छेद के प्रारंभ का है, परन्तु बम्बई और पूने की दोनों प्रतियों में नहीं है। छपी हुई भाषावली प्रति में है । ३ यह पद्य बम्बई की प्रति में नहीं है।

४ मद-नयन-बाण-शशधर मितेषु, अर्थात् वि० संवत् १५२१ । ५ ग्वालियर-गोपाचल । ६ डूंगर सिंहराजा ।

तहो सुउ सकित्तिधवलियदियंतु सिरिकित्ति सिंहु णिचलच्छिकंतु ॥
सिरिकट्ठसंघमंडणु मुणिंदु, गुणकित्ति जईसरु जए अणिंदु ।
जसकित्ति कित्ति मंडिय तिलोउ तहो सीसु मलयकित्ति जिअसोउ ॥
गुणभद्दु भद्दु तहो पट्टि सूरि जें जिणवयणामिउ रसिउ भूरि ।
सिरि जइसवाल-कुलणह ससंकु, सिरि उल्हासाहु सया असंकु ॥
तहो जाया गयसिरि णामधेय, तहि सुअ हंसराजु दया अमेय ।
उल्हा चउधरियहु णारि अण्ण, भावसिरि णाम णियगुणपसण्ण ॥
तहे पुत्त चयारि हयारिमल्ल, सिरि पउमसिंहु जिट्ठउ अतुल्ल ।
लच्छीहरुमाणिकु मणिसमाणु, धेना रायालयदीवमाणु ॥
घत्ता—सिरि हंसराय चउधरिय घरे विजसिरि भज्जा महिया ।
तहे सुय गुणसायर सुहपउरेसर परिमियमयगणरहिया ॥
तहि लल्ला रयणु सुबुद्धिधामु, मयणुजि वीरु मंडहिहाणु ।
सिरि पउमसिंह भज्जा सुपुज्ज, वीराणामें वरगुणसमुज्ज ॥
तहे सुउ सोनिग णामेण धीरु, सूआ घरिणि पसहु जाणि अमीरु ।
धीई वल्लहलडहंगयग्ग, बीधो हिहाण सयदलकरग्ग ।
अण्णजि घरिणी मीया अहिक्ख, सिरि पउमसिंह घरे लीलसिक्ख ।
तहे चारिपुत्त हियापियरचित्त सिरि चित्त चाल डाल्ह विचित्त ॥
तीयउ कुलदीवउ सो पयच्छु, तह मयणपालु चउथउ पसत्थु ।
माणिक माणिणिणं काममल्लि, लखणसिरि णाम णारी मतल्लि ॥
धेणा घरिणिउ णं कामअत्थु, संगहिउ जाहि जिणधम्मवत्थु ।
मयणाभज्जो यति माह भीय णामेण सया सीलेण सीय ॥
लल्ला पिय मणसिरि पढम अण्ण, पट्टो मंगाभिक्खो सुवण्ण ।
सुअ रामचंद्र कुलकमलनंदु, नंदउ चिरु इह णं बीयचंदु ।
नंदा पूना वे भज्जजुत्तु, चिरु जीवउ वीरु कमलवत्तु ॥
एयाहं मज्झि सिरि पोमसिंह, जिण सासणणंदणवणहसिंहु ।
विज्जुलचंचलु लच्छी सहाउ, आलोइवि हुउ जिणधम्मभाउ ॥
जिण गंथु लिहाविउ लक्खु एक्कु, सावयलक्खाहारातिरिक्कु ।
मुणि भोयणु भुंजाविय सहासु, चउवीस जिणालउ किउ सुभासु ॥
धना चउधरेय निमित्तु दव्वु, तणज्जिउ लाइवेज्ज अउव्व ।
पुरुएवजिणायदणु जि विचित्तु, ससिहरु सुपाडिहेरहजुत्तु ॥
णिम्माविउ भववुहि जाणवत्तु, रयणत्तयजुयजुयपासजुत्त ।
कारिय पइठ्ठ जिणसमइ दिट्ठ, अवलोइवि सयल सचित्तिहिट्ठ ॥
घत्ता—णंदउ सिरिहंसराउ सुहउ, णंदउ पउमसिंहु ससुउ ।
णंदउ परिवारु लच्छिकलिउ, णंदउ लोउ गुणोह जुउ ॥
आयासस्स जिणस्स य जिह अंतं कोवि लहइ न गुणस्स ।
सिरि पोमसिंह तिह ते को पारइ गुणणिहाणस्स ॥ १
सिरि पउमसिंह पउमं इह लोए जइ ण होंतु ता पउमा ।
कीला कत्थ करंती सुदाणपूया विणोएहिं ॥ २ ॥

---

४ कीर्तिसिंह, डूंगरसिंह का पुत्र । ५ गुणकीर्ति यतीश्वर । ६ यशः कीर्ति । ७ मलयकीर्ति—यशः कीर्ति के शिष्य । ८ जिनवचनामृतरसिक । ९ गयसिरि जाया—गजश्री नामकी भार्या । १० ज्येष्ठ—जेठा ।

प्रो. ल्युमन अने आवश्यक सूत्र



जर्मनीना प्रसिद्ध प्रोफेसर ल्युमन जैन आगमोना घणा ऊंडा अभ्यासी छे. लगभग अर्धा सैका जेटला लांबा समयथी तेओ जैन साहित्यनुं अवगाहन करता आव्या छे अने अनेक जैन सूत्रो-ग्रन्थोना मूळ, निर्युक्ति, भाष्य, टीका, टिप्पणी आदिने अर्वाचीन शास्त्रीय पद्धतिए संशोधित-अनुवादित करी तेमणे प्रकाशमां आण्या छे.ए बधामां आवश्यकसूत्र अने तेने लगता साहित्य उपर जे तेमणे अथाग परिश्रम उठाव्यो छे अने ते विषयमां जे निबन्धो आदि लख्या छे ते तो खरेखर तेमनी जैन साहित्य विषयक सूक्ष्म-प्रवीणतानी आश्चर्य-कारक साक्षी आपे छे.

जर्मनीना लीप्झीक शहेरमांथी प्रकट थती ओरिएन्टल सोसायटीनी ग्रन्थमाळा (Abhandlungen fur die Kunde des Morgenlandes) मां आवश्यक-कथा (Die Avashyaka Erzahlungen) नामे एक ग्रन्थ छपाववानी तेमणे सुरुआत करी हती, जेमां आवश्यक सूत्रनी चूर्णि अने टीकामां आवती बधी कथाओ मूळ रूपे आपी, जुदी जुदी प्रतोमां मळी आवतां तेमनां पाठान्तरो तथा बीजा बीजा ग्रन्थोमां मळी आवतां रूपान्तरोनी घणी विस्तृत रूपरेखा आलेखवानी तेमनी इच्छा हती. परंतु, ते माटे जोइतां बधां साधनो-भाष्य, चूर्णि, टीका आदिनी जुदी जुदी प्रतो विगेरे-न मळी शकवाथी, पचासेक पानां छापी तेमने ए कार्य बन्ध करवुं पड्युं हतुं. ते दरम्यान सने १८९४ मां जिनेवा (Geneve) मां भराएली इन्टर नेशनल ओरिएन्टल कोंग्रेसमां वांचवा माटे आवश्यकसूत्र साहित्य उपर जर्मन भाषामां एक विस्तृत निबंध तेमणे तैयार कर्यो हतो जेमां आवश्यक सूत्रने लगतुं जेटलुं साहित्य मळी आवे छे तेनुं अतिसूक्ष्मरीते विवेचन कर्युं हतुं.ए निबन्ध (Uebersicht uber die Avashyaka-Litteratur) ना नामे तेमणे स्वतंत्ररीते प्रकट कर्यो छे; जेना डेमी साइझना आखा कागळ जेवडा ५० उपर पानां छे. एमां प्रथम श्वेतांबर अने दिगंबर बंने जैन संप्रदायोमां आवश्यकने शुं स्थान छे ते बताव्युं छे; अने पछी आवश्यक सूत्रनी भद्रबाहुकृत निर्युक्तिमां आवता बधा विषयोनो बहु खूबी भरेलो सार आप्यो छे. ए सारमां साथे साथे निर्युक्तिमां आवता विषयोने बीजां बीजां सूत्रो अने भाष्यो विगेरेमां आवता तेज विषयो साथे, कोष्टको करी करी गाथाओवार सरखाव्या छे. आवश्यकचूर्णि अने हरिभद्रकृत टीकामां परस्पर जे जे विशेष छे ते सघळा मूळ पाठो साथे समजाव्या छे. पछी जिनभद्र क्षमाश्रमणकृत विशेषावश्यक भाष्यनुं लंबाणथी विवेचन कर्युं छे. एमां पण पहेलां, विशेषावश्यक ए शुं छे, तेनी टीका विगेरे कोणे करेली छे, ए बताव्युं छे; अने त्यार बाद निर्युक्तिनी गाथाओने भाष्यना विवरण साथे विषयवार समजावी छे. अने ए उपरांत पछी आखा भाष्यनो सार आप्यो छे. एटलुं करीने पण ए जर्मनदेशीय गीतार्थने संतोष न थयो तेथी ए निबन्धनी एक जूदी पूर्ति करी छे, जेमां विशेषावश्यक भाष्यनी शीलांकाचार्यकृत प्राचीन अने दुर्लभ्य टीकामां जे जे विशेष विशेष उल्लेखो छे ते बधा मूळरूपे गाथावार छपावी दीधा छे अने छेवटे ए टीकानी सौथी जूनी ताडपत्रनी प्रति जे हालमां पूनाना भांडारकर

ओरिएन्टल रीसर्च इन्स्टीटयुटमां सुरक्षित छ, तेना अतिजीर्ण शीर्णथएलां केटलांए पानाना फोटोग्राफस् आप्या छे.[1]

प्रो० ल्युमनना अथाग परिश्रम भरेला ए आखा निबन्धनो- अविकल गुजराती अनुवाद करावबानो अमारो विचार चाली रह्यो छे पण कमनसीबे हजी अमने ए निबन्धनी पूरी नकल मळी नथी. पूनाना भांडारकर ओ० री० इन्स्टीटयूटमांना सर भांडारकरना पुस्तकसंग्रहमांथी फक्त एना कटेलाक मुफसीटस् ज अमने जोवा मळ्या छे, जे प्रो०ल्यूमने डॉ०भांडारकरने, ए निबन्ध छपाती वखते, पूनानी प्रतो साथे सरखावी जोवा माटे मोकल्या होय एम देखाय छे. ए संबन्धमां खुद प्रो० ल्युमनसाथे ज अमारो पत्रव्यवहार चाले छे जेनो सविस्तर खुलासो मळतां भाषांतरनी व्यवस्था करवामां आवशे. ते दरम्यान, जैन साहित्य संशोधकना वाचकोने ए अमूल्य निबन्धनो कांइक परिचय थाय तेटला माटे मजकुर प्रोफेसरे ए निबन्धमां आवश्यक निर्युक्ति अने विशेषावश्यक भाष्यमां आवता गणधरवाद नामे विषयना उपर जे एक प्रकरण लख्यूं छे तेनो अनुवाद आपीए छीए. ए अनुवाद कार्यमां , मि. आर. डी. वाडेकर, बी. ए. नामना सज्जने जर्मन भाषा समजाववा माटे जे सहायता अर्पी छे तेनी आभार साथे अमारे अहीं खास नोंध लेवी जोईए.

भारत जैन विद्यालय; पूना
वैशाख; संवत् १९७९
—मुनि जिन विजय
—केशवलाल, प्रे. मोदी.

विशेषावश्यकभाष्य अने तेनी टीकामां मळी आवतां वैदिक अने दार्शनिक अवतरणो.

आवश्यक निर्युक्तिना छट्ठा भागनी १ थी ६४ मी सुधीनी गाथाओमां गणधरवाद नामे विषय आवेलो छे. एमां केवी रीते महावीरे ११ ब्राह्मणोना तत्त्वज्ञान विषयक संशयो दूर करी, शिष्यो साथे तेमने पोताना शिष्यो बनाव्या एनुं टूंकुं अने एक ज प्रकारनुं वर्णन आपेलुं छे. ए अग्यारे ब्राह्मणो महावीरना मुख्य शिष्य होई गणधरो कहेवाय छे. शरुआतमां २ थी ७ सुधी गाथामां संक्षेपमां गणधरोनो टूंक परिचय अने संशयात्मक विषयनी नोंध आपी छे अने पछी ८ थी ६४ सुधी गाथामां तेनो ज विस्तार आपेलो छे. गाथावार हकीकत आ प्रमाणेः—

२. *उन्नत अने विशालकुळमां उत्पन्न थएला अग्यारे ब्राह्मण पावानामक स्थानमां सोमिल* ब्राह्मणे आरंभेला यज्ञपाटकमां आवेला हता.

३—४. तेमनां नाम—

१ इन्दभूइ
२ अग्गिभूइ
३ वाउभूइ
४ वियत्त
५ सुहम्म
६ मण्डिय
७ मोरियपुत्त
८ अकंपिय
९ अयलभाय
१० मेयज्ज
११ पहास

५. आ अग्यारेमांथी फक्त एक सुधर्म (५मा गणधर) नीज शिष्य परंपरा आगळ चाली. बाकीना कोईनो शिष्य समुदाय रह्यो नहीं.

---

१ ए आखा पुस्तकना अमे पण फोटोग्राफस् पडाव्या छे. खरेखर ए प्रति एक दर्शनीय प्रति छे अने एना ए फोटोग्राफसूनी नकल दरेक पुस्तक भंडारमां मुकवामां आवे एवी आमारी खास भलामण छे.

६ ट्ठी गाथामां क्रमथी ए अग्यारेना मनमां जे जे बावतनो संशय हतो तेनी नोंध छे अने ते आ प्रमाणे छे —

जीवे[1] कम्मे[2] तज्जीव[3] भूय[4] तारिसय[5] बन्ध-मोक्खे[6] य।
देवा[7] नेरइया[8] वा पुण्णे[9] परलोग[10] निव्वाणे[11] ॥ ६ (५९६)

७. पहेला पांचे गणधरोने ५००-५०० शिष्यो हता; ६-७ ने ३५०-३५० अने छेल्ला ४ ने ३००-३०० शिष्यो हता.

महावीर दरेकने नाम गोत्र पूर्वक बोलावे छे अने पछी तेना मनना संशयनुं नाम लई, 'तुं वेदना पदोनो अर्थ जाणतो नथी, तेनो अर्थ आ प्रमाणे छे' एम एक ज प्रकारनो जवाब आपे छे. गाथावार गणधरोनो उल्लेख आ प्रमाणे —

१७.	पहेलो	गणधर,	जीव विषयक	संशयः
२५.	बीजो	,,	कर्म विषयक	,,
३१.	त्रीजो	,,	तज्जीव तच्छरीर वि०	,,
३५.	चोथो	,,	पञ्च भूत वि०	,,
३९.	पांचमो	,,	सदृशोत्पत्ति वि०	,,
४३.	छठ्ठो	,,	बन्ध मोक्ष वि०	,,
४७.	सातमो	,,	देवसृष्टि वि०	,,
५१.	आठमो	,,	नरकसृष्टि वि०	,,
५५.	नवमो	,,	पुण्य विषयक	,,
५९.	दशमो	,,	परलोक वि०	,,
६३.	अग्यारमो	,,	निर्वाण वि०	,,

आ अग्यारे गणधरोना मनना संशयनो महावीरे जे खुलासो कर्यो हतो तेनो उल्लेख मूळ निर्युक्तिमां करवामां आव्यो नथी. निन्हवोनी हकीकतनी पेठे ज ए हकीकत पण निर्णय वगर ज आपवामां आवेली छे. चूर्णिमां फक्त पहेला गणधरना संशयनो खुलासो करवानो थोडोक प्रयत्न करवामां आव्यो छे. पण जिनभद्र आ बाबतनो घणो उत्तम विस्तार करे छे. ए विषय माटे तेमणे ४०० उपरांत गाथाओ लखी छे अने तेना विवरणमां घणी विशेष वातो आपी छे. हरिभद्रसूरि आ विवरणमांथी घणांक अवतरणो पोतानी टीकामां ले छे अने ए ज अवतरणो विशेषावश्यक भाष्यमांना गणधरवादनी टीकाओना आधारभूत बने छे. वळी हरिभद्रनी टीका उपरथी किञ्चिद्गणधरवाद नामनो पण एक ग्रन्थ लखायो छे, जेमां केटलोक वधारे विस्तार करवामां आवेलो होई वेदनां घणां खरां अवतरणो उपरांत छठ्ठी अने ते पछी आवती गाथामांनी हकीकतनुं पण निरूपण करेलुं छे. आनी श्लोक संख्या लगभग २५० जेटली छे अने पूनाना पुस्तकभंडारमां नं० १६; २९१ वाळी प्रतना २० थी २३ मा सुधीना पानाओमां ए लखेलो छे. दशवैकालिकनी लघुवृत्तिमां पण संक्षेपथी आ विषय चर्चेलो छे.

आ विषयने लगता जे केटलांक वैदिक अने दार्शनिक अवतरणो जिनभद्र आपे छे अने तेमनो जे अर्थ जैन मतानुसार करे छे ते जाणवां जेवां छे. आमांनां घणां खरां अवतरणो तो तेमणे फक्त

पोतानी टीकामां ज आपेलां छे; पण ते स्वोपज्ञ टीका उपलब्ध नथी। तेथी हरिभद्र, शीलांक अने हेमचन्द्र–के जेमणे ए स्वोपज्ञ टीकानो पोतानी टीकाओमां उपयोग कर्यो छे–तेमणे ए अवतरणो लीधेलां होवाथी आपणे ए टीकाओमांथी ज ते लेवानां छे. भाष्यना मूळमां ज जे अवतरणो आपेलां छे ते खास काळा अक्षरोमां आपवामां आव्यां छे. वाकीनां कया टीकाकारे कयां अवतरणो लीधां छे ते जुदी जुदी रीते बतावबामां आव्यां छे. ए अवतरणो कया ग्रन्थोमांथी लेवामां आवेलां छे तेनो कांई उल्लेख टीकाकारो करता नथी. तेथी जेकबना उपनिषद्वाक्यकोष अने बीजां तेवां वेदसंबंधी पुस्तको उपरथी घणांकनां स्थळे। खोळी काढवानो प्रयत्न कर्यो छे. ए तो चोकस छे के जे अवतरणो जिनभद्रे लीधां छे ते घणां प्रमाणभूत छे अने तेमना वखतना ब्राह्मणो वादविवादमां ए वाक्योनी खूब चर्चा करता होवा जोईए. ब्राह्मणोनां दर्शनशास्त्रोमां परस्पर विरुद्ध विचार दर्शावनारां ए वाक्यो उपरथी दरेक गणधरनो संशय उभो करवामां आव्यो छे. प्रसिद्ध उपनिषदोना मूळ पाठो साथे सरखावतां ए वाक्योमां जे केटलीक भूलो नजरे पडे छे तेनुं कारण बिनकाळजीपूर्वक एओनो उपयोग करवामां आवेलो होवुं जोईए.

×२, ५ (१५५१).

Ⓢ(यथाहुर्नास्तिकाः)[४]

†१[१] एतावानेव पुरुषोऽयं यावानिन्द्रियगोचरः ।
भद्रे, वृकपदं पश्य यद् वदन्ति बहुश्रुताः[६] ॥ *
I पिब खाद च साधु शोभने यदतीतं वरगात्रि तन्न ते ।
न हि भीरु गतं निवर्तते, समुदयमात्रमिदं कलेवरम् ॥ *
(भट्टोऽप्याह)

× आ अंक ते प्रो॰ ल्युमने पोताना मूळ निबन्धमां विशेषावश्यकभाष्यना जे ५ विभागो पाडया छे तेना सूचक छे. एमां पहलो अंक प्रकरणने अने बीजो– गाथानंबरने सूचवे छे. आ पछी जे कौंसमां आंकडा आपेल छे ते काशीनी यशोविजय जैनग्रन्थमाळामां प्रकट थएल सटीक विशेषावश्यकभाष्यमांनी चालू गाथासंख्या सूचवे छे. मुद्रित ग्रंथमां १५४८ मी गाथा ज्यां पूरी थाय छे त्यां उक्त प्रो॰ ना वर्गीकरण प्रमाणे प्रथम विभाग पूरो थाय छे अने १५४९ मी गाथाथी बीजो विभाग शरू थाय छे ते २०२४ मी गाथाए पूरो थाय छे . ए विभागमां गणधरवाद नामनो विषय आवे छे अने तेनी कुल ४७६ गाथा छे.

Ⓢ–( ) आवा गोळ कौंसमां आपेला पाठो आवश्यकसूत्रनी हारिभद्री टीकामां आपवामां आवेला नथी; तेम ज [ ] आवा चौखुणा कौंसमां आपेला पाठो विशेषावश्यक भाष्यनी शीलांकाचार्यकृत टीकामां आपेला नथी; एम समजवुं.

† आ अंको आवश्यकनी हारिभद्री टीकामां दरेक गणधरना माटे जे शंका-समाधानात्मक अवतरणो आपवामां आवेलां छे तेनो क्रमनिर्देश सूचवे छे. एमांनो मोटो अक्षर ए गणधरनी संख्या बतावे छे अने तेनी आगळ जे नानो अक्षर छे ते अवतरणनी संख्या जणावे छे.

I आ चिन्हवाळां अवतरणो फक्त आवश्यक चूर्णिमां ज मळी आवे छे.

* आ बन्ने श्लोको हरिभद्रकृत षड्दर्शनसमुच्चयना छेवटना लोकायत प्रकरणमां, श्लोक ८१–८२, छे (मुद्रित पृ० ३०१, ३०४, कलकत्ता) त्यां बीजा श्लोकनो प्रथम पाद ' पिब खाद च चारुलोचने ' आ प्रमाणे छे.

२. शीलांकाचार्यनी टीकामां 'यथाहुः' पाठ छे. ३. शी. टी. 'एके.' ४. चूर्णिमां 'एके आहुः' एटलो ज पाठ छे.

५. विशेषावश्यकनी हेमचंद्रकृत टीकानी केटलीक प्रतोमां आना ठेकाणे ' लोकोऽयं ' पाठ छे.६. चू॰ शी॰ ह. हे॰ नी केटलीक प्रतोमां ' वदन्त्यबहुश्रुताः ' पण पाठ छे.

११[१]३[१]१०[१] विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति, न प्रेत्य सञ्ज्ञास्ति ।

— बृहदारण्यकोपनिषद् २, ४, १२.—आगळ गाथा ३९अने १३७, नी टीकामां, (मुद्रित पृष्ठ ६८० तथा ७२० मां) पण आ अवतरण आवे छे. तथा भाष्यना मूळमां, गाथा ४०[२], ४१[४], ४२[१] (मु० पृ० ६८१) मां आ अवतरण अनुवादित छे.

१४ (सुगतस्त्वाह)[७]

न रूपं भिक्षवः पुद्गल इति [आदि]

अन्ये त्वाहुः

[वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराण्यपराणि जहाति गृह्णाति च पार्थ जीवः ॥[८]

[(तथा च वेदः)]

६[१] न ह वै सशरीरस्य प्रियाप्रिययोरपहतिरस्ति, अशरीरं वाव सन्तं प्रियाप्रिये न स्पृशतः ।

—छान्दोग्योपनिषद् ८,१२,१.—आगळ (गाथा) ४३.१०३. २५६. ३१३ नी टीकामां (मुद्रित पृष्ठ ६८२. ७०६. ७५९. ७७७ मां) पण आ अवतरण उध्दत छे. तथा भाष्य–मूळ गाथा ३१३[१]=४६७[१] (मु. पृ. ७७७. ८३१) मां आ अवतरण अनुवादित छे.

([तथा] अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः)

मैत्र्युपनिषद् ६,३६.—आगळ गाथा ४३. ९५. २५२. ३३४. (मु. पृ. ६८२. ७०२. ७५८. ७८४) नी टीकामां पुनः उध्दत. मूळ गाथा ९२[२]= १३६[२]= ३९९[२] =४२२[२]; (मु. पृ. ७००. ७२०. ८०७. ८१४) मां अनुवादित. गाथा ३३४. (मु. पृ. ७८४) मां सूचित । सरखावो–हरिभद्रनी आवश्यकवृत्तिमां चैत्यवन्दनवृत्ति आव०५.११; तथा शास्त्रवार्तासमुच्चय ६०५, वळी ए छेल्ला ग्रन्थना १५७ मा श्लोकमां आना जेवुं ज एक अवतरण छे जे तैत्तिरीयसंहिताना २ जानी आदिमां छे.

([कापिलागमे तु प्रतिपाद्यते]

१५ अस्ति पुरुषः) अकर्ता निर्गुणो भोक्ता[९] (चिद्रूपः)

---

७. आना ठेकाणे ह० मां ' तथा ' पाठ छे. ८. भगवद्गीता २, २२ (महाभारत ६, ९००) मां उत्तरार्द्ध आ प्रमाणे छे:—

तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

– चूर्णिमां एक बीजुं वधारे नीचे प्रमाणेनुं अवतरण छे:—

कायो अरूवो मुत्तो निच्चो कत्ता तहेव भोत्ता य ।
तणुमेत्तो गुणवन्तो उड्ढ-गई वण्णिओ जीवो ॥

सरखावो–दशवैकालिक निर्युक्ति गाथा २२७ अने ते पछीनी. (मु. पृ० १२१)

९ सूत्रकृतांग १, १,१-१४ नी टीकामां शीलांकाचार्य ' तथा चोक्तं ' कहीने आ अवतरण नीचे प्रमाणे आपे छे:—

१० [नीलविज्ञानं मे उत्पन्नमासीत्] सरखावो—सर्वदर्शनसंग्रह पृ. १९,७-१०

(एक एव हि भूतात्मा भूते भूते प्रतिष्ठितः ।
२,१३(१५८०). एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥[१०]

—ब्रह्मबिन्दु-उपनिषद् १२. यशस्तिलक चम्पू, आश्वास ६, कल्प १. (पृ.२७३ निर्णयसागर)

यथाविशुद्धमाकाशं तिमिरोपप्लुतो जनः ।
सङ्कीर्णमिव मात्राभिर्भिन्नाभिरभिमन्यते ॥
तथेदममलं ब्रह्म निर्विकल्पमविद्यया ।
कलुषत्वमिवापन्नं भेदरूपं प्रकाशते ॥
"ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥"

—भगवद्गीता१५-१; (महाभारत ६-१३८३.)

२[१]१[१] पुरुष एवेदं ग्निं ‡ सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यं ।[११]
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥

—वाजसनेयी संहिता ३१, २.; श्वेताश्वतरोपनिषद् १-१५.

अकर्ता निर्गुणो भोक्ता आत्मा सांख्यनिदर्शने ।
स्याद्वादमञ्जरी, श्लोक १५ मां मल्लिषेण आखो श्लोक आ प्रमाणे आपे छेः—

अमूर्तश्चेतनो भोगी नित्यः सर्वगतोऽक्रियः ।
अकर्ता निर्गुणः सूक्ष्म आत्मा कापिलदर्शने ॥ (बनारस, यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, पृ. ११३

षड्दर्शनसमुच्चयनी टीकामां गुणरत्न पण आ श्लोक उध्दृत करे छे. (जुओ कलकत्ता आवृत्ति, पृ. १०५) वळी सरखावो—षड्दर्शनसमुच्चय, मूळ श्लोक ४१.

१० ब्रह्मबिन्दूपनिषद् (आनन्दाश्रम मुद्रित, पृ. ३३८) मां बीजो पाद 'भूते भूते व्यवस्थितः' आ प्रमाणे छे, अने यशस्तिलक चम्पू (निर्णयसागर-मुद्रित, पृ. २७३-उत्तर भाग) मां बीजा अने त्रीजा पादनो पाठ-'देहे देहे व्यवस्थितः । एकधानेकधा चापि—' आ प्रमाणे छे. वळी, शीलांकाचार्यनी आचारांगसूत्र टीका (आगमोदय समिति मुद्रित, पृ. १८) अने सूत्रकृतांग सूत्र टीका (आ. स. मु. पृ. १९) मां पण आ श्लोक उध्दृत छे.

११. उपनिषद्मां 'भव्यं' पाठ उपलब्ध थाय छे.

‡ प्रो. ल्युमन आ शब्द उपर एक नीचे प्रमाणेनी खास नोंध करे छेः "केटलाक प्रसिद्ध उपनिषदोमांथी जैन विद्वानोए लीधेलां आ अवतरणो सैकाओ सुधी बहु ध्यान खेंचाया. वगर ज लखातां आवतां हतां अने तेथी जैनोए करेलो तेमनी नोंधमां स्वाभाविकरीते ज केटलीक भूलो थएली छे. उदाहरण तरीके—२[१] मानुं ग्निं तथा ७[२] नुं अवतरण."—आमांना प्रथम ग्निं शब्द ऊपरनी नोटमां ते लखे छे के—" वर्तमानमां वैदिक वाङ्मयना हस्तलिखित ग्रन्थोमां अनुस्वार माटे जे चिन्ह वपराय छे, ते ८ मा सैका अगर तेथी पहेलां ग्निं अक्षर जेवुं देखातुं हशे अने तेथी वैदिक चिन्हथी अजाण एवा जैन ग्रन्थकारोए तेने एक खास शब्द मानी लीधेलो लागे छे. अने तेथी तेमणे 'पुरुष एवेदं सर्वं' ए असल वाक्यमां ग्निं शब्द वधारी 'दं' ना 'द'-उपर बीजो अनुस्वार चढावी दीधो होय एम जणाय छे." —प्रो. ल्युमननी आ नोंध अमने जरा विचारणीय लागे छे. लिपिभेदना ज्ञानना अभावे एवी भूलो थवी जो के घणी संभवित मात्र ज नथी पण सुज्ञात छे. दाखला तरीके जैन लिपिमां 'ग्ग' अक्षरने

२² • यदेजति यन्नैजति यद्दूरे यद्वान्तिके ।
यदन्तरस्य सर्वस्य यदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥[१२]

—वाजसनेयी संहिता ४०, ५.

२,५० (१५१८). १६ [तथा] श्रुतौ [अपि] उक्तं–

अस्तमिते आदित्ये याज्ञवल्क्य चन्द्रमस्यस्तमिते शान्तेऽग्नौ शान्तायां वाचि किंज्योतिरेवायं पुरुषः ? 'आत्मज्योतिः सम्राडि'ति होवाच ।

—बृ. आ. उप. ४, ३, ६; आमांना केटलांक वाक्यो ए ज उपनिषद्ना ४, ३, २ मां पण आवे छे. भाष्यनी मूळ गाथा २, ५० मां पण आ अवतरण अनुवादित छे.

२,९१ (१६४३). (स सर्वविद् यस्यैवा महिमा भुवि दिव्ये ।
ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा सुप्रतिष्ठितः ॥[१३]

–मुण्डकोपनिषद्, २, २,७. पूर्वार्ध.

तमक्षरं वेदयतेऽथ यस्तु स सर्वज्ञः सर्ववित् सर्वमेवाविवेश ॥ [१४]

—प्रश्नोपनिषद्, ४, ११. उत्तरार्ध.

एकया पूर्णाहुत्या सर्वान् कामानवाप्नोति । [१५]

—सरखावो, तै० ब्रा० ३, ८, १०, ५.

बदले घणा भागे जूना लहिआओ 'म्र' आवा रूपमां लखता. ए रूपने बराबर न समजवाथी प्रो. वेबरे बर्लिन लाईब्रेरीना म्येनुस्क्रिप्ट्स् केटलॉगमां 'समुग्रय' जेवी शब्दोनी रोमन जोडणी: 'Samugrya' आवी खोटी करी घणो घोटाळो उभो कर्यो छे. एवी ज रीते बीजा विद्वानोना हाथे पण भ्रम थई शके ते स्पष्ट छे. पण अमने अहिं बीजी रीते ए नोंध विचारणीय लागे छे; अने ते ए छे के आवश्यकटीका कर्ता हरिभद्रसूरिने वैदिक साहित्य के तेना संकेतथी अपरिचित मानी शकाय तेम नथी. कारण के ते पोते जैन दीक्षा लीधा पहेलां जातिए ब्राह्मण अने विद्याए सर्वशास्त्र निष्णात हता, ए सुविश्रुत छे. अने जो ते वात बाजुए मूकिए तो पण तेमणे जुदा जुदा दर्शनो अने मतोना विषयमां जे अनेकानेक अपूर्व अने गहन ग्रन्थो लख्या छे; तेम ज सांख्य,वेदांत, न्याय, मीमांसा आदि वैदिक संप्रदायोनी जे खूब सूक्ष्म रीते आलोचना–प्रत्यालोचना करी छे ते जोतां स्पष्ट जणाय छे के तेओ वेद, ब्राह्मण, सूत्र, स्मृति अने उपनिषदोना घणा ऊंडा अभ्यासी अने ज्ञाता हता. तेथी तेमना जेवा विद्वान् आवा आबाल–प्रसिद्ध अनुस्वारना चिन्हने न समजी शके अने तेने कांइ बीजुं ज कल्पी ले, ए मानवुं बिलकुल अशक्य छे. हरिभद्रसूरि आ शब्दने 'मिं' कहे छे अने एने वाक्यालंकार रूपे उक्त वाक्यमां वपराएलो लखे छे.—(मिमिति वाक्यालंकारे —आवश्यकसूत्र, आ. स. पृ. २४४) वर्तमान उपनिषदोमां पण पाठ–भेद अने पाठ–फेर क्यां ओछा थएला छे जेथी आपणे जैन विद्वानोना आवा पाठान्तरोने एकदम भ्रमोत्पन्न कही शकिए.

१२. ईशावास्योपनिषद्मां पण आ श्रुति आवेली छे अने त्यां 'यद्'ना ठेकाणे सर्वत्र 'तद्' पाठ मळे छे.

१३. उपलब्ध उपनिषद्मां वर्तमान पाठ आ प्रमाणे छेः–

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्यैष महिमा भुवि । दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः ॥

१४. वर्तमान पाठ आ प्रमाणे–

तदक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य स सर्वज्ञः सर्वमेवाविवेशेति ।

—हरिभद्रसूरिए शास्त्रवार्तासमुच्चय, ६२४, मां पण आ अवतरणो सूचवेल छे (मुद्रित पृ० ३८५).

१५. हरिभद्रसूरिए पोतानी ललितविस्तरा नामे चैत्यवन्दनवृत्ति ५–११ (मुद्रित पृ० १११) मां पण आ अवतरण उद्धरेल छे. –तैत्तिरीय ब्राह्मण ३, ८, १०, ५, मां आने मळती हकीकतनो आ प्रमाणे उल्लेख आवेलो छेः—

एष वः प्रथमो यज्ञो योऽग्निष्टोमः, योऽनेनानिष्ट्वाऽन्येन यजते, स गर्तमभ्यपतत् ।

—ताण्ड्यमहाब्राह्मण १६, १, २.

द्वादश मासाः संवत्सरो—[१६]

—तै० सं० ५, २, ५. ५.

अग्निरुष्णो—

अग्निर्हिमस्य भेषजं—[१७]

— वा० स० सं० २३, १०=तै० सं० ७,४,१८,२.

२,१०१ (१६४९). ३२ सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष
ब्रह्मचर्येण नित्यस् ।
ज्योतिर्मयो हि शुद्धो
यं पश्यन्ति धीरा यतयः संयतात्मानः ॥ [१८]

—मुण्ड० उ० ३, १, ५. हेमचन्द्र वळी २, १३७ मी गायानी टीकामां पण आ अवतरण टांके छे.

२, १२६ (१६७४). (एक विज्ञानसन्ततयः सत्त्वाः ।
[यत् सत् तत् सर्वं क्षणिकम्])[१९]
([क्षणिकाः सर्वसंस्काराः])[२०]—आ वाक्य अभयदेवसूरिए भगवती सूत्रनी टीका ३०, १ मां तथा मलयगिरिए नन्दिसूत्रनी टीकामां पण टांकेलुं छे. वळी जुओ षड्दर्शनसमुच्चयनी गुणरत्नकृत टीका १.

२, १४१ (१६८९). ४१ स्वप्नोपमं वै सकलमित्येष ब्रह्मविधिरञ्जसा विज्ञेयः ।
४२ द्यावा पृथिवी ।
४३ पृथिवी देवता [आपो देवता]—शीलांकाचार्य आ अवतरण आ पछीनी गाथामां आपे छे.

२,२२४ (१७७२). ५१ पुरुषो वै पुरुषत्वमश्नुते, पशवः पशुत्वम् । —हेमचंद्र आ अवतरण

यो दीक्षामतिरेचयति । सप्ताहं प्रचरन्ति । सप्त वैशीर्षण्याः प्राणाः । प्राणा दीक्षा । प्राणैरेव प्राणं दीक्षामवरुन्धे । पूर्णाहुतिमुत्तमां जुहोति । सर्वं वै पूर्णाहुतिः । सर्वमेवाप्नोति । अथो इयं वै पूर्णाहुतिः । अस्यामेव प्रतितिष्ठति ।

१६. आखुं वाक्य आ प्रमाणे छेः—' द्वादश मासाः संवत्सरः संवत्सरेणैवास्या अन्नं पचति यदग्निचित् । '

१७. पूरुं अवतरण आ प्रमाणे–' सूर्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः । अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत्॥

१८. उपनिषद्मां उपलब्ध पाठ आ प्रमाणे छे—
सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।
अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥

१९. द्रष्टव्य—चन्द्रप्रभसूरिकृत प्रमेयरत्नकोष ८, पृ. ३० । –महापण्डित रत्नकीर्तिकृत क्षणभङ्गसिद्धिप्रकरण (बिब्लिओथिका इण्डिका) पृ० ५४, मां आ वाक्य 'यत् सत् तत् क्षणिकम् ' आ प्रमाणे छे. वळी, जुओ रत्नप्रभकृत रत्नाकरावतारिका परिच्छेद ५.(यशोविजय जैनग्रन्थमाला मुद्रित, पृ० ७६)

२०. ए आखो श्लोक आ प्रमाणे छे–
क्षणिकाः सर्वे संस्कारा अस्थितानां कुतः क्रिया । भूतिर्येषां क्रिया सैव कारकं सैव चोच्यते ॥

२, २५२—चालु गाथा १८००—मां पण आवे छे.

५[२] शृगालो वै एप जायते यः सपुरीपो दह्यते।

आ अवतरण वळी आगळ २, २५२–चालु गाथा १८००–नी टीकामां आवे छे; तथा मूळ भाष्य २, २५२ मां पण सूचित छे.

२, २५२ (१८००). [(अग्निष्टोमेन यमराज्यमभिजयति।)]

—मैत्र्युपनि० ६, ३६.

२, २५६ (१८०४). ६[१] स एप विगुणो विभुर्न बद्ध्यते संसरति वा,

न मुच्यते मोचयति वा। —सरखावो सांख्यकारिका ६२.

न वा एप वाह्यमभ्यन्तरं वा वेद।

—सरखावो, बृहदारण्यकोपनिषद् ४, ३, २१.

२, ३१८ (१८६६). ७[१] स एप यज्ञायुधी यजमानोऽञ्जसा स्वर्गलोकं गच्छति।

—शतपथ ब्राह्मण १२, ५, २, ८. वळी शीलांकाचार्य आगळ २,४०३—चालु गाथा१९५१—नी टीकामां पण आ अवतरण ले छे.

७[२] अपाम सोमास्, अमृता अभूम,

अगमन् ज्योतिः, अविदाम देवान्।

किं नूनमस्मान् तृणवदरातिः,

किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य॥

ऋग्वेद संहिता ८, ४८, ३; तथा अथर्वशिरा उपनि० ३.[२१]

७[३] [को जानाति मायोपमान् गीर्वाणान् इन्द्र-यम-वरुण-कुबेरादीन्?]—वळी २, ३३४—चालु गाथा १८८२–नी टीकामां पण आ अवतरण छे.

२, ३३५ (१८८३). (उक्थ-पोडशी-प्रभृति-क्रतुभिः यथाश्रुति यम-सोम-सूर्य-सुरगुरुस्वाराज्यानि जयति।

—सरखावो, मैत्र्युपनिषद्, ६, ३६. अहीं मूळ भाष्यमां ज आ अवतरण अनुवादित छे.[२२]

[(इन्द्र आगच्छ मेधातिथे मेपवृपण)]

—तैत्तिरीय आरण्यक १, १२,३; शतपथ ब्राह्मण ३,३, ४, १८. (आखुं वाक्य आ प्रमाणे—'इन्द्रागच्छ हरिव आगच्छ मेधातिथेः। मेष वृषणस्य मेने।')

२, ३३९ (१८८७). ८[१] [नारको वै एप जायते यः शूद्रान्नमश्नाति।

---

२१. उपनिषद्मां वर्तमान पाठ नीचे प्रमाणे छे—

अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान्।

किमस्मान्कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृत मर्त्यं च॥(—आनन्दाश्रममुद्रित, पृ० १०)

२२. उपनिषद्मां आ बाबतनो नीचे प्रमाणे उल्लेख मळे छे—'अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामो यमराज्यमग्निष्टोमेनाभिजयति सोमराज्यमुक्थेन, सूर्यराज्यं षोडशिना, स्वाराज्यमतिरात्रेण, प्राजापत्यमासहस्रसंवत्सरान्तक्रतुनेति।' आनन्दाश्रम मुद्रित, पृ० ४५७.

८२ न ह वै प्रेत्य नरक नारकाः सन्ति ॥]

२, ३६० (१५०८). (केनाञ्जितानि नयनानि मृगाङ्गनानां
को वा करोति विविधाङ्गरुहान् मयूरान् ।
कश्चोत्पलेषु दलसन्निचयं करोति
को वा दधाति विनयं कुलजेषु पुंसु ॥) [२३]
सरखावो, अश्वघोषकृत बुद्ध चरित, कॉवेलसंपादित पृ. ७७.

२३ पुण्यः पुण्येन [(कर्मणा) पापः पापेन कर्मणा]

—बृह ० आ०उ०४, ४, ५.हेमचंद्रसूरि आ अवतरण २,९५—चालु गाथा १६४३-नी टीकामां ले छे.

२, ४०३ (१५५१). १२,१०२ स वै अयमात्मा ज्ञानमयः ।—बृ० आ० उ० ४, ४, ५.

२, ४२६ (१५७४) ११[१] जरामर्यं वा एतत्सर्वं यदग्निहोत्रम् ।
तै० आ० १०,६४.महा. ना. उप० २५.वळी हेमचन्द्र गाथा २,४७५-चालू गा० २०२३—नी टीकामां पण आ अवतरण ले छे.

११[२] द्वे ब्रह्मणी [वेदितव्ये] परमपरं च [तत्र परं सत्यम्; ज्ञानमनन्तं ब्रह्म] —सरखावो, मैत्र्युपनिषद् ६, २२;=ब्रह्मबिन्दूपनिषद् १७.
(सैषा गुहा दुरवगाह्या)

२, ४२७ (१५७५). (यथाहुः [सौगतविशेषाः केचित् तद् यथा]
दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम् ।

२३. हेमचन्द्रसूरि,गाथा१६४३नी टीकामां, आ पद्यगत भावने जणावनारा नीचे प्रमाणेना त्रण श्लोको आपे छे—

सर्वहेतुनिराशंसं भावानां जन्म वर्ण्यते । स्वभाववादिभिस्ते हि नाहुः स्वमपि कारणम् ॥
राजीवकण्टकादीनां वैचित्र्यं कः करोति हि । मयूरचन्द्रकादिर्वा विचित्रः केन निर्मितः ॥
कादाचित्कं यदत्रास्ति निःशेषं तदहेतुकम् । यथा कण्टकतैक्ष्ण्यादि तथा चैते सुखादयः ॥

—सूत्रकृताङ्गसूत्रनी टीकामां शीलांकाचार्य (मुद्रित पृ० २१ आ. स.) आवो ज मतलबवाळो एक अन्य श्लोक आपे छे—

कण्टकस्य च तीक्ष्णत्वं, मयूरस्य विचित्रता । वर्णाश्च ताम्रचूडानां, स्वभावेन भवन्ति हि ॥

२४. आचाराङ्गसूत्रनी टीकामां शीलांकाचार्य (आ. स. मु. पृ. १७) आ उपरना पद्यनी साथे अश्वघोषवाळुं पद्य तथा एक त्रीजुं पण अन्य पद्य आपे छे. यथा—

' कः कण्टकानां प्रकरोति तैक्ष्ण्यं विचित्रभावं मृगपक्षिणां च ।
स्वभावतः सर्वमिदं प्रवृत्तं, न कामचारोऽस्ति कुतः प्रयत्नः ॥ ' —(बुद्धचरित. ९-५२)

स्वभावतः प्रवृत्तानां निवृत्तानां स्वभावतः । नाहं कर्तेति भूतानां, यः पश्यति स पश्यति ॥

—शान्त्याचार्ये उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन२५ मानी टीकामां आ अने बीजां केटलांक अवतरणो (उदाहरणार्थ भगवद्गीता १८,४२) उध्धृत करेलां छे; तेम ज आवी ज जातनां बीजां पण केटलांक अवतरणो (उदाहरणार्थ—महानारायणोपनिषद् १०, ५;=कैवल्य उ० २; अने वाजसनेयी संहिता ३१, १८=श्वेताश्वतरोपनिषद् ३, ८) तेमणे अध्ययन १२, गाथा ११-१५ नी टीकामां आपेलां छे.

दिशं न काञ्चिद् विदिशं न काञ्चित् स्नेहक्षयात् केवलमेति शांतिम् ।
जीवस्तथा निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम् ।
दिशं न काञ्चिद् विदिशं न काञ्चित् क्लेशक्षयात् केवलमेति शांतिम् ॥
— यशस्तिलक चम्पू ६, १ मां पण आ श्लोको आपेला छे. पण त्यं चरणव्यतिक्रम थएलो नजरे पडे छे.

एक अवतरण वळी आवेलुं छे जे ऊपरना १ वाळा अवतरण साथे संबन्ध धरावतुं होय तेम जणाय छे, अने हेमचन्द्रना लखवा उपरथी ते कोई उपनिषद्नी टीकामांनुं (उदा० बृहदारण्यक उपनिषद्) होय तेम मालुम पडे छे. जिनभद्र मूळमां ते आ प्रमाणे नोंधे छे.

४०. गोयम, वेय-पयाणं इमाणमत्थं च तं न याणासि ।
जं विन्नाणघणो च्चिय भूएहिंतो समुत्थाय ॥
४१. मन्नासि मज्जंगेसु व मयभावो भूय-समुदय-ब्भूओ ।
विन्नाणमेत्तं आया भूए ऽणु विणस्सइ स भूओ ॥
४२. अत्थि न य पेचसन्ना जं पुव्वभवे ऽभिहाणं ' असुगो ' त्ति ।
जं भणियं न भवाओ भवन्तरं जाइ जीवो त्ति ॥

छेवटनी गाथासांना वाक्य उपर हेमचन्द्र आ प्रमाणे टीका करे छे—' किमिह वाक्ये तात्पर्यवृत्त्या प्रोक्तं भवति—इत्याह—सर्वथात्मनः समुत्पद्य विनष्टत्वात् न भवान्तरं कोऽपि यातीत्युक्तं भवति ।' ज्यारे शीलांक पोतानी हमेशनी विरल–व्याख्यापद्धति प्रमाणे एटलुं ज लखे छे के—' एवं न भवाद् भवान्तरमस्तीत्युक्तं भवति '

विशेषावश्यक २, २२६ मां वनस्पति अने प्राणी विद्या संबंधी अन्धविश्वास सूचवनारां एक बे अवतरणो आवे छे, ते पण हुं आनी पूरवणी रूपे अहीं नोंधी लेवा इच्छुं छुं. ए अवतरणोनो विषय, सदृशमांथी सदृशनी ज उत्पत्ति थई शके, एवो कोई नियम नथी; ए छे एना उपर टीकाकारे खूब विवेचना करी छे. ए अवतरण वाळी गाथाओ आ प्रमाणे छे:—

२२६. जाइ सरो संगाओ भूतणओ सासवाणुलित्ताओ ।
संजायइ गोलोमाविलोम-संजोगओ दुव्वा ॥
२२७. इति रुक्खाउव्वेदे, जोणिविहाणे य विसरिसेहिंतो ।
दीसइ जम्हा जम्मं, सुधम्म, तं नायमेगन्तो ॥

सरखावो, पंचतन्त्र श्लोक १, १०७. ए ठेकाणे कविसंप्रदायनी पद्धति बाद करतां ऊपरना अन्धविश्वासवाळा अवतरणमांनी बीजी हकीकतनो उल्लेख करेलो छे —जेमके 'दुर्वा पि गोलोमतः' । आ अवतरणमांनी पहेली हकीकत के ' शृंगमांथी शर उत्पन्न थाय छे ' तेनो उल्लेख वार्तानां रूपमां एक प्रत्येकबुद्धनी कथामां आवे छे. त्यां जणाव्या प्रमाणे एक शबनी खोपरी, आंख अने मोढामांथी वांसना त्रण फणगा नीकळ्या हता. आ गाथामां जे योनिविधान शब्द आवेलो छे तेनो अर्थ टीकाकारे लख्या प्रमाणे ' योनिप्राभृत ' छे अने ए नाम एक ग्रन्थनुं छे जे पूनाना केटॅलॉगमां नं० १६, ६६; तथा २१, १२४२ मां नोंधेलो छे.

स्वाध्याय-समालोचन

आगरे के श्रीआत्मानन्द पुस्तक प्रचारक मंडलने एक महत्त्वके ग्रन्थका प्रकाशन किया है। इसका नाम है पातञ्जल योगदर्शन। यों तो पातञ्जल योगदर्शन के अनेक संस्करण, अनेक स्थानोंसे, अनेक रीतिसे और अनेक भाषाओंमें प्रकट हो चुके हैं लेकिन हम जो इस संस्करणको महत्त्वका कहते हैं उसका खास कारण यह है कि इस संस्करणमें जो व्याख्या प्रकट हुई है वह संस्कृतसाहित्यके ज्ञाताओंके लिये एक विशेष वस्तु है। पातञ्जल योगदर्शन एक वैदिक संप्रदाय है। ब्राह्मण संप्रदायके जो छ दर्शन गिने जाते हैं उनमें इसका विशिष्ट स्थान है। सांख्य और योग ये दोनों दर्शन युगलरूपसे व्यवहृत होते हैं और सब दर्शनोंमें प्राचीन हैं। असलमें सांख्य दर्शनका ही एक विशेषरूप योग दर्शन है। सांख्य दर्शनमें ईश्वरस्वरूप किसी व्यक्ति या तत्त्वका अस्तित्व नहीं माना जाता और योगदर्शनमें उसको आश्रय दिया गया है-इतना ही इनमें मुख्य भेद है। जैन और बौद्ध दर्शनमें ऐसे अनेक तत्त्व और सिद्धान्त हैं जो सांख्य और योग दर्शनके तत्त्व और सिद्धान्तोंके साथ समता रखते हैं। इस लिये बहुत प्राचीन कालसे जैन और बौद्ध विद्वानोंको सांख्य और योग दर्शनके अध्ययन और मननका परिचय रहा है। इसी परिचयका उदाहरण स्वरूप यह प्रस्तुत ग्रन्थ है। इस ग्रन्थमें पातञ्जल योगदर्शनके सूत्रों पर जैन धर्मके एक अति प्रसिद्ध और महाविद्वान् पुरुषने व्याख्या लिखी है वह प्रकट की गई है। व्याख्याकार है न्यायाचार्य महोपाध्याय श्रीयशोविजय गणी। इस व्याख्यामें महोपाध्यायजीने पातञ्जल योगसूत्रोंका जैन प्रक्रियाके अनुसार अर्थ किया है। व्यासकृत मूळ भाष्यके विचारोंके साथ जहां जहां अपना मतभेद मालूम दिया वहां उपाध्यायजीने बडी गंभीर भाषामें अपने विचारका समर्थन और भाष्यकारके विचारोंका निरसन किया है और यही इस व्याख्याकी खास विशिष्टता है।

इस ग्रन्थका संपादन विद्वद्वर्य पं सुखलालजीने किया है। जहां तक हम जानते हैं, जैन साहित्यमें अभी तक कोई सात्त्विक ग्रंथ ऐसी उत्तम रीतिसे संपादित हो कर प्रकट नहीं हुआ। ग्रन्थके महत्त्व और रहस्यको समझानेके लिये पंडितजीने परिचय, प्रस्तावना और सार इस प्रकारके तीन निबन्ध हिन्दी भाषामें लिखकर इसके साथ लगाये हैं जिनके पढनेसे एक ग्रन्थके पूर्ण अभ्यासके लिये जितने अंतरंग और बाह्य प्रश्नोत्तरोंकी आवश्यकता होती है, उन सबका ज्ञान पूरी तरहसे हो जाता है। परिचय नामक निबन्धमें, पंडितजीने योगसूत्र, योगवृत्ति, योगविंशिका आदिका परिचय कराया है और प्रस्तावनामें जैन और योगदर्शनकी तुलना तथा तद्विषयक साहित्यका विवेचन किया है। यह प्रस्तावना कैसी महत्त्वकी और कितने पांडित्यसे भरी हुई है इसका खयाल तो पाठकोंको इसके पढने ही से आ सकता है और इसी लिये हमने इस सारी प्रस्तावनाको इसी अंककी आदिमें उध्दृत की है।

इस पुस्तकमें योगदर्शनके सिवा एक योगविंशिका नामका ग्रन्थ भी सम्मिलित है जो मूल हरिभद्रसूरिका बनाया हुआ है और उस पर टीका सइन्हीं यशोविजयजीने की है। जैन दर्शनमें 'योग' को क्या स्थान है और उसकी क्या प्रक्रिया है यह जानने के लिये यह योगविंशिका बहुत ही उपयोगी है।

पुस्तके अंतमें योगसूत्रवृत्ति और योग विंशिकावृत्ति का हिन्दी सार दिया है जिससे संस्कृत न जानने वाले भी इन ग्रन्थगत पदार्थोंको सरलतासे समझ सकते हैं। इस पुस्तकका ऐसा उपयुक्त संस्करण निकालनेके लिये संपादक महाशय पं. सुखलालजी तथा मंडलके उत्साही संचालक श्रीयुत बाबू दयालचंदजी-दोनों सज्जन विद्वानोंके विशेष धन्यवादके पात्र हैं।

जैन साहित्य संशोधक ग्रंथमाळा

अध्यापक कॉवेल लिखित

प्राकृत व्याकरण–संक्षिप्त परिचय

संपादक

मुनि जिनविजयजी
एम्. आर्. ए. एम्.
(आचार्य–गुजरात पुरातत्त्व मन्दिर–अमदावाद)

जैन साहित्य संशोधक–खण्ड २, अंक १–परिशिष्ट)

प्रकाशक

जैन साहित्य संशोधक कार्यालय
भारत जैन विद्यालय–पूना शहर.

નિવેદન

આ પ્રાકૃત વ્યાકરણ સંક્ષિપ્ત-પરિચય, કેંબ્રીજ યુનિવર્સિટીના એક વખતના સંસ્કૃતના અધ્યાપક અને એડીનબર્ગ યુનિવર્સિટીના ઑનરરી એલ્એલ્. ડી. શ્રી ઈ. બી. કૉવેલે લખેલા A SHORT INTRODUCTION TO THE ORDINARY PRAKARIT OF THE SANSKRIT DRAMAS નામના નિબંધનો અવિકલ ગુજરાતી અનુવાદ છે. જેમને સંસ્કૃત ભાષાનો સાધારણ અભ્યાસ હોય અને જેઓ પ્રાકૃત ભાષાનો ટુંક પરિચય કરવા માંગતા હોય તેમને આ નિબંધ ઘણો મદદ કર્તા થઈ પડે એવો જણાયાથી, આ રૂપમાં પ્રકટ કરવામાં આવે છે. આ નિબંધ મૂળ સન્ ૧૮૫૪ માં મજકુર પ્રોફેસરે वररुचिकृत प्राकृत प्रकाश ની જ્યારે પ્રથમ આવૃત્તિ બ્હાર પાડી હતી તેની પ્રસ્તાવના રૂપે લખ્યો હતો. અને પછી ૧૮૭૫ માં કેટલાક સુધારા-વધારા સાથે, લંડનની TRUBNER and Co. એ એક પુસ્તિકાના રૂપમાં એને જૂદો છપાવ્યો હતો. એ પુસ્તિકા આજે દુર્લભ્ય હોઈ બુકસેલરો તેની ૩-૪ રૂપિઆ જેટલી કિંમત લે છે. તેથી ગુજરાતી ભાષાભિજ્ઞ વિદ્યાર્થીઓને આ નિબંધ સુલભ થઈ પડે તેવા હેતુથી આ પત્રના પરિશિષ્ટ રૂપે પ્રકટ કરવામાં આવે છે. આશા છે કે સંશોધકના વાંચનારાઓને તેમજ અન્ય તેવા અભ્યાસિઓને આ પ્રયાસ ઉપયોગી થઈ પડશે.

જ્યેષ્ઠ પૂર્ણિમા, ૧૯૭૯.

–સંપાદક

अध्यापक कॉवेल लिखितं

प्राकृत व्याकरण—संक्षिप्त परिचय

ઈ. સ. પૂર્વેના સૈકાઓમાં, ભારતવર્ષમાં સંસ્કૃત ભાષામાંથી અપભ્રષ્ટ થઈને કેટલીક ભાષાઓ (બોલીઓ) ઉત્પન્ન થઈ જેને સાધારણ રીતે પ્રાકૃત કહેવામાં આવે છે. આ ભાષાઓની શોધ ખોળનો વિષય ભાષાશાસ્ત્રીને તેમજ ઈતિહાસ લખકને ઘણો રસ આપી શકે તેમ છે. હાલની પ્રચલિત ભાષાઓ અને મહા સંસ્કૃત વચ્ચે સંબંધ જોડી શૃંખલાનું કામ બનાવનાર આ પ્રાકૃત ભાષાઓનું (અને ખાસકરીને 'પ્રાકૃત' નામક ભાષાનું) જ્ઞાન હાલમાં વપરાતાં કેટલાંક રૂપો સમજવાને ઉપયોગી છે એટલુંજ નહિ, પરંતુ તેઓ ભાષાસંઘની એક ઇંડો–યુરોપીઅન શાખાના ઈતિહાસમાં પ્રકાશ પાડે છે, તથા લૅટીનમાંથી ઉત્પન્ન થએલી આધુનિક ઇટાલીઅન અને ફ્રેંચ ભાષાઓ સરખાવતાં જે સ્વરમાધુર્યનું આપણને ભાન થાય છે તે માધુર્યના નિયમોના અનુપમ દ્રષ્ટાંતો પૂરાં પાડે છે. તદુપરાંત બીજા ઘણા રસોત્પાદક ઐતિહાસિક પ્રશ્નો સાથે પ્રાકૃત ભાષાનો નિકટનો સંબંધ છે. સીલોનના બૌદ્ધોનાં તથા ભારતવર્ષના જૈનોનાં ધર્મપુસ્તકોની ભાષાઓ પ્રાકૃતનાં ભિન્ન ભિન્ન રૂપો છે; અને ખરેખર બ્રાહ્મણોની સંસ્કૃતનો વિરોધ દર્શાવીને જનસમાજના હૃદય ઉપર સચોટ અસર કરવા માટે બૌદ્ધ ગ્રંથોમાં પાલિ ભાષાનો ઉપયોગ કરવામાં આવ્યો છે. જ્યારે અલેક્ઝાન્ડરના આધિપત્ય તળે ગ્રીક લોકો ભારતવર્ષના સંબંધમાં આવ્યા ત્યારે પ્રાકૃત ભાષા જનસમાજમાં પ્રચલિત હશે. જેમાં ઈ. સ. પૂર્વે લગભગ ૨૫૦ વર્ષના ઍન્ટીઑકસ અને બીજા ગ્રીક રાજાઓનાં નામો આવ છે એવા અશોક રાજાના શિલાલેખોની ભાષા પણ એક જાતની પ્રાકૃતજ છે; તે જ પ્રમાણે બેક્ટ્રીયાના ગ્રીક રાજાના દ્વિભાષિક સિક્કાઓ ઉપર પણ પ્રાકૃત ભાષા લખેલી જોવામાં આવે છે. જુના હિંદુ નાટકોમાં પણ આ ભાષાઓનો હિસ્સો ઓછો નથી, કારણ કે તેમાં મુખ્ય નાયકો સંસ્કૃતનો ઉપયોગ કરે છે, પણ સ્ત્રીઓ અને સેવકો જુદી જુદી જાતની પ્રાકૃત ભાષા વાપરે છે, જેમાંના પરસ્પર ફેરફારો બોલનારની કક્ષાપ્રમાણે, સ્વરમાધુર્યના નિયમનું અનુસરણ કરે છે.

વૈય્યાકરણો 'પ્રાકૃત' શબ્દને प्रकृतेः भवं प्राकृतं એમ જણાવી प्रकृति એટલે સંસ્કૃત સાથે સંબંધ જોડે છે. આ વિષયમાં હેમચંદ્રે નીચેપ્રમાણે જણાવ્યું છે: प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवं तत आगतं वा प्राकृतम् । પણ મૂળ તેનો અર્થ 'સાધારણ' અગર 'અસંસ્કારી' એવો હશે, કારણ કે મહાભારતમાં એક સ્થળે બ્રાહ્મણોનો ધિક્કાર કરવો નહિ એમ જણાવી લખ્યું છે કેઃ—

दुर्वेदा वा सुवेदा वा प्राकृताः संस्कृतास्तथा ॥

લભગભ આધુનિક વૈય્યાકરણો 'પ્રાકૃત' નામ તળે ઘણી ભાષાઓનો સમાવેશ કરે છે, પરંતુ તેમાંની ઘણી ખરાં પાછળથી થયેલાં ક્ષુલ્લક રૂપાંતરો માત્ર છે. જેમ જુનો વૈય્યાકરણ તેમ તેના ગ્રંથમાં થોડી પ્રાકૃત ભાષાઓ. તેજ પ્રમાણે ઘણા પુરાણા વૈય્યાકરણ વરરૂચિએ ફક્ત ચાર જ પ્રાકૃત ભાષાઓનું વિવેચન કર્યું છે, જેવી કે મહારાષ્ટ્રી, પૈશાચી,[1] માગધી, અને શૌરસેની. આમાંથી પહેલી એટલે મહારાષ્ટ્રી ભાષાને તેણે વિશેષ મહત્વની ગણી છે; તથા લૅસન સાહેબે પણ પોતાના

---

१. પૈશાચી ભાષા ખાસ ઉપયોગી છે કારણકે बृहत्कथा તે ભાષામાં લખાયલી છે.

'ઇન્સ્ટીટ્યુશન્સ' નામના લેખમાં તેને જ મુખ્ય ગણી છે. વરરૂચિના પ્રાકૃતપ્રકાશમાં પ્રથમ નવ પ્રકરણોમાં તેનું વ્યાકરણ આપવામાં આવ્યું છે; અને બાકીનાં ત્રણ પ્રકરણોમાં બાકીની ત્રણ ભાષાઓની વિશિષ્ટતા જણાવી છે.

મૃચ્છકટિક નાટકમાં પ્રાકૃત ભાષાઓનું એક વિચિત્ર ભંડોળ ભેગું કરવામાં આવેલું છે જેથી કરીને તે નાટક ઉપયોગી પ્રાકૃત રૂપોની ખાણ બન્યું છે. વળી, વિક્રમોર્વશીના ચોથા અંકમાં પુરુરવ રાજાના આત્મપ્રલાપની ભાષા તદ્દન ભિન્ન જ છે, અને એક જાતની કાવ્યમાં વપરાતી અપભ્રંશ ભાષા છે, જેને આધુનિક વૈયાકરણો મૂળ પ્રાકૃતથી, ઘણીજ જુદી ગણે છે. આ અપવાદો સિવાય સંસ્કૃત નાટકોમાં—ગદ્યમાં[1] શૌરસેની, અને પદ્યમાં મહારાષ્ટ્રી,—સાધારણ પ્રાકૃત જ વપરાય છે.[2] આ બન્ને માટેના નિયમો સરખાજ છે, પરંતુ ગદ્યમાં વપરાતી ભાષા કેવળ વ્યંજનો ઉડાડી દેવામાં થોડી છૂટ લે છે, તથા ધાતુ અને પ્રાતિપદિકનાં કેટલાંક રૂપો તેનાં પોતાનાં ખાસ હોય છે, જે નીચે જણાવવામાં આવશે. તો પણ નાટકોની ભાષા, ખાસ કરીને ગદ્યમાં, વરરૂચિના નિયમોથી ઘણી વાર વિરૂદ્ધ જાય છે.

આ લઘુ વ્યાકરણ નાટકમાં વપરાતી સાધારણ પ્રાકૃત માટે ખાસ કરીને બનાવવામાં આવ્યું છે. ખરેખર, અત્યાર સુધી પદ્યાત્મક પ્રાકૃતનાં ઘણાં ઉદાહરણો જાણવામાં ન હતાં; ફક્ત નાટકોમાં તથા અલંકારના ગ્રંથોમાં આવેલાં પ્રાકૃત પદ્યોનાં થોડાંક નમુનાઓ જણાયા હતા પણ પ્રો. વેબરે હાલકવિના સપ્તશતકનો કેટલોક ભાગ છપાવ્યો છે જેને લીધે મહારાષ્ટ્રી ભાષાનું મોટું ક્ષેત્ર ખુલ્લું થયું છે. તે કાવ્યમાં પ્રાકૃતના અભ્યાસને માટે ઘણી ઉપયોગી એવી આર્યાઓ છે પરંતુ મારા પ્રસ્તુત કાર્ય માટે તે બહુ ઉપયોગી નહિ હોવાથી મેં આ લેખમાં તેમનો ઉપયોગ બહુજ થોડો કર્યો છે. તો પણ પરિશિષ્ટમાં હાલકવિની દશેક આર્યાઓ મેં આપી છે.

વિભાગ ૧.

લગભગ સર્વથા સંસ્કૃત શબ્દોમાં કેટલાક ફેરફારો કરીને અને કેટલાક અક્ષરો ઉડાડીને પ્રાકૃત રૂપો સિદ્ધ થયાં છે. સંસ્કૃતના અણીશુદ્ધ ઉચ્ચારોને બદલે પ્રાકૃતમાં અસ્પષ્ટ અને અર્ધ-ઉચ્ચાર કરવામાં આવે છે, તથા સંસ્કૃત ભાષાના સ્વભાવની વિરૂદ્ધ જઈને વારંવાર સ્વરસમૂહનો બાધ કરવામાં આવે છે. નીચેના પ્રકરણમાં, પ્રથમ તો શબ્દોના અક્ષરોમાં થતા ફેરફાર વિષે અને, પછીથી, પ્રાતિપદિક અને ધાતુઓનાં રૂપોમાં થતા ફેરફાર વિષે વિવેચન કરીશું.

સ્વર પ્રકરણ.

પ્રાકૃતમાં ऋ, ॠ, ऌ, ऐ, औ સિવાયના બધા સ્વરો સંસ્કૃત પ્રમાણે છે.

કોઈ શબ્દમાં પ્રથમ અક્ષર ऋ હોય તો તેનો रि થાય છે, જેમ કે ऋण ને બદલે रिण; કેટલીક વાર ऋ ની પહેલાં વ્યંજન હોય તો તે વ્યંજનનો લોપ કરવામાં આવે છે, જેમ કે सदृश—सारिस. જો ऋ ની પહેલાં વ્યંજન આવ્યો હોય તો ऋ નો अ અથવા इ થાય છે, અને જો તે વ્યંજન ઓષ્ઠસ્થાનીય હોય તો ऋ નો उ થાય છે; જેમ કે तृण—तण, कृत—कअ, दृष्टि—दिट्ठि, शृंग—सिंग, पृथ्वी—पुहवी, प्रवृत्ति—पउत्ति. પરંતુ આવા ફેરફાર શબ્દના પ્રથમાક્ષર ऋ માં ભાગ્યે જ થાય છે; તો પણ इसि (ऋषि), उज्जुअ (ऋजु), उदु (ऋतु).

---

૧. शाकुन्तल ના ચોથા અંકમાં ધીવર માગધી ભાષાનો ઉપયોગ કરે છે, તેમજ मुद्राराक्षस માં કેટલાંક પાત્રો નિકૃષ્ટ ભાષા વાપરે છે.

૨. ડૉ૦ પીશ્ચેલે શૌરસેનીવિષે કુન્હના બીટ્રેજ પુ૦ ૮ માં વિવેચન કર્યું છે. પરંતુ તેમના કેટલાક નિર્ણયો અનિશ્ચિત છે.

પ્રાકૃત શબ્દમાં ऋ આવી શકતો નથી; તેથી ऋ અન્તવાળા સંસ્કૃત શબ્દોનું ષષ્ઠી બહુવચનનું રૂપ અકારાન્ત અથવા ઉકારાન્ત શબ્દો પ્રમાણે થાય છે.

क्लृप्त નું किलित्त થાય છે.

ऐ નું ए અગર अ इ (કવચિત્ इ અથવા ई) થાય છે, જેમ કે सेल (शैल), दइच्च (दैत्य).

औ નું ओ અગર अ उ (કવચિત્ उ) થાય છે, જેમ કે कोमुइ (कौमुदी), पउर (पौर), सुंदेर (सौंदर्य).

બાકી રહેલા સ્વરોમાંથી ए અને ओ સંધ્યક્ષર હોતા નથી, અને યથાનિયમાનુસાર હ્રસ્વ યા દીર્ઘ હોઈ શકે.

પ્રાકૃતનો એક મુખ્ય નિયમ નીચે પ્રમાણે છેઃ—

મૂળ શબ્દમાં જોડાક્ષરની પહેલાં દીર્ઘ સ્વર આવ્યો હોય તો પ્રાકૃતમાં તે સ્વર હ્રસ્વ થાય છે, જેમ કે आ, ई, ऊ નું અનુક્રમે अ, इ, उ થાય છે; (ए અને ओ એમ જ રહી શકે છે), જેમ કે मार्ग—मग्ग, दीर्घ—दिग्घ, पूर्व—पुव्व. તેમાં બે પેટા નિયમો નીચે પ્રમાણે છેઃ (अ) જો પ્રાકૃતમાં પણ દીર્ઘ સ્વર રાખવામાં આવે તો જોડાક્ષરમાંથી એક વ્યંજનનો લોપ થાય છે, જેમ કે ईश्वर—ईसर અથવા इस्सर, विश्वास—वीसासो અથવા विस्सासो; (ब) જોડાક્ષરની પહેલાં આવેલો હ્રસ્વ સ્વર દીર્ઘ થાય છે અને એક વ્યંજનનો લોપ થાય છે, જેમ કે जिह्वा—जीहा, કોઈકવાર જોડાક્ષરની પહેલાંના इ ને उ ને બદલે ए અને ओ થાય છે, જેમ કે पिण्ड—पेण्ड, तुण्ड—तोण्ड. ઘણી વાર य ની પહેલાંના अ ને બદલે ए થાય છે, જેમ કે पर्यन्त—पेरन्त, सौंदर्य—सुंदेर, आश्चर्य—अच्छेर. કેટલાક શબ્દોમાં પહેલા અક્ષરમાં उ નું अ થાય છે, જેમ કે मुकुट—मउड, पुरुष અને मात्र નું અનિયમિત રૂપ पुरिस અને मेत्त થાય છે.

આ નિયમિત ફેરફારો ઉપરાંત વ્યાકરણોમાં અને પ્રાકૃત લેખોમાં, તથા ખાસ કરીને સપ્તશતકમાં કેટલાક સ્વરોના ફેરફારો અનિયમિત રીતે થાય છે જેમ કે समृद्धि—समिद्धि અથવા सामिद्धि, उत्खात—उक्खअ અથવા उक्खाअ, पटह—पडह, વિગેરે. સામાસિક શબ્દો કે જેમાં વારંવાર સ્વરો હ્રસ્વ દીર્ઘ થયા કરે છે તથા કેટલીક વાર આખા અક્ષરો લુપ્ત કરવામાં આવે છે તેમાં આવી અનિયમિતતા વારંવાર જોવામાં આવે છે, જેમ કે यमुनातट—जउणअड અને जउणाअड; सुकुमार—सुउमार અને सोमार; राजकुल—राअउल અને राउल, વિગેરે (સરખાવો-વર રુ૦ ૪, ૧; વેબર, सप्तश० પા૦ ૩૨, ૩૩.)

૨. કેવળ વ્યંજન પ્રકરણ.

(अ). સામાન્ય પ્રાકૃતમાં श् અને ष् નથી, અને તેમને બદલે स् વપરાય છે. न् ની પછી દંત્યાક્ષર ન આવ્યો હોય તો સાધારણ રીતે તેનો ण् થાય છે. શબ્દના આરંભમાં આવેલા य् નો ज् થાય છે. સામાન્ય રીતે આટલા નિયમો અપવાદ રૂપે આવે છે [તો પણ, નાટકોમાં કેટલીકવાર उण (पुनः), अ (च) થાય છે, પરંતુ આવા ફેરફારો વરરૂચિએ સ્વીકાર્યા નથી. વળી, વરરુ૦ ૨, ૩૨-૪૧ માં આવેલા શબ્દો, જે આ પુસ્તકને અંતે આપવામાં આવ્યા છે તે જુઓ].
सु, अ એવાં શબ્દો જ્યારે કેટલાક શબ્દોના આરંભમાં લગાડવામાં આવે છે ત્યારે તેવા શબ્દોનો પહેલો વ્યંજન લુપ્ત થાય છે, જેમ કે आर्यपुत्र—अज्जउत्त, सुकुमार—सुउमार.

(ब) છેવટના म् અને न् જે અનુસ્વારના રૂપમાં પરિણત થાય છે, તે સિવાયના ખોડા વ્યંજનોનો લોપ થાય છે. ઘણી વાર છેવટના અનુસ્વારનો લોપ થાય છે. કેટલાંક નામોના અંત્ય વ્યંજનોને अ અગર आ લગાડવામાં આવે છે, જેમ કે प्रावृट्—पाउस, सरित्—सरिआ.

(फ) વચમાં આવેલા ખોડા અક્ષરો:—

क्, ग्, च्, ज्, त्, द्, प्, य्, व् નો વિકલ્પે લોપ થાય છે; પરંતુ त् અને प् નો જ્યારે લોપ ન થાય ત્યારે તેમને બદલે ઘણી વાર द् અને य्[1] અગર व् થાય છે. આવી રીતે થતો લોપ ગદ્ય કરતાં પદ્યમાં વિશેષ જોવામાં આવે છે. प्रति ઉપસર્ગને બદલે પ્રાકૃતમાં पडि લખવામાં આવે છે.

य् નો ઘણી વાર લોપ થાય છે, જેમ કે वायु—वाउ, नयन—णअण.

न् નો ण् થાય છે; અને ड् નો ल्[2] થાય છે; અને કેટલીક વાર ड् નો ल् થાય છે.

ख्, घ्, थ्, ध्, भ् એમ જ રહે છે, અગર તો તેમનો ह् થાય છે (જ્યારે थ् નો ह् ન થાય ત્યારે, અને ખાસ કરીને ગદ્યમાં, ध् થાય છે.) छ्, झ्, અને द् માં ફેરફાર થતો નથી. ट् નો હંમેશા ढ् થાય છે; फ् સાધારણ રીતે અવિકૃત રહે છે, અને કદાચ તેનો भ् પણ થાય. (वर० ૨, ૨૬, સરખાવો લેસન સાહેબનું વ્યાકરણ, પાન ૨૦૮.)

र ને બદલે ઘણી વાર ल् થાય છે; અને આ પ્રમાણે માગધી અને બીજી કેટલીક હળકી ભાષાઓમાં નિયમિતપણે થાય છે. न्, म्, ल्, स्, ह् અવિકૃત રહે છે. श् અને ष् ને બદલે स् થાય છે, પરંતુ दस અને તેના ઉપરથી થતા શબ્દોમાં તથા दिवस માં, स નો ह् થાય છે, જેમ કે एकादश—एआरह, दिवस—दिअह, તેમજ, ईदृश—एद्दह.

શબ્દની મધ્યમાંના ખોડા વ્યંજનોને કેટલીકવાર બેવડાવવામાં આવે છે; જેમ કે एक—एक्क અથવા एअ, अशिव—असिव्व અથવા असिव (वर० ૩, ૫૨, ૫૮).

૩. જોડાક્ષર પ્રકરણ.

પ્રાકૃત ભાષાના ખાસ ફેરફારો જોડાક્ષરોમાં થાય છે. જ્યારે વધારે સંસ્કૃત જોડાક્ષરો મળી જઈને એકાદ પ્રાકૃત રૂપ સિદ્ધ થાય છે ત્યારે તે રૂપ એકાએક ઓળખી શકાતું નથી. પ્રાકૃતમાં જુદા જુદા વર્ગના બે વ્યંજનોનું જોડાણ રહી શકતું નથી, તેથી તે વ્યંજનોમાંથી એકનો લોપ કરી, અને બીજાને બેવડાવી એક વર્ગના કરવા પડે છે. સામાન્ય નિયમ તરીકે, જોડાક્ષરોમાંના પહેલા વ્યંજનનો લોપ થાય છે, પરંતુ न्, म्, य् પહેલા ન હોય તો પણ તેમનો લોપ થાય છે, અને र, ल्, અને व् નો સર્વત્ર લોપ થાય છે. આ ઉપરાંત કેટલાક અપવાદો પણ છે. એક નિયમ ખાસ યાદ રાખવો જોઈએ કે—જ્યારે કોઈ જોડાક્ષરમાં ઊષ્માક્ષર આવ્યો હોય, ત્યારે તેનો લોપ કરી તેને બદલે તેની સાથે જોડાયલા વ્યંજન પછીનો મહાપ્રાણ વ્યંજન મૂકવામાં આવે છે. જેમ કે स्क, ष्क અથવા क्ष ને બદલે क्ख થાય; અગર તો, ઊષ્માક્ષરની સાથે જોડાયલા વ્યંજનની પછીનો મહાપ્રાણ વ્યંજન ન હોય તો ઊષ્માક્ષરને બદલે ह મૂકવામાં આવે છે, જેમ કે स्न અથવા ष्ण ને બદલે ण्ह. પરંતુ જ્યારે આવી પરિસ્થિતિ સામાસિક શબ્દના પદોમાં આવી હોય ત્યારે ઉપર્યુક્ત નિયમ જળવાતો નથી; જેમ કે तिरस्कारो—तिरक्कारो. (तिरक्खारो એમ ન થાય.) र् અને ह् કદી પણ બેવડાતા નથી. જોડાક્ષરમાં ह् આવ્યો હોય તો છેવટે લખાય છે, જેમ કે ब्राह्मण—बम्हण. જોડાક્ષરમાં र् આવ્યો હોય તેનું અનુસ્વાર થાય છે; આ નિયમ व् અને ઊષ્માક્ષરમાં પણ કોઈક વખતે લાગુ પડે છે; જેમ કે दर्शन—दंसन, वक्र—वंक, अश्व—अंस, अश्रु—अंसु; (જુઓ वर० ૪, ૧૫). કેટલીક વાર જોડાક્ષરની વચમાં એક નવો સ્વર મૂકવામાં આવે છે;

---

૧. य પ્રાકૃત અક્ષર હશે કે નહિ તે શંકાસ્પદ છે, કારણ કે પ્રતોમાં હંમેશાં व લખેલો હોય છે.

૨. ह् અને र् વારંવાર એક બીજાને બદલે વપરાય છે, જેમકે वेणीसं० પા. ૧૯, ૧-૨, માં परिहरिस्सामो (परिहरिस्यामः), તથા शाकुं०, પા. ૫૬, ૧-૧૨, (બૉથલીંગ), मलअतहम्मूलिआ [मलअतह्-(ह्)]

જેમ કે हर्ष—हरिस (જુઓ वर० ૩, ૫૯-૬૬); ઘણી વાર र्य માં આવેલા य् નો र् થાય છે, જેમ કે चौर्य—चोरिअ.

પ્રાકૃત જોડાક્ષરોની તાલિકા.

નીચેની તાલિકામાં સંસ્કૃત જોડાક્ષરોનાં પ્રાકૃત રૂપો આપ્યાં છે, જેમાંના ફેરફાર શબ્દના મધ્યમાં થાય છે એમ સમજવું; પણ તે પ્રાકૃત જોડાક્ષરોમાંના પહેલા અક્ષરનો લોપ કરવાથી તે રૂપો શબ્દના આરંભમાં પણ ઉપયોગમાં આવે; જેમ કે यक्ष—जक्ख; પણ क्षत—खद; તેજ પ્રમાણે શબ્દની વચમાં હોય તો प्र નો प्प થાય છે, અને આરંભમાં હોય તો प्र નો प થાય છે.

क्क=त्क, क्त (?),[1] क्य, क्र, र्क, ल्क, ष्क[2], क्व; જેમ કે उत्कण्ठा, मुक्त, चाणक्य, शक्र, अर्क, विक्कच, उल्का, पक्व, ને બદલે અનુક્રમે उक्कण्ठा, मुक्क, चाणक्क, सक्क, अक्क, उक्का, विक्कच, पिक्क થાય છે

क्ख=त्ख, ख्य, क्ष, त्क्ष, (ह्य), ष्क, स्क, (ष्ख), स्ख, :ख; જેમ કે उत्खण्डित, आख्या, यक्ष, उत्क्षिप्त, मुष्क, स्कन्ध, स्खलित, दुःख ને બદલે उक्खण्डित, अक्खा, जक्ख, उक्खित्त, मुक्ख, खन्द, खलिअ, दुक्ख થાય છે.

ग्ग=ड्ग, द्ग, ग्न, ग्म, ग्य, ग्र, र्ग, ल्ग; જેમ કે खड्ग, मुद्ग, नग्न, युग्म, योग्य, समग्र, वर्ग, वल्गित ને બદલે खग्ग, मुग्ग, णग्ग, जुग्ग, जोग्ग, समग्ग, वग्ग, वग्गिद થાય છે.

ग्घ=(ड्घ), द्घ, घ्न, घ्र, र्घ; જેમ કે उद्घाटित, विघ्न, शीघ्र, निर्घृण ને બદલે उग्घाडिद, विग्घ, सिग्घ, णिग्घिण થાય છે.

ङ्ख=ङ्क्ष; જેમ કે सङ्क्षोभ—सङ्खोह (અથવા सङ्क्खोह ?).

च्च=च्य, त्य, र्च; अच्युत, नित्य, चर्चरिका ને બદલે अच्चुद, णिच्च, चच्चरिआ થાય છે.[3]

च्छ=थ्य, र्छ, त्छ, क्ष, त्क्ष, क्ष्म, त्स, त्स्य, प्स, श्च; જેમ કે मिथ्या, मूर्च्छा, कृच्छ्राणक, अक्षि, उत्क्षिप्त, लक्ष्मी, वत्स, मत्स्य, लिप्सा, आश्चर्य ને બદલે मिच्छा, मुच्छा, कुच्छाणअ, अच्छि, उच्छित्त, लच्छी, वच्छ, मच्छ, लिच्छा, अच्छेर થાય છે.

ज्ज=ब्ज, ज्ञ (કોઈક વખત) ज्र, र्ज, ज्व, द्य; र्य, य्य. (ભાગ્યેજ); જેમ કે कुब्ज, सर्वज्ञ, वज्र, गर्जित, प्रज्वलित, विद्या, कार्य, शय्या ને બદલે खुज्ज, सव्वज्ज, वज्ज, गज्जिद, पज्जलिद, विज्जा, कज्ज, सेज्जा થાય છે.

ज्झ=ध्य, ह्य; જેમ કે मध्य, वाह्यक, ને બદલે मज्झ, वज्झअ થાય છે.

ट्ट=र्त; જેમ કે नर्तकी નું णट्टई થાય છે.

ट्ठ=ष्ट, ष्ठ;[4] જેમ કે दृष्टि, गोष्ठी નું दिट्ठि, गोट्ठी થાય છે.

ड्ड=र्त, र्द (ભાગ્યેજ); જેમ કે गर्त, गर्दभ નું गड्ड, गड्डह થાય છે.

---

૧. क्त=क्क ઘણાં નાટકોમાં જોવામાં આવેછે, જુઓ मृच्छ०, પા. ૨૯ ૧-૨૦ ઉપર સ્ટેન્ઝરની નોટ.

૨. ખાસકરીને સમાસમાં क=ष्क, स्क વપરાય છે, જેમકે निकम्प=निष्कम्प બાકી અન્ય સ્થળે क्ख થાય છે. તેજ પ્રમાણે च=ष्च અને प्प=स्प, અગર ष्प.

૩. કવચિત્ श्च ને બદલે च જોવામાં આવે છે, પણ ખાસ કરીને निचअ (निश्चय) જેવા શબ્દોમાં જ જેમાં निर् ઉપસર્ગ च થી શરૂથતા શબ્દ સાથે જોડાએલો છે.

૪. अट्ठि (अस्थि=હાડકું), તથા ठिअ (स्थित) માં ट्ठ એ स्थ ને માટે વપરાય છે.

ड्ढ=ढ्य; જેમ કે आढ्य નું अड्ढ થાય છે.

ण्ण=ज्ञ (?), ज्ञ, म्न, न्न, ण्य, न्य, र्ण, ण्व, न्व, જેમ કે रुग्ण, यज्ञ, प्रद्युम्न, प्रसन्न, पुण्य, अन्योन्य, वर्ण, कण्व. अन्वेषणा, ને બદલે रुण्ण जण्ण, पज्जुण्ण, पसण्ण, पुण्ण, अण्णोण्ण, वण्ण, कण्ण, अण्णेसणा થાય છે.

ण्ह=क्ष्ण श्न, ष्ण, स्न, ह्ण, ह्न; જેમ કે तीक्ष्ण, प्रश्न, विष्णु, प्रस्नुत, पूर्वाह्ण, वह्नि ને બદલે तिण्ह, पण्ह, विण्हु, पण्हुद, पुव्वण्ह, वण्हि થાય છે.

त्त=क्त, प्त, त्न, त्म, त्र, त्व, र्त; જેમ કે भक्त, सुप्त, पत्नी, आत्मा, शत्रु, सत्त्व, मुहूर्त ને બદલે भत्त, सुत्त, पत्ती, अत्ता, सत्तु, सत्त, मुहुत्त થાય છે.

त्थ=क्थ, त्र,[1] र्थ, स्त, स्थ; જેમ કે सिक्थक, तत्र, पार्थ, हस्त, अवस्था ને બદલે सित्थअ, तत्थ, पत्थ, हत्थ, अवत्था થાય છે.

द्द=ब्द, (ज्ञ ?), द्र, र्द, र्ह; જેમ કે शब्द, भद्र, शार्दूल, अर्हत ને બદલે सद्द, भद्द, सद्दूल, अद्दन्न થાય છે.

द्ध=ग्ध, ब्ध, र्ध, ध्व; જેમ કે स्निग्ध, लब्ध, अर्ध, अध्वन्, ને બદલે सिणिद्ध, लद्ध, अद्ध, अद्धा થાય છે.

न्द=न्त (શૌરસેનીમાં કદાચ થાય છે.) જેમ કે किन्तु, प्रभावान् ને બદલે किन्दु, पहाव-वन्दो થાય છે.[2]

प्प=त्प, प्य, प्र, र्प ल्प, प्ल, क्म;[3] જેમ કે उत्पल, विज्ञप्य, अप्रिय, सर्पणीय, अल्प, विप्लव, रुक्म ને બદલે उप्पल, विण्णप्प, अप्पिअ, सप्पणीय, अप्प, विप्पव, रुप्प થાય છે.

प्फ=त्फ, ष्फ, (:फ), स्फ, ष्प, स्प; જેમ કે उत्फुल्ल, निष्फल, स्फुट, पुष्प, शरीरस्पर्श ને બદલે उप्फुल्ल, णिप्फल्ल, फुड, पुप्फ, सरीरप्फंस થાય છે.

ब्ब=द्व, र्व, व्र; જેમ કે उद्वन्ध्य, अब्राह्मण्य ને બદલે उब्बन्धिय, अब्बम्हणम्.

ब्भ=ग्भ, द्भ, भ्य, भ्र, र्भ;[4] જેમ કે प्राग्भार, सद्भाव, अभ्यर्थना, अभ्र, गर्भ ને બદલે पब्भार, सब्भाव, अब्भत्थणा, अब्भ, गब्भ થાય છે.

म्म=ङ्म, ण्म, न्म, म्य, र्म, ल्म;[5] જેમ કે दिङ्मुख, षण्मुख, जन्म, सौम्य, वर्मन्, गुल्म ને બદલે दिम्मुह, छम्मुह, जम्म, सोम्म, वम्म, गुम्म થાય છે.

म्ह=ष्म, क्ष्म, स्म, ह्म; જેમ કે ग्रीष्म, पक्ष्मन्, विस्मय, ब्राह्मण ને બદલે गिम्ह, पम्ह, विम्हअ, बम्हण થાય છે.

य्य=र्य, र्ज, (માગધી); જેમ કે कार्य, दुर्जनः ને બદલે कय्ये, दुय्यणे થાય છે.

रि=द्द, र्य (કદાચ); જેમ કે तादृश, चौर्य ને બદલે तारिस, चोरिअ થાય છે.

---

૧. त्र ને બદલે त्थ અકેલા અવ્યયોમાંજ વપરાય છે, જેમકે एत्थ (अत्र), तत्थ (तत्र).

૨. જુઓ બોથલિંગનું शाकुं०, પા. ૧૫૫ નોટ

૩. आत्मा નું પ્રાકૃત अप्पा તથા अत्ता બેઉ છે. प्प=स्प, स्फ, ફક્ત સમાસમાંજ, જેમકે चउ-प्पहो=चतुष्पथः

૪. ब्म=ह्म, જેમકે विब्भल=विह्वल.

૫. मिल्=म्ल्, જેમકે मिलाण=म्लान જુઓ લેસન, પા. ૨૫૮. વળી, वन्द्द, જેમકે वारह=द्वादश.

ल्ल = ल्य, र्ल, (ल्व), र्य (ભાગ્યેજ); જેમ કે शल्य, निर्लज्ज, पर्याण ને બદલે सल्ल, णिल्लज्ज, पल्लाण થાય છે.

ल्ह = ह्ल; જેમ કે कह्लार નું कल्हार થાય છે.

व्व = [1] व्य, (व्र), र्व, જેમ કે काव्य, पूर्व ને બદલે कव्व, पुव्व થાય છે.

स = र्श, श्र, श्व, स्व; જેમ કે दर्शन, अश्रु, अश्व, मनस्विनी ને બદલે दंसण, अंसु, अंसो, मणंसिणी થાય છે.

स्स = र्ष, श्म, श्य, श्र, श्व, ष्म, ष्य, ष्व, स्य, स्र, स्व; જેમ કે ईर्षा, रश्मि, राजश्यालक, विश्रान्त, अश्व, शुष्म, पुष्य, परिष्वजामि, तस्य, सहस्र, तपस्विन् ને બદલે इस्सा, रस्सि, राजस्सालअ, विस्सन्त, अस्स, सोस्स, पुस्स, परिस्सआमि, तस्स, सहस्स, तवस्सी થાય છે.

તા. ક.—જો સંસ્કૃત શબ્દોમાં ત્રણ વ્યંજનો જોડાયલા હોય તો તેમાંના અર્ધસ્વરનો પ્રાકૃત કરતી વખતે, લોપ કરવામાં આવે છે, અને ત્યાર પછી બાકી રહેલા વ્યંજનો માટે ઉપર્યુક્ત નિયમો લાગુ પાડવામાં આવે છે; જેમ કે मत्स्य = मच्छ; પરંતુ આવા (અર્ધસ્વર વાળા) જોડાક્ષરની પહેલાં અનુનાસિક વ્યંજન આવ્યો હોય તો બાકી રહેલા જોડાક્ષરોની બાબતમાં સામાન્ય નિયમો લાગી શકે છે; માત્ર અનુનાસિક પછી તેઓ બેવડાતા નથી; (વર૦ ૩, ૫૬) જેમ કે चिन्त्य = चिन्त्र. [त्य નો च्छ (વર૦ ૩, ૨૮) પ્રમાણે થાય છે.]

ઉપર્યુક્ત નિયમો ઉપરાંત, હાલ કવિના સપ્તશતકની જેમ બીજાં પદ્યોમાં ઘણી અનિયમિતતા જોવામાં આવે છે; જેમ કે त्रैलोक्य નું પ્રાકૃત રૂપ વરરુચિએ तेलोअ તથા तेल्लोक आप्युं છે. તેજ પ્રમાણે नभस्तल નું પ્રાકૃત રૂપ णहअल (उत्तररााम०, પા. ૧૦૫, તથા सत्तश० ૭૪), તથા णहत्यल (मालती०, પા ૯૦), વિગેરે જોવામાં આવે છે.

વિભાગ ૨.

પ્રાકૃત નામો પાંચ જાતનાં હોઈ શકે: ૧ अकारांत તથા आकारांत; ૨ इकारांत તથા ईकारांत; ૩ उकारांत તથા ऊकारांत; ૪ મૂળરૂપે ऋकारांत; ૫ વ્યંજનાંત.

છેલ્લા બે વિભાગમાં પડે એવા નામો ઘણાં થોડાં છે. ऋकारांत પુલ્લિંગ શબ્દોને अर અથવા आर અંતવાળા બનાવવામાં આવે છે; જેમ કે पिता-पिअरो; पित्रा-पिअरेण, भर्ता-भत्तारो, भर्त्रा-भत्तारेण. પ્રથમા તથા દ્વિતીયા બહુવચનમા, તૃતીયા અને ષષ્ઠી એકવચનમાં, તેમજ સપ્તમી બહુવચનમાં, છેવટના ऋ ને બદલે उ મુકવામાં આવે છે, અને પછી उकारांत શબ્દોની માફક તનાં રૂપો ચાલે છે; જેમ કે भर्तृणा-भत्तुणा, भर्तुः-भत्तुणो. આવું રૂપ વપરાયલું પણ જોવામાં આવે છે, જેમ કે भर्तृकुल-भत्तुकुल. સંબન્ધદર્શક નામોનું પ્રથમા એકવચન आ અંતવાળું પણ હોય છે, જેમ કે पिता-पिआ; मातृ-माआ, અને ત્યાર પછી आकारांत સ્ત્રીલિંગ નામોની માફક તનાં રૂપો ચાલે છે. भर्तृ નું સંબોધનરૂપ भट्टा થાય છે અને તેનું સ્ત્રીલિંગરૂપ भट्टिनी અથવા भट्टिणी થાય છે.

વ્યંજનાંત નામોની દ્વિવિધ ગતિ થાય છે: (૧) તેમનો અંત્ય વ્યંજન ઉડી જાય છે અને ત્યાર બાદ ઉપર બતાવેલી પહેલાં ત્રણ રીતે તેમનાં રૂપ ચાલે છે (નપુંસકલિંગ નામ પુલ્લિંગ બની જાય છે), જેમ કે सर (सरस्) નું પ્રથમાનું રૂપ सरो, कम्म (कर्मन्) નું कम्मो થાય છે; અથવા (૨) મૂળ શબ્દને अ કે आ લગાડવામાં આવે છે, જેમ કે शरद् નું सरदो; आशिस् નું आसिसा. જે વિભક્તિઓના પ્રત્યયો વ્યંજનથી શરૂ થતા હોય તેમને માટે સાધારણ રીતે આ નિયમો લાગે છે. આ ઉપરથી જણાશે કે આ યુક્તિઓ વાપરવાનું કારણ વ્યંજનથી શરૂ થતા

---

૧. વ્ન્દ, જેમકે उद्वेल्लइ=उद्वेष्टते (વર૦ ૮. ૪૧), જેમાં उद् ની પછી व આવે છે.

પ્રત્યયો વ્યંજનાંત શબ્દો સાથે જોડાતાં જે નવા જોડાક્ષરો ઉત્પન્ન થાય તથા જે નવા ફેરફારો કરવા પડે તે દૂર કરવાનું હોવું જોઈએ. પરંતુ સ્વરથી શરૂ થતા વિભક્તિના પ્રત્યયો આગળ ઘણું ખરૂં સંસ્કૃત રૂપજ રાખવામાં આવે છે; અલબત, તેમાં પ્રાકૃત નિયમોપ્રમાણે ફેરફાર થાય છે, જેમ કે भवदा (भवत् નું તૃતીયાનું રૂપ), आउसा (आयुषा, आयुस् નું તૃતીયાનું રૂપ).

પ્રાકૃતમાં દ્વિવચન નથી તેમજ ચતુર્થી વિભક્તિ નથી (ચતુર્થીને બદલે ષષ્ઠી વપરાય છે); પંચમી બહુવચનના બે પ્રત્યયો છેઃ हिंतो 'માંથી' ના અર્થમાં પ્રેરકમાં વપરાય છે, અને सुंतो 'માંથી' ના અર્થમાં સાધારણ રીતે વપરાય છે. ખાસ ઉપયોગી એવાં પહેલા ત્રણ પ્રકારનાં રૂપો નીચે-પ્રમાણે છે. ઉકારાંત શબ્દોના રૂપ ઇકારાંત પ્રમાણે ચાલતાં હોવાથી ખાસ અહીં આપવામાં આવ્યાં નથી.

નામનાં રૂપાખ્યાન.

वच्छ=वृक्ष (નપુંસ० वण=वन)

	એક વચન.	બહુવચન.
प्र०	वच्छो (नपुं० वणं)	वच्छा (नपुं. वणाइं,-इ, वणा; वणानि ગદ્યમાં વપરાય છે).
द्वि०	वच्छं - „	वच्छे; वच्छा (नपुं०=प्रथमा०)
तृ०	वच्छेण,-णं	वच्छेहिं,-हि
पं०	वच्छादो,—दु—[1] वच्छाहि, वच्छा	वच्छेहिं,-हि वच्छासुंतो, वच्छेसुंतो
ष०	वच्छस्स	वच्छाणं-ण
स०	वच्छे, वच्छम्मि	वच्छेसु-सुं
सं०	वच्छ, वच्छा (नपुं० वण)	वच्छा (नपुं० वणाइं-इ).

अग्गि=अग्नि (पुंल्लिंग) — **दहि=दधि (नपुंस०).**

	એક વચન.	બહુવચન
प्र०	अग्गी (नपुं० दहिं)	अग्गीओ, अग्गिणो (नपुं. दहीइं,-)
द्वि०	अग्गिं - „	अग्गिणो अग्गी (?).- „
तृ०	अग्गिणा	अग्गीहिं,-हि
पं०	अग्गीदो,-दु,-हि	अग्गीहिंतो,-सुंतो.
ष०	अग्गिणो, अग्गिस्स	अग्गीणं,-ण.
स०	अग्गिम्मि	अग्गीसु,-सुं
सं०	अग्गि (नपुं. दहि)	अग्गीओ, अग्गिणो (नपुं. दहीइं,-इ)

माला (સ્ત્રીલિંગ)

	એક વચન	બહુવચન.
प्र०	माला	मालाओ,-उ; माला[2]
द्वि०	मालं	„ „
पं.	मालदो,-दु,-हि.	मालाहिंतो,-सुंतो.

૧. ગદ્યમાં સામાન્ય રીતે दो વાળુંજ રૂપ વપરાય છે.

૨. माला માટે જુઓ વર૦ ૫, ૨૦., તથા શાકું૦માં પા૦ ૧૫ ઉપર, दअमाणा શબ્દપર આપેલી બોથલીંગની ટીકા.

तृ० प० स० } मालाए,-इ	मालाहिं,
	मालाणं,-ण
	मालासु,-सुं
सं० माले	मालाओ,-उ

પ્રાકૃતમાં સ્ત્રીલીંગી इकारांत અને ईकारांत તથા उकारांत અને ऊकारांत નામોનાં રૂપોમાં ફેરફાર હોતો નથી.

णई=नदी (स्त्रीलिंग)

એક વચન.	બહુવચન.
प्र० णई	} णईओ,-उ; (द्वितीया० णई ? જુઓ લૅસન, પા. ૩૦૭, નોટ ૨.)
द्वि० णईं	
पं० णईदो,-दु,-हि	णईहिंतो,-सुंतो
तृ० प० स० } णईअ,-आ णईइ,-ए	णईहिं,-हि
	णईणं,-ण
	णईसु,-सुं
सं० णइ	णईओ,-उ

ता તથા त्व છેડાવાળાં ભાવવાચક નામો પ્રાકૃતમાં दा અને त्तण છેડાવાળાં બની જાય છે, જેમ કે पीणदा, पीणत्तण. मत् અને वत् પ્રત્યયોનાં પ્રાકૃતમાં જુદાં જુદાં રૂપો થાય છે, જેમ કે उल्ल, इल्ल, आल, वंत, इंत (ગદ્યમાં वंद, इंद), જેમ કે विआरुल्ल (विकारवत्). તાચ્છીલ્યાર્થે इर પ્રત્યય વપરાય છે, જેમ કે इसिर. સ્વાર્થે क (अ) પ્રત્યય જોડવામાં આવે છે. જેમ કે भ्रमर—भमरअ, सखी—सहिआ. तृ (तृक) પ્રત્યયને બદલે त्तअ થાય છે, જેમ કે उन्मादयितृ—उम्माद-इत्तअ, आयासयित्री—आआसइत्तिआ (સ્ત્રીલિંગ).

વિભાગ ૩.

સર્વનામ પ્રકરણ.

પ્રાકૃતમાં સર્વનામનાં રૂપો નામપ્રમાણે ચાલે છે. અને તે ઉપરાંત કેટલાંક નવાં રૂપો પણ ઉમેરાય છે. નીચે આપેલાં ज = य નાં રૂપો ઉપરથી બીજાં ખાસ ઉપયોગી રૂપો સમજાઈ જશે.

પ્રાકૃતમાં વ્યંજનાંત શબ્દ રાખવામાં આવતો નથી, તેથી સંસ્કૃતનાં કેટલાંક સર્વનામોને પ્રાકૃતમાં વિભક્તિના પ્રત્યયો લગાડતાં કેટલાક ફેરફાર કરવા પડે છે; જેમ કે किम्, यद्, तद् ને બદલે क, ज, त થાય છે. एतद् નું एद, અને કોઈકવાર ए થાય છે (તેથી एत्ता = एतस्मात्); इदम् નું इम થાય છે; अदस् નું अमु થાય છે. किम्, यद्, तद् નું બીજું રૂપ कि, जि, ति પણ થાય છે; જોકે આ પાછળના રૂપો સ્ત્રીલિંગમાં વપરાય છે તો પણ પુલ્લિંગની અને નપુંસકલિંગની તૃતીયા અને ષષ્ઠીમાં તેમનાં કેટલાંક રૂપો આવે છે. इदम् નું પણ તૃતીયાનું इमिना રૂપ થાય છે. ખરી રીતે પ્રાકૃતમાં સર્વનામનાં રૂપોમાં બહુ નિયમિતતા જોવામાં આવતી નથી; તેથી इमस्सि ખરી રીતે પુલ્લિંગ સપ્તમીનું રૂપ હોવા છતાં ઘણી વાર સ્ત્રીલિંગમાં વપરાયું છે જેમ કે शाकुन्तल (મોનીયર વીલીયમ), પા૦ ૩૬, ૨; ૧૧૫, ૩.

વરરૂચિએ ખાસ આપેલાં કેટલાંક રૂપો હું નીચે આપું છું. तस्मात् અને एतस्मात् ને બદલે तो અને एत्तो (६, १०, २०); तस्य અને तस्याः ને બદલે से (६, ११); तेषां અને तासां ને

બદલે सिं. अहस् પ્રથમા એકવચન ત્રણે લિંગમાં अह. જો કે વરરુચિએ જણાવ્યું નથી તો પણ एनम् અને एनाम् ને બદલે નાટકોમાં णं વપરાયેલું જોવામાં આવે છે. कियत्, तावत् વિગેરેને બદલે केद्दह, केत्तिअ, तेद्दह, तेत्तिअ વિગેરે આપેલાં છે (૪, ૨૫); પરંતુ ખરી રીતે केद्दह વિગેરે कीदृश વિ. ને માટે હોવાં જોઈએ.

जन्य (પુલ્લિંગ) કોણ.

	એક વચન.	બહુવચન.
प्र०	जो (जं नपुं० किं=किम्)	जे (जाइं,-इ नपुं०)
द्वि०	जं —	जे —
तृ०	जेण, जिणा	जेहिं, जेहि
पं०	जत्तो,-त्तु, जदो,-दु	जाहिंतो, जासुंतो
ष०	जस्स, जास[1]	जाणं,-ण, जेसिं
स०	जस्सि,-स्सि जम्मि,-म्मि जहिं, जहि, जत्थ	जेसु,-सुं

સ્ત્રીલિંગ.

	એક વચન.	બહુવચન.
प्र०	जा	जाओ-उ, जीओ,-उ
द्वि०	जं	
पं०	जादो,-दु, जीदो (?)	जाहिंतो,-सुंतो, जीहिंतो,-सुंतो
तृ०		जाहिं, जीहिं
ष०	जस्सा जासे (?) जिस्सा, जीसे	जासिं, जाणं,-ण, जीणं,-ण, जीसिं, (जासां, जेसिं)
स०		जासु,-सुं, जीसु,-सुं
तृ०, ष०, स०	जाए,-इ, जीए,-इ, जीआ,-अ	

વરરુચિએ (૬, ૨૫–૫૩) માં પુરુષ સર્વનામો આપ્યાં છે. જે રૂપો નાટકોમાં કદી પણ આવતાં નથી તેમને મેં બ્રૅકેટમાં મૂક્યાં છે. બહુવચનનાં રૂપો તદ્દન જુદીજ રીતે થાય છે, જેમ કે तुज्झ, तुम्ह, तुम्म, अम्ह, तथा मज्झ.

अस्मद् 'હું'

	એક વચન.	બહુવચન
प्र०	अहं (हं, अहअं, अहम्मि)	अम्हे (वअं ગદ્યમાં વપરાય, ચર૦ ૨૦, ૨૫)
द्वि०	मं, ममं (अहम्मि)	अम्हे, णो (णे)
तृ०	मे, मए (मइ, ममाइ)	अम्हेहिं,-हि
पं०	मत्तो (मइत्तो, ममादो,-दु ममाहि)	अम्हाहिंतो,-सुंतो
ष०	मे, मम, मज्झ, मह[2]	णो, अम्ह, अम्हाणं, अम्हे[3] (मज्झ ?).
स०	मइ (मए, ममम्मि)	अम्हेसु

૧. વળી, નાટકોમાં નપુંસકલિંગ ષષ્ઠીમાં कीस 'શામાટે' એવા અર્થમાં વપરાયલું જણાય છે.

૨. આ રૂપો ઉપરાંત सत्तस० માં ममं અને महं રૂપો વપરાયેલાં જણાય છે.

૩. આ રૂપો ઉપરાંત सत्तस० માં अम्हं, अम्मं, म्ह, अम्हि, अम्हाण રૂપો વપરાયેલાં જણાય છે.

युष्मद् 'तु'

प्र०	तुमं, तुं (तं)	तुज्झे, तुम्हे
द्वि०	(तं, तुं) तुमं	तुज्झे, तुम्हे, वो
तृ०	तइ, तए, तुमए, तुमे, (तुमाइ) ते, दे	तुज्झेहिं, तुम्भेहिं, तुम्हेहिं
पं०	तत्तो (तइत्तो, तुमादो,–दु, तुमाहि)	तुम्हाहिंतो,–सुंतो
ष०	(तुमो) तुह, तुज्झ, तुम्ह, तुम्म, तुव, तुअ, ते, दे	वो, (भे) तुज्झाणं, तुम्हाणं
स०	तइ, तुइ, तए, (तुमए, तुमे तुमम्मि	तुज्झेसु, तुम्हेसु

પ્રથમનાં ત્રણ સંખ્યાવાચક શબ્દોનાં પ્રાકૃતરૂપ एअ અગર एक्क, दो (પ્રથ૦ અને દ્વિતી૦–दो, दुवे, दोणि; षष्ठी–दोण्हं), ति (પ્રથ૦–तिण्णि, षष्ठी–तिण्हं) થાય છે. षष् ને બદલે छ થાય છે.

વિભાગ ૪.

ક્રિયાપદ પ્રકરણ

ખરી રીતે જોતાં પ્રાકૃતમાં એકજ ગણ્ (=સંસ્કૃતનો પહેલો અને છઠ્ઠો) છે. સામાન્ય રીતે બધા ધાતુઓને આજ ગણમાં લાવવાનો પ્રયત્ન કરવામાં આવે છે, તો પણ અન્યાન્ય ગણનાં કેટલાંક રૂપો નાટકોમાં જોવામાં આવે છે.

નામ પ્રક્રિયામાં જણાવ્યા પ્રમાણે ક્રિયાપદમાં પણ દ્વિવચનરૂપ થતાં નથી.

કર્તરિ પ્રયોગમાં ફક્ત વર્તમાનકાળ, સામાન્ય ભવિષ્યકાળ, તથા આજ્ઞાર્થ જોવામાં આવે છે.

વર્તમાનકાળનાં રૂપો.

	એક વચન.	બહુવચન.
પ્ર૦ પુ૦	हसामि, हसमि. हसम्हि	हसामो,–मु,–म, हसिमो,–मु,–म हसमो,–मु,–म, हसम्हो,–म्ह
દ્વિ૦ પુ૦	हससि	हसह (ગદ્યમાં हसध,–धं) हसित्था (हसत्थ ?)
તૃ૦ પુ૦	हसदि[1] हसइ	हसन्ति[2]

મધ્યમ પ્રયોગમાં ત્રણે પુરૂષનાં એકવચનનાં રૂપો થાય છે, જેમ કે ૧. सणे, ૨. सहसे, ૩ सहदे, અથવા सहए.

આજ્ઞાર્થ.

	એક વચન	બહુવચન.
૧.	हसमु (वर० ७. १८)	हसामो,–म हसमो,–म, हसम्ह.
२.	हससु, हस, हसाहि, हसस्स	हसह, हसध,–धं
३.	हसदु[1], हसउ	हसन्तु.

૧. આ ગદ્યમાં વપરાતું રૂપ છે. તેજ પ્રમાણે हुं વાળાં સામાન્યરૂપ, તથા इद વાળા ભૂત કૃદંત પણ ગદ્યમાં વપરાતાં રૂપો છે.

૨. अस् 'થવું' નાં રૂપો નીચે પ્રમાણે છે. એક વચન. ૧. म्हि, ૨. असि, ૩. अत्थि, બહુવ૦ अम्हो, अम्ह, ३ सन्ति. તેજ પ્રમાણે એન્કલીટીકમાં એક વ૦ ૧ म्हि, ૨ सि ૩ त्थि, બહુવ૦ ૧ म्हो, म्ह, ૨ त्थ. અનદ્યતનભૂતમાં એકવ૦ ૧. आसिं, आसि, ૨. ૩. आसि.

કોઈ પણ પુરૂષપ્રત્યયની પહેલાં अ ને બદલે ए વિકલ્પે કરી શકાય છે (વર० ૧, ૩૪), જેમ કે हसेमि, વિગેરે; हसेदि, हसेदु, વિ०; બીજા શબ્દોમાં કહીએ તો, अय નું ટુંકું રૂપ ए હોવાથી એમ કહી શકાય કે પ્રાકૃતમાં ક્રિયાપદોનાં રૂપો સંસ્કૃતના દસમા ગણના ક્રિયાપદો પ્રમાણે વિકલ્પે થાય છે. इकारांत અને उकारांत પહેલા ગણના સંસ્કૃત ક્રિયાપદોના अय અને अव ને બદલે ए અને ओ મૂકવામાં આવે છે, જેમ કે जयतु—जेदु, भवसि—होसि; અથવા તો यँ નો લોપ થાય છે, અને व ને રાખવામાં આવે છે, જેમ કે जअदु, हवसि. ऋकारांत ક્રિયાપદોમાં अर મૂકવામાં આવે છે, જેમ કે हरति—हरइ, म्रियते—मरइ. ચોથા ગણના ધાતુઓમાં અંત્ય વ્યંજન બેવડાય છે, જેમ કે कुप्यसि—कुप्पेसि, અથવા य् નો લોપ કરીને જુદું જ રૂપ કરવામાં આવે છે, જેમ કે बुध्यासि—बुज्झासि. સાતમા ગણના ધાતુઓમાં અનુનાસિક ઉમેરવામાં આવે છે, અને પછી બીજા ગણોની માફક તેમનાં રૂપો ચલાવવામાં આવે છે, જેમ કે रुणद्धि—रुन्धदि, रुन्धइ, रुन्धेइ. પાંચમા ગણના ધાતુઓમાં ण ઉમેરવામાં આવે છે, જેમ કે शृणोमि—सुणामि, शृण्वन्तु—सुणन्तु; કેટલીક વાર સંસ્કૃત રૂપો પણ રાખવામાં આવે છે, જેમ કે चिणोमि; सुणु તથા सुणाहि. નવમા ગણમાં णा અને ण બેઉ વપરાય છે, જેમ કે जाणादि અને जाणदि (जानाति). તે ઉપરાંત जाणाहि અને जाणीहि રૂપો પણ જોવામાં આવે છે.

વિધ્યર્થનાં માત્ર કેટલાંક ત્રુટિત રૂપો જ જોવામાં આવે છે, જેમ કે ૧. भवेअं, जीवेअं, ૩. भवे, हरे (પણ જુઓ વેબરનું सत्तश०, પા. ૬૨.)

પ્રાકૃતમાં ભવિષ્યકાળનાં ઘણાં રૂપો છે.

(अ) ખાસ ઉપયોગમાં આવતાં રૂપોના પ્રત્યયો નીચે પ્રમાણે છે.

એકવચન.	૧. स्सं, स्सामि.	૨. स्ससि.	૩. स्सदि, स्सइ.
બહુવચન.	૧. स्सामो.	૨. स्सध, स्सह.	૩. स्सान्ति.

આ પ્રત્યયો લગાડતાં પહેલાં इ લગાડવામાં આવે છે, જેમ કે हसिस्सं; વિગેરે. મૂળ સંસ્કૃત પ્રત્યય ष्य નું આ स्स તે પ્રાકૃત રૂપ છે.

(ब) બીજા પ્રત્યયોમાં स्स ને બદલે च्छ વપરાય છે, જેમ કે सोच्छं (श्रु નું પ્રથમ પુરૂષી એકવચન). (જુઓ વર० ૭, ૧૬, ૧૭.).

(क) ત્રીજી જાતનાં પ્રત્યયોમાં स्स ને બદલે हि વપરાય છે, જેમ કે हसिहिमि વિગેરે. આ ઉપરાંત પહેલા પુરૂષ એકવચન અને બહુવચનનાં हसिहामि અને हसिहामो એવાં રૂપો થાય છે. [વળી, काहं (कृ નું રૂપ), दाहं (दा નું રૂપ) પણ થાય છે; વર० ૭. ૨૬; काहं રૂપ વેબરના सत्तश० પા० ૧૯૦ માં વપરાએલું છે.]

[વળી, ज्ज, અને ज्जा પ્રત્યયો લગાડતાં કેટલાંક વિરલ રૂપો બને છે, (વર० ૭, ૨૦-૨૨), જેમ કે होज्ज, होज्जा, होज्जहिइ, होज्जाहिइ, વિગેરે. કેટલાંક ईअ અને हीअ અંતવાળા ભૂતાર્થ વચનનાં વિરલ રૂપો પણ દેખાય છે, (વર० ૭, ૨૩-૨૪) જેમ કે हुवीअ, होहीअ (अभूत्); જુઓ લૅસન્સ ઈન્સ્ટ०, પા० ૩૫૩-૮. सत्तश० માં ज्ज અને ज्जा છેડાવાળાં કેટલાંક વિધ્યર્થ રૂપો વપરાએલાં છે.]

પ્રાકૃતમાં કર્મણિ પ્રયોગમાં કર્તરિનાજ પ્રત્યયો વપરાય છે; અને य પ્રત્યયને બદલે ईअ અથવા इज्ज પ્રત્યય લગાડે છે; જેમ કે पढीअइ, पढीअदि અથવા पढिज्जइ (पठ्यते). કેટલીક વાર य રાખવામાં આવતાં પૂર્વના વ્યંજન પ્રમાણે તેનું રૂપાંતર થાય છે, જેમ કે गम्मइ (गम्यते); दिस्सइ અગર दीसइ (दृश्यते).

પ્રેરક ભેદના પણ બે રૂપો છે; એકમાં સંસ્કૃતના अय् નો ए કરવામાં આવે છે, જેમ કે कर—कृ ઉપરથી कारेदि થાય છે (ધાતુમાંના પહેલા અક્ષરના अ નો आ કરવામાં આવે છે, વર० ૭, ૨૫)

બીજામાં આવે (આવે ?) લગાડવામાં આવે છે; જેમ કે कारावेदि અથવા करावेदि (અહીં, પ્રથમના अ નો વિકલ્પે आ થયો છે, વર૦ ૭. ૨૭).

જો ધાતુનો અંત્યાક્ષર વ્યંજન હોય તો तुमुन् રૂપ કરતી વખતે तुम् લગાડવામાં આવે છે, પણ અંત્યાક્ષર સ્વર હોય તો दुम् લગાડવામાં આવે છે, જેમ કે घस् ઉપરથી घत्तुं; नी ઉપરથી नेदुं. ઘણીવાર વ્યંજનાંત ધાતુને इ અથવા ए લગાડીને ધાતુને સ્વરાંત બનાવવામાં આવે છે, અને ત્યાર પછી તેને दुम् પ્રત્યય લગાડવામાં આવે છે; જેમ કે रमिदु (रन्तु), કાવ્યમાં ઘણી વાર द્નો લોપ કરવામાં આવે છે, જેમ કે हस् ઉપરથી हसेउं, हसिउं.

સંસ્કૃતના त्वा અંતવાળા કૃદન્ત બનાવવાને પ્રાકૃતમાં तूण અગર ऊण પ્રત્યય લગાડવામાં આવે છે, જેમ કે का=कृ ઉપરથી काऊण, घेत्=ग्रह् ઉપરથી घेत्तूण. સંસ્કૃતના य અંતવાળા કૃદંત બનાવવાને પ્રાકૃતમાં इअ લાગે છે, અને ગદ્યમાં ઘણાં ખરાં આના રૂપ વપરાય છે, જેમ કે गेण्ह-ग्रह् નું गेण्हिअ. કેટલીક વાર ગદ્યમાં त्वा ને સ્થાને दुअ વપરાય છે, જેમ કે कदुअ (कृत्वा); गदुअ (गत्वा), વિગેરે. (वर० ૧૨. ૧૦).

કર્તરિ વર્તમાન કૃદંતને અંતે अंत પ્રત્યય (અથવા, વર૦ ૭. ૩૪ પ્રમાણે एंत) લાગે છે; જેમ કે पढंत, सुणंत. (વરરુચિ ૭. ૧૧) ના કહેવા પ્રમાણે સ્ત્રીલિંગનાં पढई તેમજ पढंती એમ બે રૂપો થાય છે. મધ્યમ-પ્રયોગમાં વર્તમાન કૃદંતનો પ્રત્યય माण છે (સ્ત્રીલિંગમાં माणी અથવા माणा પ્રત્યય લાગે છે).

કર્મણિ-પ્રયોગમાં न्त અને माण પ્રત્યયો લાગે છે, અને તેની પહેલાં इज्ज પ્રત્યય લાગે છે, જેમ કે करिज्जन्त (कार्यमाण), તેમજ, डज्झन्त (दह्यमान), रक्खीअमाण (रक्ष्यमाण). ભૂતકૃદંતના રૂપો સંસ્કૃતપ્રમાણે થઈ તેમાં પ્રાકૃતના નિયમો પ્રમાણે ફેરફાર થાય છે, જેમ કે सुद અથવા सुअ=श्रुत; लद्ध=लब्ध; કોઈક વાર इ વચ્ચે ઉમેરવામાં આવે છે, જેમ કે धरिद (धृत), सुणिद (श्रुत). આ ઉપરાંત કેટલાંક અનિયમિત રૂપો થાય છે, જેમ કે रुण्ण (रुदित). વિધ્યર્થ કૃદંતના य નો તેની પહેલાંના વ્યંજન પ્રમાણે ફેરફાર થાય છે, જેમ કે विण्णप्प (विज्ञप्य), कज्ज (कार्य); अनीय પ્રત્યયને બદલે अणीअ, અથવા अणिज्ज થાય છે, જેમ કે पूअणीअ (पूजनीय), करणिज्ज (करणीय).

પ્રાકૃતમાં પરોક્ષભૂત કાળ નથી. તેના ઠેકાણે અકર્મક ધાતુના અર્થમાં ભૂતકાલવાચક ધાતુ-સાધિત વિશેષણ (कर्तरि क्तः) નો ઉપયોગ કરવામાં આવે છે. અને સકર્મક ધાતુના અર્થમાં તેવાજ રૂપની કર્તાની તૃતીયા અને સકર્મની પ્રથમા વિભક્તિ વડે કામ લેવામાં આવે છે.

અવ્યયોવિષે પ્રાકૃતમાં વિશેષ જાણવા જેવું કાંઈ નથી. ફક્ત એટલુંજ જાણવું જોઈએ કે इति ને બદલે त्ति મુકવામાં આવે છે, જેની પહેલાં आ, ई અથવા ऊ ને હ્રસ્વ બનાવવામાં આવે છે, અને અનુસ્વારની પછી આવે તો ति થઈ જાય છે. હ્રસ્વ સ્વર અગર ए, ओ પછી[1] खलु આવે તેનો क्खो થાય છે, તથા દીર્ઘ સ્વરની પછી (તથા અનુસ્વાર પછી પણ) खु થાય છે. તેજ પ્રમાણે एव ને બદલે ज्जेव्व અથવા जेव्व, અને एव्व તેમજ एज्ज થાય છે. इव ને બદલે विअ તથા व्व થાય છે; अपि જો સ્વર પછી આવે તો તેનું वि અથવા वि થાય છે, અને અનુસ્વાર પછી આવે તો पि થાય છે, તથા વાક્યના આરંભમાં अवि થાય છે.

આ સ્થળે માગધી ભાષાનું નામ જણાવવાની જરૂર ગણું છું. તેમાં स અગર ष ને બદલે श

૧. કાવ્યમાં સ્વરની પહેલાં આવેલું અનુસ્વાર પોતાની સાથેના અંત્યસ્વરને દીર્ઘ બનાવે છે. પણ જો અનુસ્વારને म् તરીકે લખવામાં આવે તો તે સ્વર હ્રસ્વ જ રહે છે, અને ત્યાર બાદ એ બેઉ શબ્દોની સંધિ થાય છે; જુઓ વેબર, सप्तश० પા૦ ૪૭.

થાય છે, તથા र् ને બદલે ल् થાય છે; ज्ञ ને બદલે ण्ण् તેમજ यं-ज्ञं ને બદલે ख्य થાય છે; अ કારાંત નામના પ્રથમા એક વચનમાં છેવટે ए અગર इ આવે છે, જેમ કે माशे (माषः).

ઉપરના નિબંધમાં, ધરવાપ્રમાણે, સાધારણ વિદ્યાર્થીઓને કાળિદાસ અગર ભાવભૂતિનાં નાટકોમાંનું પ્રાકૃત સમજવા માટે જોઈએ તેટલું જ્ઞાન આપવામાં આવ્યું છે. અલબત, મૃચ્છકટિક અગર વિક્રમોર્વશીયનું પ્રાકૃત સમજવાને કેટલાક વિશેષ જ્ઞાનની જરૂર છે.

---

૧. જેને પ્રાકૃતનો અભ્યાસ વધારવો હોય તેમણે નીચેના ગ્રંથોનું અવલોકન કરવું:—

1 Lassen's Institutiones Linguae Pracritical, 1837. 2. Weber's सप्तशतक of हाल with his excellent introduction, 1870. 3. वररुचि. નો प्राकृतप्रकाश, ૧૮૫૪. 4. प्राकृत बालभाषा-(मागधी)-व्याकरण of Hemchandra, Bombay, 1873; આ ગ્રંથની વિવેચનાત્મક આવૃત્તિ ડૉ૦ પીશલે તૈયાર કરે છે. તે ગ્રંથ ખાસ કરીને જૈન પ્રાકૃત માટે ઉપયોગી છે.



परिशिष्टः—જર્મન ઓરિએન્ટલ સોસાયટીના 'અબન્ડલુંગેન' ના પાંચમા પુસ્તકમાં પ્રો. વેબરે પ્રકટ કરેલા હાલકવિના સપ્ત શતકમાંથી આર્યાવૃત્તની દસ ગાથાઓ નીચે આપી છે.

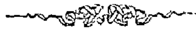
१. पाअपडिअस्स पइणो पुट्ठिं पुत्ते समारुहंतम्मि ।
　　दढमण्णुदूमिआए वि हासो घरिणीए निक्कन्तो ॥ (११.)
२. अज्ज मए तेण विणा अणुहूअसुहाइ संभरन्तीए ।
　　अहिणवमेहाण रवो णिसामिओ वज्झपडहो व्व ॥ (२९)
३. तुज्झ वसइ त्ति हिअअं इमेहि दिट्ठो तुमं ति अच्छीइं ।
　　तुह विरहे किसिआइ ति तीए अंगाइ वि पिआइं ॥ (४०)
४. कल्लं किर खरहिअओ पवसइ पिओ त्ति सुणीअइ-जणम्मि ।
　　तह वड्ढ भअवइ णिसे जह से कल्लं विअ ण होइ ॥ (४५.)
५. अद्दंसणेण पेम्मं अवेइ अइदंसणेण वि अवेइ ।
　　पिसुणजणजम्पिएण वि अवेइ, एमेअ वि अवेइ ॥ (८०.)
६. दक्खिण्णेण वि एन्तो सुहअ सुहावेसि अम्ह हिअआइं ।
　　णिक्कइअवेण जाणं गओ सि, का णिव्वुदी ताण ॥ (८४.)
७. तइआ कअग्घ महुअर ण रमासि अण्णासु पुप्फजाईसु ।
　　बद्धफलभारगरुइं मालइमेण्हिं परिच्चअसि ॥ (९१)
८. उप्पण्णत्थे कज्जे अइचिन्तन्तो गुणागुणे तम्मि ।
　　अइसुइरसण्हपेच्छि-त्तणेण पुरिसो हरइ कज्जं ॥ (२१८).
९. कलहंतरे वि अविणि-ग्गआइ हिअअम्मि जरमुवगआइं ।
　　सुअणकआइ रहस्सा-इ डहइ आउक्खए अग्गी ॥ (३२८).
१०. वोलीणोलच्छिअरू-अजोव्वणा पुत्ति किण्ण दूमेसि ।
　　दिट्ठप्पणट्ठपोरा-णजणवआ जम्मभूमि व्व ॥ (३४२.)



॥ ॐ अर्हम् ॥

॥ नमोऽस्तु श्रमणाय भगवते श्रीमहावीराय ॥

॥ उपकेशगच्छीया पट्टावलिः ॥



॥ श्रीमत्पार्श्वजिनेंद्राय नमः ॥ श्रीमत्केशीकुमारगणधरेभ्यो नमः ॥ श्रीमद्रत्नप्रभसूरिसद्गुरुभ्यो नमः ॥ ओकेशशब्दस्यार्थाः लिख्यंते ॥ इशिक् ऐश्वर्ये, ओकेषु गृहेषु इष्टे पूज्यमाना सती या सा ओकेशा सच्चिका नाम्नी गोत्रदेवता। अत्र ओक शब्दो अकारांतः तस्यां भवस्तस्या अयमिति वा ओकेशः। भवे इत्यण् प्रत्ययः, तस्येदमित्यनेन वा अणप्रत्ययः । सच्चिका देवी हि नवरात्रादिषु पर्वसु अस्मिन् गणे पूज्यते सा चास्य गणस्य अधिष्ठात्री अतएवास्य गच्छस्य ओकेश इति यथार्थं नाम प्रोच्यते सद्भिरिति प्रथमोऽर्थः ॥ १ ॥

ईशनमीशः ऐश्वर्यं ओकैर्महर्द्धिकश्राद्धप्रमुखलोकानां गृहैरीशो यस्यां सा ओकेशा ओसिका नगरी । तत्र भव ओकेशः । ओसिकानगर्यां हि अस्य गणस्य ओकेश इति नाम श्रीरत्नप्रभसूरीश्वरतो विख्यातं जातमिति द्वितीयोऽर्थः ॥ २ ॥

अः कृष्णः उः शंकरः को ब्रह्मा । एषां द्वंद्वसमासे ओकास्ते ईशते पूज्यमानाः संतो देवत्वेन मन्यमानाः संतश्च येभ्यस्ते ओकेशाः। ओके कृष्णशंभुब्रह्मभिर्देवैरीशते ये ते वा ओकेशाः । परशासनजनाः क्षत्रियराज्यपुत्रादयः प्रतिबोधविधानात्तेषामयं ओकेशः । तस्येदमित्यणप्रत्ययः । श्रीरत्नप्रभसूरिभिस्तेषां पारतीर्थिकधर्मनिष्ठातः सिद्धान्तोक्तविशुद्धजैनधर्म्मनिष्ठायां प्रतिबोधदानेन प्रवर्तना कृता । तथा च श्रूयते पूर्वं हि श्रीरत्नप्रभसूरीणां गुरवः श्रीपार्श्वापत्यीयकेशीकुमारानगारसंतानीयत्वेन विख्यातिमंतो जगति जज्ञिरे । ततः प्राप्तसूरिमंत्राः समस्तंत्रा रमणीयाऽतिशयनिचयाः स्वकीयनिस्तुषशेमुषीप्राग्भारसंभारात् ज्ञातदिग्दशसूरयः श्रीमच्छ्रीरत्नप्रभसूरयः कियति गते काले विहरंतः संतः श्रीओसिका-नगर्यां समवसृताः । तस्यां च सर्वे लोकाः पारतीर्थिकधर्म्मधारिणो संति । न कोपि जैनधर्म्मधारी। ततः साध्वाचारं प्रतिपालयद्भिः सिद्धान्तोक्ततीर्थंकरधर्म्मशुभकर्मप्ररूपणां कुर्वद्भिः सद्भिः श्रीरत्नप्रभसूरिभिः पारतीर्थकानेकच्छेकविवेकिलोकाः प्रतिबोधितास्ततः एते ओकेशा इति विरूदो विख्यातो जातः । इति तृतीयो अर्थः ॥ ३ ॥

अः कृष्णः, आः ब्रह्मा, उः शंकरः, एषां द्वंद्वे आवस्ततः ओभिः कृष्णब्रह्मशंकरैर्देवैः कायते स्तूयते देवाधिदेवत्वादिति ओकः प्रस्तावात् श्रीवर्धमानस्वामी कचिदिति ड प्रत्ययः, ओकश्चासौ ईशश्च ओकेशस्तस्यायं ओकेशः वर्तमानतीर्थाधिपतिश्रीवर्धमानजिनपतितीर्थाश्रयणादिति चतुर्थोऽर्थः ॥ ४ ॥

अः अर्हन्,अः स्यादर्हति सिद्धे चैत्युक्तेः। प्रस्तावादिह अ इति शब्देन श्रीवर्धमानस्वामी प्रोच्यते। ततः अस्य ओको गृहं चैत्यमिति यावत्, ओकः श्रीवर्धमानस्वामिचैत्यमित्यर्थः। तस्मादीशः ऐश्वर्यं यस्य स ओकेशः यतोयं गणः श्रीमहावीरतीर्थकरसान्निध्यतः स्फातिमवापेति पंचमोऽर्थः ॥ ५ ॥ एवमस्य पदस्यानेकेप्यर्थाः संवोभुवति परं किं बहुश्रमेणेति ॥

अथ उपकेशशब्दस्य कियंतोऽर्था लिख्यंते। उप समीपे केशाः शिरोरूहाः सत्यस्येति उपकेशः। श्रीपार्श्वापत्यीयकेशिकुमारानगारः। एतदुत्पत्तिवृत्तांतस्तु श्रीस्थानांगवृत्त्यादौ सप्रपंचः प्रतीत एवास्ति। तत एवावगंतव्यः। ततः उपकेशः श्रीकेशिकुमारानगारः पूर्वजो गुरुर्विद्यते यस्मिन् गणे स उपकेशः। अभ्रादित्वाद् प्रत्ययः। अस्मिन्गच्छे हि श्री केशिकुमारानगारः प्राचीनो गुरुरासीत्। ततो यथार्थमुपकेश इति नाम जातमिति प्रथमोऽर्थः ॥ १ ॥

उपवर्जितास्त्यक्ताः केशा यत्र सः उपकेशः ओसिकानगरी तस्यां हि सात्यिका देव्याश्चैत्यमस्ति। तदग्रे च घनैर्जनैः प्रथमजातबालकानां सुदिने दिने मुंडनं कार्यते तत उपकेश इति यथार्थं नाम ओसिकानगर्याः प्रख्यातं जातं। तत्र भवो यो गच्छः स उपकेशः प्रोच्यते सद्भिर्विद्वद्भिः। अत्र हि भवे इत्यनेन सूत्रेण अणि प्रत्यये संज्ञापूर्वकस्य विधेरनित्यत्वाद्वृद्धेरभावः। श्रीरत्नप्रभसूरितो अनेकश्रावक प्रतिबोधविधानानंतरं लोके गच्छस्य उपकेशेति नाम प्रसिद्धं जातमिति द्वितीयोऽर्थः ॥ २ ॥

को ब्रह्मा, अः कृष्णः, अः शंकरः, ततो द्वंद्वे काः। तैरीष्टे ऐश्वर्यमनुभवति यः सः केशकानां ईशः ऐश्वर्यं यस्माद्वा केशः पारतीर्थिकधर्म्मः सः उपवर्जितस्त्यक्तो यस्मात्स उपकेशस्तीर्थकृदुक्तविशुद्धधर्म्मः स विद्यते यस्मिन् गच्छे स उपकेशः। अत्रापि अभ्रादित्वादप्रत्ययः। इति तृतीयोऽर्थः ॥ ३ ॥

कं च सुखं ई च लक्ष्मीः कयौ ते ईशे स्वायत्ते यत्र यस्माद्वा स केशः—अर्थात् जैनो धर्मः। स उपसमीपे अधिको वाऽस्माद्गच्छात्स उपकेशः इति चतुर्थोऽर्थः ॥ ४ ॥

कश्च अश्च ईशश्च केशाः—ब्रह्मविष्णुमहेशाः। तद्धर्म्मनिराकरणात्ते उपहता येन सः उपकेशः। प्रकरणादत्र श्रीरत्नप्रभसूरिः गुरुः तस्यायं उपकेशः। अत्रापि तस्येदमित्याणि प्रत्यये पूर्ववद्वृद्धेः अभावो न दोषपोषायेति पंचमोऽर्थः ॥ ५ ॥

इत्थमन्येऽप्यनेके अर्था ग्रन्थानुसारेण विधीयंते, परमलं बहुश्रमेणेति। एवमुक्तव्यक्तयुक्तिव्यक्तिशक्त्या ओकेशोपलक्षणे उभे अपि नाम्नी यथार्थे वटां प्राचतः॥ इति ओकेशोपकेशपदद्वयदशार्थी समाप्ता ॥

संवत् १६९९ वर्षे ॥ श्रीमद्विक्रमनगरे सकलवादिवृंदकंदकुद्दालश्रीकक्कुदाचार्यसंतानीयश्रीमत्सिद्धसूरीणां आग्रहतः श्रीमद्बृहत्खरतरगच्छीयवाचनाचार्यश्रीज्ञानविमलगणिशिष्यपंडितश्रीवल्लभगणीविरचिता चेयम्। श्रीरस्तु ॥

ग्रीष्महेमंतिकान् मासान्, अष्टौ भिक्षुः प्रचक्रमे।
रक्षार्थं सर्वजंतूनां वर्षास्वेकत्र संवसेत् ॥ १ ॥

मनुष्याणां सर्व्वेषु पदार्थेषु सारो धर्म्म एव। मनुष्यत्वं धर्म्मेणैव वर्ण्यते ॥ स धर्म्मो वर्षासु मुनिपार्श्वात् श्रोतव्यः। यतयो वर्षास्वेकत्र तिष्ठन्ति. किमर्थं सर्व जंतूनां रक्षार्थं। धर्मस्य सारं सर्व्व

जीवेषु दया । यथा हि पृथ्वी जीवाकुला भवति संयमो विराध्यते । अतो जीवरक्षार्थं चतुर्मासकल्पं तिष्ठंति । शिवशासने पि जीवदयास्वरूपमेवं व्यावर्णितं —

पश्यन् परिहरन् जंतून मार्जन्या मृदुसूक्ष्मया । एकाहविचरेद्यस्तु चंद्रायणफलं भवेत् ॥ १ ॥

महाभारते कृष्णद्वीपायनेनाप्युक्तं—

यो दद्यात्कांचनं मेरुः कृत्स्नां चापि वसुंधरां । एकस्य जीवितं दद्यात् न च तुल्य युधिष्ठिरः ॥ २ ॥

परेप्येवं वदंति जैनवाक्यस्य किं वाच्यं । मुनयः क्षेत्रस्य त्रयोदश गुणान् वीक्ष्य तिष्ठंति

चिखिल १ पाण २ थंडिल ३ वसहि ४ गोरस ५ जणा ६ उले ७ विज्जे ८ ।

ओसह ९ धन्ना १० हिवइ १० पासंडा ११ भिखु १२ सिज्झाय ॥ १३ ॥

एते त्रयोदश गुणाः । तत्र स्थिता दशधा समाचारीं पालयंति—

इच्छा १ मिच्छा २ तहकारो ३ आवसिया ४ निसीहिया ५ आपुच्छणा य ६

पडिपुच्छ ७ छंदणा य ८ निमंतणा य ९ उपसंपयाकाले ॥ १० ॥ समाचारी भवे दसहा ॥ १ ॥

पुनः धर्मशास्त्रण्युपदिशंति । श्राद्धा वासनावासितचित्ताः शृण्वंति । परं चातुर्मासकात्पंचाशद्दिने व्यतिक्रांते कल्पावसरं ।

वीसहि दिणेहिं कप्पो पंचगहाणीय कप्पठवणायं ।
नव (९) सय तेणू (९३) एहिं वुच्छिन्ना संघआणाए ॥ १ ॥

अधुना कल्पावसरे अन्यग्रन्थादरो न यथा दिव्यकौस्तुभाभरणं प्राप्य अन्यरत्नाभरणेषु निरादरत्वं जायते यथा न कुंडपातालामृतं प्राप्यांबुजलास्वादो न रोचते । भारतीभूषणकविजनवचनरचनामासाद्य सामान्यजनवचांसि न रोचते । चक्रवर्तिन अग्रे सामान्यराजानोऽपसरंते देवानां नंदीश्रवणेनान्यशब्दा हीनतां व्रजंति । गन्धहस्तिनो गंधे अन्यगजेंद्रा मदजलविकला भवंति । केवलज्ञानागमने अन्य ज्ञाना अपसरंति । कल्पवृक्षाग्रेऽन्ये तरवाः न राजते । सूर्योदये खद्योतस्य का प्रभाः । मुक्तिसौख्याग्रे कानि सौख्यानि । *सिंहध्वनेः पुरो यथा अन्य शब्दा न राजते तथा कल्पावसरे अन्यानि शास्त्राणि आदरो न।* स कल्पो अनेकविधः-श्रीशत्रुंजयकल्पः गिरनारगिर कल्पः कदंब गिरिकल्पः अर्बुदाचलकल्पः अष्टापदकल्पः समेतगिरकल्पः हस्तिनापुरकल्पः मथुरानगरीकल्पः सत्यपुरकल्पः शंखेसरकल्पः स्तंभनतीर्थ कल्पः यतीनां विहारकल्पः वस्त्रस्य कल्पसंज्ञा अनेन प्रकारेण अनेके कल्पसंज्ञाः । एके कल्पाः एवं विधा वर्त्तते । यस्य प्रमाणेन श्री पादलिप्ताचार्यो यावद्यायाति साधवो विहृत्य तावत् पंच तीर्थे नमस्कारं विधायागच्छंति । एके कल्पास्ते उच्यते येषां प्रमाणेन अदृशीकरणं आकाशगमनं स्वर्णसिद्धिः लक्ष्मी प्राप्ति मित्र पुत्र बांधवस्वजन प्राप्ति प्रभृति लब्धयः संपद्यते । परमयं कल्पोऽमेय महिमा निधिः इह लोकाभीष्ट सौख्यकारणं । अयं कल्पो दशाश्रुतस्कंधस्याष्टममध्ययनं । नवमपूर्वात् श्री भद्रबाहु स्वामिनोद्धृतः अमेयमहिमानिधानः सर्व पापक्षयं करः यथा श्रूयमानः द्रुमेषु कल्पद्रुः सर्वकामफलप्रदः यथौषधीषु पीयूषं सर्वरोग हरं परं रत्नेषु गुरुडोद्गारं यथा । सर्वविषापहारः मंत्राधिराजो मंत्रेषु यथा सर्वार्थ साधकः । यथा पर्वसु दीपाली सर्वात्मा सुखावहा तथा कल्पः सद्धर्मे शास्त्रेषु सर्व पापहरस्तथा सर्व सिद्धान्त मध्ये

श्रीकल्पो गुरुतरः यथा पर्वतानां मध्ये मेरुः तीर्थ माहि शत्रुंजयः दानमध्ये अभयदान अक्षरमध्ये ॐकार देवेष्विन्द्रः ज्योतिषीषु चंद्र गजेन्द्रेष्वैरावण समुद्रेषु स्वयंभुरमणः तुरंगमेषु रेवत ऋतुषु वसंत मृतिकयां तूरी सुगंधीषु कस्तुरी धातुषु पीतं मोहनेषु गीतं काष्टेषु चंदनं इंद्रियेषु नेत्रं व्यवहार पर्वसु दीपालिका धर्मशास्त्रेषु कल्पः सर्व पापहरः सर्वे दुखक्षयंकरः । यथा जनमेजय राजा अष्टादश पर्व श्रवणात् १८ विप्र हत्यात्यागः यवनिका श्यामत्वं जातं । यथा एकस्मिन् दिवसे जनमेजय राजाग्रे पुरोहितेन कथितं पूर्वं त्रेतायुगे पांडवैश्च कौरवैः कृता अष्टादशाक्षोहिणिमृताः महाभारतो जातः । राजा प्रोक्तं को नाभवत् यत्तेषां निवारयति पुरोहितेन कथितं त्वां न निवारयामि । यतः अद्य दिवसात् षष्टे मासे त्वं आवेटके न गंतव्यं यदा गमिष्याति तदा सूकरमृगं तेषां कटके अश्वो न क्षेपणियं यदा अस्वो क्षेपयति तदा सगर्भा मृगी तस्यां बाणं न मोचनीयं यदा मुंचति तदा तस्या उदरं मध्ये पुत्रिका भविष्यति सा न गृहीतव्या यदा ग्राहयति तदा तस्या पाणिग्रहणं न करणीयं यदा प्राणिग्रहणं करोति तदा तस्या पट्टराज्ञिपदं न दातव्यं तस्या कथितं न मान्यं । इत्यादि भविष्यति वचनानि मया तव कथिताः स्युः परं त्वं न तिष्ठसि । अथ षट् मासाः द्वित्रिदिवसोना गता तदा मालाकारेणागत्य राज्ञः कथितं भो राजन् तव वनो सूकरैः भग्नः । राज्ञा अश्वं सज्जीकृत्य तेषां पृष्टे गतः । ते पूर्वोक्तानि वचनानि सर्वे कृता गडवालस्य पुत्रिका दत्ता एषा त्वं पालय तेन पालिता परं स्वरूपा । अन्यदा राज्ञा दृष्टा सा परिणीता पूर्ववचनानि सर्वे विस्मृताः राज्ञा पट्टराज्ञी कृता। अन्यदा राज्ञा यज्ञो मंडितः अष्टादशपुराणवेत्तारः अष्टादश ब्राह्मणा आकारिताः यज्ञं यजमानं कश्चिद्दूतेन देशान्तरादागतेन नृपोः आहूतः राज्ञा विप्राणां कथितं अहं उत्तिष्ठामि ते कथितं नहि यज्ञस्य विघातो भवति परं तव शरीरममाना पट्टराज्ञी अस्ति राजा उत्थित ततः कटके किंचिच्छाद्मस्य रहस्यो आगतः ते ब्राह्मणाः हसिताः राज्ञी ज्ञातं एते मम हसिता क्रुद्धा राज्ञः कथितं एते विनष्टा मां हसति ततः यदि एते मारयिष्यति तदा तव मम संबंधः । राज्ञा ते मारिता अष्टादशधा कुष्टा जातं । ततः पूर्वपुरोहितेन कथितं वरं त्वया न कृतं राज्ञा कथितं अधुना कथय किं करोमि तेन कथितं अष्टादश पुराणानि निसंदेहानि शृणु । ते चामि-- आदि पर्व१ सभा पर्व २ विराट पर्व ३ आरण्यक पर्व४ उद्यान पर्व५ भीष्म पर्व६ द्रोण पर्व७ कर्ण पर्व८ शल्य पर्व९ सौतिक पर्व१० गर्भ-पाल पर्व ११ शान्ति पर्व१२ शासन पर्व१३ आसुमास्य पर्व१४ मेषक पर्व१५ मूशल पर्व१६ यज्ञ पर्व१७ स्वर्गारोहण पर्व१८ ॥ एभिरष्टादशविप्रहत्याक्षयकृतायवनिकाश्यामत्वं जाताः । तथा अयमपि अधुना ये मुनयः उपवासत्रयेण वाचयंति चतुर्विधसंघो अष्टमेन शृणोति तदा तस्मिन्नेव भवे मोक्षः । यदि द्रव्यक्षेत्रकालसद्भावा भवंति । न चेत्तदा तृतीयभवे पंचमे भवे सप्तमे भवे अवश्यं मोक्षः । पूर्वं मुनयः पाक्षिकसूत्रवत्ऊद्ध्र्वस्थाः कथयंति चतुर्विध संघ ऊद्ध्र्वसन्नेव श्रणोति परं श्रीवीरनिर्वाणात९९३ वर्षे गते आनंदपुरे ध्रुवसेनराज्ञः सभायां पुत्रशोकापनोदाय देवर्द्धिमुनिना सभासमक्षं वाचितः श्रावकाः तांबूलदाना-दिप्रभावना कृता । तद्दिनादास्य सा रीतिः। परं त्वस्य कालस्य वाचनैवोच्यते न तु व्याख्या । पूर्वे ये पाद-लिप्ताचार्य–सिद्धसेनदिवाकरप्रभृतयो अभूवन् तैरपि वाचनैवोक्ता अन्येषां का वार्ता । यतः सिद्धान्ते इत्युक्तमस्ति सव्वनईणं जइहु वालुआ इत्यादि । एवंविधस्य कल्पस्य यदहं वाचनामनोरथं करोमि स बाहुभ्यां समुद्रतरणमभिलपामि । यथा कुब्ज उच्चफलं लातुमिच्छति तथाऽहं यदिच्छामि वाचनां; कर्तुं तत् संघस्य सांनिध्यं पुनः गुरूणां प्रासादः । यद्वर्षाकाले मयूरो नृत्यं करोति तज्जलधरगार्जितप्रमाणं । दृषद्रूपश्चंद्र-

कांतमणिर्यदमृतं स्रुते तच्चंद्रस्य प्रमाणं। सूर्यसारथी रविः आरूणः पंगोपि यदाकाशमुल्लंघयति तत्सूर्यस्य प्रमाणं। पुत्तालिका नृत्यं करोति तद्विंदजालिकस्य प्रमाणं। तथाऽहं मंदबुद्धिः मूर्खशिरोमणिः प्रमाणे सप्रमाणता नास्ति, लक्षणे सल्लक्षणता न, अलंकारस्याऽलंकरणं नहि, साहित्ये साहित्यं नास्ति, छंदसि सुछंदता न; एवंविधो पि वाचनाय साहसं करोमि तत् सद्गुरूणां प्रसादः। पुरातनैन्यांख्या कृता। ममापि युक्तिः। कथं

जं देवो सायरो लहरिगज्जंतनीरपडिपुन्नो। ता किं गामतलाओ जलभरिओ लहरिगा देऊ ॥ १ ॥
जइ भरह भावछंदे नचइ नवरंग चंगमा तरूणी। ता किं गामगहिल्ली तालिछंदेन नचेइ ॥ २ ॥
जइ दुद्धधवलखीरी तडफडइ विविहभंगेहि। ता कुक्कसकणसहिया रव्वडिया मा तडव्वडह ॥ ३ ॥
अहं यद्वेद्मि तद्गुरूणां प्रसादः।
टोलो रोलो रुलंतो अहियं विन्नाण नाण परिहीणो। दिव्वुव वंदणिज्जो विहिओ गुरुसुत्तहारेण ॥४॥
ते गुरवः श्रीपार्श्वनाथसंतानीयाः।

१ श्रीपार्श्वनाथशिष्यः प्रथमो गणधरः श्रीशुभदत्तः। २ तत्पट्टे श्रीहरिदत्तः। ३ तत्पट्टे श्रीआर्यसमुद्रः। ४ तत्पट्टे श्रीकेशीगणधरः तेन परदेशीनृपः प्रतिबोधितः। राजप्रश्नीयउपांगे प्रसिद्धः।

५ तत्पट्टेश्रीस्वयंप्रभसूरिः। (स्वयंप्रभसूरिशिष्य बुद्धकीर्तिसुं बौधमत नीकल्यो, आचारांग टीकासु जाणनो) अन्यदा स्वयंप्रभसूरि देशनां ददतां उपरि रत्नचूडविद्याधरो नंदीस्वरे गच्छन् तत्र विमानः स्तंभितः। तेन चिंतितः मदीयो विमानः केन स्तंभितः। यावत् पश्यति तावदधो गुरुं देशनाददंतं पश्यति। स चिंतयते मयाऽविनयः कृतः यतः जंगमतीर्थस्य उल्लंघन कृतं। स आगतः गुरुं वंदति धर्म श्रुत्वा प्रतिबुद्धः। स गुरुं विज्ञपयति मम परंपरागता श्रीपार्श्वजिनस्य प्रतिमास्ति तस्या वंदने मम नियमोऽस्ति सा रावणलंकेश्वरस्य चैत्यालये अभवत्। यावत् रामेण लंका विध्वंसिता तावद् मदीयपूर्वजेन चंद्रचूडनरनाथेन वैताढ्ये आनीता। सा प्रतिमा मम पार्श्वेस्ति। तया सह अहं चारित्रं ग्रहीष्यामि। गुरुणा लाभं ज्ञात्वा तस्मै दीक्षा दत्ता। क्रमेण द्वादशांगी चतुर्दश पूर्वी बभूव गुरुणा स्वपदे स्थापितः। श्रीमद्वीरजिनेश्वरात् द्विपंचाशतवर्षे (५२) आचार्य पदे स्थापितः। पंचाशतसाधुभिसह धरां विचरति। श्रीलक्ष्मीमहास्थानं तस्याभिधानं १ पूर्व नाम गुजरातिमध्ये कृतयुगे रयणमाला २ त्रेतायुगे रयणमाला ३ द्वापरे श्रीवीरनयरी ४ कलियुगे भीनमाल ५ तत्र श्रीराजाभीमसेन तत्पुत्रश्रीपुंज तत्पुत्र उत्पलकुमार अपरनाम श्रीकुमार तस्य बांधव श्रीसुरसुंदर युवराज राज्यभारधुरंधर। तयोरमात्य चांद्रवंशीय द्वौ भ्राता तत्र निवासी सा०ऊहड १ उद्धरण २ लघु भ्राता गृहे सुवर्ण संख्या आष्टादश कोट्यः संति। वृध्दभ्रातुर्गृहे ९९ नवनवति लक्षा संति। ये कोटीश्वरास्ते दुर्गमध्ये वसंति ये लक्षेश्वरास्ते बाह्ये वसंति। तत ऊहडेन एकलक्ष भ्रातुः पार्श्वे उच्छीर्ण याचितं। ततो बांधवेन एवं कथितं भवते विना नगरं उद्वसमस्ति, भवतां समागमे वासो भविष्यति। एवं ज्ञात्वा राजकुमार ऊहडेन आलोचितवान् नूतनं नगरं वसेयं ततो मम वचनं अग्रे आयातः। दीलीपुरे राजा श्री साधु तस्य ऊहडेन ९९ तुरंगमा भेटिकृता उवएसा संतुष्टो ददौ। ततो भीनमालात् अष्टादश १८ सहस्र कुटुंब अगात्। द्वादश योजना नगरी जाताः। तत्र श्रीमद्रत्नप्रभसूरीपंचसयासीष्य समेत लुणद्रही समायाति। मासकल्प अरण्ये स्थिता। गोचर्या मुनीश्वरा व्रजंति परं भिक्षा न लभते। लोका मिथ्यात्व वासिताः यादृशा गता तादृशा आगता मुनीश्वराः। पात्राणि प्रतिलेख्य मासं यावत् संतोषेण स्थिताः पश्चात् विहारः कृतः। पुनः कदाचित् तत्रायातः। शासनदेव्या कथितं भो आचार्य अत्र चतुर्मासकं कुरु।

तव महालाभो भविष्यति । गुरुः पंच त्रिंशत् मुनिभिः सह स्थितः । मासी द्विमासी तृमासी चतुर्मासी उप्पोसित कारिका । अथ मंत्रीश्वर ऊहड सुतं भुजंगेन दष्टः। अनेक मंत्रवादिनः आहूताः परं न कोपि समर्थस्तैः कथितं अयं मृतः दाघो दीयतां । तस्य स्त्री काष्टभक्षणे स्मशाने आयाता । श्रेष्टस्य महान् दुःखो जातः । वादित्रान् आकर्ण्य लघुशिष्यः तत्रागतः ।झंपाणो दृष्ट्वा एवं कथापयति भो ! जीवितं कथं ज्वालयत तैः श्रेष्टिने कथितं एषः मुनीश्वरः एवं कथयति । श्रेष्टिना झंपाणो वालितः क्षुल्लकः प्रनष्टः गुरुः पृष्ठे स्थितः। मृतकामानीय गुरु अग्रे मुंचति श्रेष्टि गुरु चरणे शिरं निवेश्य एवं कथयति भो दयालु मम देवो रुष्टः मम ग्रहो शून्यो भवति । तेन कारणेन मम पुत्रभिक्षां देहि । गुरुणा प्रासु जलमानीय चरणौ प्रक्षाल्य तस्य छंटितं। सहसात्कारेण सज्जो बभूव हर्ष वादित्राणि बभूव । लोकैः कथितं श्रेष्टि सुतः नूतन जन्मो आगतः । श्रेष्टिना गुरूणां अग्रे अनेकमणि मुक्ताफल सुवर्ण वस्त्रादि आनीय भगवान् गृह्यतां । गुरुणा कथितं मम न कार्यं परं भवद्भिः जिन धर्मो गृह्यतां । सपाद लक्ष श्रावकानां प्रति बोधि कारक । पूर्वं श्रेष्ठिना नारायण प्रासादं कारयितुमारब्धं । स दिवसे करोति रात्रौ पतति सर्वे दर्शनिनः पृष्टा न कोपि उपायो कथितं तेन रत्नप्रभाचार्यो प्रष्टः—भगवान् मम प्रासादो रात्रौ पतति । गुरुणा प्रोक्तं कस्य नामेन कारयतः । नारायण नामेन । एवं नहि महावीर नामेन कुरु मंगलं भविष्यति । प्रासादस्य विघ्नं न भविष्यति श्रेष्टिना तथैव प्रतिपन्नं । अथ शासनदेव्या गुरूणां कथितं हे भगवन् अस्य प्रासाद योग्यं मया देव गृहात् उत्तरस्यां दिशी लूणद्रहाभिधानं डुंगरिकायां श्री महावीर बिंबं कारयितुमारब्धं । तत्र तेन श्रेष्टिना गोपाल वचनात् गोदुग्ध स्रावकारणं ज्ञात्वा सर्वेपि दर्शनिनः पृष्टाः तैः पृथक् पृथक् भाषया अन्यदन्यदुक्तं । ततः श्रेष्टिना स आचार्योऽभिवंद्य पृष्टः ततः शासन देव्या वाक्यात् आचार्यो ज्ञात्वा एवं कथयति तत्र त्वत्प्रासाद योग्य बिंबो भविष्यति परं षट् मासैः सार्द्ध सप्त दिनैः निष्कासनीयं । श्रेष्टि उत्सुक संजातः । किंचिदूनैर्दिनैः निष्कासितः निंबु फल प्रमाण हृदयस्य ग्रन्थी द्वय सहितं । आचार्यैः प्रोक्तं अद्यापि किंचित् असंपूर्णं बिंबं विलंबस्त्व श्रेष्टिना प्रोक्तं गुरूणां कर प्रासादात् संपूर्णं भविष्यति । तेनावसरे कोरंटकस्य श्राद्धानां आल्हानं आगतं । भगवन् प्रतिष्ठार्थमागच्छ । गुरुणा कथितं मुहूर्त वेलायां आगच्छामि ।

सप्तत्या ७० वत्सराणां चरम–जिनपतेर्मुक्तजातस्य वर्षे
पंचम्यां शुक्लपक्षे सुरगुरुदिवसे ब्रह्मणः सन्मुहूर्ते ।
रत्नाचार्यैः सकलगुणयुतैः सर्वसंघानुज्ञातैः
श्रीमद्वीरस्य बिंबे भवशतमथने निर्मितेयं प्रतिष्ठा :॥ १ ॥
उपकेशे च कोरंटे तुल्यं श्री वीरबिंबयोः
प्रतिष्ठा निर्मिता शक्त्या श्रीरत्नप्रभसूरिभिः ॥ २ ॥

निजरूपेण उपकेसे प्रतिष्टा कृता वैक्रिय रूपेण कोरंटके प्रतिष्टा कृता श्राद्धै द्रव्यव्ययः कृतः । ततस्तेन श्रेष्ठिना श्रीऔपकेश पुरस्य श्रीमहावीर बिंब पूजा आरात्रिका स्नात्रकरण देव वंदनादिविधिः श्रीरत्नप्रभाचार्यात् शिक्षिता । तदनंतरं मिथ्यात्वाभावात् श्रावकत्वं केषांचित् श्रेष्टिसंबंधिनां संजातं । ततः आचार्येण ते सम्यक्त्वधारी कृता । एकदा प्रोक्तं भो यूयं श्राध्दा तेषां देवीनां निर्दयचित्ताया महिष बोत्कटादि

जीवघधास्थि भंगशब्द श्रवण कुतुहलप्रियया अविरतायाः रक्तांकितभूमितले आर्द्रचर्मबद्धवंदनमाले निष्ठुरजनसेवितं धर्मध्यानविघ्नापके महाबीभत्सरौद्रे श्री सच्चिकादेवि गृहे गंतुं न बुध्यते। इति आचार्यवचः श्रुत्वा ते प्रोचुः प्रभो युक्तमेतत् परं रौद्रा देवी यदि छलिस्याम तदा सा कुटुंबान् मारयति। पुनराचार्यैः प्रोक्तं अहं रक्षां करिस्यामि। इत्याचार्यवाक्यं श्रुत्वा ते देवी गृहे गमनात् स्थिताः। आचार्याणां प्रत्यक्षीभूय देव्या सकोपमित्युक्तं आचार्य मम सेवकान् मम देवगृहे आगच्छमानान् निवारणाय त्वं न भविष्यति। इत्युक्त्वा गता देवी परं सातिशय कालभावात् महाप्रभावात् अनेकसुरकृतप्रातिहार्ये आचार्ये देवी न प्रभवति। एकदा छलं लब्ध्वा देव्या आचार्यस्य कालवेलायां किंचित् स्वाध्यायादि रहितस्य वामनेत्रभ्ररधिष्ठिता। वेदाना जाता। आचार्यैः यावत् सावधानीभूय पीडायाः कारणं चिंतितं तावत् देवी प्रत्यक्षीभूय इति प्रोक्तं मया पीडा कृता। अहं स्वशक्त्या त्वां स्फेटयिष्यामि इति सावष्टंभं आचार्योक्तं श्रुत्वा समयाकूतं सा विनयं प्रोक्तं भवादृशानां ऋषीणां विग्रहं विवादो न युक्तः। यदि त्वं कडडमडडं ददासि तदाहं वेदनां अपहरामि। आचंद्रार्कं त्वत्किंकरी भवामि इति श्रुत्वा आचार्यैः प्रोक्तं कडडमडडं दापयिष्यामि। इत्युक्ता गता देवी। प्रभाते श्रावकानामाकार्य तैः पक्वान्न खज्जकादि, सुंडकद्वयं कर्पूरकुंकुमादिभोगश्च आनीय श्रीसच्चिकादेवी देवगृहे श्रीरत्नप्रभाचार्यः श्रावकैः सार्धं गतः। ततः श्रावकैः पार्श्वात् पूजां काराप्य वामदक्षिणहस्ताभ्यां पक्वान्नसुंडकादि चूर्णयद्भिः आचार्यैः प्रोक्तं देवी कडडमडडं दत्तमस्ति। अतः परं ममोपासिका त्वं इति वचनानंतरं एव समीपस्थ कुमारिका शरीरे आवेशः कृतः। ततः प्रोक्तं प्रभो मया अन्यं कडडमडडं याचितं अन्यं दत्तं। आचार्यैः प्रोक्तं त्वया वधो याचितः स तु लातुं दातुं न बुध्यते इत्यादिसिद्धान्तवाक्यं कुमारी शरीरस्था श्रीसच्चिकादेवी सर्वलोक प्रत्यक्षं श्रीरत्नप्रभाचार्यैः प्रतिबोधिता। श्रीउपकेशपुरस्था श्रीमहावीरभक्ता कृता सम्यक्त्वधारिणी संजाता। आस्तां मांसं कुसुममपि रक्तं नेच्छति। कुमारिका शरीरे अवतीर्णा सती इति वक्ति भो मम सेवका यत्र उपकेशपुरस्थं स्वयंभू महावीरबिंबं पूजयति श्रीरत्नप्रभाचार्य उपसेवति भगवन् शिष्यं प्रशिष्यं वा सेवति तस्याहं तोषं गच्छामि। तस्य दुरितं दलयामि यस्य पूजा चित्ते धारयामि। एतानि शरीरे अवतीर्णा सा कुमारी कथ्यतां। श्रीसच्चिकादेव्या वचनात् क्रमेण श्रुत्वा प्रचुरा जनाः श्रावकत्वं प्रतिपन्नाः। क्रमेण श्रीरत्नप्रभाचार्य ८४ वर्षे स्वर्गं गतः।

८ तत्पट्टे यक्षदेवाचार्यः माणभद्र यक्ष प्रतिबोध कर्त्ता संघस्य विघ्नो निवारितः।

९ तत्पट्टे कक्कसूरि। १० तत्पट्टे देवगुप्तसूरि।

११ तत्पट्टे सिद्ध सूरि। १२ तत्पट्टे रत्नप्रभ सूरि। १३ तत्पट्टे यक्षदेव सूरि।

१४ तत्पट्टे कक्क सूरि। स्वयंभू श्रीमहावीर स्नात्र विधि काले, कोसौ विधिः कदा किमर्थं संजातः इत्युच्यते—तस्मिन्नेव देव गृहे अष्टान्हिकादिकमहोत्सवं कुर्वतास्तेषां मध्ये अपरिणतवयसा केषांचित् चित्ते इयं दुर्बुद्धिः संजाताः। यदुत भगवत् महावीरस्य हृदये ग्रन्थी द्वयं पूजां कुर्वतां कुशोभा करोति अतः मशाकरोगवत् छेदयितां को दोषः। वृद्धैः कथितं अयं अघटितः टंकिना घातो न अर्हः। विशेषतो अस्मिन् स्वयंभू श्री महावीर बिंबे। वृद्धवाक्यमवगण्य प्रच्छन्नं सूत्रधारस्य द्रव्यं दत्वा ग्रन्थिद्वयं छेदितं तत्क्षणादेव सूत्रधारो मृतः। ग्रन्थिच्छेदप्रदेशे तु रक्त धारा छुटिता। तत उपद्रवो जातः। तदा उपकेशगच्छाधिपति श्रीकक्क सूरिभिः पायाद्भिः चतुर्विधसंघेनाहूता वृत्तांतं कथितं। आचार्यैः चतुर्विधसंघ स-

हितेन उपवास त्रयं कृतं । तृतीय उपवास प्रान्ते रात्रिसमये शासनदेवी प्रत्यक्षी भूय आचार्याय प्रोक्तं–हे प्रभो न युक्तं कृतं बालश्रावकैः मद् घटितं बिंबं आशातितं । कलानीशक्तं अतोनंतरं उपकेशनगरं शनैः २ उपध्वंसं भविष्यति । गच्छे विरोधो भविष्यति । श्रावकाणां कलहो भविष्यति । गोष्ठिका नगरात् दिशोदिशं यास्यंति । आचार्यैः प्रोक्तं परमेश्वरि भवितव्यं भवत्येव परं त्वं श्रवतु रुधिरं निवारय । देव्या प्रोक्तं घृत घटेन दधि घटेन इक्षुरस घटेन दुग्ध घटेन जल घटेन कृतोपवासत्रय यदा भविष्यति तदा अष्टादशा गोत्र मेलं कुरु; तेषां १ तातहड गोत्रं । २ बापणा गोत्रं । ३ कर्णाट गोत्रं । ४ वल गोत्रं । ५ मोराक्ष गोत्रं । ६ कुल हट गोत्रं । ७ विरिहट गोत्रं । ८ श्री श्रीमाल गोत्रं । ९ श्रेष्टिगोत्रं । एते दक्षिण बाहु । १ सुचंती गोत्रं । २ आइचणा गोत्रं । ३ चारवेडीया गोत्रं । ४ भाद्र गोत्रं । ५ चींचट गोत्रं (देशलहराशाखा) । ६ कुंभट गोत्रं । ७ कनउजया गोत्रं । ८ डिंडभ गोत्रं । ९ लघु श्रेष्टि गोत्रं । एते वाम बाहु स्नात्रं कर्तव्यं नान्यथाऽशिवो शान्तिर्भविष्यति । मूल प्रतिष्ठानंतरं वीर प्रतिष्ठा दिवसातीते शतत्रये ३०३ अनेहसि ग्रंथियुगस्य वीरोरस्थस्य भेदोऽजनि दैव योगात् इत्युक्तं श्रीमदुपकेशगच्छचरित्र सूत्रे श्लोक–१७२

१५ तत्पट्टे श्रीदेवगुप्तसूरि । १६ तत्पट्टे सिद्ध सूरि । १७ तत्पट्टे रत्नप्रभ सूरि ।

१८ एवं अनुक्रमेण श्रीवीरात् वर्षे ५८५ श्रीयक्षदेवसूरिर्बभूव महाप्रभावकर्ता द्वादशवर्षे दुर्भिक्षमध्ये वज्र स्वामी शिष्य वज्रसेनस्य गुरोः परलोकप्राप्ते यक्षदेवसूरिणा चत्वारि शाखाः स्थापिताः–

१९ तत्पट्टे ककसूरि । २० तत्पट्टे देवगुप्तसूरि । २१ तत्पट्टे सिद्ध सूरि ।

२२ तत्पट्टे रत्नप्रभसूरि । २३ तत्पट्टे यक्षदेव सूरि । २४ तत्पट्टे कक सूरि ।

२५ तत्पट्टे देवगुप्तसूरि । २६ तत्पट्टे सिद्ध सूरि । २७ तत्पट्टे रत्नप्रभसूरि ।

२८ तत्पट्टे यक्षदेव सूरि । २९ तत्पट्टे ककसूरि । ३० तत्पट्टे देवगुप्त सूरि ।

३१ तत्पट्टे सिद्धसूरि । ३२ तत्पट्टे रत्नप्रभ सूरि । ३३ तत्पट्टे यक्षदेव सूरि ।

३४ तत्पट्टे ककुदाचार्य । तत्पट्टे देवगुप्ताचार्य । तत्पट्टे सिद्धाचार्य । एतानि पंच उपकेशगच्छाधिपाचार्याणां मूलनामानि । तत्पट्टे ककसूरि द्वादश वर्षयावत् षष्ट तपं आचाम्लसहितं कृतवान् । तस्य स्मरणस्तोत्रेण मरोटकोटे सोमकश्रेष्टिस्य शृंखला त्रुटिता । तेन चिंतितं यस्य गुरोः नामस्मरणेन बंधनरहितो जातः एकवारं तस्य पादौ वंदामि । स भरुकच्छे आगतः । अटणवेलायां सर्वे मुनीश्वरा अटनार्थं गतास्ति । सच्चका गुरो अग्रे स्थितास्ति । द्वारो दत्तोस्ति तेन विकल्पं कृतं । शच्यका शिक्षा दत्ता मुखे रुधिरो वमति । मुनीश्वरा आगता । वृद्धगणेशेन ज्ञातं भगवन् द्वारे सोमकश्रेष्टी पतितोस्ति । आचार्यैः ज्ञातं अयं सच्चिकाकृतं । सच्चिका आहूता कथितं त्वया किं कृतं । भगवन् मया योग्यं कृतं । रे पापिष्ट यस्य गुरुनामग्रहणे बंधनानि शृंखलानि त्रुटितानि संति स अणाचारे रतो न भविष्यति । परं एतेन आत्मकृतं लब्धं । गुरुणा प्रोक्तं कोपं त्यज शांतिं कुरु । तया कथितं यदि असौ शान्तिर्भविष्यति तदा अस्माकं आगमनं न भविष्यति प्रत्यक्षं । गुरुणा चिंतितं भवितव्यं भवत्येव स सज्जाकितः । सच्चिकावचनात् द्वयोर्नाम भंडारे कृताः श्रीरत्नप्रभसूरि अपरश्री यक्षदेवसूरि एते सप्रभावा एतदनेहसि अस्य उपकेशगणस्य द्वाविंशति शाखा नामानि दत्तानि––

१ नागेन्द्रं २ चन्द्र ३ निर्वृत्ति ४ विद्याधराणां स्थाने १ सुंदर २ प्रभ ३ कनक ४ मेरु ५ सार ६ चंद्र ७ सागर ८ हंस ९ तिलक १० कलस ११ रत्न १२ समुद्र १३ कल्लोल १४ रंग १५ शेखर १६ विशाल १७ राज १८ कुमार १९ देव २० आनंद २१ आदित्य २२ कुंभ इति। ततः तेनैव कक्कसूरिणा अर्बुदाचलमेखलायां तृषार्तस्य संघस्य डंड स्थापनेन जलं प्रगटि कृतं। तेनैव साधर्मिक वात्सल्ये जेसलपुरात् भरुकच्छे घृतो आनीतः।

३५ तत्पट्टे श्रीदेवगुप्तसूरि। तत्पदमहोत्सवे पाठकाः पंच स्थापिता जयतिलकादि। तेन जयतिलकेन श्रीशान्तिनाथचरित्रं निर्मितं।

३६ तत्पट्टे सिद्ध सूरि। ३७ तत्पट्टे कक्क सूरि। ३८ तत्पट्टे देवगुप्तसूरि।

३९ तत्पट्टे सिद्धसूरि। ४० तत्पट्टे कक्क सूरि। ४१ तत्पट्टे देवगुप्तसूरि। सं० ९९५ वर्षे बभूव।

४२ क्षत्रीयवंशोत्पन्नत्वात् वीणावादने तत्परं क्रियाविषयं सिथिलः। ततः चतुर्विधसंघेन तत्पट्टे वीस विस्वोपकारकः स्थापितः श्रीसिद्धसूरिः।

४३ तत्पट्टे कक्कसूरिः पंचप्रमाणग्रन्थकर्त्ता। ४४ तत्पट्टे संवत् १०७२ वर्षे श्रीदेवगुप्तसूरि।

४५ तत्पट्टे नवपद प्रकरण-स्वोपज्ञटीकाकर्ता सिद्धसूरि। ४६ तत्पट्टे कक्क सूरि।

४७ तत्पट्टे देवगुप्तसूरि। ४८ तत्पट्टे सिद्ध सूरि। ४९ तत्पट्टे कक्कसूरि।

५० तत्पट्टे संवत् ११०८ वर्षे देवगुप्त सूरिर्बभूव। भीनमाल नगरे साह भईसाक्षेन पद महोत्सवे सप्तलक्ष धन व्ययो कृतः। ततोः गुरुणा पादप्रक्षाल्येन जले विषापहार लब्धी येन भइसाक्ष श्रेष्ठिना श्री देवगुप्त सूरेः पद महोत्सवः कृतः। स पूर्वं डिड्डुवाण पूरे भइसा भार्या छगणाणि स्थाप्यते ततो गुरूपदेशेन ज्वालितानि छगणानि रुप्यमयानि भवंति ततो तेन रुप्येन गदहिया मुद्रा पातिता। भइसाक्ष माता श्री शत्रुंजय यात्रागता खरच तुट्यते पत्तन मध्ये ईश्वरश्रेष्ठिनः पार्श्वे खरचो याचिता। तेन पृष्टं भवती कस्य माता तेन कथितं अहं भइसाक्ष माता। तेन हसितं अस्माकं गृहे पानीयमानयंति तेषां माता इति विसर्कितं। ततोऽनंतरं पश्चात् धनं गृहीत्वा यात्रां कृत्वा संघभक्ति कृत्वा गृहे जगाम। पुत्रेण प्रष्ट मातः मम कियद्भूमौ नाम वर्तते। माता कथितं भवतां प्रतोली द्वारं यावन्नाममस्ति। तेन वचनेन असंतोषो जातः। श्रेष्टि हास्यवचनं कथितं। तद्वचनं वालयिस्यामि तदा द्वितीय वेला भोजयिष्यामि। एवं प्रतिज्ञां कृत्वा पत्तने सामान्यवेषे द्वार हट्टे गतः। भो श्रेष्टि रूप्यं ग्रहिष्यासि। तेन कथितं रोषभरेण यत्किंचिदानयिष्यासि तत्सर्वं गृह्णामि। संचकारो याचितः तेन युष्माभिर्दीयते सवालक्ष मुद्रिका दत्ता। ततो गर्दभयानि भारयत्वा पत्तने जगाम। पृष्टं एतत्किं रुप्यं वर्तते एवं श्रुत्वा श्रेष्ठिनः चमत्कृताः स श्रेष्टि समग्र पत्तनश्रेष्टि मेलयित्वा चरणे पपात। भइसाक्षस्तदैव कथितं गुर्ज्जरधरीत्रीमध्ये महिषेण पानीयमानयेतुं तदा मोचयामि। तद्धनं देशे सप्तक्षेत्रे व्ययो कृतः। ततो गादिया इति शाखा जाता।

५१ तत्पट्टे श्री सिद्धसूरि। ५२ तत्पट्टे श्री कक्कसूरि संवत् ११५४ वर्षे बभूव। येन हेमसूरि कुमारपाल वचसा कृपाहीना मुनिवरा निष्कासिता।

५३ तत्पट्टे देवगुप्तसूरि येन लक्ष द्रव्यं त्याजितं। ५४ तत्पट्टे श्री सिद्धसूरि।

५५ तत्पट्टे संवत् १२५२ श्री कक्कसूरिर्बभूव येन मरोट कोटः प्रगटी कृतं।

५६ तत्पट्टे श्री देवगुप्तसूरि । ५७ तत्पट्टे श्री सिद्धसूरि । ५८ तत्पट्टे श्री ककसूरि । ६० तत्पट्टे श्री सिद्धसूरि । ६१ तत्पट्टे श्री ककसूरि । ५९ तत्पट्टे श्री देवगुप्तसूरि । ६२ तत्पट्टे श्री देवगुप्तसूरि । ६३ तत्पट्टे श्री सिद्धसूरि । ६४ तत्पट्टे श्री ककसूरि । ६५ तत्पट्टे श्रीदेवगुप्तसूरि ।

६६ तत्पट्टे संवत् १३३० वर्षे चींचट गोत्रेऽतएव उवरराय स्थापितः श्री अर्बुदाचल तलहटीकालंकारो वरणीनगरतः शा० देशलेन श्री शत्रुंजयादि सप्त तीर्थेषु चउदश १४ कोटि द्रव्य व्ययेन चउदश यात्रा कृता चतुर्दश वारान् । प्रथमं देवगुप्तसूरि तत्पट्टे सिद्धसूरि प्रमुख समग्र सुविहित सूरि हस्तेन संघपति तिलकः कारितं । उक्तं च

श्री देशलः सुकृत पेसल वित्त कोटी । चंचच्चतुर्दश जगज्जनितावदातः ।
शत्रुंजय प्रमुख विश्रुत सप्त तीर्थे । यात्रा चतुर्दश चकार महामहेन ॥ १ ॥

तत्पुत्र समरसहजाभ्यां विमलवसत्युद्धारः कारितः संवत् १३७१ वर्षे । तथा एवमपरेरपि तिर्थयात्रा कृत्वा संघपतेः पदं स्वाकीरितं इत्युक्तमुपदेशरसाले । साह देसलेन पाल्हणपुरे श्री सिद्धसूरि पद महोत्सवो कृतः । तेन सिद्धसूरिणा समराग्रहेण शत्रुंजये पष्ठोद्धारे श्री आदिनाथस्य प्रतिष्ठा कृता ।

६७ तत्पट्टे संवत् १३७१ वर्षे साह सहजागरेण श्री ककसूरि पद महोत्सवो कृतः । येन गच्छप्रबंधः कृतः । तत्र देसल पुत्राः समर—सहजानां चरित्रमस्ति । एवं उपकेश गच्छे अनेक प्रभावका ग्रन्थकर्तारो निरीहा सूरयो अभूवन् तेषां कियद् गण्यते एवं—

६८ तत्पट्टे श्री देवगुप्तसूरि बभूवः । कवि सार्वभौम विद्वच्चक्रचूडामणि सिद्धन्तपारगामी सर्वशास्त्रपारंगत । श्री सारंगधरेण संवत् १४०९ वर्षे दिल्यां मध्ये पद महोत्सवो विहितः सुवर्णसहस्र पंचक व्ययेन ।

६९ तत्पट्टे श्री सिद्धसूरिः संवत् १४७५ वर्षे गुणभूरय अणहिलपाटक पत्तने चोरवेडीया गोत्रे साह आवा नीवागरेण पद महोत्सवः कृतः गुरूणां ।

७० तत्पट्टे संवत् १४९८ वर्षे श्री ककसूरयः चित्रकुटे चोरवेडीया गोत्रे साह सारंग सोनागर राजाभ्यां पद महोत्सवो कृतः येन चतुर्दश शत चतुः चत्वारिंसत् अधिक १४४४ कच्छ मध्ये अमारी प्रवर्ताविता । याम श्री वीरभद्रः प्रतिबोधितः । संस्कृतप्राकृतपरमामृतप्रवाहा विरचित निखिलशास्त्रावगाहाः वाणीविलासवाचस्पतितुल्याः सकलकलारंजितकोविदाः धर्मबुद्धिधुरंधरा सकलपुरंदराः ।

७१ तत्पट्टे सं० १५२८ वर्षे जोधपुरे श्रेष्टि गोत्रे मंत्रीश्वर जयतागरेण श्री देवगुप्तसूरेः महोत्सवे नव महोत्सवो कृतः । श्री पार्श्वनाथस्य प्रासादः कारितः पौषधशालायां च । श्री शत्रुंजय यात्रा कृता । पंच पाठकाः स्थापिताः । तेषां नामानि श्री धनसार १ उ० देवकल्लोल २ उ० पद्मतिलक ३ उ० हंसराज ४ उ० मतिसागर ५ ।

७२ तत्पट्टे श्री सिद्धसूरयो गुणभूरयः । श्री श्रेष्ठि गोत्रे मंत्रीश्वर दशरथात्मजेन मंत्रीश्वर लोलागरेण संवत् १५६५ वर्षे मेदिनीपुरे पद महोत्सवः कृतः ।

७३ तत्पट्टे श्री कक्कसूरयः श्री जोधपुरे संवत् १५९९ वर्षे गच्छाधिपो जातः श्रेष्टि गोत्रे मंत्रि जगात्मजेन मंत्रीश्वर धर्मसिंहेन पद महोत्सवो कृतः ।

७४ तत्पट्टे श्री देवगुप्त सूरयः श्री श्रेष्टी गोत्रे मंत्रि सहसवीर पुत्रेण संवत् १६३१ मंत्री देदागरेण पद महोत्सवः कृतः ।

७५ तत्पट्टे विद्यमान संवत् १६५५ वर्षे चैत्रसुदि १३ सिद्धसूरिर्बभूव श्री श्रेष्टी गोत्रे मंत्रि मुगुट मंत्रि शेखर सर्व विश्व विख्यात राज्यभार धुरंधर मंत्रीश्वर महामंत्रि श्री ठाकुरसिंह विक्रमपुरे महा महोत्सवेन पद महोच्छवो कृतः ।

७६ संवत् १६८९ वर्षे फाल्गुण शुद्धि ३ श्री कक्कसूरिर्बभूव । श्री श्रेष्टि गोत्रे मंत्रि मुगुट मंत्रि ठाकुरसिंह तत्पुत्र मं० सावलकेन तत्पत्नी साहिबदेन पद महोत्सवो कृतः ।

संवत् १७२७ वर्षे मृगशिर सुद ३ दिने श्री देवगुप्तसूरिर्बभूव श्रेष्टि गोत्रे मंत्रि ईश्वरदासेन पद महोत्सवो कृतः ।

७८. तत्पट्टे श्री सिद्धसूरि संजातः । श्रेष्टि गोत्रे मंत्रि सगतसिंहेन पट्टाभिषेकः कृतः संवत् १७६७ वर्षे मृगशिर सुदि १० दिने जातः ।

७९ तत्पट्टे श्री कक्कसूरिर्बभूव । मंत्रि दोलतरामेन सं० १७८३ वर्षे आसाढ वदि १३ दिने पद महोत्सवो कृतः ।

८० तत्पट्टे देवगुप्तसूरि सं० १८०७ वर्षे बभूव । मुहता दोलतरामजीना पद महोत्सवो कृतः ।

८१ तत्पट्टे श्री सिद्धसूरिर्बभूव। संवत् १८४७ वर्षे महासुदि १० दिने पट्टाभिषेकः संजातः । मुं० श्री खुशालचंद्रेण पदमहोत्सवो कृतः । तेषां प्रासादात् अहं कल्पवाचनं करोमि । पुनः दीक्षा गुरु प्रसादात्

८२ तत्पट्टे श्रीकक्कसूरिर्बभूव। संवत् १८९१ रा वर्षे चैत्र सुद ८ अष्टमीदिने पट्टाभिषेकः संजातः। वैद्यमुं० ठाकुर सुत मुं० सिरदारसिंह गृहे समस्त श्रीसंघेन बीकानेर मध्ये पदमहोत्सवः कृतः ।

८३ तत्पट्टे श्रीदेवगुप्तसूरिर्बभूव । संवत् १९०५ वर्षे भाद्रवा सुदि १३ चंद्रवासरे पट्टाभिषेकः संजातः । श्रेष्टि गोत्रे वैद्य मुहता शाखायां प्रेमराजो तस्य परिवारे हठीसिंघजी ऋषभदासजी मेघराजजी-कानां उत्संगे गृहीत्वा श्रीफलोधीनगरमध्ये समस्त वैद्य मुहता पट्टाभिषेको कृतः । तेषां प्रासादात् अहं कल्पवाचनां करोमि ।

८४ तत्पट्टे श्रीसिद्धसूरिर्बभूव। संवत् १९३५ वर्षे माघ कृष्ण ११ दिने पट्टाभिषेक संजातः श्रेष्टि गोत्रे वैद्यमुहता शाखायां ठाकुर सुत महारावजी श्रीहरि सिंघजी पद महोत्सवः कृतः वृद्ध गृहे मध्ये धांसीवाला सुरजमलजी हस्तात् समस्त श्रीसंघसहितेन विक्रम पुर मध्ये देवदुष्य रंजित छटिका राज्य द्वारात् समागता । तेषां प्रासादात् अहं कल्पवाचनां करोमि इति ॥

॥ श्रीरत्नप्रभसूरिस्तोत्रम् ॥

॥ श्रीमद्रत्नप्रभसूरिसद्गुरुभ्यो नमः ॥

वामेयपट्टे शुभदत्तनामा ताच्छिष्यजातो हरदत्तमुख्यः ॥
आर्यांबुधिः केशी स्वयंप्रभोपि सूरीशरत्नप्रभलब्धिपात्रः ॥ १ ॥
भव्यावलीकमलकाननराजभृंगं श्रियःप्रवृत्तिमुनिमानसराजहंसं ॥
श्रीपार्श्वनाथपदपंकजचंचरीकं रत्नप्रभं गणधरं सततं स्तवीमि ॥ २ ॥
विद्याधरेंद्रपदवीकलितोपि कामं श्रीमत्स्वयंप्रभुगिरः परिपीय योत्र ।
दीक्षावधुमुद्वहन्मुदमादधानो रत्नप्रभस्स दिशतात्कमलाविलासं ॥ ३ ॥
मंत्रीश्वरोहडसुतो भुजगेन दष्टः संजीवितः सकललोकसभासमक्षं ।
यस्यांघ्रिवारिरुहपुष्करसिंचनेन रत्नप्रभस्स दिशतात्कमलाविलासं ॥ ४ ॥
मिथ्यात्वमोहतिमिराणि विधूय येन भव्यात्मनां मनसि तिग्मरुचेव विश्वे ।
संदर्शित सकलदर्शनतत्त्वरूपं रत्नप्रभस्स दिशतात्कमलाविलासं ॥ ५ ॥
येनोपकेशनगरे गुरुदिव्यशक्त्या कोरंटके च विदधे महती प्रतिष्ठा ।
श्रीवीरबिंबयुगलस्य वरस्य येन रत्नप्रभस्स दिशतात्कमलाविलासं ॥ ६ ॥
श्रीसत्यिकाभगवती समभूत्प्रसन्ना सर्वज्ञशासनसमुन्नतिवृद्धिकर्त्री ।
यद्देशनारसरहस्यमवाप्य सम्यक् रत्नप्रभस्स दिशतात्कमलाविलासं ॥ ७ ॥
गृह्णंति यस्य सुगुरोर्गुरुनाममंत्रं सम्यक्त्वतत्त्वगुणगौरवगर्भितं ये ।
तेषां गृहे प्रतिदिनं विलसंति पद्मा रत्नप्रभस्स दिशतात्कमलाविलासं ॥ ८ ॥
कल्पद्रुमः करतले सुरकामधेनु–श्चिंतामणिः स्फुरति राज्यरमाभिरामा ।
यस्योल्लसत्क्रमयुगांबुजपूजनेन रत्नप्रभस्स दिशतात्कमलाविलासं ॥ ९ ॥

इत्थं भक्तिभरेण देवतिलकश्चातुर्यलीलागुरोः
श्रीरत्नप्रभसूरिराजसुगुरोः स्तोत्रं करोति स्म यः ।
प्रातः काम्यमिदं पठत्यविरतं तस्यालये सर्वदा ।
सानंदं प्रमदेव दीव्यतितरां साम्राज्यलक्ष्मीः स्वयं ॥ १० ॥

इति ओएसनगरे सपालक्षश्रावकाः प्रतिबोधिता ओएसवालज्ञातिः स्थापिता तस्य स्तोत्रमिदं प्रातर्व्याख्यान पद्धतौ प्रत्यहं पठनीयं ॥ संपूर्ण ॥ ग्रंथाग्रंथ ॥ ३१९ ॥ श्रीरस्तु ॥

॥ ॐ अर्हम् ॥
॥ नमोऽस्तु श्रमणाय भगवते महावीराय ॥

जैन साहित्य संशोधक

'पुरिसा! सच्चमेव समभिजाणाहि । सच्चस्साणाए उवट्ठिए मेहावी मारं त

' जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ. जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ ।'

' दिट्ठं, सुयं, मयं, विण्णायं, जं एत्थ परिकहिज्जइ । '

—निर्ग्रन्थप्रवचन-आचारांगसूत्र ।

खंड २] [अंक २

श्री महावीर-निर्वाण समय-निर्णय

[इन्डियन एन्टीकेरी, भाग ४३ मां, प्रकाशित, जार्ल चार्पेन्टीअर, पीएच्. डी.; उप्सला;
ना इंग्रेजी लेखनो अविकल अनुवाद]

'केम्ब्रिज हिस्टरी ऑफ इंडिआ' पु. १ मां जैनोना इतिहास विषेनुं प्रकरण लखती वखते महावीरनो खरेखरो समय नक्की करवानी मने खास जरुर पडी हती; परंतु आ महत्वना प्रश्न उपरना अनेक प्रमाणोनो ऊहापोह करवानो तेमां पूर्ण अवकाश नहि मळवाथी, प्रचलित जैन धर्मना संस्थापकना समय विषे में जे अभिप्राय बांध्यो छे तेना मूलभूत तत्तत् विचारोने अहीं दर्शाववानुं मने अनुकूळ लाग्युं छे. वळी, प्रो. जेकोबीए जैनधर्मना अभ्यासमां अगत्यनां पुस्तको—कल्पसूत्र तथा सैक्रेड बुक्स ऑफ धी ईस्ट, पु.२२—नी प्रस्तावनामां महावीरना समय माटे [1] सबळ प्रमाणोथी, पण संक्षेपमां, जे संकुचित अवधी बांधी त्यारपछी आ विषय उपर कोई पण पूरेपूरी चर्चा करवामां आवी नथी; तेथी ए विषयने अहीं फरीथी उपाडवो अस्थाने नहि गणाय. प्रो. जेकोबी पासे जे प्रमाणो हतां लगभग तेवां ज प्रमाणो मारी पासे छे, तेथी मारा आ लेखमां घणे भागे तेमना कथननुं पुनरालेखन थशे अने पछी तेमनो

1. महावीरना समय विषे मारी पहेलांना विद्वानोना अभिप्रायो माटे जुओ—राइस, इंडि॰ एन्टी॰ पु. ३ पा. १५७; इ. थॉमस, पु. ८, पा. ३०; पाठक पु. १२, पा. २१. प्रोफेसर जेकोबीना लेखथी आ बधा लेखो रद थया छे तेथी मारा लेखमां ए जूना लेखको विषे हुं उल्लेख करवानो नथी.

विकास करवामां आवशे. घणा वर्ष उपर एमणे महावीरना समय विषे जे अभिप्राय बांध्यो हतो, परंतु जेने आ विषयना अभ्यासी विद्वानोए उपाडी लीधो नथी; ते ज अभिप्राय आ तपासना अंते मारो पण थशे एम सर्वने मालुम पडशे.

जैन धर्म विषेना उपयोगी निबंधोमां, एटले के-हॉर्नेल, प्रोसी० ए० एस्० बी० १८९८, पृष्ठ ३९, अथवा गुरीनॉट, बीब्लीऑग्राफी जैन, पृ० ८ मां, महावीरना अवसाननी तिथि इ. स. पूर्वे ५२७ कही छे. पोताना आ धर्मगुरुनुं निर्वाण विक्रम पहेलां ४७० वर्ष थयुं एम श्वेताम्बरो माने छे, तथा विक्रम पहेलां ६०५ मां थयुं एम दिगंबरो माने छे; आ वात सर्वने सुविदित छे. आ बे तिथिनी वच्चे जे १३५ वर्षनो तफावत छे ते विक्रम संवत् (इ. स. पूर्वे ५७) अने शक संवत् (इ. स. ७८) बच्चेना तफावत जेटलो छे, तेथी प्रो. जेकोबी जणावे छे ते प्रमाणे, [2] एटलुं स्पष्ट थाय छे के दिगंबरोए शालिवाहन अने विक्रम ए बे नामनो मांहोमांहे गुंचवाडो कर्यो छे,—अने आवी भूल घणी वार थती जोवामां आवे छे. उपलक नजरे जोतां आपणने आ वात एकाएक खरी लागे छे परंतु जेकोबी अने बीजा विद्वानोना कहेवा प्रमाणे, ज्यारे आपणे बारीक तपास करीए छीए त्यारे मालुम पडे छे के आ कथनने सबळ प्रमाणोनो आधार नथी. इ. स. पूर्वे ५२७ नी तिथि विषे बे मुद्दाओ विचारावा योग्य छेः–

(१) महावीरना निर्वाणनो समय अने विक्रमना इ. स. पूर्वे ५७ मां राज्यारूढ थयानो समय, आ बेनी वच्चेनां ४७० वर्षना संबंधमां जैनोनां कथनो; अने

(२) बुद्ध जे मारा मत प्रमाणे (के जे हुं आगळ समजावीश) इ. स. पूर्वे ४७७ मां अवसान पाम्या तेमना समकालीन महावीर हता एवुं सप्रमाण साबित थएलुं छे, ते उपरथी महावीरना निर्वाण माटे इ. स पूर्वे ५२७ नी तीति खरी होवानो संभव छे या असंभव.

अंते मारा लेखना छेल्ला (३) भागमां, हेमचंद्रे दर्शावेली सांप्रदायिक हकीकत विषे चर्चा करी तेमांथी शुं परिणामो आवे छे तेनो विचार करीश.

१. जैन कालगणना अने तेनो आधार.

प्रख्यात जैन लेखक मेरुतुंगे वि. सं. १३६१=इ. स. १३०४ मां प्रवन्धचिंतामणि नामक ग्रंथ रच्यो; अने त्यारपछी लगभग बे वर्षे विचारश्रेणि नामे ग्रंथ रच्यो जे भाउ दाजीना [3] कहेवा प्रमाणे, तेना थेरावली ग्रंथनी टीका रूपे छे. आ ग्रंथमां वीर संवत् अने विक्रम संवत्‌ना समन्वय माटेना आधार रूपे ते प्रसिद्ध गाथाओ आपेली छे जेनुं प्रथम अवतरण बुल्हरे [4] आप्युं हतुं अने त्यारपछी जेनी चर्चा जेकोबीए करी हती. गाथाओ आ प्रमाणे छेः–

जं रयणिं कालगओ अरिहा तित्थंकरो महावीर ।
तं रयणिं अवंति-वई अहिसित्तो पालगो राया ॥ १ ॥
सट्ठी पालग-रण्णो पणवण्णसयं तु होइ नन्दाण ।
अट्ठसयं मुरियाणं तीसं चिय पूसमित्तस्स ॥ २ ॥

2. कल्पसूत्र, पा. ७. 3 जुओ—जर्नल, बॉ० ब्रॅ. रॉ. ए. सो. पु. ९, पा. १४७; मेरुतुंगना बीजा ग्रंथो, अने अर्वाचीन लखाणोमां आवेला तेना विषेना उल्लेखो विषे जुओ वेबरनु कॅटेलोग, पु. २, पा. १०२४.

4. इंडि० एन्टी० पु. २, पा. ३६२.

बलमित्त-भाणुमित्ता सट्ठी वरिसाणि चत्त नहवहने ।
तह गद्दभिल्ल-रज्जं तेरस वरिसा सगस्स चउ ॥ ३ ॥

भावार्थः--जे रात्रे अर्हत् तीर्थंकर महावीरे निर्वाण प्राप्त कर्युं ते ज रात्रे अवन्तीपति पालकनो अभिषेक करवामां आव्यो. (१)

पालक राजाए ६० वर्ष राज्य कर्युं, अने नंदोए १५५ वर्ष राज्य कर्युं; मौर्योए १०८ वर्ष, तथा पूसमित्ते (पुष्यमित्रे) ३० वर्ष राज्य कर्युं. (२)

बलमित्र अने भानुमित्रे ६० (वर्ष) राज्य कर्युं, अने नभोवाहने ४० वर्ष. ते ज प्रमाणे गर्दभिल्लनी सत्ता १३ वर्ष रही, तथा शकनुं राज्य चार वर्ष रह्युं. 5 (३).

आ त्रण गाथाओ घणी टीकाओ अने कालगणना-विचार-विषयक ग्रंथोमां उध्धृत करेली छे (ब्युल्हर). दाखला तरीके, तपागच्छनी (महावीरथी विजयरत्नना पट्टारोहण सुधीनी एटले वि. सं. १७३२–इ. स. १६८५-८६ सुधीनी) 6 पट्टावली. एमां विक्रम अने शक वच्चेना समयपूरक पण बे श्लोक आप्या छे, परंतु अहीं ते संबंधे आपणे विचार करवानो नथी. त्रीजा श्लोकमां नहवहणने बदले नहवाण पाठ आप्यो छे ते एक तफावतनी बाबत छे; पण अहीं ते पण आपणने अनुपयुक्त छे; कारण के, ते श्लोको बहु ज गुंचवाडा भरेला तथा अश्रद्धेय छे; एटलुं ज नहि पण, ते ग्रंथकारे नहवान नामना महान सुबानो समय विक्रमनी पहेलां मूक्यो छे के जे तद्दन असंभवित छे.

उपर कह्या प्रमाणे, आ श्लोकोमां महावीरना निर्वाणथी ते प्रख्यात राजा विक्रमादित्यना समय सुधीमां थएला राजवंशोनी टुंक हकीकत आवे छे. पण ए गाथाओ मूळ कया ग्रंथनी छे ते तद्दन अज्ञात छे. एटलुं ज मात्र नक्की छे के आ श्लोको मेरुतुंगना अगर तेना कोई समकालीनना रचेला नथी, कारण के ते समय पहेलां घणा वखतथी जैन ग्रंथकारोए प्राकृत भाषामां लखवानुं छोडी दीधुं हतुं. 7 अलबत्त, जैनोना आगमोमां तो आ गाथाओ नथी ज; अने तेथी देवर्द्धिगणिनी सिद्धांत ग्रंथोनी छेल्ली आवृत्ति पछी (महावीर पछी ९८० अगर ९९३ मां, एटले के इ. स. पूर्वे ५२७ थी गणतां इ. स. ४५३ अगर ४६६) ए रचायानो घणो संभव छे. एटले ए श्लोको सिद्धांतनी छेल्ली आवृत्ति वखते अगर तरत पछी जे टीकाओ रचाई ते जुनी टीकाओमांना हशे. आ ग्रंथनां हस्तलिखित पुस्तको प्रमाणे नहवहणे ए प्रथमा विभक्ति सप्रमाण होय तो ए अमुक समयनुं सूचक ध्वनी शके—जो के आ विषयमां हुं कांई पण स्पष्ट अभिप्राय आपी शकुं तेम नथी—कारण के एटलुं तो सुनिश्चित ज छे के पाछळथी लखायली टीकाओमां, दाखला तरीके, देवेन्द्रनी उत्तराध्ययन उपरनी टीकामां (इ. स. १०७३) ज्यां टीकाना समय करतां प्राकृत भाषा घणी जुनी छे, त्यां एकारान्त प्रथमा जोवामां आवती नथी. 8 आ अने

5. आ अनुवाद बुल्हरनो करेलो छे.

6. क्लॅटे प्रसिद्ध करेली, एन्डि० एन्टी०पु. ११, पा. २५१.

7. स्टडी इटालीअनी, पु. १, पा. १० मां पुलेना कहेवा प्रमाणे जैन ग्रंथकारोए लग भग इ. स. ८५० (शीलांकना समय) थी संस्कृत भाषामां लखवा मांड्युं; तेम छतां आ कांई निश्चित मीति नथी.

8. आ ग्रंथने में दाखला तरीके लीधो छे तेनुं कारण ए के तेनी प्राकृत भाषा प्रो.जेकोबीना Ausgewahlte Erzahlungen नामना पुस्तकथी सुज्ञात थाय छे. आ विषयनी चर्चा स्पष्ट करवा माटे मारे कहेवुं जोइए, के ए ग्रंथमांना जे जे भागमां एकारान्त प्रथमा आवे छे (पा. २८, पं. १७-२४, पा. ३२, पं. ३५,पा.३३ पं. २८, अने पा.३४, पं. ११-२०) ते ते भागोनी भाषा तद्दन जुदीज छे,अने कदाच कोइ एक ग्रंथनी छे, जेनुं नाम हुं हाल स्पष्ट रीते कही शकु तेम नथी.

आधां बीजां मीति विषेनां जैनोनां कथनो संबंधी एक बावत उपर खास भार मुकवानो छे, अने ते ए के, सर्व ग्रंथकारो विक्रम संवतनी स्थापना उज्जयिनीना राजा विक्रमादित्ये करी एम माने छे. पण कील्हार्ने [9] घणा वखत थयां सिद्ध कर्युं छे के इ. स. पूर्वे ५७ थी शरु थता संवत्‌साथे, उज्जयिनीना राजा विक्रमादित्य, के जे कदाचित् जगत्‌मां थयो पण नहि होय, तेनो संबंध घणो पाछळ थी स्थापित थयो छे; अने ए विक्रम संवत्‌नो साथी प्रथम उल्लेख, संवत् ८९८=इ. स. ८४२ ना धोळपुरना एक लेखमां करवामां आव्यो छे; तथा ते संवत्‌नी साथे विक्रमना नामनुं जे जूनामां जूना साहित्यमां कथन थएलुं छे ते धनपाळना पाइयलच्छी (वि. सं. १०२९ इ. स. ९७२) अने अमितगतिना सुभाषितरत्नसंदोह (वि. सं. १०५० इ. स. ९९४) ग्रंथमां छे.[10] आ प्रमाणे जो आपणे गणना करिए तो आपणने जणाशे के विद्यमान रूपमां तो आ श्लोको घणा जूना होई शके नहि; एटले के कदाच इ. स. ना ८मा अगर ९ मा सैकाना हशे. पण आ तो मात्र सूचना ज छे; अने आ श्लोकोमां आपेली, महावीरना अवसान अने इ. स. पूर्वे ५७ मां शरु थएला संवत्‌नी वच्चेना काळमां थएला राजाओनी गणतरी, आ संवत्‌नो उज्जयिनीना काल्पनिक राजा विक्रमादित्य साथे कोई पण रीतिए संबंध थयो, तेना घणा वखत पहेलां हयात हशे.

ए गाथाओमां करेलां कथनो जरा गूढ लागे छे. अहीं अवंतीना राजा पालकने नंद अने मौर्य वंशो साथे, मगधना पुष्यमित्र साथे, तथा गर्दभिल्ल, जेने अन्य स्थळे विक्रमादित्यना पिता तरीके वर्णववामां आव्यो छे तेनी साथे, तेम ज पश्चिम हिंदना केटलाक राजाओ साथे अने हिंदना उत्तर-पश्चिम खुणाना अनार्य राजवंशोना शकनी साथे एकत्रित करवामां आव्यो छे जेकोबीए [11] जणाव्युं छे के आ यादी के जे प्रथमथी ज मगधराजाओनां नाम आपवा माटे रचाई हशे, कारण के महावीर तेज देशना हता, तेमां अवन्तीना राजा पालकनुं नाम आवे ए वात शंकास्पद छे. त्यारे आ पालक ते कोण? खरेखर आ पालक बीजो कोई नहि पण ते अवन्तीना प्रद्योतराजानो पुत्र अने वारस तथा वत्सना प्रसिद्ध राजा उदयननी [12] राणी वासवदत्तानो भाई, जे पालक नामे ओळखाय छे ते ज छे. आ उदयन महावीर तथा बुद्धनो समकालीन हतो तेथी तेनो साळो पालक लगभग महावीरना निर्वाण समयमां राज्यारूढ थयो होय ए संभवित छे. परंतु महावीरना समयमां के त्यारपछी मगधमां शासन करता शिशुनागना वंश साथे ए पालकने कोई पण जातनो संबंध नथी. पण आ यादीमां तेनुं नाम आववाथी आपणने गाथाना मूळविषयक प्रश्नना निराकरण माटे एक अमूल्य कुंची मळे छे. कारण के उपर जणाव्या प्रमाणे हालना रूपमां तेओ आधुनिक छे, अने तेथी ज्यारे मगधना राज्य साथे जैन लेखकोनो संबंध रह्यो न हतो ते वखतमां रचाएली छे. पण तेमां जणावेलां ४७० वर्षमांथी २९२

9. इन्डि. एन्टी० पु. २०, पा. ३९७.

10. समय निर्णयना जरा तफावत माटे (इ. स. ९९३ अगर ९९४), सरखावो स्मीट (Schmidt) अने हर्टेल (Hertel), Z. D. M. G. 59, 297

11. कल्पसूत्र, पा. ८.

12. भाऊ दाजीना कहेवा प्रमाणे मेरुतुंगे स्पष्ट जणाव्युं छे के जे रात्रे महावीरनुं निर्वाण थयुं ते ज रात्रे प्रद्योतनुं मरण थयुं, जर्नल बो. ब्रॅ. रॉ. ए. सो. पु. ९, पा. १४७. मृच्छकटिकमां जे नाम आवे छे ते एनुं छे के नहि ते कही शकाय तेम नथी. पण ते नाटकमां तेना अने उदयनना संबंध विषे कोई साबीति न होवाथी हुं ए वात संभवित धारतो नथी. परंतु त्रिवेन्द्रम् ग्रंथमाळामां छपातुं चारुदत्तनुं मूळ मळशे त्यारे कदाच आ प्रश्न उपर कांइक अजवाळुं पाडी शकाशे.

જેટલાં વર્ષ સુધીના તો મગધના ખરા ઐતિહાસિક રાજ્યકર્તાઓને ગણાવ્યા છે, તેથી એમ ચોક્કસ અનુમાન થઈ શકે કે મગધરાજાઓનાં ખરાં નામ અપનારી જૂની તવારીખોમાંથી આ નામો લીધાં હશે. આ યાદીમાં છેલ્લાં નામો ઉજ્જયિનીના રાજાઓનાં આવે છે; ગર્દભિલ્લ પણ ઉજ્જયિનીનો રાજા હતો, તેનો પુત્ર વિક્રમાદિત્ય તેઓમાં ઘણો પ્રખ્યાત હતો, તથા જૈન લોકોએ ઇસ્વી સનનાં પહેલાંનાં સૈકાંઓમાં હિંદના પશ્ચિમ ભાગમાં ઘણો અગત્યનો ભાગ ભજવ્યો હતો, તેમ જ તેમને ઉજ્જયિની સાથે ઘણો સંબંધ હતો;એટલા માટે તેમને ઉજ્જયિનીના રાજાના નામથી આ યાદી શરુ કરવી તથા તેના જ નામથી ઇતિ કરવી એ અનુકૂળ લાગ્યું હશે. વિશેષમાં એમ પણ એક અનુમાન થઈ શકે કે મૌર્યરાજાઓની પડતીથી જ જૈનોનો મગધ અને પૂર્વહિંદ સાથેનો સંબંધ તૂટી ગયો હતો. બૌદ્ધોની ગુંચવાડા ભરેલી વાતો ઉપરથી તથા બીજાં વધારે નિશ્ચિત પ્રમાણો[13] ઉપરથી આપણે એમ ધારી શકીએ કે પુષ્યમિત્ર ઘણો જ ધર્મદ્વેષી હતો, અથવા તો એના વંશજોથી તેમને ઘણું સહન કરવું પડયું હતું. તે સમય પછી ખરી રીતે મગધરાજ્ય વિષે તેઓ કશું જાણતા ન હતા.[14] મગધ દેશના આ રાજાઓની યાદીમાં પાલકનું નામ કેમ આવ્યું તેના વિષે પ્રો. જેકોબીએ[15] એક ગુંચવણ ભરેલો તર્ક બાંધ્યો હતો, તે એવો કે ગ્રંથકર્તાએ અજાતશત્રુના પુત્ર અને વારસ ઉદાયિન્ને બદલે ભૂલથી પાલકના વનેવી ઉદયનને ગણ્યો, અને તેથી ઉજ્જયિનીના પાલકનું નામ આ પ્રમાણે એ યાદીમાં આવી ગયું. મેં ઉપર સમજાવ્યું છે તે પ્રમાણે હું ધારતો નથી કે પાલક મૂળ યાદીમાં હોય; પણ જો તેમાં, તેના નામની હયાતી માટે કાંઈ કારણ આપવું હોય તો, હું સરળ રીતે ગ્રાહ્ય થાય તેવી બીજી સૂચના કરૂં છું. કલ્પસૂત્ર ૧૪૭ (જેકોબી—સંપાદિત પા. ૬૭) માં એમ કહેવામાં આવ્યું છે કે મહાવીર જ્યારે છેલ્લા પાવા (અગર પાપા) માં રહ્યા હતા ત્યારે હસ્તિપાલકની લેખકોવાળી સભામાં (રજ્જુસભા) નિર્વાણ પામ્યા. આ રાજાનું નામ કલ્પસૂત્ર ૧૨૩ માં પણ આવે છે, જ્યાં તેને હત્થિપાલ કહેલો છે, અને જેકોબીએ, સે૦ બુ૦ ઇ૦, પુ૦ ૨૨, પા૦ ૨૬૪, ૨૬૯ એ બન્ને ઠેકાણે હસ્તિપાલ એમ નામ વાપરેલું છે. પણ હસ્તલિખિતગ્રંથ બન્ને ફકરાઓમાં હત્થિપાલ અને હત્થિપાલગ એમ રૂપ આપે છે, અને પાછલું રૂપ જેકોબીએ કલ્પ૦ ૧૪૭માં આપેલું છે. આ ઉપરથી એમ સ્પષ્ટ થાય છે કે તેનું નામ હસ્તિપાલ અગર હસ્તિપાલક હતું. આ બાબત ઉપર કાંઈ ભાર મૂકવાની જરૂર નથી, કારણ કે તેમાંથી વધારે જાણવાનું આપણને કાંઈ કારણ નથી. હવે હસ્તિપાલ (ક) ને ઘરગતુ ભાષામાં પાલક પણ કહેતા હોય તો તે સંભવિત છે અને માની શકાય તેમ છે; તેમ જ આ રાજા મહાવીરના નિર્વાણ સાથે ઘણો નિકટનો સંબંધ ધરાવનારો હોવાથી આપણે એમ સૂચવી શકીએ કે મહાવીરના નિર્વાણની રાત્રિએ તેને અભિષેક કરવામાં આવ્યો હતો, એમ પાછળથી કહેવામાં આવ્યું હશે. મારા અભિપ્રાય પ્રમાણે, કોઈક પાલક જેને, પશ્ચિમ હિંદમાં જૈનોમાં પ્રસિદ્ધ થએલા એ જ નામના અવન્તીના રાજાને બદલે પાછળથી ભૂલથી ગણ્યો હશે, તેનો આ યાદીમાં અસ્તિત્વ ભોગવવાનું આથી પુરતું કારણ મળી શકે.[16] પરંતુ ઉપર જણાવેલાં કેટલાંક કારણોને લીધે

---

13. સરખાવો: વી. એ. સ્મીથ, અર્લી હિસ્ટરી ઑફ ઇંડીઆ, પા. ૧૮૮.

14. પૂર્વહિંદમાં કલિંગનો રાજા ખારવેલ જૈનોનો રક્ષક હતો; પરંતુ આ રક્ષક પણ થોડો વખત રહ્યો હશે. જૈનો પોતાના એ આશ્રયભૂત રાજાનો નામોલ્લેખ પણ ક્યાંએ કરતા નથી, તેમ જ તેની મીતિ પણ અનિશ્ચિત છે.

15. કલ્પસૂત્ર, પા. ૮,

16. પાવાનો હસ્તિપાલ (ક) રાજા કપિલવસ્તુના શુદ્ધોદનની માફક, અગર કુંડગ્રામના સિદ્ધાર્થની માફક એક નાનો ઠાકોર હશે, તેથી હું ધારું છું તે પ્રમાણે કોઈ પણ ઇતર જૈન અગર બ્રાહ્મણ ગ્રંથોમાં તેનું નામ મળી આવતું નથી. આ ઉપરથી એમ જણાય છે કે એનું નામ યાદ રહેવાનું કારણ એ જ કે એના રાજ્યમાં મહાવીર નિર્વાણને પામ્યા; અને તેથી એ પણ સ્પષ્ટ જ છે કે આવો નાનો રાજા તેના નામના મોટા રાજાને બદલે ભૂલથી ગણવામાં આવી જાય.

आ पालक राजा महावीरनो समय नक्की करवामां, अने महावीर निर्वाण तथा विक्रम संवत्नो प्रारंभ ए बेनी वच्चेनो समय पूरो करवामां, उपयोगी थाय तेम नथी.

हाल तुरत आपणे आ श्लोकोमां आपेलो नंदोनो समय (१५५ वर्ष), मौर्योनो समय (१०८ वर्ष) तथा पुष्यमित्रनो समय (३० वर्ष) तपासमां लेता नथी; तेनो विचार आगळ उपर करीशुं. हमणां विक्रमसंवत् पहेलां ११७ वर्ष सुधीना, एटले के लगभग इ० स० पूर्वे १७४-५७ सुधीना राजाओ विषे हुं बोलवा मागुं छुं. आ राजाओ नीचे प्रमाणेः

वलमित्र अने भानुमित्र, ६० वर्ष राज्य
नहवहण (नभोवाहन), ४० " "
गर्दभिल्ल १३ " "
अने शक ४ वर्ष राज्य

आ राजाओनी विचित्र यादी विषे कांई पण निश्चित रीते कहेवातुं नथी. नहवहण जेने वह्ले बुल्हर अने जेकोबी नभोवहन लखे छे तेनुं नाम बीलकुल जाणवामां नथी; 17 तेने माटे एक ज सूचना थई शके के मौर्य राज्यनी पडतीनो समय अने विक्रमसंवत्ना आरंभनो समय ए बेउनी वचमां पश्चिम हिंदमां ए कोई नानो राजा थयो हशे. वळी, जो के वलमित्र अने भानुमित्रनां नाम बीजे स्थळे जोवामां आवे छे तो पण एमने माटे पण उपरोक्त कथन ज कहेवुं योग्य थशे. जेकोबीए प्रसिद्ध करेली, जरा गुंचवाडा भरेली कालकाचार्यनी वार्तामां, पा० २६८ उपर आपणे वांचीए छीए के आ राजाओ जे कालकना भत्रिजा थता हता तेओनुं राज्य भरुकच्छ (भरुच) मां हतुं, तथा तेओ जैनधर्म प्रत्ये मित्राचारीथी वर्तता हता. ए वार्तामां कह्या प्रमाणे कालके रोषे भराईने, पोताना शत्रु उज्जयिनीना राजा गर्दभिल्लने मारवाने, शक लोकोने हिंदमां बोलाव्या हता. ते उपरथी आ बे राजा विक्रमना समयथी जरा ज आगळ थया हता एम कही शकाय. एक अगर त्रण 18 कालकोनी वार्तोनो वधारे गुंचवाडो करवानुं मूकी दईने हुं एटलुं ज कहुं छुं के कालक एक ज थयो हतो जे महावीर पछीनो २३ मो 'स्थविर' हतो; तथा कल्पद्रुमनी 19 पूरवणीमां कह्या प्रमाणे निर्वाण पछी ३७६ मा वर्षमां विद्यमान हतो; एटले के इ. स. पूर्वे ५२७ थी गणीए तो इ. स. पूर्वे १५१ मुं वर्ष आवे. तपागच्छनी 20 पट्टावलीमां कहेलुं छे के आ कालक महावीर पछी ३७६ अगर ३८६ वर्षे, एटले के इ. स. पूर्वे १५१ अगर १४१ मां पंचत्वने पाम्यो; अने आ समय उपरोक्त श्लोकोमां वलमित्र अने भानुमित्र विषे निर्णीत करेला समय साथे बराबर मळतो आवे छे; कारण के तेओ बंनेए ६० वर्ष सुधी एटले इ. स. पूर्वे १७४-१७३ अने ११४-११३ नी वचमां राज्य करेलुं मानवामां आवे छे. परंतु हुं तो आ वातने, तेम ज उपरोक्त श्लोकोने जरा पण अगत्यता आपी शकतो नथी.

---

17. जो आ **नहवाण** नाम कांई पण उपयोगनुं होय अने ते सत्रप राजा **नहपान** जे इ. स. ८०—१२५ मां थयो हतो एम मानवामां आवे छे, ते ज ए होय, तो आ यादी पाछला भागमांथी नकामी नीवडे.पण वस्तुस्थिति आ प्रमाणे नथी एम मानवाने मने कारणो मळे छेः (१) गमे तेवा गुंचवाडा भरेली वंशावळी होय तो पण **नहपान** ने विक्रम पहेलां मूकवो ए असंभव छे; अने (२) जो, ते **नहपान** ज होय, तो चोक्कस रीते तेनुं नाम कालकाचार्यनी वार्तामां आववुं ज जोईए, के जे वार्तानो विषय विक्रमनी पहेलां हिंदमां सीथीयन सत्तानो उदय ए छे, पण ए प्रमाणे जोवामां आवतुं नथी.

18. सरखावोः जॅकोबी, पा. २५०.

19. जेणे उत्तराध्ययन सूत्र उपर टीका लखी हती ते लक्ष्मीवल्लभनी बनावेली कल्पसूत्र उपर आ एक टीका छे.

20. क्लाट, इन्डि. एन्टी० पु. ११, पा. २५१.

उपर निर्दिष्ट करेली कालकनी वार्तामां ज गर्दभिल्ल अने शकोनो इतिहास आवे छे. महावीर पछी ४५३ मा वर्षमां एटले के इ. स. पूर्वे ७४ मां अगर विक्रमनी पहेलां सत्तरमा वर्षे थएला राज्यारोहण वाळा गर्दभिल्लना समयमां हयाती धरावनार बीजा कालके विक्रम राजाना पहेलां सीथीयन राजाओने हिंदुस्थानमां चढाई करवा माटे बोलाव्या तेना विषेनी वातोने, खरेखर, कांईक ऐतिहासिक प्रमाण होवुं जोईए. बीजे स्थळे आ गर्दभि (ल) ने उज्जयिनीनो राजा तथा विक्रमादित्यनो[21] पिता कहेलो छे; अने तेना विषे एम सूचित करवामां आव्युं छे के इ.स.४२०–४३८ मां थएलो अरबस्ताननो राजा बहराम गोर तेज आ हतो, बीजा वळी कहे छे के इ.स. पूर्वे पहेला सैकामां थएलो सत्रप गुडफर अगर गॉन्डोफॅरस ते पण आज हतो; [22] परंतु गर्दभि(ल) विक्रमना समय साथे निकटनो संबंध धरावनो हतो, तेथी उपरोक्त बन्ने प्रमाणो निर्बल ठरे छे. वळी, गर्दभिल ए नाम पण एक विचित्र भारतीय जेवुं लागे छे, 23 जेनुं कारण भाग्ये ज आपीं शकाय; तेथी ते नामनुं मूळ परदेशीय हशे एम संभवे छे. मने एम पण शक्य लागे छे के गर्दभिल ए ग्रीक नाम छे अने तेथी ते नामनो माणस कोईक नानो ग्रीक राजा होवो जोईए जेने सीथीयन राजाओए हराव्यो हशे. पण तेने उज्जैनना ए नामना प्रख्यात राजा साथे कांई संबंध न हतो. आ कामचलाउ तर्कनी विरुद्ध सबळ प्रमाण आपी शकाय तेम नथी, कारण के विष्णुपुराण प० ४४, २४, १४ मां गर्दभिलोने एक जात तरीके गणी, आंध्र वंशथी उतरी आवेली यवन, शक, बाल्हीक विगेरे हिंदुस्थान उपर चढाई करनारी जातो साथे गणावी छे; ए कारणे कदाच घणा जूना सैकाओमां थएला गर्दभिल्लनी साथे नैसर्गिक अगर कृत्रिम संबंधे तेना नाम उपरथी आ लोकोनुं नाम पडयुं हशे.

गर्दभिल्लना विषयमां आटलुं ज.पण शक के जेणे विक्रमादित्यथी हार्या पहेलां चार वर्ष सुधी राज्य कर्युं हतुं एम कहेलुं छे, तेना विषे घणो रस आपी शके एवी तथा ऐतिहासिक उपयोगिता वाळी केटलीक सूचनाओ कालकनी गुंचवणभरेली वार्तामां आवेली छे. ते वार्तामां कहेलुं छे के गर्दभिल्लना उच्छेदनी प्रतिज्ञा लईने कालक केटलोक वखत भटक्यो अने शककूल देशमां (Z. D. M. G. 34,262) आव्यो; अने कालकाचार्यकथानक, श्लोक ६३ मां शकवंश विषे कहेलुं छे के:—

सगकूलाओ जेणं समागया तेण ते सगा जाया।

' शककूलमांथी उतरी आवेला होवाथी ते शक कहेवाया, वळी, एमां ज कहेलुं छे के शककूलना प्रांतोना अधिकारीओने साहि कहेता. तथा ते देशना राजा 'राजसमूहना मुकुटमणि' ने साहाणुसाहि कहेवाता. 'शककूल-शकस्थान ' एम कहेवुं प्रो. जेकोबीनुं सत्य हतुं; 24 तथा रडॅबो, ११, ८, २,25 मां आवेलुं नाम जे संस्कृत शब्द शककूलना जेवुं ज छे ते पण तेमणे संभारी आप्युं छे; अने एटलुं तो निःसंदेह छे के ते उपरथी ज जरा फेरफार करी पाडेलुं छे. तेथी कालक विषेनी वार्तानो तथा तेणे करावेली सीथीयनोनी चढाईनो कांईक ऐतिहासिक

21. विष्णुपुराण (विल्सन), ५, १९३; सरखावो वेबर इन्डि० स्टुडी० पु. १५, पा. २५२

22. प्रथम सूचना As. Res. IX, 147 मां विल्फर्ड करेली, अने बीजी इन्डि०एन्टी० २, १४२ मां प्रीन्सेपे करेली, तथा तेने Ind. Act. II,409 मां लॅसेने अनुमोदन आप्युं छे.

23. मारा धारवा प्रमाणे जूना नाम गोभिल साथे, तथा मृच्छकटिकमांना तद्दन अस्पष्ट रेभिल नाम साथेज सरखावी शकाय. सरखावोः Indog. Forsch, 28, 178; 20, 380 sqr.

24. पा. २५५.

25. (आ ठेकाणे लेखके ग्रीक अवतरण आपेलुं छे जे अहीं छापी शकाय तेम नथी-संपादक)

आधार हशे ज; तथा वार्तानुं 26 सघळुं रूप जोईने हुं धारूं छुं के, ओएमा कडफीस्से करेली हिंदना उत्तरपश्चिम भागनी जीत विषे ने कहे छे, ए असंभवित छे. कारण के ते वार्तामां शकसत्रपो अने कोईक ग्रीक (?) राजा (गर्दभिल्ल) वच्चेनी लडाई जे पाछळथी उज्जयिनीनी सामान्य लौकिक वार्ता थई तेनी आछी स्मृति ज हशे एम लागे छे. इ. स. पूर्वे प्रथम सैकामां जे शक राजाओ थया तेनो पूर्ण अहेवाल डफ साहेबनी क्रॉनोलॉजी ऑफ इंडिआ, पा. १७ मां आपलो छे, अने ते अहेवालथी मारी सूचना निर्बळ थती नथी. चढाई करनारा अरयस्तानी हता तथा साहाणुसाहिनो अर्थ 'राजाधिराज' थाय ए कल्पनाने टेको अपाय तेम नथी. कारण के ते एम स्पष्टताथी कहेलुं छे के चढाई करनारा शक हता, नहि के आरबी अगर बॅक्टेरीअन. 'शाओनानो शाओ' पद जे आ वार्ताना 'साहाणु साहि' मां हुं जोऊं छुं तेना विषे मारे कहेवुं जोईए के ते कनिष्क पहेलांना सिक्काओ उपर नथी; परंतु आ खास महत्त्वनुं नथी, कारण के एम जणाय छे के ए वार्ता घणा अर्वाचीन समयमां उत्पन्न थई; अने ते समयमां पहेलांना शको अने कुशानो वच्चे गुंचवाडो थई शके ते सहज छे. परंतु ए वार्तामां शक वंशनां झीणां झीणां स्मरणो जाळवी राखवामां आव्यां छे, ते उपरथी एम सिद्ध थाय छे के ए वार्ता तद्दन नकामी नथी.

आ चर्चाथी हुं बतावचा मागुं छुं के उपरोक्त श्लोकोमां आपेली वंशवार यादी जेना उपर जैन लोको महावीरना मरण अने विक्रमसंवत्ना आरंभनी वच्चेनां ४७० वर्षना समयनो आधार राखे छे ते लगभग तद्दन नकामी छे. आ समय भरवा माटे क्रमवार करेली राजाओनी श्रेणी तद्दन बिन ऐतिहासिक छे, अने तेथी तेना उपर आधार राखी शकाय तेम नथी. कारण के तेमां निर्वाण पछीनां ६० वर्षोमां उज्जैननो एक राजा थयो, एम कहेलुं छे, पण ते राजाने महावीरनी साथे कोई पण संबंध नथी. उपरोक्त यादीमां तेनुं नाम केम दाखल थयुं ते माटे में उपर प्रमाणे कारणो शोधवा प्रयत्न कर्यो छे. बाकीनां २९३ वर्षोमां मगधना वंशोनो समावेश करेलो छे, जेनी ऐतिहासिकता विषे कोई पण जातनो शक नथी. आ उपरथी एम स्पष्ट जणाय छे के प्रथम आ यादीमां मगधना राजाओने ज मूकवाना हशे, के जे वात स्वाभाविक रीते आपणने पण इष्ट छे. कारण के महावीरे लगभग पोतानी आखी जींदगी ए ज देशमां तथा बिंबिसार अने अजातशत्रु राजाओना गाढ संबंधमां गाळी हती. विक्रम पहेलांनां ११७ वर्षमां जे जूदा जूदा भागना राजाओनां नामो भर्यां छे, तेना विषे आपणे एटलुं ज कही शकीए छीए के ते राजाओनो मगध साथे कांई पण संबंध हतो नहि.

उपरोक्त विवेचनथी जणाशे के जैनोना जे कथन प्रमाणे महावीर विक्रम पहेलां ४७० वर्ष, अगर इ. स. पूर्वे ५२७ मां थया ते कथनने मात्र कल्पनामय ज आधार छे, अने तेथी अविश्वसनीय छे. हवे हुं मारी तपासना बीजा भाग उपर आवीश अने एमां बतावीश के उपरोक्त कथन निश्चित करेली बौद्ध मीतिओ साथे पण असंबद्ध छे, अने तेथी सर्वथा तेनो त्याग करवो जोईए.

२. महावीर अने जैनो साथे बौद्धोनो संबंध—बुद्धनो निर्वाण-समय.

जेकोबी अने बुल्हरे ऊहापोह करीने स्पष्ट कर्युं छे के बौद्ध अने जैन आगमोमां घणाखरा एकना एक ज माणसोनां नामो आवे छे—मात्र केटलीक जग्याए ज तेमने माटे जुदां जुदां नामो वापरवामां आव्यां छे. आ उपरथी उपरोक्त विद्वान् महाशयो ए निर्णय उपर आव्या छे के बुद्ध

26. कालकनी वार्तामां साहाणुसाहि हिंद उपर चढाइ करतो नथी पण तेना साहिओ तेना क्रोधथी नासी छुटवाने चढाइ करे छे.

अने महावीर समकालीन होवा जोईए, तेमणे लगभग एक ज प्रदेशमां प्रवास कर्यो होवो जोईए तथा तेमना वखतना एक ज राजाओ अने अग्रगण्य पुरुषोना संसर्गमां तेओ आव्या होवा जोईए. विशेषमां जेकोबीए खास निश्चित रीते बताव्युं छे के बौद्ध आगममां गणावेला 27 छ पाखंडी गुरुओमांना निग्गन्थ-नात (थ)-पुत्त ते ज महावीर छे. आ बन्ने समकालीन हता, तथा बन्ने मगधमां फरता हता28 तेथी परस्पर समागममां आव्या हशे, के केम तेनी कदा च कोईने शंका होई शके; पण, आ बन्ने तद्दन भिन्न अने स्वतंत्र हता ए विषयमां तो हवे कोईने शंका थाय तेम नथी. नात(थ) पुत्त अने तेना अनुयायिओ संबंधे बौद्ध आगमोनां वाक्योनी प्रो. जेकोबीए, सैक्रेड् बुक्स् ऑफ् धी ईस्ट, पु० ४५, पा० १५ मां सारी रीते चर्चा करेली छे. परंतु तत्स्थळे तेमनो मुख्य हेतु मात्र जैनो अने तेमना धर्म विषेना बौद्ध उल्लेखो भेगा करी समजाववानो हतो, ए उल्लेखोमांथी ऐतिहासिक बाबतो तारवी काढवानो हेतु गौण हतो, तेथी एमांनां केटलांक वाक्यो विषे हुं अहीं पुनः चर्चा करीश. जो के तेमां वर्णवेला बनावो पछी घणा लांबा समये पाली आगम विद्यमान रूपमां संगठित थएला होवाथी तेना उपर सर्वथा आधार राखी शकाय तेम तो नथी; तो पण तेमांना केटलाक मुख्य बनावो तो खास बनेला होवानां सबळ प्रमाणो जणाय छे.

सामञ्ञफलसुत्त (दी० नि० १, पा० ४७) नी सुज्ञात प्रस्तावनामां कहेलुं छे के, मगधराज अजातशत्रुए अनुक्रमे पूरणकस्सप, मक्खलीगोसाल, अजितकेसकंबल, पकुधकच्चायन, संजयबेलट्ठीपुत्त, अने निगण्ठ नाथपुत्त एम छ पाखंडी गुरुओनो धर्म सांभळवा तेमनी मुलाकात लीधी, अने आखरे असंतुष्ट थईने बुद्धने शरणे गयो. एमां जरा अतिशयोक्ति हशे, कारण के एक ज रातमां अजातशत्रुए सात महान् गुरुओनी मुलाकात लीधी ए मानी शकाय तेम नथी.29 परंतु आमांना गोसाल अने नातपुत्त ए बे गुरुओनी धार्मिक मान्यताओने जैन लेखो 30 साथे सरखावतां आपणने जे बातमी मळे छे ते उपरथी एम कही शकाय के ए प्रस्तावनानो निष्कर्ष खरो छे. वळी औपपातिकसूत्र जेवा जैन ग्रंथमां पण राजा कूणीय अगर कोणिय (अजा-

---

27. कांई विशेष कथा विना ज्यां ज्यां मात्र नात (थ) पुत्तनुं नाम आवे छे एवां वाक्यो, दाखला तरीके नीचे प्रमाणेः—चु० व० ५, ८, १; दी० नि० २, पृ० १५०; म० नि० १, पृ० १९८, २५०; २, पृ० २; बौद्ध संस्कृतमां तेने निर्ग्रन्थो ज्ञातिपुत्रः कहेलो छे, दाखला तरीके दिव्यावदान पा. १४३; महावस्तु १, पा. २५३, २५७; ३, पा. ३८३.

28. स्वर्गस्थ एल. फीअरे प्रपंचसूदनी उपरथी J. A. Ser, VIII,t. XII, 209 मां एवो मत दर्शाव्यो छे के महावीर ने बुद्ध कदापि मळ्या न हता, परंतु आ एक भूल छे एम स्पष्ट जणाय छे.

29. मज्झिमनिकाय० २, पा. २ मां कहेलुं छे के बुद्धना वखतमां उपरोक्त छए पाखंडी गुरुओ एक वखते त्यां साथे चातुर्मास रह्या हता. कल्पसू० १२२ मां कह्या प्रमाणे महावीरे त्यां १४ चातुर्मास गाळ्यां. परंतु दी०नि० मां एम कह्युं छे के चोमासा पछी कार्तिकनी पूर्णिमाने दिवसे अजातशत्रुए तेनी मुलाकात लीधी. परंतु एम पण बनवुं शक्य छे के ए ज बाबतनो अहीं उल्लेख होय.

30. (दी.नि.१,५७ मांनी) नातपुत्तनी धार्मिक मान्यताओ माटे सरखावोः—जेकोबी, से० बु० ई०, पु० ४५, पृ० २०; अने गोसालनी मान्यताओ माटे (दी० नि० १५३) पृ० २९ तथा हेस्टिंग्स एन्साइक्लोपीडीआ, पु.१ पा. २५९ मां आवेलो डॉ. होर्नेलनो लेख. (सरखावो तेम ज उवासगदसाओ App.II)

तशत्रु) ए लीधेली महावीरनी मुलाकात विषे कथन करेलुं छे; तेथी जो के दीर्घनिकायमां[31] जेनो उल्लेख करेलो छे ते ज आ मुलाकात हशे, एम कहेवाने प्रमाणो नथी, तो पण अजातशत्रु महावीरनी मुलाकात लेतो तेनी कल्पना जैन लेखकोने तद्दन अज्ञात न हती ए सिद्ध करवाने पूरता दाखला मळी शके तेम छे.

मज्झिमनिकाय १, पा० ९२ मां, बुद्धे पोताना सगा शाक्यकुमार महानामन्ने राजगृहनी नजीकमां केटलाक निर्ग्रन्थ साधुओ साथे थएली पोतानी वातचीत विषे कहेलुं छे. महावीरना ते शिष्योए पोताना गुरु सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा वगेरे छे एम कही तेमनां वखाण कर्यां हतां; आमां कांई खास विशेष नथी, कारण के सर्वज्ञता ए महावीर तेम ज गोसाल; बुद्ध तेमज देवदत्त सर्वेनुं सामान्य लक्षण थई पडयुं हतुं. वळी, पाली आगमोमां बीजा घणा दाखला छे के ज्यां उपर प्रमाणे ज महावीरना शिष्योए पोताना गुरुना सर्वज्ञ तरीके वखाण करेलां छे. तेवी ज रीते मज्झिमनि० २, ३१ मां राजगृहमां सुकुलदायि; तेमां ज २, २१४ मां केटलाक निर्ग्रन्थ साधुओ; अने अंगुत्तर १, २२० मां लिच्छवी कुमार अभय वेसालीमां आनंदनी साथे वातचीतमां नातपुत्तनां वखाण करे छे. परंतु आ सर्व फकराओमां नातपुत्त, तेनी धर्मभावनाओ तथा तेना अनुयायिओ विषे घणी ज्ञातता पूर्वक कहेलुं छे, तेथी एम सिद्ध थाय छे के बौद्ध आगमोने यथास्थित रूप आपनाराओने गौतम अने महावीरना जीवनसमयना बौद्धो अने जैनो वच्चेना संबंधनुं चोकस ज्ञान हतुं.

वेसालीमां[32] रहेतो सेनापति सीह जे पाछळथी बौद्ध थयो हतो तेना नातपुत्त साथेना समागम बाबतना महावग्ग ६, ३१,१ ना फकरा विषे, तथा मज्झिम नि० (१, पा० ३७१) ना प्रसिद्ध उपालिसुत्त विषे प्रो. जेकोबीए से० बु० इ० पु० ४५, पा० १६ मां चर्चा करी छे. एमां विस्तार पूर्वक कहेलुं छे के उपाली जे नातपुत्तनो अनुयायी हतो, ते ज्यारे नालन्दामां[33] आ बन्ने गुरुओ मळ्या हता त्यारे धार्मिक विचारोमां बुद्धने हरावाने त्यां गयो हतो. परंतु आ प्रयत्ननुं परिणाम उलटुं ज आव्युं, कारण के बुद्धे तेने ज (उपालिने) पोतानो शिष्य बनाव्यो. त्यार बाद उपालि पोताने घेर राजगृहमां गयो अने द्वारपालने कह्युं के हवे निर्ग्रन्थोने पेसवा देवा नहि. ज्यारे पाछळथी पोताना शिष्यमंडळ सहित महावीर तेने मळवा आव्या त्यारे उपालिए पोतानो धर्म बदलवानुं कारण कह्युं अने बुद्धनां वखाण कर्यां. तेमां अंते आ शब्दो आवे छेः—

अथ खो निगण्ठस्स नातपुत्तस्स भगवतो सक्कारं असहमानस्स तत्थ एव उण्हं लोहितं मुखतो उग्गञ्छीति ।'

'पण भगवान बुद्धनां वखाण सहन नहि करी शकवाथी निगंठ नातपुत्तना मुखमांथी उष्ण लोही नीकळी पडयुं.'

---

31. औपपातिकसूत्रमां कह्युं छे के कूणिय चम्पामां रहेतो हतो; दीघनिकायमां कह्युं छे के उपरोक्त समागम राजगृहमां थयो हतो. उवास० १, ७ मां उद्धंकित अजातशत्रुनी मुलाकात (वी. ए. स्मीथ पोताना हिंदुस्तानना प्राचीन इतिहास, पा. ४१ मां तेनुं अवतरण लीधुं छे.) चंपानो पण उल्लेख करे छे. आ विषे हुं आगळ उपर कहीश.

32. उपरोक्त फकरो अंगु०निकाय, ४, पा. १८० मां पण आवे छे.

33. उपर आपेला कल्पसू० १२२ ना अवतरणमां महावीरे राजगृहमां तथा नालन्दाना परा (बहिरिका) मां १४ चोमासां गाळ्यां. आ स्थळने जैनो पण प्रख्यात मानता हता; सरखावोः सूत्रकृतांग २,७–से० बु० इ०, पु० ४५ , पृ० ४१९.

आ फकरा उपर घणो भार मुकवामां आव्यो छे, कारण के घणा विद्वानोए आ वातने दी० नि० ३, पृ० ११७ अने २०९; म० नि० २, पृ० २४३ वाळी हकीकत साथे जोडीने 34 कह्युं छे के नातपुत्त ज्यारे पावामां मरी गया त्यारे बुद्ध शाक्योनी भूमि उपरना सामगाममां हता. आ उपरथी एम अनुमान करवामां आव्युं छे के उपालीनी मुलाकात पछी थोडा ज वखतमां महावीरनुं अवसान थयुं. 35 अहीं, महावीरना अवसान विषेना बौद्ध उल्लेखना विषयमां हुं नहि बोलुं; आगळ उपर तेनी चर्चा करीश; परंतु उपालिनी आ वातो तथा तेना प्रथम गुरुना अवसान संबंधमां, बे बाबतो उपर हुं भार मूकवा मागुं छुं. प्रथम बाबत ए छे के हालमां मनातुं महावीरना निर्वाणनुं स्थान पावापुरी पटणा प्रांतना विहार भागना गिरियक गामथी लगभग त्रण माइल दूर आवेलुं छे; 36 ज्यारे दी० नि० ३, पृ० ११७ विगेरे उपरथी ए स्पष्ट थाय छे के बौद्धो पावा ते स्थळने मानता हता के ज्यां कुसिनाराथी आवतां बुद्ध चुंदना घरमां रह्या हता; अने ते शाक्योना प्रदेशमां आवेलुं कहेवाय छे. राजगृहमां उपलिसाथे विसवाद थयां पछी जो महावीर थोडा ज वखतमां अवसान पामवाना होत तो तेवा आजारीने माटे आ स्थान घणुं दूर कहेवाय; तथा कल्पसू० १२२-३ प्रमाणे महावीरे पोतानुं छेल्लुं चोमासुं पावामां 'राजा हस्तिपालनी लेखकोनी सभा'मां गाळ्युं हतुं. तेथी उपालिने लीधे तेमनुं मरण थयुं एम जो मानीए तो पण उपालिनी मुलाकात पछी तेओ लगभग अर्धो वर्ष सुधी जीव्या हशे. बीजी बाबत ए छे के चु० व० ५,४,२ मां, ज्यारे देवदत्तने पण महावीरना जेवुं कारण बन्युं त्यारे तेना मुखमांथी पण उष्ण लोही नीकळ्युं एम एक ज वात कहेली छे. जो के केटलीक पाछळनी विगतो उपरथी स्पेन्स हार्डी अने बीगन्डेट 37 एम माने छे के उपालिना विरोधना परिणामे तेमनुं मरण थयुं, परंतु जूना लेखोमां कोई पण स्थळे ए प्रमाणे कहेलुं नथी. पण आ उपरथी हुं ए निर्णय उपर आवुं छुं के महावीरना मरणने उपालिना विरोध साथे कार्यकारणनो अगर अन्य कोई पण प्रकारनो संबंध नथी.

अभयकुमारसुत्त (म० नि० १, ३९२) मां कहेलुं छे के राजगृहमां निगंठनाथपुत्ते अभयने कह्युं के, तमे बुद्ध पासे जई, प्रिय शब्दो बोलवा ए ठीक के नहि, ते विषे प्रश्न पूछो. आ प्रमाणे बुधने पकडवाने जाळ पाथरवामां आवी; कारण के जो ते 'ना' कहे तो पोते खोटो पडे, अने 'हा' कहे तो देवदत्तने तेणे शा माटे कठोर शब्दोथी धिक्कार्यो हतो एम अभय पूछे. हुं कबुल करुं छुं के आ फकराने अगत्यता आपवानी जरुर नथी, कारण के पाली आगममां 38

34. सरखावोः चामर्स, J. R. A. S. 1895, p. 665.

35. उपालिना विरोध पछी नातपुत्त थोडा ज वखते मरी गया ए वात स्पेन्स हार्डीए, मॅन्युअल ऑफ बुद्धिज्म् पा. २८० मां कहेली छे. पण सरखावोः–जेकोबी. कल्पसू० पा.६

36. सरखावोः इम्पीरीयल गॅझेटीअर ऑफ इंडिया. पु. २०, पा. ३८१

37. सरखावोः से०बु०इ०,पु०१३,पृ० २५९.आ ज बाबत सिद्ध करनारो बीजो दाखलो सारिपुत्त अने मोगल्लानना गुरु संजयना इतिहासमां आवे छे. ज्यारे तेना शिष्योए तेनो त्याग कर्यो त्यारे तेणे लोही ओक्युं हतुं, एम कहेलुं छे. पण तेना मरण विषे कांई कहेलुं नथी, जे ते वखते थयुं नहि होय, कारण के मारा धारवा प्रमाणे ते ज बेलट्ठीपुत्त नामे पाखंडी हतो. पण बील अने बीगन्डेट कहे छे के ते त्यारपछी तरत ज मरी गयो, जे बाबत स्पेन्स हार्डीना कथनथी विरुद्ध छे. Manual p. 202. सरखावोः से० बु० इ०, पु० १३, पृ० १४९.

38. संयुत्त० नि० ४, ३२२ मां जणाववामां आव्युं छे के एक दारुण दुष्काळना समये बुद्ध अने नातपुत्त बन्ने एक साथे नालंदामां रह्या हता. ते दरमियान नातपुत्त पोताना धर्मानुयायी एक गृहस्थ जेनुं नाम असिबन्धकपुत्त (सरखावो उपरोक्त पुस्तक पृ. ३१७) हतुं अने ते गामनो ग्रामणी हतो तेने बुद्धनी पासे जई एक प्रश्न पूछवा कह्युं के 'आ (दुकाळना) वखते तमारा बधा श्रमणोने अहीं राखी गरीब लोकोना खोराकने स्वाहा करावी देवो ए शुं तमने योग्य लागे छे ?'

बीजो पण एक आवो ज दाखलो आवेलो छे; पण अन्य कोई पण प्रमाणथी ए नकामो छे एम सिद्ध थई शके तेम नथी, तेथी एमांथी ए निष्कर्ष काढी शकाय के देवदत्तनो धर्मविरोध थया पछी पण महावीर जीवता हता. आ बनाव प्रो. ह्राइस डेवीड्सना 39 प्रमाण पुरःसर धारवा प्रमाणे बुद्धना निर्वाण पहेलां दस वर्षे बन्यो हतो.

प्रो. जेकोबी 40 एक उपयोगी बाबत उपर ध्यान खेंचे छे,–के जैनोना प्राचीन आगमोमां बुद्ध अने तेना अनुयायीओनो बीलकुल उल्लेख थयो नथी, तेथी आ बाबत, बुद्ध अने महावीर समकालीन होवा छतां बने ते नवाई जेवुं गणाय, अने ते उपरथी ए एवा अनुमान उपर आवे छे के महावीरना समयमां बौध्धोनुं घणुं महत्व नहिं वध्युं होय. गमे तेम हो, हुं आ अनुमानने मळतो थई शकुं नहिं; केम के अनुमानननी प्रतिज्ञा जोईए तेवी खरी नथी. सिद्धान्तोमां केटलांए स्थळे अन्य संप्रदायोनी साथे बौद्धोनो पण खुल्लेखुल्लो निर्देश थएलो जोवामां आवे छे. 41 वळी; आनुं कारण केटलेक अंशे जैन सिद्धान्तनी रचना पण होय. बुद्ध महावीरनो प्रतिस्पर्धी हतो ए निःसंदेह छे अने भयंकर पण गणाय खरो, परंतु ते मंखलिपुत्त गोशालना जेवो द्रोही अने छेपीलो शत्रु तो नहोतो ज. कारण, मंखलिपुत्त गोशाले महावीरना धर्ममांथी नीकळी जई पोतानो स्वतंत्र मत स्थाप्यो; अने आटलेथी ज संतोष नहि मानी पोताना गुरुना करतां बे वर्ष पहेलां तीर्थंकरपद प्राप्त कर्यानी घोषणा करवा मांडी हती. आ बीना नवीन स्थापित थएला संघने (धार्मिक समाजने) एक भीतिजनक आघात पहोंचाडे ए स्वाभाविक छे, अने तेथी फरीने आ तत्त्वज्ञानी 42 के जेने बुद्ध पण एक महान् दुराशयी पाखंडी 43 तरीके वर्णवे छे, तेना उपर जैन शास्त्रोमां पण गाळो अने शापोनो वरसाद वरसावेलो जोवामां आवे तो तेथी नवाई पामवा जेवुं नथी. आ प्रमाणे प्राचीन काळना जैनोने बुद्धना करतां गोशाल वधारे महत्त्वनो पाखंडी लाग्यो होय. आ उपरांत जैनोना सिद्धान्त ग्रंथो जे पाली सिद्धान्त पछी घणां वर्षे हालना रूपमां ग्रथित करवामां आव्या, तेने बौद्धोना आगमो 44 साथे सरखावी शकाय नहि. हुं आथी एम कांई सूचववा नथी मांगतो के बुद्ध अने तेना मतविषयक प्राचीन हकीकतो सूत्रोमांथी पुस्तकारूढ करनाराओए काढी नाखी छे. परंतु हुं बे बाबतो तरफ वाचकनुं खास ध्यान खेंचवा मागुं छुं के जे प्रो. जेकोबी माने छे तेम केटलेक अंशे अर्थावबोधन करे छे.

(१) जे दृष्टिवाद नामनुं अंग व्युच्छिन्न थयुं छे तेमां कदाच बौद्धोना संबंधमां कांई

---

39. जुओ, हेस्टींग्सनी एन्साइक्लोपीडीआ पु. ४. पृ. ६७६. 40. कल्पसूत्र, पृ. ४.

41. सरखावोः दा० त० वेबरनुं इंडी. स्टडी० १६, ३३३.३८१ अने सूत्रकृतांग २, ६, २६-से० बु० ई०, पु० ४५, पृ० ४१४.

42. भगवती, शतक १५ नो डॉ. हॉर्नलनो संक्षेप, उवासगदसाओ, परिशिष्ट १,

43. जुओ, अंगु० निकाय० १, ३३, २८६.

44. पूर्वकालमां चौद पूर्वोनुं विद्यमानपणुं; दृष्टिवाद व्युच्छिन्न थवाथी अंगोनी अपूर्णता अने श्वेताम्बरोना वर्तमानकालीन आगमोने प्रमाण मानवामां दिगंबरोनी चोक्खी ना; आ सर्वे हकीकतो एम सूचवे छे के गुरुशिष्यपरंपरा द्वारा मळेला विद्यमान सिद्धान्त ग्रंथो अपेक्षाकृत अर्वाचीन काळना छे.

उल्लेख होय तेम संभवे छे; कारण तेना नाम उपरथी जणाय छे के तेमां अन्यमतोना [45] ज संबंधमां ऊहापोह करेलो हतो.

(२) वर्तमानकालीन सिद्धान्तनी शैली ज एवी कृत्रिम छे के तेमां जोईती हकीकतो शोधी काढवी असंभवित छे. कारण के ते सर्व खंडित रूपे छे—जो के केटलेक स्थळे केटलाक भागोने कंटाळाभरेली भाषाशैलीमां विस्तृत करेला छे;—तेम ज ते (सिद्धान्त) उपरोक्त स्मारक गाथाओनी माफक तारवी काढी लीधेला या तो जूना सिद्धान्तमांना सामान्य रीते साचवी राखेला भागो जेवा छे.

आ विषय उपर हवे वधु चर्चा न करतां हुं जैनोना संबंधमां कांई खास हकीकतो आपवावाळां केटलांक बौद्ध ग्रंथोमांनां उदाहरणो आपीश. कारण उपर चर्चेलो विषय हुं अन्य स्थळे [46] चर्चवा मागुं छुं. आवी जातना घणा फकराओ जेमां मतोनी विगतो जणावेली छे ते प्रो. जेकोबीए संगृहीत कर्या छे. आ स्थळे साधारण महत्त्वनी बाबतोना विषयना केटलाक फकराओ आपीश; अने ते, जरूर होय तो, प्रमाणरूपे बतावी शकाशे के बौद्धो अने जैनो, पोताना संप्रदायोना आरंभ कालमां—तेओना संस्थापकोना जीवनकालमां—परस्पर घणा ज निकट संबंधमां रहेता हता. जैनो पोताना धर्मप्रवर्तकोने 'अर्हत्' नुं पद आपे छे ए सुविख्यात छे. अने आ पद खारवेलनी शिलालिपिमां आवेला—समणो वा ब्राह्मणो वा अरहा (खारवेल. ५, ८, १) [47], आ एक वाक्यमां जोवामां आववाथी मारा धारवा प्रमाणे तेनो अर्थ 'जैन' होवो जोईए. बीजी पण एक बाबत ध्यानमां राखवा जेवी छे के पाली ग्रंथोमां नातपुत्त अने बीजा पांच पाखंडी मताचार्यो माटे 'गणिन्', 'गणाचरिय', 'गणस्स सत्था', (संयुक्त नि० १, ६६) अने 'तित्थकर' एवा इल्कावो जणावेला छे. मारा मत प्रमाणे आ इल्कावो बुद्धने [48] कदापि लगाडवामां आवता नथी, पण जैन तीर्थंकर माटे ते बराबर बंध बेसता लागे छे; कारण के 'गण' शब्द प्राचीन समयमां जैन संघनो एक विभागसूचक हतो; जेनो अर्वाचीन कालीन 'गच्छ' प्रतिशब्द छे, अने तीर्थंकर पद तो महावीरनो अत्यंत सामान्य इल्काब छे जेनो हक्क गोशाले पण कर्यो हतो. आ संबंधमां कोईने शंका थाय तेम छे के आ बाबत कांई विशेष साबीत करी शके तेम नथी; कारण के आ इल्कावो बधा तीर्थिको माटे सरखी रीते वापरवामां आव्या छे, पण आपणे याद राखवुं जोईए के जे गोशाल महावीर पछी सौथी वधारे महत्त्वनो मनातो हतो, ते शरुआतमां महावीरनो मात्र शिष्य ज हतो; अने तेणे पोताना गुरु महावीरथी बे वर्ष पहेलां ज तीर्थंकरपद प्राप्त कर्यानो दावो कर्यो हतो. वळी, गाथामां आ बन्नेनी साथे पकुधकच्चायन अने पूरणकस्सपनो उल्लेख थएलो छे. आ गाथा खरेखर जूनी छे अने ते संयुत्त नि० २, ३, १०, ६ मां आवेली होवाथी विशेष प्रामाणिक गणावी जोईए. अने सु-

45. प्रो. जेकोबीने (से० बु० ६०, पु० २२ पृ० ४५) दृष्टिवादना एक विशिष्ट भाग तरीके मनातां चौद पूर्वो नष्ट थयानुं प्रधान कारण तेमां महावीरना विरोधीओना सिद्धान्तोनुं वर्णन आपेलुं हतुं, ते लागे छे. परंतु आ अनुमान मने बीलकुल स्वीकारवा लायक लागतुं नथी.एनाथी विशेष अविश्वासपात्र कारण बेवरे आप्युं छे.Ind. Stud. XVI, 248; Cf. also Lumann Actes du VIe congres des Orient. III, 559.

46. उत्तराध्ययनसूत्रनी आवृत्ति जे तैयार थाय छे तेनी प्रस्तावनामां.

47. बौद्ध धर्मग्रंथोमां अर्हत् ए इल्काब पाखंडी मताचार्योना नाम तरीके वपराएलो भाग्ये ज जोवामां आवे छे. सरखावो: राइस डेविड्स्, Hastings' Encyclopaedia 1,774.

48. सामञ्ञफलसुत्त (दी० नि० १, ५४) मां बुद्ध अने तेना विरोधी मताचार्यो, जे अहीं आ बहु ज नजीकना संबंधमां जोवामां आवे छे, तेमना भिन्न भिन्न बतावेला गुणो या लक्षणो जुओ.

मं० विला० १, १४४ मां बुध्दघोष खुल्ली रीते जणावे छे के पकुध 'सितूदक पटिखिंत्तो' हतोः अर्थात् (महावीरनी माफक) थंडा पाणीना उपयोगनो प्रतिषेध करनार हतो. अने मार्गमां नदी अथवा तळावमां थईने पार उतरवाने पाप मानतो हतो (नदिं वा मग्गोदकं वा अतिक्कम्म सीलं मे भिन्नं ति). तेना मतनी बीजी बाबततुं प्रो. जेकोबीए से० बु० इ०, पु० ४५, पा० २४ मां विवेचन कर्युं छे. पूरण कस्सपना संबंधमां दीघनिकाय. १,-५२, 49 मां वर्णवेला तेना सिद्धान्तो उपरथी जैन धर्मनी साथे तेनी कांई पण समता जोवामां आवती नथी. परंतु तेना संबंधमां जणाववामां आवेली बे बाबतो खास ध्यानमां राखवा लायक छे, कारण ते उपरथी पूरण अने गोसालनो परस्पर संबंध घणो गाढ हतो तेम सूचित थाय छे. सु० विला० १, १४२मां एक कथा आपेली छे, जेमां पूरण शा कारणथी नग्न साधु थयो हतो ते बताववामां आव्युं छे अने आ कथा तेज ग्रंथमां पृ० १४५ मां गोसालना संबंधमां आपेली दंतकथानी साथे तद्दन मळती छे. 50 वळी, गोसालना, वर्णानुसार छ जातिमां करेला मनुष्योना विभागो अंगुत्तर निकाय, ३, ३८३ मां पूरणना करेला छे एम बताववामां आव्युं छे.51 आ हकीकत भूल भरेली होय तेम लागती नथी, परंतु ए एम बतावती होय तेम लागे छे के पूरणनो पण एवो मत हतो. आ उपरांत गोसाल 'कर्म' ना अस्तित्वने मानतो न हतो (नत्थि कम्मं विगेरे दी० नि०) अने पूरणनी पण आ बाबतमां तेवी ज मान्यता हती एम लागे छे; कारण के ते पण एम कहे छे के माणस जीवोने मारे अगर कापे तेमां पाप नथी तेमज सारां कर्मोथी पुण्य पण संचित करतो नथी. तेनो मुख्य सिद्धान्त नीचेना शब्दोमां प्रदर्शित थाय छेः—नास्ति पापं नास्ति पुण्यम्'। आ उपर जणावेली बाबतोथी एटलुं तो अवश्य संभवित लागे छे के महावीर, गोसाल, पकुध अने पूरण वच्चे केटलोक विशेष संबंध हतो; अलबत्त तेओना सिद्धान्तोमां भिन्नता हशे; अने तेमाना अनुयायीओ जैनोनी माफक गणोमां वहेंचाएला हशे. 52

महावीर एक नग्न साधु हता ते तो आचारांग १, ८, १.द्वारा सुज्ञात थई चुक्युं छे. आ बाबतमां ते तेमना पूर्वगामी पार्श्वथी जुदा पडता हता; कारण के पार्श्वे ये वस्त्र पहेरवानी छूट आपी हती.53गोसाल पण नग्न ज हतो.अने तेणे पोताना अनुयायिओ के जे आजीविकोना नामे ओळखाता

49. पकुध अने गोसाल ए बंने वच्चेना संबंध माटे सरखावोः होर्नल; हेस्टिंग्सनी एन्साइक्लोपीडिआ १,२६१

50. आ दंतकथा होर्नले उवासग० ना परिशिष्ट २. पृ. २९ उपर आपेली छे; सरखावोः स्पेन्स हार्डीनो मॅन्युअल, पृ. ३०१.

51. सरखावोः सु० विलास० १, १६२ होर्नल, हेस्टींगसनी एन्साइक्लोपीडीआ १, २६२. आ मत अने जैनोना लेश्याना सिद्धान्ततुं वर्णन 'जैनो अने आजीविकोनो लेश्यानो सिद्धान्त' नामना निबन्धमां सारी रीते बताववामां आव्युं छे, जे निबन्ध Sertum philologicum C. F. Johansson Oblatum, Upsala 1910, p. 19ff. मां छपायो छे.

52.बाकीना बे अर्थात् अजित केसकम्बल अने सञ्जय बेलट्ठिपुत्तना संबंधमां वर्णन आपी शकतो नथी. अजित एक जडवादी हतो अने ते आत्माना अस्तित्वने ज न होतो मानतो; एटलुं ज नहि पण आगामी जन्मना संबंधमां विचार करवाने पण मना करतो हतो. दुल्वमां जणाव्युं छे के (Rockhill, Life of Buddha p. 103) तेनी मान्यता गोसालना जेवी हती; ते दीघनिकायना फकरा साथे सरखाववा लायक नथी. अने संजय ए मारा धारवा प्रमाणे महावग्ग १, २३–२५ मां, सारिपुत्त अने मोग्गल्लानना गुरु तरीके जणावेल संजय परिव्राजक छे. आ बाबत जो सत्य होय तो ते निःशंक रीते ब्राह्मण होवो जोईए. दीघनिकाय १, ५८ ने आधारे विचार करतां ते एक वादी हतो अने अलंकारशास्त्रविषयक पोतानी कळा प्रदर्शित करवा घणुंखरुं प्रयत्न करतो हतो.

53. सरखावो; दाखला तरीके उत्तराध्ययन २३, १३.

हता तेमना माटे पण अचेलकव्रतनुं ज विधान कर्युं हतुं. परंतु महावीरे पोताना शिष्यो–अनुयायिओनी पसंदगीने माटे बन्ने मार्गो खुल्ला राख्या हता. बौद्ध ग्रंथोमां अनेक वखत नग्न यतिओनो उल्लेख थएलो जोवामां आवे छे, अने ए रीते ते आजीविको ज समजवाना छे. उदाहरण तरीके महावग्ग ८, १५, ३; [54] १, ३८, ११; ७०, २; चुल्लव० ८, २८, ३; निस्सग० ६, २; संयुत्त निकाय २, ३, १०, ७ वगेरे. आमांनां केटलांक उदाहरणोमां नग्न भिक्षुओने मात्र तित्थिय (तीर्थिक) कहेला छे अने तेथी करीने ते महावीरना अनुयायिओ पण सूचवी शके. वळी गोसाल अने पूरणनी 'छ जातिओ' नी नोंधमां 'एकवस्त्रवाळा निर्ग्रन्थो' तथा 'अचेलकोना श्वेतवस्त्रधारी गृहस्थ अनुयायिओ' अने 'नग्न भिक्षुओ अर्थात् आजीविको' वच्चे भेद पाडवामां आव्यो छे. ते उपरथी जणाय छे के बौद्धो पोताना प्रतिस्पर्धी मतोना संबंधमां चोकस जाणता हता. घणाक स्थळोमां अचेलो अथवा अचेलकोना संबंधमां वधारे व्याख्या कर्या सिवाय उल्लेख थएलो जोवामां आवे छे अने आ शब्द जैनोमां सारी रीते मान्य छे. अंगु० निका० १, २०६ मां एम कहेवामां आव्युं छे के निर्ग्रंथो पोताना श्रावकोने उपोसथ दिवसोमां नग्न रहेवा फरमावे छे. चु० व० ५, १०, १ मां जणाविलुं छे के एक साधुना हाथमां पाणी पीवानुं तुंबडीनुं एक प्यालुं जोईने लोको कहेवा लाग्या 'तीर्थिकोनी माफक.' आचारांग २, १,६,१ प्रमाणे जैनोने तुंबडाना [55] बनावेला पात्र वापरवानी छूट आपवामां आवेल छे, अने तेथी करीने आ टीका वास्तविक रीते तेमने ज लागू पडे छे. [56] आ उपरांत म.व.४,१,१२ मां मूकव्रत अथवा मौनव्रत पाळनारा साधुओनुं वर्णन थएलुं छे. ते उपरथी आपणने सूत्रकृतांग १, १३, ९ (से० बु० ई०, पु० ४५,पृ० ३२१) मां जैनधर्मदर्शक (मोणपदं गोत्तं) अर्थात् मौन व्रत पाळतुं 'गोत्र' रूपी उद्गार याद आवे छे.

आ बाबतने पुरवार करनारां बीजां पण घणां उदाहरणो मळी आवेलां छे. बौद्धोने तेमना तद्दन प्रारंभ काळमां, तेमना विरोधिओ–निर्ग्रंथो अथवा जैनोना चरित्रो तथा संस्थाओनुं घणुं सारुं ज्ञान हतुं. आ फकराओ उपरना विवेचनमां उतरी कालक्षेप करवा मांगतो नथी. परंतु जे बाबतो उपर रजु करवामां आवी छे, तथा प्रो. जेकोबी अने अन्य विद्वानोए अगाउ ज जे दाखलाओ पूरा पाडेला छे, ते सर्व उपरथी चोकस अनुमान थई शके छे के महावीर अने बुद्ध ए बन्ने भिन्न, समकालीन, अने प्रतिस्पर्धी साधु समाजना संस्थापक हता. पण जो आपणे जैनपरंपरागत कथाने साची मानीए अने ते अनुसार महावीर निर्वाण विक्रम पहेलां ४७० वर्षे

54. आ प्रकरणमां बुद्ध अने गोसालनी वच्चेना साम्यनो एक आश्चर्यकारक दाखलो जोवामां आवे छे तेथी एम लागे छे के ते बाबत निःसंदेह बन्ने जणाओए कोई ब्राह्मण ग्रंथमांथी लीधी हशे. कारण के ‡ 2 मां एम जणावेलुं छे के एक रात्रे एक 'चातुद्दीपिको महामेघो' आकाशमां आव्यो अने वरसाद पड्यो. आ अवसरे बुद्धे पोताना शिष्योने नीचे प्रमाणे कह्युं:—यथा भिक्खवे जेतवने वस्सति एवं चतूसु दीपेसु वस्सति. ओवस्सापेथ भिक्खवे कायं, अयं पच्छिमको चातुद्दीपिको महामेघो:—ओ भिक्षुओ, जेवी रीते जेतवनमां वरसे छे, तेवी रीते अत्यारे चारे द्वीपमां वरसाद पडे छे. तेमे शरीर उपरथी वस्त्रो काढी नांखो. ओ भिक्षुओ, कारण के चारे द्वीपो उपर आ छेल्लो महान् मेघ चडेलो छे' आ 'छेल्लो' महान् मेघ आपणने एकदम गोसालनी आठ छेल्ली वस्तुओमांनी (अट्ठचरमाइं) एक वस्तु—'छेल्लुं भयंकर वावाझोडुं'—नी याद आपे छे. सरखावो: भगवती पृ. १२५४; अने होर्नल, हेस्टींग्सनी एन्साइक्लोपीडीआ १, २६३.

55. सरखावो; वळी औपपातिक. ‡ ७९; ७.

56. तेज अध्ययनमां साधुने—निर्ग्रन्थोने, पाणी पीवा माटे माणसनी खोपरीनुं पात्र बनावी वापरता, दर्शावेला छे. घणा प्राचीन समयमां आ प्रमाणे केटलाक संप्रदायोमां आ वस्तुनो उपयोग थएलो जोवामां आवे छे.

एटले इ. स. पूर्वे ५२७ मां थयानुं जणाचीए तो आपणने आ अनुमानना संबंधमां शक उठे खरो. कारण के बुद्ध निर्वाणनी, जनरल कनिंगहाम अने प्रो. मेक्समुलरे पहेली ज वखत अने मारा अभिप्राय प्रमाणे बराबर रीते निर्णीत करेली मिति इ. स. पूर्वे ४७७ मां आवे छे अने सघळा मूळ लेखो एकमते निर्वाण समये तेमनी ऊंमर ८० वर्षनी बतावे छे, ते उपरथी ते इ. स. पूर्वे ५५७ मां जन्म्या होवा जोईए. आ उपरथी ए स्पष्ट छे के जो महावीर इ. स. पूर्वे ५२७ मां निर्वाण पाम्या होय तो बुद्ध ते समये ३० वर्षनी वयना होवा जोईए. परंतु बुद्धे पोतानी ३६ वर्षनी वय पहेलां लगभग इ. स.पूर्वे ५२१ मां बुद्धत्व प्राप्त नहि करेलुं होवाथी अने अनुयायिओ पण नहि मेळवेला होवाथी,ते समयमां महावीरने कदापि मळी शके ए तद्दन असंभवित छे.आ उपरांत वळी बन्ने अजातशत्रुना राज्यकाल दरम्यान विद्यमान हता एम पण आपणे जाणीए छीए. आ राजा बुद्धनिर्वाण पहेलां ८ वर्ष अभिषिक्त थयो हतो अने तेणे ३२ वर्ष राज्य कर्युं हतुं. तेथी पण उपरोक्त मितिओ बिल्कुल अविश्वसनीय बने छे. आटला माटे, महावीरना निर्वाणनी मिति कांतो इ. स. नी शरुआतनी वधारे नजदीक लाववी जोईए, अगर तो बुद्धना निर्वाणनी तारीख आगळ खसेडवी जोईए. परंतु इ. स. पूर्वे ५२७ वाळी महावीरनिर्वाणनी तारीख परंपरागत होवाथी अने बुद्ध निर्वाणनी इ स. पूर्वे ४७७ नी मिति मात्र संशोधित होवाथी कदाचित् कोईने बीजी मितिने माटे—बुद्धनी निर्वाणमितिनी सत्यताना संबंधमां शंका उठे. आ उपरांत मि. विन्सेन्ट स्मिथ आदि विद्वानोनी नवीन शोधमां बुद्धनिर्वाणनो समय इ. स. पूर्वे ४८६ अगर ४८७ वर्षे स्थापित करवामां आव्यो छे अने डॉ० फ्लीटनी शोध अनुसार इ. स. पूर्वे ४८२-८३ मां स्थापित थाय छे. उपर निर्दिष्ट शोधो जो खरेखर साची नीवडे तो महावीरनिर्वाणना इ स. पूर्वे ५२७ ना समयनी सत्यताना संबंधमां संभावना उपस्थित थाय. परंतु हुं उपरोक्त फेरफारोमां कांई तथ्य समाएलुं मानतो नथी, अने विशेषमां मानुं छुं के जनरल कनिंगहामे अने प्रो. मेक्समुलरे जे बुध्द निर्वाणनुं वर्ष इ. स. पूर्वे ४७७ मुं नक्की कर्युं छे ते प्रामाणिक छे; अने तेथी मारा आ मतने साबीत करवा ते समयना निर्णय योग्य बधी महत्वनी बाबतोनो एकवार फरीथी अहीं विचार करवो उचित धारुं छुं.

हिंदुस्थाननी साची कालगणना, अलेकझेन्डरना हुमलाबाद, चंद्रगुप्तथी शरु थाय छे. परंतु हजी सुधी चंद्रगुप्तना अभिषेकना काळनो संपूर्ण रीते निर्णय थयो नथी; कारण के विद्वानोना मतान्तरो अनुसार अभिषेकनो समय इ. स. पूर्वे ३२५ थी ३१२ वच्चे होवानुं मनाय छे. वळी बुद्ध अने चंद्रगुप्तनी वच्चेना समयना संबंधमां, जूना ग्रंथोमां आपेली गणत्री वजनवाळी लागती नथी. तेथी करीने मॉ. सेनार्ट (इ० ए० २०, २२९) अने मि. वी. गोपाल ऐय्यर (पु० ३७, पृ० ३४१) अने अन्य विद्वानोना मानवा प्रमाणे मारुं पण एम मानवुं छे के कालगणनानी शरुआत मात्र अशोकना शिलालेखोथी ज थई शके तेम छे. डॉ. बुलेर, इ० ए० पु० ६, पृ० १४९; पु० २२, पृ० २९९; ए० इ० पु० ३, पृ० १३४ उपर; अने डॉ० फ्लीटे ज० रा० ए० सो० १९०४, पा० १ मां जे सूचना करेली छे के सिद्दापुर, सहसाराम अने रूपनाथनी आज्ञाओना अंतमां २५६ नो अंक छे, ते बुद्धना निर्वाण पछी व्यतीत थएली वर्ष-संख्या सूचवे छे. ते सूचनानुं डॉ. एफ्. डबल्यु. टोमसे (J. A. 1910, p. 507) संपूर्ण रीते निराकरण कर्युं छे. ते जे अनिषेध्य प्रमाणथी आ बाबत साबीत करे छे तेनो अर्थ एम समजवानो छे के आ आज्ञा प्रसिद्ध थई त्यारे २५६ रात्रिओ सुधी अशोक घर छोडीने चाल्यो गयो हतो. 57 आ लेख जोवामां आव्यो त्यार पहेलां आ सूचना अश्रद्धेय लागती न हती.

57. डॉ. थोमसना पाठने स्वीकारीने डॉ. फ्लीटे (J. R. A. S. 1910, p. 1301) तेना आधारे जे अनुमान कर्युं हतुं ते कोईपण रीते टके तेम नथी. मॉ.लेवीए (J. A. 1911, p. 119) २५६ दिवसोनुं जे अनुमान कर्युं छे, ते मात्र शक्य छे.

कारण के अशोक पोताना आध्यात्मिक गुरुने 'व्युथ'ना नामथी दर्शावे ते असंभवित लागे छे. वळी, आ विशेषण तेणे अन्य कोई स्थळे वापर्युं नथी; लुंबिनी स्तंभ उपर ते बुद्ध, शाक्यमुनि अने भगवन्त एवां गुणनामो वापरे छे. आथी कालगणनानी दृष्टिए ते सूचनानुं बीलकुल महत्त्व रहेतुं नथी. मॉ० सेनार्टे घणा वखत पहेलां जणाव्युं हतुं के कालगणनानी शरुआतनुं केन्द्र १३ मी खडक उपरनी आज्ञामां छे, कारण के ते स्थळे अशोक अंतियोक[58] नामना योन-राजा अने तेना राज्यनी पार तुरमय, अंतिकिन, मक अने अळिकसुदरनो उल्लेख करे छे. आ मतने हुं अनुसरुं छुं. लॅसने (Ind. Alt II, 254)अगाउ ज सूचवी दीधुं हतुं के आ राजाओ अनुक्रमे नीचेना राजाओ छेः—सीरीआनो राजा थीओस, एन्टिओकोस बीजो (२६१-२४६ इ.स.पूर्वे), इजीप्तनो बीजो टोलेमेइओस (मृत्यु २४७ इ. स. पूर्वे), मेसेडोनिआनो आन्टिगोनोस गोनटस (मृत्यु, इ. स. पूर्वे २३९), सिरीननो मगस (मृत्यु, २५८ इ. स. पूर्वे); अने एपिरसनो अलेकझेन्डर (मृत्यु २५८. इ. स. पूर्वे). हवे खडक उपरनी आज्ञाओ अशोकना अभिषेकने १२ वर्ष थयां हतां त्यारे एटले के तेना अभिषेकना १३ मा वर्षमां प्रसिद्ध थई हती. ए विषयमां हजी सुधी कोईने पण शंका थई नथी; तेम ज थाय तेम पण नथी के, ए १३ मी आज्ञामां जे पांच राजाओनो निर्देश करेलो छे ते सघळा, ते वखते हयात न हता. कारण के अशोके दरेक राजा पासे पोताना धर्मप्रवर्तकोने मोकल्या हता. अने आ उपरथी ए सहज समजी शकाय तेम छे के तेओनी साथे ते गाढ संबंध धरावतो होवो जोईए. अने तेथी करीने इ. स. पूर्वे २५८ वर्ष पछी एक या बे वर्षो बाद जे तेओमांना बे राजा गुजरी गया हता ते एनी जाणमां न आवे एम मानवुं अशक्य छे. कारण के आ बेमांनो एक तो (मगस) टोलेमेइओस (Ptolemaios) नो एक निकटनो सगो हतो अने टोलेमेइओस ए अशोकना वखतनो एक घणो ज बळवान राजा हतो जेणे बिंदुसारना दरबारमां अने खुद अशोकना दरबारमां पण पोतानो दिओनिसीओस (Dionysios) नामनो एलची मोकल्यो हतो.[59] आटला माटे अशोकनुं तेरमुं वर्ष एन्टिओकस थीओस (Antiochos Theos) ना राज्यधिरोहणना इ. स. पूर्वे २६१ मा वर्ष पछी अने मगसना अवसान तथा प्रायः अलेकझान्डरना मरणनी पूर्वे—जो आ छेल्लो राजा आ करतां वधारे वहेलो न गुजरी गयो होय— एटले इ. स. पूर्वे २५८ मा वर्ष पहेलां आववुं जोईए. जो ए प्रमाणे आ तेरमुं वर्ष इ. स. पूर्वे २६०-२५८ नी वचमां आवे तो तेनो अभिषेकनो समय इ. स. पूर्वे २७२-२७० मां पडे. अने सघळी बौद्ध परंपराओना एकमते अशोक पोताना अभिषेक पहेलां चार वर्ष राजा बन्यो हतो ते उपरथी तेनो पिता बिन्दुसार इ. स. पूर्वे २७६ अने २७४ नी वचमां गुजरी गयो हशे.

उपरोक्त गणत्री तत्कालीन स्मरणस्तंभादिना अखंडनीय आधार उपर तैयार करवामां आवी छे. परंतु बौद्ध इतिहास ग्रन्थो एम जणावे छे के बुद्ध पछी २१८ मां वर्षमां अशोक पोताना ९९ भाईओने[60] मारी नाखीने राज्याभिषिक्त थयो हतो. आ कथन जो विश्वासपात्र लेखाय तो बुद्धनुं निर्वाण इ. स. पूर्वे ४८९-४८७ नी वचमां नक्की थयुं मानवुं जोईए. पण आ कथन

58. सरखावो, खडक उपरनी आज्ञा बीजी. अहींयां पण तेज राजाओनी मतलब छे.

59. सरखावो, व्ही. ए स्मीथ, Early History, P. 139.

60. आ हकीकत खडक-आज्ञा नं. ५ थी खोटी पडे छे कारण के आ आज्ञामां अशोके पोताना भाईओनो निर्देश कर्यो छे. आ बाबत मॉसेनार्टे शोधी काढी हती. (Ind Ant XX 259.)

विरुद्ध ते ज इतिहासोमां 61 बीजुं कथन मळतुं होवाथी तेओनी गणत्रीमां क्यां भूल छे ते हुं आ स्थळे समजावीश.

राजगृहनो राजा बिंबिसार अने तेनो पुत्र तथा उत्तराधिकारी अजातशत्रु-जेने जैनो कूणिय अथवा कोणिय नामे ओळखे छे-तेमना संबंधमां ब्राह्मण, बौद्ध अने जैन आ त्रणे धर्मोमां परंपराओ जोवामां आवे छे. बौद्धोना पुरातन लेखो जणावे छे के बिंबिसार बुद्धनो समकालीन हतो अने बुद्ध निर्वाणथी आठ वर्ष पहेलां ते पोताना पुत्रना हाथे मरण पाम्यो हतो. पुराणोनी हकीकत अनुसार आ बिंबिसार शैशुनाग वंशनो पांचमो राजा हतो अने तेणे २८ वर्ष राज्य कर्युं हतुं. परंतु दीपवंश ३, ५६-६१, अने महावंश २, २५ मां एम जणावेलुं छे के ते बुद्ध पछी पांचमे वर्षे जन्म्यो हतो, पंदर वर्षनी उम्मरे राज्यासन पर आव्यो हतो अने ५२ वर्ष सुधी तेणे राज्य कर्युं हतुं. जो के आ हेवालमां कांई तथ्यांश नथी. कारण के बिंबिसार बुद्ध अने महावीर बन्नेनी पहेलां गुजरी गयो हतो. बिंबिसार पछी अजातशत्रु (उर्फे कूणिक) गादीए आव्यो अने तेणे पुराण अनुसार २५ वर्ष, अने सिलोनना इतिहास प्रमाणे ३२ वर्ष राज्य कर्युं. तेने गादी उपर आव्याने आठ वर्ष थयां त्यारे बुद्धनुं अवसान थयुं. पण आ पछी पौराणिक अने बौद्ध हेवालो नामोमां मळता आवता नथी. कारण के पुराण जणावे छे के अजातशत्रुनी पछी हर्यक अथवा दर्शक नामनो राजा थयो अने तेणे २५ वर्ष राज्य कर्युं. त्यारपछी उदय राजा बन्यो जेणे ३३ वर्ष राज्य कर्युं. बौद्धो एम कहे छे के अजातशत्रु पछी उदायिभद्द (दीघनिकाय) अथवा उदय भद्दक[62] (दीपवंश, महावंश) राजा बन्यो अने तेणे १६ वर्ष राज्य कर्युं. जैनो आने उपायिन् कहे छे अने तेना शासननो समय लांबो बतावे छे. 63

हवे आ हकीकत ने शरुआततुं केन्द्र मानीने विविध कालगणना विषयक लेखोनो एक पछी एक लई विचार करवो जोईए. अने तेथी हुं पहेल वहेलो वायुपुराणमांथ मळी आवती ब्राह्मणपरंपराथी शरुआत करीश.

आ ग्रंथनी अनुसार, दर्शक (अथवा हर्यक) 64 ना २५ वर्ष पर्यंत राज्य करी रह्या पछी उदय (अथवा उदयाश्व) राजा बन्यो अने तेणे ३३ वर्ष राज्य कर्युं. आना पछी अनुक्रमे नन्दिवर्धन अने महानन्दिन् आव्या जेओ बंनेए ८५ वर्ष राज्य कर्युं. महानन्दिन् शैशुनाग वंशनो छेल्लो राजा हतो अने तेनी पछी नव नन्दो, महापद्म इत्यादि राजाओए बे पेढी सुधी कुल १०० वर्ष राज्य कर्युं. छेल्ला नंदनी पछी मौर्य राजाओ गादीए आव्या तेमांना चन्द्रगुप्ते २५ वर्ष, बिन्दुसारे २५ वर्ष अने अशोके ३६ वर्ष राज्य कर्युं. जो हवे आपणे अजातशत्रुथी मांडीने अशोकना अभिषेक सुधीनां बधा राजाओनो सरवाळो करीए तो ते सरवाळो ३१७ वर्षनो थाय छे. अने जो आपणे सिद्धरूपे मानी लईए के अजातशत्रुना अभिषेक पछी ८ वर्ष बुद्ध निर्वाण पाम्या तो अशोकनो समय बुद्धनिर्वाण पछी ३०२ मां आवे, ए अशक्य छे. कारण के सिलोननो सन्-जेना आधारे बुद्ध इ. स. पूर्वे ५४४ वर्षे निर्वाण पाम्या हता तेनी-अनुसार उपरोक्त समय इ. स. पूर्वे २३४ वर्षे आवे छे अने आपने जाणीए छीए के इ. स. पूर्वे २६० अने २५८ वच्चेना वर्षथी १२ वर्ष पहेलां अशोकने राज्यभिषेक थयो हतो. इ. स. पूर्वे

61. उत्तरीय बौद्धोना कथनने हुं बीलकुल महत्त्वनुं मानतो नथी, ते एम कहे छे के अशोक बुद्धनिर्वाण पछी १०० वर्षे जन्म्यो हतो.

62. आ कदाच तेनुं खरुं नाम हशे कारण के बौद्धोनी तेम जैनोनी जूनामां जूनी परंपरा आ नाम जणावे छे.

63. आ विषय हुं आगळ उपर चर्चीश.

64. विष्णुपुराणमां तेनुं नाम दर्भक आपेलुं छे. सरखावो, मूल्लर, Ancient Skt. Lit P. 296

४७७ ने निर्वाणना वर्ष तरीके स्वीकारीए तो तेनी अनुसार अशोकनो अभिषेक इ. स. पूर्वे १६८ वर्षे आवी पडे परंतु आ परिणाम तो विशेष असंगत बने छे.

आ हिसाबे जोतां पुराणोमां भूल थई होय तेम जणाय छे अने ते सहेलाईथी शोधी शकाय तेवी छे. पिता अने नव पुत्रो मळी नन्दोनी बे पेढीओ हती एम ब्राह्मणोना, जैनोना अने केटलेक अंशे बौद्धोना ग्रंथोमां पण वर्णन जोवमां आवे छे. वळी हेमचन्द्र अने अन्य जैन ग्रंथकारो तो स्पष्ट रीते ज कहे छे के उदय अथवा उदायि ते शैशुनाग वंशनो छेल्लो राजा हतो. आ उपरथी स्पष्ट थाय छे के महानन्दिन् अने नन्दिवर्धन जेवां नामोनुं शैशुनाग नामो साथे कांई सादृश्य नथी.परंतु ते नंद अने महानंदिन् महापद्मनन्दनुं 65 जाणे टुंकुं रूप होय एम शंका उत्पन्न करे छे.आ उपरथी तेमज वर्षोनी अतिशयोक्ति भरेली संख्या उपरथी हुं एवी कल्पना करुं छुं के पुराणोमां बे वखत नन्दोनी गणती थई छे. अने आम थवुं ते, नंदोना इतिहासना संबंधमां ते ग्रंथोमां थएलो मोटो गोटाळो जोतां, तद्दन शक्य लागे छे. वळी पिता अने पुत्रोना राज्यनां मळी जे एकंदर १०० वर्षो आपवामां आव्यां छे ते घणां शंकास्पद लागे छे;कारण के आजे प्रत्येकने बराबर १० वर्ष फाळे आवे छे, आ दाखलाओ उपरथी हुं अनुमान करुं छुं के महानन्दिन् अने नन्दिवर्धन आ बे पुरुषो असलमां नन्दो के जेमणे कुल मळीने ८५ वर्ष राज्य कर्युं हतुं तेमनी बे पेढीओना प्रतिनिधिओ हता. 66 अने नन्दोनां जे सो वर्ष बतावबामां आव्यां छे ते पाछळथी साची हकीकतोनां विस्मरण अने गेरसमजुतिने लईने, उमेरो थएलो छे. तेथी करीने जो आपणे नंदोनां १०० वर्ष उडावी दईए तो बुद्धनिर्वाण अने अशोकना अभिषेक वच्चेनो काल ३०९ वर्षोने बदले २०९ वर्षोनो थाय. अने पछी निर्णीत कालगणनानुसार तेनो समय इ. स. पूर्वे २६८ मां पडे. परंतु बौद्धो जेमने अशोक परत्वेनी उमत्त माहिती छे तेओ कहे छे के तेणे पोताना अभिषेक पहेलां चार वर्ष अने अभिषेक पछी ३७ वर्ष राज्य कर्युं हतुं, जे हकीकत पुराणमां जणावेली ३६ नी संख्याने साधारण निकट थाय छे. जो आम होय तो आपणे ३६ मां ५ उमेरवां जोईए अने तेम कर्याथी तेना राज्याधिरोहणनो काल इ. स. पूर्वे २७३ मां वर्षमां आवशे. आ मिति शिलालेखो उपरथी तारवी काढेली मिति अर्थात् इ. स. पूर्वे २७६–२७४ साथे लगभग मळती आवे छे.

आटलुं विवेचन ब्राह्मणग्रंथना संबंधमां कर्युं. जैन हेवाल के जे उपर टांकेली स्मारक गाथाओमां मळी आवे छे ते हेमचन्द्रना परिशिष्ट पर्वमां अंतर्गत थएली परंपरारूप ज छे. पण आनो विचार अंतमां ज करवो घटे छे. तेथी करीने हालमां बौद्धोनी हकीकतो, के जे सिलोनना

65. खारवेलना शिलालेखमां तेम ज कौटिलीयना पृ. ४२९ उपर नन्दराजनो बे वखत निर्देश थएलो छे. नन्द्रुस खुल्ली रीते Justin XV, 4, 1 मांना अलेक्झेन्ड्रुस माटे सुधारणा छे. (जुओ Gutschmid). Diodoras XVII 93 अने Curtins IX, 2 मां चन्द्रगुप्तनी पहेलांना मगधना छेल्ला राजाना नाम बतावेला Xandramas अथवा Aprammes नुं संस्कृत रूप शुं थाय ते हुं बीलकुल समजी शकतो नथी. Xandramas मां संस्कृत शब्द चन्द्र अथवा तो चण्डनो भास थाय छे खरो, पण नंदोमां आवुं नाम नहि मळी शकतुं होवाथी आ उपरथी कांई अनुमान काढी शकाय नहि.

66. बे पेढीओए मळीने कुल ८५ वर्ष राज्य कर्युं होय ते बाबत जो के थोडीक अविश्वसनीय लागे खरी परंतु मि. विन्सेन्ट स्मीथे पोतानी Early History of India मां, अंग्रेजी इतिहासमांथी लांबा राज्यकाल दाखवतां जे उदाहरणो आप्यां छे ते जोतां आ वात पण अशक्य होय एम लागती नथी. वाचक नीचेनी हकीकत उपर ध्यान आपशे के आठमो हेनरी अने तेनां पुत्रोए मळीने ९४ वर्ष (१५०९–१६०३) राज्य कर्युं हतुं अने ते हेनरी इलिझाबेथना मरण पूर्वे ११२ वर्षे जन्म्यो हतो.

इतिहासमां मळी आवे छे ते उपर चर्चा करीश. शरूआतमां महावंश ग्रंथ लईशुं. कारण के एमां आपेली हकीकतो तद्दन स्पष्ट छे, ज्यारे दीपवंशमां आपेली वधी हकीकतो घणी गोटाळा भरेली छे. 67

महावंश २, २५; अने ४, १; ५, १४ मां जणावेलुं छे के बिंबिसारे ५२ वर्ष राज्य कर्युं हतुं अने तेनी पछी तेनी हत्या करनार तेनो पुत्र अजातशत्रु आव्यो. तेणे बुद्ध निर्वाण पहेलां आठ वर्ष अने त्यारपछी २४ वर्ष एम कुल ३२ वर्ष राज्य कर्युं हतुं. अजातशत्रु पछी आवेला राजाओ बुद्धधर्मना सारा आश्रयदाता थया होय तेम लागतुं नथी, कारण के महावंश ४, १ मां पछीना राजाओने 'पितुघातवंश' एटले पितानी हत्या करनाराओनो वंश, एवुं नाम आपेलुं छे. अने वधारेमां जणाव्युं छे के ते वंशना सघळा राजाओ अनुक्रमे पोताना पिताने अगर पूर्वजने मारीने ज पोते गादी उपर आव्या हता. आ राजाओ ते अनुक्रमे--उदयभद्रक जेणे १६ वर्ष 68 राज्य कर्युं. अनुरुद्धक अने मुण्ड बन्ने मळीने ८ वर्ष राज्य कर्युं अने छेल्लो नागदासक जेणे २४ वर्ष राज्य कर्युं हतुं. आ राक्षसो--जेमांना छेल्लाने आवेशमां आवी गएला लोकोए ठारमारी नाख्यो हतो तेमनी-पछी एक धर्मात्मा मंत्री सुसुनाग १८ वर्ष राज्य कर्युं अने तेनी पछी तेनो पुत्र कालासोक राजा थयो अने तेणे २८ वर्ष राज्य कर्युं. तेना शासनना ११ मां वर्षमां (*अतीते दसमे वस्से*, ४, ८) वेसालीमां बीजी सभा मळी जेनी मिति बुद्धनिर्वाण पछी १०० वर्ष आपेली छे. कालासोकनी पछी तेना दश पुत्रो गादिए आव्या अने तेमणे २२वर्ष राज्य कर्युं. तेओनी पछी नव नंदो थया जेओए बीजां २२ वर्ष राज्य कर्युं. 69 छेल्ला नंदने चाणक्ये गादी उपरथी उठावी दीधा पछी चंद्रगुप्त राजा थयो जेणे २८ वर्ष राज्य कर्युं. तेना पुत्र बिन्दुसारे ५८ वर्ष राज्य कर्युं अने तेनी पछी अशोक गादीए बेठो. ते पोताना ९९ भाईओने मारी नाखीने निर्वाण बाद २१८ वर्षे राज्याभिषिक्त थयो. आ सघळी तारीखो एक बीजा साथे साधारण रीते ठीक बेसती आवे छे परंतु उपरोक्त समन्तपासादिकामांनी 'भूल' निःशंकपणे बतावे छे के आ परंपरा सघळी बाबतोमां विश्वास राखवा लायक नथी. अने तेथी आपणे बुद्धनिर्वाण पछी २१८ वर्षे अशोकनो अभिषेक थयो हतो ए जणावती नोंधने बहु महत्त्व

67. बुद्ध पछी सो वर्षे अशोक राजा थयो हतो ए प्रकारनुं दिव्यावदाननुं कथन हुं अहिं विचारमां लई शकतो नथी. (pp.368, 379 etc) अने ए ग्रंथना, पृ. ३६९, ४३० उपर एक तद्दन अविश्वसनीय एवी राजाओनी यादी आपेली छे; जे यादी कोई पण अन्य नोंध साथे मळती आवती नथी बल्के अन्य सर्व नोंधथी विरुद्ध पडे छे. आ यादीमां नीचे प्रमाणे मगधराजाओनी यादी आपेली छे. बिंबिसार, अजातशत्रु, उदायिन् (उदयिभद्र), मुण्ड काकवर्णिन्, सहालि, तुलकुचि, महामण्डल, प्रसेनजित्, नन्द, बिन्दुसार, अशोक, सम्प्रति (अशोकनो पौत्र अने कुणालनो पुत्र), बृहस्पति, वृहसेन (?) पुष्यधर्मन् अने पुष्यरथ. आ स्थळे एटलुं सूचववा मांगुं छुं के *आ यादीमां चन्द्रगुप्त ने सर्वथा छोडी देवामां आव्यो छे अने ए ज एक बाबत उपरथी तेनी किंमत आंकी शकाशे.*

68. बुद्धघोषनी समन्तपासादिकाना ३२१३ पृ. मां, आ राजाओमांना प्रत्येकना ८ वर्षोने बदले १८ वर्ष बतावेलां छे. आ परंपरा घणी अजायबी भरेली लागे छे, अने ते बुद्ध अने अशोकनी बच्चेनी कुल वर्ष संख्या साथे मोटो विरोध दर्शावे छे. आ उपरथी एटलुं ज अनुमान काढी शकाय छे के सीलोननी परंपरा गंभीर रीते अचोक्स छे.

69. *मारा जाणवा प्रमाणे, आ पहेलां, ए कोईनी जाणमां नथी आव्युं के जैनपरंपरामां पण कालासोक अने तेना* उत्तराधिकारीओनुं झांखुं स्मरण बच्युं छे. उपांग ८ अने ९ मां(निरयावली) कालराज अने तेना नव भाईओ, जेओने परंपरागत कथन अजातशत्रुना ओरमान भाईओ होवानुं बतावे छे, तेओ संबंधी उल्लेख मळी आवे छे. अने आगळ उपर तेना दश पुत्रो जेमांना बे नामे महापद्म अने नन्दन हतां तेमनो पण उल्लेख थएलो छे. आ उपरथी नंदोना बीज पण सगाओना संबंधमां तद्दन अस्तव्यस्त रूपमां केटलुंक मळतापणुं जोवाय छे.

आपवुं जोईए नहि. तेम छतां, उपरोक्त मितिओमां एक एवी मिति छे जेने बौद्धो साधारण रीते बराबर जाणता होवा जोईए; अने ते अन्य कोई नहि पण ते बीजी सभानी तारीख छे. आ सभा बुद्ध पछी १०० वर्षे मळी तेम चु० व० १२, ११ मां जणावेलुं छे. ते तारीख साची हो या न हो, अथवा सभा पण मळी हो या न हो तेनी साथे आपणने आ स्थळे काम नथी 70 आपणो मुख्य मुद्दो जे छे, ते ए छे के आ वर्ष सिलोननी कालगणनामां एक महत्त्वनुं प्रारंभ-केन्द्र हतुं अने मारी दृढ मान्यता छे के सिलोनना भिक्षुओ, प्राचीन परंपराओ द्वारा जाणता हता के आ सैकुं कालासोकना शासनना बराबर १० मां वर्ष पछी आवतुं हतुं. आ विषयमां एक वार फरीथी हुं मात्र बुद्धघोषनी, एक जरा विषयान्तर बतावनी, हकीकत उपर भार मूकवा मागुं छुं; कारण के तेने लईने कदाच आपणने कोई रीते कालासोकना पहेलांना राजाओनी यादीमां कांई फेरफार करवो पडे. परंतु तेना समय पुर्वेनी बीनाओ, महान् अशोकनी मितिने असर करती नथी; कारण के ते वखते तेना अभिषेकना संबंधमां एवी चोक्कस परंपरा प्रचलित हती के तेनो अभिषेक बीजा संघमिलन पछी ११८ वर्ष बाद अने बुद्ध पछी २१८ वर्षे थयो हतो, हवे निर्णीत कालगणनाना आधारे गणत्री करतां अभिषेकनी आ मिति इ. स. पूर्वे २६०-५९ मां आवे खरी, पण शिलालेखो साथे तेनो मेळ मेळवी शकाय तेम नथी.

ए तो निःसंदेह छे के अशोकनी समय-गणना, सघळा तारीखवाळा शिलालेखोमां स्पष्ट जोवामां आवे छे ते प्रमाणे, अभिषेकना वर्षथी थाय छे. 71 परंतु आपणे उपर गणत्री करी छे के तेनो अभिषेक इ. स. पूर्वे २७२-२७० नी वच्चे थयो हशे. आ उपरथी बुद्धनिर्वाण स्पष्ट रीते इ. स. पूर्वे ४९०-४८८ नी वचमां आवे छे, जे साल जनरल कनिंग्हाम अने प्रो. मेक्समूलरनी गणत्री साथे एक थती नथी. पण अहीं एक बीजी बाबत पण विचारणीय छे.

बौद्ध अहेवालो अनुसार, अशोक तेना राज्यकाळना प्रथम भागमां अथवा शरुआतमां नास्तिक हतो अने अभिषेक बाद त्रण वर्षे ते बौद्धधर्ममां दाखल थयो 72 हतो. आ बाबत घणी महत्त्वनी छे कारण के प्रायः करीने अशोकना पोताना कथनो साथे ए संमत थाय छे. खडक उपरनी आज्ञा नं. १३ नी सुप्रसिद्ध उपोद्घातमां जणाव्युं छे के

अ[स्तव]स अभिसित [स दे] वन प्रिअस प्रिअद्रशिस रञो क [लिग विजित] 73

आथी कलिंगनी जीत इ. स. पूर्वे २६४-२६२ वर्षोनी वचमां थई हशे अने आ पछी तरतज राजाए थएला नरसंहार अने रक्तपातनो पश्चात्ताप करवा मांड्यो अने केटलाक प्रमाणमां ते नवीन धर्ममार्गी बन्यो. आगळ उपर ते सहसाराम वगेरे आज्ञामां जणावे छे के हुं अढी वर्ष करतां वधारे वखत सुधी मन्दोत्साही (उपासक) हतो. परंतु त्यार बाद एक वर्षथी दृढ उत्साही थई संघनो सभ्य बन्यो छुं.

अधिकान् (ि) अढातियानि वसानि य हकं (उपासके) नो तु खो बाढं पकंते हुसं एकं स (म)वछरं सातिरेके तु खो स (म्) वछर् [अ] म् यं मये संघे उपयीते बाढं च मे पकंते.

70. आ मत साचो नथी. कारण के आ संबंधमां बौद्धपरंपराने मुख्य पणे निर्मूल ठरावनाना हेतुथी R. O. Franko ए बतावेली सघळी दलीलोथी पण हजी मने खात्री थई नथी.

71. खडक उपर कोतरेली आज्ञा नं. १३ मां ८ मा वर्ष (कलिंगनी जीत) थी ते २६ मा वर्ष (स्तंभ-आज्ञा. ,१ ४ अने ५.) अने २७ मा वर्ष (स्तंभ—आज्ञा ७) सुधीनी तारीखो.

72. दीपवंश. ६, १८; वळी प्रक्षिप्त गाथा ६, २४ मां अभिषेक बाद त्रण वर्षे धर्मपरिवर्तन जणावेलुं छे.

73. शाहबाझगढी. एपि. इन्डि. २, ४६२.

आनो तात्पर्य ए छे के, अशोक बुद्धधर्मनो साचो अने विश्वासु अनुयायी बन्यो ते वखते तेना अभिषेकने, साडा दश करतां वधारे, आशरे अगीआर वर्ष; थयां; अने ते प्रमाणे गादी उपर आव्याने लगभग पंदर वर्ष थयां हतां. खडक आज्ञा नं. ८ मां तेणे जणाव्युं छे के ते पोताना अगीआरमा वर्षमां 'संबोधि प्राप्त करवा नीकळ्यो' हतो (अयाय संबोधिं); आ हकीकत सहसाराम आज्ञामां 74 लखेली बाबत साथे ठीक मळती आवे छे. हवे आपणे दीपवंशमां कह्या प्रमाणे अभिषेक पछीना त्रण वर्षोने, जो, सहसाराम आज्ञामां जणावेलां 'अढी वर्षोथी अधिक' काळ साथे सरखावीशुं तो आपणे कबुल करवुं पडशे के ते बन्नेनी वच्चे असरकारक साम्य दृष्टिए पडे छे, अने ते उपरथी एवुं अनुमान थाय छे के वस्तुतः ते बन्ने उल्लेखो एकज बीनाने उद्देशीने करवामां आवेला छे. 75 आ उपरथी बीजुं पण एक अनुमान नीकळे छे के सिलोनना आ हेवालो—अथवा तेमनी मूळभूत प्राचीन अट्ठकथा—नी, अशोकना अभिषेक अने निर्वाण वच्चेना अंतरालने २१८ वर्षनुं बतावबामां गेरसमजुति थएली छे. आ २१८ वर्षो मूळमां अभिषेकने उद्देशीने नहि हतां परंतु कलिंगनी विजयसमाप्ति अगर प्रथम धर्मप्रवर्तन, अथवा आ बन्ने बीनाओनी साथे संबंध धरावतां हतां. एटलुं तो आपणे कबुल करवुं जोईए के बौद्धोना माटे अशोकना अभिषेक करतां तेनुं बुद्धधर्ममां प्रवर्तन अति महत्त्वनुं हतुं. अने आटला माटे अशोकना आ बनावने एक केन्द्र मानी बौद्धोए त्यांथी तेना संबंधनी तेमनी कालगणनात्मक तेमज ऐतिहासिक नोंधोनी शरुआत करी होय. कलिंगनी जीत कालगणनात्मक गणत्रीओमां घणुं करीने वधारे अगत्यनी न होती, परंतु तेनुं महत्त्व तेना धर्मप्रवर्तनने अंगे ज छे. कारण के मारा पोताना अभिप्राय प्रमाणे, कलिंगनी अंदर, अगर कोई अन्य स्थळमां, अशोकना राज्य साथे कलिंगना मिश्रण थया उपर कोईपण संवत्नी स्थापना थई होय एवो एक पण पुरावो नथी. 76

त्यारे सिलोनना अहेवालोमां जणावेलां २१८ वर्षो असलमां अशोकना अभिषेकनी साथे

74. अहींआं में डॉ. एफ्. डब्ल्यु. थोमसनी J. A. 1910, p. 507 मां आपेली स्पष्ट अने *विश्वासजनक* हकीकतोनो संपूर्ण उपयोग करेलो छे.

75. बौद्धशास्त्रो अने आज्ञाओना परस्पर सरखापणाना टेकामां घणां प्रमाणो छे, जेनो कोई पण निषेध करी शके तेम नथी. उदाहरण तरीके, *दिव्यावदानमां*, धार्मिक आज्ञाओना आस्तित्वना संबंधमां उल्लेख थएलो छे, अने ते स्थळे तेमनी संख्या ८४००० नी बतावबामां आवी छे. आ संख्या हास्यजनक—कल्पनामय-लागे छे; परंतु तेमां आ आज्ञाओना संबंधमां (पृ० ४१९, ४२९ इत्यादि) पञ्चवार्षिक नामनी संस्थानो निर्देश करे छे. आ संस्था ते धर्मयात्रा ज होवी जोईए, जे प्रस्तर-आज्ञा (Rock-Ed.) ३ अने ४ मां बताव्या प्रमाणे पांच पांच वर्षे थती हती. वळी दिव्यावदान पृ० ४०७ मां जणावेलुं छे के कुणालने तेना पिताए तक्षशिलाना सुबा तरीके मोकल्यो हतो (हेम. परिशिष्ट, ९, १४ मां जणावेलुं छे क तेने उज्जयिनी मोकलवामां आव्यो हतो.) आ उपरथी धौली अने जौगडनी आज्ञा १ ली मां आवता ' उजेनि (ते) कुमाले ' अने ' तखसिलाते (कुमाले) ' शब्दोनुं स्मरण थई आवे छे. दिव्यावदान पृ० ३९० अने रुम्मिन्देई शिलालेखनी वच्चे जे मेळ Barth, Journal des Savants, 1897, p. 73 अने बुल्हर, Ep. Ind. V; p. 5 बतावे छे, तेनो पिशल S. B. Pr. A. W. 1903, p. 731 अस्वीकार करे छे; अने ते वास्तविक रीते लागे छे पण अनोखस. परंतु, दिव्यावदानमां अशोकनी तीर्थयात्रा संबंधी जे उल्लेख मळे छे ते वास्तविक छे.

76. डॉ. फ्लीट J. R. A. S. 1910, p p 242 ff, 824 ff, जे कहे छे के खारवेलना शिलालेख उपरथी मौर्यवंशना आस्तित्वना संबंधमां कोई पण तर्क बांधवानो आपणने हक मळतो नथी, तेने हु समत छुं. जो के ते लेखनी १७ मी लीटीना तेणे करेला अर्थने हुं सर्वथा अस्वीकारणीय मानुं छुं. डॉ. फ्लीटनुं भाषांतर आ प्रमाणे

संबंध धरावतां नहि परंतु धर्मपरिवर्तनने उद्देशीने लखेलां होय, तो आ बनाव, बुद्धनिर्वाणनी मिति इ. स. पूर्वे ४७७ नी स्वीकारतां इ. स. पूर्वे २५९ मां थयो होय, अने छेवटनुं धर्मपरिवर्तन आशरे त्रण वर्षो पछी एटले इ. स. पूर्वे २५६ थयुं हशे. परंतु आ मितिमां केटलांक वर्षो वधारे गणाएलां लागे छे; कारण के कलिंगनी जीत मोडामां मोडी इ.स. पूर्वे २६२ मां परिसमाप्त थई होवी जोईए. तेम छतां आपणे नीचेनी बे बावतो ध्यानमां राखवी जोईए, कारण के ते द्वारा घणुं करीने बधी मितिओ संपूर्ण रीते संगत थाय तेम छे. (१)उपर जणाव्या प्रमाणे बुद्धघोष अने अहेवालो बच्चेनो विरोध केटलोक अगत्यनो छे; अने (२) महावंशमां ज्यारे बिंदुसारे २८ वर्ष राज्य कर्यानुं जणावेलुं छे त्यारे ब्राह्मणग्रंथो के जे ए बावतमां वधारे सत्य होई शके तेमां २५ वर्ष अर्थात् त्रण वर्ष ओछां दर्शावेलां छे. आ सूक्ष्म भेदोने भेगा करवाथी एवुं अनुमान नीकळे छे के, उपरोक्त २१८ वस्तुतः अतिशयोक्ति भरेलां छे, अने तेथी इ. स. पूर्वे ४७७ वर्षे नक्की करेली बुद्धनिर्वाणनी मितिमां आ अतिशयोक्ति कांई वांधो करती होय तेम मने लागतुं नथी, एटलुं ज नहि पण तेने वधारे दृढ करे छे.

महावंशनां केटलांक कथनो जो के अविश्वसनीय छे खरा, छतां पण दीपवंशमां आपेलां, राजाओ तथा तेमना राज्यो संबंधी वर्णनो, एवां गोटाळा भरेलां जोवामां आवे छे के तेने मुकाबले महावंशनां वर्णनो घणांज स्पष्ट लागे छे. आ गुंचवाडावाळां वर्णनोमां पण हुं कांईक जे मार्ग शोधी शक्यो छुं तेमां मने मगधना राजाओनां संबंधमां बे मुख्य परंपराओ जणाई आवे छे. आमांनी पहेली तो घणी ज गुंचवणी भरेली छे अने बीजी सिलोनना राजाओनी कारकीर्दीनी गणत्रीओ साथे विचित्र रीते भेळसेळ थएली छे. शरूआतमां कहेवुं जोईए के दीपवंशमां अने महावंशमां जे बे मुख्य बावतो स्पष्ट जोवामां आवे छे तेमांनी एक तो द्वितीय संघसम्मेलन संबंधे छे के जे सम्मेलन बुद्ध पछी १०० वर्षे थयुं हतुं. आ वखते शिशुनागना[77] पुत्र अशोकना राज्यनां १५ वर्ष अने १० दिवसो व्यतीत थया हता. अने बीजी बावत ए छे के, अशोक बुद्ध पछी २१८ वर्षे अभिषिक्त थयो हतो.[78] बीजी जे हकीकतो दीपवंशमां ३,५६ थी मांडीने ६, १, ज्यां अशोकना अमलनी शरुआत थाय छे त्यां, सुधीमां जणावेली छे, ते ए छे के, बिंबिसारे ५२ वर्ष राज्य कर्युं हतुं. अजातशत्रुए ८ वर्ष बुद्धना जीवतां अने २४ वर्ष निर्वाण

छः—' सात अंगोना संग्रहना ६४ मा अध्ययनने (अथवा अन्य विभागने ते उत्पन्न करे छे, बहार आववा प्रेरणा करे छे(अर्थात् ताजुं करे छे.) आनो अर्थ शुं? मारा जाणवा प्रमाणे, पहेलां सात अंगो कदापि एक भाव धारण करतां होय तेम शास्त्रमां मानवामां आव्युं नथी. अने तेम बराबर रीते करी शके पण नहि. कारण के उवासगदसाओ, रचनाशैलीमां छठ्ठा अंगनी अपेक्षाए आठमा अने नवमा अंगनी साथे वधारे समान छे. 'अने आपणे कदाचित मानी लईए के धर्मशास्त्र—आगम—जे रूपमां अत्यारे विद्यमान छे ते ज रूपमां ते वखते हतां—जो के आ वात तद्दन अविश्वसपात्र छे—तो ६४ मुं अध्ययन ते भगवतीना ५ मां ' सय ' साथे बंध बेसे जेने सारवेले फरीथी ताजो कर्यो होय. परंतु आम मानवुं ते मूर्खता भरेलुं छे. वळी ९–११ अंगोमां कुल ७५ अध्ययनो नथी परंतु ३३+१०+२० एटले ६३ ज छे. परंतु आ विषय हुं अन्य स्थळे चर्चीश. चंद्रगुप्ते कोई पण मौर्ययुग स्थाप्यो न होतो ते वात तो खुल्ली छे कारण के अशोक तेनो उपयोग करतो नथी. अने ए उपरांत प्लाइनी (Pliuy) ६,:१७ (२१) मां जे मेगेस्थिनीशनुं कथन आपेलुं छे के ' बेकसपिता (Father Bacchus) थी मांडीने ते अलेक्झान्डर सुधी एटले ६४ ५१ वर्षोमां हिंदुओ १५३ राजाओनी गणत्री करे छे, ते मने तो कालियुग अगर अन्य कोई लौकिक युगनी गणतरीनी कढंगी नोंध होय तेम लागे छे; सरखावो, वळी Arrian, Ind. ch. 8

77. दीपवंश. ४, ४४; ५, २५. 78. दीपवंश. ६, १.

बाद एटले कुल ३२ वर्ष अने उदय-(भद्द) १६ वर्ष. 79 परंतु महावंशमां जे जणावेलुं छे के अनुरुद्धके अने मुंडे ८ वर्ष राज्य कर्युं हतुं, ते बाबत दीपवंशमां तद्दन छोडी ज दीधी छे अने ५, ७८ थी तो चोक्कस अनुमान थाय छे के उदयनो उत्तराधिकारी नागदास हतो. नागदासे ओछामां ओछां २१ वर्ष 80 राज्य कर्युं हतुं. ते ११, ३० उपरथी मालुम पडे छे. शिशुनागे १० वर्ष 81 राज्य कर्युं अने तेनी पछी कालासोक गादी उपर आव्यो. परंतु तेनी कारकीर्दी केटलो काळ रही ते संबंधी दीपवंशमां कांई कथन होय तेम मारा जाणवामां नथी. दीपवंश ५, ९९ मी गाथा, जे नीचे आपी छे तेमां कालासोकने जरुर तेना पिता सुसुनाग साथे मेळसेळ करी दीधो हशे कारण के तेमां कह्युं छे केः—

सुसुनागस्सच्चयेन होन्ति ते दस भातरो ।
सब्बे बावीसति वस्सं रज्जं कारेसु वंसतो ॥

आमां कालसोकना दश पुत्रोनो स्पष्ट निर्देश थयलो छे, जेमणे महावंशमां जणाव्या प्रमाणे ६२ वर्ष राज्य कर्युं हतुं. नंदोनो तो पतो ज नथी. चंन्द्रगुप्ते २४ वर्ष राज्य कर्यानुं जणावेलुं छे. बिंदुसारनो मात्र ५, १०१; ६, १५ मां अशोकना पिता तरीके निर्देश थयलो छे, परंतु तेना अमलनो काळ आप्यो नथी. 82

अशोके ३७ वर्ष राज्य कर्युं हतुं (५, १०१) बुद्ध पछी २१८ वर्षे तेनो अभिषेक थयो हतो, अने अभिषेक थया बाद त्रण वर्षे तेणे धर्मपरिवर्तन कर्युं हतुं. विगेरे विगेरे. आ बधी हकीकतो सुप्रसिद्ध छे. परंतु बीजी बाजुए, नीचे आपेली प्रकट कृत्रिम गाथा ६, २४:-

परिपुण्णवीसवस्साम्हि पियदस्साभिसिञ्चयुं ।
पासण्डं परिगण्हन्तो तीणि वस्समतिकामि ॥

के जेनी अंदर २० वर्षो कोई अज्ञात बीनानी साथे लगाड्यां छे. उपरांत अशोकना समयना संबंधमां एक गोटाळा भरेली बीजी हकीकत आपेली छेः ६, १०२ मां जणावेलुं छे के अशोकना २६ मा वर्षमां तिस्स गुजरी गयो; परंतु ७, ३२ मां ते आठमा वर्षमां गुजरी गयो हतो तेम जणावेलुं छे आ परस्पर विरोधी कथनो केवी रीते उत्पन्न थयां हशे ते हुं समजी शकतो नथी.

११, १, थी आपणने सिलोनना राजाओ संबंधी हकीकत मळे छे के, जेमांना प्राचीन राजाओए तो घणा लांबा समय सुधी राज्य भोगव्युं हतुं, अने पछीना राजाओए घणांज थोडां वर्षो तेम करी शक्या. ५, ११, ८ मां जणावेलुं छे के विजयराजा अजातशत्रु 83 पछी ८ मे वर्षे गादी उपर आव्यो अने ३८ वर्ष राज्य करी उदयना १४ मा वर्षमां गुजरी गयो. त्यार-

79. दीप० ४, ३८; ५, ९७.

80. नागदास जो खरेखर उदयनो उत्तराधिकारी होय तो तेणे ४० वर्ष राज्य जरूर कर्युं होय; कारण के कालासोकले निर्वाण पछीना १०० मा वर्षमां, राज्य करतां १० वर्ष अने १५ दिवस थयां हतां.

81. दीप० ५, ९७,

82. परंतु आनी गणतरी ११, १२-१३ (जुओ, हेठळ), थी करी शकाय, अने ते प्रमाणे तेना राज्यसमयनी वर्षसंख्या २९ मेळवी शकाए.

83. दी० ९, ४० प्रमाणे बुद्धना अंतिम वर्षमां ते सिलोन आव्यो; महावंश ७, १ प्रमाणे जे रात्रिए बुद्धनिर्वाण थयुं ते ज रात्रिए.

पछी लगभग एक वर्ष जेटलो निर्नायकी–अराजक–काल गया पछी एटले उदयना १६ मा वर्षे पण्डुवासनो राज्याभिषेक थयो अने ते ३० वर्ष राज्य करी नागदासना एकवीसमा वर्षमां अवसान पाम्यो. तेना पछी अभय राजा थयो अने तेणे २० वर्ष राज्य कर्युं अने त्यारपछी फरीथी १७ वर्ष अराजक पणुं रह्युं. ते अंधाधुंधी दरम्यान पकुण्डक या पण्डुकाभय जे लुंटारा तरीके जीवन गुजारतो हतो (चोरो आसि, ११, २) ते पोताना नव मामाओने मारीने (११,३) अनुराधपुरमां अभिषिक्त थयो अने ७० वर्ष राज्य करी चन्द्रगुप्तना १४मा वर्षमां मरण पाम्यो. ते पोतानो राजमुकुट पोताना पुत्र मुटसीवने सोंपतो गयो हतो. आ मुटसीव ६० वर्ष राज्य करी अशोकना [84] अभिषेक पछी १७ वर्ष इ. स. पूर्वे २५७ मां देहांत पाम्यो. आ सघळी हकीकतो उपरथी चन्द्रगुप्तनो समय इ. स. पूर्वे ३१५–३१४ मां आवे छे अने अशोकनो राज्याभिषेक इ. स.पूर्वे २५७ मां पडे छे. परंतु आ बन्ने मितिओ वधारे अर्वाचीन थाय छे. हवे विचार करीए के पकुण्डक जे पोताना अभिषेकना समये ३७ वर्षनो हतो तेणे ७० वर्ष राज्य कर्युं होय अने तेना पछी तेना पुत्रे ६० वर्ष राज्य कर्युं होय ते अशक्य जेवुं ज लागे छे. [85] परंतु आमां कये स्थळे भूल रहेली छे तेनो मात्र निर्णय करवो कठीण छे. छतां गणतरीनी चूक पण बहु मोटी नहि होवाथी, सिलोनना ऐतिहासिक ग्रंथो, व्यवस्थित करेली इ. स. पूर्वेनी ४७७ नी तारीखने कायम राखवामां प्रतिबंध करे तेम लागतुं नथी.

आ टुंकी तपासनुं संक्षेपमां तात्पर्य:–अशोकनो राज्याभिषेक इ.स. पूर्वे २७२ अने २७०नी वचमां थयो हशे अने तेनुं वास्तविक राज्याधिरोहण तेनाथी लगभग चार वर्ष पहेलां एटले इ. स. पूर्वे २७६–२७४ वर्षे थयुं हशे. जो एनाथीए वधारे चोकस तारीख मेळववा माटे उपर आपेलां चीजां वर्षो गणत्रीमां लईए अने अशोक इ. स. पूर्वे २७४ मां राजा थयो हतो एम धारीए तो तेना राज्यकालना ४१ (४+३७) वर्षो गणत्रीमां लेवाथी तेना देहान्तनी तारीख तरीके आपणे इ. स. पूर्वे २३३ मुं वर्ष मेळवी शकीए. बिन्दुसारना संबंधमां ब्राह्मणग्रंथोनुं कथन बौद्धग्रंथोना कथन करतां वधारे साचुं–प्रामाणिक छे तेम मारुं धारवुं छे, अने तेना राज्य. कालनो समय आपणे वधारेमां वधारे २५ वर्षनो ज स्वीकारी शकीए. आ अनुसार तेनो समय इ. स. पूर्वे २९९ अने २७४ वर्षोनी वच्चे निर्णीत थाय; अने मारुं एम पण मानवुं छे के तेनुं राज्य पछी ज शरु थयुं हतुं. चन्द्रगुप्ते इ. स. पूर्वे ३२३ अने २९९ नी वच्चे राज्य कर्युं हशे. अने आम थवुं ज मने तो वधारे संभवित लागे छे. एनुं कारण ए छे के जस्टिन १५, ३ मांथी जो कोईपण अनुमान नीकळी शकतुं होय तो ते एज छे के चन्द्रगुप्त, पाश्चिमात्य प्रान्तो [86] जीत्यानी पहेलां ज केटलाक वर्ष मगधनो राजा थयो हतो. जो के तेणे ते समय पहेलां [87] अलेकझान्डरने खरेखरी रीते जोयो होय तो पण आ अनुमानने बांधो आवतो नथी. मेगेस्थिनीज खात्री-पूर्वक इ. स. पूर्वे ३०३–३०२ मां, पाटलीपुत्रना [88] राजदरबारमां आवेलो हतो तेथी, अने

84. आ कथन उपरथी बिन्दुसारना समयनी गणतरी करी शकाय; तेणे आशरे २५ वर्ष राज्य कर्युं हतुं एम जणाय छे.

85. ए वात तो खरेखर आश्चर्य पमाडे छे के एक करतां वधारे लेखकोनुं केहवुं छे के Taprobane ना निवासीओ घणा लांबा आयुष्यवाळा हता. सरखावो, उदाहरण तरीके प्लाइनी (Pliny) ६, २२ (२४)

86. मि० विन्सेन्ट स्मिथे पोताना प्राचीन इतिहासना पृ० ११५ उपर दर्शावेलो अभिप्राय जो के आथी विरुद्ध छे, छतां हुं तेने स्वीकारी शकतो नथी.

87. प्लुटार्क, Alex. ch. 72 88. Smith, l. c. p. 118.

त्यां केटलांक वर्ष रहेलो होवाथी, चंद्रगुप्तना मरणनी प्राचीनमां प्राचीन मिति, मेगेस्थिनीजे तेना जीवता होवानुं चोकस कथन करेलुं होवाथी, ते मात्र इ. स. पूर्वे २९९ वर्षे ज घटी शके.

त्यारे हवे, इ. स. पूर्वे ४७७ अने ३२३ मा वर्षनी वच्चेनुं १६४ वर्षोनुं अंतर आपणे अजातशत्रु अने तेना वंशना राजाओ, तथा नंदराजाओना राज्यकालथी भरी शकीशुं. अजातशत्रु बुद्ध पछी २४ वर्षे राजा थयो हतो एम कहेवाय छे. अने ते उपरथी तेनी अवसानमिति तरीके लगभग इ. पूर्वे ४५३ [89] आपणे प्रायः नक्की करीए. उदय अथवा उदायि जेने हुं शैशुनाग वंशनो छेल्लो राजा मानुं छुं तेणे पुराणमां आपेली हकीकत अनुसार ३३ वर्ष, अने सिलोनना इतिहास अनुसार मात्र १६ वर्ष राज्य कर्युं हतुं. परंतु आ स्थळे आपणे जैनोनुं पण शुं कथन छे ते ध्यानमां लेवुं जोईए. आ बाबत हुं आगळ उपर चर्चीश, परंतु ते कथन, एकंदर पौराणिक कथनने पुष्टि आपतुं होय तेम लागे छे. दीघनिकाय उपरथी पहेलुं तो स्पष्ट जणाय छे के अजातशत्रुए ज्यारे बुद्धनी मुलाकात लीधी त्यारे उदायि ते अगाउ जन्मेलो हतो. तथा ते वखते ते ऊंमर लायक थयो हतो,एम मनातुं हतुं. आम छतां तेणे ३० वर्ष राज्य कर्युं पण होय. आ गणतरी आपणने स्थूल रूपे इ. स. पूर्वे ४२५ अगर ४२० अर्थात् चन्द्रगुप्त पूर्वे सो वर्ष जेटला अर्वाचीन काळमां लावी मूके छे. अने आ समय मुख्यत्वे करीने नंदराजाओनो होय, जेमणे हेमचंद्रना कहेवा मुजब ९५ वर्ष, तेमज जे रीते में उपर पुराणमांथी तारवी काढ्यां छे ते मुजब आसरे ८५ वर्ष, राज्य कर्युं हतुं. शुशुनाग नाम खास सन्देहजनक लागे छे. कारण के शिशुनाग तो ते वंशनो स्थापक हतो, जेमां बिंबिसार आदि राजा थया हता. जो कालासोक खरेखर थई गयो होय तेम आपणे मानीए तो ते नन्द ज हशे. आ प्रमाणे शैशुनाग वंशनो इ. स. पूर्वे ४२० ना अरसामां अंत आवी गयो हशे. अने आम मानवाथी हेमचंद्रना नंदराजाना अभिषेक संबंधी कथन साथे तेनो विरोध पण आवतो नथी. तेथी आ मितिने पासेनी मिति तरीके स्वीकारी शकाय अने हुं इ. स. पूर्वे ४७७ वर्षने बुद्धनिर्वाणनी अतिशय संभवित मिति तरीके स्वीकारवामां कोई पण वांधो होय तेम जोतो नथी. [90] हवे जो बुद्धनिर्वाणनी अन्य सौ-

89. आ २४ वर्षने पुराणमां अजातशत्रुना राज्यकालनां जणावेलां २५ वर्ष साथे अद्भुत मळतापणुं छे. आनो भावार्थ शुं ए होय के गणनानो उपयोग बुद्धनिर्वाणथी थयो हशे; कारण के ज्यारे पौराणिक राजयादी उत्पन्न थई त्यारे आ बुद्धनिर्वाण मोजुद हतुं. आ उपरांत बीजुं पण एक मळता पणुं अशोकना संबंधमां मळे छे. कारण के पुराणमांना अशोकना ३६ वर्षो, बौद्धोए अशोकना अभिषेक बादनां बतावेलां ३७ वर्ष साथे मळतां आवे छे.

90. मि. विन्सेन्ट. ए. स्मिथे, प्राचीन इतिहास, पृ. ४२ f, मां बुद्धनिर्वाणने इ. स. पूर्वे ४८७–८६ मां नक्की करवा रजु करेलां कारणोना विषयमां कहेवुं जोईए के ते बीलकुल विश्वसनीय जणातां नथी. वर्षगण्य अने विंध्यवास, ए बन्ने वसुबन्धुना समकालीन हता अने चीनी ग्रंथोमां एम् जणावेलुं छे के 'तेओ निर्वाण पछी ९०० वर्ष थया हता' परंतु एम्. एन्. पेरिए B. E. F. E. O. XI, 339 ff पुरतां प्रमाणो आपी बताव्युं छे के चीनी ग्रंथकारो निर्वाणसमय इ. स. पूर्वे छठ्ठी सदीमां मूके छे, अने बीजुं ए के वसुबन्धु इ. स. ३५० नी पहेलां थई गयो हतो. केन्टननी " खण्डित-टिप्पणिका " (Dotted record) जे इ. स. ४८९ मां समाप्त थई हती ते बुद्धनिर्वाणनो समय इ. स. पूर्वे ४८६ मां बतावे छे अने ते टिप्पणिका उपलक जोतां, उपयोगी होय तेम भासे छे. परंतु ज्यारे आपणे वधारे विचार करीए छीए त्यारे भिन्न भिन्न शाखाओना बौद्धोनुं आ समयना विषयमां भिन्न भिन्न मन्तव्य जोवाय छे अने कोईपण बौद्धशाखा निर्वाणना आ समय अर्थात् इ. स. पूर्वे ४८६ थी गणत्री करती नथी. त्यारे केवल आ एकज नोंधमां आपेली तारीख ज खरी छे एम मानी लेवुं बहु अजब लागे छे, उदाहरण तरीके परमार्थ-

मिति करतां, विश्वसनीय मितितरीके इ.स.पूर्वे ४७७ मुं वर्ष जो स्वीकारी शकाय तो तदनुसार बुद्धनो जन्म, अवसानसमये तेमनुं वय ८० वर्षनुं हतुं, तेथी इ.स.पूर्वे ५५७ मां थयो हशे.अने आ विषयनी सघळी हकीकतोनुं आपणुं एकज मूळ जे पालीग्रंथो छे ते एम जणावे छे के तेमणे २९ वर्षनी उंमरे संन्यास ग्रहण कर्यो हतो तथा ३६ मा वर्षे बुद्धत्व मेळव्युं हतुं. ते उपरथी आ छेल्ली बीना जरूर इ. स. पूर्वे ५२० मां बनी हशे. आ गणत्री–जे लगभग साची ज छे–ते अनुसार एटलुं तो सुगम्य छे के जो महावीरनुं देहावसान, जे एक परंपरानुसार कहेवाय छे के इ. स. पूर्वे ५२७ मां थयुं हतुं, ए जो खरूं होय तो ते प्रमाणे तेओ अने तेमनो महान् प्रतिस्पर्धी बुद्ध बन्ने कोई पण वखते परस्पर मळी शक्या होय तेम मानी शकाय ज नहि, अने ते प्रमाणे पालिग्रंथोमां नातपुत्त अने तेमना अनुयायीओना संबंधमां करेला सघळा उल्लेखो कल्पनाजन्य अने कृत्रिमरीते बनावी लीधेली योजना रुपे ज ठरे. परंतु आम मानवुं ते तो कोई पण दृष्टिए संगत होई नहि शके.

आ रीते आपणे जोई शक्या छीए के बुद्धनिर्वाणनी तारीख जो इ. स. पूर्वे ४७७ वर्षनी होय-अने आम होवामां कांई शंका नथी–तो महावीर निर्वाणनी इ. स. ५२७ नी तारीख यथार्थ होय ए शक्य ज नथी. आ महावीर नीर्वाणनी उपरोक्त तारीख जे एवी गणतरी उपर अस्तित्वमां आवेली के तेओ विक्रम पूर्वे ४७० वर्षे निर्वाण पाम्या हता, तेनो पायो मजबूत नथी, तेटला माटे आपणे निःसंदेह रीते आ मितिनो अस्वीकार ज करवो जोइए. अने तेने बदले कालगणनात्मक बधी गणत्रीओनी साथे बंधबेस तेवी बीजी मिति शोधी काढवा प्रयत्न करवो जोईए. आ प्रकारनी मिति डॉ. जेकोबीए[91] घणा वर्ष पूर्वे सूचवी दीधेली होवाथी मारूं कर्तव्य मात्र तेमनी दलीलोनुं महत्त्व बतावबानुं तथा तेने केटलाक नवा हेतुओ द्वारा मजबूत करवानुं छे, एम हुं मानूं छुं.

३. हेमचन्द्रनी जैन परंपरा अने महावीरनो सत्य समय.

जैन ग्रन्थकारोमां सौथी महान् मनाता हेमचन्द्रे (इ. स. १०८८–११७०) पोताना स्थविरावली चरित—जे साधारण रीते परिशिष्टपर्वने नामे ओळखाय छे-तेमां बिंबिसारथी मांडीने अशोकना पौत्र अने तेना उत्तराधिकारी सम्प्रतिना वखतना काळनो एक प्रकारनो इतिहास आपेलो छे. आ ग्रंथ जे घणे स्थळे मात्र एक मनःकल्पित अने पौराणिक ऐतिहासिक नोंध जेवो जणाय छे ते तेमणे पोताना धर्मप्रवर्तकोना पुराण-वर्णनना एक परिशिष्ट रुपे लखेलो छे. परंतु मारी खातरी थई छे के आ नोंध जो के केटलेक स्थळे गुंचवाडा भरेली तथा पौराणिक लागे छे, छतां पण तेमां अहीं तहीं केटलीक साची अने ऐतिहासिक बाबतो सूचित थएली छे. अने आ ऐतिहासिक बाबतो महावीरनो समय निर्णय करवामां उपयोगी थाय तेम छे.

जेनो समय ४९९-५६९ छे-ते एम जणावे छे के तेनी एक कृति बुद्ध पछी ३६५ मां वर्षे समाप्त थई हती. (पेरि. l. c. p. 361). हवे जे परंपरा जणावे छे के अशोक बुद्धनिर्वाण पछी २२० वर्षे थयो हतो तथा ते शी-हांगति (इ. स. पूर्वे २४६–२१०) नो समकालीन हतो ते परंपरानुसार बुद्धनिर्वाणनो समय इ. स. पूर्वे ४९६ (२४६+२५०) मां मुकाय. मि. वि. गोपाल ऐय्यर, इंडि. एन्टी. ३७, ३४१ मां जणावेलां कारणोना संबंधमां एटलुं जणाववुं बस थशे के ते सर्व दलीलो सहसाराम आज्ञामां आवता २५६ नी गेरसमजुती उपर अवलंबित होवाथी तेमज सिलोनना इतिहासग्रंथोमां आपेली मितिओने सर्वथा अविवेकपणे कबुल राखीने, उभी करवामां आवेली होवाथी, साची नथी.

91. कल्पसूत्र, पृ. ८ अने ते पछीनां.

श्रेणिक (बिंबिसार) अने तेनो पुत्र कूणिक (अजातशत्रु) जैनोमां सुप्रसिद्ध छे, परंतु तेमना राज्यकालनी मितिओ, मारी जाण मुजब, कोई पण स्थले आपवामां आवी नथी. हेमचंद्र ६, २१ मां जणावे छे के कूणिक चंपामां मरण पाम्यो हतो अने तेनी पछी उदायिन् राज्यगादी उपर आव्यो हतो, अने तेणे राजधानी तरीके नवुं नगर, पाटलीपुत्र, वसाव्युं हतुं. आ राजा चुस्त जैन हतो अने घणो सत्ताशाली थई शक्यो हतो. परंतु तेना उपर एक शोकजनक विपत्ती आवी पडी हती. हकीकत ए छे के तेणे कोईएक राजाने गादी उपरथी उठाडी दीधो हतो, तेना पुत्रे युक्तिथी जैन साधुनो वेश पहेरी तेना महेलमां प्रवेश कर्यो अने तेने मारी नांख्यो. उदायीनी पाछळ वारस न हतो अने तेथी करीने तेनां पांच राजचिन्होने तेनो उत्तराधिकारी शोधवा बहार मोकलवामां आव्यां. पसंदगी विलक्षण थई; कारण के एक नापित अने गणिकानो पुत्र जेनुं नाम नंद हतुं ते आ रीते पसंद थयो (६, २३१.) अने राज्यासने तेनो अभिषेक थयो. आ बीना, परि० ६, २४३ ना नीचे आपेला श्लोकनी अनुसार, महावीरनिर्वाण पछी ६० वर्षे बनी.

अनन्तरं वर्धमानस्वामिनिर्वाणवासरात्। गतायां षष्टिवत्सर्याम् एष नन्दोऽभवन्नृपः॥

आ नंदना संबंधमां हेमचंद्रे विरोधदर्शक विचार बिलकुल प्रदर्शित कर्यो नथी. अने ते उपरथी आपणे साधारण एम मानी शकिए के आ नंद केटलाक प्रमाणमां जैनधर्मनो संरक्षक मनातो हशे. आ धारणाने उदयगिरिमांथी मळेला खारवेलना शिलालेख रूप एक अतिशय महत्त्ववाळा लेखद्वारा साचुं समर्थन मळतुं होय तेम जणाय छे. ते लेखमां नंदराजना संबंधमां बे उल्लेखो थएला छे. अने आ नंदराज ते सामान्य रीते नंदवंशनो ज हशे. आ लेखनो प्रथम फकरो जो के सर्वथा अस्पष्ट छे अने बीजो फकरो त्रुटित थएलो छे परंतु तेनी पछीनो भाग स्पष्ट जणावे छे के खारवेले 'मगधना राजाने अग्रजिन (प्रथम तीर्थंकर) ना पगे पडाव्यो जेने नंदराज लई गयो हतो (?) [पादे व (म्) दापयति नंदराजनितस अगजिनस]; आ 'अग्रजिन' शब्द ते महावीर तथा ऋषभ बन्नेने लागु पडी शके–अने अहींआं गमे तेने लागु पडतुं होय—परंतु आटलुं तो स्पष्ट ज छे के कलिंग उपर स्वारी करी ते वखते नंदराजा जिननी 92 प्रतिमाने लई गयो हशे. अने जो ते जिनमां श्रद्धावाळो न होय तो ते शा माटे आवी वस्तु लई जवानी पसंदगी करे? आ उपरांत नंदनो पूर्वाधिकारी-पूर्वज उदायी ते एक श्रद्धालु जैन हतो अने अजातशत्रु पण थोडेक अंश तेवो ज हतो. 93 आ उपरथी आ बधा राजाओने बौद्धो 'पितृघातक वंश' एवुं जे नाम आपे छे तेमां कांई नवाई जेवुं जणातुं नथी; जो के आ नाम अन्य स्थळे वस्तुतः मात्र अजातशत्रुने ज घटतुं होय एम मानवामां आव्युं छे.

आ प्रमाणे महावीरनिर्वाण अने नंदना राज्याधिरोहण वच्चे ६० वर्षोनुं अंतर पडे छे. आ कालांतरमां स्पष्ट रीते कूणिकना राज्यसमयनो केटलोक भाग तथा उदायिन्नी संपूर्ण कारकीर्दीना समयनो समावेश थएलो छे. अने में उपर सिद्ध कर्युं छे के उदायी प्रायः तेना वंशनो छेल्लो ज राजा हतो. हवे बुद्ध, इ. स. पूर्वे ४७७ मां निर्वाण पाम्या होय, तो ते हिसाबे अजातशत्रु इ. स. पू. ४८५ मां राजा थयो हशे. अर्थात् निर्वाण पहेलां आठ वर्षे. आ राजानुं पहेलुं साहस तेणे कोसलना वृद्ध राजा साथे युद्ध आरंभ्युं ते हतुं. आ कोसलनो राजा ते

92. आ हकीकतने मळती एवी एक वात, प्रो. जेकोबीना 'आउस्गेवाल्ट इर्सेलुंगेन, पान ३१ अने ते पछीनामां, प्रद्योत अने उदयनना संबंधमां लखेली मळी आवे छे.

93. जुओ जेकोबीनुं कल्पसूत्र, पृ० ५.

तेनी ओरमान मातानो भाई हतो. भगवतीसूत्रना १५ मा [94] शतकमां एम जणावेलुं छे के पाखंडाचार्य गोशाल, जे महावीरनो कट्टो प्रतिस्पर्धी हतो ते, आ लडाईना [95] अंते तरतज श्रावस्तीमां मरण पाम्यो हतो. अने तेना मरण पछी १६ वर्ष महावीर जीवता रह्या. आ मिति गोशालना संबंधमां आपवामां आवेली अन्य मितिओ साथे मळती आवे छे ते आपणे नीचेनी हकीकत उपरथी जोई शकीशुं. महावीर पहेलां बे वर्ष ज्यारे गोशाले जिनत्व प्राप्त कर्यानो दावो करेलो हतो त्यारे महावीरनी ऊंमर ४० वर्षनी हती अने त्यारपछी १६ वर्ष सुधी तेओ बन्ने मळ्या ज न होता. त्यारपछी तेओ मात्र, गोशालना मरणना वर्षमां एटले छेल्ली वखते मळ्या हता. आ उपरथी गोशाले काळ कर्यो ते वखते महावीरनी ऊंमर ५६ वर्षनी हशे महावीरनी कुल ऊंमर ७२ वर्षनी हती एटले ते उपरथी तेओ गोशाल पछी १६ वर्ष जीवता रह्या हता ते पण साबित थाय छे ज. [96]आ १६ वर्षनी गणतरी करतां आपणे इ.स.पूर्वे४७०थी सहेज पाछळ एटले आशरे ४६८-६७ मां उतरी आवीए छीए, आ तारीख हेमचंद्रना कथन-आधारे महावीरना निर्वाण तरीके सूचवेली तारीख साथे तद्दन मळी जाय छे. जो के कूणिक-अजातशत्रुना राज्यसमय दरम्यान महावीर स्वामीनुं निर्वाण थयुं हतुं एवुं चोक्कस कथन, मारा जाणवा प्रमाणे, मळतुं नथी ए वात खरी; परंतु, तेवी रीते, तेमनो अने उदायीनो मेळाप थयो हतो, एवुं बतावनार पण कोई कथन जणातुं नथी. अने हुं धारुं छुं के, आपणे बलके एवुं ज अनुमान करवुं जोईए के बौद्धग्रंथोमां अजातशत्रुना राज्यकालनां जे ३० वर्ष बताव्यां छे ते साचां छे. उदायीनुं राज्य १६ वर्ष चाल्युं हशे, अने कदाच, अजातशत्रु अने तेनी वच्चे जो बीजो कोई न थयो होय तो ३३ थी पण वधारे वर्ष तेणे राज्य कर्युं होय. [97]

नंदराजाओ के जेमनी संख्या ९ हती, तेमना मंत्रिओ घणा कुशल हता. ए मंत्रीओ सघळा, प्रथम नंदराजाना मंत्री कल्पकना वंशजो ज हता. छेल्ला नंदराजाना प्रसिद्ध मंत्रीनुं नाम सकटाल हतुं.आ सकटालने प्रस्तुतविषयमां स्थूलभद्रना पिता तरीके वर्णववामां आव्यो छे.अने स्थूलभद्र ते जैन-धर्मना सातमा (अगर नवमा) युगप्रधान आचार्य हता अने तेओ महावीर पछी २१५ (अथवा २१९) मा वर्षमां गुजरी गया हता. ए पुस्तकमां नंद, सकटाल, वररुचि, चंद्रगुप्तनी युवावस्था तथा चाणक्य साथेनो तेनो संबंध—ए विषयक जेटली कथाओ—वार्ताओ आपवामां आवी छे ते सघळी मात्र परीनी वार्ताओ (Fairy tales) जेवी देखाय छे. परंतु ए जोतां आश्चर्य उत्पन्न थाय छे के आ कथाओ छेक आवश्यक निर्युक्तिनी टीकामां पण आवेली छे अने ते तेनीए पहेलां लखाएली होय तेम देखाय छे. तेम ज केटलेक अंशे कथासरित्सागरनी वार्ताओने पण मळती आवे छे अने महावंश टीकाना ११९, ८ ff; १२१,

---

94. हॉर्नले आपेली उवा० परिशिष्ट १, तथा हेस्टिंग्सनी इन्सा० पृ० २६० मांनी हकीकत साथे सरखावो.

95. आ बनाव लडाई पछी बन्यो हतो तेनी साबीती, भगवती, पृ० १२५४ अने ते पछीनामांना उल्लेखथी, स्पष्ट मळी आवे छे. गोशालना जे नियतिना ८ सिद्धांतो बताव्या छे तेमां ए लडाईनुं सूचन पण थाय छे. सरखावो होर्नल, l. c. पा. २६३

96. सरखावोः होर्नल, उवा० परि० २, पा. ११०

97. जो आपणे महावीरना मृत्यु माटे इ. स. पूर्वे ४६७ मुं वर्ष स्वीकारी लईए तो, पछी अजातशत्रु, जो ते बुद्ध पछी २४ वर्ष जीवतो रह्यो होय, तो तेमना पछी १४ वर्षे मरण पाम्यो होवो जोईए. महावीरना निर्वाण अने नन्दना राज्यारोहण वच्चे, हेमचंद्रना कथनानुसार जो ६० वर्षनो अंतर होय तो ते मुजब उदायीए ४६ वर्ष पर्यंत राज्य करवुं जोईए, पण आ समय बहु वधारे पडतो देखाय. कारण के तेना गादीए आव्या पहेलां ३० वर्ष उपर ज्यारे कूणिके बुद्धनी मुलाकात लीधी हती त्यारे तेनो जन्म थएलो हतो, एवो उल्लेख मळी आवे छे. (दी.नि. १-५०)

२२ ff; 98 भागो साथे तो तेनाथी पण वधारे मळती आवती होय तेम जणाय छे. परंतु आपणने आ स्थळे आ बाबत कांई महत्त्वनी नथी. तेनाथी जे कांई सिद्ध थाय छे ते मात्र एटलुं ज छे के 'आपणा सननी पछी केटलीक सदीओ सुधी नंदो अने मौर्यराजाओना कालना संबंधमां केटलीक कथाओ हिंदुस्तानमां प्रचलित हती.' (जेकोबी, परिशिष्ट पर्व. पृ. ५० टि. २). आ बधुं छतां आ ग्रंथमां जो कोई महत्त्वनो श्लोक होय तो ते ८, ३३९ 'मां आवेलो नीचेनो श्लोक छे:—

एवं च श्रीमहावीरमुक्ते वर्षशते गते । पञ्चपञ्चाशदधिके चन्द्रगुप्तोऽभवन्नृपः ॥

आ श्लोकना महत्त्व उपर भार मूकतां, जेकोबिए केटलांक वर्षो आगमच जणावी दीधुं छे के आ श्लोक, महावीरना निर्वाण संबंधी एक नवी अने वधारे संगत परंपरानो सूचक छे. 99 'चन्द्रगुप्तोऽभवन्नृपः' अने ६, २४३ ना अंते आवतो 'एष नन्दोऽभवन्नृपः' आ बन्ने पदोनी रचनाशैली एटली बधी मळती लागे छे के जेथी भाग्ये ज एम कही शकाय के ए अणधारेली रीते—आकस्मिक रीते— लखाई गया होय. अने तेना उपरथी एवुं अनुमान निकळतुं होय तेम लागे छे के हेमचंद्रे आ श्लोको कोई विशेष प्राचीन ग्रंथोमांथी अक्षरशः उद्धृत कर्या हशे अथवा तो कोई प्राचीन कालगणनात्मक प्राकृत गाथाओनुं भाषांतर कर्युं हशे. हेमचंद्र फक्त एटलुं ज जणावे छे के चन्द्रगुप्तनी पछी तेनो पुत्र बिंदुसार गादी उपर आव्यो हतो (८, ४४५) अने बिंदुसार पछी तेनो पुत्र अशोकश्री राजा थयो हतो. (९, १४) अने अशोकश्रीए पोतानुं राज्य पोताना पौत्र संप्रतिने सोंप्युं हतुं. आ संप्रति ते कुणालनो पुत्र हतो(९, ३५) अने एक श्रद्धावंत जैन हतो. हेमचंद्रे आ स्थळोमां तेओना समयनुं बीलकुल सूचन कर्युं नथी; तेम कालगणना साथे पण तेओनुं अनुसंधान बताव्युं नथी. ते उपरथी जेकोबीना मानवा प्रमाणे आपणे एम धारी शकीए के तेमणे विक्रमसंवत् अने चंद्रगुप्तना राज्याधिरोहणना काल वच्चेनुं अंतर २५५ वर्षनुं बतावती परंपराने सत्यरूपे स्वीकारी हशे. आ गणतरी अनुसार महावीरनिर्वाण अने विक्रमना राज्यधिरोहणनी वच्चेनो काल २५५ + १५५= ४१० बराबर थाय. अने ए उपरथी ए पण अनुमान फलित थाय के महावीर इ. स. पूर्वे ४६७ मा वर्षमां निर्वाण पाम्या हता. मारा मानवा प्रमाणे आ ज तारीखथी निर्वाण संबंधी बीजी पण बधी बाबतोनो निकाल आवी शके छे, अने तेटला माटे ते ज खरी छे एम मानवुं जोईए.

98. सरखावो; टर्नर, महावंश १ पृ० ३९ नी फुटनोट; तेम ज गायगर, दीप० महा० पृ० ४२ फु. आ ग्रन्थ अने परिशिष्ट पर्व वच्चे नानामां नानी विगतोनी पण समानता छे. महावंशनी टीका पाछलथी थएली जणाय छे (गायगर, तेज पृ. फु. ३७) पण तेमांनी सामग्री जूनी छे.

99. कल्पसूत्र, पृ. ८. नी फुट नोट.

100. दिव्या. पृ० ४३० मां अशोक पछी संप्रतिनो जे उल्लेख थएलो छे ते आथी वधारे महत्वनो बने छे. नागार्जुनी गुफाना लेखोथी साबीत थयुं छे के मगधमां अशोक पछी दशरथ गादिए आव्यो हतो के जेना विषे जैनो कशुं कहेता नथी. आ उपरथी, मि. विन्सेन्ट.ए. स्मीथे पोतानी अर्ली हिस्टरी ऑफ इन्डियामां जे एम सूचन कर्युं छे के—अशोकना मरण पछी तेना साम्राज्यना पूर्व अने पश्चिम एम बे विभागो थई गया हता, ते मने खरूं लागे छे. संप्रतिना पिता कुणालनो उज्जयनी अने तक्षशिला साथेनो सतत संबंध ए ज बाबत सूचवे छे. अने जैनो जे मौर्योनो राज्यकाल १०८ वर्षनो गणे छे तेनो पण कदाच आ हकीकतथी निकाल आवी शके. कारण के इ. स. पूर्वे १८५ मां मगधमांथी ज्यारे पुष्यमित्रे ए वंशनो उच्छेद कर्यो तेनी पहेलां ज पश्चिममां ए वंशनुं राज्य बन्ध थई गयुं हशे. तेम छतां, ए वात नोंधवा जेवी छे के मेरुतुंगे आपेली कालगणनात्मक गाथाओमां पुसमित्त (पुष्यमित्र) नी राज्यना ३० वर्षोनी नोंध लेवाएली छे. अने आ समय इ. स. पूर्वे २०४-१७४ ना गाळा साथे बंध बेसतो आवे छे. हुं, महाभाष्य अने मिनेन्डरना समयथी जे कालगणना नक्की थाय छे तेनाथी विरुद्ध आ उल्लेखने घटावी शकतो नथी.

मेरुतुंगे नोंधेली परंपरानुसार चन्द्रगुप्तना राज्याधिरोहणनुं वर्ष इ.स. पूर्वे ३१२ मुं आवे छे. आ मिति घणी ज गुंचवाडो उत्पन्न करनारी छे. मौर्यसंवत् इ. स. पूर्वे ३१२ मा वर्षे शरु थयो हतो ए बाबत, सेल्युसिडनना संवत्नी साथे ते संवत् अभिन्न छे एम बतववा खातर मानवुं मने उचित लागतुं नथी. जो के आपणे सारी पेठे जाणीए छीए के चंद्रगुप्ते सेल्युकसने हिदुस्तानमांथी देशवटो आप्यो हतो तेम ज तेनी पासेथी तेनी सत्ता हठेळना बेक्ट्रीआना मुलकनो एक भाग खुंचावी लीधो हतो; परंतु ए वात समजमां नथी आवती के चन्द्रगुप्ते, तेना पराजित शत्रुना नाम उपरथी, पोताना संवत्नो आरंभ कर्यो होय. आ उपरांत एम पण मनाय छे के चंद्रगुप्ते नवो युग स्थाप्यो न होतो. (सरखावो, उपर पृ. ११५.) परंतु चंद्रगुप्त वीर पछी १५५ वर्षे राज्याभिषिक्त थयो हतो एम कहेवातुं होवाथी एम लागे छे के आ संवत्नो आरंभ पण कोई एक घणीज महत्वनी जैन बाबत साथे संबंध धरावतो हशे. अने हुं धारुं छुं ते प्रमाणे छे पण तेम ज.

चंद्रगुप्तनो समय जैनधर्ममाटे खरेखर एक अतिशय पीडा अने दुःखनो समय हतो. आ समयमां जैनधर्म राज्याश्रयथी वंचित थयो हतो. जो के जैनो चंद्रगुप्तने जैनधर्मानुयायी तरीके अने पाछली वयमां तो खास तेने एक जैन साधु तरीके पण बतावे छे; परंतु, चाणक्यनी राजनीति आवा पाखंडी मतोनी [1] अनुकूळ नही पण प्रकट प्रतिकूल हती. अने वास्तविक रीते जोतां जैनोनो पूर्वहिंदुस्थान साथेनो संबंध जे अशोक पछी सर्वथा तूटी गयो हतो (आमां खारवेलनुं राज्य अपवाद रूप छे परंतु तेनो समय हजी सुधी अनिश्चित छे.) ते त्यार पेहलां पण केटलेक अंशे शिथिल थयो होय एम लागे छे. परंतु आ उपरांत चंद्रगुप्तना राज्यकालमां १२ वर्षनो एक दारुण दुष्काळ पडयो हतो, के जे दुष्काळ जैनधर्ममां भेद उभो करवामां निमित्त बन्यो हतो एम जणववामां आवे छे. ए ज समयमां श्वेतांबर अने दिगंबर नामना बे संप्रदाओनी शरुआत थई हती. जे कालमां चंद्रगुप्त राजा थयो हतो ते वखते—जैन इतिहासमां घणा ज थोडा कालांशोमां जोवामां आवे छे तेम—एक ज समये जैनधर्म संभूतिविजय अने भद्रबाहु नामना बे युगप्रधानोनी सत्ता हेठळ प्रवर्तता हतो. परंतु संभूतिविजये, चंद्रगुप्त जे वर्षमां राज्याभिषिक्त थयो तेनी पछीना ज वर्षमां एटले वीर पछी १५६ मा वर्षमां काळ कर्यो. आ वर्ष ते कदाच हेमचंद्र, परिशिष्ट पर्व, ८, ३३९ मां जे कहे छे के १५५ मुं वर्ष पूर्ण थयुं हतुं (गत), ते ज वर्ष छे; अने ते उपरथी मारी एवी मान्यता छे के आ बनावने अनुकूल आववा माटे ज हेमचंद्रे चंद्रगुप्तना राज्यनी शरुआत, इ.स. पूर्वे ३१२(अथवा ३११)नी बराबर मळता एवा ते ज वर्षमां, त्यार पहेलांना दशमा अगर अगीआरमा वर्षे न मूकतां, मूकी छे. संभूतिविजयनो मरणकाल जैन इतिहासना एक कालभागनो अंतसूचक छे. ए बाबत खरी छे के तेमना पछी १५ वर्षे गुजरी गया हता ते भद्रबाहु, तथा तेमना उत्तराधिकारी स्थूलभद्र ए

1. सरखावो:—इ. थोमस. गुप्तवंशनी नोंधो (Records of the Gupta dynasty) पा १७; जेकोबी, कल्पसूत्र, पा० ८; वि. ए. स्मीथ, हिंदुस्थाननो प्राचीन इतिहास पा० ३३ टी०; ४० टी०, १८७ टी०: फ्लीट, ज० रॉ० ए० सो० १९१०, पा० ८२५ टी० २.

अर्थशास्त्र, ज्यां सुधा ते अन्यकृत सिद्ध थाय नहीं त्यां सुधी, हु ते चाणक्यकृत ज मानुं छुं. ए अर्थशास्त्रमां सांप्रदायिक अथवा जैन असरनो जराए उल्लेख जणातो नथी. सिवाय के, पृ० ५५वीगेरे उपरनो उल्लेख के जेमां बीजा बीजा देवोनी साथे कदाचित् जैन सम्मत अपराजित, अयन्त अने वेजयन्तनो पण निर्देश छे. पण मारा मते एमां कांई विषेशता नथी. पृ० १९९ इत्यादि उपरनो तीर्थकरनो उल्लेख जैनधर्म प्रवर्तकने सूचवे; पण आपणे याद राखवुं जोईए के पाली पिटकमां 'अन्य तीर्थिक' ए शब्द अनेक संप्रदायना भिक्षुओ माटे वापराएलो छे.

वने चतुर्दशपूर्वधारी हता; जो के स्थूलभद्रने छेल्ला चार पूर्वो बीजाने शीखववा मनाई थएली हती. दिगंबरो भद्रबाहुने छेल्ला श्रुतकेवली माने छे त्यारे श्वेतांबरो स्थूलभद्रने छेल्ला श्रुतकेवली माने छे [2] आ उपरथी एम जणाय छे के संभूतिविजय करतां भद्रबाहु वधारे महत्त्वना लेखाता हशे अने तेम हतुं पण खरूं. परंतु भद्रबाहु जो के आखा जैनधर्मना युगप्रधान हता छतां पण केटलेक अंशे सांप्रदायिक हता. आम मानवानुं कारण ए छे के ज्यारे ते पोते दक्षिण तरफ जवा नीकळ्या त्यारे तेमणे पोताना अनुयायीओनी एक मंडळी मगधमां छोडी दीधी हती अने जे मंडळी तेमनी साथे दक्षिणमां गई हती तेणे पछी, जे मंडळी मगधमां रही हती तेमनां चारित्र तथा सिद्धान्तने पसंद कर्या नहि. अने त्यारपछी भद्रबाहु नेपाल तरफ चाल्या गया अने सघळा सिद्धांतोने [3] एकत्र करवा उद्युक्त थएला संघने तेमणे मदद करवा घणी खुशी न बतावी. ते उपरथी लागे छे के तेओ ते लोकोना आ कार्यमां संमत नहि होय अथवा तो तेने पूर्ण रीते पसंद कर्युं नहि हशे. अने तेथी आखरे ए अनुमान थाय छे के मूळ प्राचीन, अविभक्त अने महावीरना समयथी निश्चित स्वरूपे चालता आवता जैनधर्मना वास्तवमां छेल्ला युगप्रधान संभूतिविजय छे, परंतु तेमना घणा ज वधारे प्रसिद्ध साथी भद्रबाहु, अव्यवस्थितकालनी असरने लईने कोई जुदीज हालतमां मूकाया. तेटला माटे मारुं धारवुं छे के चंद्रगुप्तने संभूतिविजयना देहान्तकालना वर्षमां मूक्यो हशे, जेम के महावीरनिर्वाणनी रात्रिमां पालकनो राज्याभिषेक मूकेलो छे. [4]

इ. स. पूर्वेना ४६७ मा वर्षने महावीर निर्वाण वर्ष तरीके मानवाना पक्षमां अन्यान्य बाबतोनुं विवेचन प्रो० जेकोबीए पोतानी कल्पसूत्रनी आवृत्तिमां कर्युं छे. हुं फक्त ये ज मुद्दा उपर चर्चा करवा मागुं छुं, कारण के ए मुद्दाओ आ प्रश्नना विषयमां घणी महत्ता धरावे छे.

हेमचंद्रथी [5]मांडीने अर्वाचीन काळनी सघळी जैनपरंपरा भद्रबाहुना निर्वाणसमय तरीके वीर पछी १७० मुं वर्ष जणावे छे. आ वर्ष परंपरागत निर्वाणसमयने हिसाबे इ. स. पूर्वे ३५७ मां आवे परंतु प्रो. जेकोबीनी व्यवस्थित करेली मितिनी अनुसार इ. स. पूर्वे २९७ मां मूकाय. आ बने मितिओमांनी बीजी ज मिति शक्य जणाय छे, कारण के सघळी जैनपरंपराओ भद्रबाहुने चन्द्रगुप्त साथे नजीकमां नजीक संबंध धरावनार तरीके स्पष्ट जणावे छे. अने आ रीते इ. स. पूर्वे ३५७नी मिति बहिष्कृत थाय छे.

कल्पसूत्रमांना जिनचरित्रनुं १४८ मुं सूत्र आपणने जणावे छे के ते ग्रंथ महावीर पछी ९८० वर्षे समाप्त थयो हतो. परंतु साथे साथे एक बीजो पण उल्लेख छे (वायणन्तरे) जेमां ९९३ मुं वर्ष आपेलुं छे. सघळी टीकाओ जे प्राचीन चूर्णिना [6] आधारे रचाएली छे ते सर्वे आ मितिओनो जुदा जुदा बीनाओ साथे संबंध बतावे छे:[7]

(१) देवार्धिगणीना अध्यक्षपणानीचे थएली वलभीनी सभा, जे वखते सिद्धांतने पुस्तकारूढ करवामां आव्युं हतुं ते प्रसंग.

---

2. पण, श्वेतांबरो पण केटलेक ठेकाणे भद्रबाहुने छेल्ला युगप्रधान माने छ, ए बाबतनो पुरावो मळे तेम जणाय छे. सरखावो-जेकोबी, कल्पसूत्र पृ० १९ Z. D. M. G. 38, 14.

3. आ विषयनी वधारे विगतो माटे जुओ प्रो० जेकोबीनो 'श्वेतांबर अने दिगंबर संप्रदायोनी उत्पत्ति' वालो लेख. Z. D. M. G. 38. 1.

4. सरखावो:-उपर पृष्ठ　　5. परिशिष्टपर्व, ९, ११२　　6. जेकोबी. कल्पसूत्र पृ० ५

7. जेकोबी. सेक्रेड बुकस् ऑफ धी इस्ट. २२, पृ० २७०

(૨) સ્કંદિલાચાર્યના અધ્યક્ષપણા હેઠળ મથુરામાં મળેલી સભા. જેમાં પ્રાયઃ સર્વ સિદ્ધાંતોમાં સુધારા વધારા કરવામાં આવ્યા હતા.

(૩) આનંદપુરના રાજા ધ્રુવસેન આગળ તેના પુત્રના મરણનો શોક નિવારણ કરવા અર્થે કલ્પસૂત્રનું જાહેર વાંચન; અને

(૪) કાલકાચાર્યે કરેલો પજ્જુસણના દિવસનો ફેરફાર. [8]

મથુરામાં ભરેલી સભાના વિષયમાં જણાવવું જોઈએ કે તેનું, તેનાથી વધારે મહત્વની અને પ્રસિદ્ધ વલભીની સભા સાથે ગુંચવણ થએલું છે. વલભીની સભામાં સિદ્ધાન્તગ્રન્થોને અત્યારના રૂપમાં ખરેખર ઠરાવવામાં—નક્કી કરવામાં આવ્યા હતા. પરંતુ આ સભા સાચે જ થએલી હતી કે નહીં, તે પ્રાચીનકાલની વાત હોવાથી, અત્યારે વિચારણીય નથી[9] પરંતુ વલભી સંબંધી વર્ણનો તેમ જ આનંદપુરના રાજા ધ્રુવસેન સમક્ષ કલ્પસૂત્રની થએલી જાહેર વાચના; એ બે બાબતો ઘણા ઉપયોગની છે. દુર્ભાગ્યે આનંદપુરના સંબંધમાં કોઈ હકીકત મળતી નથી; ટીકાઓમાં તે મહાસ્થાન હોવાનું જણાવેલું છે પરંતુ આટલી માહીતિથી આપણને વિશેષ મદદ મળતી નથી. તેમ છતાં આપણે નીચેની બાબતો ધ્યાનમાં લેવી જોઈએ.

૧. ધ્રુવસેન એ નામ, ઘણું અજાણ્યું નથી. તે વલભીના એક વંશનુ નામ છે. અને આપણે જાણીએ છીએ કે પહેલો ધ્રુવસેન ઇ. સ. ૫૨૬ માં રાજયગાદી ઉપર આવ્યો હતો.

૨. આ ધ્રુવસેનને પુત્ર ન હતો કારણ કે ઇ. સ. ૫૪૦ માં તેની પછી તેનો ભાઈ ગૂહસેન[10] ગાદી ઉપર આવ્યો હતો; અને

૩. મહાવીરનિર્વાણની તારીખ તરીકે ઇ. સ. પૂર્વે ૪૬૭ મા વર્ષને સ્વીકારી, કલ્પસૂત્રની એક વાચના કે—જેના માટે કહેવું જોઈએ કે, તે ખરેખર પ્રાચીન અને ઉપયોગી છે તે વાચનામાં આપેલા ૯૯૩ વર્ષની, ત્યારથી ગણત્રી કરીએ છીએ તો એક આશ્ચર્યજનક સરખાપણું મેળવીએ છીએ. કારણ કે (૯૯૩-૪૬૭=૫૨૬) ૯૯૩ માંથી ૪૬૭ વર્ષ બાદ કરતાં જે ૫૨૬ મું વર્ષ આવે છે તે બરાબર વલભીની ગાદી ઉપર ધ્રુવસેનના અધિરોહણનું વર્ષ છે.

આ સઘળી હકીકતો ઉપરથી મારું ચોક્કસ અનુમાન થાય છે કે વલભીની મહાસભા ધ્રુવસેનના રાજ્યારોહણના વર્ષમાં જ મળી હતી, અને બીજું એ કે કલ્પસૂત્રમાં આપવામાં આવેલું મહાવીરનું જીવનચરિત્ર પણ, જે છેલ્લી વખત તે જ સભામાં નિર્ણીત કરવામાં આવ્યું હતું, તેનું ધ્રુવસેન રાજાની સમક્ષ વાચન કરવામાં આવ્યું હતું. અને આ બાબત, મારા અભિપ્રાય પ્રમાણે મહાવીરનિર્વાણના ઇ. સ. પૂર્વે ૪૬૭ મું વર્ષ સૂચવતી હકીકત માટે એક ઘણું કિંમતી સમર્થન છે.

હવે માત્ર એક જ પ્રશ્નનો ઉહાપોહ કરવો અહીં બાકી રહ્યો છે. જે વિદ્વાનોને આ મિતિ ગ્રાહ્ય નથી તેઓ એકદમ જણાવશે કે આ સૂચના નાતપુત્તના અવસાનના સંબંધમાં પાલી સિદ્ધાન્તોમાં આવતાં વર્ણનોથી વિરુદ્ધ છે. કારણ કે તે ગ્રંથોમાં જણાવેલું છે કે બુદ્ધ જ્યારે શાક્યભૂ-

8. આ કાલકાચાર્ય જૈન પટ્ટાવલીમાં ત્રીજા છે. મહાવીર પછી ૪૭૦ વર્ષે વિદ્યમાન ગર્દભિલ્લના શત્રુ કાલકાચાર્ય તે આ નથી સરખાવો–Z. D. M. G. 34. 241.

9. આ સમિતિના પ્રમુખ સ્કંદિલ એ જો હાલે પ્રસિદ્ધ કરેલી (Testgruss an Bohtlingk p. 54 ff) પટ્ટાવલીમાં જેનો ઉલ્લેખ છે તે જ હોય તો, તે તો વીર પછી ૪૧૪ વર્ષે એટલે ઇ. સ. પૂર્વે ૧૧૩ માં મરણપામ્યા એમ કહેવાય છે.

10. આ વંશમાં ભાઇઓ એકબીજા પછી ગાદિએ આવતા એવો કાંઈ નિયમ ન હતો; એ વાત ગૂહસેન પછી તેનો પુત્ર ગૂહસેન બીજો જે ઇ. સ. ૫૫૯ માં ગાદિએ બેઠો હતો તે ઉપરથી સિદ્ધ થાય છે.

मिना सामगाममां विचरता हता त्यारे नातपुत्ते पावामां काळ कर्यो हतो; अर्थात् महावीर-निर्वाण बुद्धनिर्वाणनी पूर्वे थयुं हतुं. आ वर्णन मने तद्दन मान्य छे परंतु हुं मानुं छुं के ए विद्वानो आ प्रश्नना संबंधमां थोडो संभाळपूर्वक विचार करशे तो तेमने जरूर जणाशे के आ हकीकत बहु महत्त्वनी नथी.

प्रो. जेकोबीए पोताना ग्रंथमां एक घणुं ज मजबुत प्रमाण रजु करेलुं छे अने जणावे छे के इ. स. पूर्वे ५२७ ना वर्षने वरतर्फ करी, हेमचंद्रना कहेवा मुजब इ. स. पूर्वे ४६७ मुं वर्षज स्वीकारणीय छे. अने मारे आ स्थळे जणावी देवुं जोईए के डॉ. जेकोबीनुं प्रमाण एटलुं बधुं मजबुत छे के तेने पालीग्रंथमां मळी आवता आवा प्रकारना वर्णनने लीधे फेंकी देवाय तेम नथी.

उपरोक्त वर्णन दीघनिकाय ३, ११७; २०९; अने मज्झिमनिकाय २, २४३ [11] मां जोवामां आवे छे अने ते एम जणावे छे के ज्यारे बुद्ध सामगाममां रहेता हता त्यारे तेमने खबर केहवामां आवी हती के तेमना प्रतिस्पर्धीए पावामां काळ कर्यो. अने बीजुं ए के निर्ग्रंथोमां गंभीर भेदो—सांप्रदायिक फांटा पडी गया हता, तेम ज आखो जैनसमाज भग्न थई जवानी तैयारीमां हतो. पावा संबंधी वर्णन केटलेक अंशे खरुं छे, कारण के जैनोनी मान्यतानुसार पण महावीर पावामां ज निर्वाण पाम्या हता. परंतु केटलेक अंशे खोटुं पण छे, कारण के में उपर जणाव्युं तेम [12] बुद्धो ए पावाने—राजगृहनी पासे आवेली पावाने—मानता नथी के जे आज दिन सुधी पण जैनो माटे तीर्थ स्थळ मनाय छे. बौद्धो पावाने, ज्यां आगळ बुद्धे चुंदना घरे छेल्लुं खाणुं खाधुं हतुं ते कुशीनारनी पासे आवेला नाना शहेर तरीके ओळखावे छे, के जे बाबत पण शंका उत्पन्न करवा वाळी छे. आ उपरांत हुं उपर जणावी गयो छुं के, उपालि साथेनो मेळाप, जेने महावीरना मरणना साचा कारण तरीके बतावबामां आव्यो छे, तेवुं कशुं वर्णन सौथी प्राचीन सूत्रोमां मळतुं नथी. अने, अंतमां जणावुं छुं के धर्मभेद संबंधी तेमां आपेलो वृत्तांत आ नोंधने पहेलां करतां वधारे शंकापात्र बनावे छे, कारण के जैनग्रंथोमां आ प्रकारनुं बीलकुल वर्णन नथी, पण तेथी उलटुं ते तो एम जणावे छे के आ अवसरे तो समाजमां सर्व स्थळे शांति फेलायली हती. वळी जैन ग्रंथोमां धर्मभेदो छुपावेला छे ज नहीं. ते ग्रंथोमां एवा बे नाना धर्मभेदोनुं वर्णन आपेलुं छे, अने ते तीर्थंकरनी [13] विद्यमानतामां ज उत्पन्न थया हता तेम कहेलुं छे. आ स्थळे हुं गोसाल अने तेना अनुयायीओनी करेली पजवणीनुं वर्णन करतो ज नथी के जेनो महावीरस्वामीना निर्वाण वखते अंत आवी गयो हतो. आ बाबतमां, मारूं एम धारवुं छे के आ धर्मभेदोनो झांखो हेवाल निकायोना रचयिताओने मळ्यो हशे अने तेओए तेने पावामां थएला नातपुत्तना निर्वाण संबंधी तेमणे मेळवेला ज्ञान साथे गुंचवी नांख्यो हशे अने तेथी तेओए आ पावाने, भूलथी तेओनी वधारे परिचित पावा मानी लीधी हती. आखरे मारे कहेवुं जोईए के आ दंतकथामां उपरोक्त तपासना निर्णयने बाधा पहोंचाडे तेवुं एक पण तत्त्व नथी अने महावीर बुद्ध करतां थोडा वखत पाछळ थया हता ते प्रकारना मतने बरोबर बेसती आवती अन्य बे बाबतो हुं नोंधवा इच्छा राखुं छुं.

दी० नि० २, ५७; म० नि० १, ३७७; सं० नि० १, ६६; इत्यादि ग्रंथोमां जैनधर्मने चातुर्याम

11. प्रो. चामर्स ज. रा. ए. सो. १८९५, पृ० ६६५ आदिमां ए उल्लेखोनुं अवतरण अने भाषांतर कर्युं छे.
12. जुओ उपर पृष्ठ
13. सरखावो—लायमान, इन्डियन स्टडीझ्, १७, पृ. ९८ नी नोट.

एटले 'चार यमवाळो' [14] कहेलो छे. परंतु खरी रीते ए महावीरनो धर्म नथी. ए तो तेमनी पूर्वे थएला पार्श्व नामना तीर्थंकरनो प्ररूपेलो धर्म छे. कारण के महावीरे तो पोताना धर्मावलंबीओ माटे पांच व्रतनुं विधान कर्युं हतुं. अने खुद जैनोमां पण "महाव्रतो" नी संख्याना संबंधमां वास्तविक रीते गुंचवण होय तेम जोवामां आवे छे. [15] सामञ्ञफलसुत्त आदि पालीग्रंथोनी आवी रीते वर्णन करवामां भूल थएली हती एम मानवानुं कारण नथी; कारण के आ वर्णन बुद्ध अने महावीर परस्पर वधारे निकटना संबंधमां आव्या ते समयनी जेवी परिस्थिति हती तेनो चितार मात्र छे. अने आ उपरथी आपणे कदाच अनुमान करी शकीए के महावीरे, तेमनो बुद्ध साथे कांईक संबंध थयो हतो ते वखते एटले थोडोक वखत बाद पोताना पांच महाव्रतनो सिद्धांत छेवटरूपे नक्की कर्यो हतो.

आ उपरांत बौद्ध धर्मना ग्रंथोमां मुख्य राजा तरीके मात्र बिंबिसारनुं वर्णन थएलुं छे, अजातशत्रुनो उल्लेख वधारे प्रमाणमां थएलो जोवामां आवतो नथी. आ उपरथी ए हकीकतने टेको मळे छे के अजातशत्रुना राज्यनी शरुआत थई त्यारे आगमच बुद्धनुं जीवन पोताना अवसान संमुख थवा लाग्युं हतुं, अर्थात् तेमनुं जीवन समाप्त थवानी तैयारीमां हतुं. परंतु जैनधर्मग्रंथोमां महावीरना जीवनकालमां कूणिके घणो मोटो भाग भजवेलो छे अने रागीत तेनुं वर्णन वधारे नहि तो निदान तेना पिताना जेटलुं तो थएलुं छे ज. बौद्धो ज्यारे जणावे छे के तेमना तीर्थंकर बुद्ध अने आ राजाओनो परस्पर मेळाप मगधनी जुनी राजधानी राजगृहमां थतो हतो त्यारे जैनग्रंथोमां स्थले स्थले तेमना तीर्थंकर अने कूणिकना मेळापनी भूमी तरीके कूणिकनी नवी राजधानी चंपाने बतावबामां आवी छे. आ बाबत पण खरेखर अजातशत्रुना राज्यना उत्तरकाळनी द्योतक छे.

हवे हुं मारी तपासनी अंते आवी पहोंच्यो छुं. मारे न्यायदृष्टिए जणाववुं जोईए के आ लेखमां लखेली सघळी बाबत एक या बीजा रूपमां आ लेखनी पहेलां ज वर्णित थई गएली छे. परंतु आ प्रकारनुं पिष्टपेषण, आ जातनी सामान्य रूपनी अत्यारनी सघळी शोधोने साधारण छे, अने तेथी ए बाबतमां मने बीलकुल दिलगीरी थती नथी. अत्यार सुधीमां मळी आवेली सघळी हकीकतोनुं भंडोळ एकधार करीने, वाचको समक्ष मूकवानुं मने घणुं ज अनुकूळ लाग्युं छे, कारण के ए द्वारा तेओ आना संबंधमां वधारे योग्य अभिप्राय-पछी ते अभिप्राय उपरोक्त अभिप्रायने अनुकूल थाय के प्रतिकूल थाय-बांधवा शक्तिमान थशे. अने मारुं खास मानवुं छे के महावीरना समयनिर्णयनो प्रश्न घणो ज महत्त्वनो छे अने तेटला माटे जेटलां वधारे साधनो मळे तेटलां बधां साधनो द्वारा विवेचन करवा योग्य छे. जो हुं एटली मोटी आशा न राखी शकुं के सघळा लेखको मारा अनुमानने संमत थशे, के जे अनुमान प्रो. जेकोबीए त्यांसुधी काळ उपर सूचवेलुं हतुं अने जेने में मात्र अन्य नवी दलीलो द्वारा मजबुत करवा ज प्रयत्न करेलो छे, तो पण हुं एटली आशा तो जरूर राखी शकुं छुं के उपरोक्त विवेचन, घणा लांबा समयथी उपेक्षापात्र बनेला एवा आ अति महत्त्वना विषय तरफ तेओ पोतानुं ध्यान दोरशे. मने नहि मळी शकेली एवी घणी नवी माहीतिओ विद्वानोने उपलब्ध थशे अने आ गंभीर प्रश्ननो कोई नवो चूकादो जन्म पामे ए पण बनवुं संभवित छे. अत्यारे तो आनाथी अन्य

14. सरखावो—उत्तराध्ययन सूत्र २३, १२ मो श्लोक, 'चाउज्जामो धम्मो'

15. सरखावो—हेस्टींग्सनी एन्साइक्लोपीडिया, पु. १, पृ० २५४ मां डॉ. होर्नलेनो लेख

प्रकारनो निर्णय थई शके ए मने शक्य लागतुं नथी-के जे निर्णय आ महावीरनिर्वाणना समय साथे संबंध धरावती तेमज तेना उपर आधार राखती अन्य बाबतोने वधारे बंधबेसतो थाय.

टिप्पण—आ निबंधना वाचकने जरुर लाग्युं हशे के में प्रो. गायगर (Geiger) ना महावंशना भाषांतरना (London 1912) उपोद्घातनो बीलकुल उल्लेख कर्यो नथी. वास्तवमां, मारे जणाववुं जोईए के हुं आ निबंध पूरो करी रह्यो त्यांसुधी में ते उपोद्घात वांच्योज न हतो, अने तेथी करीने मारां करेलां केटलांक अनुमानो त्यार आगम च प्रो. गायगरे सावीत करेली बाबतोनी मात्र पुनरुक्ति रूपे जणाशे. परंतु आ प्रसिद्ध विद्वान् सिलोननी परंपराविषयक सघळी बाबतोनुं अपूर्व ज्ञान धरावता होवा छतां तेमनी कालगणनात्मक तपासना मुख्य परिणाम साथे हुं संमत थई शकतो नथी. बुद्धनिर्वाणनी मिति तरीके इ. स. पूर्वे ४७७ मा वर्षने मानवा माटेनां मारां सघळां कारणो-प्रमाणो-में मारा लेखमां आपेलां छे. अने इ. स. पूर्वे ४८३ वर्षथी गणाता सीलोनना संभवित संवत्ना अस्तित्वमात्रथी, मारो मत खोटो होय तेवी मारी खातरी थती नथी. आनुं कारण ए छे के आ संवत्नो पत्तो-उल्लेख ११ मी सदीना पहेलां, बुद्धनिर्वाण पछीना १५०० वर्षना अरसामां, थएलो मळतो नथी. अने प्रो. गायगर ज्यारे अशोकनो अभिषेक इ. स. पूर्वे २६४ नक्की करे छे त्यारे तेओ शिलालेखना प्रमाण तरफ उपेक्षा करता होय तेम जणाय छे; कारण तेमां जणावेलुं छे के अभिषेक पछीनुं १३ मुं वर्ष इ. स. पूर्वे २६० अने २५८ नी वचमां पडे छे. अने ते ज काळना शिलालेखो द्वारा आ प्रमाणे पुरावो मळतो होवाथी, सिलोनना ऐतिहासिक ग्रंथोनुं प्रमाण, स्वाभाविक रीते ज निरुपयोगी निवडे छे.

आ निबंधनो उपसंहार करता पहेलां, हुं मारा निबंधना हस्तलिखित कागळोने अतिशय मायाळुपणे वांची जई अंग्रेजी भाषाना शुद्ध प्रयोगने लगती मारी केटलीक भूलो सुधारी आपनार डॉ. एफ्. डबल्यु. थॉमसना तरफ मारी अंतःकरणनी उपकारवृत्ति प्रकट करुं छुं.

तीर्थंकर वर्धमाननो समय.

[जर्नल ऑफ धी रॉयल एसियाटिक सोसायटी, सन १९१७, पृष्ठ १२२–३० मां प्रकट थएल एस्. वी. वेंकटेश्वरना THE DATE OF VARDHAMANA नामना लेखनो अनुवाद.]

वर्धमान ए आधुनिक जैनधर्मना संस्थापक छे. तथा तेमनो समय ते प्राचीन हिंदुस्थान (आर्यावर्त) नी कालगणनामां एक जूनामां जूनो सीमासूचक स्मरण–स्तंभ छे. आम छतां तेमना निर्वाणना समयना विषयमां घणा मतभेदो छे. जैन तीर्थंकरोना जीवन तथा युगना संबंधमां पौराणिक हकीकतो तो पुष्कळ उपलब्ध थाय छे. परंतु आ परंपरागत कथनोनी विगतो अत्यंत गुंचवणीवाळी तथा परस्पर घणी विरोधात्मक जणाई आवे छे. तेमां वळी केटलीक तो सामान्य पणे खोटी रीते समजवामां तथा समजाववामां आवेली छे. आ लेखमां आ सघळां परंपरागत कथनोने, तेमना युगना रीतरिवाजो, गौतम बुद्धनी साथेनो वर्धमाननो संबंध, तेमज आ बंने त्यागी महापुरुषोनो, मगधना राज्यवंश—के जे वंशनी साथे भारतवर्षना इतिहासना प्रारंभिक काळमां, आ बन्ने धर्मो अत्यंत गाढ संबंध धरावता हता—ते वंशना राजाओ तथा महाराजाओनी साथेना तेमना संबंधने अनुकूल थाय ते रीते समजाववानो यत्न करवामां आवेल छे. भारत वर्षनी, इ. स. पूर्वेनी छट्ठी अने पांचमी शताब्दिनी कालगणनानी साधारण रीते यथार्थ योजना, हिंदू, बौद्ध अने जैन साधनो, के जे अनुक्रमे पुराणो, दीपवंश अने गाथाओमांथी मळी आवे छे, ते साधनोमांथी मळी आवतां अनेकविध कथनोने परस्पर संगत करवाथी, करी शकाय छे. आ प्रकारनी कालगणनानी एक विगतवार योजना गत वर्षना इंडिअन एन्टीक्वेरीमां आपेली छे. तेटला माटे ते ज बाबतनी पुनरुक्ति करवानी अहीं जरुर नथी; मारी पद्धतिनी गणना अनुसार, वर्धमान साथे संबंध धरावता शैशुनाग राजाओनी तारीखो आपवी ज अहीं पुरती थशे. बिंबिसार उर्फे श्रेणियनो समय c ५१३–४८५ इ. स. पूर्वे छे. अजातशत्रु उर्फे कूणिक इ. स. पूर्वे ४८५–४५३, उदय उर्फे उदायी भद्रक, इ. स. पूर्वे ४५३–४३७, अने दर्शक इ. स. पूर्वे ४३७–४१३.[1]

जैनपरंपरा अनुसार वर्धमान श्रेणिय बिंबिसार साथे संबंध धरावता हता. श्रेणियनी राणी चेल्लणा वैशालिना चेटक राजानी पुत्री हती. अने वर्धमाननी माता त्रिशला ते ए राजानी बहेन हती.[2] आ उपरथी बिंबिसारनी राणी ए वर्धमाननी पहेली बहेन (मामानी छोकरी) थाय. आपणने मळी आवती नोंधो उपरथी, वर्धमाननो पोतानी बेन–मगधनी राणी–साथे अगर तो तेना पति बिंबिसारनी साथे वयोविषयक शो संबंध हतो, ते कल्पी काढवूं अशक्य छे. जैन नोंधोमां वर्धमान अने बिंबिसार ए बंनेना परस्पर थएला मेळाप संबंधी घणी ज जूज हकीकत मळे छे. जेकोबीनुं मानवुं छे के उत्तराध्ययनसूत्रना वीसमा अध्ययनमां आवी एक परस्पर थएली मुलाकातनो उल्लेख छे. जो, ते कहे छे तेमज होय तो पण बिंबिसार ए वखते खासो वृद्ध होवो जोइए; अने ए जैन यति तो ते समये तद्दन युवान हता तथा स्पष्ट रीते तरतना ज दीक्षित थएला हता.[3] परंतु वास्तविक रीते, आ अध्ययनमां उल्लिखित जैन यतिने वर्धमान कहेवा ए घणुं शंका भरेलुं लागे छे; कारण–यति एम कहे छे के तेमना पिता कौसाम्बिना (रहीश) छे. ज्यारे आपणे ए तो स्पष्ट जाणीए छीए के वर्धमानना पिता तो वैशालीनी

1 इन्डि० एन्टि० १९१५ पान ४१–५२. 2. कल्पसूत्र (जेकोबीनी आवृत्ति) पा० ११३. 3. S. B. E., Vol. XLV, pp. 100–1.

नजीक आवेला कुण्डग्रामना एक सरदार—उमराव हता. यतिए एम कहेलुं छे के तेमनुं कुटुंब पुष्कळ समृद्धिवान हतुं. परंतु वर्धमानना कुटुंबना विषयमां आवुं कोई खास कथन थएलुं नथी.

अजातशत्रुना विषयमां बौद्धो करतां जैनो घणुं वधारे जाणे छे. तेना राज्यकालना अंतिम समयमां तेनी राजधानी चंपा हती. अने त्यां ज ते मरी गयो हतो[4] एम जाणवामां आव्युं छे. तेणे वर्धमाननी घणी वार मुलाकातो लीधी हती,[5] अने तेनो पुत्र उदायी ते तो खरेखर एक चूस्त जैन हतो. उवासग-दसाओमां [6] गोसालनो मरण समय, कोसल साथे अजातशत्रुना थएला युद्ध बाद बतावेलो छे, अने वर्धमाननुं निर्वाण गोसालना मरण पछी १६ वर्ष थयानुं जणावेलुं छे. जैन सूत्रोमां [7] एम कहेलुं छे के वर्धमानना मामो चेटक, जे वखते अजातशत्रुए चंपा नामनी पोतानी राजधानीमांथी वैशाली उपर हुमलो कर्यो ते वखते, त्यांनो राजा हतो. आ उपरथी आपणे न्यायसर एटलुं अनुमान करी शकीए छीए के ते राजाना भाणेज आ जैन यति, आ बनाव बाद घणा वर्ष सुधी विद्यमान रह्या हता. तेम ज एटलुं तो आ परथी स्पष्ट ज थाय छे के जैनो, अजातशत्रुना राज्यना प्रारंभिक वर्षोना करतां तेना अंतनां वर्षोनी घणी ज वधारे अने चोकस माहीति धरावे छे.

उदय अने दर्शकना राज्योनुं, आ बंने धर्मोनी नोंधोमां घणुं ज झांखुं प्रतिबिंब नजरे पडे छे. सर्व आटली वात तो कबुल राखे छे के अजातशत्रुनो उत्तराधिकारी उदय बन्यो हतो, अने आ वात पुराणोक्त हकीकतो द्वारा समर्थित न थती होवा छतां आपणे ठीक ठीक तेम मानी शकीए छीए. बौद्ध परंपराओनी अनुसार उदय ए अजातशत्रुनो, बिंबिसारनी हयातिमां सुद्धां एक मानीतो पुत्र हतो; तथा पोताना पितानो बुद्धनी साथे मेळाप थयो ते वखते, ए एक युवान पाटवी कुंवर हतो. आथी अजातशत्रुना मरण समये उदय मध्यवयस्क होवो जोईए. परंतु दर्शक, मात्र भासना वासवदत्ता नाटकमांथी ज तेना विषयमां जे फक्त एक परंपरा मळी आवे छे ते अनुसार, गादीए आव्यो ते समये घणो ज जुवान-नानी उंमरनो हतो. आ रीते जोतां, पुराणोमां जणाव्या प्रमाणे अजातशत्रु अने उदयनी वच्चे दर्शक आव्यो हतो तेम मनाय नहि. संभवित छे के जे उदय राजानी गादीए ते आव्यो हतो. ते राजानो, ते एक पुत्र या तो नानो भाई होई शके. बौद्धो उदय विषे आथी वधारे कांई जाणता नथी; परंतु जैन नोंधोमां जणाव्या प्रमाणे, ते (उदय) जैन धर्मनो एक चुस्त अनुयायी हतो, [8] पोताना पितानो उत्तराधिकारी बन्यो हतो तेम ज पाटलिपुत्रनो [9] वसावनार हतो. अने छेल्लुं ए के तेनी कारकीर्दिनो टुंक समयमां ज तेना खूनने लईने अंत आव्यो हतो.

दर्शकना विषयमां, सिलोनना बौद्धो फक्त एटलुं ज जणावे छे के तेनुं नाम नागदसक हतुं. परंतु आ उपरांत तेओ कांई जणावता नथी. दर्शकना राज्यना प्रारंभ कालमां चंडप्रद्योत विद्यमान हतो.[10] चण्ड तथा तेना पुत्र पालकने जैनपरंपराओमां जे महत्त्व आपवामां आव्युं छे ते उपरथी एम अनुमान नीकळे छे के ते युगमां जैनधर्मनुं मुख्य स्थान अने केन्द्र मगध नहि परंतु उज्जैन हशे. तेम ज वर्धमान अने चण्ड ए बंने समकाले देहांत थया हता, ते वात जो खरी होय तो, आपणे मानी शकीए के जैनधर्मना संस्थापके दर्शकनुं राज्य जोयुं हशे.

---

4. हेमचन्द्र रचित स्थविरावली चरित, ६,२१. 5. औपपातिक सूत्र.पृ.३९. 6. होर्नेलनी आवृत्ति. परिशिष्ट १. अने २. पृ. ११०. 7. निरयावली सूत्र, पृ. २७. 8. कल्पसूत्र, op. cit, p. 5. 9. हेमचन्द्र, op. cit जेनी साथे पाटलीपुत्र वसाव्यानी बाबतमां वायुपुराण पण मळतुं छे. 10 भासकृत स्वप्नवासवदत्तम् (त्रिवेन्द्रम् सीरीझ) पृ० ४.

आटली हकीकतो उपरथी एटलो निर्णय थाय छे के वर्धमाननुं निर्वाण गौतमबुद्धनी पछीथी थयुं हतुं. परंतु विद्वानोनो एक एवो मजबुत पक्ष पण रहेलो छे जे आ विचारनी सख्त विरुद्ध छे. उदाहरण तरीके मि. विन्सेन्ट ए. स्मीथ,[11] हजी पण माने छे के वर्धमान ए बुद्धनी पहेलां केटलाक वर्ष थई गया हता. ते लखे छे के जैन यति (तीर्थंकर) "संभवित रीते बिंबिसारना राज्यना अंतनी नजीकना कालमां निर्वाण पाम्या हता." अने गौतम बुद्धनुं निर्वाण "अजातशत्रुना प्रारंभना राज्यकालमां थयुं हतुं." महावीरना निर्वाणना, परंपरागत चाली आवेला समयने माननाराओनो पण आवो ज मत छे. वास्तवमां, तेओ, जैन तीर्थंकरना निर्वाणने, बुद्धना निर्वाण करतां पचासथी वधारे वर्षो पूर्वे मूके छे. आथी करीने आ विषयनी विगतवार तपास करवानी जरूर छे.

मि. स्मीथनो उपरोक्त मत दीर्घनिकाय ३, ११७ आदि, अने मज्झिम निकाय २, २४३ आदिने आधारे उत्पन्न थएलो छे. आ विषयमां, प्रथम तो आपणे ए ध्यानमां राखवुं जोईए के दी० नि० २, २७ आदि अने म० नि० १, ३७७ मां जैनधर्मनो उल्लेख "चातुर्याम" (चार व्रतो वाळा) धर्म तरीके करेलो छे. जैन आगमग्रंथोमां[12] पण ए उल्लेख मळी आवे छे अने ते धर्म वर्धमाननी पूर्वे २५० वर्ष थएला पार्श्वनाथनो हतो. परंतु ते धर्म वर्धमान-जेमणे पार्श्वनाथनां आ चार व्रतोमां पांचमुं ब्रह्मचर्यनुं व्रत उमेरीने पांच व्रतो अमलमां मूक्यां-मूकाव्यां हतां-तेमनो न हतो. बीजुं ए के बुद्ध अने बिंबिसार ए बंनेनो परस्पर अनेक वखत मेळाप थयो हतो[13] अने आ विषयमां एक बौद्धसंप्रदाय[14] तो एटले सुधी कहे छे के बुद्ध अने बिंबिसार ए बन्ने एक ज दिवसे जन्म्या हता. आथी विरुद्ध जैनपरंपरानुं[15] एम कहेवुं छे के वर्धमान अने अवन्तीपति चण्डप्रद्योत ए बंने एक ज दिवसे स्वर्गे गया. भासकृत वासवदत्ता द्वारा आपणे जाणीए छीए के प्रद्योत खरेखर अजातशत्रुना स्वर्गवास पछी तथा उदयना पण देहांत थया बाद पोते हयाती धरावतो हतो. त्रीजी बाबत ए छे के बुद्ध अजातशत्रुना प्रारंभिक राज्यकालमां, पछी ते तेना ५ अथवा ८ मा वर्षमां होय, निर्वाण पाम्या हता ए वात सघळी बौद्धपरंपराओने संमत छे. परंतु जैनपरंपराओ तो एम जणावे छे के वर्धमान कोसलना राजानी साथे अजातशत्रुना युद्ध थई गया पछी ओछामां ओछां १६ वर्ष तो हयाती धरावता हता.

आ उपरांत आ बंने धर्मोना प्राचीनग्रंथोना सामान्य अभ्यास द्वारा एटलुं अनुमान स्पष्ट रीते नीकळी आवे छे के वर्धमान, बुद्धना समयमां नहि, परंतु तेमना केटलांएक वर्षो पछी जन्म्या हता. प्राचीन बौद्ध ग्रंथोमां[16] जैनोना भिन्न भिन्न संप्रदायोना उल्लेखो थएला छे जेवा केः—पार्श्वनाथ; वर्धमान अने पुराण काश्यप एमना अनुयायीओ. आ काळे तेमने विविध धार्मिक पंथो रचवानो हतो. तीर्थंकर ए शब्द जेनो अर्थ बौद्धो "पाषंडीमतनो संस्थापक" एवो करे छे, ते शब्दनो जैन ग्रंथमां थएलो अर्थ "धर्मनो संस्थापक" छे. हवे तैर्थिक अगर तो पाषंडीमतोना खास खास संस्थापकोनो विचार करतां, जैनग्रंथोमां नोंधाया प्रमाणे, गोसाल ए सौथी प्रधानपद भोगवे छे; परंतु बुध्धना विरोधी तरीके तेनुं

11. Early History of India, 3 rd., ed., p. 33
12. उदाहरण तरीके जुओ उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २३.
13. जुओ, से. बु. इ. पुस्तक ५० (इन्डेक्स) प्रमाणमांहे पा. ९९
14. Rockhill, Life of the Buddha (Citing *Dulva*, XI.), p. 16.
15. The Literary Remains of Dr. Bhau Daji, p. 130.
16, सरखावो-महावग्ग ८, ५, ३; अंगुत्तरनिकाय ३, ३८३.

स्थान एटलुं मोटुं जोयामां आवतुं नथी. आपणे जाणीए छीए के गोसाल वर्धमाननी पहेलां १६ वर्ष मरी गयो हतो तथा तेणे आजीविक नामे एक सुप्रसिद्ध पंथ स्थाप्यो हतो. जो ते गोसाल बुद्धनो समकालीन होत तथा एक विरुद्ध पंथना संस्थापक तरीके प्रसिद्धि भोगवतो होत तो आपणे सहजे आशा राखी शकिए के, तेनो प्राचीन बौद्धग्रंथोमां, तेवा रूपमां जरूर उल्लेख करवामां आव्यो होत. तेमज जमालि नामनो वर्धमाननो एक प्रसिद्ध समकालीन पुरुष, के जेणे जैनधर्ममां पहेलो पक्षभेद उभो कर्यो हतो, तेना विषयमां पण बौद्धोने कशी माहीति नथी. अंतमां जैनग्रंथोमां वर्णववामां आवेलुं तत्त्वशास्त्र ए सांख्य तेम ज वेदांत बंनेथी विरुद्ध छे. परतुं बौद्ध तत्त्वशास्त्रनो पायो आ बे प्राचीन धर्मो उपर मंडायलो छे; तथा तेमां (बौद्ध दर्शनमां) पाछळना वखतमां व्यवस्थित थएल वैशेषिक दर्शननो क्यांए पण उल्लेख थएल नथी; परंतु, एनाथी उलटुं, जैनदर्शने, जेम डॉ. भाण्डारकर स्पष्ट रीते जणावी आप्युं छे [17] तेम " ते एक बाजुए सांख्य अने वेदांत अने बीजी बाजुए वैशेषिक ए बंनेनी वच्चे करेला समन्वयना रूपनुं छे. "

हवे आपणे वर्धमानना समय साथे कोईपण रीते संबंध धरावती एवी जुदी जुदी परंपरागत हकीकतोने तपासीए.

१. आ परंपराओमां प्रथम उल्लेखनीय एवी एक सुप्रसिद्ध गाथा छे. आ गाथाने दिगंबरो तथा श्वेतांबरो—बंने संप्रदायो माने छे, अने तेनुं तात्पर्य ए छे के महावीरनुं निर्वाण ' विक्रमनी पूर्वे ४७० वर्ष ' थयुं हतुं. परंतु डॉ. हॉर्नलना [18] जणाव्या मुजब आ गाथानो अर्थ बंने संप्रदायो जुदी जुदी रीते करे छे. दिगंबरो आने विक्रमना जन्मथी गणे छे त्यारे श्वेतांबरो तेना राज्याधिरोहणना समयथी. आ गाथा साथे विक्रमनुं नाम जोडाएलुं छे ते उपरथी तेने एक अर्वाचीन परंपरादात्री मानी अने ते रीते ऐतिहासिक दृष्टिए महत्त्व विनानी गणीने तेनो इनकार करवानो नथी. कारण के आ गाथानुं स्वरूप निःशंक आधुनिक होवा छतां पण ए शक्य छे के ते कोई एक प्राचीन परंपराने आधारे रचाएली होय. अने तेम मानवाने माटे अधिक मजबुत कारण ए छे के ए गाथा बंने संप्रदायने मान्य छे.

आ गाथाविषयक जे खरो प्रश्न छे ते तेना अर्थना संबंधमां छे. प्रॉ. कीलहॉर्न [19] एम जणावे छे के इ. स. पूर्वे ५८ वर्षे शरु थएला संवत् साथे विक्रमनो संबंध छेक ९ मी अने १० मी शताब्दिमां उत्पन्न थवा मांड्यो हतो. अने आ संवतने विक्रमादित्ये स्थापित कर्यो हतो एवो खास उल्लेख, पहेल पहेलो, सन ११९८ ना एक शिलालेखमां जोवामां आवे छे. परंतु आ उल्लेखनीय संवत्‌ना विषयमां एक बाबत प्रॉ. कीलहॉर्नने विचारवी रही गई छे के बारमी शताब्दिमां विक्रमसंवत् ने अनंदविक्रमसंवतना नामे लखवानी एक खास गणना पद्धति उभी थई हती. आ अनंदविक्रमसंवत् [20] लगभग इ. स. ३३ मां एटले पहेला विक्रमसंवत् पछी ९० अगर ९१ वर्षे शरु थयो हतो. बीजी 'सनंद' नामनी गणना पद्धति इ. स. पूर्वे ५८ अगर ५७ वर्षे उत्पन्न थई हती. चन्द बरदाई नामना ते ज (१२ मी) शताब्दिना प्रसिद्ध कविए पोताना काव्यमां आ गणत्रीनो अथथी ते इति सुधी उपयोग करेलो छे. आ उपरथी एटलुं स्पष्ट थाय छे के विक्रमसंवतनी गणतरीनी आ सनन्द अने अनन्द ए बंने रीतिओ, जे समये प्रस्तुत गाथाने वर्तमान रूपमां मूकवामां आवी ते समये, प्रचलित हती.

17. जुओ तेमनो रिपोर्ट सन १८८३–८४, पृ. १०१ आदि. 18. Inp. Ant. XX p. 360

19. Ind. Ant. XIX and XX. 20. J. R. A. S., 1906, p. 500

हवे जो आपणे सनन्दगणतरी स्वीकारीए तो तदनुसार निर्वाणसमय इ. स. पूर्वे ५२७ मां मूकाय परंतु आपणे जेम पाछळ जोई गया, वर्धमान बुद्धनी पछी थएला होवाथी आ तारीख प्रकट रीते असंभवीत छे. तेथी परिणामे गाथामां उल्लेख करवामां आवेल विक्रमसंवत् ते इ.स.३३मां शरु थएल अनन्द विक्रम संवत् होवो जोईए. इ. स. ३३ थी पूर्वे ४७० वर्ष गणतां वर्धमानना निर्वाणनी तारीख तरीके इ. स. पूर्वे ४३७ मुं वर्ष आवे.

२. हवे आपणे ते परंपरागत हकीकत [21] तपासीए, जेनी अनुसार मौर्यवंशीय चंद्रगुप्त-राजानुं राज्याधिरोहण वीरनिर्वाण पछी १५५ वर्षे बतावेलुं छे. चंद्रगुप्तना राज्याधिरोहणनी सौथी वधारे संभवित तारीख [22] ग्रहण करतां निर्वाणना समय तरीके आपणे ३१९+१५५= ४७४ इ. स. पूर्वेनुं वर्ष प्राप्त करीए छीए. परंतु जैन गणत्रीमां भूल थई होय तेम जणाय छे. कारण के तेमां ज्यारे पालकना राज्यनां ६० वर्ष आपेलां छे, त्यारे पुराणोमां तेना राज्यकालना फक्त २४ अगर २८ वर्षो ज गणावेलां छे. [23] मत्स्यपुराण जेवा सौथी प्राचीन पुराणमां पालकनां राज्यनां फक्त २८ वर्षो जणावेलां छे. आ रीते मात्र पालकना ज राज्यकालमां ३२ वर्षनो तफावत पडे छे. नंदोना संबंधमां एम छे के हेमचंद्रे तेमना राज्यकाल तरीके ९५ वर्षो गणेलां छे. परंतु आपणी कालगणनानी पद्धति अनुसार उदयना मरण पछीना नंदोना—मात्र एकला नंदोनो ज जैन ग्रंथमां विचार करवामां आवेलो छे—राज्यनां बराबर ९० वर्ष सिद्ध थाय छे. जैन गणतरीमां आ भूलो छे एम जो स्वीकारी लईए तो आपणे वर्धमानना निर्वाण समय तरीके ४७४-(३२+५), एटले इ. स. पूर्वे ४३७ मुं वर्ष नक्की करी शकीए.

३. हवे आपणे ते परंपरागत हकीकत [24] तरफ फरीशुं, जेमां कहेलुं छे के महावीर पछीना सातमा पट्टधर स्थूलभद्र ते नवमा नंदना मंत्री हता तथा जे काळे चंद्रगुप्ते नंदनु खून कर्युं हतुं ते अरसामां स्वर्गे गया हता. जो के आपणे सम्राट् अने यति ए बंनेना मरणोनी समकालीनता जेवा मुद्दा उपर वधारे भार न मूकीए छतां आ मुद्दाना संबंधमां एटली नोंध लेवा जेवी छे के ते गणतरी आपणी तारीख साथे बंध बेसे छे. एटलुं याद राखवुं जोईए के गणधरो या पट्टधरोनी परंपराना विषयमां लगाडेली वर्षोनी सरेराश, वंशनी माफक ज बराबर बंधबेसी शकती नथी. अने एनुं कारण ए छे के पट्टधरनी बाबतमां उत्तराधिकारी केटलीक वखत एक मोटी उंमरनो होवाथी तेना पूर्वजनो समकालीन गणाय छे; नहि के तेनो पछीनी नवी पेढीनो. मारा मतनी पुष्टिमां हुं तपागच्छनी[25] पट्टावलीमांथी तेमज लक्ष्मीवल्लभना कल्पद्रुममांथी वर्ष संख्याओ टांकुं छुं. आ बंने ग्रंथोमां—ए वात परस्पर मळती आवे छे के वर्धमान पछी ३७६ या ३८६ वर्षना कालमां २३ स्थविरो थया हता. आ उपरथी आपणे प्रत्येक पेढिनां १६ अगर १७ वर्षो मेळवी शकीए छीए. वर्धमाननी जे निर्वाण तारीख आपणे नक्की करी छे तेनी साथे संगत राखवा खातर चंद्रगुप्त सुधी थएली स्थविरोनी सात पेढिओना ११८ वर्ष नक्की करवां जोईए. अने आ वर्षसंख्या, उपर प्रत्येक पेढि माटे मेळवेली वर्षसंख्या साथे मळती थाय छे.

---

21. हेमचंद्र एनो उल्लेख कर्यो छे अने मेरुतुंगे तेनो समालोचना करी छे.
22. Dr. Hultzsch's, in JRAS., 1914.
23. वायु अने ब्रह्माण्ड पुराणमां २४ तथा मत्स्यपुराणमां २८ वर्ष आपेलां छे.
24. जुओ स्थविरोनी सूचि. SBE, xxii, pp. 278, 289. तथा इन्डि. एन्टि. पु. ११, २४६.
25. Ind. Ant. XI, 251.

४. अंतमा, आपणे वर्धमान अने अवन्तीपति चण्डप्रद्योत ए बंनेना अवसानना समकालीनता बतावनारी परंपराना संबंधमां विचार करीए. अहींआं पण आपणे आ समकालीनताने अक्षरशः न लई शकीए छतां पण एटलुं तो स्वीकारी शकाय के आ महात्मा तथा राजा बंने लगभग सरखा समये देहांत पाम्या हशे. भासना वासवदत्तामां जे एक परंपरा आवेली छे तदनुसार चण्डप्रद्योतनुं मरण मगधना दर्शकना राज्यना प्रारंभमां (४३७-४१३ इ. स. पूर्वे) थयुं होवुं जोईए. कारण एम छे के, भासे, प्रद्योत पासे तेना पुत्रने माटे दर्शकनी बहेननुं मागुं करावेलुं छे. आ नाटकना पोताना जर्मन अनुवादमां प्रो. जेकोबी एवो मत धरावे छे के आ प्रद्योत "प्रायः महासेननो पुत्र छे." परंतु मारी पासे स्पष्ट पुरावा छे के ते महासेननो पुत्र नहि पण खुद महासेन ज हतो. बीजा अंकमां भासे जणावेलुं छे के "प्रद्योत जे महासेन कहेवाय छे तेनुं कारण तेनी मोटी सेना छे."[26] छठ्ठा अंकमां प्रद्योतनी राणी उदयनने कहे छे के "तुं अमारा पुत्र गोपाल बालकना जेटलो वहालो अमारो जमाई थयो छुं."[27] बौद्धग्रंथो द्वारा आपणे जाणीए छीए के उदयने चंडप्रद्योतनी पुत्रीनुं हरण करी तेनुं पाणिग्रहण कर्युं हतुं.

हवे मात्र एटलुं ज बताववानुं रह्युं छे के-भासनी आ कथा एक प्राचीन अने विश्वासपात्र परंपराने आधारे रचाएली छे. ते कथानी अंदर लावाण्यकनुं दहन अने प्रद्योतनी पुत्रीनुं कल्पित मरण ए एक मुख्य सांकळ छे अने आ बाबतमां आ कथाने बौद्ध दिव्यावदान[28] द्वारा पुष्टि मळे. भासे प्रद्योतने जे महासेननो विरुद आपेलो छे तेने बाणना कथननुं पण समर्थन मळे छे. कारण के बाणे पण हर्षचरित्रमां[29] ते राजाने ते ज उपनाम आपेलुं छे गोपालपालक एवुं नाम विष्णुपुराणमां पण मळी आवे छे. परंतु अन्य पुराणो अने जैन मेरुतुंग तेनुं नाम फक्त पालक एटलुं ज आपे छे, अने आ नाम ते घणुं करीने तेना पूर्ण नामनुं एक रूपान्तरित संक्षिप्त नाम छे. भासे आ रीते स्पष्ट रूपे एक प्राचीन परंपरानो उपयोग करेलो होवाथी आपणे तेनी कथाने स्वीकारीए के चंडप्रद्योत दर्शकना राज्याधिरोहण पछी पण हयाती धरावतो हतो. आ कथन जो खरुं होय तो तेनुं अने वर्धमाननुं अवसान इ. स. पूर्वे लगभग ४३७ वर्षनी पहेलां होई शके नहि.

आ रीते इ. स. पूर्वेनुं ४३९ मुं वर्ष अगर तो अनन्दविक्रमनुं ४७० मुं वर्ष ते जैन कालगणनाविषयक प्राचीन परंपराओने पूर्ण करतुं जणाय छे. तेमज आ हिंदु, बौद्ध अने जैन पुराकाळोना आधारे ए युगना सामान्य इतिहासना संबंधमां जे जाणीए छीए तेनी साथे पण बंध बेसतुं थाय छे.

---

26. त्रिवेन्द्रम् संस्कृत ग्रन्थावलीमां मुद्रित पृ० २०

27. तेज पुस्तक. पृ० ६९.

28. जुओ, अवदान ३६.

29. हर्षचरित उच्छ्वास, ६, पृ २२१ (In the Bombay edition of the Text.)

मेरुतुंगाचार्यनी स्थविरावली.

[जर्नल ऑफ धी बॉम्बे ब्रँच ऑफ धी रॉयल एसियाटिक सोसायटी, भाग ९ (सन् १८६७-७०) मां प्रकाशित डॉ. भाउ दाजीनो निबन्ध]

इ. स. नी पंदरमी (? चौदमी) शताब्दिमां मेरुतुंग नामना एक जैन आचार्य थई गया छे. तेमना रचेला ग्रंथो पैकी चार ग्रंथोनी नकलो मारी पासे छे. एक प्रबंधचिंतामणि; जेनो फॉर्बससाहेबे रासमाला नामे गुजरातनो इतिहास लखवामां सारो उपयोग करलो छे. बीजुं महापुरुषचरित्र; जेमां अनेक अतिप्राचीन जैन सत्पुरुषोनां चरित्रो वर्णववामां आव्यां छे. त्रीजानुं नाम षड्दर्शननिचार छे. आ ग्रंथमां, जैन, बौद्ध, सांख्य, जैमिनीय अथवा मीमांसा, औलुक्य अथवा कणाद् अने गौतमीय एम छ दर्शनोनुं संक्षिप्त वर्णन करेलुं छे. अने चोथा ग्रंथनुं नाम थेरावली छे. आमां स्थविरोनी एक वंशावली याने परंपरा आपेली छे. आ छेल्लो ग्रंथ, ते, कालगणनात्मक अने ऐतिहासिक मुद्दावाळी केटलीक प्राचीन गाथाओना उपर एक टीकारूप छे. आ सघळा ग्रंथो संस्कृत भाषामां रचायल छे परंतु तेमां प्राकृत भाषानी गाथानां अवतरणो आपेलां छे. मारी पासे छ भिन्न भिन्न जैन सूरिओ या पंडितोनी रचेली छ संपूर्ण पट्टावलीओ छे. अने बीजी पण केटलीक पट्टावलीओना अंशो छे परंतु तेमांनी एके ऐतिहासिक रसिकतानी दृष्टिए मेरुतुंगनी थेरावलीने पहोंची शके तेवी नथी. प्रबंधचिंतामणि ग्रंथ, तेमां अंते जणाव्या प्रमाणे, संवत् १३६७ एटले इ.स. १४२३(? १३१० जोईए– संपादक) मां काठीआवाडमां आवेला वर्धमानपुर अर्थात् वढवाण शेहरमां, रचेलो हतो.

पट्टावलीनो सार नीचे मुजब छेः—

कार्तिक वदी १५ ने दिवसे श्रीमहावीर तीर्थंकरनुं निर्वाण थयुं. आ बाबत कल्पसूत्र नामना ग्रंथमां वर्णवेली छे. एक प्राचीन गाथानो पण आ स्थळे उल्लेख करेलो छे. ते गाथामां एम जणावेलुं छे के जे रात्रिए अर्हन् तीर्थंकर महावीर निर्वाण पाम्या तेज रात्रिए अवन्ती (मालवा) नो चंडप्रद्योत नामनो राजा पण मरण पाम्यो. तेनी पछी तेनो पुत्र पालक अवन्तीनी गादी उपर अभिषिक्त थयो. मेरुतुंग पोतानी तारीखो अने कथनोना प्रमाणमां रूपांतरित मागधीमां रचेली गथाओनो उल्लेख करे छे, अने ते गाथाओने संस्कृतगद्यमां विवरणपूर्वक समजावे छे.

आ पालक राजानुं राज्य ६० वर्ष चाल्युं; ते वखते पाटलिपुत्रमां राज्य करता कूणिकना पुत्र उदायीनुं खून थयुं. * आ राजाने संतान नहि होवाथी नापित-गणिकाथी उत्पन्न थएल नंदनो, पांच देदिप्यमान आभूषणथी भूषित एवा मुख्य हस्तीनी पसंदगी अनुसार, राज्याभिषेक थयो. परिशिष्ट पर्व (हेमचंद्रकृत) मां एवुं वर्णन मळी आवे छे के " वर्धमान स्वामी (अर्थात् वीर) ना निर्वाण पछी साठ वर्षो वीती गयां पछी आ नंद राजा थयो अने तेनी पाछळ एक पछी एक एम अनुक्रमे नव नंदो पाटलिपुत्रनी गादीए आव्या. तेमनुं राज्य कुल १५५ वर्ष चाल्युं" आम वीर पछी २१५ वर्ष थाय पण परिशिष्ट पर्वमां एम पण कहेलुं छे के महावीरनिर्वाण पछी १५५ वर्ष चंद्रगुप्त राजा थयो. तेटला माटे मेरुतुंग आ हकीकत विचारणीय छे एम जणावे छे, कारणके आ हकीकत प्रमाणे ६० वर्ष ओछां थाय छे. तेम अन्य ग्रंथोनी हकीकतो साथे पण आ बाबत विरोध धरावे छे.

* कौणिक अगर कूणिक ते श्रेणिकनो पुत्र हतो. आ श्रेणिक भंभासारना नामे ओळखाय छे अने ते बौद्ध ग्रंथोमां वर्णवेलो राजगृहनो राजा बिंबिसार ज हतो.

त्यारपछी १०८ वर्ष मौर्य राज्य चाल्युं. चाणाक्ये नवमा नंदने गादी उपरथी दूर करी चंद्रगुप्त आदि मौर्य राजाओने पाटलिपुत्रनी राज्यगादी उपर स्थापित कर्या. एम वीर पछी ३२२ वर्ष वीत्या. मौर्यराज्य पछी पुष्यमित्रे ३० वर्ष राज्य कर्युं.

त्यारबाद बलमित्र अने भानुमित्रे ६० वर्ष सुधी राज्य कर्युं. आ राजाओ ते उज्जयिनीनी गादी उपर थई गएला तेज नामना राजाओथी जुदा हता. कल्पचूर्णि (कल्पसूत्रनी एक टीका) मां एवी हकीकत आपेली छे के आ राजाओए (उज्जयिनीना) चतुर्थी पर्वना संस्थापक कालिकाचार्यने पोताना राज्यमांथी बहिष्कृत कर्या हता. तेमना पछी चालीस वर्ष नभोवाहने, जे केटलांक स्थळोमां नरवाहनना नामथी ओळखाय छे तेणे, राज्य कर्युं. आ बनावनो समय वीर-निर्वाण पछी ४५३ वर्षे आवे छे. अने आ वर्षे गर्दभिल्लने निर्मूळ करनार कालिकाचार्य, मानपूर्ण सूरिपद पाम्या. नभोवाहन पछी गर्दभिल्ले १५२ वर्ष राज्य भोगव्युं अर्थात् गर्दभिल्लवंशनु राज्य कुल १५२ वर्ष रह्युं. नभोवाहन पछी गर्दभिल्ले उज्जयिनीमां ज्यारे १३ वर्ष मात्र राज्य कर्युं हतुं ते वखते, कालिकाचार्ये पोतानी बेन सरस्वती उपर करवामां आवेला जुलमने कारणे गर्दभिल्लनुं निषूदन कर्युं, अने उज्जयिनीमां शक राजाओने स्थापित कर्या. तेओए त्यां चार वर्ष राज्य कर्युं अने ते रीते कुल १७ वर्ष थयां.

गर्दभिल्लना पुत्र विक्रमादित्ये उज्जयिनीनुं राज्य पाछुं लीधुं अने सुवर्णना दानथी विश्वना करजने दूर करीने विक्रमसंवत् नामे नवीन संवत्सर प्रवर्ताव्यो. आ (युग) नी स्थापना वीरना वार्षिक दानना वर्षथी * शरु थता वीर संवत् ५१२ वर्षे करवामां आवी.

विक्रमना राज्यकालनां	६०	वर्षो.
तेनो पुत्र विक्रम चरित्र उर्फे धर्मादित्यना राज्यकालनां	४०	,,
तेना पछी थएला राजा भाइल्लना राज्यना ,,	११	,,
,, ,, नाइल्लना राज्यना ,,	१४	,,
,, ,, नाहडना ,, ,,	१०	,
	१३५	,,

आ राजाना समयमां श्रीमहावीरनुं यक्षवसति नामनुं मोटुं चैत्य, जालोर नजीक आवेला सुवर्णगिरिना शिखर उपर, एक वेपारी (श्रेष्ठि) ए पुष्कळ द्रव्य (९९ लाख) खरची बंधाव्युं हतुं. विक्रम पछीना १३५ वर्षमां १७ वर्ष उमेरतां १५२ वर्ष थाय छे, अने (गाथामां) पण तेमज कहेलुं छे. विक्रमराज राज्यकाल एटले के विक्रमनां वंशात्मक वर्षनी नभोवाहननी पछी १७ वर्षे शरुआत थई; विक्रम संवत् अगर राज्यारंभ ते विक्रमना राज्यथी, अथवा मेरुतुंगनी कल्पनानुसार विक्रमराज्यकालना १७ मा वर्षथी, शरु थयो. तेथी १५२-१७=१३५ वर्षो विक्रमकालयुगनां थाय छे. जिनकाल ते विक्रमकालनी पहेलांनो जिनवीरनो काल छे. आ ४७० वर्षनो काल ते श्रीमहावीर अने विक्रमनी वच्चेना कालनी बराबर छे. श्रीवीर अने विक्रमादित्यना काल या संवतनी गणत्री केवी रीते करवामां आवी हती? विक्रमना राज्यनी शरुआत पहेलां ४७० वर्ष श्री वीरनुं निर्वाण थयुं हतुं, एटले के विक्रमना राज्यनी शरुआत वीरनिर्वाण बाद ४७० वर्षे थई.

* दाननुं वर्ष के जे नवा संवतनी स्थापनानुं एक मुख्य कारण छे. राजा आखुं वर्ष अतिशय सुवर्णराशि दानमां आपे छे त्यारे ते प्रवर्ते छे एम मानवुं छे. महावीर पोताना मरण अगाउ ४२ मा वर्षमां तेम कर्युं हतुं एम कहेवाय छे.

पालक	६०	विक्रमादित्य	६०
नन्द	११५	धर्मादित्य	४०
मौर्य	१०८	भाइल्ल	११
पुष्यमित्र	३०	नाइल्ल	१४
वलमित्र / भानुमित्र	६०	नाहड	१०
नभोवाहन	४०		१३५
गर्दभिल्ल	१३		४७०
	४७०	कुल संख्या	६०५

शक संवतनी आ वखते—वीरनिर्वाण पछी ६०५ वर्षे भारत (हिंदुस्थान) मां शरुआत थई हती.

आटली वावतोनुं वर्णन करीने मेरुतुंग अनेक स्थविरो (थेरो, एटले महान् यतिओ) ना पट्टप्रतिष्ठाकाल (सूरि पदवी उपर प्रतिष्ठापन) नी तारीखो आपे छे.

श्रीवीरना निर्वाणथीः—

सुधर्मस्वामीनुं पट्टाधिरोहण ...... २० वर्षसुधी
जंबुस्वामीनुं ,, ... ४४ ,,
६४

परिशिष्ट पर्वमां एवुं लखेलुं छे के जंबुए वीरनिर्वाण पछी ६४ वर्ष आयुष्य भोगवी, पोतानी पाटे कात्यायन गोत्रना प्रभवने स्थापित कर्या; अने सर्व कर्मथी निवृत्त थई अक्षय्य स्थानने पाम्या.

प्रभव	११ वर्ष
सय्यंभव	२३ ,,
यशोभद्र	५० ,,
संभूतिविजय	८ ,,
भद्रबाहु	१४ ,,
	१७०

आ रीते वीरनिर्वाण पछी १७० वर्ष थयां. परिशिष्ट पर्वमां जणावेलुं छे के वीरनिर्वाणथी १७० वर्षो वीत्या पछी भद्रबाहु समाधिपूर्वक स्वर्गे गया.

स्थूलभद्र	४५ वर्ष अर्थात् वीरनिर्वाणथी २१५ वर्ष
आर्यमहागिरि	३० ,,
आर्यसुहस्ति	४६ ,,
गुणसुंदर	४४ ,,
	३३५ वर्ष

आ समये (अणुनिगोद व्याख्याता) कालिकाचार्य प्रादुर्भूत थया. कालिकाचार्यनां अणुनिगोद उपरनां व्याख्यान सांभळवा इन्द्र आव्यो हतो ते वात फरीथी संक्षेपमां पुनरावृत्त करी छे. कालिकाचार्य प्रज्ञापनोपांग सूत्रना कर्ता छे. मूळमां १४० नो अंक आप्यो छे जे नकल करनारनी प्रकट भूल छे. कारणके आना प्रमाणमां परिशिष्टपर्वनी जे एक गाथा टांकेली छे तेमां १७० होवानुं जणावेलुं छे ते वीर पछीना ११ गणधर सहित पट्टधरोमांना २३ मा पट्टधर हता. सिद्धांतमां ते श्यामार्यना नामे ओळखाय छे.

कालिकाचार्य	४१ वर्ष
स्कंदिलसूरि	३८ ,,
	४१४ वर्ष

आ आप्या पछी मेरुतुंगाचार्य वृद्धसंप्रदाय एटले प्राचीनपरंपरागत कथनो नोंधे छे. स्थूलभद्रना आर्यमहागिरि आर्यसुहस्ति नामे बे शिष्यो हता.

आर्यमहागिरि शाखा ते मुख्य शाखा छे अने ते स्थविरावालीमां नीचे प्रमाणे आपवामां आवी छेः—

बलिस्सह सूरि		रेवइसिंहो	(रेवतिसिंह)
सांयि	(स्वाति)	खंडलो	(स्कंदिल)
सामज्जो	(श्यामार्य)	हिमवं	(हिमवान्)
संडिलो	(शांडिल्य)	नागज्जुणो	(नागार्जुन)
जियधरो	(जित-धर)	गोविंदो	(गोविन्द)
अज्जसमुद्दो	(आर्यसमुद्र)	भूयदिन्नो	(भूतदिन्न)
मंगू	(मंगु)	लोहित्यो	(लौहित्य)
मंडिल्लो	(मंडिल)	दूसगणि	(दुष्यगणि)
नागहत्थि	(नागहस्ती)	देवड्ढी	(देवर्धिन्)

आ देवर्धी ते वीरथी २७ मा पट्टधर हता. तेमणे संपूर्ण सिद्धान्त, रखेने ते नष्ट थई जाय, तेटला माटे लखाव्यो.

कल्पसूत्रमां आपेली बीजी शाखा नीचे प्रमाणे छेः—

अज्जसुहत्थि	(आर्यसुहस्ति)
सुट्ठिय	(सुस्थित)
इंदादिन्नो	(इन्द्रदिन्न)
अज्जदिन्नो	(आर्यदिन्न)
सिंहगिरि	(सिंहगिरि)
वइरसामी	(वज्रस्वामी)
सोपारग वइरसेनो	(सौपारक वज्रसेन)

परंतु आ शाखाओमां आर्यसुहस्तिनी पछी गुणसुंदरनुं नाम आवतुं नथी; तेमज श्यामार्यनी पछी स्कंदिलाचार्यनुं नाम पण नथी. परंतु मेरुतुंगे पुरातन यादीओमां तेओना नामनो निर्देश थएलो जोवाथी अहीं पण तेमणे ते नामो वचमां मूकी देवानी हिंमत करी छे. आवी ज बाबत रेवतिमित्रना संबंधमां जाणवानी छे. स्कंदिल पछी ३६ वर्षे रेवतिमित्र थया हता. (अने तेमना पछी), आर्य मंगु २० वर्षे एटले आ काळ ते वीरनिर्वाण पछी ४७० वर्षनो काळ थयो. (वीरनिर्वाणथी) ४५३ वर्ष थयां पछी कालिकसूरि जेमणे गर्दभिल्लनो विनाश कर्यो हतो तेओ थया. तेमना पछी २४ वर्षे आर्यधर्म थया केटलाकनुं एम मानवुं छे के मंगु अने धर्म ए बंने एकज व्यक्तिनां नामो छे. तेओना मते आर्यधर्मनो काल ४४ वर्षनो बने छे.

भद्रगुप्त	३९ वर्ष
श्रीगुप्त	१५ ,,
श्रीवज्र	३६ ,,

आ समय वीरनिर्वाण पछी ५८४ वर्षनो छे. तदनंतर श्री आर्यरक्षित १३ वर्ष, पुष्यमित्र २० वर्ष पट्टधर रह्या. आमणे यथार्थ रीते सूत्रार्थनो बोध कराव्यो हतो. आ प्रमाणे आपणे वीरथी ६१७ मा वर्षमां आवीए छीए. आ समये शक संवत्सरनी शरुआत थई. (नकल अत्रे दोषयुक्त छे अने उल्लिखित गाथा मेळववानी जरुर छे.)

साधारण रीते नीचे लखेल कथन उपलब्ध थाय छेः—

अगाउ (प्राचीन समयमां) चंद्रगुप्त राजाना समयमां बार वर्षनो दुष्काळ पडवाथी उत्कृष्टलब्धि (उत्कृष्ट ज्ञानना ग्रंथो) अने बीजा हजारो प्रकीर्णको नष्ट थयां. बहलस्स अने बलिस्सह आ बंने एकज व्यक्तिनां नामो हतां. स्थविरावलीमां आर्य मंगुनी पछी भिन्नशाखामां उत्पन्न थएला एवा आर्यधर्म, भद्रगुप्त, वज्रस्वामी अने आर्यरक्षितनां नामो मुकेलां छे. अने आम करवानुं कारण एटलुंज हतुं के ते व्यक्तिओ नामांकित या प्रधानपुरुष हता. रेवतिसिंह सूरि ते ब्रह्मद्वीपकथी भिन्न छे. त्यारपछी वज्रस्वामीना समयमां फरीथी १२ वर्षनो दुष्काळ पडवाथी सिद्धान्तनुं व्याख्यान बंध थयुं. परंतु ज्यारे फरी आबादी थई त्यारे स्कंदिलाचार्ये मथुरामां संघने एकठो करी फरीथी सिद्धान्तनी वाचनानो आरंभ कर्यो. अने आ वर्णन "जेसि इमो अणुओगो" थी शरु थती गाथा अनुसारे मानवामां आवे छे.

बीजी शाखामां, आर्यसुहस्तिना १२ अंतेवासीओमांना सुस्थित नामे पांचमा अंतेवासी हता. तेमनी द्वारा कोटिकगणनी उत्पत्ति थई. अने कल्पसूत्रमां एम जणावेलुं छे के एलावत्य गोत्रना आर्यमहागिरिने उत्तरथेरो नामना प्रथम अने षडुलुक उर्फे रोहगुप्त जे आठमा अंतेवासी हता तेओना उपरांत आठ शिष्यो हता. छेल्ला अंतेवासी षडुलुक उर्फे रोहगुप्तद्वारा कल्पसूत्रमां जणाव्या प्रमाणे त्रैराशिक शाखानो प्रादुर्भाव थयो.

आवश्यकसूत्रमां भिन्नभिन्न निन्हवोनो समय नीचे प्रमाणे आपेलो छेः—

प्रथम निह्नव (जमालि) वीर प्रभुने केवळ ज्ञान थया पछी १४ मे दिवसे (? वर्षे) थयो.

बीजो (तिष्यगुप्त)	१६ वर्ष
त्रीजो (अव्यक्त)	२१४ ,,
चोथो (समुच्छेदिक)	२२० ,,
पांचमो (गंग)	२२८ ,,
छठ्ठो (रोहगुप्त त्रैराशिक)	५४४ ,,
सातमो (गोष्ठा माहिल)	५८४ ,,
आठमो (दिगंबर पंथ)	६०९ ,,

हवे विचारो के षडुलुक रोहगुप्त आर्यमहागिरिनो शिष्य होय तो ते समये वीर पछी ५४४ वर्षो केवी रीते व्यतीत थयां होय? आर्यमहागिरि ए स्थूलभद्रना शिष्य हता. अने स्थूलभद्र उपर समजाव्या प्रमाणे वीरनिर्वाण पछी २४५ वर्षे उत्पन्न थया हता. आथी (आर्यमहागिरिना) अंतेवासीने वीर पछी ५४४ मा वर्षमां मूकी शकाय ज नहि.

आ संदेहनिराकरण माटे बहुश्रुत विद्वानो ज प्रमाण छे. आ ज प्रमाणे बार वर्षना दुष्काळना अंते वज्रस्वामीए पोताना वज्रसेन नामना शिष्यने जाहेर कर्युं हतुं के—' ज्यारे तमने एक लाख रूपीआनी किंमतनुं भोजन मळे त्यारे तमारे हवे लोकमां समृद्धि (अथवा रेलचेल) थशे एम समजवुं ' एम कहीने एने संदेशो आपी मोकल्यो, ते शिष्य सोपारगमां वसता जिनदत्त नामना श्रेष्ठि (व्यापारी) ने त्यां गयो. तेनी ईश्वरी नामनी पत्नीए तेने झेर भेळव्या विना

एक लाख रुपीआनी किंमतनुं भोजन अर्पण कर्युं.* अने शिष्ये तेमने कह्युं के आवती काले समृद्धि थशे--अने पछी ते त्यां सुखपूर्वक रह्यो. पछीथी तेने इन्द्र, चन्द्र अने विद्याधर नामना शिष्यो प्राप्त थया हता.

एक सो शाखावाळा वड अगर पिंपळाना झाडनी माफक चंद्रकुल, आज सुधी कीर्तिमंत वर्ते छे अने तेना संबंधमां नीचेनी एक गाथा पण प्रचलित छेः--

" कोडि गणो गणो मे, वइर साहा साहा मे; चन्दकुलं कुलं मे."

" गणोमां कोटी गण, शाखाओमां वज्रशाखा अने कुलोमां चन्द्र कुल (श्रेष्ठ) छे."

भृगुक्षेत्रमां आर्य खपुटाचार्य अने सिद्धसेन प्रभावक (थया).

वळी, वज्रस्वामी पछी वज्रसेन थया हता	३२ वर्ष.
नागहस्ति	६९ ,,
रेवतिमित्र	५९ ,,
ब्रह्मद्वीपक सिंह	७९ ,,
	२३९

त्यार पछी स्कंदिल, हिमवत्सूरि अने नागार्जुन ७८ वर्ष.

आ ७८ वर्षमांनां २२ वर्ष ज्यारे व्यतीत थयां त्यारे वलभिनो नाश थयो. तेना माटे एवो उल्लेख छे के--" पण सयरी वाससाइं तिण्णि सयाइं अइक्कमेउण, विक्कमकालाउ तओ वलही-भंगो समुप्पण्णो. " --विक्रमकाल पछी ३७५ वर्ष व्यतीत थयां पछी वलभिनो भंग थयो.

विक्रम पछी वज्रस्वामी ११४ वर्षे थया.

वज्रस्वामी पछी स्कंदिल २३९ वर्षे थया.

तेना पछी २२ वर्ष वलभिभंग थयो अने एम एकंदर ३६५ वर्षो थयां. तेज रीते, विक्रम पछी ५१० वर्षे, अने वीरनिर्वाण पछी ९८० वर्षे देवार्धिगणीए सिद्धान्त लखाव्यो. अने ते वखते कल्पसूत्रमां तेमणे लख्युं के --" श्रमण भगवान महावीरना निर्वाण पछी ९०० वर्षो पसार थयां पछी १० मां सैकाना ८० मा वर्षमां आ ग्रंथ रचायो हतो.'

आना पछी १३ वर्षे (कालकसूरिए) शुक्ल चोथने दिवसे पर्युषणापर्व उजव्युं; अने आ बाबत (उल्लिखित गाथामां) वर्णवेली छे.

१०५५ मा वर्षमां (उल्लिखित) गाथामां जणाव्या मुजब, हरिभद्रसूरिनुं मरण (थयुं).

पछी जिनभद्रक्षमाश्रमण	६५ वर्ष थया.
,, पुष्यमित्र	६० ,, ,,
,, स्वातिसूरि	७५ ,, ,,

जेमणे शुक्ल चौदशने दिवसे पाक्षिक प्रतिक्रमणनी स्थापना करी हती. (उल्लिखित गाथा) केटलाक ग्रंथोमां पुष्पमित्रने स्वातिसूरिनी पछी मुक्या छे, परंतु आम करवुं (उल्लिखित) गाथाथी विरुद्ध छे. मुख ग्रंथ (जे अनुक्त या अनिर्दिष्ट छे परंतु जेमां गाथा आपेली) मां एम कहेलुं छे के तेमणे वीर पछी १३०० वर्षे सूरिपद मेळव्युं हतुं. परंतु आना संबंधमां बहुश्रुत पुरुषोए तपास करवानी जरुर छे, कारण के तेमां एम जणावेलुं छे के स्वाति (सूरि) पछी संभूतिविजय थया हता. पचाश वर्ष माढर, ६० वर्ष संभूतिगुप्त अने बप्पभट्टसूरि; परंतु आ विषयमां उत्तम प्रमाण मात्र संप्रदाय ज छे.

* ग्रंथकार आ स्थळे एम सूचवे छे के श्रेष्ठिनी स्त्रीनो इरादो, दुष्काळपीडीत कुटुंबिओने झेरमिश्रित भोजन आपी अनिवार्य चिरंतन पीडामांथी मुक्त करवा माटे एकी वखते मारी नाखवानो हतो.

वीरनिर्वाण पछी १६३९ वर्षे अने विक्रम पछी ११६९ वर्षे श्री विधिपक्ष मुख्याभिधान, आर्यरक्षितसूरिए अंचल गच्छ स्थाप्यो.

वीरनो शिष्य श्रेणिक हतो. तेनो पुत्र कूणिक. तेनो पुत्र उदायी तेना पछी पाटलिपुत्रमां नव नंदोए राज्य कर्युं. चाणाक्ये तेओने हांकी काढी चंद्रगुप्तने राज्यभिषिक्त कर्यो. तेना पुत्रनुं नाम बिंदुसार हतुं. तेना पुत्रनुं नाम अशोक श्री अने तेनो अंध पुत्र कुणाल हतो. एना पुत्र संप्रति राजाए उज्जयिनीमां राज्य कर्युं हतुं. आनो वंशज गर्दभिल्ल हतो. ए राजानो शक राजाए नाश कर्यो. गर्दभिल्लना पुत्र विक्रमादित्ये शक राजाने नसाडी उज्जयिनीनी गादी उपर पोते बेठो. तेणे वीरना मोक्ष पछी ४७० वर्षे संवत्सरयुग स्थाप्यो. त्यारबाद संवत ८२१ ना वैशाख सुद २ ने सोमवारे चावडा वंश (चाउडा अगर चावरा वंश) ना वनराजे अणहिल्लपुर वसाव्युं. तेणे पोते ६० वर्ष कुल राज्य कर्युं. तेना पुत्र योगराजे ९ वर्ष राज्य कर्युं; पछी संवत ८९१ मां श्रीरत्नादित्ये त्रण वर्ष राज्य कर्युं. तेनी पछी वैरिसिंहे ११ वर्ष राज्य कर्युं.

संवत ९०५ मां तेनो पुत्र क्षेमराज गादी उपर आव्यो अने ३९ वर्ष राज्य कर्युं.

संवत ९४४ मां चामुंड राजे क्षेमराजनो उत्तराधिकारी बनी २७ वर्ष राज्य कर्युं.

संवत ९७१ मां तेनो पुत्र थाघड गादी उपर आव्यो अने तेणे २७ वर्ष राज्य कर्युं.

संवत ९९८ मां तेनो पुत्र भूअड गादीए आव्यो अने तेणे १७ वर्ष राज्य कर्युं.

आ प्रमाणे चाउडा वंशना आठ राजाओए कुल १९६ वर्ष राज्य कर्युं.

संवत १०१७ मां चालुक्यवंशनो श्रीमूलराज(दौहित्र)गादीए आव्यो. तेणे ३५ वर्ष राज्य कर्युं.

संवत १०५२ मां तेनो पुत्र वल्लभराज गादीए आव्यो अने तेणे चौद वर्ष राज्य कर्युं.

संवत १०६६ मां तेनो भाई दुर्लभ राज्यगादी उपर आव्यो अने तेणे १२ वर्ष राज्य कर्युं.

संवत १०७८ मां तेनो भाई अने नागगिलनो पुत्र नामे भीमदेव गादीए आव्यो अने तेणे ४२ वर्ष राज्य कर्युं.

संवत ११२० मां तेनो पुत्र श्रीकर्णदेव तेनो उत्तराधिकारी थयो अने तेणे ३० वर्ष राज्य कर्युं.

संवत् ११५० मां तेनो पुत्र जयसिंहदेव तेनी पछी गादी उपर आव्यो अने तेणे ४९ वर्ष राज्य कर्युं.

संवत् ११९९ नी कार्तिक सुद ३ थी संपूर्ण त्रण (?) दिवस सुधी अराजक स्थिति (पादुका राज्य—पावडी ओनुं राज्य)

तेज वर्षना मार्गशीर्ष सुद ४ ने दिवसे भीमदेवना पुत्र क्षेमराजना पुत्र देवपालना पुत्र त्रिभुवनपालनो पुत्र कुमारपाल गादीए आव्यो अने संवत १२२९ ना पौष सुद १२ सुधी एटले ३० वर्ष, १ मास अने सात दिवस तेणे राज्य कर्युं.

ते ज दिवसे तेना भाई महिपालनो पुत्र अजयपाल गादीए आव्यो.

संवत १२३२ ना फाल्गुन सुद १२ ने दिवसे अर्थात् ३ वर्ष अने २ महीना पछी लघु मूलराज गादीए आव्यो.

संवत १२३४ ना चैत्र सुद १४ ने दिवसे तेना राज्यना २ वर्ष, एक महीनो अने बे दिवस पूरा थया. अने ते दिवसे भीमदेव राजा थयो.

थेरावली समाप्त.

(टिप्पण) त्यारबाद गज्जनक (धिजनीना महमुदना) राज्यनी स्थापना थई. (एक गाथानो उल्लेख कर्यो छे.) पछीथी संवत् १३०० मां श्री वीरधवलनो भाई वीसलदेव राज्य गादी उपर आव्यो.

१३१८ मां अर्जुनदेव.
१३३१ मां सारंगदेव.
१३३५ मां लघुकर्ण.
१३६० मां माधव नामनो एक नागर ब्राह्मण यवनोने लाव्यो.

कुमारपालना प्रधान नामे वाहडे, संवत १२११ मां [शत्रुंजय उपर] एक पत्थरनुं मंदिर बंधाववामां बे करोड ९७ लाख रूपीआ (रु २,९७,००,०००) खर्च्या.

संवत १३७१ मां यवनो (मुसलमानो) तरफथी थएला आक्रमने लइने, ज्यारे जावडिनी स्थापेली मूर्ति नष्ट थई हती त्यारे समराके एक नवी मूर्ति स्थापित करी.

[केटलोक खुलासो.]

थेरावलीना प्रारंभमां आपेलां नामो तथा तारीखो घणांज महत्वनां छे.

महावीर ए छेल्ला जैन तीर्थंकर छे.

बौद्धो गौतमने महावीर कहे छे अने तेमना मुख्य अने प्रसिद्ध शिष्य तरीके महाकाश्यपनुं नाम आपे छे. जैनो काश्यपने महावीर कहे छे अने गौतमने तेमनो मुख्य शिष्य (गणधर) बतावे छे. जैनो तथा बौद्धो बंने मगध अथवा बिहारनी राजधानी राजगृहना राजा श्रेणिक, जेने जैनो भंभासार कहे छे तथा बौद्धोना मतानुसार जे बिंबिसरो छे, तेने महावीरना मित्र तथा धर्मानुयायी तरीके एकमते जणावे छे. आ पुरुषो तथा त्यारपछीना राजाओना संबंधमां मारी समालोचना हुं बीजा लेखमां करवा इच्छुं छुं. ते लेखमां हुं बुद्धनो काल तथा ख्रिस्ति सन् पूर्वेनो हिंदुस्थाननो इतिहास, जेमना संबंधमां बौद्ध अने ब्राह्मणग्रंथोमांथी जडी आवती तारीखोथी जैन ग्रंथोमां आपेली तारीखो घणीज जुदी पडे छे, तेना विषयमां आलोचना करवा मारो इरादो छे.

परिशिष्ट पर्वमां हेमाचार्ये उदायीना खूनना विषयनी विगतो आपेली छे. थेरावली प्रथम नंदनी उत्पत्तिना विषयमां एक संक्षिप्त अने अत्युपयोगी हकीकत आपे छे. अत्यारसुधीमां प्रकाशित थएला बौद्धग्रंथोमां ते विषयमां कांई लखेलुं जोवामां आवतुं नथी. पुराणोमां तेने शूद्रथी उत्पन्न थएल जणाव्यो छे. परंतु तेनी नापित (हजाम) कुलमां उत्पत्ति विषयक जे जैन हेवाल मळे छे ते हेवाल, अलेक्झान्डरे पंजाब उपर चढाई करी ते समये पाटलिपुत्रना राजाना डिओडोरस सिक्युलस (Diodorus Siculus) अने क्विन्टस कार्टिअसे (Quintus Curtius) आपेला हेवाल साथे जो के तद्दन एकरूप नथी छतां घणो मळतो छे. आ राजा ते, चंद्रगुप्त अगर ग्रीकोना संड्कोटसनो पूर्वज हतो.

प्राकृत ग्रंथोमां शको तेमज सिथिअनोने सग कहेला छे. विक्रमसंवत् अने विक्रमादित्ये करेलो शकराजाओनो पराजय आ बे बनावो समकालीन होय तेम जणाय छे. परंतु शकनृपकाल के जे शालिवाहननो युग ज छे ते शक लोकोए करेली मालवा अने दख्खण उपरनी जीतनो समकालीन छे. शककाल अथवा शकोना युगने, भारतवर्षीय विद्वानो सुद्धांए केटलीक वखत पहेली बाबत साथे अने केटलीक वखत बीजा बनाव साथे गोटाळो करी दीधो छे, अने ते रीते तेमनी गणत्रीमां १३५ वर्षनी भूल थाय छे.

भरुचनी एक प्राचीन जैन लाइब्रेरीना अवशिष्टोमांथी मळी आवेल एक पट्टावलीना छुटा

पानामां शा कारणथी कालिकाचार्ये शक राजाओने दाखल कर्या तथा विक्रमादित्ये तेमने केवी रीते हांकी मूकी पोतानो संवत्सर स्थाप्यो ते बाबतनो खुलासो आप्या पछी नीचेनी बाबत उमेरेली छे; " विक्रम पछी १३५ वर्ष वीत्यां पछी शक लोकोए फरीथी विक्रमपुत्र (विक्रमनो पुत्र अगर वंशज) ने हांकी काढ्यो अने तेनुं राज्य जीती लीधुं."

चाउडा (चापोत्कट) वंशनी कालगणाना जे वनराजथी शरु थाय छे ते कालगणना प्रबंधचिंतामणि तथा अन्य यादीओमां आपेली कालगणनाथी, राजाओना नाम संबंधी क्रम अने संख्या परत्वे तथा तेओना राज्यकालनी संख्या परत्वे, भिन्न पडे छे. आ उपरथी स्वाभाविक रीते एक एवो प्रश्न उभो थाय छे के थेरावलीना कर्ता मेरुतुंग ते प्रबन्धचिंतामणिना कर्ता जेमनुं नाम पण मेरुतुंग छे, ते होय के नहि ?

आ स्थळे हुं प्रबन्धचिंतामणि, जिनमण्डनोपाध्यायकृत कुमारपाल प्रबन्ध, तथा एक ननामी पट्टावली उपरथी तारवी काढेलुं एक तुलनात्मक कोष्टक नीचे रजु करुं छुं:—

	मेरुतुंगनी प्रबन्धचिंतामणि	जिनमण्डनोपाध्यायकृत कुमारपाल प्रबंध.	पट्टावली (नाम वगरनी)
वनराज	६०	६०	६०
योगराज	३५	३५	३२
क्षेमराज	२५	२५	२५
भूयड	२९	२९	२९
वैरिसिंह	२५	२५	२५
रत्नादित्य	१५	१५	१५
सामंतसिंह	७	७	७
मूलराज	५५	५५	५५
चामुण्डराज	१३	१३	१३
वल्लभराज	६ महीना	६ महीना	६ महिना
दुर्लभराज	११—६	११—६	११—६
भीमराज ऊर्फे भीमदेव	* ४२	४२	४२
कर्णदेव	नथी आप्युं	२९	२९
जयसिंहदेव	प्रतिना दोषने लइने ४९	नथी आप्युं	४८-८-१०
कुमारपाल	३१	३१	३०-८-२७
अजयदेव उर्फे अजयपाल	३	...	३-११-२८
मूलराज	२	...	२-१-२४
भीमदेव	६३	...	६५-२-८
पादुका-राज (अराजक स्थिति)	... ...	..	
त्रिभुवनपाल	...		
वीसलदेव	...		
अर्जुनदेव	...		
सारंगदेव	...		

* एक प्रतिमां ५२ अने बीजीमां ५९.

साहित्य-समालोचन

Ardha-Magadhi Reader By Banarasi Das Jain M. A.. Published by the University of the Punjab, Lahore.

अर्धमागधी रीडर, ग्रन्थकार प्रो. बनारसी दास जैन, एम्. ए. ओरिएन्टल कॉलेज, लाहोर।

बम्बई, कलकत्ता और पंजाब युनिवर्सिटीके अभ्यासक्रममें कुछ वर्षोंसे जैन साहित्यको भी स्थान मिला है और बम्बई इलाखेमें तो कुछ विद्यार्थी जैन साहित्यका आभ्यास कर एम्. ए. तक भी पहुंचे हैं। लेकिन विद्यार्थियोंको और प्रोफेसरोंको इस विषयमें अभी तक सबसे पहली कठिनाई तो इसी बातकी हो रही है कि पढने-पढानेके लिये वैसी कोई पुस्तकें ही अभी तक तैयार नहीं हैं। कुछ वर्षोंसे जैन साधुओंका प्रयत्न इस बारेमें तो यथेष्ट हो रहा है कि भंडारोंमें पडे पडे सडने वाले संस्कृत प्राकृत आदि जैन ग्रन्थोंको छपवा छपवा कर प्रकट कर दिये जांय। परंतु साधुओंके इस प्रयत्नकी मर्यादा बहुत ही संकुचित और कार्यकी पद्धति बहुत ही शिथिल होने के कारण, युनिवर्सिटीके विद्यार्थियोंको उसका कोई लाभ नहीं मिलता। इस लिये यह काम, जैनसाहित्यके आभ्यासी जो थोडे बहुत स्कॉलर हैं उन्हींके द्वारा किये जानेकी आवश्यकता है।

हमें यह जान कर प्रसन्नता हुई कि श्रीयुत प्रो. बनारसी दासजीने यह अर्धमागधी रीडर तैयार कर, इस महत्त्वके कामका प्रशंसनीय प्रारंभ कर दिया है। यह रीडर, अर्धमागधी अर्थात् जैनागमोंकी प्राकृत-भाषाके अभ्यासियोंको प्रावेशिक ज्ञान करानेमें अच्छी मदत दे सकेगी। इसका संकलन और संपादन उत्तम रीतिसे किया गया है। प्रारंभमें, पहले अर्धमागधीका संक्षिप्त व्याकरण दिया गया है; उसके बाद, अर्धमागधी भाषा और उसके साहित्यका परिचय कराया गया है। तदनन्तर, कुछ उपयुक्त ऐसे छपेहुए जैन ग्रन्थोंकी सूचि; जैन साहित्यके प्रकाशन-कार्यमें विशिष्ट योग देनेवाली कुछ व्यक्तियोंका परिचय; और अन्तमें हस्तलिखित ग्रन्थ पढनेवालोंके लिये पुरानी लिपि विषयक कुछ सूचनाएं भी देदी हैं। फिर कोई ७८ पन्नोंमें, विवागसुय, नायाधम्मकहा, ओववाइयसुत्त, आयारंगसुत्त, पण्हावागरणसुत्त, सूयगडंगसुत्त, उत्तरज्झयणसुत्त और दसवेयालियसुत्त आदि जैन सूत्रोंमेंसे चुन चुन कर कितनेक मूल-पाठ दिये हैं। पाठोंका चुनाव अच्छा और भाषा तथा साहित्यकी दृष्टिसे विशिष्ट परिचायक किया गया है। फिर इन मूल-पाठोंका इंग्रजी अनुवाद और कुछ आवश्यक टिप्पणियां देकर सर्वांतमें महत्त्वके शब्द और नामोंकी एक सूचि भी दे दी है। इस प्रकार नवीन अभ्यासीकेलिये इस रीडरको उपयोगी बनानेमें प्रो. जैनने जो खूब परिश्रम और प्रयत्न किया है तदर्थ वे विद्यार्थियोंके धन्यवादके पात्र हैं और हम आशा करते हैं कि भाई श्री बनारसी दासजी इस विषयक अपना प्रयत्न सतत जारी रखेंगे और आगे पर हमको इससे भी अधिक म... शी राको तर्भज ...नक भेंट करेंगे।

प्रस्त... ी कोई ऐसी पुस्... आ बे... आवृत्ति भी बनारसी दासजीने तैयार की है जो कभी शायद जैन साहित... रकी एक हिन्दी ज छे त... ढनेको मिल सकेगी।
...धकके पाठकोंको पढ़वा श...

प्रकाशक... शाह केशवलाल माणकच... लीक ... द, माननीय कार्यवाहक जै० सा० सं० कार्यालय; ... ी भूल... लय, पूना शहर.

मुद्रक:—गणेश ... ाथ गोखले, सेक्रेटरी; ... भारत जैन विद्या... वशिष्टोभोश प्रिंटिंग वर्क्स, ४९५ शनवार पेठ, पुणें शहर.

તરંગવતી

અર્થાત્

ભગવાન્ શ્રી મહાવીરદેવના શાસનની એક સાધ્વીની
હૃદયંગમ અને આદર્શભૂત

આત્મકથા.



પ્રાકૃતમાં

મૂળકર્તા: પાદલિપ્તાચાર્ય— સંક્ષેપકર્તા: નેમિચંદ્ર ગણિ.



પ્રો. લૉયમેનના જર્મન અનુવાદ ઉપરથી ગુજરાતી કરનાર

નરસિંહભાઈ ઈશ્વરભાઈ પટેલ.

શાન્તિનિકેતન.

પ્રકાશક

બબલચંદ કેશવલાલ પ્રે. મોદી.

હાજાપટેલની પોળ—અમદાવાદ.

વિક્રમ સં. ૧૯૮૦. [સર્વ હક્ક સ્વાધીન.] સને ૧૯૨૪.

આવૃત્તિ ૧ લી. કી. રૂ. ૦-૧૨-૦. નકલ ૧૪૦૦.

આ "વીર-શાસન પ્રિન્ટીંગ પ્રેસમાં" શા. કેશવલાલ દલસુખભાઇએ છાપ્યું
ઠે. કાળુપુર, ટંકશાળ—અમદાવાદ.

કેશવલાલ પ્રેમચંદ મોદી (પ્લીડર) ની પુત્રી

(મોહનલાલ પોપટલાલ ઠક્કર (પ્લીડર) ની પત્ની)



માણેક

ત ૧૯૬૨ ના કારતક શુદ ૧૨
બુધવાર તા. ૮ નવેમ્બર સને ૧૯૦૫

દેહત્યાગ સં. ૧૯૭૯ ના માગસર વદ ૧૩
શનીવાર તા. ૧૬ ડીસેમ્બર સને ૧૯૨૨

અર્પણ પત્રિકા.

મ્હારી વ્હાલી ભગિની !

પૂર્વસંચિતની કૃપા વિના આવી બેન કયાંથી મળે? ડાહી અને વિવેકી તો ઘણીય બહેનો હોય, પણ આવી કુટુંબવત્સલ અને સત્કર્મમાં આમ ધાર્યું કરનારી તે તો દુર્લભજ. માણેક ! ત્હારા મનોરથ ઉમદા અને પરોપકારી; એ મનોરથ પાર પાડવામાં ત્હારો આગ્રહ અને ત્હારૂં બળ અમને સૌને હરાવે છે ! તું ધાર્યું કરનારી, તું ત્હારા ગુણથી, બુદ્ધિથી અને કર્મથી સૌને જીતનારી ! તે અમારામાં જન્મી, માટેજ અમારો ભાગ્યોદય છે. ધન, વૈભવ કે રાજ્યસત્તા કરતાં તારા જેવા રત્નના સહવાસીને કેમ અભિમાન ના ચડવું જોઇએ? છતાંય તારો સહવાસ કેટલો ટુંકો. સુવાસવાળુ ઉત્તમ કમલ ખીલતાં પહેલાંજ કરમાઇ જાય તે દેખી કોને શોક ના થાય? એમ છતાંય શોક કર્યે શું વળે એમ માની ત્હારા સ્મરણાર્થે તારા જેવીજ સુંદર, પ્રેમાળ અને ગુણવાન નાયિકાવાળી મહાન્ કથા, સમયના ગાઢતિમિરમાંથી બહાર પ્રકાશમાં લાવવા પ્રયત્ન કરવો તે ઉત્પન્ન થતાં શોકને ભુલાવવાનો એક સરલ માર્ગ છે એમ માનીનેજ આ પુસ્તક ત્હારા સ્મરણાર્થે અર્પણ કરૂં છું.

को न जणो हरिसिज्झइ तरंगवइ-चइयरं सुणेऊण ।
इयरे पबंध-सिंधू त्रि पाविया जीए महुरत्तं ॥

પ્રભાવક ચરિત્રના કર્તાએ પાદલિપ્તાચાર્યનું મૃત્યુ સાંભળી કોઈ કવિએ કાઢેલ દુઃખોદ્‌ગારનિદર્શક એક પ્રાચીન પ્રાકૃત ગાથા સંગ્રહી રાખી છે જેમાં જણાવ્યું છે કે:—

सीसं कह वि न फुट्टं जमस्स पालित्तयं हरंतस्स ।
जस्स मुहनिज्झराओ तरंगलोला नई वूढा ॥

પાદલિપ્તાચાર્યની તે મૂળ કૃતિ આજે ક્યાંયે ઉપલબ્ધ નથી. ઘણા જૂના ભંડારોમાં અને તેવી જૂની ટીપોમાં પણ આ કથાનો ઉલ્લેખ મળી આવતો નથી. આથી જણાય છે કે એ મૂળ કથા ઘણા જૂના સમયમાં નષ્ટપ્રાય થએલી હોવી જોઇએ.

જે કૃતિને આધારે પ્રસ્તુત અનુવાદ તૈયાર કરવામાં આવેલો છે તે એક મૂળ કથાના સારરૂપે પાછળથી રચાયેલો સંક્ષેપ છે, અને આ વાત પહેલા જ પાના ઉપરના બીજા શ્લોકમાં સ્પષ્ટ જણાવેલી છે. આ સારના કર્તા હાઈયપુરીય ગચ્છમાં થએલા આચાર્ય વીરભદ્રના શિષ્ય નેમિચંદ્રગણિ છે, એમ છેવટે આપેલી ગાથા ઉપરથી જણાય છે. એ ગાથા આ પ્રમાણે:—

हाईयपुरीयगच्छे सूरी जो वीरभद्दनामेति ।
तस्स सीसस्स लिहिया जसेणा गणिनेमिचंदस्स (?) ॥

આ હાઇયપુરીય ગચ્છ અને તેમાં થએલા આચાર્ય વીરભદ્ર તથા તેમના શિષ્ય નેમિચંદ્ર વિગેરેના સમય ઈત્યાદિના સંબંધમાં હજી કાંઇ વિશેષ જાણવામાં આવ્યું નથી, આખો ગ્રંથ પ્રાયઃ ૧૬૪૮ પ્રાકૃત આર્યામાં રચેલો છે.

મૂળ કથા ગદ્યપદ્ય ઉભયમાં હશે એમ જણાય છે અને તેની ભાષા પ્રાચીન અપભ્રંશ હશે. ઉપર જે મૂળ કથાની પ્રશંસા જણાવનારા પદ્યો ટાંકેલાં છે તે ઉપરથી તેનું મહત્ત્વ સહેજે જાણી શકાય તેમ છે. વિદ્વાન્ શોધકો અને મુનિઓ આ બાબત લક્ષ્ય રાખે અને જૂના પુરાણા ભંડારોમાંથી જો મૂળ ગ્રંથ મળી આવે તો જૈન કથાસાહિત્યની કીર્તિ દિગંત પર્યંત ઝળકી ઉઠે તેમ છે.

આ ગ્રંથની એક મૂળ પ્રતિ, અમદાવાદમાં, ફતાસાની પોળમાં હરકોર શેઠાણીના નામથી ઓળખાતી હવેલીમાંના બેન શ્રીચંચળબાઇ-શેઠ ઉમાભાઈ હઠીસિંગના ધર્મપત્ની-તરફથી મળી આવી હતી, અને એક બીજી પ્રત પાલીતાણાના આણંદજી કલ્યાણજીના ભંડારમાંથી મળેલી છે.

આમાંની એક પ્રતિ જર્મનીના પ્રસિદ્ધ વિદ્વાન્ પ્રો. યાકોબીને; રા. રા. કેશવલાલ પ્રે. મોદીએ મોકલેલી, અને તેમણે તે પ્રતિ પોતાના મિત્ર ડૉ. લૉયમાનને આપી. ડૉ. લૉયમાનને એ ગ્રંથ અતિશય રસદાયક જણાયાથી તેમણે પ્રથમ આખા ગ્રંથની પોતાના

હાથે નકલ કરી અને પાઠશુદ્ધિ કરવાનો પ્રારંભ કર્યો. એ પછી તેની અર્થ સંકલના કરતાં દરમ્યાન મૂળ પાઠ કેટલાક ઠેકાણે વધારે અશુદ્ધ અને ક્યાંક ખંડિત જેવો જણાવાથી બીજી પ્રતિ મેળવવા માટે તેમણે રા. રા. મોદી સાથે પત્ર વ્યવહાર શરૂ કર્યો. એમ કરવામાં ઘણો સમય જશે એમ જણાયાથી, વચ્ચે તેમણે આખા ગ્રંથનો જર્મન ભાષામાં ઉત્તમ અનુવાદ કરી તેને છપાવીને પ્રસિદ્ધ કરી દીધો. ડૉ. લૉયમેનનો એ અનુવાદ ઘણો સરસ અને કાવ્યમરી ભાષામાં થએલો હોવાથી તેમજ મૂળ કથાની વસ્તુ પણ એક ભાવપૂર્ણ ભારતીય આદર્શ હોવાથી યુરોપમાં તેના તરફ સારૂં લક્ષ્ય ખેંચાયું છે અને બીજી યુરોપીય ભાષાઓમાં પણ તેનાં ભાષાંતરો થવા લાગ્યાં છે. અમારી પાસે એ જર્મન અનુવાદ આવતાં અમને પણ એનું ગુજરાતી ભાષાંતર પ્રકટ કરવાની ઇચ્છા થઈ. પણ તે પૂર્વે જ શાન્તિનિકેતનમાં રહેતા શ્રીયુત નરસિંહભાઈ ઈશ્વરભાઈ પટેલને હાથ જર્મન ભાષાન્તર આવવાથી ગુજરાતી ભાષાન્તર કર્યું. અને તેને પુરાતત્ત્વ મંદિરના આચાર્યશ્રી જિનવિજયજી મહારાજે મહેનત લઈ, પાલીતાણાવાળી મૂળની પ્રતિની સાથે સરખાવી શોધી આપ્યું છે.

આ સાથે પાદલિપ્તાચાર્યના સમય વિગેરેના વિચાર સંબંધમાં એક વિસ્તૃત નિબંધ લખી આપવા માટે મુનિશ્રી જિનવિજયજી ને નિવેદન કરતાં તેમણે તેમ કરી આપવાની ઇચ્છા દર્શાવી હતી, પરંતુ સમયાભાવે અદ્યાપિ તેઓશ્રી તે લખી ન શકયા તેથી, હાલ તુરત તો અમે આ સંબંધમાં આટલું જ નિવેદન કરી સંતોષ માનીએ છીએ.

ડૉ. લૉયમાન મૂળ ગ્રંથ તૈયાર કરી રહ્યા છે અને તે થોડાજ દિવસમાં પૂર્ણ કરી શકવાનું જણાવે છે. એ મૂળ ગ્રંથ પ્રસિદ્ધ થવાને પ્રસંગે આ સંબંધમાં સવિસ્તર ઐતિહાસિક હકીકત વાચકોને જોવા મળશે એવી આશા રહે છે.

આ બાબત માટે અમે શ્રીયુત નરસિંહભાઇ તથા શ્રી જિનવિજયજી ના અત્યંત આભારી છીએ.

તેમજ કેટલાંક પ્રૂફો વિગેરે જોવામાં અને ઉપયોગી સૂચનાઓ આપવામાં સાક્ષરવર્ય રા. બ. શ્રીયુત રમણભાઇ મહિપતરામ નીલકંઠ. બી, એ.એલ્.એલ્. બી, તથા શેઠ વર્ધમાન સ્વરૂપચંદે જે પરિશ્રમ લીધો છે તે બદલ તેમનો પણ અમે અંતઃકરણપૂર્વક આભાર માનીએ છીએ.

અમદાવાદ હાજાપટેલની પોળ. લી.

એપ્રીલ ૧૯૨૪. પ્રકાશક.

પ્રો૦ લૉયમેનની જર્મન પ્રસ્તાવનાનો ગુજરાતી અનુવાદ

સાધ્વી

અર્થાત્

પ્રાચીન ભારતની એક નવીન કથા.

હું આ જે કથા રજુ કરું છું તે ખરેખર એક નવીન કથા છે. કારણ કે ભારતવાસીઓ સિવાય બહારના કોઇએ અદ્યાપિ એ વાંચી નથી, અને જે ભારતમાં એકવાર એ લોકપ્રિય થઇ પડી હતી, ખુદ તે ભારતમાં પણ અત્યારે એને કોઇ જાણતું નથી. આ કથા પ્રાચીન ભારતનું દાન છે, પણ વાંચીને એને વાચક કયા કાળમાં મુકશે એ હું ચોક્કસ રીતે જાણતો નથી. ટુંકામાં એટલું જ કહેવાનું કે એમાં વર્ણવેલા ધાર્મિક સિદ્ધાન્તો બૌદ્ધ કાળમાં પ્રકટ થયા છે, તેથી કથા ક્રાઇસ્ટના પછીના કાળમાં એટલે કે બીજી કે ત્રીજી સદીમાં લખાઇ હોવી જોઇએ.

કાળનિર્ણય ચોક્કસ રીતે વાચક જાણશે ત્યારે વખતે ફરીવાર એનો ભ્રમ ઉડી જશે. મથાળે મેં કથાકાર પાદલિપ્તનું નામ આપ્યું નથી. વળી પુસ્તકનું નામ એમણે જે આપ્યું છે તે પણ લીધું નથી. પોતાની કથા કહેનાર સાધ્વીના નામ ઉપરથી એમણે 'તરંગવતી' નામ રાખ્યું છે. આમ લેખકના અને કથાના મૂળ નામને મેં શામાટે વિસારી મુક્યાં છે? મારે એ વિસારી મુકવાં પડયાં છે, કારણ કે એ નામવાળી એમની મૂળ કૃતિ ખરી રીતે તો બહુ કાળથી નાશ પામી છે. એમાંના વસ્તુ ઉપરથી આશરે એક હજાર વર્ષ પછી 'તરંગલોલા' એવા નવા નામથી તેનું એક નવું સંસ્કરણ થયું હતું, એ હજી સચવાઈ રહ્યું છે, અને તેના જ ઉપરથી આ અનુવાદ થયો છે.

મેં આપેલા નામ પ્રમાણે તેના સમયનિર્ણયની જે લોકોએ આશાઓ રાખી હશે તે આશાઓ તો મારે ઢીલી કરી નાખવી પડે છે, પણ એટલું તો હું નક્કી માનું છું કે એ બધું જતાં આપણું આ પુસ્તક દરેક સાહિત્યભક્તને અને દરેક ધર્મશોધકને બહુ ઉપયોગી થઇ પડશે. માનસશાસ્ત્રીને પણ ઉપયોગી થઈ પડશે; અને એ આશ્ચર્ય સહિત જોઈ શકશે કે પુનર્જન્મનો સિદ્ધાન્ત કેવી પ્રબળતાથી ભાવનામય પ્રદેશ ઉપર અસર કરીને ઠેઠ વસ્તુસ્થિતિમાં આવી ઠરે છે અને શ્રદ્ધાના સામાન્ય મતો પેઠે એ મત પણ વ્યવસ્થિત રીતે પ્રવર્તે છે. વૈદ્ય સુદ્ધાંને પણ એમાંથી ત્રિદોષ વિષે વાંચવાનો આનંદ મળશે.—એક ત્રિદોષ એવો પણ જણાશે કે જે કથા-નાયિકાને જ નહિ, પણ સુધરેલા સમસ્ત સંસારને અને એ કથાકાર સુદ્ધાંને લાગેલો છે.—વળી આપણી કથામાં પુનર્જન્મની ભાવના અવિરોધભાવે પ્રકટ થાય છે, કારણ કે આપણે માત્ર કોઈ કોઇ વાર સાંભળેલી એવી પ્રકૃતિજીવનની સાચી કથાઓ પણ એમાં આવે છે. બ્રેમના (Brehm) પ્રાણીજીવ વિષેના લેખો વાંચીશું તો આખા એશિયામાં અને બીજે પણ પોતાના સ્નેહને માટે પ્રખ્યાત થયેલા ચક્રવાક જાતિના પંખી માટે નીચે પ્રમાણે જાણી શકીશું (ત્રીજી આવૃત્તિ, ૧૮૯૦–૧૮૯૨, ભાગ ૬, પૃષ્ઠ ૬૨૪):

"તુર્કસ્તાનમાં અમારામાંના એક જણે એક જોડામાંની માદાને ગોળી મારીને તેની પાંખ

તોડી નાખી અને તેના ગભરાયેલા નરના દેખતાં તેને પકડી: એ નર ઉડી તો ગયો, પણ ત્યાંથી દૂર ગયો નહિ; અને બીજા કોઇપણ ચકવાકે કર્યું હોત એમ એણે પણ કર્યું કે એ વેદનામય સ્થિતિ માટે કલ્પાન્ત કરી કરીને ચારે બાજુ ગોળ ઉડવા માંડયું, ને અવાજ કર્યા પણ એ ત્યાંથી ગયો નહિ અને પોતાની પ્રિયાને માટે અંતે એણે પ્રાણ આપ્યો."

આ ભારતી કવિએ લખ્યું છે એ જાણે ઉપર જણાવ્યા પ્રમાણેના જીવનનો આધાર લેઇને પુનર્જન્મનો મત પ્રતિપાદન કરવા માટે પ્રકૃતિની કવિતા ના લખી હોય ! આત્મા માત્ર માણસમાં જ અવતરે છે એવા ખ્રિસ્તિ મતને લીધે, બીજાં પ્રાણીમાં આત્મા નથી એવી માન્યતાએ, પ્રાણીના આત્મા પ્રત્યેની આપણી લાગણીઓ મરી ગઇ છે, અને તેથી સાધારણ રીતે આપણામાં આવાં આત્મભાવ–સમાનવાળી પ્રકૃતિની કવિતા સ્ફુરતીજ નથી. પણ એમાં કોઇ સંદેહ નથી કે ભારતમાં એ કવિતા વિકસેલી છે અને તે મનુષ્યના અને પ્રાણીના આત્માને સ્નેહસંબંધે જોડે છે. ભારતના આ વિચારોને રૂપાન્તર કરીને ઓવિડે (Ovid) અને તેના સમયના ગ્રીક વિચારકોએ લીધા હતા.

એ લાગણી અને પ્રેમે વર્ણવી છે એ અવલોકન માટેની વસ્તુસ્થિતિ જોઇને આપણે આગળ ચાલીએ તો જણાશે કે આપણા કથાકારને ભારતના આદિકવિ વાલ્મીકિ સાથે પણ સંબંધ છે એમ જણાશે. એ કવિએ, જે એક પક્ષીના જીવનસાથીને એક પારધીએ મારી નાખ્યો તે પક્ષીને માટે, બહુ સુંદર શ્લોકોમાં ખેદ કર્યો છે. આપણી કથાના વણાટમાં ભારતની ભાવનાનો, અરે એશિયાની ભાવનાનો અને એથીય વિશાળ ભાવનાનો હાથ ફર્યો છે.

આ કથાનું વસ્તુ અને એમાં જે કંઈ બીજી ખાસ ખુબીઓ છે તેથી યુરોપમાં એ લોકપ્રિય થશે; એટલું જ નહિ પણ એમાં રહેલી કવિની તેજસ્વિતા તથા સરળતા પણ પ્રકટ થશે. ભારતના કથાત્મક સાહિત્યમાંથી જે કંઈ આપણને મળે છે તેમાંનું ઘણુંખરું આ કથામાં છે. કારણ કે મહાકાવ્યના નીરસ વિસ્તારની અને લઘુ કાવ્યના સરસ અર્કની વચ્ચેનો સુખી મધ્ય માર્ગ ભારતના સાહિત્યમાં ભાગ્યે જ હોય છે.

છતાં યે, આ કાવ્યમાં આવી ભારતીય અને સાર્વદેશિક મહત્તાઓ છતાં, પ્રશ્ન થાય છે કે, મૂળ કથાને નાશ પામવાનું શું કારણ હશે ? નવા સંસ્કરણનો લેખક પોતાના પૂર્વકથનમાં લખે છે, કે: "અનેક કારણોને લીધે એ મૂળ કથા, આજે સમજવી કઠણ થઇ પડી છે." તેથી એને ભવિષ્યમાં કાયમ કરવાને માટે આ જાતના જીવતા રૂપમાં પાછી આણવી પડી. તેવી જ રીતે અનુવાદ કરીને આજે હું પણ એને નવું સ્વરૂપ આપું છું જેથી યુરોપમાં એ વાંચી શકાય.

મૂળ કથા તો સમજવી કઠણ છે. પણ આ અનુવાદ પણ સમજવો કઠણ પડે નહિ એટલા માટે મારે અહીં કંઇક ઉમેરીને વાત સ્પષ્ટ કરવી જોઇએ.

આર્યકુળની ભારતશાખા દક્ષિણ સૂર્યના પ્રતાપબળે બીજી શાખાઓ કરતાં વહેલી પાકી ઉઠી. તેમજ બીજી શાખા કરતાં એને પ્રવાસમાં આદિવાસીઓ તરફથી વિઘ્નો પણ બહુ ખમવાં પડેલાં. વળી આર્યકુળની બીજી શાખાઓને સેમેટીક કુળમાંથી, (બાબિલોનિયનોમાંથી; મિસરીઓમાંથી અને પેલેસ્ટીનોમાંથી) જેમ જીવનરસ મળ્યો હતો એવો જીવનરસ ભારતકુળને બહાર ક્યાંયથી મળેલો નહિ.

ભારતકુળના આર્યો વહેલા પાકી ઉઠયા એની એ જ સાબિતિ છે કે એમણે સાહિત્યધારા ઇતિહાસમાં સૌથી વહેલી વહેવરાવી અને વળી વારસામાં મળેલા પ્રાકૃતિક ધર્મમાંથી ઉચા

પ્રકારનો ધર્મ વિકસાવ્યો. તેથી યુરોપમાં આપણા જુગો કરતાં ઈતિહાસના જુગ–જેવા કે પ્રાચીન, મધ્ય અને નૂતન જુગ ભારતમાં પણ પાડી શકાય–પણ વહેલા શરૂ થયા.

આશરે ઈ. સ. પૂ. ૧૫૦૦ વર્ષથી ભારતમાં પ્રાચીન જુગ શરૂ થાય છે. ત્યાર પછી હજારેક વર્ષથી મધ્યજુગ શરૂ થાય છે, એ જુગમાં પ્રકર્ષનો વિકાશ થયો અને ઉપભાષા બનેલી સંસ્કૃત ભાષામાં વિકસતા બ્રાહ્મણધર્મના પ્રકર્ષની રેખા પાસે એક નવું જ પગલું મુકાયું: ચાલતી આવેલી બળિપૂજાનો અને સાથે સાથે એ સંસ્કૃત ભાષાનો પણ બુદ્ધ ધર્મે અને એવા બીજા ધર્મોએ અનાદર કર્યો, અને વિવિધ પ્રકારની લોકભાષાઓનો–એટલે કે પ્રાકૃત ભાષાઓનો–ઉપયોગ કર્યો. મુસલમાનોના હુમલા થયા ત્યારથી છેવટે નતન જુગ બેઠો; ઉપર વર્ણવેલા બે પ્રકારના પ્રકર્ષોમાં એક પરદેશી–મુસલમાની પ્રકર્ષ પોતાનું ફારસીઆરબી ભાષાધન લેઇ આવી મળ્યો.

આમ ધર્મના તથા ભાષાના ઈતિહાસને હિસાબે ભારતનો સમસ્ત મધ્ય જુગ, એક બીજાની સાથે વહેતા તથા ભેગા વહેતા વિરૂદ્ધ પ્રકારના પ્રવાહોનો બનેલો છે. પ્રથમ તો નવા ધર્મોએ સામા બળને રોકી દીધું; આમ પ્રખ્યાત મહારાજા અશોકે આશરે ઇ. સ. પૂ. ૨૫૦માં બૌદ્ધધર્મ ગ્રહણ કર્યો અને આખા ભારતમાં એણે જે વિખ્યાત લેખો કોતરાવ્યા તે પ્રાકૃતમાં કોતરાવ્યા. વળી બુદ્ધધર્મમાં અને તેના સહચર જૈનધર્મમાં ધાર્મિક પ્રદેશ ઉપરાંત સાહિત્યના બીજા સર્વ સાધારણ પ્રદેશમાં પણ પ્રાકૃતનો છુટથી ઉપયોગ થવા લાગ્યો. પણ પાછળથી, આશરે ઇ. સ. ની ચોથી સદીમાં સંસ્કૃતે પાછો ફરી પોતાનો સર્વોપરિ અધિકાર મેળવ્યો; અરે, એ ધર્મોમાં પણ એણે પગ પેસાડ્યો ને કંઇક અંશે તો એનો પુરો કબજો લીધો.

તેથી હવે થયું એમ કે પ્રાકૃત લેખકો જે દેશમાં ને કુળમાં ઉછર્યા હોય તેને અનુસરીને તથા તેમના ઉપર જે પ્રમાણમાં સંસ્કૃત ભાષાનો પ્રભાવ પડ્યો હોય તે પ્રમાણમાં સંસ્કૃત નહિ એવી શુદ્ધ લોકભાષાના–એટલે કે દેશમાં બોલાતી ભાષાના ભંડારમાંથીજ વિવિધ સમૃદ્ધિ વાળા શબ્દોનો ઉપયોગ કરતા થયા. ઇ. સ.ની શરૂઆતની સદીઓમાં જે ઝોક આ ભાષાધન-પ્રાન્તભાષાઓનાં શબ્દો–તરફ મોહથી વળ્યો, તે પછીની સદીઓમાં સંસ્કૃત ભાષા પાછી સર્વ સાધારણ થઈ ગઇ ત્યારે એનો તે પ્રમાણમાં ત્યાગ થયો.

જે કાળમાં, ગ્રંથો લખવામાં પ્રાન્તની પ્રાકૃત ભાષાનો ઉપયોગ કરવાનું વલણ હતું અને સાહિત્યવ્યવહારમાં એ ભાષાઓ બધાને સમજાતી હતી તે કાળમાં–ઈ. સ. ની શરૂઆતની સદીઓના એ કાળમાં આપણી કથા રચાઈ હતી. પણ સંસ્કૃતના દબાણને લીધે પાછળથી પ્રાન્તભાષાઓ વ્યવહારમાંથી ખસતી ગઇ અને સમજવી કઠણ થતી ગઇ. અને પછી એવું થયું કે જે લેખકો એ ભાષાઓ સમજતા હતા તેઓ એ ગ્રંથોનાં નવાં સંસ્કરણ કરવા લાગ્યા. એવા પ્રાચીન સમયના ગ્રંથો પાછળથી એવી રીતે નિરૂપયોગી થઈ પડ્યા ને તેથી નાશ પામવાના ભયમાં આવી પડ્યા. એવા ગ્રંથોને આપણી આ કથાની પેઠે સંસ્કૃત શબ્દોથી અર્વાચીન પ્રાકૃતમાં ઉતારી લેઇને, એટલું જ નહિ પણ સીધો સંસ્કૃત અનુવાદ કરીને બચાવી લીધાં છે. આ કથાની પેઠે ઇ. સ. ની શરૂઆતની સદીઓમાં લખાયેલી અને પાછળથી નાશ પામેલી બૃહત્કથાનાં એ જાતનાં ત્રણ નવાં સંસ્કરણ હાલ મળી આવે છે.

હાલની ગાથાસપ્તશતીને નામે ઓળખાતા શૃંગારિક ગ્રંથની કાળગણનામાં, પ્રાન્તિક ભાષાઓમાં પ્રધાન એવી એની પ્રાકૃતને માટે ગુંચવણ ઉભી થઇ હતી. પણ એ ગાથાસમૂહમાં

બારેક લેખકનો હાથ છે. અને એ ગાથાઓમાં પ્રબળ અને સરસ છાપ પાડે એવી રીતે એટલે કે શુદ્ધ સ્પષ્ટ અર્થભરી રીતે ગૃહજીવન આંકવામાં આવ્યાં છે. તેમાં શબ્દો કે રચના બદલીને, કથાગ્રંથોની પેઠે, અર્વાચીન સ્વરૂપ આપવામાં આવ્યું નથી, સુભાગ્યે એ વગરફેરફારે જળવાઇ રહી છે; અને દશકાઓ પૂર્વે **આલ્બ્રેષ્ટ વેબરે** પોતાની પ્રબળ શક્તિ એના ઉપર જેમ અજમાવી હતી તેમ બીજા કોઇ પંડિતે પાછું એ કામ હાથમાં લેવું જોઇએ છે. આ ૭૦૦ ગાથાઓના ભાગ્ય ઉપરથી આપણે નિર્ણય કરી શકીએ તો એમ પણ ખુશીથી કહી શકીએ કે આપણી કથા તેમજ બૃહત્કથા પણ મૂળ સ્વરૂપે સચવાઇ રહી હોત. કારણ કે નવા સંસ્કારથી વસ્તુ તો સચવાઈ રહ્યું, પણ એ રૂપ બદલાવાને કારણે જ વસ્તુનું પુરાણું સ્વરૂપ પૂરી રીતે દબાઈ ગયું.

આ કથાની સાથે 'કામનીત' નામની ગેલેરૂપની ડૉઇચ-ભારત (અથવા એમ કહીએ કે ભારત-જર્મન) કથા સરખાવતાં ડૉઇચ (જર્મનો પોતાને જર્મન નહિ પણ ડૉઇચ કહે છે અને ડેન, ડાઇચ, ફ્રીસ, શ્લાસ્સ નોર્વીશ વગેરે પ્રજાઓ જર્મન કુળની છે તેથી જર્મન કહેતાં એ બધી પ્રજાઓનો સમાવેશ કરે છે) વાચકને બહુ રસ પડશે. એ બંનેમાં આ ત્રણ ઘટનાઓ આવે છે:

પ્રથમ તો, નાયિકા પોતાની શક્તિથી આગળ આવે છે, ભારતની નાયિકા આશ્ચર્યજનક કુલપરીક્ષાથી અને ગેલેરૂપની નાયિકા દડે રમવાની કળાની અદ્ભુત કુશળતાથી.

બીજું, નાયકનાયિકાને પાછલો ભવ સાંભરી આવે છે અને તે બંને કથાઓમાં જુદી જુદી રીતે; ભારતનાં નાયકનાયિકાને આ ભવમાં અને, ગેલેરૂપનાંને પેલા ભવમાં.

ત્રીજું, કેવળ જુદી પડતી પણ લૂટારાની વાત બંનેમાં આવે છે, ભારતની કથામાં બંનેને લૂટે છે, ત્યારે ગેલેરૂપનીમાં માત્ર નાયકને જ લૂટે છે.

આવી બાબતની વધારે સરખામણી મારે કરવી જોઇતી નથી. મારા કરતાં આપણા સાહિત્ય-ઈતિહાસજ્ઞ પંડિતો ભારતની અને ભારતમાંથી ઉત્પન્ન થયેલી ભાવનાઓને માર્ગે ઉતરે અને એ એની સરખામણી કરીને કિમ્મત આંકે તો સારૂં.

તેમજ આ કથાની પ્રધાન ભાવના રૂપ મહાવીરના ધર્મ ઉપર પણ અહીં કંઈ બોલવા ઇચ્છતો નથી, કારણ કે જેને એ સંબંધે કંઇ વધારે જાણવાની ઇચ્છા હોય તે **"બુદ્ધ અને મહાવીર"** નામની મારી ચોપડીમાંથી વાંચી લેશે. આ કથાની સાથે એ ચોપડી પણ તે જ ગ્રંથપ્રકાશકે પ્રકટ કરી છે.

\+ + + + + +

જે હસ્તલિખિત પ્રતિ ઉપરથી આ અનુવાદ કરવામાં આવ્યો છે, તે પ્રતિ બોનવાળા મારા સુમિત્ર પ્રોફેસર હરમાન યાકોબીએ મને પહેલવારકી ૧૯૨૦ના ઓકટોબરમાં આપી હતી. તે પહેલાં મને એમણે સમાચાર આપ્યા હતા કે પ્રતિ ભારતમાંથી આવી છે, પણ સાથે જણાવ્યું હતું કે તે એટલી અશુદ્ધ છે કે તેમાંની વાર્તાની ધારા સળંગ કરવાને માટે બહુ કાળ અને શ્રમનો વ્યય કરવો પડશે, અને નવી આવૃત્તિને માટે મૂળ તૈયાર કરવું તો મોટે ભાગે અશક્ય પણ બને. મેં ઉત્તર આપ્યો કે ગમે તેમ હોય પણ મારે એક વખતે તો એની વાચના કરવી છે, કારણ કે જે ગ્રંથનું આ નવું સંસ્કરણ થયું છે એ મૂળગ્રંથની મહત્તા, એનો ઉલ્લેખ કરનાર

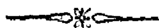
સાતમી અને આઠમી સદીના ટીકાકારોની ટીકાઓથી, ત્રીસ વર્ષ પહેલાંથી જ મારા ધ્યાનમાં આવેલી છે. મારા મિત્રે એ પુસ્તકની તપાસ કરવા, એ હસ્તપ્રતિ ખુશીથી મને સોંપી. એમને એ પ્રતિ અમદાવાદના રા. કેશવલાલ પ્રેમચંદ મોદીએ આપી હતી. આ પ્રત કેટલીક સદીએ ઉપર લખાએલી કોઇ પ્રતિના ઉતારા રૂપે છે. તેનાં પંદર પાનાં પ્રથમ રા. કેશવલાલે (ગાથા ૧–૪૫૭) તપાસી જોવાને પ્રો. યાકોબીને મોકલ્યાં હતાં. પાછળથી તેમણે પુરી પ્રત મળ્યે મને મોકલી દીધી હતી.

હસ્તપ્રતના ખુટતા ભાગ ઉપરથી (અને હું માનું છું ત્યાંસુધી તેના સ્વરૂપ ઉપરથી) યથામતિ મારૂં અનુમાન એવું છે કે કથા પદ્યમાં છે અને ગાથાની સંખ્યા કરવામાં આવી છે. એવો ખુટતો મોટો ભાગ એક જ જગાએ છે અને તે ગાથા ૬૭૧ ઉ.થી ૬૭૭ ઉ. સુધીનો તેર પંક્તિઓ વાળો છે. ગાથાઓના અંકની ગણતરી બધેય (૧૦, ૨૦, ૩૦, એમ) દશકાથી કરેલી છે, અને ૮૦ના અંકને બે વાર મુક્યો છે, તેથી ૯૦થી બધા અંકમાં દશદશની ભૂલ હેઠસુધી ચાલી આવી છે; એક જગ્યાએ ખુટતો ભાગ તો છે જ નહિ, છતાં ગમે તો મૂળ લેખના કે ગમે તો સંસ્કારકના દૃષ્ટિદોષથી કંઇક ભૂલ થયેલી લાગે છે. પરણ્યા પછી નાયકનાયિકાએ અનેક માસ પછી સંસારત્યાગ કર્યાનું એક જગાએ જણાવ્યું છે. બીજી જગાએ બાર વર્ષ પછી સંસાર ત્યાગ કર્યાનું જણાવ્યું છે. વાર્તાને આખી સળંગ ગોઠવ્યા પછી આ વિરોધભાવ ટાળી શકાય. અનુવાદમાં આવી પૂર્તિ (બેશક કૌંસમાં) ૧૦મા અધ્યાયને આરંભે મુકી છે, ૧૩૦૬મી ગાથા પૂર્વે હસ્તપ્રતિમાં અમુક ભાગ ખુટતો હોય તેમ લાગે છે, પણ (ગાથાના અંક જોતાં) કંઇ ભાગ ખુટતો જણાતો નથી; એટલે એ લેખક કે સંસ્કારકનો માત્ર દૃષ્ટિદોષ જ છે.

૧૬૪૪ ગાથામાં ભારતભાષામાં આ કથા પુરી થાય છે. મેં એમાં ૧૨ અધ્યાય પાડ્યા છે. અને માર્જીનમાં ગાથાના અંક મુક્યા છે. તેથી અંકોના ભાગને એકબીજા સાથે સરખાવી જોતાં ક્યાં અને કેવી રીતે મેં અનુવાદને સંક્ષિપ્ત કર્યો છે એ સમજી શકાશે. બાર અધ્યાયનાં નામ, તેમજ કથાભાગમાં હકીકત સ્પષ્ટ કરવા કે કથા સળંગ કરવા કેટલાક શબ્દો મેં કૌંસમાં મુક્યા છે.

Freiburg i/B. im Hause Sutterlin,
Mitte Mai 1921.

Ernst Leumann.



તરંગવતી.

(૧. મંગલ અને પૂર્વકથન.)

૧-૪. શાશ્વત, અચળ અને અનુપમ સુખને પ્રાપ્ત કરનાર તથા જન્મમરણના કલ્લોલોવાળા દુઃખસમુદ્રથી પાર થનાર સર્વ સિદ્ધાત્માઓને વન્દન હો. સદ્ગુણ, સચ્છીલ, વિનય અને વિજ્ઞાન વડે સંઘસમુદ્રની શોભા વધારનાર સત્પુરુષોને નમસ્કાર હો. જેના પ્રભાવથી મૃત છતાં પણ જે કવિવરો સદા જીવિત જણાય છે તે સંગીત અને સાહિત્યની અધિષ્ઠાત્રી દેવી સરસ્વતી સુપ્રસન્ન થાઓ. કાવ્યરૂપી સુવર્ણના ગુણદોષોની પરીક્ષા માટે જે કસોટી સમાન ગણાય છે તે વિદ્વત્સમાજનું કલ્યાણ થાઓ.

૫-૬. પાદલિપ્ત આચાર્યે તરંગવતી નામે એક કથા લોકભાષામાં રચી છે, તે ઘણી વિસ્તૃત અને વિચિત્ર છે. એમાં કેટલા યે કુલકો ભરેલાં છે, કેટલાં યે યુગલકો ગુંથેલા છે, અને કેટલાં યે ષટ્કોનાં ષટ્કો રચેલા છે, એ કારણથી એ કથાને નથી તો કોઇ સાંભળતું, નથી તો કોઈ પૂછતું અને નથી તો કોઇ કહેતું. કેવળ એ વિદ્વાનોના જ ઉપયોગની વસ્તુ થઈ પડી છે, ઈતર જનોને એનો કાંઇ ઉપયોગ થતો નથી, તેથી એવા જનોના હિતાર્થે, તેમજ એ કથા સર્વથા નષ્ટ ન થાય એ માટે પણ, એમાની ક્લિષ્ટગાથાઓ અને લોક પદોને છોડી દઈને અતિસંક્ષેપમાં મેં આ કથા ગુંથી છે. એટલા માટે મારૂં આ કાર્ય મૂળ કથાકાર આચાર્યને ક્ષન્તવ્ય થાઓ !

૭-૧૩. ભૂમિતલ ઉપર ઉતરી આવેલ સ્વર્ગલોક સમાન કોશલા (અયોધ્યા) નામે વિશાળ નગરી છે. ત્યાં રહેતી પ્રજા દ્વારા બ્રાહ્મણ, શ્રમણ, અતિથિ અને દેવતાઓની કરાએલી, પૂજાએ કરીને સંતુષ્ટ થએલા દેવો એ લોકો ઉપર સંતતિ અને સંપત્તિના આશીર્વાદો વર્ષાવે છે, એવી એ પુણ્યભૂમિમાં થએલા આચાર્ય પાદલિપ્તના બુદ્ધિવૈભવના નમુના રૂપ આ કથાને અનન્યમનવાળા થઇ તમે સાંભળો. પ્રાકૃત જનોના સર્વ સાધારણ કલ્યાણને અર્થે કરાએલી આ પ્રાકૃતકથા જો ધર્મબુદ્ધિપૂર્વક સાંભળવામાં આવે તો પછી જમના ભયથી પણ ડરવાનું કાંઈ પણ કારણ રહે નહિ.

થાય અને ધર્મનો ઉપદેશ સાંભળ્યા પછી તે અહિંસા ધર્મનું મત લે, તો ઉપદેશકને ઉપદેશ આપ્યો સફળ છે; કારણકે પોતાના ઉપદેશથી તે માત્ર બીજાને જ નહિ, પણ પોતાને પણ પુનર્જન્મના અપાર સમુદ્રથી પાર ઉતારી જાય છે; આથી ધર્મનો ઉપદેશ દેવો એ તો સદા શ્રેષ્ઠ છે. તેથી હું જે કાંઇ જાણું છું તે કહું છું; તમે ધ્યાન દેઇને સાંભળો."

૬૨–૬૫. તે વખતે દાસીઓ આનંદે તાળીઓ લે છે અને બોલે છે કે "હવે આપણે એકીટસે આ સાધ્વીની અજબ સુંદરતા નિહાળી શકીશું!" પછી એ સાધ્વી અને તેની સહચરી તેમને માંડી આપેલ આસન ઉપર એકાન્ત સ્થાન પર બેસે છે અને આનંદ જેમનો માતો નથી એવી દાસીઓ તથા શેઠાણી પણ તેમને સભ્યતાપૂર્વક નમસ્કાર કરીને સામે ફરસબંધી ઉપર બેસી જાય છે.

૬૬–૬૮. પછી એ સાધ્વી સ્ફુટ અને વિશદ વાક્યોએ કરીને, કાન તથા મનને મધુર લાગે તેવે સ્વરે, ટુંકાણમાં પણ સહેજ સમજાય તેવી શૈલીમાં, જગતના સર્વ જીવોને સુખ આપનાર અને જન્મ, જરા, રોગ, મરણ આદિનાં દુઃખોનો નાશ કરનાર એવા જિનમહાત્માએ કહેલા ધર્મનો સાર સંભળાવે છે; સમ્યગ્જ્ઞાનદર્શન; અહિંસા, સત્ય, અસ્તેય, બ્રહ્મચર્ય અને અપરિગ્રહ સ્વરૂપ પાંચ મહાવ્રત; તપ અને સંયમ; વિનય અને ક્ષમા આદિ ગુણવિશિષ્ટ ધર્મનાં તત્ત્વોનું રહસ્ય સમજાવે છે.
સારી રીતે અવગત ઌ.

...વી ઉપદેશ આપી રહે છે, ત્યારે શેઠાણી એમને વિનયભાવે કહે

૨૪–૨૮. એ સાધ્વીની અ...ા પેઠે સાંભળ્યો; પણ હે પવિત્ર આર્યા! મને બીજી સવારે છઠ્ઠ (બે ઉપવાસ) વ્રતનાં પારણા ...થી મારી આંખો તો તૃપ્ત થઇ છે, પણ નવદીક્ષિત ભિક્ષુણીને પોતાની સાથે લઇને તે ભિક્ષ... બની ગયા છે. વિષ્ણુને જેમ પદ્મ બહાર નિકળે છે. નાના મોટા બધા જીવો ઉપર ...ને આખા જગત્‌ને નમસ્કાર કરવા નીચી નજરે તથા ધીમે પગલે ચાલતી એ સાધ્વી ભિક્ષા અને પતિના ઘરમાં કેવું સુખ હવેલીના પ્રશસ્ત આંગણામાં આવીને ઉભી રહે છે.

૨૯–૩૦. અતિથિઓના આગમનની રાહ જોતી ઘરની કેટલીક દાસીઓ આંગણામાં ઉભી છે તે એ સાધ્વીના સૌન્દર્યને જોઇને ચકિત થઇ જાય છે.

૩૧–૩૫. માંહોમાંહે તે વાતો કરવા લાગે છે કે જુઓ આ લક્ષ્મી સમાન સાધ્વી! એના વાળ કેવા સુન્દર અને આંકડીયા છે! એનું મુખ ચંદ્રના જેવું મોહક છે. વિના શણગારે હો પણ ચીકણે વસ્ત્રેથી એના કાન ઢંકાયલા છે. અને પાણીમાંથી કમળ બહાર નિકળે છે તેના જેવો એનો સુંદર હાથ ભિક્ષા માગતી વખતે વસ્ત્રમાંથી બહાર નિકળે છે.

વિષયો સંબંધે અમે વિચાર કરી શકીએ નહિ. પૂર્વે ગૃહજીવનમાં જે આનંદ અમે ભોગવતાં તે યાદ પણ કરી શકીએ નહિ. તોપણ જગત્નાં દુઃખથી જે ઘૃણા પેદા થઈ એ તરફ જ નજર રાખીને, કર્મનું ફળ મને કેમ પ્રાપ્ત થયું એ વિષેનું જ હું સ્વાનુભવનું થોડુંક વર્ણન કરીશ."

૮૧–૮૫. આ શબ્દોથી રાજી થઈને શેઠાણી પોતાની દાસીઓને બધું ધ્યાનથી સાંભળવાની સૂચના કરે છે. અને સાધ્વી હવે પોતાના પૂર્વજન્મની કથા કહી સંભળાવે છે. પોતાના આશ્ચર્યજનક સદ્ભાગ્ય વિષે અભિમાન કર્યા વિના અને માત્ર ધર્મ ઉપર જ દૃષ્ટિ રાખીને સુંદર સરસ્વતી દેવી જેવી એ સાધ્વી આમ આરંભ કરે છે: હું જે જાણું છું અથવા જે મને યાદ છે તે પ્રમાણે મારા જીવનની કથા હું ટુંકામાં કહું છું.

(૩. સાધ્વીની પૂર્વકથાનો પ્રારંભ.)

૮૬–૯૪. મધ્ય દેશમાં વત્સ નામે એક મનોહર પ્રદેશ છે. અમૂલ્ય પદાર્થોથી એ પ્રદેશ પરિપૂર્ણ ભરેલો છે. ત્યાં અનેક ધર્માત્માઓ વસે છે, અને જીવનની ત્રણ કામનાઓ ધર્મ, અર્થ ને કામનું ઉચિત રીતે પરિપાલન કરે છે. તે પ્રદેશની રાજધાની કૌશામ્બી ખરેખર સ્વર્ગનગરી છે, મધ્યદેશનું જાણે મોતી એ છે, બીજી નગરીઓને નમુનારૂપ છે, અને જમુનાને કિનારે જાણે રત્ન છે. ત્યાં ઉદયન રાજા રાજ્ય કરે છે, તે યુદ્ધમાં અને પ્રતાપમાં પ્રખ્યાત થયેલ છે, સાધુઓનો અને સાધ્વીઓનો ભક્ત છે, મિત્રોને સુખકર છે, અને શત્રુઓને ભયંકર છે. અશ્વે, હાથીએ, રથે અને પાયદળે બળવાન, હૈહય વંશમાં એ ઉતરી આવેલો છે; પૂર્ણચન્દ્ર જેવી એના મુખની શોભા છે, હંસના સ્વર જેવો એનો સ્વર છે, અને સિંહની ગતિ જેવી એની ગતિ છે. કુળે, રૂપે ને ગુણે પ્રખ્યાત એવી એની વાસવદત્તા રાણી છે.

૯૫–૧૦૧. રાજાને સમાન વયનો એક મિત્ર એ નગરનો નગરશેઠ છે, એનું નામ ઋષભસેન છે. નગરના મહાજનનો એ મુખી છે, પ્રજામાં એનો બોલ વજનદાર ગણાય છે, અર્થશાસ્ત્રના સિદ્ધાન્તોને તે સારી રીતે જાણે છે, લોકોમાં અને વ્યાપારીઓમાં ન્યાય ચુકવી જાણે છે, બધાની સાથે મિત્રભાવે રહે છે, લોકનું ભલું કરવાની વૃત્તિવાળો છે, સત્યનિષ્ઠ અને પ્રમાણિક છે, નિષ્કલંક ગૃહસ્થજીવન જીવે છે, અને જૈન ધર્મના ઉપદેશનું નિરંતર શ્રવણ કરે છે.

૧૦૨–૧૦૬. તે શેઠને આઠ પુત્રો થયા પછી છેક એમણે યમુનાની પ્રાર્થના કરી, અને તેના ફળ રૂપે હું એમને ઘેર અવતરી. અવતર્યા પછી મને સારી તજવીજથી પારણામાં સુવાડી, અને મારી સંભાળને માટે હુંશિઆર દાસીઓ રાખી. થોડા સમય પછી નાડી-

૧૪૩-૧૪૬. એમ કહીને એણે ફુલની છાબડી ઉઘાડી અને સપ્તપર્ણનાં ફુલથી ભરેલી છાબ મારા પિતાના હાથમાં મુકી. એ ફુલનો સુગંધ, હાથીના મદના ગંધ જેવો, તીવ્ર હતો અને તેથી ચારે દિશામાં તેનો સુગંધ પસરી રહ્યો. પ્રભુને અર્પણ કરવાના સંકલ્પે તે છાબને મારા પિતાએ પોતાને કપાળે અડાડી, અને પછી દેવને ચઢાવવાને માટે એમણે તેમાંથી થોડાંક ફુલ જુદાં કાઢ્યાં, થોડાંક મને આપ્યાં, થોડાંક મારી માને આપ્યાં ને બાકીનાં મારા ભાઈઓને અને ભાભીઓને પહોંચાડ્યાં.

૧૪૭-૧૫૬. એ બધાં ફુલ હાથીદાંતના જેવાં સફેદ હતાં; પણ મારા પિતાની નજર અમુક એક ફુલ ઉપર પડી. એ પુલ ભવ્ય સ્ત્રીના સ્તન જેવડું મોટું હતું અને રંગે સ્હેજ પીળું હતું. થોડીક વાર સુધી તો એ પુલની સામે એ ચકિત થઈને જોઈ રહ્યા. પછી જ્યારે એ વિચારમાંથી જાગ્યા, ત્યારે હસીને મને એ પુલ આપ્યું ને બોલ્યા:

'આનો રંગ તો જો! ફુલ ઉછેરવામાં અને સુગંધ પારખવામાં તું નિપુણ બની છે, તેથી એ વાત તો તું સારી રીતે સમજે. આ બધાં સફેદ સપ્તપર્ણનાં ફુલોમાં આ એક પીળું કેમ? વખતે કોઈ કુશળ કારીગરે આપણને આશ્ચર્ય પમાડવા અથવા તો ફુલ ઉછેરવાની કળામાં નિપુણતા દેખાડવા આમ કર્યું હશે? કેમકે દાહક અને બીજાં દ્રવ્યોથી (તેમને ફુલના કયારાની માટીમાં મેળવવાથી) ફુલના અને ફળના ધાર્યા રંગ લાવી શકાય છે. કારણ કે એવા પદાર્થોમાં છોડને ખીલવી તેમાં ફેરફાર કરવાનું વલણ હોય છે, જે આપણે ચોમાસામાં નજરે જોઈએ છીએ. છતાં યે જુદાજુદા રંગનાં ફુલ અને ફળ ઝાડથીજ પરખાઈ આવે છે.'

૧૫૭-૧૫૯. પિતાનાં વચન સાંભળીને મેં એ ફુલને બરાબર તપાસી જોયું અને પછી એ બાબતમાં ચોક્કસ નિર્ણય ઉપર આવતાં હું વિનયભાવે બોલી:

૧૬૦-૧૬૨. 'જમીનની જાત ઉપર, વાવેતરની ઋતુ ઉપર, બીજ કે દરૂ ઉપર, તથા ખાતર અને વરસાદ ઉપર ઝાડની જાતનો આધાર રહે છે. અને આ બધી વસ્તુસ્થિતિ ઉપર બારીક નજર રાખીને કુશળ કારીગર ફુલને બધી જાતના રંગ લાવી શકે છે. પણ આ ફુલના સંબંધમાં એવું કંઈ થયું જણાતું નથી, કારણ કે એના સુગંધ ઉપરથી હું [illegible] કું છું કે પીળો રંગ એ ફુલનો પોતાનો નથી, પણ કમળના પુલના રજ[illegible] માગાં લાગેલા છે તેનો છે.'

.. મારા પિતાએ ઉત્તર આપ્યો: 'પણ બાગ વચ્ચેનાં સપ્તપર્ણના ઝાડ, શું આ જે ફુલ ફુટયું છે તેને કમળના ફુલના રજકણ લાગે કેવી રીતે?'

૧૬૪-૧૬૯. મેં કહ્યું: 'આ ફુલમાંથી જે વાસ આવે છે, તેમાં કમળનો વાસ વધારે પડતો છે અને તે ઉપરથી આપણે એ અનુમાન ઉપર આવવું જ જોઈશે કે

આપણું સપ્તવર્ણનું પુલ કમળપુલને રજકણે પીળું રંગાયું છે. સપ્તપર્ણના એ ઝાડ પાસે તળાવ હોવું જોઇએ ને આ શરદૃઋતુમાં એમાંનાં કમળપુલ ખુબ ખીલ્યાં હોવાં જોઈએ; અને ત્યાં એ પીળે રજકણે રંગાયેલાં કમળપુલ ઉપર તેમાંનું મધ ચુસવા હજારો મધમાખીઓ બેસતી હશે અને ત્યાંથી આગળ ઉડતાં એ મધમાખીઓ સપ્તપર્ણનાં ધોળાં પુલ ઉપર થઈને જતી હશે અને પોતાની પાંખ ઉપર આણેલા કમળના રજકણ એ પુલ ઉપર પડતા હશે. અને આ રીતે આપણું આ ફુલ પીળું થયું હોવું જોઈએ. બીજો તો કોઇ જ સંભવ નથી; અને હું જે કહું છું તેની ખાતરી આપણને આપણી માળણ પાસેથી થઈ શકશે.'

૧૭૦–૧૭૨. મારૂં કથન સાંભળી પિતાએ મારા કપાળ ઉપર વહાલથી ચુંબન કર્યું ને બોલ્યાઃ 'બહુજ સુંદર રીતે આ કોહાડો તેં ઉકેલ્યો છે; હું પણ મારી મેળે એ જ અનુમાન ઉપર આવ્યો હતો, પણ તારી પરીક્ષા કરવાને માટે જ મેં તને એ પ્રશ્ન કર્યો હતો. ખરેખર હવે તું સત્વર લગ્ન કરવાને યોગ્ય થઈ છે અને તારે યોગ્ય વર શોધી કાઢીશ.'

૧૭૩–૧૭૪. આ વખતે મારી માતાએ મારા પિતાને કહ્યુંઃ 'આપણી દીકરી જેને વિષે આવા સુંદર અનુમાન પર આવી તે ઝાડને જાતે જોવાની મને બહુ આકાંક્ષા છે.' પિતાએ કહ્યુંઃ 'ભલે, તમારા સમગ્ર સ્ત્રીમંડળને લેઇને ત્યાં જઇ શકો. બહાર ફરવા જવાથી તમને બીજા પણ લાભ થશે.'

૧૭૫–૧૭૬. અને પછી પિતાએ ઘરના મુનીમને બોલાવીને કહ્યુંઃ 'કાલે સવારે બાગમાં ઉજાણીનો બંદોબસ્ત કરો. બધી વ્યવસ્થા બરોબર કરજો. સ્ત્રીમંડળ ત્યાં આનંદ કરવા જનાર છે.'

૧૭૭–૧૮૧. દાસીઓ, સખીઓ અને ભાભીઓએ મને વધાવી લીધી. અને મારા ભોજનની સંભાળ રાખનારી દાસી બોલીઃ 'હવે વખત થયો છે, માટે જમી લો. કારણ કે જેમ ઇંધણ વિના દેવતા ટકતો નથી, તેમ અન્ન વિના શરીર ટકતું નથી. ખાવાની વેળા વટાઈ જાય એમ ન થવું જાઇએ.'

૧૮૨–૧૮૭. ચંદ્ર અને દૂધના જેવી સફેદ અને ઉત્તમ પ્રકારે બનાવેલી ખીર પછી મેં ખાધી અને ત્યાર પછી તાજા માખણનો બનાવેલો પાક ખાધો. પછી એક વાસણમાં મારા હાથ ધોઈ નાખ્યા ને રૂમાલે લોહીને સાફ કરી નાખ્યા. ત્યાર પછી મારા હાથ અને મોં ઉપર તેલ ચોળ્યું.

૧૮૮–૧૯૩. આવતી સવારે બાગમાં જવાની વાટ જોતી સૌ સ્ત્રીઓના મોં ઉપર આનંદ આનંદ છવાઈ ગયો, અને એટલામાં જ આરામ અને નિદ્રા લેતી રાત્રિ આવી

પહોંચી. મેં પણ આ અજવાળી રાત ખૂબ આનંદમાં ગાળી, અને જ્યારે ઉંઘ આવી ત્યારે દીવાને અજવાળે જ પલંગમાં જઇ સૂતી. સવાર થતાં મેં હાથ મોં ધોયાં અને દેવને નમન કરી સાધુપુરૂષોના ગુણસ્મરણ પૂર્વક સંક્ષેપમાં પ્રતિક્રમણ કર્યું. પણ અનેક સ્ત્રીઓને તો રાત ઉતાવળે પુરી થતી ન હતી એટલા માટે રાતને ગાળો ભાંડતી, અને ખરેખર કેટલીક તો બાગમાં શું શું જોવાનું મળશે અને સરોવરમાં સ્નાન કરવાથી કેવો આનંદ થશે ઇત્યાદિ અનેક વિષયો ઉપર વાતો કરતી આખી રાત જાગતી બેશી રહી.

૧૯૪–૧૯૮. ઉજાણીની વ્યવસ્થા કરવાને મુનીમ તો જોઇતા ચાકરોને લેઇને આગળથી મળસ્કે જ બાગમાં ગયા હતા. એવે પૂર્વાકાશના કમળને ખીલવતા, આકાશમાં પોતાનો પ્રવાસ કરતા કરતા સૂર્યદેવ ઉદય પામ્યા. હવે સ્ત્રીઓ જુદા જુદા રંગનાં–કોઈ સુતરાઉ તો કોઈ હીરાગળ તો કોઇ ચીનાઈ, એમ–બહુ મૂલ્યવાન વસ્ત્રો પહેરી બહાર નિકળી; એમણે વળી મોતીનાં અને સોનાનાં રત્નજડિત ઘરેણાં પહેર્યાં હતાં. સ્ત્રીઓની સુંદરતાએ શોભામાં વળી શોભા વધારી મુકી અને તેમની જુવાનીએ તેના ઉપર વળી ઓપ ચઢાવ્યો.

૧૯૯–૨૦૪. મારી માતા પણ એટલામાં તૈયાર થઈ ગઈ હતી અને શુભ મુહૂર્ત જોઇને એણે આધેડ નારીઓના ભવ્ય સંઘને પોતાની પાછળ લીધો. પાછળ તેમની ચંચળતાએ મ્હાલતી જુવાન નારીઓ ચાલી. તેમના ઝાંઝરના, કટિમેખળાના અને બીજાં ઘરેણાના ઝણકારથી હવેલીનું આંગણું એવું તો ઝણઝણી રહ્યું કે જાણે તે સંઘને વિદાય દેનારાં વાજાં વાગતાં હોય. અને આ સંઘ નિકળવાના સમાચાર મારી માએ મને, મારી સખીઓ મોકલી, કહાવ્યા.

૨૦૫–૨૦૯. મારી સખીઓ શણગારાતી હતી તે વેળાએ હું પણ સૌથી અનેરાં જ કપડાંથી અને ઘરેણાંથી શણગારાતી હતી; અને મારા અતિ મૂલ્યવાન શણગારે કરીને તેમનાથી ત્રણ ગણી શોભા પામી ચંપાના પુલ પેઠે ખીલી નીકળી હતી. પછી હું સખીમંડળની વચ્ચે મ્હાલતી મ્હાલતી હવેલીના આંગણામાં આવી ઉભી. ત્યાં આવીને જોયું તો ઇંદ્રના સ્વર્ગમાં જાણે જુવાન અપ્સરાઓ ટોળે મળી હોય એમ અમારા આંગણામાં જુવાન નારીઓ પુર ભપકામાં ટોળે મળી હતી.

૨૧૦–૨૧૪. રથને બળદ જોડી દીધા હતા, અને પોતાની બેઠક પાસે ઉભેલા સારથિએ મને દેખતાં જ કહ્યું: 'અહીં બેન; શેઠે તમારે માટે આ અનુપમ સુંદર રથ નક્કી કર્યો છે.' એમ બોલતાંની સાથે જ તેણે મદદ કરીને મને રથમાં ચઢાવી. રથમાં સુંદર મૂલ્યવાન ગાલીચો પાથર્યો હતો. મારી દાસી અને સખી સારસિકા પણ એજ રથમાં આવી બેઠી ને પછી રથ પોતાની ઘુઘરીઓ ખખડાવતો ચાલવા લાગ્યો. પાછળ અમારો

રખવાળ પોતાનો પોશાક પહેરીને ચાલતો હતો. આજુ બાજુ અમને જોવા આવનાર સ્ત્રીઓની ખૂબ ભીડ જામી હતી.

૨૧૫-૨૨૪. અમારો સુંદર સંઘ નગરના રાજમાર્ગ વચ્ચે થઈને ચાલ્યો. ઠેર ઠેર લોકો ટોળેટોળાં મળીને અમને જોવા લાગ્યા. નારીઓ પોતપોતાનાં ઘરની બારીઓમાંથી મોં કાઢીને બહુ આતુરતાએ અમને જોઈ રહી હતી. એ જોઇ હું તો છક થઇ ગઈ. તેમ જ રસ્તા ઉપર અને ઘરની બારીઓમાં જાણે હીરા જડી દીધા હોય એમ સજ્જડ થઇ ગયેલાં માણસો પણ અમને જોઈને છક થઈ ગયાં. સ્વર્ગ, રથમાં બેશી ને જતી લક્ષ્મીને જેમ જોઈ રહે તેમ લોક મને એકીનજરે જોઈ રહ્યા. નગરના જુવાન પુરૂષોનાં હૈયાં મને જોઇને આતુર અને બળવાન કામરાગને લીધે એવાં તો બળી ઉઠયાં કે તેમનાં જીવન જોખમમાં આવી પડયાં. પણ જુવાન નારીઓને બીજી જ ઇચ્છા થઈ આવીઃ- જો આપણી જાતને સ્વર્ગની સુંદરતા સાથે સરખાવવી હોય તો આપણે આના જેવું સુંદર થવું જોઇએ. મારા મુખની સુંદરતાથી અને મૃદુતાથી નગરનો એ રાજમાર્ગ ગાંડો ગાંડો થઇ ગયો, અને સુંદર દેખાવથી ઉભરાઇ ગયો. એમાં મારો દેખાવ તો સૌથી ચમત્કારી હતો. લોકો પાસેથી સાંભળેલી આ બધી વાતો મારી સખીઓએ મને કહી.

૨૨૫-૨૨૮. બાગને દરવાજે આવી પહોંચતાં અમે બધાં રથમાંથી ઉતર્યાં અને ત્યાં આગળ ચોકીદાર મુકીને અમે બધાં ફરવા નિકળ્યાં. જાણે સ્વર્ગના નંદનવનમાં જુવાન અપ્સરાઓ ફરતી હોય, તેમ બધી નારીઓ ફાવે તેમ પોતપોતાને માર્ગે ફરવા લાગી. ખીલતાં ઝાડો એક બીજાની સાથે ગુંથાઇને જે ઉપર દરવાજા જેવાં બની ગયાં હતાં, તેની નીચે થઇને તેઓ ચાલવા લાગી, અને ઝાડ ઉપરથી ફુલભરી ડાંખળીઓ તોડવા લાગી.

૨૨૯-૨૩૦. એટલામાં મારી માતાએ બૂમ મારીઃ 'આવો આપણે મારી દીકરીએ બતાવ્યું છે તે, તળાવને કાંઠે ઉભેલું, સપ્તપર્ણનું ઝાડ જોવા જઇએ.' એની સૂચના પ્રમાણે બધું એ નારીમંડળ આનંદભર્યાં પગલાં ભરતું તે દિશાએ ચાલ્યું.

૨૩૧-૨૩૬. રથમાંની મારી સહચરીઓ અને હું રથમાંથી ઉતર્યાં પછી બાગની શોભાથી મુગ્ધ મને અને આંખે અંદર પેઠાં. શરદૃઋતુએ બાગનાં વિવિધ ફુલોને સુંદર ખીલાવ્યાં હતાં. જાણે ફુલે ફુલે ભમરો ભમતો હોય તેમ હું તો ભમવા લાગી, અને પક્ષીઓનાં હજારો તરેહનાં ગાનથી મારા કાનને પરિતૃપ્ત કરવા લાગી. જેમ જુગારી પોતાની મૂઠ હારી બેસે ને રમતનો તેનો જોસ ભાગી જાય, તેમ વસંતને આરંભે જેનાં સુંદર પીછાં ખરી પડયાં છે એવા મોર સંભોગની આતુરતા વિના જ ફરતા જોયા. વળી કેળોના અને તાલના માંડવા અને બાળકોને ખેલવાની કુંજો અને

એવી એવી ઘણી જગાઓ બાગમાં જોઈ. ફુલને લીધે સફેદ થઇ ગયેલાં સપ્તપર્ણનાં ઝાડ પાસે રાતાં અશોકવૃક્ષ અને આસમાની બાણવૃક્ષ હતાં.

૨૩૭-૨૫૦. ચાલતાં ચાલતાં એક સુંદર સપ્તપર્ણનું ઝાડ અમારી નજરે આવ્યું. એ ચારે બાજુએથી, ફુલશણગારના ભારે કરીને, લચી ગયું હતું. ફુલથી સફેદ થઇ ગયેલી એની ડાંખળીઓ મધમાખીઓનાં ટોળાંથી નમી ગઇ હતી અને જાણે કાળા રંગનો પોષાક ચઢાવ્યો હોય એવું દેખાતું હતું. અને પવને કરીને જે ફુલ ભોંય ઉપર પડી ગયાં હતાં તેને ગાંડછાએ ચડેલા કાગડા સફેદ માખણના લોચા માની ઉપાડી ઉડતા ફરતાં હતા. એ ઝાડ ઉપરથી નારીના સ્તન જેવડું મોટું ને ચાંદીના વાડકા જેવું સફેદ એક પુલ મેં ચુંટયું કે તરત જ મધ ચુસનારી માખીઓનું એક ટોળું, કમળ ઉપર બેસવાની લાલસાએ કમળના ઘાટના અને કમળના જેવો વાસ આપતા મારા મોં તરફ ધસી આવ્યું. મોં ઉપર એ મધમાખીઓ બેસવા જતી હતી, તેમને મેં મારા મૃદુ હાથ વડે વારી; પણ મારા હાથ તો જાણે પવનમાં ડાંખળી હાલતી હોય એમ માની એની દરકાર કર્યા વિના જ તે મોં ઉપર આવી લાગી. વેદનાએ મેં ચીસ પાડી અને હું પાછી પડી; પણ માખીઓના ગણગણાટ અને પંખીઓના કલબલાટમાં મારી ચીસ તો કયાંય દબાઇ ગઈ. ઘોડાના મોંના ફીણ કરતાંએ નરમ એવી મારી ઓઢણી મેં મારા મોં ઉપર ખેંચી લીધી, કે જેથી ઘણીખરી માખીઓ ખશી ગઈ. પણ આમતેમ દોડવાથી મારાં રત્નજડિત ઘરેણાં વિખેરાઇ પડયાં, અને કામદેવનું બાણ જેના વડે ચઢાવાય એવી કટિમેખળા કેડેથી છુટી પડી. પણ વેદનાને લીધે એની પરવા કર્યા વિના જ હું તો દોડી ને કેળના માંડવામાં પેશી ગઇ. ત્યાં મારી સખી સારસિકા હતી તેણે મને આશ્વાસન આપી કહ્યું: 'તને મધમાખીઓ તો હજી ચેંબડુ લાગેલી છે, પણ ડરવા જેવું કશું નથી.'

૨૫૧-૨૬૧. જે સપ્તપર્ણને અમે જોવા આવ્યાં તે ઝાડ પાસે હવે હું ગઇ. કમળના તળાવવાળી મધમાખીઓનાં ટોળેટોળાં તેના ઉપર બેઠાં હતાં. પુનેમના ચાંદા જેવા મધપુડાને છોડીને આજે એ બધી શરદનાં ફુલોમાં ભરાઇ બેઠી છે. અમારા સાથમાંની જે સ્ત્રીઓ ત્યાં પહોંચી હતી તેમણે તો ફુલોના મોહમાં ઝાડની ડાંખળીઓ સુદ્ધાં બધી ચુંટી નાંખી હતી. મારી સખીના ખભા ઉપર મારા ડાબા હાથનું કાંડુ ટેકવીને અને કમળસરોવર ભણી નજર રાખીને હું આગળ ચાલી રહી હતી. બધી જાતનાં કમળફુલ પુરેપુરાં ખીલ્યાં હતાં. બાગના રત્નસમાન આ સરોવરની સપાટી પક્ષીઓના શબ્દોથી ગાજી રહી હતી અને મધમાખીઓનાં ટોળાંથી છવાઈ રહી હતી. રાતાં ફુલ પ્રભાતની, સફેદ ફુલ ચન્દ્રપ્રભાની, અને શ્યામળાં ફુલ વાદળાંની યાદ આપતાં હતાં. મધમાખીઓનો ગણગણાટ અને હંસોના નાદથી ગગન ભરાઈ ગયું હતું. પાણીની ઉપરનાં મોજાં ઉપર ફુલ પવનથી હીંચકા ખાતાં હતાં. ત્યાં મેં કલબલાટ કરતી બતકો, નરમાદાની જોડીએ

ચાલતાં ચક્રવાકો, અને ધોળાં પીછાં વાળા આનંદી હંસો જોયા. પીળાં કમળ ઉપર બેઠેલી મધમાખીઓ સોનાની તાસકોમાં મુકેલાં નીલમ જેવી શોભી રહી હતી; અને રેતીના કિનારા ઉપર રૂના જેવાં સફેદ પીછાંવાળા હંસ શરદના સુંદર હાસ્ય સાથે પોતાનું હાસ્ય ભેળવતા હતા.

૨૬૨–૨૬૭. પછી મેં નર–માદાની જોડીએ બંધાયેલાં અને પોતાના સ્નેહને લીધે પંકાયેલાં અનેક ચક્રવાકોને જોયાં. એમના રાતા રંગમાં પીળો રંગ ભેળવાયાથી એ રમણીના સ્તનના રંગ જેવાં બહુરંગી દેખાતાં હતાં. તળાવમાં રંગિત ફરસબંધી જેવાં લીલાં પાનનાં જે આસન બંધાઈ રહ્યાં હતાં તેના ઉપર કેટલાક આવા ચક્રવાક આરામ લેતા હતા, અને કેટલાક વળી આવાં પત્રાસનોની વચ્ચે વચ્ચે સોમલના જેવા રાતા રંગના, જાણે સ્નેહને લીધે જ રાતા બન્યા હોય એવા, પોતાની નારીઓના સ્નેહને પોષતા બેઠા હતા. જે વખતે તળાવમાંનો આ દેખાવ હું જોતી હતી તે વખતે એ ચક્રવાકે નો પરસ્પરનો સ્નેહ અને મમતા જોઈને મારા મનમાં કાંઈ અગમ્ય વિચારો આવવા લાગ્યાં. આ જન્મમાં નહિં અનુભવેલી એવી કાંઇ કલ્પના મને થવા લાગી અને એ ઉંડા વિચારમાં ને વિચારમાં મને મારો પૂર્વ અવતાર પ્રત્યક્ષ થઈ આવ્યો. એ પૂર્વ જન્મનું સ્મરણ થતાં જ મને મૂર્છા થઈ આવી અને ચેતન વિનાના શરીરની માફક હું જમીન પર ઢળી પડી.

૨૬૮–૨૭૨. જ્યારે મને ભાન આવ્યું ત્યારે જાણ્યું કે મારી આંખમાંથી તો શું પણ મારા વેદના-ભર્યા હૈયામાંથી પણ આંસુની નદી વહ્યે જતી હતી, અને મારી સખી કમળપત્રનો પડીઓ બનાવી તેમાં પાણી લેઈ આવીને મારા દુખભર્યા હૈયા ઉપર અને આંખો ઉપર એ પાણી છાંટતી હતી. હું ઉભી થઈ અને પાસેની કેળોની ઘટા અંદરની એક કુંજમાં પડેલી આસમાની કમળને યાદ કરાવતી કાળી શીલા ઉપર જઈને હુ બેઠી. ત્યાર પછી મારા દુઃખમાં અને અશાન્તિમાં હૃદયથી ભાગ લેતી મારી સખી મને પુછવા લાગી: 'બેન, તને એકદમ આ શું થયું? શું તને ચક્કર આવવા લાગ્યાં કે બહુ થાક લાગ્યો કે ખરેખર તને મધમાખીએ ચટકો ભર્યો?'

૨૭૩–૨૭૭. મારી આંખમાંનાં આંસુ તો એ પુંછી રહી હતી, પણ મારા ઉપરના સ્નેહને કારણે એની આંખમાંથી આંસુ દડદડ વહ્યે જતાં હતાં. વળી એ બોલી: 'તને આમ મૂર્છા શાથી આવી ગઇ? બેન, તું જે જાણતી હોય તે કહે કે જેથી જલદી તેનો ઉપાય થાય; તારૂં શરીર કથળી ન જાય એટલા માટે હવે ખોટી થવાય નહિ. દરદ બેશક કંઇક ભારે હોવું જોઇએ, બેપરવા કે બેદરકાર કર્યે પાલવે નહિ. વાત હાથમાં હોય એટલામાં જ કંઇક ઉપાય કરી લેવો જોઇએ, નાહ તો માત્ર ઉઝરડો હોય તે પણ ફોલ્લીના ઘા જેવો થઈ જાય.'

૨૭૮–૨૭૯. સખીને કહી શકાય એવું એણે મને ઘણું કહ્યું ત્યારે મેં ઉત્તર આપ્યો: 'ભય જેવું કશું નથી; બેન, મને ચક્કરે આવ્યાં નથી, બહુ થાકી યે ગઈ નથી કે મધમાખીના ચટકા યે લાગ્યા નથી.

૨૮૦–૨૮૧. પણ એ તો વચ્ચે જ બોલી ઉઠી કે: 'ત્યારે તું રંગ વિના ફીકા પડી ગયેલા રામધનુષની પેઠે મૂર્છા ખાઇને એમ ભોંય ઉપર કેમ પડી ગઈ? બેન, તું તારૂં હૈયું ખોલ, હું તો તારી પ્રિય સખી છું.'

૨૮૨–૨૮૬. નીલમ જેવી સુંદર કુંજમાં મેં સખી સારસિકાને કહ્યું:– 'મારી પ્રિય સખી, પવનથી તુટી પડેલા પાનની પેઠે મૂર્છા ખાઇને હું શા માટે ભોંય ઉપર પડી એ બધી હકીકત હું તને ટુંકામાં કહીશ. તું મારી નાનપણની સખી છે અને મારા સુખદુઃખની ભાગિયણ છે; તેમ મારાં બધાં છાનાં પણ તું જાણે છે. ત્યારે આજની વાત પણ બધી તને કહીશ. પણ બધી વાત તારા હૈયામાં રાખજે. એ તારે મોંએથી બીજા કોઇને કાને જવા પામે નહિ! મારા ગળાના સમ ખા કે બીજા કોઇને આ વાત કહીશ નહિ.'

૨૮૭–૨૮૮. ત્યારે સારસિકા મારે પગે પડી ને બોલી: 'બેન, તારા પગના સમ ને તારા ગળાના સમ, હું કોઇને નહિ કહું.'

૨૮૯–૨૯૧. પછી મારી વહાલી ને વિશ્વાસુ સખીને મેં કહ્યું: 'બહુ દુઃખની વાત છે કે મારા પાછલા અવતારની વાત મારી આંખોએ આંસુ વડે બહાર નિકળી જવા દીધી છે. મારા પ્રિયનો મને જે વિજોગ થયો છે તેનું સ્મરણ થઈ આવવું એ, પણ બહુ દુઃખની વાત છે. જે સ્નેહ મેં એકવાર માણ્યો છે ને જે દુઃખ ભોગવ્યું છે તે સૌ હું તને કહું છું, જે મન દઇને સાંભળ.'

૨૯૨. મારી સખી મારી બાજુમાં સાંભળવાને અધીરી થઇને બેસી ગઈ ને આંસુ વહેતી આંખોએ મેં વાત શરૂ કરી.

(૪. પૂર્વ જન્મનું વૃત્તાન્ત.)

૨૯૩–૨૯૪. આપણી પાડોશમાં અંગ નામે પ્રસિદ્ધદેશ છે અને એ દેશ શત્રુથી, ચોરથી ને દુષ્કાળથી સદા નિર્ભય છે. ત્યાં ચંપા નામે સુંદર નગર છે જેમાં અનેક સુંદર બાગબગીચા તથા રમણીય જળાશયો છે ત્યાંની વસ્તી સાચે જ સ્વર્ગસમી છે.

૨૯૫–૨૯૯. તે દેશની વચ્ચે થઈને પવિત્ર ગંગાનદી વહે છે. તેને બંને તીરે અનેક નગર અને ગામ વસેલાં છે અને જળપંખીઓનાં ટોળે ટોળાં તેમાં રહે છે. સમુદ્રની જાણે વ્હાલી પત્ની હોય એમ એ તેના તરફ ધસે છે. કાદંબ પક્ષી તો જાણે એનાં ... છે, હંસની હાર જાણે એની કટિમેખળા છે, ચક્રવાક પક્ષીની જોડ જાણે એનાં બે

રતન છે, એનાં મોજાંથી જાણે એ હસતી દેખાય છે. એને કિનારે હાથી, બળદ, વાઘ, ચિત્તા ને વરૂ રહે છે. પાણીની સપાટી ઉપર પાકા રાતા ઘડા તરતા હોય એમ ચક્રવાકનાં જોડાં આનંદે રમ્યા કરે છે. હંસ બતકો અને એવાજ બીજાં જળપ્રાણીઓ પણ ચિંતા વિના સ્વતંત્રતાએ ફરતા ફરે છે.

૩૦૦–૩૧૪. મારી પ્રિય સખી, ત્યાં હું આગલા અવતારમાં રાતાંપીળાં પીછાંવાળી ચકવાકી હતી અને સ્વતંત્રતાનું પૂરૂં સુખ ભોગવતી. ચક્રવાકોમાં સ્નેહ જેટલો સાચો અને પ્રબળ હોય છે તેવો સ્નેહ આખા જગતમાં બીજે ક્યાંય નહિ હશે. અને મારો નર તો વળી ચંચળ માથાએ કશને અને ગોળ દડા જેવે શરીરે કરીને પ્રખ્યાત હતો; તેમાં વળી એ કુશળ તરનારો હતો અને કોરેન્ટના ફુલના ગોટા જેવો સુંદર હતો. તેનાં કાળાં અને રૂવાંટી વગરનાં પગનાં ચાપ્પાં કમળના કાળા પાન જેવાં હતાં. છેવટ સુધી તેનો સ્વભાવ તપસ્વી જેવો સરલ હતો, એનો ક્રોધ તો બહુ પહેલેથી બળી ગયો હતો. રાતા પ્રભાતસમયે તેની સાથે જ હું તરવા જતી. ઉડતી પણ તેની સાથે જ. એવી રીતે અમે સ્નેહમાં સાથે રહેતાં, ચઢતા ઉતરતા સુંદર શબ્દથી અમારા કાનને અને હૃદયને આનંદ આપતાં, એક બીજાને સુખી કરતાં, એક બીજાની પાછળ જતાં, સાથે રમત રમતાં અને એકબીજાનો વિજોગ કદી સહી શકતાં નહિ. નદીએ, કમળસરોવરે, રેતીને કિનારે કે કિનારાના જંગલે–જ્યાં જતાં ત્યાં અમે સ્નેહનો દેખાવ કર્યા વિના જ પણ સાચે સ્નેહે બંધાઈને સાથે જ રહેતાં.

૩૧૫–૩૨૬. એક સમે સૌ જળપક્ષીઓ સાથે અમે પણ ગંગાને પાણીએ બનેલા સુંદર તળાવમાં રમતાં હતાં, તેવે સૂરજને તાપે બળ્યો બળ્યો થઈ ગયેલો એક હાથી ત્યાં નદીમાં નાહવા કાજે આવ્યો. રાજાઓના ભાગ્યસમા ચંચળ એના કાન આમ તેમ હાલતા હતા; મૃદંગના જેવો મૃદુમૃદુ અવાજ તે કર્યા કરતો, પણ વળી એ રાક્ષસસમું પ્રાણી વચ્ચે વચ્ચે મેઘગર્જનાના જેવો ભયંકર નાદ પણ કરતું. તેના કુંભસ્થળમાંથી મદ ઝરતો હતો અને સપ્તપર્ણના ફુલના જેવો એનો તીવ્ર વાસ પવનને બળે ચારે દિશાઓમાં પ્રસરી રહેતો. કિનારાના ઘુમ્મટ ઉપરથી આ મહાપ્રાણી નીચે ઉતર્યું. રેતીમાં પડતાં એનાં પગલાં વડે જાણે ગંગાની કેડો ઉપર કંદોરો બનાવતું હોય તેમ દેખાવા લાગ્યું અને સમુદ્રની રાણી જેવી ગંગા જાણે એ હાથીથી ભય પામીને પોતાનાં મોજાંને લેઈને દોડી જતી હોય તેમ દેખાવા લાગી. એણે પાણી પીધું ને પછી સુંઢથી ફુંફવાડો મારીને પાણી એવું ઉડાડ્યું કે જાણે નદી ઉપર વાદળ ચઢી આવ્યું. પછી પ્રવાહમાં એ ઉંડે ઉતર્યો અને સુંઢ વડે પાણીનો પર્વત જેવડો પ્રવાહ પોતાની પીઠ ઉપર વહેવડાવ્યો. નદીમાં એણે એવાં તો મોજાં ઉડાવ્યાં કે તે અમે હતાં તે તળાવમાં પણ આવી પહોંચ્યાં. એ જ્યારે સુંઢ ઉંચી કરતો અને તેથી એનું મોં પહોળું થતું

ત્યારે એનાં જડબાં, જીભ અને હોઠ વડે એવી બખોલ દેખાતી કે જાણે એ અંજન પર્વતની સિંદુરની ગુફા હોય.

૩૨૭-૩૩૫. ભયથી ત્રાસીને બીજાં જળપ્રાણીઓની પેઠે હું પણ મારા સ્વામીની સાથે ઉંચે ઉડી ગઈ. પછી હાથી નદીમાંથી નિકળી પોતાને રસ્તે પાછો ચાલ્યો જતો હતો, તેવે સમે વનફુલાંએ શણગારએલો, હાથમાં ધનુષબાણ લેઇને સાક્ષાત્ જમદૂત જેવો એક જુવાન પારધી આવી પહોંચ્યો. એના પગ ઉઘાડા હતા અને નખ વાઘના પંજાશા ખૂબ લાંબા વધેલા હતા. એનું શરીર ખૂબ મજબુત હતું અને એની પહોળી છાતીમાંથી, ધનુષની પણછ ફુટે એમ, બે લાંબા હાથ ફુટતા હતા. તેની દાઢી શતાશ પર અને સુંવાળી હતી; હોઠ કંઈક ફાટેલા હતા અને બળવાન ખાંધ ઉપર માથું હાલતું હતું; માથા ઉપર વાંકડીઆ વાળ હતા અને વાળના છેડા સાપની જીભશા દેખાતા હતા. વળી પવને અને સૂરજને તાપે કરીને એની ચામડી કાળી થઈ ગએલી હતી. તેથી એ રાક્ષસસમો કે જમદૂતના સાક્ષાત્ અવતારસમો દિસતો હતો. તેની પીઠે એક તુંબડું લટકતું હતું, અને તેમાં બાણ ભર્યાં હતાં. તેણે ભયંકર વ્યાઘ્રચર્મ પહેર્યું હતું, અને તે જાણે વસ્ત્ર ઉપર મેશના કે સહીંના લીસોટા તાણ્યા હોય એમ દેખાતું હતું.

૩૩૬-૩૪૧. પારધીએ એ હાથીને જોયો કે તરત જ, જરૂર પડે તો ઉપર ચઢી જવા માટે, દોડીને એક મોટા ઝાડ નીચે જઈ ઉભો. પછી ધનુષ પર બાણ ચઢાવીને ખુબ જોરથી ખેંચ્યુ ને હાથી ઉપર તાક્યું. પણ કમનશીબે એ નિશાન ચુક્યો અને તે હાથીને ન લાગતાં સામે જ ઉડતા મારા સ્વામીને જઈ ચોટ્યું. તેનાથી એમની એક પાંખ કપાઈ પડી ને તેની સાથે એ પણ મૂર્છા ખાઇને પાણીને કિનારે પડ્યા. હું મારા પ્રિયની પાછળ ઉડી અને એમની વેદના મારાથી નહિ સહન થઇ શકવાને કારણે હું પણ તેમની પાસે જ મુર્છિત થઇ ધરણી ઉપર ઢળી પડી..

૩૪૨-૩૪૬. જ્યારે મને ભાન આવ્યું ત્યારે મેં બળતે હૈયે અને આંસુભરી આંખે શું જોયું ! મારા સ્વામીની પાંખ છુટી થઈને જાણે પવનના બળે તુટીને કમળ પડ્યું હોય એમ એમની પાસે પડી હતી અને તેમના શરીરમાં બાણ ચોંટ્યું હતું. પાસે પડેલી પાંખ કમળના પાન જેવી વિખરાઇ પડેલી હતી. જાણે રાતાપીળા ઘડા ઉપર લાખના ડાઘા પડ્યા હોય તેમ મારા સ્વામીના શરીર ઉપરના લોહીના ડાઘ દેખાતા હતા. એ ડાઘ એટલા બધા પડ્યા હતા કે જે જોઇને કોઇને તો એમ જ લાગે કે અશોક ફુલના ગોટા ઉપર ચંદનરસની છાંટ મારી છે; અને છતાં યે એ પાણીને કિનારે જ પડેલા હોવાથી કિંશુકવન જેવા કે આથમતા સૂર્ય જેવા ભવ્ય દેખાતા હતા.

૩૪૭–૩૫૦. મારી ચાંચ વડે મેં એમના ઘામાંથી બાણ ખેંચી કાઢયું, અને રડતી આંખે મારી પાંખો વડે મેં એમને પવન નાંખ્યો. પછી મેં એમને બોલાવ્યા, પણ એ તો જડ જેવા નિશ્ચેષ્ટ થઈને પડી રહ્યા હતા. તેમ છતાં સ્નેહને લીધે અને મુંઝવણને લીધે તે વખતે તો મેં માની લીધું કે હજી એ જીવતા છે.

૩૫૧–૩૫૩. પણ જ્યારે મને બધું સમજાઇ ગયું ત્યારે વર્ણવી નહિ શકાય એવી વેદનાએ હું તો થોડીવાર બેભાન થઇ ગઇ. પછી મારી પાંખોમાંથી સુંદર પીંછાંને મારી ચાંચ વડે ચુંથી નાંખ્યાં; મારા સ્વામીની પાંખોમાં પણ મેં ચાંચો મારી અને મારી પાંખો વડે હું એમને બાઝી પડી. હું એમની આસપાસ ઉડવા લાગી અને આમ રૂદન કરવા લાગીઃ

૩૫૪–૩૫૯. તમને, આ ગંગાના શણગારને, કીયા પાપીએ માર્યા? મારાં સુખની ઇર્ષ્યાએ કોણે મને અનાથ કરી મુકી કે જેથી વિજોગનું દુઃખ મને આગના ભડકાની પેઠે બાળે છે, અને ભયંકર વિચારોની અંદર મારે ડુબી જવું પડ્યું છે? મારા પ્રિય સ્વામી, હવે તમારે વિજોગે કરીને કમળસરોવર ઉપર હું આનંદ શી રીતે ભોગવી શકીશ? આપણા બેની વચ્ચે કમળના પાંદડાએ કરીને પણ વિજોગ થતો, તો જાણે તમે પરદેશ ગયા હો એમ મને તેનું દુઃખ સાલતું, ત્યારે હવે તો મૃત્યુએ આપણને આજે કાયમનાં જુદાં પાડયાં છે, માટે હવે મારા દુઃખનો અવધિ ક્યાં આવશે?

૩૬૦–૩૬૫. ફરીવાર પાછો એ પારધિ આવ્યો અને મારા જીવનના સાથી ઉપર નજર કરીને જોવા લાગ્યો ત્યાં તો હાથીને બદલે મારા સ્વામી માર્યા ગયેલા જણાયા, તેથી વેદનાએ કરીને એ બોલી ઉઠયોઃ 'હા, પ્રભુ!' એ ભયંકર માનવીના ભયથી હું પાછી ઉડી ગઈ. પણ મારા સ્વામી માર્યા ગયા તેથી એને પણ દીલગીરી થઈ. એણે એમને ઉપાડીને ચંદ્રપ્રકાશ જેવી રેતી ઉપર મુકયા. પછી કિનારા ઉપર એ લાકડાં શોધવા ચાલ્યો એટલે ફરીને હું મારા પ્રિય સ્વામી પાસે જઈ બેઠી.

૩૬૬–૩૬૯. ડુસકાં ભરતી ભરતી વિદાયના છેલ્લા શબ્દો હું બોલતી હતી તેવામાં તે પારધિ લાકડાં લેઇને વળી પાછો આવ્યો અને હું ફરી પાછી ઉડી ગઇ. મને જણાયું કે એ પાપી હવે મારા સ્વામીનો અગ્નિસંસ્કાર કરશે, તેથી એમના મૃત દેહ ઉપર આમતેમ આકાશમાં મેં નિરાશાએ ઉડ્યા કર્યું.

૩૭૦–૩૭૩. અને સાચે જ એ પારધિએ પોતાનું ધનુષ અને બાણભર્યું તુંબડું ભોંય પર મુકીને મારા સ્વામીને લાકડાંની ચિતામાં મુકયા. પછી એમાં અગ્નિ મુકયો, અને લાકડાંની ચીપાટો આમતેમ ખોશી ઘાલી. મને તો એ અગ્નિ દાવાનળ કરતાં પણ ભયંકર લાગ્યો અને વિચારમાં ને વિચારમાં મારા સ્વામીને શોકભર્યે હૃદયે કહેવા લાગીઃ

૩૭૪–૩૭૮. ઓ પ્રિય સ્વામી, આજ સુધી આપણા મિત્રરૂપ પાણીમાં તમે વાસ કરતા, તે આજે આ શત્રુરૂપ અગ્નિને શી રીતે સહન કરી શકશો? જે અગ્નિ

તમને બાળે છે તેથી હું પણ બળી મરૂં છું, એ અગ્નિ તમે શી રીતે સહન કરી શકશો ? આનંદ અને શોક ઉપજાવનારૂં આપણું પ્રારબ્ધ હજી યે ધરાયું નથી કે આપણને એકવાર એક કર્યા પછી પાછાં ફરી જુદાં કર્યાં ? અરેરે ! મારૂં હૈયું લોઢાનું હોવું જોઇએ, નહિ તો એ તમારૂં દુઃખ, ઓ પ્રિયતમ, આમ જોઈ રહે નહિ, પણ તરત જ તમારી ચિતામાં કુદી પડે. આમ દુઃખમાં ને વિજોગમાં હું તમારાથી દૂર રહું એના કરતાં તો એ ભલું કે હું તમારી સોડમાં ચિતા ઉપર સુઉં.

૩૭૯–૩૮૩. આમ શોકના આવેગને કારણે ને નારીસુલભ વીરતાને પ્રભાવે હું સતી થવાના ઠરાવ ઉપર આવી. જે સ્નેહી આત્માની પાછળ એમનું શરીર ચાલ્યું જતું હતું તેમની પાસે હું અગ્નિમાં જઈ પડી; અગ્નિ હવે મને હિમ જેવો ઠંડો લાગવા લાગ્યો, કારણ કે હું મારા સ્વામીની સોડમાં હતી. કુલમાં જેમ માખી, તેમ હું અગ્નિમાં ડુબી ગઈ, અને એ અગ્નિએ મને મારા સ્વામી ભેળી કરી દીધી. જોકે એ રાતીપીળી અગ્નિની શિખા મને બાળતી મારી ચારે બાજુએ રમતી હતી, તોયે પતિના વિચારમાં મને જરા યે દુઃખ થયું નહિ. એમ, મારી સારસિકા, હું સતી થઇને મારા પ્રિય પતિની પાછળ ચાલી નિકળી.



૫ કામના, સાધના અને સિદ્ધિ.

૩૮૪–૩૮૫. (સાધ્વી તરંગવતી આગળ બોલે છેઃ) અમારાં મરણની કથા મારી સખીને હું વર્ણવી રહી કે તરત જ શોકને લીધે ફરી હું મૂર્છા પામી. ફરી જ્યારે મને ભાન આવ્યું ત્યારે ફરીથી એને અચકાતે શબ્દે અને ધડકતે હૈયે કહેવા લાગીઃ

૩૮૬–૩૯૬. ગંગાને કાંઠે હું સતી થયા પછી કૌશામ્બી નગરીમાં ઋષભસેન શેઠનાં ધનવાન્ અને આબરૂદાર ઘરમાં અવતરી. એક વખતે આ જળતરંગો જોઇ મને એ મારી પૂર્વજન્મ વાર્તા સાંભરી આવી હતી, તેમજ આજે પણ અહીં આ તળાવના ચકવાકોને જોઇને મને ફરી બળવાન સ્નેહ-સ્મૃતિ થઈ આવી. આ પ્રમાણે મારા પાછલા જન્મનું પ્રારબ્ધ મને બધું કેમ સાંભરી આવી તાજું થયું અને હું મારા સ્વામીથી મૃત્યુ થયે કેમ વિજોગ પામી, એ બધું મેં તને ટુંકામાં કહ્યું છે. પણ તેં મારા જીવના સોગન ખાધા છે તે પ્રમાણે, હું મારા પ્રિયને ફરી મળી શકું નહિ ત્યાં સુધી, આ વાત કોઇને કહેતી નહિ. હવે જ્યારે મારી કામના સફળ થશે, ત્યારે જ મને સુખ થશે.

આજ સાત વર્ષથી હું મારા એ સ્નેહીને ભેટવાની આશામાંને આશામાં, મારા માતાપિતાને ખોટી ખોટી આશાઓ આપ્યે જાઉં છે. જો એમાંથી કશું હવે વળશે નહિ તો હૈયાના દુઃખને ટાળવાનો માત્ર એક જ માર્ગ બાકી છે, જે જિનપ્રભુએ જગતના ઉદ્ધારને માટે સાર્થવાહ થઇને બતાવ્યો છે. તે નિર્વાણનો માર્ગ સાધવાને માટે હું સાધ્વી

થઈશ. સંસારના સંબંધમાં બંધાવાથી આ જાતનું જે વિજોગનું દુઃખ ખમવું પડે છે, તે દુઃખ ફરી બીજી વાર ન થાય તેવે માર્ગે હું વિચરીશ સંસારનાં દુઃખની સાથે સાથે જન્મમરણનાં દુઃખ ટાળીને આત્માના સાચા સ્થાનમાં પહોંચવાને માટે હું સાધ્વી થઇશ.

૩૯૭–૪૦૧. (તરંગવતી વળી આગળ બોલે છે:) સ્નેહને બળે મારી સખી ઉપર વિશ્વાસ રાખીને મારા દુઃખની બધી વાત મેં એને કહી. એ ભલી સારસિકા પણ મારા ઉપરના સ્નેહને લીધે અને મારા દુઃખની દયા આવવાને લીધે ભારે વિલાપ કરવા લાગી. પછી એ રડતી આંખે બોલી:

અરેરે સખી, મારા પ્રારબ્ધમાં આ શી તારા સ્વામીના વિજોગની દુઃખભરી વાર્તા સાંભળવાની! પૂર્વનાં કર્મ, વખત જતાં પાકીને, દેવાં કરવાં ફળ આપે છે! પણ બેન, ધીરજ ધર, દેવ તારા ઉપર જરૂર કૃપા કરશે અને તારા એકવારના સ્વામી ભેળી તને કરશે.

૪૦૨–૪૦૩. આવાં પ્રિય આશ્વાસનનાં વાકયો બોલીને સારસિકાએ મને શાન્ત કરવાના પ્રયત્ન કર્યા, અને પાણી લાવીને મારી આંસુભરી આંખો ધોઇ નાંખી. પછી અમે કેળોની એ કુંજમાંથી નિકળીને ચાલ્યાં અને જે જગાએ મારી માતા સ્ત્રીઓના સાથને લેઈ આનંદ ઉડાવતી હતી ત્યાં ગયાં.

૪૦૪–૪૦૬. મારી માતા તળાવને કિનારે હતી ને ત્યાં સૌના સ્નાનને માટે વ્યવસ્થા કરતી હતી. હું તેની પાસે ગઇ. મારી આંખો રાતી અને મારૂં મોં ફીકકું જોઇને તરત જ તે ગભરાએલા અવાજે બોલી:—બેટા, તને આ શું થયું ? આ બાગના આનંદમેળામાં તને દુઃખ જેવું શું લાગ્યું ? તારૂં મોં કરમાઇ ગયેલી કમળમાળા જેવું કેમ દેખાય છે ?

૪૦૭–૪૧૦. શોકને લીધે આંસુભરી આંખો લ્હોતાં લ્હોતાં મેં ઉત્તર દીધો:–'મા, મારૂં માથું દુખવા આવ્યું છે.' તરત જ મારી મા છળી ઉઠી ને બોલી:–'દીકરી, ત્યારે તું ઘેર જા! હું પણ તારી સાથે જ આવું છું. તને – મારા આખા ઘરના મોતીને – દુઃખભરી દશામાં એકલી શી રીતે મોકલું ?'

૪૧૧–૪૧૪. મારા ઉપરના સ્નેહને લીધે એણે બધી વાતો પડતી મેલીને ઘેર જવાની તૈયારીઓ કરી નાખી, અને નારીમંડળને ધીમે રહીને એણે કહ્યું: 'જ્યારે તમે નાહી રહો અને ઉજાણી જમી રહો, ત્યારે પાછળથી ધીરે ધીરે ઘેર આવજો. કંઈક જરૂરનું કામ આવી પડવાથી હું તો અહુણા જ જાઉં છું. તમે આનંદે કામ પતવજો!' આમ એણે પોતાની આનંદની કામના છોડી દીધી, પણ સ્ત્રીઓને એમના કામમાં વળગાડી રાખી. તેમને આનંદમાં રાખવાને કારણે જ અમારા ઘેર જવાનું કારણ એણે એમનાથી સંતાડી રાખ્યું.

૪૧૫-૪૧૬. ચોકીદારોને, વ્યવસ્થાપકોને, અનાનખાનાંના ર્ભ્યંદળોને તેમના કામની જરૂર પુરતી સૂચનાઓ આપીને પોતાના નાના ટોળા સાથે અને થોડા ચાકરો સાથે મને લેઇને એ સત્વર શહેરમાં આવી.

૪૧૭-૪૧૮. ઘેર આવીને સારસિકાએ મારો શણગાર અને વસ્ત્રો ઉતારી લીધાં ને હું ઘરનાં વસ્ત્રો પહેરીને પલંગમાં સુતી.

૪૧૯-૪૨૨. પછી મારી માતા મારા પિતા પાસે ગઇ અને બોલીઃ-'આપણી દીકરીને લેઇને હું પાછી ઘેર આવી છું. એના માથામાં વેદના થાય છે તેથી એને બહુ ઉઘાડામાં રાખવી સારી નથી. મારે જે સપ્તપર્ણનું ઝાડ જોવું હતું, તે મેં સારી પેઠે અને ફુલે પૂરૂં ખીલેલું જોયું છે, અને નારીમંડળ એમની ઉજાણીના આનંદમાંથી નિરાશ ના થઇ જાય એટલા માટે મારા ઘેર આવવાનું કારણ મેં તેમનાથી છુપું રાખ્યું છે.'

૪૨૩-૪૨૬. મારી માતાને મોંએથી આ સમાચાર સાંભળીને મારા પિતા તો અશાન્તિએ અને ચિંતાએ ગભરાઈ ગયા, કારણ કે એમનો સ્નેહ મારા બધાં ભાઈઓ કરતાં પણ મારા ઉપર વધારે હતો. એમણે તરત એક સારા કુળમાં અવતરેલા, ચતુર અને વિશ્વાસપાત્ર, તથા આખા નગરમાં પ્રખ્યાત એવા વૈદ્યરાજને બોલાવી આણ્યા. એ શસ્ત્રવૈદું પણ જાણતા હતા. એમનો હાથ હલકો અને વેદના વિના ક્રિયા કરે એવો હતો. રોગની પરીક્ષા કરવાના અને પછી રોગ ટાળવાના ઉપચાર કરવાને આશયે એમણે સામે બાજઠ ઉપર બેશીને મને પુછ્યુંઃ

૪૨૭-૪૨૮. 'બેન, તમને તાવને લીધે કે માથાના દુખાવાને લીધે શરીર ભારે લાગે છે? મને ખુલ્લું કહો જેથી ઉપચાર થઇ શકે. આજ સવારમાં શું ખાધું હતું? ખાધેલું બરાબર પચી ગયું છે? ગઇ રાત્રે ઉંઘ બરાબર આવી હતી?'

૪૨૯. મારે બદલે સારસિકાએ જ ઉત્તર આપ્યો અને મેં સવારમાં શું ખાધું હતું અને અમે બાગમાં કેમ ગયાં હતાં એ બધું વર્ણવી બતાવ્યું; પણ મારા પાછલા અવતારના અનુભવની વાત ટાળી દીધી.

૪૩૦-૪૩૭. અનેક પ્રશ્નો પુછીને ચિકિત્સા કર્યા પછી વૈદ્યરાજે મારાં માબાપને કહ્યુંઃ 'તમારી દીકરી માંદી દેખાય છે, એટલું એ જ. બાકી ચિંતા કરવા જેવું કશું નથી. કારણ કે, જો ખાધા પછી તરત જ તાવ ચઢે તો એનું કારણ સ્નેહ હોય છે અને એને કફ કહે છે. પચનક્રિયા ચાલતી હોય તે વેળાએ જો તાવ ચઢે તો એનું કારણ બીજું છે ને તે પિત્ત છે, પણ જો પચન થઇ રહ્યા પછી તાવ ચઢે તો તે વખતે વાતને કારણે પણ હોય. જો ત્રણે કારણો એકઠાં થયાં હોય તો એમાં અનેક રોગ હોય, અને એવા ત્રિદોષમાં બે ત્રણ લક્ષણ દેખા દે છે. બીજા એક પ્રકારનો તાવ હોય છે એને અકસ્માતજ્વર કે ખેદજ્વર કે સ્વસજ્વર કહે છે, તે સોટી કે આ-

ભુકનાં ઝટકાથી, કે હથિયારના ઘાથી કે ઝાડના પડવાથી કે એવા જ કારણથી આવે છે. તમારી દીકરીના સંબંધમાં તાવ નક્કી કરવામાં એવાં કોઈ લક્ષણ દેખાઈ આવતાં નથી, તેથી તમારે કશી ચિંતા કરવાનું કારણ નથી. એ નીરોગ છે. ગાડીના આચકાથી એ હાલી ગઈ છે અને બાગમાં ફરવાથી થાકી ગઈ છે એટલે અત્યારે એ નરમ છે ને તાવ જેવું લાગે છે, પણ એ તો માત્ર થાક જ છે. પણ વખતે એને ભીતરની ચિંતા પણ હોય અને એ કોઇ ભારે શોકને કારણે થઇ હોય.'

૪૩૮–૪૪૧. મારા સંબંધમાં મારાં માબાપને વૈદરાજે સાચું જ કહ્યું હતું, અને જ્યારે એ ઉઠયા ત્યારે એમને માન આપવાને માટે હવેલીના દરવાજા સુધી એ એમને વળાવવા ગયાં. પાછલે પહોરે મારી માતાએ મારા શોકબળ્યા હૃદયને ખાવાનો આગ્રહ કર્યો ને મારે કંઈક ખાવું પડયું. એટલામાં બાગમાં ગએલું નારીમંડળ પાછું આવ્યું અને તેમને સ્નાનમાં અને ઉજાણીમાં કેવો આનંદ આવ્યો એનું વર્ણન કરવા મંડયું. રાતે પથારીમાં ઉઘાડી આંખે આમતેમ મેં આળોટયા કર્યું; પણ રાત તો જાણે કેમે કરી જાય નહિ તેવી લાગી.

૪૪૨–૪૪૩. સવાર થતાં, જે જુવાનોના હૃદયમાં આગલે દિવસે મને જોઇને મદનનાં બાણ વાગ્યાં હતાં, એવા સેંકડો જુવાનોના પિતા મારૂં માગું કરવાને મારા પિતા પાસે આવવા લાગ્યા. ગમે તેવા એ આબરૂદાર હશે, પૈસાદાર હશે, પણ એ બધાનાં માગાં મારા પિતાએ પાછાં વાળ્યાં, કારણ કે કોઈની નૈતિક કે ધાર્મિક યોગ્યતા એમની નજરમાં બેઠી નહિ.

૪૪૪–૪૫૧. પણ પછીથી એ પાછા વાળેલા ઉમેદવારોનાં જુદા જુદા પ્રકારનાં રૂપગુણની વાતો સાંભળીને મારા પાછલા અવતારની કથા પાછી મને યાદ આવી ને આંખોમાંથી આંસુની ધારા વહેવા માંડી. જેમ જેમ એ સ્મૃતિમાં હું ડુબતી ગઇ, તેમ તેમ ખાવું પીવું હું ભૂલતી ચાલી. માત્ર મારાં માતાપિતાને અને સગાંસંબંધીને રીઝવવાને ખાતર જ વેદનાભર્યે હૈયે પણ કંઈક ખાતીપીતી કે ઓઢતીપ્હેરતી. જો જીવનના તરંગ મને મારે રસ્તે દોરી જાય નહિ, તો એ તરંગ ઉપર મારો જીવ શી રીતે ચોંટે? સપ્તપર્ણના ફુલવાસના તરંગ જો આકળા થઈને સ્નેહને નચાવે, તો પહેલાં ગમે એટલું સુખ આપતા હોય, પણ આજે મને બાણુની પેઠે કેમ ન વાગે? ચંદ્રનાં કિરણો જો મદનનાં બાણ થઈને મારી છાતીમાં ભોંકાય તો મને શી રીતે સુખકર લાગે? ગમે તો ફુલમાંથી અમૃત ઝરે, ગમે તો શાન્તિ આપતો વરસાદ પડે, ગમે તો સવારમાં ઝાકળ પડે, પણ મારે મને તો એ સૌ જાણે અંગાર ઝરતો હોય એમ લાગતું. ટુંકામાં જે બધું બીજી વેળાએ સુખ આપે, તે અત્યારે મારા સ્નેહી વિના મને દુઃખ આપતું હતું.

૪૫૨–૪૫૪. ગુરૂજનોના ઉપદેશ અનુસારે મેં મારી કામના સિદ્ધ કરવાને માટે

કઠણું તપશ્ચર્યા કરવી શરૂ કરી. એ તપશ્ચર્યા એકસોને આઠ આચામ્લ[1] કરવારૂપ હતી. મારાં માબાપે એ વ્રત કરવાની સમ્મતિ આપી; કારણ કે આવા વ્રતથી દુર્ભાગ્ય ટળે છે અને સૌભાગ્ય વધે છે. મારી મનઃકામનાની તો એમને ખબર જ નહોતી; તેથી જેમ જેમ હું સુકાતી ગઈ તેમ તેમ એમને લાગતું ગયું કે એ તો વ્રતને કારણે એનું શરીર સુકાતું જાય છે. મારી કામના સિદ્ધ નથી થતી તેથી આ શરીર સુકાય છે એની એમને શી રીતે ખબર પડે?

૪૫૫-૪૬૩. મારી આંતરિક વેદનામાં મને અકસ્માત્ એક નવીન વિચાર સ્ફુરી આવ્યો અને તે અનુસારે મેં કેટલાંક ચિત્રપટ આલેખ્યાં. મારા પાછલા અવતારમાં મારા સ્વામી સાથે રહીને મેં જે અનુભવ લીધો હતો, તે પ્રકટ કરવાને વસ્ત્રપટ ઉપર સુંદર પીંછી વડે અનેક ચિત્રો મેં આંક્યાં. અમે એકઠાં સ્નેહે કેમ રહેતાં, કેમ ચરતાં, મારા સહચરને કેમ બાણ વાગ્યું, પારધિએ કેમ એમને અગ્નિસંસ્કાર દીધો, હું પોતે તેમની પાછળ કેમ સતી થઈ; એ બધા દેખાવોનાં મેં ચિત્રો ચીતર્યાં. વળી ગંગા, ને તેની પાસેનું ભર્યું તળાવ, ને નદીનાં બળવાન મોજાં, ને તેના ઉપરનાં સૌ જળપક્ષીઓ, ને તેમાં યે વળી ખાસ કરીને ચક્રવાકો—એ સૌનાં પણ ચિત્રો આંક્યાં. વળી હાથી ને તેની પાછળ પડેલો ધનુર્ધારી પારધિ પણ ચીતર્યો. કમળતળાવ કુલે ખીલેલું અને વિવિધ ઋતુનાં ખીલેલાં ફુલોએ લચકાતાં વિશાળ ઝાડવાળું વન પણ ચીતર્યું—અને એ જુદાં જુદાં ચિત્રની ચિત્રમાળાની સામે કલાકોના કલાકો બેસીને મારા હૈયાનો હાર જે ચક્રવાક તેના સામું એકીટશે નિહાળી રહેતી.

૪૬૪-૪૬૬. એવે કાર્ત્તિકી પૂર્ણિમા આવી, એ કૌમુદીપર્વ તરીકે મનાય છે. તે પર્વને મોટા આનંદનો દિવસ ગણવામાં આવે છે. હિંસક ધંધા કરનારાઓનાં હાટ બંધ રહે છે અને કષ્ટ કરીને આજીવિકા કરનારાઓને વિશ્રાંતિ મળે છે. ધર્મનિષ્ઠ મનુષ્યો તપ, જપ, દાન, પુણ્ય આદિ કરીને પોતાના જન્મને સફળ કરવા પ્રયત્ન કરે છે.

૪૬૭-૪૭૨. એ દિવસે મેં પણ મારાં માતાપિતાની સાથે ઉપવાસ કર્યો. સંધ્યાકાળે ચાતુર્માસિક પ્રતિક્રમણ કરીને બધા આત્માઓની સામે જાણ્યેઅજાણ્યે થએલા અપરાધ માટે મનોભાવે ક્ષમાપ્રાર્થના કરી. સવાર થતાં મેં ઉપવાસનું પારણું કર્યું અને પછી મારી હવેલીની અટારીએ ચઢીને આનંદી નગરની શોભા નિહાળવા લાગી. કળાકુશળ કારીગરોએ ચીતરેલા થાંભલાઓ વડે હવેલી આકાશ સુધી ઉંચી શોભી રહી હતી. મુખ્ય દરવાજા ઉપર પાણીએ ભરેલા સોનાના કળશ મુકવામાં આવ્યા હતા, જે જાણે દાનની ઘોષણા કરતા હોય તેવા દેખાતા હતા; અને એથી લોક જાણી લેતા કે આ હવેલીમાં રહેનાર ગૃહસ્થ પુષ્કળ દાન કરનાર છે અને ખરેખર તે દિવસે અમારે ત્યાં પુષ્કળ જ દાન

---

૧ દિવસમાં એક જ વાર અને તે પણ માત્ર લુખું સૂકું અન્ન જમવું તેને જૈનધર્મમાં આચામ્લ અથવા આયંબિલ વ્રત કહ્યું છે.

કરવામાં આવ્યું. સોનું, ચાંદી, ગાય, કન્યા, ભૂમિ, શયન, આસન આદિ જેને જે જોઇતું હતું તેને તે આપવામાં આવ્યું.

૪૭૩–૪૭૬. તેની સાથે નગરમાં જેટલાં જૈનચૈત્યો (મંદિરો) હતાં તે પણ ખૂબ શણગારવામાં આવ્યાં અને સુવ્રતી સાધુસંતોને સ્વીકારવા લાયક વસ્ત્ર, પાત્ર, ભોજન, શયન, આસન આદિ વસ્તુઓનું પણ સદ્ભાવપૂર્વક દાન કરવામાં આવ્યું. મંદિરોમાં વિરાજમાન જિનેશ્વરદેવની મૂર્તિઓ આગળ સોના અને રત્નનાં ભેટણાં મુકયાં.

૪૭૭–૪૮૦. દાનનું સદા ફળ મળે છે; સારા દાનનું સારૂં ને નબળાનું નબળું. જ્ઞાની અને તપસ્વી સાધુઓને દાન દીધાથી હમેશાં સારૂં ફળ મળે છે: એ વડે આ જીવનનાં દુઃખ ટળે છે ને પેલા જીવનમાં સારે ઘેર જન્મ મળે છે, જેથી આત્માની ઉન્નતિ કરવાનો અવસર મળી શકે છે. સંતપુરૂષોની આ રીતે દાન વિગેરે દ્વારા કરેલી સેવાથી નિર્વાણનો માર્ગ સહજે જડી આવે છે.

૪૮૧–૪૮૩. પણ જો રાજાના શત્રુને, ચોરને, જુઠ્ઠાને અને વ્યભિચારીને દાન અપાય તો તેનાં ફળ ખોટાં પમાય. આ પ્રકારે દાનનો વિવેક કરી અમે અમારે ઉદાર હૃદયે માત્ર આપણા ધર્મના સાધુઓને જ નહિ, પણ બ્રાહ્મણો અને ભિક્ષુકો વગેરે બીજા પણ બધા પ્રકારના દાનાર્થીઓને પુષ્કળ દાન આપ્યાં. ટુંકામાં કૌમુદીપર્વ એ અમારે માટે તો પૈસાની કોથળી છોડી મુકવાનો, દાન આપવાનો અને પવિત્રતા ખીલવવાનો મહાન્ દિવસ હતો.

૪૮૪–૪૮૭. સાંજ થઈ અને મેં નગરની ઉંચીનીચી છબિ નિહાળવા માંડી; સૂર્યભગવાને પોતાનાં કિરણની જાળ સંકેલી લીધી ને પોતે અદશ્ય થઈ ગયા. તેમની સવારની રાણી પ્રભાતદેવીની સાથે રહીરહીને એ કંટાળી ગયા હતા ને ફીક્કા પડી ગયા હતા અને સાંજની રાણી સંધ્યાદેવી પાસે તેના શાન્તિનગરમાં જઇ રહ્યા. લોક એમ પણ કહે છે કે આકાશના આટલા લાંબા પ્રવાસને લીધે થાકયાથી રાતાં–સોનેરી–કિરણોની–માળા–પહેર્યા વીરની પેઠે ધરતીમાતાને ચરણે લીન થઇ ગયા, અને પછી અંધારેવીંટી રાત્રિએ સૌ જીવનને પોતાની અંદર વીંટી લીધાં.

૪૮૮–૪૯૧. હવે, અમારા ઘરના મુખ્ય દરવાજા આગળ જે એક સુંદર આંગણું આવેલું હતું તે અમારી હવેલીનો અને ખરી રીતે તો આખા રાજમાર્ગનો શણગાર ગણાતું. એ આંગણામાં અતિ મૂલ્યવાન્ તણીમાં જડીને મેં મારી છબિઓ લોકોને જોવાને માટે મુકી, અને એની સંભાળ રાખવાને મારા સુખદુઃખની ભાગિયેણ, મારી ભલી સખી સારસિકાને પાસે ઉભી રાખી, એવી કામનાથી કે પૂર્વજન્મના સ્વામી, જે જરૂર તે વખતે મનુષ્યજન્મમાં આવ્યા હતા, તેમને ખોળી કઢાય. મારાં ઘરનાં કે બહારનાં માણસોમાં, મર્મ જાણી લેવામાં ને પરીક્ષા કરવામાં એના જેવું કોઇ ચતુર નહોતું. મેં એને કહી રાખ્યું હતું કે:

૪૯૨—૫૦૫. 'માણસના અંતરને તેના શબ્દો ઉપરથી અને હાવભાવ ઉપરથી કેમ પારખી કાઢવું એ તું તો સારી રીતે જાણે છે. તેથી મારા જીવનને સુખી કરવાને મારૂં કહેલું સાંભળઃ જો મારા તે વખતના સ્વામી આપણા નગરમાં જ જન્મ્યા હશે તો તો બીજા બધા લોકની પેઠે એ પણ ફરવા જરૂર આવશે અને આ ચિત્રો જોશે, અને જોશે ત્યારે અમારો પાછલો ભવ યાદ આવશે. કારણ કે જે માણસ સુખ-દુઃખમાં સ્નેહી હોય છે, તેણે ગમે એટલો લાંબો વિજોગ સહ્યો હશે તો ય એને એવાં ચિત્રો ઉપર આંખ પડતાંની સાથે જ બધું યાદ આવે છે, અને હૈયામાં છુપાઈ રહેલો ઉભરો આંખમાં તરી આવે છે. અસંસ્કારી માણસની આંખ કઠણ હોય છે, મિત્રની આંખ ખુલ્લી અને શુદ્ધ હોય છે, સાચા માણસની આંખ દૃઢ હોય છે, બેદરકારી માણસની આંખ ઢીલી હોય છે; દયાળુ માણસ બીજાનું દુઃખ જુએ છે ત્યારે એને દયા ઉપજે છે, અને જ્યારે એ પ્રસંગ એના પોતાના જ જીવનનો અનુભવ હોય છે, ત્યારે તો એથી યે વધારે એને લાગી આવે છે! ત્યારે તો જાણે એની છાતીમાં બાણ વાગ્યું હોય એમ એને લાગે છે! વળી લોક કહે છે કે જેને પાછલો ભવ યાદ આવે છે એ ગમે એટલો બળવાન હોય તો ય મૂર્છા પામે છે. તેથી મારા સ્વામીને પોતાના પાછલા ભવનું શોકભર્યું સ્મરણ આ ચિત્રોથી જાગશે કે તરત જ મૂર્છા પામશે. પછી જ્યારે એમને ભાન આવશે ત્યારે હૃદયે અને આંસુભરી આંખે કોણે આ ચિત્રો ચીતર્યાં એમ અધીરાઈથી પુછવા માંડશે. ત્યારે તારે ખાત્રીથી માનવું કે એ જ મારા ખોવાયલા ને મનુષ્યયોનિમાં હાલ અવતરેલા સ્વામી છે. તેમનો દેખાવ અને હાવભાવ તું ધ્યાન દઈને નિહાળી લેજે અને એમનું નામઠામ જાણી લેજે અને પછી બધી વાત મને સવારમાં કહેજે. અહા! એમને ફરીથી મળીને મારૂં બધું દુઃખ વામીશ અને એમને ભેટીને મારો સ્નેહ તાજો કરીશ! પણ અરેરે! જો એ ના જડ્યા તો! મારે સાધ્વી થઈને નિર્વાણને માર્ગે ચાલવા નિકળી પડવું. સ્વામી વિના અને છેવટની સીમાએ જલદી પહોંચવાની આશા વિના જીવતર ગાળવું એમાં જ નવા નવા અવતાર ધરવાનું અનંત દુઃખ છે.'

૫૦૬—૫૦૮. એમ પતિ સાથે ફરી સંજોગ થાય એ કામનાએ મેં સારસિકાને બહુ બહુ સૂચનાઓ આપીને પછી ચિત્રો સાથે એને વિદાય કરી. અને હવે તો સૂર્ય પૂરેપૂરો આથમી ગયો હતો અને સૌને ઢાંકી દેનારી રાત્રિ આવી હતી. આપણા ધર્મ પ્રમાણે પર્વને દિવસે હમેશના સુવાનાં ખંડમાં સુવાને બદલે પોષધ લેવાના ખંડમાં જમીન ઉપર જ સૂવું જોઇએ. તે રાત્રે રાત્રિજાગરણ કરવું જોઇએ અને પ્રભુનું ધ્યાન ધરવું જોઇએ; એ પ્રમાણે હું પણ પોષધ લેવાના ખંડમાં ગઈ અને મારાં માબાપ સાથે જિનપ્રભુની સ્તુતિ–વંદના કરીને દૈવસિક અને ચાતુર્માસિક પાપમાંથી મુક્ત થવા માટે પ્રતિક્રમણ કર્યું.

૫૦૯—૫૧૨. એ બધું કરી રહ્યા પછી હું સ્થિરભાવે ભોંય ઉપર ઉંઘી ગઈ.

એ ઉંઘમાં મેં, જાણે હું પર્વત ઉપર ચઢીને ભમતી હોઉં, એવું સ્વપ્ન જોયું. જ્યારે હું જાગી ત્યારે મેં મારા પિતાને પુછ્યું કેઃ–'આવા સ્વપ્નનું ફળ શું?'

૫૧૩–૫૨૩. ત્યારે મારા પિતાએ ઉત્તર આપ્યોઃ–'સ્વપ્નશાસ્ત્ર પ્રમાણે એવું સ્વપ્ન સદ્ભાગ્ય સૂચવે છે. સ્વપ્નવડે માણસનો આત્મા સદ્ભાગ્ય કે દુર્ભાગ્ય, આનંદ કે શોક, જીવન કે મરણ આગળથી જાણી શકે છે. કાચું માંસ, લોહીભર્યા ઘા, હાથ પગ ભાંગવો, વેદનાની ચીસ, અને આગનો ભડકોઃ એવાં એવાં સ્વપ્ન નઠારા ફળની સૂચના આપે છે; પણ હાથી ઉપર કે બળદ ઉપર કે મહેલ ઉપર કે પર્વત ઉપર કે દૂધાળા ઝાડ ઉપર ચઢવું એ આવતા ભાગ્યની સૂચના આપે છે. અને સ્વપ્નમાં સમુદ્ર કે નદીને જે ઓળંગી જાય છે તેનાં દુઃખ નિશ્ચય ટળે છે. વળી જાતિ ઉપર પણ ઘણો આધાર રાખે છેઃ કોઇને સ્વપ્નમાં નરજાતિની કે નારીજાતિની વસ્તુ મળે કે ખોવાય તો ધારેલો લાભ કે હાનિ થાય. ટુંકામાં માણસ જે સારાની આશા રાખે છે કે જે નઠારાથી ડરે છે તે સ્વપ્ન ઉપરથી જાણી શકાય છે. અને સ્વપ્નમાં ફળવાનાં ફળ ક્યારે ફળે છે એ સ્વપ્નના સમય ઉપરથી નક્કી થાય છેઃ જો સ્વપ્ન સમીસાંજે ઉંઘ આવતા જ આવે તો તેનું ફળ છ મહિને ફળે, જો મધ્યરાતે આવે તો તેનું ફળ ત્રણ મહિને ફળે, જો બ્રાહ્મમુહૂર્તે એટલે કે ગાયો ચરવા નિકળે તે સમયે સ્વપ્ન આવે તો દોઢ મહિને ફળે અને જો સવાર થતાં આવે તો તરત ફળે. છેવટે કહેવાનું એટલું જ કે સારે શરીરે આવેલાં સ્વપ્નો જ ભવિષ્ય સૂચવે છે. પણ એથી વિરૂદ્ધનાં સ્વપ્નોનું ફળ કંઈ જ નથી. જ્યારે કન્યા પર્વત ઉપર ચઢ્યાનું સ્વપ્ન જુવે ત્યારે ધાર્યો પતિ મળે, અને બીજાને એવું સ્વપ્ન આવે તો ધાર્યું ધન મળે. મારી દિકરી! સાત દિવસની અંદર તારૂં સદ્ભાગ્ય ખુલશે.'

૫૨૪–૫૨૮. મારાં પિતાનાં આ વચનથી મને વિચાર ઉઠ્યો કે મારા હૈયામાં જેને માટે કામના છે, તેના સિવાય બીજા પુરૂષ સાથે મારાથી રહી શકાય નહિ. મારી ગુપ્ત કથા તો મારાં માબાપથી સંતાડી રાખવાનો મેં ઠરાવ કર્યો. તેથી સારસિકાની વાટ જોતી આખી રાત હું ત્યાં પોષધશાળાના ખંડમાં બેસી રહી અને પછી વિચારમાં ને વિચારમાં જિનપ્રભુનું ધ્યાન ધરતી બિછાનામાંથી ઉઠી ઉભી થઈ અને રાત્રિ પ્રતિક્રમણ કર્યું. સૂર્યોદય થયા પછી દાતણ કર્યું ને ત્યાર પછી મારાં માબાપથી છુટી પડીને ધીરે ધીરે ઉપર ચાલી ગઈ.

૫૨૯–૫૩૨. પછી અમારી હવેલીની અગાશી ઉપર હું ચઢી, છેક એની ફરસ ઉપર સુંદર ચિત્રો ચીતર્યાં હતાં અને તેમાં મૂલ્યવાન હીરા મોતી જડયાં હતાંઃ મારૂં તુટી પડે એવું શરીર માત્ર આશાને લીધે જ ટટાર ચાલી શકતું હતું. એવામાં સૂરજ ઉગ્યો, એનાં કિંશુકફુલના જેવાં લાલ કિરણો પૃથ્વી ઉપર પથરાઈ રહ્યાં અને પછી દૂર દૂર સુધીની પૃથ્વી કેશર રંગે રંગાઇ ગઇ. સર્વ જગતને એણે જગાડ્યું અને રાત્રે બીડાઇ ગયેલાં કમળોને ખીલવ્યાં.

પ૩૩–પ૩૪. એવે સારસિકાએ પણ દેખા દીધી. ઉતાવળે ઉતાવળે એ મારી પાસે આવી અને સ્નેહભરી દૃષ્ટિએ એણે મને આવતાની સાથે જ હૈયા સાથે ચાંપી લીધી. પછી આનંદી મ્હોંએ ફતેહ મળ્યાના મને સમાચાર આપ્યા. એના બોલમાં જ કંઈક અનેરી મિઠાશ હતી. એણે હાંફતે હાંફતે કહેવા માંડ્યું:

પ૩પ–પ૩૬. 'બહુ દિવસથી ખોવાયલા તારા સ્વામી જડ્યા છે. વાદળાં વિનાની શરદ્‌ઋતુની રાત્રિનો ચંદ્ર જાણે પ્રકાશતો હોય એવું એમનું મુખ પ્રકાશે છે. બેન, હવે ધીરજ ધર. તારી આશા હવે થોડા જ વખતમાં ફળીભૂત થશે.'

પ૩૭–પ૩૮. આ શબ્દો સાંભળ્યા કે તુરત જ હું તો સુખના વરસાદમાં નવાઈ ગઇ, મહાનંદે સારસિકાને ભેટી પડી. પછી મેં પુછ્યું: 'ઓ વહાલી સખી, મારા સ્વામીનું સ્વરૂપ તો અત્યારે ફરી ગયું હશે, તો ય તેં એમને શી રીતે ઓળખી કાઢ્યા ?'

પ૩૯–પ૬૨. ત્યારે એણે ઉત્તર આપ્યો: "પ્રિય સખી, કેવી રીતે તારા સ્વામી જડી આવ્યા તે વિગતવાર કહું, તું સાંભળ તેં ચોકસી રાખવાની જે જે સૂચનાઓ સંધ્યાકાળે આપી હતી, તે સાંભળી લેઈ હું છબિઓ લઈ ચાલતી થઈ. હું એ છબિઓ ચોતરા ઉપર ગોઠવી રહી તેવે સમયે, રાત્રિએ ખીલતાં પદ્મનો મિત્ર જે ચંદ્ર તે ઉગ્યો. પ્રકાશને ફેલાવતો રાત્રિનો પ્રિયજન, કામદેવનો વહાલો, એ ચંદ્ર ધીરે ધીરે ઉપર ચઢવા લાગ્યો. સરોવરના જળ પર જેમ ખીલેલું કમળ તરે તેમ એ આકાશપટમાં ખીલીને તરવા લાગ્યો. તેવે રાજમાર્ગ ઉપર સુંદર ગાડીઓમાં બેશીને ધને મદમત્ત નગરજનો જાણે રાજા હોય તેમ ફરવા નિકળ્યા. રાતની શોભા જોવાને આતુર સ્ત્રીઓ ગાડીઓમાં બેશી નિકળી. પગે ચાલતા જુવાન પુરૂષો જુવાન સ્ત્રીઓ સાથે હાથેહાથ મીલાવીને હૈયેહૈયાં મિલાવી આમ તેમ ચાલતા દેખાયા. આનંદે ઘેરાયલાં લોકનાં ટોળાં સામે આવતાં ટોળામાં મળી જતાં ને પછી પાછાં વળી સાથે ચાલતાં. ટુંકામાં, ચોમાસામાં પાણીનો પ્રવાહ નદીનું રૂપ ધારણ કરીને જેમ સમુદ્ર તરફ વહે છે, એમ રાજમાર્ગ ઉપર લોકનો પ્રવાહ વહેવા માંડ્યો. જે ઉંચા હતા, તે સહજે જોઇ શકતા, પણ જે નીચાં હતા તેમને પગની આંગળીઓનાં ટેરવાં ઉપર ઉંચું થવું પડતું. ઘણી ભીડમાં ભચડાતા અને ખાસ કરીને જાડા તો એથી ચીસો પાડતા. રાત કેમ ચાલી જાય છે એની કેટલાક માણસો પોતાના ફરવા આગળ પરવા કરતા નહોતા, પણ કેટલાક પોતાના ફાનસમાં અર્ધ ઉપર બળી ગએલી દિવેટો તરફ આંખ રાખ્યાં કરતા; અને રાત જેમ જેમ જતી ગઇ તેમ તેમ લોકની આંખ ઉંઘે ઘેરાતી ગઇ; અને તેમની આતુરતા ઓછી થતી ગઇ; તેથી ભીડ પણ ઓછી થતી ગઈ; અને આખરે થોડા જ લોકો છબિઓ પાસે આવવા લાગ્યા. પણ હું લોક તરફ અને વખત જોવાને દીવા તરફ જોતી હતી, તેવામાં અકસ્માત્ સરખી વયના પોતાના મિત્રોનાં ટોળા વચ્ચે ચાલતો એક જુવાન પુરૂષ ત્યાં આવી પહોંચ્યો અને છબિઓ જોવા લાગ્યો. કાચબાના પગ જેવા એના પગ મૃદુ હતા, પગની પિંડીઓ ઘાટદાર હતી, એની જાંગો મજબુત હતી, એની છાતી સપાટ વિશાળ અને

માંસ ભરી હતી, તેના હાથ લાંબા સ્થૂલ અને બલવાન હતા.પોતાના મિત્રોના મુખને કમલકુલોની પેઠે ખીલાવતો અને તેમની વચ્ચે ચાલતો જાણે બીજો ચંદ્ર આવ્યો હોય એમ એ ચંદ્રથી યે વધારે સુંદર શોભતો હતો. એની જુવાનીની સુંદરતા અને મૃદુતા એવી તો ભવ્ય હતી કે જુવાન સ્ત્રીઓ એને સ્નેહથી જોઇ રહેતી. ખરેખર એવી તો એકેય સ્ત્રી નહીં હોય જેના હૃદયમાં આ પુરૂષ પેસી ન શકે. લોક તો બોલવા લાગ્યા કે ગમે તો એ દેવલોકનો પુરૂષ હોવો જોઇએ કે ગમે તો એ પોતે જ એકાદ દેવ હોવો જોઇએ. એ છબિઓને થોડી વાર જોઈ રહ્યો અને પછી એમાં પ્રકટ થતી ઉત્તમ કળાનાં વખાણ કરતો બોલ્યોઃ

૫૬૨-૫૭૬. 'અહીં આ રેતીના બે કિનારા વચ્ચે નીચાણમાં વહેતી ને ભમરા ઉઠાવતાં મોજાંવાળી ચંચળ ગંગાને કેવી સુંદર ચીતરી છે ! કમળભર્યાં તળાવવાળું અને વિવિધ ઝાડોથી ઉંચુંનીચું દેખાતું આ વન કેવું સુંદર છે ! વળી શરત્, શીત, વસંત, ગ્રીષ્મ વગેરે ઋતુઓ વનફળ અને વનફુલ વડે કેવી આબેહુબ બનાવી છે ! અરે, અને આ બે સ્નેહને પાંજરે પુરાયલાં ચકુવાક જીવનના સમસ્ત પ્રવાહમાં કેવાં સુંદર રીતે એક બીજાની સાથે જડાઈ ગયાં છે ! અહીં તેઓ પાણી ઉપર સાથે તરે છે, તહીં રેતીના કિનારા ઉપર સાથે આરામ લે છે, પણે આકાશમાં સાથે ઉડે છે અને વળી પણે કમળફુલોની વચ્ચે સાથે જ બેસે છે; સદા અને સર્વત્ર તેઓ એક બીજા સાથે અચળ સ્નેહમાં કેવાં જડાઈ રહ્યાં છે ! ચકુવાકની ગરદન ટુંકી ને સુંદર છે અને એનો રંગ કિંશુક ફુલના જેવો લાલ ચળકે છે. વળી મૃદુ અને ટુંકી ગરદનવાળી ચકુવાકી તેના રંગને લીધે કોરંત ફુલના જેવી લાગે છે. અને એ ચકુવાકની પાછળ કેવી ચાલે ચાલી રહી છે. આ હાથી પણ કેવો સુંદર ચીતર્યો છે ! એ એની નાતના મુખી જેવો લાગે છે અને ઘાડા વનમાં પોતાનો માર્ગ કરવાને માટે ઝાડનાં ડાળ તોડી પાડતો ચાલે છે. નદીમાં નાહવાને લોભે હવે તે નીચે ઉતરે છે. હવે અહીં એના ભવ્ય શરીરને લેઇને એ પાછો નિકળે છે. ત્યાં તે શિકારી એના ઉપર બાણ તાકે છે. પહોળે પગે ઉભો રહીને એ ધનુષ ઉપર બાણ ચઢાવીને કાન સુધી ખેંચે છે. પછી બાણ છોડે છે–આ પણ બહુ સુંદર ચીતર્યું છે–પણે ડાંગરનાં કણસલાં જેવા કે કમળના તંતુ જેવા રાતાશ રંગે ચળકતો ચકુવાક ઉડે છે અને એ બાણ એને વાગે છે. અરે જુઓ, આ ચકુવાકી સંતાપને લીધે વિલાપ કરે છે, કારણ કે પારધિએ તેના પતિના જીવનનો અને સ્નેહનો નાશ કર્યો ! એ પોતાના સ્વામીની પાછળ પડે છે અને અનંત વેદનામાં બળી મરે છે. ખરેખર ! આજના ઉત્સવમાં જે કંઇ જોવા જેવું છે એમાં આ ચિત્રો સૌથી સુંદર છે; પણ આ ચિત્રોની બધી હારને અનુક્રમે જોવી જોઇએ.'

૫૭૭-૫૮૫. આમ બોલતાંની સાથે જ એ સુંદર પુરૂષ ચિત્રો સામે આશ્ચર્યથી જોઇ રહ્યો હતો એટલામાં બેભાન થઈ ધરણી ઉપર ઢળી પડયો. વાંસ ઉપર બાંધેલી ધજાની દોરી કપાતાં જેમ ધજા ધબ દઇને જમીન ઉપર પડી જાય એમ એ ઢળી

પડ્યો. એના મિત્રો તો ચિત્રો જોવામાં એવા લીન થઈ ગયા હતા કે એ પડ્યો એની પણ ખબર એમને તરત તો ના પડી. ખબર પડી કે તરત જ એમણે એને ઉપાડી લીધો અને એને જાણે ચિત્રોએ જ બેભાન કર્યો હોય એમ એથી દૂર ખુલ્લી હવામાં લઈ ગયા. વખતે એ જ સુંદર પુરૂષરૂપે તારો ચક્રવાક હોય અને છેવટે મારી સખીની કામના સિદ્ધ થાય એ ઉત્કંઠાએ હું પણ પાછળ પાછળ ગઈ. અને ખરેખાત ! જ્યારે એને ભાન આવ્યું, ત્યારે રડતી આંખે ડુસકાં ખાતો ખાતો એ બોલ્યોઃ–

૫૮૬–૫૮૮. 'ઓ મારી વ્હાલી ! મારા આલિંગનના આનંદ તારી કાળી ચકચકતી આંખો લેઇને અત્યારે તું ક્યાં હશે ? એકવાર જ્યારે આપણે ગંગાનાં મોજાં ઉપર ચક્રવાકજન્મમાં રમતાં હતાં, ત્યારે તું મારા સ્નેહનો ખજાનો હતી; પણ અત્યારે તારા વિના હું ગાંડો થઈ ગયો છું. તું સ્નેહની ધજાની પેઠે બધે મારી પાછળ પાછળ આવતી અને છેવટે મૃત્યુમાં પણ તું મારી પાછળ આવી.'

૫૮૯–૫૯૪. લાજ છોડીને આંસુભરી આંખે એ વિલાપ કરતો હતો અને ઉપરથી નીચે સુધી શોકની મૂર્ત્તિ જેવો થઈ રહ્યો હતો ત્યારે એના મિત્રો એને ઠપકો આપવા લાગ્યાઃ 'આમ શોક કર ના, શું તારૂં ભાન ગયું છે ?' એણે એમને ખાત્રી આપી કે 'મારૂં ભાન ગયું નથી.' ત્યારે વળી એમણે પુછ્યુંઃ–'ત્યારે તને થયું છે શું ?' અને પછી એણે એમને ઉત્તર આપ્યોઃ 'હું એ બધી વાત તમને કહીશ, પણ તમે છાની રાખજો ! આ ચક્રવાકોની કથા જે અહીં આ અનેક ચિત્રોમાં ચીતરી છે તે મારા પોતાના પાછલા ભવની કથા છે.' એમણે પુછ્યું કે એ શી રીતે હોઈ શકે ? અને વળી ચકિત થઈને પુછ્યું કે પાછલા ભવની કથા તને યાદ શી રીતે આવી શકે ? ત્યારે તેણે દરેક ચિત્ર કેવી રીતે પોતાના પાછલા ભવની સાથે બંધબેસતું આવે છે એનું ધીરે ધીરે વર્ણન કરી બતાવ્યું અને પછી છેવટે કહ્યુંઃ

૫૯૫–૬૦૩. 'પારધિના બાણથી મારો જીવ તો ચાલ્યો ગયો, તેથી મારી પ્રિયા મારી પાછળ કેવી રીતે સતી થઈ ગઈ, એ તો હું આ ચિત્રોથી જ જાણી શક્યો. એ જોઈને મારૂં હૈયું બળતી વેદનાએ એવું તો ભરાઇ આવ્યું કે કોણ જાણે કેવી રીતે હું મૂરછા પામી ધરણી ઉપર ઢળ્યો. આ ચિત્રો જોઇને મને મારો પાછલો ભવ આબેહુબ યાદ આવ્યો ને તે પ્રમાણે મેં તમને એ ભવની બધી કથા કહી સંભળાવી. અને હવે જે નિશ્ચય મારા મનમાં કર્યો છે તે તમને જણાવું છું. એના વિના બીજી કોઈ સ્ત્રીની સાથે હું લગ્ન કરીશ નહિ; તેથી કોઈ પણ રીતે જો એની સાથે મારો ભેટો થાય તો તો સ્નેહનો આનંદ મને મળે. તમે ભાઈ ! જાઓ ને તપાસ કરો કે એ ચિત્રોનું ચીતરનાર કોણ છે ? નક્કી એણે જ એ ચિત્રો તૈયાર કરાવેલાં હોવાં જોઇએ. ગમે તો એ ચિત્રો એણે ચોતર્યાં છે કે ગમે તો એણે જાતે કોઈ કળાધરને સૂચનાઓ આપી ચીતરાવ્યાં છે, નહિ તો જે હકીકતો હું જાણું છું તે બીજો કોઈ ચીતરી શકે નહિ. જે ભવમાં હું ચક્રવાક થઇને એની સાથે રહ્યો હતો તે એના વિના બીજું કોણ જાણી શકે ?'

૬૦૪–૬૦૯. એની સૂચના સાંભળીને, સખ.! જે કોઇ પ્રશ્ન પુછવા આવે તેને ઉત્તર દેવાને હું તો ઉતાવળી ઉતાવળી ચિત્રો પાસે જઈ ઉભી. તુરત જ ખોળતો ખોળતો એક જણ આવ્યો ને પુછવા લાગ્યોઃ 'આખા નગરને આશ્ચર્યચકિત કરી મેલ્યું છે એવાં આ ચિત્રોનું ચીતરનાર કોણ ?' મેં ઉત્તર આપ્યોઃ 'નગરશેઠની દીકરી તરંગવતીએ એ ચિત્રો ચીતરીને અહીં મુકાવ્યાં છે, અને સાચે જ એ ચિત્રો કંઈ કલ્પનાથી ચીતર્યાં નથી.' પછી બીજી કેટલીક ચોખવટ મેં કરી એટલે તે તારા સ્વામી પાસે પાછો દોડી ગયો અને ત્યાર પછી શી વાતો થાય તે સાંભળવા હું પણ તેની પાછળ જ ગઈ.

૬૧૦–૬૧૨. ત્યાં જઈ મને પુછવા આવનારો બોલ્યોઃ 'ચિંતા કરીશ ના, મારા મિત્ર પદ્મદેવ! તારી પ્રિયા મળી આવી છે. એ ઋષભસેન નગરશેઠની દીકરી તરંગવતી છે. એની જ સૂચનાથી એ ચિત્રો મુકાયાં છે, અને એ કંઈ કલ્પનાથી ચીતરાયાં નથી, પણ એની સખીએ મારા પ્રશ્નોના ઉત્તર દીધા એ ઉપરથી મારી ખાત્રી થઇ છે કે એ એક સાચા જીવનની કરુણ કથા છે.'

૬૧૩–૬૧૬. આ શબ્દોથી તારા પ્રિયનું મુખ પૂરા ખીલેલા કમળની પેઠે મલકાયું. પછી એ બોલ્યોઃ 'હવે મને મારા જીવનમાં આનંદ આવશે; કારણ કે મારી એક વખતની ચક્રવાકી નગરશેઠની દીકરી થઇને અવતરી છે.' પણ તરત જ પાછો ચિંતાતુર થઈ બોલવા લાગ્યોઃ 'પણ નગરશેઠ પૈસાને જોરે એટલો અભિમાની છે કે એની કન્યાને માટેનાં બધાં માગાં પાછાં વાળ્યાં છે, ત્યારે આપણું ધાર્યું પાર શી રીતે ઉતરશે ? એકવાર મારી પ્રિયા જડ્યા પછી જો એને મળી શકું નહિ તો ન જડ્યા કરતાં પણ વધારે વેદના થશે.'

૬૧૭–૬૧૯. એનો એક મિત્ર બોલ્યોઃ–'બસ, તે જડી છે એટલે તો હવે કાંઈ વાંધો નથી. જે વસ્તુ વિદ્યમાન છે તે જરૂર મળી જ રહેશે, એનો રસ્તો થઈ રહેશે. અને હજી પરણાવી નથી એટલે એને માટે નગરશેઠની પાસે માગું કરવાની વ્યવસ્થા કરીશું. જો એથી કશું નહિ વળે અને તારી ખુશી હશે તો આપણે એનું હરણ કરી લાવીશું.'

૬૨૦–૬૨૧. પણ એણે તો ઉત્તર આપ્યોઃ 'નગરશેઠના ઘરમાં જે કુળાચાર પેઢીઓ થયાં ચાલતો આવે છે તે કંઈ પોતાની પુત્રીના સ્નેહને કારણે એ ઓળંગશે નહિ, અને તેથી જો એ પોતાની પુત્રી મને દેશે નહિ તો હું મારા જીવનનો અંત આણીશ, કારણ કે તું કહે છે એવું બળાત્કારનું કામ તો મારે કરવું નથી.'

૬૨૨–૬૨૪. હવે સૌ મંડળ પોતાના અગ્રેસરને વીંટી વળી તેની હવેલી તરફ ચાલ્યું અને તેના કુટુંબ વગેરેનાં નામઠામ જાણી લેવાને માટે હું પણ એમની પાછળ ચાલી. જે મકાનમાં એ પેઠા તે એવું તો ઉંચું ને સુંદર છે કે જાણે કોઇ સ્વર્ગમાંથી ઉપાડી આણીને પૃથ્વી ઉપર મુકી દીધેલું દેવવિમાન હોય. મેં એના પિતાનું નામ

અને ધંધો વગેરે ચોકસાઇથી પુછી લીધું અને એ બધી હકીકતોથી જયારે મને પુરો સંતોષ થયો ત્યારે ઉતાવળે પાછી આવતી રહી.

૬૨૫-૬૨૮. એવામાં નક્ષત્રો, ગ્રહો તેમ જ ચંદ્ર પણ એકેએક કરી અદૃશ્ય થઇ ગયા અને કુલો-ચુંટી-લીધા તળાવ જેવું આકાશ કોરૂં થઇ ગયું. અને પછી સઘળા જીવજંતુનો જે મિત્ર અને દિવસનો જે પ્રભુ સૂર્ય તે બંધુજીવ (બપોરીઆના) ફુલના જેવો લાલ રંગે ઉગી નીકળ્યો. ચારે દિશાઓ સૂર્યથી સોનારંગે રંગાઇ ગઇ. તે જ વેળાએ તને બધા સમાચાર આપવાની આતુરતાએ હું તારી પાસે દોડતી આવી. તારો સ્વામી જડ્યાની જે જે બધી હકીકત મેં જોઇ જાણી તે બધી મેં તને આ રીતે કહી દીધી છે અને મારા ઉપર જે વિશ્વાસ તેં મુક્યો હતો તે આજે સફળ થયો છે; એવી લાગણી અત્યારે હું અનુભવું છું."

૬૨૯. (સાધ્વી તરંગવતી પોતાની કથા શેઠાણી પાસે વળી આગળ ચલાવે છે:) મારી સખી પોતાની વાત પુરી કહી રહી એટલે હું અધીરી થઇને બોલીઃ 'પણ એમના માબાપનાં નામ ને વ્યવસાય તો મને કહે.'

૬૩૦-૬૩૫. વળતી સારસિકા બોલીઃ 'એનો પિતા ધરતી અને સાગરના ખજાનાનો ધણી છે. ખુદ હિમાલય પણ એના જેટલો અચળ નથી. વળી એણે ધરતીને ધર્મશાળાઓ અને આનંદશાળાઓથી એવી તો શણગારી દીધી છે કે તેનું નામ જેમ મોટા વ્યાપારી તરીકે તેમ જ મોટા ધર્માત્મા તરીકે પણ ચારે દિશામાં પ્રખ્યાત થઇ ગયું છે. એ શેઠનું નામ ધનદેવ છે. શેઠનો આ પુત્ર ઘરડાં અને જુવાન સૌને વહાલો છે અને એનું નામ પદ્મદેવ છે. એ કામદેવ જેવો સુંદર છે અને વળી પદ્મ જેવો મનોહર છે.'

૬૩૬-૬૩૯. સખીએ જે બધા સમાચાર આપ્યા તેથી મારા કાનની સ્નેહભરી ઉત્કંઠા તૃપ્ત થઇ. છતાં યે સારસિકાની આંખ અને કાનને ધન્યવાદ દેતી હું બોલી:-'તું બેન ભાગ્યશાળી કે તેં મારા સ્વામીનાં દર્શન કર્યાં-ને-એમનાં વેણ કાનોકાન સાંભળ્યાં.' પછી મારી પાસેથી એ ચાલી જતી હતી ત્યારે પણ મેં મારા આનંદના આવેગમાં કહ્યુંઃ 'મારો શોક હવે ટળ્યો છે અને આનંદ ઉભરાયો છે, કારણ કે મારા સ્વામી મને આસક્ત છે.'

૬૪૦-૬૪૨. પછી મેં નાહી લીધું, પંખીઓને દાણા નાખ્યા, જિનપ્રભુની પૂજા કરી અને પારણાં કરીને ઉપવાસ પૂરો કર્યો. ત્યારપછી ઉપવાસે અને પારણાએ થયેલા શ્રમથી આરામ લેવાને કાજે શેતરંજી-પાથર્યા અને પવને-ઠંડા-થયા ખંડમાં ગઇ. ત્યાં સ્વામીને મળવાની હજારો આશાએ હું ઘેરાઇ ગઇ અને એમના સ્નેહથી વિખુટી પડી અનેક વિચારોમાં વખત ગાળવા લાગી.

૧૪૩-૧૪૭. એવે સારસિકા પાછી આવી, એનો શ્વાસ તો જાણે માતો જ નહોતો અને આંખોમાંથી બોર બોર જેવડાં આંસુ જતાં હતાં. એ બોલીઃ "સર્વમાન્ય શેઠ ધનદેવ પોતાના મિત્રો અને સંબંધીજનોને લેઈને (તારા પિતા) નગરશેઠ પાસે આવ્યા અને સ્પષ્ટ શબ્દોમાં એમને કહ્યુંઃ 'તમારી દીકરી તરંગવતીનું મારા દીકરા પદ્મદેવ માટે માગું કરું છું; બોલો, કેટલો આંકડો આપને જોઈશે ?' પણ નગરશેઠે અસભ્યતાભર્યા આ શબ્દો એમને સંભળાવી દીધાઃ

૧૪૮-૧૫૨. 'જે ધણી વેપારને કારણે હમેશાં પરદેશમાં રહે, કદી ઘેર રહે નહિ અને તેથી કરીને દાસીઓની સાથે રમ્યા કરે, એવા માણસને મારી આવી કન્યાને શી રીતે સોંપું ? એને તો સદા પ્રોષિતભર્તૃકાના જેવા વાળ રાખવા પડે અને (બીજી સ્ત્રીઓની પેઠે) શણગાર સજવાના કદી પ્રસંગ જ નહિ આવે. સ્વામીથી વિખુટી પડેલી એને ભીની અને રાતી આંખે માત્ર કાગળો લખવામાં ને સ્નાન કરવામાં વખત ગાળવો પડે. આમ મારી દીકરીને વેપારીના ઘરમાં પુષ્કળ ધન હોવા છતાં મરતાં સુધી વિધવાની દશા ભોગવવી પડે, એના કરતાં તો ભીખારીને આપવી સારી. પછી ભલેને એવાં નાવણીઆં, શણગાર, સુગંધી પદાર્થો અને એવા સુંદર સોહાગ એને ના મળે.'

૧૫૩. સારસિકાએ કહેવા માંડયું કે આમ એમણે એ શેઠનું માગું તુચ્છકાર્યું અને (વાતચિત્તમાં) સભ્યતા, મિત્રતા અને માનવૃત્તિ અશક્ય થઈ પડી તેથી તે શોકાતુર થઈને ચાલી નિકળ્યા.

૧૫૪-૧૫૫. મારી સખીએ આણેલા આ સમાચારે શિયાળાનો હિમ જેમ કમળની દાંડીને ભાગી નાખે એમ, મારા મનોરથને મૂળથી ભાગી નાંખ્યો. મારું સર્વ ભાગ્ય ચાલ્યું ગયું મારૂં હૈયું એકવાર તો આનંદને બદલે પાછું શોકથી ભરાઈ ગયું. અને આંસુભરી આંખોએ મેં મારી રોતી સખીને કહ્યુંઃ

૧૫૬-૧૫૮. "મારો સખા બાણ વાગ્યે જીવી શક્યો નહિ, તેથી હું પણ જીવી શકી નહિ. એ જીવે તો જ મારાથી જીવાય. પક્ષીના ભવમાં પણ હું એની પાછળ મૃત્યુમાં પેઠી ! ત્યારે આજ આ માનવભવમાં એમના વિના-મારા સ્નેહી વિના હું શી રીતે જીવી શકું ? જા, સારસિકા, અને એમને આ પત્ર આપ, વળી કહેજે કેઃ

૧૫૯-૧૬૦. 'થરથરતી આંગળી વડે ભોજપત્ર ઉપર લખેલો આ પત્ર સ્નેહની સુંદર કથા કહેશે. એ છે તો ટુંકો, પણ અંદર હકીકત મહત્ત્વની છે. તમને આપવા એ પત્ર મારી સખીએ આપ્યો છે.'

૧૬૧. અને એમના આત્માને આધાર આપવાને માટે વળી આ સ્નેહશબ્દો એમને કહેજેઃ

૬૬૨–૬૬૫. 'તમો સ્વામીને અનુસરવાને માટે જેણે ચકવાકીના ભવમાં પોતાનું જીવન સમર્પી દીધું, તે આજે નવે અવતારે નગરશેઠની કન્યા થઇને અવતરી છે. તમને શોધી કાઢવાને જ ચિત્રમાળાનું પ્રદર્શન કર્યું હતું. એકવાર તમે એની પાસે આવ્યા કે એની કામના પુરી થઈ. અરે, ગયા ભવમાં ખોવાયેલા અને ફરી પાછા આજે મળી આવેલા પ્રિયતમ! આપણને ગયા ભવમાં એકરૂપ કરનારો સ્નેહસંબંધ હજી યે હોય, તો તમારા જીવનને જાળવી રાખો અને તમારી સાથે મારા જીવનને પણ બચાવો!"

૬૬૬. 'વળી અમને એકસૂત્રે બાંધનારો સ્નેહ પરિપૂર્ણતાએ પામે ત્યાં સુધી સૌ ગુપ્ત રાખવાની એમને સૂચના આપજે.'

૬૬૭–૬૬૯. આ અને એવી બહું બહુ વાતો મેં ભારે હૈયે સારસિકાને કહી ને પછી કાગળ આપીને વિદાય કરી. (અને છેવટે મેં એને સોગન દેઈ કહ્યું:) 'અમે બે સ્નેહસંબંધે જોડાઇશું' એવા સમાચાર ગમે તે રીતે જરૂર લાવજે. મેં તને કહી ન હોય કે કાગળમાં લખી ન હોય, એવી સૌ વાતો મારા લાભની હોય તે, એમને કહેજે.'

૬૭૦–૬૭૧. પછી મારી એ સારી સખી મારા સ્વામી પાસે પત્ર લઇને ગઇ ને સાથે મારા હૃદયને પણ લેતી ગઇ. એની ગેરહાજરીમાં ચિંતાએ કરીને મેં નિશ્ચય કર્યો:

(અહીં મૂળ ગ્રંથમાં દા શ્લોક ૬૭૧ ઉ. થી ૬૭૭ ખુટે છે.)

૬૭૮–૬૮૦. (સખી પાછી આવી અને મને કહેવા લાગી:–) "સખી, તારી પાસેથી પત્ર લઇને હું નિકળી એટલે નગર વચ્ચે આવેલા રાજમાર્ગ ઉપરની સુંદર હવેલીઓ પાસે થઈને ચાલી. અનેક ચકલાં વટાવીને હું એક મહેલ પાસે આવી ઉભી, વૈશ્રવણ (કુબેર) અને શ્રી જાણે ત્યાં એકઠાં થયાં હોય એવો એ મહેલ લાગતો હતો. ભારે હૈયે હું તો દરવાજા પાસે આવી ઉભી. ત્યાં ચોકીદાર હતો તેણે અનેક જતીઆવતી દાસીઓમાંથી પણ મને ઓળખી કાઢી કે આ કોઇ અજાણ્યું માણસ છે; અને મને વાતે વળગાડીને પ્રશ્ન કર્યો કે 'તું ક્યાંથી આવે છે?' સ્ત્રીઓને વાતો ઉડાવી દેતાં આવડે છે, તેથી મેં જુઠું જ કહ્યું, કે 'હું અજાણી છું એ તમે સાચે જ પારખી કાઢયું છે, પણ મને તમારા મહેલના કુમારે બોલાવી છે.' ચોકીદારે (આનંદથી) કહ્યું: 'અહીં થઇ જનારઆવનાર કોઇ મારાથી અજાણ્યું નથી! તે ઉપરથી મેં એનાં વખાણ કરી કહ્યું: 'જેને ઘેર દરવાજા આગળ તમારા જેવા ચોકીદાર હોય છે તે શેઠ સુખી છે. (અને વળી કહ્યું:) હવે મને શેઠના પુત્રની પાસે લેઈ જાઓ.' એણે ઉત્તર વાળ્યો, 'બીજાની સ્ત્રીઓ મારા ઉપર એવો વિશ્વાસ કરે ત્યારે તો એ કામ હું ખુશીથી કરૂં.' એવું કહીને તેણે એક દાસીને ભલામણ કરી કે 'સૌથી ઉપરને માળે કુમાર પાસે આને લેઇ જા.' પછી દાસી સાથે હીરામોતીએ

જડેલાં મહેલના સૌથી ઉપરના માળે હું પળવારમાં જઈ ઉભી. ત્યાંથી રાજમહેલમાં લાંબે સુધી નજર પહોંચતી હતી. દાસી મને રત્નજડિત આસન ઉપર બેઠેલા જુવાન પુરૂષને દેખાડી ચાલતી થઇ.

૬૯૧–૭૦૯. વિશ્વાસ રાખીને હું કુમારની પાસે ગઇ. પાસે એક ભોંઠાં જેવો બ્રાહ્મણકુમાર હતો; શેઠનો દીકરો ઢીંચણ ઉપર મુકીને એક ચિત્ર જોતો હતો. એની આંખમાંથી આંસુ ઝરીને એ ચિત્ર ઉપર પડ્યું, તે જેમ કોઇ કાગળમાં થયેલી ભૂલ લુંછી નાખે એમ એણે લુંછી નાખ્યું. આમ એ તને–મળવાની–આશાભર્યે અને વળી તારા–વિજોગથી–ચિંતાભર્યે હૈયે બેઠો હતો. મેં વિનયથી નમીને હાથ કપાળે અડાડી નમસ્કાર કર્યા અને કહ્યું: 'ઘણું જીવો કુમાર'! તે સાંભળી હાથમાં વાંકો દંડ અને લાલચોળ જામા નીચે વ્યાઘ્રચર્મ છે જેની પાસે એવો પેલો મૂર્ખો અને બહુબોલો બ્રાહ્મણ ચીભડાના બી જેવાં દાંત કાઢી બોલી ઉઠયો: 'મને બ્રાહ્મણને તેં પહેલા નમસ્કાર શા માટે ન કર્યા? ને આ શૂદ્રને કેમ કર્યા?' ભયથી મારી ચુડી તો કાંડેથી સરી ગઈ, જાણે હું પોતે ભોંય ઉપર પડી ગઈ, અને બોલી: 'મહારાજ, નમસ્કાર તમને.' હું તરત જ પાછી ઉભી થઈ ગઇ ને બોલી: 'સાપના જેટલી મને તમારી બીક લાગે છે, એણે બૂમ મારી: 'શું? મને તું સાપ કહે છે?' મેં ઉત્તર આપ્યો: 'સાપ કહેતી નથી, હવે થયો સંતોષ?' પણ એ બોલી ઉઠયો: 'મને સાપ કહીને હવે ફરી જાય છે? યાદ રાખ કે હું ઉંચા બ્રાહ્મણકુળનો છું; મારા પિતા હારિતગોત્રના કાશ્યપ છે, અને હું છાન્દોગ્ય સંપ્રદાયનું મીઠું ખારૂં ખાઉં છું. હજી તું મને ઓળખતી નથી?' આમ એણે મને અનેક મહેણાંટુણાં સંભળાવ્યાં. શેઠના કુંવરથી આ સાંભળ્યું ગયું નહિ તેથી તેણે એ બ્રાહ્મણને ખખડાવ્યો ને કહ્યું: 'અરે પાજી, પારકા ઘરની દાસીને આમ સતાવ ના. તારો ખાલી બડબડાટ બંધ કરી દે. તું માત્ર મૂર્ખજ છે, બીજું કાંઈ નહિ.' શેઠના કુંવરે એને આમ ધમકાવ્યો એટલે પછી માત્ર દૂર રહીને મારી સામે આંખો કાઢવા લાગ્યો ને બીજા એવા એવા ચાળા કરવા લાગ્યો; બીજું એનાથી કશું થઇ શક્યું નહિ. પછી એ ચાલતો થયો એટલે રાજી થઇને, પણ જાણે રડવા જેવી થઇ ગઈ હોઉં એમ, હું બોલી: 'ધન્ય પ્રભુ, એ ગયા.'

૭૧૦–૭૧૬. "શેઠના એ કુંવરે પછી મને પુછયું: 'સુંદરી, તું ક્યાંથી આવે છે? તારે શું જોઇએ છે તે જલદી બોલી દે.'

"ત્યારે હું બોલી: 'હે કુળભૂષણ, અવગુણવિહીન, સદ્‌ગુણસંપન્ન, સકળહૃદયમોહન, મારો એક નાનોશો સંદેશો સાંભળો. નગરશેઠ ઋષભસેનની સ્વર્ગની અપ્સરા સમાન કન્યા તરંગવતીએ એ સંદેશો મોકલ્યો છે. તરંગવતીએ પોતાના હૃદયની જે ઇચ્છા પોતાના ચિત્રમાં ચીતરી છે, તે ઇચ્છા સફળ થવાની આશા રાખે છે. પાછલા ભવનો (ચિત્રમાં ચીતરેલો) સ્નેહસંબંધ જો હજી યે રહેવાનો હોય તો એનું જીવન ટકાવવા

માટે એને તમારો હાથ આપો. આ સંદેશો મારે તમને આપવાનો છે. સંદેશાનો મર્મ તો (એના લખેલા) આ પત્રમાં તમે જોશો.'

૭૧૭-૭૨૧. "આ શબ્દો સાંભળી એના ગો ઉપર તો આંસુનો પ્રવાહ વહેવા લાગ્યો અને એનું આખું શરીર થરથરવા લાગ્યું. આમ એણે પોતાનો સ્નેહ તો દેખાડી આપ્યો; પણ તરત કંઇ ઉત્તર દેઇ શકયો નહિ. કારણ કે ડુસકાંથી એનો સ્વર નિકળી શકયો નહિ. નિરાશાને હાળી દેવાને જે ચિત્ર એણે આંકયું હતું, તે પાછું આંસુથી ફરી પલળી ગયું. કંઈક શાન્ત થઇને એણે પત્ર લીધો અને જેમ જેમ એ પત્ર તે ધીમે ધીમે વાંચતો ચાલ્યો તેમ તેમ એની આંખો રમવા લાગી. પત્રનો (ચતુર વાકયોએ લખેલો) ભાવ એ સમજી ગયો એટલે એ સારી રીતે શાન્તિ પામ્યો અને પછી દૃઢ, સ્પષ્ટ, રણુકતે શબ્દે બોલ્યોઃ

૭૨૨-૭૨૪. "વિસ્તાર કરવાનું કારણ નથી. મારી શી દશા છે તે ટુંકામાં જ સાંભળ. જો તું આવી નહોત તો હું જીવી શકત નહિ. ઠીક પળે તું આવી પહોંચી છે ને હવે મને આશા પડે છે કે પ્રિયાને મળવાને કારણે જીવનમાં રસ આવશે. વળી તારા આવવાથી, કામદેવ પોતાના બાણથી ઉંડા ને ઉંડા ઘા કર્યે જાય છે, તેની સામે રક્ષણ કરવાનું બળ હું પામ્યો છું.'

૭૨૫-૭૨૬. "ત્યાર પછી, તારાં ચિત્રે કરીને એને પાછલો ભવ જે યાદ આવેલો તેની સૌ કથા મને કહી બતાવી અને તેં મને જે કહેલી એને રજેરજ મળતી આવી. બાગના તળાવ પાસે ફરતાં ચક્રવાકને જોઇને તને તારો પાછલો ભવ જે સાંભરી આવેલો તે કથા મેં પણ તેને વિગતવાર કહી સંભળાવી.

૭૨૭-૭૪૫. "એણે કહ્યું: 'અરેરે, (તારી સખીનાં) ચિત્રો જોઇને ત્યાં ને ત્યાં જ મારા હૈયામાં (વિજોગના) દુઃખનો કાંટો ઉંડે સુધી પેશી ગયો, જેટલો અમારો સ્નેહ એકવાર ઉંડો હતો તેટલો જ ઉંડો એ કાંટો પેઠો. ઉત્સવ પુરો થતાં જેમ વાવટો જમીન ઉપર પડી જાય તેમ ઘેર જઇને હું પથારી ઉપર પડયો, ચારે બાજુ મારા મિત્રો વિંટાઇ વળ્યા ને એજ સ્થિતિમાં બાકીની રાત મેં ગાળી. કિનારા ઉપર આવી પડેલી માછલી જેમ તરફડે, તેમ હું સ્નેહદર્દે પીડાતો અને અસહાય નિરાશાએ હાંફતો પથારીમાં પડી રહ્યો. હું શૂન્યમાં તાકી રહેતો, આંખને અણુસારે ઉત્તર આપતો, વળી હસતો અને ગાતો અને વળી પાછો રોઈ પડતો. મારા મિત્રો મારૂં સ્નેહદર્દ પારખી ગયા અને એમણે શરમ છોડીને મારી માતાને વાત ઉઘાડી પાડી કહ્યું કે જો તમે તમારા (પુત્ર) પદ્મદેવને માટે નગરશેઠની દીકરી તરંગવતીનું માગું નહિ કરો તો એ મરી જશે. મારી માતાએ આ વાત મારા પિતાને કરી. તે તુરત જ નગરશેઠને ત્યાં ગયા, પણ નગરશેઠે એમનું માગું તરછોડી કાઢયું. આથી મારાં માબાપે શાન્ત કરવાને ચોખરૂં મને કહ્યું-કે તું કહે તેની સાથે તને પરણાવીએ, માત્ર એની વાત છોડ. એ વાત સાંભળીને હું એમને પગે પડયો, નમ્રતાપૂર્વક

હાથ જોડ્યા અને જમીને કપાળ અડાડ્યું; પછી લજ્જાપૂર્વક બોલ્યો કે જેમ તમે કહેશો એમ કરવા તૈયાર છું, એનામાં એવું શું વધારે છે!. આથી મારાં માબાપ શાન્ત થયાં અને એમની ચિન્તા ટળી. પણ મેં તો આપઘાત કરવાનો નિશ્ચય કર્યો હતો, કારણ કે મળવાની મારી બધી આશાઓ ભાંગી પડી હતી. અને દિવસે મારી યોજનાનો અમલ કરતાં વખતે લોક મને અટકાવે એ બીકથી રાતે બધાં ઉંઘી જાય ત્યારે આપઘાત કરવાનો સંકલ્પ કર્યો. જીવવાની તૃષ્ણાથી છુટો થઇને અને મરવાને માટે તૈયાર થઇને આ બધા સંકલ્પવિકલ્પ કરતો હતો, એવામાં જ તું આ સંદેશો લેઈ આવી. એથી મારા હૃદયમાં ઉત્સવ થયો ને મારા જીવનમાં અમૃત રેડાયું. પણ તારી સખીનો શોકભર્યો કાગળ વાંચતાં મારી આંખોમાંથી આંસુ નિકળી પડશે ને મને બહુ દુઃખ થશે. તારી સખીને મારા તરફથી આટલું કહેજે: જેને મરતાં તું સતી થઈ અને જેને તેં આટલે મૂલે ખરીદી લીધો છે તે તારો (ખરીદેલો) દાસ થવાનું સ્વીકારે છે. તારાં ચિત્રથી એને સૌ વાતો સાંભરી આવી છે-અને જ્યાં સુધી તું એની થઈ નથી, ત્યાં સુધી એ દુખિયો છે; અને છતાં યે તારા સંબંધની અને સ્નેહ-પ્રમાણની જે આશાએ એને આનંદ આનંદ થઈ રહ્યો છે, અને એ આશાએ કરીને એ સુખિયો છે.'

૭૪૬–૭૫૮. "આ સંદેશો આપ્યા પછી પણ એ મહાનુભાવે તારા સ્નેહની આશાઓ ઉપર બહુ સ્નેહવાતો કરીને મને બહુવાર ઉભી રાખી ને છેવટે—ના છુટકે—રજા આપી. પણ પછી મહેલમાંથી બહાર નિકળતાં મને તો જાણે આકાશપાતાળ એક થઇ ગયાં. ખરેખર, (તારા પિતાનો) નગરશેઠનો મહેલ બાદ કરતાં (આખા રાજમાર્ગ ઉપર) એવો બીજો એકે મહેલ નથી. હજી યે એ ભભકા, એ શોભા, એ આદરમાન મારી આંખો આગળ તરી આવે છે, અને તારા પ્રિયની અતુલ સુંદરતા પણ ઝળકી આવે છે. હવે એણે લખી આપેલો ઉત્તર તને આપું, એમાં એણે સ્નેહ અને આશાઓની ધારાઓ પ્રકટાવી છે."

(તરંગવતી હવે સાધ્વીરૂપે પોતાની કથા આગળ ચલાવે છે.) જે પત્ર રૂપે મારા પ્રિય મારી પાસે આવ્યા હતા, તે પત્ર મેં લીધો ને તેની ઉપરની મહોરને ઉંડે શ્વાસે ચુંબન કર્યું. હજી તો મારી આંખો એ મહોર ઉપર હતી અને કાનમાં મારી સખીના શબ્દો ઉતરતા હતા, તેવે જ ચંપાની પાંખડીઓ ઉઘડતાં જેમ અંદરથી તંતુગણ બહાર નિકળી આવે એમ મારા હૃદયમાં આનંદનો ફુવારો છુટ્યો. તરત જ મેં મહોર તોડી અને વાંચવાને આતુર થઇ કાગળ ફોડ્યો. મારા પોતાના મૃત્યુ સિવાયની બીજી બધી અમારા પાછલા ભવની કથાનું એમણે સંપૂર્ણ અને ચમત્કારિક વર્ણન કર્યું હતું: જ્યાં સુધી અમે સાથે હતાં ત્યાં સુધીનું બરાબર ચોકસ વર્ણન હતું અને મારા મરણની કથા તો એ જાણતા ન હતા. આનંદથી ઉછળતે હૃદયે એમણે મોકલેલો એ પત્ર મેં

વાંચવા માંડયો. જે લાગણી મને થઈ હતી એ એમને પણ થઇ હતી અને તે એમણે સુંદર શબ્દોમાં વર્ણવી હતી. વાંચતાં એમનો સ્નેહ મને સ્પષ્ટ થયો. કાગળમાં આમ હતું:

૭૫૯–૭૬૭. "મારાં હૃદયની સ્નેહપાત્રી તરંગવતી જોગ આ સ્નેહસંદેશ છે. જેનું મુખ કમળસમું છે અને જેનું આખું અંગ અનંગને બાણે કરીને આટલી તીવ્ર વેદના સહે છે એવી જુવતીનું મંગળ અને કુશળ હો! (વિજોગમાં પણ) આપણને સ્નેહે કરી જેણે બાંધી રાખ્યાં છે એવા કામદેવની કૃપાવડે હું કુશળ છું. માત્ર અનંગનું બાણુ મને ચોટયું છે એટલે જ્યાં સુધી તું મારાથી દૂર છે ત્યાં સુધી મારૂં અંગ ઢીલું ને નબળું પડતું જશે. આ સાજાતાજાના સામાન્ય સમાચાર પછી, કમળપત્રના જેવી સુંદર આંખોવાળી હે પ્રિય, બીજી વાત હવે કહું: આપણા એક વખતના સ્નેહાનંદને યાદ કરતાં આજે પણ તારે માટેની કામનામાં હું ડુબી જાઉં છું; મારા મિત્રો અને સંબંધીઓની મદદથી હું નગરશેઠનું મન મનાવી લેઉં, ત્યાં સુધી તું ધીરજ ધર. પિતાની ઇચ્છા થાય ત્યાં સુધી ધીરજ ધર."

૭૬૮–૭૬૯. આ પત્ર વાંચીને મને લાગ્યું કે મારા પ્રિય (જો કે એમણે અમારા અંતર્જીવનનું યથાસ્થિત વર્ણન કર્યું હતું, તોપણ મને ધીરજ ધરવાનું કહેલું હોવાથી) સ્નેહમાં ઠંડા પડી ગયા છે. આથી મારો ઉત્સાહ ને ઉત્કંઠા પણ ભાગી ગઇ. હું ઢીલી થઇને બેશી પડી અને જાંગ ઉપર કોણી ટેકવી તથા હાથ ઉપર મોં ટેકવી બાવરાની પેઠે તાકી જોઇ રહી.

૭૭૦–૭૭૩. મારી સખી મને સ્વસ્થતાથી સમજાવવા લાગી ને દિલાસો આપવા લાગી. એ બોલી: "પણ મારી સખી, તારી લાંબા કાળની કામના સફળ થવાના, અને તમારો સ્નેહસંબંધ બંધાવાના સમાચાર જે પત્ર આપે છે તે જ પત્રથી તારો શોકજંતુ તારા પ્રિયના વચનામૃતથી મરી જઈ મીઠો થઈ જવો જોઇએ; તેથી નિરાશ થતી ના. થોડા જ સમયમાં તમે એક બીજાને આલિંગન કરી શકશો."

૭૭૪–૭૭૫. મેં ઉત્તર દીધો: "સાંભળ હું શાથી એટલી બધી નિરાશ થઇ ગઈ તે: મને લાગે છે કે દૂર રહેવાથી સ્નેહ ઠંડો પડી જાય છે, કારણ કે એથી અમારા સંબંધનો આધાર ભવિષ્ય ઉપર લટકતો રહે છે."

૭૭૬–૭૮૧. હાથ જોડીને ફરી સખી બોલી: "સખી, તું નક્કી જાણજે કે, વીરપુરૂષો પોતાનું સાધ્ય સાધવાને કંઇક યોજના અને વ્યવસ્થા રચે છે. સાચાં સાધનને અભાવે જેનાતેનો ઉપયોગ કરી લેવો એ સારૂં નથી. ઉતાવળમાં વગરવિચારે સાચાં સાધન વિના કંઇ કામ કોઇ ઉપાડે તો એ સફળ થાય તો ય પરિણામ કડવાં આવે. સારાં સાધનનો ઉપયોગ કર્યા છતાં માણસ ધાર્યું ના ઉતારી શકે, તો ય એનો દોષ કોઇ કાઢે નહિ. માટે વીરપુરૂષો, કામના બાણુથી ગમે એટલા પીડાય તોપણ, કુમાર્ગે જઇને પોતાના કુળને દાઘ દેઇ બેસે નહિ.

(૭. પલાયન.)

૭૮૨–૭૮૭. આમ મારી સખી સાથે વાત કરતાં કરતાં પદ્મનો ખીલવનારો જે સૂર્ય તે આથમી ગયો એનું મને ભાનએ રહ્યું નહિ. ઉતાવળે ઉતાવળે મેં નાહી લીધું ને સખી સાથે કંઇક ખાઇ લીધું. પછી એને લેઇને અગાશીમાં ગઇ અને સુંદર આસન ઉપર બેશીને એની સાથે મારા પ્રિય વિષેની વાતો મોડા સુધી કરી. જેમ જેમ મોડું થતું હતું તેમ તેમ અંદરની અશાન્તિ વધતી જતી હતી, અને તે અસહ્ય થતી જતી હતી. સ્નેહને બળે હું એટલી બધી પીડાવા લાગી કે મારૂં જીવન ટકાવી રાખવાને ખાતર મારી સખીને (સારસિકાને) મારે વિનંતી કરવી પડી (હું બોલી–):

૭૮૮–૭૯૦. " કુમુદને ખીલવનારો ચંદ્ર જેમ જેમ ઉપર આવે છે તેમ તેમ એ વૈશ્યને (શેઠના દીકરાને) મળવાની મારી ઉત્કંઠા બહુ જ વધતી જાય છે. અને જેમ પવનને બળે બસ્તીના મોં આગળનું પાણી ઉડી જાય છે એમ એ ઉત્કંઠાને બળે મારા હૃદયમાંથી તારી મીઠી વાણી પણ ઉડી જાય છે–ટકતી નથી. અરે મારો જીવ એમની પાછળ તલસે છે! અત્યારે જ મને એમને ઘેર લેઇ જા! એકવાર એ મારા પતિ હતા; સ્નેહની વેદી ઉપર હું મારી લાજ હોમી દેઇશ."

૭૯૧–૭૯૨. મારી સખીએ મને સમજાવવા કહ્યું: "તારે તારા કુળની લાજ રાખવી જોઇએ. આવું કશું સાહસ કરતી ના! તારે એને કલંક ન લગાડવું જોઇએ. એ તારો થયો છે, તું એની થઈ છે. તારે મુશ્કેલી વહોરી લેવી જોઇએ નહિ. તારાં માબાપ જરૂર તારી વાત માનશે."

૭૯૩. આપણે સ્ત્રીઓ ઘણીવાર આવેશથી ખેંચાઈ જઇએ છીએ, મને પણ એમ જ થયું. આવેશનો માર્યો મારો સૌ વિવેક ચાલ્યો ગયો. સ્નેહથી કેવળ બાવરી બની હું બોલી:–

૭૯૪–૭૯૭. " માણસે બધાં જોખમ ખેડવા તૈયાર થવું જોઇએ. જે માણસ સાહસ ખેડતાં, તેમાં આવી પડનારાં વિઘ્નોથી ડરતો નથી તે જગતમાં વિજય પામે છે. એકવાર કામ શરૂ કર્યું કે પછી તે ગમે તેવું આકરૂં હોય તો ય સહેલું થઈ જાય છે. આટલી ઉત્કંઠા પછી જો તું મને મારા પ્રિય પાસે નહિ લેઈ જાય તો સ્નેહને બાણે પીડાઇને તારી નજર આગળજ મને મરી ગયેલી તું જોશે. વખત જરા યે ખોતી ના! મને લેઈ જા! જો મને તારે મરેલી જોવી ના હોય તો આ અપકૃત્ય પણ કર!"

૭૯૮–૮૦૯. આવા દબાણથી કરીને મારા જીવનને આનંદ આપવા માટે એ મારી સાથે મારા પ્રિયને મહેલે આવવા કબુલ થઈ. (જેના ઉપર સ્નેહનું બાણ ચઢાવી શકાય એવું) કામદેવનું ધનુષ–કામને ઉશ્કેરવા–મારો શણગાર આનંદે ઝટપટ સજી લીધો. મારી આંખોમાં ભવ્ય તેજ આવ્યું, કારણ કે એની સાથે મારા પ્રિયને ત્યાં જવા મારા પગ તલપાપડ થઇ રહ્યા હતા અને હૈયું તો તોફાને ચઢીને ક્યારનું ય ચાલતું થઇ ગયું

હતું. પછી અમે ધ્રુજતે શરીરે એકએકનો હાથ ઝાલીને પાછલે બારણે થઇને મારા ભવ્ય મહેલમાંથી બહાર નિકળી ગયાં. (અમારા નગર) કૌશામ્બીને સ્વર્ગસમી શોભા આપનારે રાજમાર્ગે થઇને અમે ફુલમાળાના જેવાં લાંબા ચૌટામાં ચાલ્યાં. પણ આ સુંદર દેખાવ ઉપર મારી આંખ ચોંટે શી રીતે? કારણ કે મારા વિચાર તો મારા પ્રિયમાં જઇ ચોંટ્યા હતા! આજે મારા પ્રિયને જોઇ શકાશે એ જ વિચારો મારા મનમાં ઘોળાતા હતા. એથી મને થાક પણ લાગ્યો નહિ. માણસોની ભીડ તો હતી, તો ય અમે ઉતાવળે પગલે ચાલ્યાં અને અનેક હરકતો વેઠીને પણ આખરે અમે સ્નેહમંદિરમાં આવી પહોંચ્યાં. સખીએ મને એ બતાવ્યા, તે વેળાએ એ પોતાના મિત્રોની વચ્ચે દરવાજા ઉપર બેઠા હતા અને વીણા વગાડતા હતા. શરચ્ચંદ્રની પેઠે સૌને પ્રકાશ આપી રહ્યા હતા.

૮૧૦-૮૨૦. વગર હાલ્યેચાલ્યે મેં તો એમને જોયા જ કર્યો; છતાં યે મારી આંખો એમને જોઇને ધરાઇ નહિ. વારંવાર એ તો આંસુથી ભરાઈ જતી. મારા ચક્રવાકના ભવના મારા સ્વામીને જેમ જેમ જોયા કર્યો, તેમ તેમ એમને જોવાની મારી તૃષ્ણા અત્યારે વધતી ગઈ. માત્ર એમની જ નજર અમારા ઉપર પડવાને કારણે આનંદ પામીને અમે ત્યાં પાસે ઉભાં, અને છતાં ય પાસે જઈ શકતાં નહોતાં. એવામાં સારે નશીબે એમણે પોતાના મિત્રોને રજા આપી. "જાઓ હવે, શરદ્રાત્રિમાં જઈ આનંદ કરો, હું હવે સુઇ જઇશ." એ લોક ગયા કે તરત જ એ મારી સખી (જેને એમણે ઓળખી લીધી હતી) તરફ જોઈ બોલ્યાઃ "આવ, જે ચિત્રો નગરશેઠને ઘેર મુકયાં હતાં, તે આપણે જોઇએ." (આમ એ બોલતા હતા ત્યારે) હું મારા શણગારને અને કપડાંને ઠીકઠાક કર્યો જતી હતી ને મારે અભિમાની હૃદયે, કામદેવનો જાણે અવતાર ના હોય એવા મારા પ્રિયને મનમાન્યા જોઇ રહી હતી. સખી સભ્યભાવે એમની પાસે ગઇ, એટલે એ તુરત જ સભ્યભાવે ઉઠયા ને જે ખંડમાં હું શરમ ને ગભરાટની મારી સંતાઈ ઉભી હતી તે જ ખંડમાં (મારી સખીના દોરાયા) આવી ઉભા. પછી એ આનંદભરી આંખોએ સ્નેહસુખ વદને બોલ્યા.

૮૨૧-૮૨૫. "તારી સખી, મારા જીવનસરોવરને પોષનારી, મને સુખ આપનારી સહચરી, મારા હૃદયની રાણી કુશળ તો છે ને? જ્યારથી મદનપ્રભુનાં બાણથી હું ઘવાયો છું ને તેને મળવાને ઉત્સુક બન્યો છું ત્યારથી મને કશું ચેન પડતું નથી. 'તમે શરદ્રાત્રિમાં આનંદ કરો મારે હવે સુઈ જવું છે' એવું બહાનું કાઢીને મારા મિત્રોને મેં વિદાય કરી દીધા એ તો માત્ર મારી ચાલાકી જ હતી. (સાચી વાત તો એ હતી કે) તેમની સોબતમાંથી છુટા પડી મારે ફાવે તેમ તમારે મહેલે જવું હતું અને ત્યાં એ ચિત્રો જોવાં હતાં. પણ તને જોતાની સાથે જ મને થયેલા આનંદને લીધે મારા હૃદયનો શોક ઉડી ગયો છે. કહે, મારી પ્રિયા પાસેથી તું શો સંદેશો લઈ આવી છે?"

૮૨૬. ત્યારે મારી સખી બોલી: "કશો સંદેશો હું લાવી નથી, એ પોતે જ અહીં આવી છે."

૮૨૭-૮૨૮. વળી એ બોલી: "સખી છે તો બહુ યે કુશળ; પણ એ એવી તો સ્નેહઘેલી બની ગઇ છે કે તમારે હવે એનો હાથ ઝાલવો જ જોઇશે. સમુદ્રની નારી ગંગા જેમ સમુદ્રમાં વહી જાય છે, તેમ સ્નેહે કરીને તણાતી તરંગવતી તમારી પાસે દોડી આવી છે."

૮૨૯-૮૩૬. (આ શબ્દો સાંભળીને) મારે તો આખે શરીરે પરસેવાનાં બિંદુઓ ચમકી ઉઠયાં, મારામાં કશું બળ રહ્યું નહિ. મારી આંખોમાં આનંદનાં આંસુ ભરાઇ આવ્યાં. ગભરાતી ને થરથરતી હું સભ્યતાએ મારા પ્રિયને પગે જઇ પડી, પણ તરત જ એમણે પોતાને બળવાન ને સ્નેહભર્યે હાથે મને ઉઠાડી ઉભી કરી, એમણે મને બાથમાં ભીડી લીધી, એમની આંખોમાં પણ સ્નેહનાં આંસુ ભરાઈ ગયાં. પછી એ બોલ્યાઃ "મારા શોકને હણનારી મારી સખી, તારૂં કલ્યાણ હો!" એમ બોલતા એ, પુરા ખીલેલા કમળ જેવે આનંદભર્યે મુખે મારી સામે એકીટસે, જોઇ રહ્યા; એ મુખ જાણે કમળમાં બેસનારી પણ કમળ વિનાની લક્ષ્મી ના હોય એવું મને જણાયું. શરમની મારી હું તો એમની એમ ઉભી રહી, આનંદનાં મોજાંમાં ડુબતી અને કમળના પાન જેવા મારા કોમળ પગ ધરતી ઉપર આમતેમ ફેરવતી, હું ત્રાંસી આંખે એમના તરફ જોયા કરતી અને જ્યારે એ મારી આંખ સામે જોતા ત્યારે પાછી નીચું જોઈ જતી. તેમના બધા હાવભાવમાં તેમનું સ્વરૂપ એવું તો મોહક અને સુંદર હતું કે મારા મોહનો પાર રહ્યો નહિ. મારા હૃદયની ભૂમિ ઉપર એમની દૃષ્ટિનો એવો સુખભર્યો વરસાદ રેલાયો કે મારા આનંદનાં બીજ ફુટી નિકળ્યાં.

૮૩૭-૮૪૧. પછી એ બોલ્યાઃ "મારી કોમલાંગી, આ સાહસ તું શી રીતે કરી શકી? તારા પિતાની મરજી સંપાદન કરતા સુધી જોવાનું મેં તને કહ્યું જ છે. તારો પિતા રાજદરબારનો કૃપાપાત્ર છે, મહાજનનો અગ્રેસર છે, મિત્રમંડળમાં એમનો ભારવકર આખા નગરમાં સૌથી વધારે છે; એમની ઇચ્છાને જો આ તારા આચરણથી આઘાત લાગશે તો એ પોતાની ઇચ્છા પ્રમાણે ચલાવવાને બધા ઉપાયો યોજી શકશે અને ક્રોધના માર્યા મારા આખા કુટુંબ ઉપર વેર વાળશે. તેથી તને વિનંતી કરૂં છું કે તારી ગેરહાજરી જણાઇ આવે તે પહેલાં તું ઘેર ચાલી જા. સીધે રસ્તે તને પ્રાપ્ત કરવાના હું બધા ઉપાય લઇશ. મારી પ્રિયા, આપણે આપણું મિલન ગમે તેટલું છુપું રાખવાનું કરીએ તોપણ તે તારા પિતાની જાણમાં આવી જશે. કારણકે ગમે તેટલું ગૂઢ કાર્ય પણ સાવધાન મનુષ્યો જાણી શકે છે." મારા સ્વામી મારી સાથે આ પ્રમાણે વાત કરે છે એ જ વખતે રાજમાર્ગે જતા કોઈ પુરૂષના નીચે પ્રમાણેના ઉદ્ગારો સાંભળવામાં આવ્યાઃ

૮૪૨-૮૪૩. "પોતાની મેળે ચાલી આવેલ પ્રિયા, યૌવન, અર્થ, રાજલક્ષ્મી, વર્ષાસમય, જ્યોત્સ્ના અને ચતુર સ્નેહીઓના આનંદનો ઉપભોગ જે કરી શકતો નથી તે જાતે ઘેર ચાલી આવેલી લક્ષ્મીની કિંમત જાણતો નથી.

૮૪૪-૮૪૫. "જીવિતના સર્વસ્વસમાન રમ્ય પ્રિયાને પ્રાપ્ત કરીને જે છોડી દે છે તે મનુષ્ય સફળ કામનાવાળો થતો નથી."

૮૪૬-૮૪૮. એ ઉદ્ગારના ભાવાર્થથી પ્રેરાઇને વળી મારા પ્રિયે મને કહ્યું: "જો આપણે પરદેશમાં ચાલ્યાં જઇએ, તો જ વિઘ્નથી ને શંકાથી મુક્ત થઇને આનંદે રહી શકીએ." ત્યારે મેં રડતે હૃદયે ઉત્તર આપ્યો: "હા! મારા પ્રિય, હવે મારાથી ઘેર જવાય એમ નથી, હું તો તમે જ્યાં જશો ત્યાં, તમારી પાછળ આવીશ."

૮૪૯. (હુ એમના વિચારો પ્રમાણે અનુસરી શકું એટલા માટે) અનેક તરેહથી એમણે મને ઉત્તેજન આપ્યું, અને હું પાકા ઠરાવ ઉપર આવી એટલે એ બોલ્યા: "ઠીક ત્યારે, આપણે નાશી જઇએ! હું હવે મુસાફરીની તૈયારી કરી લેઉં."

૮૫૦-૮૫૨. માર્ગમાં જરૂર પડે એવી ચીજો એકઠી કરવાને એ મહેલની અંદરના ભાગમાં ગયા, એટલે મારા દરદાગીના લેઇ આવવાને મેં મારી સખીને ઘેર મોકલી. એ દોડતી ગઇ; પણ એટલામાં તો મારા પ્રિય હાથમાં કોથળી લઇને પાછો આવ્યા અને કહેવા લાગ્યા: "ચાલ મારી પદ્મિની, વખત વહ્યો જાય છે. નગરશેઠ જાણી જાય તે પહેલાં આપણે ખશી જવું જોઇએ."

૮૫૩. મેં ગભરાઇને ઉત્તર આપ્યો: "મારા દાગીના લેવા મેં સખીને ઘેર મોકલી છે, એ આવે એની આપણે વાટ જોઇએ."

૮૫૪-૮૫૮. એમણે ઉત્તર આપ્યો: "અર્થશાસ્ત્રમાં લખ્યું છે કે દૂતી એ પરિભવ-તિરસ્કાર કરાવનારી છે, એ કાર્યની સાધક નથી પણ ખરી રીતે બાધક છે. ખરેખરી ગુપ્ત વાતથી દૂતીને સદા દૂર જ રાખવી જોઇએ. એ જલદી જ ફસાવી દે છે, કારણ કે બૈરીઓથી કશું છાનું રાખી શકાતું નથી. વળી જો સાથે દરદાગીના લીધા, તો તો એથીયે વધારે ફસાઈ પડવાનો ભો. વળી એના આવવાથી આપણને માર્ગ કાપતાં અડચણ પડશે અને આપણી શાન્તિનો ભંગ થશે, માટે એને તો આપણે છોડી દઇએ! અને હવે વખત ખોવો જોઇતો નથી. હીરા, ઝવેરાત અને એવું એવું સૌ કીંમતી મેં લેઇ લીધું છે. જેની આપણને જરૂર પડશે તે એનાથી ખરીદી લેવાશે. માટે આવ હવે, આપણે ચાલતાં થઇ જઇએ."

૮૫૯-૮૬૩. એ સાંભળીને હું તેમ કરવા તૈયાર થઇ ને સારસિકાની વાટ જોયા વિના જ અમે તો રસ્તે પડયાં. નગરના દરવાજા સારી રાત ઉઘાડા રહે છે તેથી અમે બહાર નિકળી ગયાં અને જમુનાને કિનારે જઇ પહોચ્યાં. ત્યાં અમે એક

મછવો ખોળી કાઢયો. એને દોરથી એક ખીલા સાથે બાંધ્યો હતો અને (સુભાગ્યે) એની અંદર પાણી પેસતું નહોતું. અમે એને છોડી લીધો ને બંને જણ ઝટપટ અંદર ચઢી ગયાં. મારા પ્રિયે હાથમાંની કોથળી અંદર મુકી દીધી ને હલેસું પકડયું. ત્યાર પછી નદીમાં રહેતા કાલીયનાગની અને ખુદ નદીની પણ, નમસ્કાર કરીને, સ્તુતિ કરી. પછી સમુદ્રને મળવા જતી નદીમાં અમે અમારી હોડી હંકારી.

૮૬૪-૮૬૭. પણ અમારા જમણા હાથ તરફ શિયાળવાં રખડતાં હતાં તે અકાળે બોલવા લાગ્યાં. પશુઓમાં સૌથી લુચ્ચાં એ શિયાળવાનો અવાજ અમને સંભળાવા લાગ્યો. જોરથી વગાડાતા શંખ જેવો બેસુરો એમનો અવાજ હતો. તરત જ મારા પ્રિયે મછવો અટકાવ્યો અને મને કહ્યું: "શુકન મળે ત્યાંસુધી આપણે ઉભાં રહીએ. કારણ કે ડાબી બાજુથી નિકળીને જો શિયાળ જમણી બાજુએ જાય તેમજ પાછળ જાય અથવા પાછળ આવે તો અપશુકન થાય. જીવને કશું જોખમ થવાનું નથી, કશું વિઘ્ન આવવાનું નથી એવી આપણે ખાતરી કરી લેવી જોઇએ."

૮૬૮-૮૭૨. એમ બોલ્યા પછી મોજાના (અટકાવી રાખેલા મછવા ઉપરના) મારાથી ડરીને ફરીથી મછવો નદીમાં હંકારવા માંડ્યો. હલેસાંને જોરે મછવો ચાલ્યો ને વળી મોજાંને પ્રવાહ પણ ઉતાવળો ચાલ્યો, અને આમ અમે મછવામાં બેસી ઘણી ઉતાવળે આગળ ચાલ્યાં. દૂરના કિનારા ઉપર નવાં નવાં ઝાડ દેખાતાં ને પાછળ અદ્રશ્ય થઇ જતાં. પવનનો સુસવાટ અને પંખીઓનો કિલકિલાટ અત્યારે બંધ થઇ ગયો હતો અને તેથી જમુના શાન્તિની પ્રતિજ્ઞા પાળતી હોય એવી દેખાતી હતી. પણ ત્યારે મારા પ્રિયે, ભય ગયો છે અને ચિંતા જેવું કશું નથી, એમ જાણીને હૃદયને આનંદ આપનારી વાતો કરવા માંડી.

૮૭૩-૮૭૯. એ બોલ્યા: "આટલા લાંબા વિજોગ પછી આપણે પાછાં એકબીજાને આલિંગન દેઈ શકયાં એ આપણું કેવું સદ્ભાગ્ય! તેં આપણો સંજોગ ઇચ્છયો ના હોત, એ ચિત્રો ચીતર્યાં ના હોત, તો આપણે એક બીજાને મળી શકયાં ના હોત; કારણ કે (પાછલા ભવ પછી) આપણાં રૂપ તો બદલાઈ ગયાં હતાં. મારી પ્રિયા, (ખરેખર) તેં ચિત્રો ચીતરીને મારા પ્રત્યેની મોટામાં મોટી (સ્નેહ-અને) જીવન-સેવા સિદ્ધ કરી છે." આવું આવું મારા કાનને ને હૃદયને સુખ આપનારૂં એ બહુ બોલ્યા. હું એનો કશો ઉત્તર વાળી શકી નહિ. હું તો માત્ર શરમની મારી મોં નીચું રાખીને ત્રાંસી નજરે એમના તરફ જોઇ જ રહી. ગળામાંથી અવાજ નિકળ્યો જ નહિ, સ્નેહની આશાઓ સફળ થતી જોઇને સ્નેહભર્યું હૈયું કંપવા લાગ્યું. (અંતે) મારા સુખના ભાવ ખુલ્લા કરવાને, મારા પગનો અંગુઠો મછવાને પાટીએ ઘસતી ઘસતી, હું બોલી:—

૮૮૦-૮૮૩. "આહા પ્રિય, તમે જાણે મારા પ્રાણ છો. તમારી સાથે સુખદુઃખ ભોગ-

વવાને મારા અંતરની પ્રેરણાથી મેં આપ સાથે પાસા નાખ્યા છે. મારું ગમે તે કરો; માત્ર એટલું માગું છું કે વિષમ સ્થિતિમાં આવી પડતાં પણ મને એકલી મુકી જશો ના. ગમે તે થતાં પણ હું તો તમારી સાથે સ્નેહે બંધાઈ રહીશ. જો તમે મને ખાવાનું બંધ કરશો તો મારાથી ભૂખે રહેવાશે, પણ જો મારા હૃદયનું ખાવાનું બંધ કરી દેશો, તો તમારા વિના મારાથી રહી શકાશે નહિ."

૮૮૪-૮૯૨. માનવહૃદયની ચંચળતા દેખાડનારા મારા આ શબ્દો સાંભળીને એમણે ઉત્તર આપ્યો: "આહ મારી વ્હાલી, તું એવી કશી ચિંતા કરતી ના, તને એવું કશું નહિ થવા દઉં. આપણે હવે શરદૃઋતુની ઉતાવળી નદીમાં અનુકૂળ પવનને બળે વિના મુશ્કેલીએ આગળ ચાલીએ છીએ અને સુંદર કાકન્દી નગર પાસે આવતા જઇએ છીએ; પેલા એના સફેદ મહેલો દેખાય. ત્યાં મારાં ફોઈ રહે છે, એમના મહેલમાં આપણને આવકાર મળશે અને સ્વર્ગમાં જેમ અપ્સરા તેમ ત્યાં તું ચિંતામુક્ત થઇ સુખમાં રહી શકશે. તું મારા સુખની વધારનારી છે ને દુઃખની હરનારી છે. તું મારા જીવનનું સર્વસ્વ છે ને મારા વંશની રાખનારી છે." એવું કહીને અમારા ચક્રવાકના ભવને સંભારતાં એમણે મને આલિંગન દીધું; ઉનાળામાં (સૂરજથી) તપેલી ભોંયને વરસાદના સ્પર્શથી જેવી આનંદની લાગણી થાય, એવી આનંદની લાગણી મેં મારા પ્રિયના સ્પર્શથી અનુભવી.

૮૯૩-૮૯૬. ત્યાર પછી ગાન્ધર્વલોકો જેમ કરે છે એમ, માનવભોગને શિખરે પહોંચાડનાર ગાન્ધર્વવિવાહે અમે પરસ્પર બંધાયાં. દેવોની પ્રાર્થના કર્યા પછી તરત જ (જેમ વ્યાવહારિક લગ્ન પ્રસંગે થાય છે એમ) મારો હાથ ઝાલવાને બદલે મારા સ્વામીએ મારી જુવાનીની કળી ચુંટી લીધી. પરસ્પર ધરાતા સુધી દાંપત્ય વિલાસનો આનંદોપભોગ કરી લીધો.

*૮૯૭. એટલીવારમાં અમારો મછવો અમને લેઇને (અમારી ઇચ્છા હતી તે પ્રમાણે, જમુનામાંથી નીકળીને) ગંગામાં આવી પહોંચ્યો. એકવાર જેમ પૂર્વભવમાં આ નદી ઉપર અમારી ચક્રવાકની જોડી તરતી હતી તેમ આજે સ્નેહી યુગલની જોડી તરવા લાગી.

૮૯૮-૯૦૧. રાત્રિ ચાલી ગઈ; લલાટમાં જેને ચંદ્ર છે, ચંદ્રિકા જેનાં સુંદર સફેદ વસ્ત્ર છે અને તારા જેના ભવ્ય અલંકાર છે એવી એ જુવાન રાત્રિનારી સરી ગઇ. પૃથ્વીના જળદર્પણ ઉપર ચંદ્ર હવે તો માત્ર હંસની પેઠે તરવા લાગ્યો; જેને રાત્રિના ચાર પહેરેગીરે અત્યારસુધી પકડી રાખ્યો હતો તે હવે ઉપર આંખો ને નીચે માત્ર ઝાંખો દેખાવા લાગ્યો. મળસ્કામાં પંખીનાં સૌ ટોળાં જાગી ઉઠયાં, તેમનાં ગાનથી ને સાદથી જાણે નદી સાથે એ સંબંધ જોડતાં હોય એવું દેખાતું હતું. અંધારાનો શત્રુ સૂર્ય, માનવીઓની દિનચર્યાને માટે પ્રકાશતો ગગનદીવો પ્રકટયો હોય એમ, ઉગ્યો.

૮. લૂટારાને હાથે પકડાણું.

૯૦૨-૯૦૪. ગંગાના વહેતા પાણી ઉપર કેટલાક સુધી એમ સુખે વહ્યા પછી મારા પ્રિય બોલ્યા: "પ્રિયે નિતંબિની, સૂર્ય ઉગ્યો છે એટલે હવે દાતણ કરવાની વેળા થઈ છે, તેથી જમણા હાથ ઉપર શંખલા જેવી સફેદ રેતીથી ચળકતો જે કાંઠો દેખાય છે ત્યાં આપણે ઉતરીએ."

૯૦૫-૯૦૮. ત્યાં આગળ પહોંચીને મછવો લંગર્યો અને ઉતર્યાં. જ્યાં હજી કોઈ માનવીનો સંચાર થયો નહોતો એવા રેતીના કાંઠા ઉપર અમે ફરવા લાગ્યાં; પણ સામે દેખાતી સુંદર જગા હજી તો અમે પુરી જોઈ પણ નહોતી તેવામાં, જ્યાં ભયની શંકા સુદ્ધાં નહિ પડે એવી તે જગામાંથી, એકાએક લૂટારા દેખાયા. કાંઠા ઉપરનાં ઝાંખરાંમાંથી એ બહાર નિકળી આવ્યા અને જમરાજના ભયંકર દૂતો જેવા દેખાતા એ અમારી તરફ ધસ્યા.

૯૦૯-૯૨૦. ભયથી હું તો ચીસ પાડી ઉઠી ને "હવે આ સંકટમાં શું કરીશું?" એમ મારા સ્વામીને પૂછવા લાગી. એ બોલ્યા: "ડરતી ના! અહુણાં જ તને ખબર પડશે કે મારી લાકડીના ઝપાટાથી એમને કેવા હાંકી કાઢું છું. તને મારી જીવનનૌકા બનાવવાના મનોરથમાં હું એવો તો મુગ્ધ થઈ ગયો હતો કે ઘેરથી હથિયાર લેવાનું પણ ભુલી ગયો. સ્નેહના આનંદોત્સવને માટે બધા પ્રકારનાં ઝવેરાત માત્ર લીધાં; પણ સ્નેહસાહસને અંગે જે સંકટ રહેલું છે તેનો તો વિચારેય આવ્યો નહિ. છતાં યે તું શાન્તિ રાખ! બળવાન્ હશે તે જુદ્ધમાં જીતશે. આ જંગલી ચોર મને ઓળખતા નથી અને એમણે હજી મારો હાથ જોયો નથી, એથી જ એ આટલી હિંમત કરી શક્યા છે. એક જણને હું નીચે પાડી દઈશ અને એનાં હથિયાર લેઈ બીજાઓની પાછળ પડીશ. પરિણામ અનિષ્ટ જ આવશે તો તને લૂંટાતી દેખવા કરતાં મારૂં શૌર્ય સમાપ્ત કરી દઈશ. કારણકે તારાં કપડાં ને ઘરેણાં કાઢી લેવાને લૂટારા તને બાંધે એ તો મારાથી કદી જોયું જાય નહિ. મારે માટે તું પાછલા ભવમાં સતી થઈ હતી અને મારે માટે આ ભવમાં પરદેશમાં નિકળી પડી છે. ત્યારે મારામાં જ્યાં સુધી પ્રાણ છે ત્યાં સુધી તને બચાવવાને માટે મારાથી બને એટલું બળ વાપર્યા વિના શી રીતે રહેવાય? મને જવા દે અને લૂટારાની સાથે જુદ્ધમાં ઉતરતાં મને અટકાવ નહિ. હવે તો જિતવું કે મરવું!"

૯૨૧-૯૨૬. આ શબ્દો સાંભળીને હું પ્રિયને પગે પડીને બોલી: "મારા નાથ, મને અનાથ કરીને એકલી મુકી જતા ના. તમારે જુદ્ધે ચઢવું જ હોય તો મારો જીવ લેઉં ત્યાં સુધી ઉભા રહો. કારણ કે લૂટારાના હાથમાં તમને પડ્યા મારાથી જોવાશે નહિ. લૂટારાને હાથે પડ્યા છો એવું જોવાને જીવવું એના કરતાં તો આશાભેર મરવું ભલું. અરેરે મારા પ્રિય, આખરે તમે મારા થયા તો ખરા, પણ એટલામાં તો આ ગંગા

કાંઠે જ, જાણે માત્ર ચંચળ સ્વપ્ન જ હોય, એમ તમે ચાલી જવા બેઠા ! આવતા ભવમાં આપણે એક બીજાને મળીશું કે નહિ એ તો બીજી વાત છે, પણ અત્યારે તો હું જીવું છું ત્યાં સુધી મારી પાસે રહો ! આપણે એક બીજાથી વિછુટાં પડીએ નહિ, બાકી બીજું તો જે થવાનું હોય તે થાય ! કારણકે બીજા બધાને આપણે ભુલાવી શકીશું, પણ આપણાં કર્મના ફળને ભુલાવી શકીશું નહિ." (તેથી કરીને આવતા ભવમાં વિખુટાં પડાય નહિ એટલા માટે આજે પણ વિખુટાં પડવું નહિ જોઇએ.)"

૯૨૭-૯૨૮. આ પ્રમાણે કલ્પાન્ત કરીને મેં મારા સ્વામીને યુદ્ધે ચઢતાં વાર્યા. લૂંટારાઓને મેં, રડી પડી, હાથ જોડી, કાલાવાલા કરીને, કહ્યું: "મરજીમાં આવે એમ મારાં અંગ ઉપરથી ઘરેણાં ઉતારી લો; અમારા સ્નેહની ખાતર મારા સ્વામીને મારશો નહિ (એટલું માગી લેઉં છું)."

૯૨૯-૯૩૮. પછી અમને લૂંટારાએ પકડયાં. એક પાંખ કપાઇ ગઇ છે જેની એવું પંખી જેમ ઉડી શકે નહિ તેમ અમારાથી પણ નાશી જવાય એમ નહોતું. થોડાક લૂંટારાએ એટલામાં જઇને મછવો અને (તેમાં મુકેલી) કોથળી પણ કબજે કરી લીધી. બીજા મને દૂર લેઈ ચાલ્યા તેથી મેં ચીસો પાડવા માંડી. કેટલાકે મારા સ્વામીને પકડયા; પણ, વાદીના શબ્દથી ઝેરી સાપ જેમ ઠંડો પડી જાય તેમ, મારા શબ્દથી એ (યુદ્ધ કરવાની ઇચ્છા છતાં) ઠંડા રહ્યા. અમને બંનેને અને ઝવેરાતની કોથળીને લૂંટારા ગંગાના રેતીના કિનારા ઉપર લેઇ ગયા. મારા શરીર ઉપરથી બધાં ઘરેણાં તો ઉતારી લીધાં, પણ અમને એને જરા ય જુદાં કર્યાં નહિ. છતાં વેલીનાં જેમ ફુલ ચુંટી લેવાય તેમ મારાં બધાં ઘરેણાં ઉતારી લેવાતાં જોઇને મારા સ્વામી રોવા લાગ્યા. હું પણ રોવા લાગી, કારણ કે મારા સ્વામી લૂંટાયેલા ભંડાર જેવા, અથવા તો કમળ જેમાંથી તોડી લીધાં છે એવા સરોવર જેવા, દેખાતા હતા. મારી ચીસો બહુ કારમી હતાં એ ભયંકર લૂંટારાઓએ મને ધમકાવી (ને કહ્યું): "બૂમો તારી બંધ કર ! નહિ તો તારા ધણીને મારી નાંખીશું." એથી હું દબાઇ ગઇ ને મારા સ્વામીનો જીવ બચાવવાની ચિંતા કરવા લાગી, અને માત્ર ધીમે ધીમે છાનાં ડુસકાં ખાવા લાગી. જોકે આંસુ તો મારી છાતી સુધી દદડી પડતાં હતાં, તો ય મારૂં રોવું તો હોઠ આગળ જ અટકી પડતું.

૯૩૯-૯૪૩. અમારા ઝવેરાતની કોથળી લૂંટારાના સરદારે જોઇ ત્યારે એ મલકાઇને બોલ્યો: "ઠીક શિકાર મળ્યો છે!" એક જણ બોલ્યો: "આખો મહેલ આપણે શોધી વળ્યા હોત, તો ય આટલું તો ના મળ્યું હોત." બીજો બોલ્યો: "જુગારમાં માણસનું ભાગ્ય ગમે એટલું ખુલે અને વર્ષોનાં વર્ષો સુધી રમે તો ય આટલું તો ભેગું ના થાય. આપણી બૈરીઓને આ બધું આપીશું ત્યારે એ શું કહેશે?" આવી વાતો કરતા કરતા એ લૂંટારા (અમને લેઇને) કિનારો છોડી વિન્ધ્યાચળની દક્ષિણ દિશા તરફ ચાલતા થયા.

૯૪૪-૯૪૭. પર્વતની ઉંડી સુંદર ખોમાં લૂટારાઓની ગુફા હતી. ત્યાં અમને બંનેને એક વેલાવડે એકઠાં બાંધીને લેઇ ગયા. કેટલાક લોક બહાર ઉભા રહીને પાણીની ભિક્ષા માગતા હતા, કારણ કે ગુફાની અંદર પાણી ખૂબ હતું. ગુફાનો દરવાજો બહુ મજબુત હતો, અને તલવારો ભાલા અને એવાં બીજાં હથિયારોવાળા લૂટારા અંદર જનાર અને અંદરથી નિકળનાર ઉપર સખત ચોકી રાખતા હતા. ઢોલ, કરતાલ, શંખ અને એવાં બીજાં વાદ્યોથી તેમજ ગાન, હાસ્ય, નાચ અને બૂમો તથા ચીસોથી થતે કોલાહલે કરીને આખી ગુફા ગાજી રહી હતી.

૯૪૮-૯૫૪. અંદર પેસતાં જ અનેક વાવટા ઉપરથી અમે પારખી લીધું કે આ તો કાળીનું મંદિર છે અને તેના બળિનો ઉત્સવ ચાલે છે. દેવીને (નિયમ પ્રમાણે.) નમસ્કાર કરવાને માટે અમે જમણી બાજુએ ગયાં તો જોયું કે (અમારા માલ ઉપરાંત) બીજો પણ માલ બીજા લૂટારા લેઈ આવ્યા હતા. બંને ટોળીવાળા સાજાતાજા પાછા આવ્યા હતા અને મોટી લૂટ લાવી શકયા હતા તેથી તેઓએ એક બીજાને પ્રણામ કર્યો ને કુશળસમાચાર પુછયા. વેલાએ એકઠાં બંધાયેલાં અને લૂટારાની ગુફામાં આવી પડેલાં અમને બેને સૌ જણ આશ્ચર્યચકિત નજરે જોવા લાગ્યાં, અને એમાંથી એક જણ બોલી ઉઠયોઃ "નરનારીઓની જે સૃષ્ટિ પહેલાં રચાઇ, તેથી અસંતુષ્ટ થઈ (તેનો નાશ કરીને) યમદેવે અંતે આ જોડું સરજ્યું લાગેછે. ચાંદો રાતથી ને રાત ચાંદાથી જેમ વધી જાય તેમ આ એક બીજાથી સુંદરતામાં વધી જાય એવાં છે."

૯૫૫-૯૫૬. અમે એ ગુફામાં જરા આગળ ગયાં અને જાણે ત્યાં સ્વર્ગ અને નરક એકસાથે જ હોય તેમ અંદરના આનંદી વસનારા અને નિરાનંદ કેદીઓને જોયા. દેવલોકના જોડા જેવું નરનારીનું જોડું અહીં આણ્યું છે, એવા સમાચાર ફેલાતાં ગુફામાંનો રસ્તો (અમને જોવાને) ઉત્સુક લોકથી, ખાસ કરીને બાળકો, વૃદ્ધો અને સ્ત્રીઓથી ઉભરાઇ ગયો.

૯૫૭-૯૬૩. શોકાતુર સ્થિતિમાં અમને આગળ લેઇ જવામાં આવ્યાં, ત્યારે કેદમાં જીવતી રહેલી સ્ત્રીઓ અમારે માટે વિલાપ કરવા લાગી, જાણે અમે એમનાં જ બાળક હોઇએ. પણ પુરૂષના જેવા હૃદયવાળી લૂટારાની એક સ્ત્રીએ મારા સ્વામીને કહ્યુંઃ "તમારૂં સુંદર મુખ લેઇને મારી પાસે આવો. (અને અમારા ચોકીદારને એણે કહ્યું:) ચંદ્ર સમાન સુંદર, અને ચંદ્રની પ્રિય સખી નક્ષત્રરાણી રોહિણીના જેવી આ સ્ત્રીને આપણી આ પૃથ્વી ઉપર લેઈ આવનાર, આ જુવાન પુરૂષને થોડો વખત અહીં ઉભો રાખો, કે જેથી લૂટારાની નારીઓ પળવાર એની સુંદરતા નિરખી લે!" એ ચાલતા હતા ત્યારે મોક્ષ પામવાને ટેવાઇ ગએલી સ્ત્રીઓ મોહવશ થઇને તેમને જોઈ રડવા લાગી. આ જોઇને હું તો સંતાપથી, ઈર્ષ્યાથી ને સાથે સાથે ક્રોધથી સળગી ઉઠી.

૯૬૪-૯૬૭. પકડાયેલી સ્ત્રીઓમાંની કેટલીક તો, જાણે એ પોતાનો જ પુત્ર

હોય એમ, શોક કરવા લાગી. કેટલીકે એમને કહ્યું: "તારા સ્વર્ગીય સ્વરૂપથી તું અમારૂં ચિત્ત ચોરી લે છે; તારી દૃષ્ટિનો સ્વર્ગીય ઘુંટડો અમને કૃપા કરીને પીવા દે!" વળી કેટલીક આંખમાં આંસુ લાવીને એમ કહેતી જણાઈ કે: "તું તારી સ્ત્રી સાથે અહીંથી વહેલો છુટકારો પામે તો ઠીક!" વળી એક જણી તો એમના સૌન્દર્યથી છેક આશ્ચર્યમૂઢ બની ગઈ ને કટિમેખળાની ઘુઘરીઓ ખખડાવી બોલાવવાના ઈસારા કરવા લાગી.

૯૬૮-૯૭૪. (મારે માટે પણ તરેહવાર વાતો થવા લાગી.) એક જુવાન નર્તકે કામાતુર થઇને કહ્યું: "આહ, આ અદ્ભુત નારીસ્વરૂપ!" કેટલાક એકબીજાને આંગળી કરી મને બતાવવા લાગ્યા, ને મારા વખાણ કરવા લાગ્યા: "એકેએક બાબતમાં એનું સૌન્દર્ય તો જુઓ! એના વેલી જેવા સુંદર શરીર ઉપર કળીઓ જેવાં એનાં સ્તન અને ફણગા જેવાં એનાં હાથ કેમ ફુટે છે એ તો જુઓ! વળી એને જોઇને પૂરે આવેલી નદી સાંભરી આવે છે; એનાં બે સ્તન તે જાણે ચક્રવાકનું જોડું બેઠું છે, (અનેક આંકડાથી શોભતી) એની કટિમેખળા તે જાણે હંસની હાર સરખી લાગે છે અને એના નિતંબ તે જાણે પ્રચંડ રેતીનાં કિનારા હોય એવા દેખાય છે. પૂર્ણચંદ્ર (ઉદયસમયે) પ્રભાતરંગે (એટલે કે રાતે રંગે) રંગાયો હોય એમ એનું સુંદર મુખ રોવાને કારણે કંઇક રાતું થયું છે. અને સર્વ હાવભાવે કરીને સુંદર અને મોહક બનતા એના રૂપથી શ્રીનું સ્મરણ થાય છે. માત્ર એના હાથમાં કમળ નથી એટલી જ ખામી છે. એના કાન જુઓ કેવા રૂપાળા છે! આંખો કેવી કાળી છે! દાંત કેવા શ્વેત છે! સ્તન કેવાં ભરાવદાર છે! જાંગો કેવી ગોળ છે! અને પગ કેવા ઘાટીલા છે!"

૯૭૫-૯૭૬. બીજા બેએક લૂટારા બોલ્યા: "ઘટતાં ઘરેણાં પહેરાવ્યાં હોય તો તો ખરેખર અપ્સરા બની જાય. ખુદ થાંભલો હોય તો ય પણ એનો સ્પર્શ કરે તો અંદરથી જાગી ઉઠે. મોટો તપસી હોય તે પણ પોતાની કઠોર તપસ્યાના ફળમાં એની વાંચ્છના કરે. ખરે (દેવરાજ) ઇંદ્ર પણ પોતાની હજાર આંખો વડે પણ એને જોતાં ધરાય નહિ."

૯૭૭-૯૭૮. પણ પરનારીને દેખી જેઓને કંઇક શરમ આવે છે એવા કેટલાક મને જોઇને સંકોચાયા ને 'અભાગણી' કે 'એ તો પરણેલી છે' એમ કહીને ચાલતા થયા. તો ય અમને બંનેને જોઇને કેટલાક લૂટારા અનુમાન કરવા લાગ્યા કે 'જરૂર આપણો સરદાર આ માણસને મારી નાખશે અને પછી એ સ્ત્રીને પરણશે.'

૯૭૯-૯૮૧. આવી આવી વાતો સૌ નરનારીઓ કરવા લાગ્યાં, પણ મારા સ્વામીનું મરણ તો સૌ અનુમાનવા લાગ્યાં અને તેથી મારી ચિંતા અસહ્ય થઈ પડી. સામાન્ય રીતે જુવાન પુરૂષો મને અને જુવાન સ્ત્રીઓ મારા સ્વામીને વખાણતી; બાકીનામાંથી કોઇએ જિજ્ઞાસાથી, કોઇએ નિરાશાથી અને કોઇએ તો કશી પણ લાગણી વિના અમારી વાતો કરી. લૂટારાની આ ગુફાની વસ્તી અમારે માટે આમ ત્રણ પ્રકારે

અભિપ્રાય આપ્યા જતી હતી તે સાંભળતાં સાંભળતાં અમે (એ રસ્તાને છેડે) સરદારને ઘેર આવી પહોંચ્યાં. એ ઘર ઉંચું હતું અને એને કાંટાની વાડ હતી.

૯૮૨-૯૯૦. આમ અહીં ડાળીઓથી બનાવેલા એક ખંડમાં અમને લેઇ ગયા. એ લોકના સરદારનું આ દિવાનખાનું હતું. પ્રસિદ્ધ વીરપુરૂષ હોય એમ એ સરદાર કુંપળો પાથરેલા આસનઉપર બેઠો હતો, ખીલેલાં પુલના મોટા ગોટાથી પોતાને પંખો કરતો હતો,-એનો એ ગોટો સોના જેવો ચળકતો હતો અને એના ઉપરના ભમરા સુંદર ગુંજારવ કરી રહ્યા હતા. જુદ્ધ કરીને જીતી આણેલાં શસ્ત્રો એ સરદારે પોતાના શરીર ઉપર ધારણ કર્યાં હતાં, અને અનેક જુદ્ધોમાં અને સંકટોમાં સાચા નિવડેલા લૂટારાઓ એની ચારે બાજુ ઉભા હતા. જેમ જમને ચારે બાજુએ ચંડાળો વીંટાઈ વળે તેમ એની ચારે બાજુએ એ લોક વીંટાઇ વળેલા હતા. એના પગની પિંડીઓ માંસના લોચાથી ભરાવદાર હતી, તેની જાંઘો કઠણ અને તેના નિતંબ ભારે હતા. અમે તો મોતની ચિંતાએ થરથરતાં થરથરતાં હાથ જોડીને તેને નમસ્કાર કર્યો. હરણના જોડાને જેમ વાઘ, એમ અમને એ તીણી નજરે જોઇ રહ્યો અને તેથી અમને વળી વધારે ચિંતા વધી પડી. પાસે ઉભેલું લૂટારાનું ટોળું અમારૂં જુવાનીનું સૌન્દર્ય ભયંકર, વાંકી દૃષ્ટિએ નિહાળવા લાગ્યું ને આશ્ચર્યચકિત થઈ ગયું.

૯૯૧-૯૯૨. વીરોની, સ્ત્રીઓની અને બ્રાહ્મણોની હત્યા તથા એવાં બીજાં પાપકર્મો કરવાથી દયામાયા નાશ પામી ગઈ છે જેના હૃદયમાંથી, એવા એ (લૂટારાના) સરદારે, બીલકુલ લાગણી વિના અમને નિહાળી લીધાં, પછી પાસે બેઠેલા એક ભયંકર લૂટારાને કાનમાં આ પ્રમાણે કહ્યું:

૯૯૩-૯૯૪. "(આપણા મંડળના) મોટેરાઓ મળીને દેવીને (કાળીને) શરદૂનો જે બળિ આપવાનો છે, તેને માટે બે આ નરનારી ઠીક પડશે. તેથી કરીને (માતાની) નવમીની રાત્રે આ જોડાનો બળિ દેવાશે. એ બેની બરાબર ચોકી કરો જેથી એ નાશી જાય નહિ."

૯૯૫-૧૦૦૭. આ શબ્દો સાંભળીને મારા હૃદયમાં ચિંતા ને મરણની બીક ફરી વળી. પેલા લૂટારાએ તો એ આજ્ઞા નમ્રતાએ માથે ચઢાવી અને અમને એના ઘરમાં લેઈ ગયો. ચોકી રાખવામાં જરા પણ ખામી આવે નહિ એટલા માટે એણે મારા સ્વામીને તાણીને બાંધ્યા. તેમને આપવામાં આવતી આવી વિટંબણાને દુઃખે મારો આત્મા બળી ઉઠ્યો, તેથી ગરુડ જેના સ્વામીને ઉપાડી ગયો છે એવી સાપણીની પેઠે કલ્પાન્ત કરવા લાગી. વિખરાઇ ગએલે વાળે ને આંખમાંથી વહી જતે આંસુએ હું એમને અને એમના બંધને બાઝી પડી, (પછી મેં લૂંટારાને કહ્યું:) "જેમ વનહાથીની સાથે (એને વળગી પડેલી) હાથણીને બાંધે તેમ આ નરોત્તમ સાથે મને પણ ભલે બાંધો, કારણ કે એમની પીઠ તરફ બાંધી લીધેલા એમના ઢીંચણ સુધી પહોંચતા હાથ મને

આલિંગન દેવાને સર્જાયા છે." (આમ કહીને) હું એમને છુટા કરવા જતી હતી એટલામાં તો એ લુટારાએ મને મારી, ધમકાવી ને ધક્કો મારી એક કોશ ખસેડી મુકી. મારા સ્વામીએ હિંમત રાખીને પોતાના બંધ અત્યાર સુધી સહન કર્યા હતા, પણ મારી આ સ્થિતિ જોઇને એમની હિંમત જતી રહી રડતા રડતા એ બોલ્યા: "અરેરે, મારે માટે તું આવી કદી ન સાંભળેલી, મરવા કરતાં પણ ભુંડી વેદના સહન કરે છે! મારા સંબંધીઓને અને મારી જાતને માટે કદી પણ નહોતું લાગ્યું તેવું આજે મારી નવવધૂને માટે લાગે છે!" આ સાંભળીને, એ જાણે બળવાન છાતી વાળો હાથી હોય તેમ ધારી એમને પેલા લુટારાએ ભોંય સાથે દબાવ્યા, જોકે એમના હાથ તો પીઠ તરફ બાંધેલા જ હતા. આમ એમને સૌ રીતે હાલતાચાલતા બંધ કરી દીધા પછી એ નિર્દય લુટારો એક લાકડા ઉપર બેઠો અને ત્યાં કાચું માંસ તથા મદિરા આરોગવા લાગ્યો.

૧૦૦૮-૧૦૧૪. મરણચિંતાએ મેં મારા સ્વામીને કહ્યું: "અરેરે, આવા દયા વિનાના સ્થાનમાં આપણે મરવું પડશે." એ પછી એ લુટારાને કહ્યું: "આ (મારા સ્વામી) કોશામ્બીના એક વેપારીના એકના એક પુત્ર છે, અને હું પોતે (ત્યાંના જ) નગરશેઠની પુત્રી છું. કહેશો એટલા હીરા, મોતી, સોનું ને પરવાળાં અમે તમને ત્યાંથી અપાવીશું. અમારા પિતા પર કાગળ લેઇને કોઇને ત્યાં મોકલો, અને એ બધું જ્યારે અહીં આવે ત્યારે અમને છુટાં કરજો." પણ એ લુટારાએ તો ઉત્તર વાળ્યો: "તમને (અમારી દેવી) કાળી આગળ બળિ દેવાનું સરદારે નક્કી કર્યું છે. જેની કૃપાએ અમારી સૌ આશા પુરી થાય છે એવી એ માયાને જો માનેલો ભોગ અપાય નહિ, તો એ ક્રોધે ભરાય. અને અમારો નાશ કરે. તેમજ જે અમને અમારી મહેનતનું ફળ, જુદ્ધમાં વિજય, ધનમાલ ને બધા પ્રકારનાં સુખ, જે અમને આપ્યા જ જાય છે તેની કૃપા અમારાથી શી રીતે તરછોડાય?"

૧૦૧૫-૧૦૨૧. આવું સાંભળીને અને મારા સ્વામીને આમ ભયંકર રીતે બાંધેલા જોઇને હું તો છાતીફાટ રડવા લાગી. સ્વામીને સ્નેહબંધને બંધાયલી હું છુટે મ્હોંએ વિલાપ કરવા લાગી. કારણ કે હવે કોઈ આશા દેખાતી નહોતી. મારી આંખોમાંથી એવાં તો અનર્ગળ આંસુ વહી ગાલ ઉપર થઇ છાતી ઉપર વહેવા મંડયાં કે કેદ પકડાયેલી બીજી કેટલીક સ્ત્રીઓને પણ રડવું આવ્યું. મેં કલ્પાન્ત કર્યું, માથું કુટ્યું, માથાના વાળા પીંખ્યા, ને છાતી કુટી (પળવાર સુખદ સ્વપ્નું આવે તો ય હું તો આમ જ રહું:) "મ્હારા વહાલા, સ્વપ્નમાં હું તમને પામી હતી, જાગો ને હું એકલી જ પાછી રોઇશ." મારી વેદનામાં આમ મેં બહુ કલ્પાન્ત કર્યું.

૧૦૨૨ કેટલાક લૂટારા ખૂબ આનંદ ઉડાવતા હતા અને વીણા ઉપર આમ ગાતા હતા:—

૧૦૨૩-૧૦૨૬ વારણહારી વાણીની પરવા કર્યાં જ વિના,
જીવનમરણને ઓળંગી સાહસ કરીને,
ધાર્યું લેવું એ જ વીરનું કામ છે.

કારણકે બીજાની પેઠે મોત તો આવવાનું,
પણ વિના સાહસે ધાર્યું મળવાનું નહિ,
માટે વેળાસર સાહસ કરવા દોડો.
જે જિત્યો છે તે જ સુખે મરે છે,
કારણકે વીરપુરુષ જ, ગયેલું સુખ પાછું આવે
ત્યાં સુધી, ઉત્સાહને તાબે રાખી શકે છે.
૧૦૨૭. સાચે જ, વીર વેદના વેઠતે વેઠતે પણ,
વીરતાથી હરકતોને ધકેલ્યે જાય, તો
સુખરૂપી નારીની સાથે આનંદ કરે છે.

૧૦૨૮–૧૦૩૩. ત્યાર પછી મારા સ્વામીએ મને કહ્યું: 'શોક કર ના, મારી વહાલી, પણ હું તને કહું છું તે સાંભળ! આ કેદખાનામાંથી નાશી છુટવું બની શકે એમ નથી જ. વળી માણસે વિના આનાકાનીએ જમદેવની આજ્ઞાને તાબે થવું જોઈએ. એ એકવાર માણસને પકડે એટલે બીજો ઉપાય જ નહિ. રાત્રે તારા ને ગ્રહને લેઇને ફરનારો આકાશનો ચંદ્ર પણ (સંપૂર્ણતામાંથી ધીરે ધીરે ક્ષય પામી આખરે બધો ય અંધારો થવાનો) દુર્ભાગ્યને તાબે થાય છે. ત્યારે સામાન્ય પ્રાણીને તો કેવડો મોટો ભો છે! સ્થળ, કાળ, વસ્તુ ને પ્રકારને અનુસરી માણસને એના કર્યા કર્મનાં ફળ મળે ને તેને અનુસરીને સુખદુઃખ મળે એ તો મહાનિયમ જ છે. તેથી મારી પ્રિયા, હિંમત હારતી ના! સમસ્ત પ્રાણીજગતમાં એવું કોઇ નથી કે જે સુખઃદુખને નક્કી કરનારા એ નિયમને ઓળંગી શકે.'

૧૦૩૪–૧૦૩૮. આ દિલાસો દેનારા શબ્દોથી મારો શોક કંઇક ઓછો થયો. પતિની સાથે બંધાયેલી હરણીની પેઠે હું બીજી કેદ થઈ પડેલી સ્ત્રીઓ તરફ જોવા લાગી. મારા વિલાપથી કેટલાકની આંખોમાંથી આંસુ વહ્યાં જતાં હતાં, અને હવે તે પણ પોતાનાં દુઃખ સંભારી રડવા લાગી. બીજી જે સ્વભાવે જ સહૃદય હતી એ તો અમારા આવતામાં જ લાગણી થવાથી રડી પડી હતી. રોતી આંખે એ પુછવા લાગી: 'તમે ક્યાંથી આવો છો? અને તમે આ લૂટારાને અભાગી હાથે કેવી રીતે પડયાં!'

૧૦૩૯–૧૦૪૨. (પાછલા ભવની કથાથી માંડીને) અમારા નશીબની સૌ કથા મેં એમને રડતી આંખે કહી સંભળાવી: હાથી નાહવા આવ્યો અને શિકારીએ એને બદલે મારા ચક્રવાકને માર્યો, અમે એ ભવમાં કેમ સુખી હતાં, કેમ હું એમની પાછળ સતી થઇ અને અમે બે વત્સનગરમાં માનવભવમાં અવતર્યા; કેમ ત્યાં ચિત્રોની સહાયતાથી અમે એકબીજાને શોધી કાઢયાં; કેમ મેં મારા પ્રિયને વિનંતી કરી, પણ એમણે ના પાડી એટલે મેં મારી સખી સારસિકાને મોકલી; અને કેમ છેવટે મછવામાં બેશી નાઠાં અને ગંગાને રેતીને કાંઠે લૂટારાને હાથે પકડાયાં (એ સૌ કહી સંભળાવ્યું).

૧૦૪૩-૧૦૪૬. (ત્યાં ઉભો હતો) એ લૂટારાને આ (બધું) સાંભળીને દયા આવી અને મારા પતિના બંધ ઢીલા કરવા એમની પાસે ગયો. પણ પેલી કેદ પકડાયલી સ્ત્રીઓને તો એણે એવી સખત ધમકાવી કે વાદળાંના કાટકાથી ગભરાઈને જેમ હરણીઓ નાસે એમ એ છુટી પડીને નાઠી. અને એ બધી જતી રહી કે તરત જ એણે મારા સ્વામીને છાનુંમાનું કહી દીધું, કે: 'તારે હવે ડરવાનું કારણ નથી; હું તમને મોત-માંથી ઉગારી લેઈશ. તમારાં જીવન બચાવવાને માટે મારા જીવનને જોખમમાં નાખીને પણ ગમે તે પ્રકારે ઉપાય કરીશ.'

૧૦૪૭-૧૦૫૦. એના મુખની આવી વાણી સાંભળીને અમારી મરણચિંતા એકેવારે ચાલી ગઈ અને (અમારા હૃદયમાં) હર્ષ વ્યાપી રહ્યો. છતાં યે છુટવાની અમારી એ આશા સફળ થાય એટલા માટે અમે ઉપવાસ કરી, અમે આજે કોઈપણ પ્રકારનો આહાર લેઇશું નહિ' એવા, જિનપ્રભુને સ્મરી, પચ્ચખાન કર્યાં; તેથી લૂટારાએ જ્યારે અમારી સામે સ્વાદિષ્ટ માંસાહાર આણી મુક્યો ને બહુ લાંબો પ્રવાસ કરવાનો હોવાથી એ ખાવાને કહ્યું ત્યારે અમે કહ્યું, કે: 'અમે એ ખાતાં નથી, માટે ખાઈશું નહિ.'

(૯. ઘેર આવવું.)

૧૦૫૧-૧૦૫૫. હવે સૂર્યભગવાનની (આથમતાં) પ્રભુતા ને તાપ ચાલ્યો ગયો, પદભ્રષ્ટ થયેલા રાજા જેવો એ દેખાયો, વાતાવરણમાંથી પાર નિકળી ગયા પછી ઉગતી વખતે દેખાય છે એવો (તાપની નબળાઇથી લાલ) દેખાવા લાગ્યો. દિવસ પુરો થયાના સમાચાર સૌ ઝાડ પણ આપવા લાગ્યાં-એ પણ નમતાં દેખાયાં અને તેમની અંદરના માળામાં પક્ષીઓ આરામ માટે એકઠાં થવા લાગ્યાં. આંખ સામે મરણ દેખીને અમે આટલું બધું રડયાં ને કકળ્યાં હતાં ને તેણે કરીને બહુ લાંબો શએલો દહાડો પુરો થયો. પૃથ્વીને આરામ આપતી તથા આકાશને શણગાર સજાવતી રાત્રિ ભવ્યરૂપે આવી. ચંદ્ર પણ પોતાનો મૃદુ, જુઈનાં ફુલ જેવો સફેદ પ્રકાશ પાડતો પોતાના કપાળમાં ચાંલ્લો (સસલાનો દાઘ) કરીને બહાર આવ્યો.

૧૦૫૬-૧૦૬૪. એવે લૂટારાની એ ગુફામાં કોલાહલ મચી રહ્યો. પીતાં ને નાચતા લૂટારા તથા કેદીઓ બુમો પાડીને, હસીને, વગાડીને અને ગાઈને શોર કરવા લાગ્યા. જ્યારે એ લોક શાન્ત થઈ ગયા ત્યારે અમારે પહેરેગીરે મારા સ્વામીના બંધ છોડી નાખ્યા ને કહ્યું: 'ચાલો, હવે હું તમને લેઈ જાઉં.' પછી કોઇ જાણે નહિ એવી રીતે અમને એ બહાર લેઈ ગયો, અને એક છુપે વનમાર્ગે આગળ ચાલ્યો. એ ત્યાં ઘણું રખડેલો તેથી ત્યાંની સૌ ગલીકુચીઓ જાણતો. એ ચારે દિશાએ નજર રાખ્યા જ કરતો. આ નીરવ પ્રવાસમાં અમને ઘણીવાર થાક પણ ખાવા દેતો. અસ્ત્રશસ્ત્ર એણે સજેલાં હતાં ને કમરે પટ્ટો કસ્યો હતો. એવી રીતે એ અમારી સાથે ચાલતો.

૧૦૬૫-૧૦૬૭. એકાદ ઝાડમાંથી થોડાંક પંખીઓ (અરધી ઉંઘમાંથી જાગીને

ઊડી જતાં અને એમની પાંખોનો અવાજ, પુંઠડી ખાઇને પડતાં સુકાં પાંદડાંના ખખડાટ જેવો સંભળાતો. વળી રાની ભેંસો, વાઘ, ચિત્તા અને જરખની બૂમો, તેમજ પંખીઓની અનેક પ્રકારની ચીસો (દૂરદૂરથી) સંભળાતી. અમે મહાભયમાં પડતું મુકયું હતું તે છતાં ય, અમે કહી શકીએ કે, વનનાં બધાં પ્રાણીઓ ને પશુપંખીઓ સારે નશીબે શાન્તિ રાખી રહ્યાં હતાં.

૧૦૬૮–૧૦૭૧. છેવટે મેં હાથીઓએ તોડી પાડેલાં ડાળ જોયાં, જેના ઉપરથી ફળફુલ તોડી લીધાં હતાં. આ અને બીજી નીશાનીઓથી જાણી લીધું કે હવે અમે વનને છેડે આવ્યાં છીએ. અને ત્યારે એ લૂટારાએ અમને કહ્યું: 'હવે તમે વનની બહાર આવ્યાં છો ને હવે કંઇ ભો જેવું નથી. પાસે જ ગામડાં આવે છે. આ મેદાનને રસ્તે તમે ચાલ્યાં જાઓ. હું પણ બીજે રસ્તે ચાલ્યો જાઉં છું. લૂટારાની ગુફામાં મારા સરદારના હુકમને અનુસરીને કેદમાં રાખ્યાં ને સંતાપ્યાં તે માટે ખમા કરજો.'

૧૦૭૨–૧૦૭૫. મારા સ્વામીએ ઉપકારની લાગણીથી લૂટારાની, અમારૂં ભલું કરનારની, આંખ સામે જોયું અને શુદ્ધ નમ્રસ્વરે કહ્યું: 'અમારે કોઇ (સહાયક) સંબંધીઓ પાસે હતા નહિ તેવી વેળાએ, તમને એવો હુકમ હતો છતાં, તમે અમારાં જીવન ઉગારી લીધાં છે. કોઇ પણ આધાર કે છત્ર વિનાનાં અને જીવનાશા હારી બેઠેલાં અમને તો એમજ લાગ્યું હતું કે અમે ફાંશીએ ચઢી ગયાં છીએ અને અમારા ગળા ઉપર (મોતની) દોરી લાગી છે, એ દોરીને તમે વીરતાથી કાપી નાખી છે. વત્સનગરમાં વસતા શેઠ ધનદેવનો પુત્ર હું પદ્મદેવ છું, એ વાતની કોઇ પણ સાખ પુરશે.'

૧૦૭૬–૧૦૭૯. અને વળી એમણે કહ્યું: 'ચાલો ત્યાં, અમે તમને સારી પેઠે બદલો આપીશું.' લૂટારાએ ઉત્તર આપ્યો: 'જોઇ લેઇશું.' (તે ઉપરથી મારા સ્વામીએ ફરી કહ્યું:) 'જ્યારે ત્યાં આવવાનું થાય ત્યારે તમને સમ છે કે, તમે અમને જરૂર મળજો. જેણે જીવ બચાવ્યો હોય તેને તેના જેવો સરખો બદલો તો કદી જ આપી શકાય નહિ, પણ તમે અમારા ઉપર કમમાં કમ એટલી તો કૃપા કરશો જ કે જેથી અમે તમારો સ્નેહભર્યો આદર કરી શકીએ.'

૧૦૮૦–૧૦૮૧. એણે ઉત્તર આપ્યો: 'તમે મારાથી સંતોષ પામ્યાં છો એ જ મારે તો ઘણું છે.' આટલું બોલ્યા પછી વળી એ બોલ્યો: 'હવે તમે તમારી મેળે ચાલતાં થાઓ.' એમ કહી એ પર્વતને રસ્તે ચાલતો થયો અને અમે મેદાનમાં રખડવા લાગ્યાં.

૧૦૮૨–૧૦૮૬. રસ્તા વિનાના મેદાનમાં મારાથી ચાલવું મુશ્કેલ થઈ પડયું. અત્યાર સુધી અમે બહુ ઉતાવળે ચાલ્યાં હતાં અને હવે તો ભુખ, તરસ ને થાકથી અકળાઈ ગઈ હતી. તેથી કેવળ સુકાઈ ગએલે મ્હોંએ ચાલતાં પગ લથડતા હતા. મારાથી જરા ય ચાલવું અશકય થઈ પડયું એટલે મારા સ્વામીએ મને પોતાની પીઠ ઉપર ઉંચકી લીધી, પણ એમને શ્રમ પડે એથી તરત જ નીચે ઉતરી પડવા મેં જોર

કર્યું, પણ મને શ્રમમાંથી ઉગારી લેવાને માટે એમણે કહ્યું: 'આપણે છેક ધીરેધીરે જઈશું. જો આ વન ધીરેધીરે આછું થઇ ગયું છે. વળી ગાયોએ ઠેરઠેર ભોંય ખોદી નાખી છે અને કોઇ કોઇ ઉકરડા પણ દેખાય છે. એ બધાથી સમજાય છે કે કોઇ ગામ પાસે જ છે, હવે તને સારી રીતે વિશ્રામ મળશે.'

૧૦૮૭-૧૦૮૯. પળવારમાં મારો ભો ટળી ગયો અને ગાયોને-ગૃહજીવનની માતાઓને-મારી સામે જ જોઇને મને આનંદ થયો. વળી કાનમાં ફૂલના ગોટા ઘાલેલા ને હાથમાં ઝાડની ડાંખળીઓ ઝાલેલા ગોવાળીઆના છોકરા પણ અમે જોયા. ઉત્કંઠાએ એમણે અમને પુછયું: 'આવે ઓતાડે માર્ગે તમે કયાંથી આવો છો?' મારા સ્વામીએ કહ્યું કે 'અમે ભુલાં પડયાં છીએ' ને પછી પુછયું:

૧૦૯૦. 'આ દેશનું નામ શું? અને (પાસેના) નગરનું નામ શું? તમારૂં ગામ કયું અને અહીંથી એ કેટલે છેટે છે?'

૧૦૯૧. એમણે ઉત્તર વાળ્યો: 'અમારૂં ગામ ખાયગ છે; અહીં આ વન પુરૂં થઇ રહે છે, એથી બીજું કંઈ વધારે અમે જાણુતા નથી.'

૧૦૯૨-૧૦૯૪. થોડે આગળ ગયાં ત્યાં તો ખેડેલી ભોંય આવી અને મારા પ્રિય બોલી ઉઠયા: 'પણે પેલી જુવાન નારીઓ ગામમાંથી નિકળી વનમાં પાંદડાં વીણવા જાય છે. મારી સુજાહનુ પ્રિયા, સફેદ કટિમેખળા નીચે એમની ગોળ રાતાશ પડતી જાંગો કેવી સુંદર દેખાય છે!' આવાં આવાં સ્નેહભર્યાં વચનો બોલીને મારા સ્વામીએ મારો કલેશજનક થાક ઉતારવા પ્રયત્ન કર્યો.

૧૦૯૫-૧૦૯૭. પછી અમે ગામની જરાક એક બાજુએ આવેલા તળાવ ઉપર આવી પહોંચ્યાં, તેના સ્વચ્છ પાણીની અંદર માછલાં હતાં ને ઉપર કમળફુલ હતાં. અમે નિશ્ચિંતમને ગામડાના આ તળાવમાંથી કમળે સુવાસિત કંચન જેવું પાણી ખોબે ખોબે પીધું. ત્યાર પછી વળી અમે (છછરા) પાણીની અંદર ઉતર્યાં અને ઠંડું પાણી અ-મારા (મ્હોં) ઉપર છાંટયું, પછી થાક તથા ચિંતાથી મુક્ત થઇને ગામ તરફ ચાલ્યાં.

૧૦૯૮-૧૧૦૦. ત્યાં તો અમે સુંદરીઓને ઘડામાં પાણી ભરી જતી જોઈ, એમણે કેડ ઉપર ઘડા લીધા હતા અને બલૈયાંથી શોભતા હાથ (ઘડાને) ગળે વીંટાળી રાખ્યા હતા. અને મારા મનમાં પ્રશ્ન ઉઠયો: 'ત્યારે આ ઘડાએ એવું તે શું પુણ્ય કર્યું હશે કે એ નવનારીઓની સોડમાં પુરૂષો હોય એવા બેઠા છે અને એમના હાથમાં સુંદર આલિંગન પામ્યા છે?' પણ એ સુંદરીઓ તો એકીટસે આશ્ચર્યદૃષ્ટિએ અમારી સામે જોઈ રહી.

૧૧૦૧-૧૧૦૭. જે ગામમાં અમે આવ્યાં હતાં તેની ચારે બાજુએ કળાવિનાની અને છતાં યે સુંદર વાડ હતી. નારીઓ જાણે પહેરા ઉપર ઉભી હોય એવી એ દેખાતી હતી, કારણકે નારીઓનાં સ્તન જેવાં તુંબડાં એના ઉપર લટકતાં હતાં. જ્યાં આ-

મળથી ગામની સ્ત્રીઓ અમને જોતી હતી, ત્યાં આગળથી એ વાડ કમનસીબે ભાગેલી હતી તેથી એ સ્ત્રીઓ આશ્ચર્યથી અમારી સુંદરતા જોતાં આંખ પણ ફરકાવતી નહિ, અને જોવાની સ્પર્દ્ધામાં અંદરની બાજુએથી (વાડ) ઉપર પડતી ને તેને હડસેલતી અને કોલાહલ મચાવતી. આમ (વાડના) ભાગવાયો અવાજ થતો એટલું જ નહિ, પણ (ઉત્સુકતાએ બહાર આવેલી) આધેડ સ્ત્રીઓને જોઇને કેટલાક કુતરા ચમકતા ને ઉંચાં મોં કરીને ભસવા લાગતા. અમને જે સ્ત્રીઓ જોતી હતી તેમાંની કેટલીક તો માંદી ને ફીકી દેખાતી હતી, એમને તાવ આવતો હતો અને (દુબળી પડી જવાથી) એમનાં બલૈયાં ઢીલાં પડી ગયાં હતાં. એમની પાછલી બાજુએ ધોળો પોશાક પહેરેલી (તંદુરસ્ત) તરૂણીઓ કેડમાં છોકરાં લેઇને પોતાના ઘરમાંથી બહાર નિકળી આવી હતી. આવા આવા અનેક દેખાવ જોયા અને જાણ્યા, અને આમતેમ જોતાં જોતાં અમે ધીરધીરે (એ ગામની) શેરીમાં પેઠાં.

૧૧૦૮–૧૧૧૦. વનમાં હતાં ત્યારે ગમે એમ કરીને જીવ બચાવવાની ખાતર અને વનમાંથી નિકળી જવાની ખાતર, (જે પગે હું ચાલતી હતી તે) પગના ઘાની કે ભૂખની કે તરસની કે થાકની મેં (બહુ) પરવા કરી નહોતી, પણ હવે તો ભો ટળી ગયો હતો ને ભવિષ્ય નક્કી થઈ ગયું હતું, તેથી ભૂખ તરસ ને થાક વિષેના મને વિચાર આવ્યા ને મેં મારા સ્વામીને કહ્યું: 'પ્રવાસીને કરવું પડે છે એમ આપણે પણ ખાવાનું માગીએ.'

૧૧૧૧–૧૧૧૭. જેમનું સો ધન લૂટારાએ લૂટી લીધું હતું એવા મારા સ્વામી બોલ્યા: 'જેમને અનગ્ર કુળાભિમાન હોય છે તેમને તો, ગમે એવા સંકટમાં આવી પડયા છતાં, લોકની પાસે ભીખારીને વેશે જવાનું ભારે પડે છે. ગામના લોક પાસે જઇને ઉભો રહું એ તો મને શરમ ભરેલું ને નીચું જોવા જેવું લાગે. કારણ કે (ભીખારીની પેઠે) આમ ઉભા રહેવું એ તો જેનામાં કંઇક લાગણી છે એવો માણસ, એનું બધું જતું રહ્યું હોય અને વગડામાં દુઃખે ઘેરાયો હોય તો ય, પસંદ ન જ કરે. જે જીભ દુઃખને સમયે ફરિયાદ કરતાં સંયમમાં રહે એ જીભ ભીખ માગવાનું શી રીતે કબુલ કરે! અને છતાં યે, મારી પ્રિયા, એ અભિમાન હોવા છતાં યે તારે માટે ગમે તે કરતાં મ્હણું અચકાઇશ નહિ; તેથી આ શેરીના શણગારરૂપ આ મંદિરમાં તું થોડીવાર થાક ખા; તારે માટે ખાવાનું શી રીતે લાવવું એનો હું વિચાર કરૂં છું.'

૧૧૧૮–૧૧૨૧. ચારે બાજુએથી ખુલ્લું અને દરેક ખુણાએ થાંભલાને ટેકે રહેલું એવું એ મંદિર હતું અને ત્યાં પર્વને દિવસે વંઠેલા જુવાનીઆ મેળો ભરતા. (વનમાંથી નિકળ્યા પછી જે ખેતરો આવ્યાં હતાં તેની આ બાજુની સીમા ઉપર જ આવેલા) આ મકાનના ખંડમાં અમે પેઠાં. એ મુકામ પ્રવાસીઓને ઉતરવા (ગામ લોકોએ) કાઢ્યો હતો. તેમાં (ગામના) ગૃહસ્થો (જગતની નવીજુની જાણવાની ઈચ્છાએ) અને વળી

ગામનાં છોકરાં (રમવા માટે) એકઠાં થતાં. વનમાં મધા પ્રકારનાં બીજ અને પ્રકર્ષ જાળવીને સંઘરી રાખનાર, (રાજા) દશરથનાં સતીપુત્રવધૂ, જગત્પ્રસિદ્ધ સીતાજીનું સ્મરણ કરીને જમીન ઉપર એક ચોકખી ને ડાંગરનાં કણસલાં જેવી ચળકતી જગાએ બેઠાં.

૧૧૨૨–૧૧૨૯. એવામાં તો ખોડખાંપણ વિનાના બાંધાના એક સુંદર જુવાનને ચપળ સિંધી ઘોડા ઉપર બેશીને આવતો અમે જોયો. એણે બહુ જ નરમ પોળાં સુતરેલ કપડાં પહેર્યા હતાં. તેની આગળ સિપાઈઓ અને બીજા માણસો ઉતાવળે પગલે ચાલતા હતા. હું જરૂર (એની નજરમાં) એક પુરૂષની સોબતમાં નગરનારી જેવી દેખાતી હોઇશ! પણ હું તો શરમાયા વિના અમારા સીતામંદિરના અષ્ટકોણ થાંભલાને અઢેલીને ઉભી રહી. કુલ્માષહસ્તી (એ અશ્વારનું નામ એવું હતું) અમારા મંદિરની ડાબી (દેવના માનમાં) બાજુએ થઈને ચાલ્યો, પણ મારા સ્વામીને દેખતાં જ તે એકદમ ઘોડા ઉપરથી છલંગ મારીને ઉતરી પડયો. એ મારા સ્વામીને પગે પડયો ને ઉંચે સ્વરે રડી પડીને બોલ્યોઃ ' હું તમારા ઘરમાં બહુ દહાડા રહ્યો છું.' મારા સ્વામીએ એને ઓળખ્યો કે તરત જ એને એ આવેગથી ભેટી પડ્યા ને પુછવા લાગ્યાઃ 'તું અહીં ક્યાંથી! (મારા પિતા) શેઠ કુશળ છે? મારાં બા ને બીજાં સૌ આપણાં સંબંધી ને મિત્રો કુશળ છે!"

૧૧૩૦. મારા સ્વામીની સામે એ જમીન પર નમીને બેઠો અને પોતાના જમણા હાથથી એમનો ડાબો હાથ ઝાલી સમાચાર કહેવા લાગ્યોઃ

૧૧૩૧–૧૧૪૨. "નગરશેઠના ઘરમાં મોટે મળસ્કે ખબર પડી ગઈ કે દીકરી દેખાતી નથી ત્યારે એની સખીએ (સારસિકાએ) તમારી પાછલા ભવની બધી કથા કહી સંભળાવી; અને તમે કેમ તૈયારી કરીને નાશી ગયાં એ વાત પણ એણે કહી. પછી તરત જ નગરશેઠ તમારા પિતા પાસે ગયા અને બોલ્યાઃ ' હું કંઇક કઠોર થયો હતો એને માટે કૃપા કરીને મને ક્ષમા આપશો. મારા જમાઈની (હવે એમને જમાઈ માનીશ) શોધ કરાવો! તરત જ એ ઘેર આવે તો ય એમને (મારાથી) બીવાનું કારણ નથી. એ બિચારો જુવાન પરદેશમાં અજાણ્યા લોકની વચ્ચે શું કરશે?' ત્યાર પછી એમણે (તમારા પિતાને) શેઠને તમારા પાછલા ભવની બધી કથા અથથી તે ઇતિ સુધી, જે પ્રમાણે એમણે સખી પાસેથી સાંભળી હતી તે પ્રમાણે, કહી સંભળાવી. અને તમારી કોમળ હૃદયની માતા તો તમે આમ અકસ્માત્ અળગા થઈ ગયા તેથી શોકમાં ડુબી ગયાં, અને એવું છાતીફાટ રડવા લાગ્યાં કે પાસે બેઠેલાંને પણ રડવું આવ્યું. આખા વત્સનગરમાં એક મોંઢથી બીજે મોંઢે એમ સૌ જગાએ વાત જણાઈ ગઇ કે શેઠના દીકરાને ને નગરશેઠની દીકરીને પોતાનાં (સહ)જીવનની કથા યાદ આવી છે. હવે શેઠે ને નગરશેઠે તમને ખોજી કાઢવાને ચારે બાજુ અનેક માણસો મોકલ્યા છે; મને પણ સવારમાંજ પ્રણાથક (નામે નગર) તરફ તમારી પુછપરછ કરવા

મોકલ્યો હતો, કારણ કે મારા પિતા ત્યાં રહે છે; પણ ત્યાં તમારો કશો પત્તો લાગ્યો નહિ. છતાં યે મેં વિચાર્યું કે જેમની મિલ્કત નાશ પામી હોય છે, કે જેમને માથે બીજાં સંકટ આવી પડ્યાં હોય છે, અથવા જેમણે અપરાધ કર્યો હોય છે, કે જે કઠણ જાદુ-વિદ્યા શિખ્યા હોય છે (એમને પ્રયોગ કરવા માટે વનમજીની સામગ્રીઓની જરૂર પડે છે), તેમને વનવગડાના પ્રદેશમાં ફરવાનું ગમે છે. તેથી એવે એવે ઠેકાણે તપાસ કરવા ને નજર રાખવા ગયો હતો અને અંતે અહીં આવી પહોંચ્યો છું. હવે અહીં મારા શ્રમનો બદલો આપ્યો છે. તમારા ઉપર શેઠે અને નગરશેઠે નિજહાથે લખેલા આ કાગળો આપ્યા છે. ”

૧૧૪૩-૧૧૪૭. તરત જ માથું નમાવીને મારા સ્વામીએ પત્રો લીધા અને પોતાના મિત્રને જણાવ્યું કે ‘એ થાક ખાવાને ત્યાં બેઠી છે.’ કાગળો ઉઘાડીને (પોતે પ્રથમ વાંચીને) ધીરે ધીરે વાંચવા લાગ્યા, રખેને એમાં લખેલું કંઈ છાનું ઉતાવળે વાંચી ના નંખાય. કાગળોની બધી મતલબ જાણી લીધા પછી, એમણે એ કાગળો (કશું છુપાવવાનું હતું નહિ તેથી) મોટેથી વાંચી સંભળાવ્યા; એટલે હું પણ એથી વાકેફગાર થઇ. કાગળો સાંભળ્યા તે પ્રમાણે તો જરા યે ક્રોધ વિના એ લખાયા હતા અને પુષ્કળ વાત્સલ્યભાવ એમાં બતાવ્યો હતો; વારંવાર લખ્યું હતું કે: ‘ ઘેર આવો!’ આથી મારી ચિંતા તો એકેવારે વેગળી થઈ ગઇ અને મારા હૈયામાં આનંદઆનંદ વ્યાપી રહ્યો.

૧૧૪૮-૧૧૫૫. એટલામાં કુલ્માષહસ્તીની આંખો મારા સ્વામીના હાથ ઉપર પડી. એમના એ હાથને (લૂટારાની ગુફામાં) બહુ સખત બંધને બાંધ્યાથી સોરાયા હતા ને તેથી જુદી જ જાતના દેખાતા હતા, વળી સુજી પણ ગયા હતા. અને એણે (એમને) કહ્યું: ‘ રણક્ષેત્રમાં ઉતરેલા જોદ્ધાના જેવા તમારા હાથ હાથીની સુંઢ સમાન બળવાન છે અને સાથે સાથે અનેક ઘાથી જુદા જ પ્રકારના ને સુજેલા દેખાય છે એવું જે મેં સાંભળેલું તે વાત ત્યારે ખરી કે ? ’ તરત જ, અમે કેવાં કેવાં ભયંકર દુઃખ (લૂટારાની ગુફામાં) વેઠ્યાં હતાં એ એને કહી બતાવ્યું. પછી ગામમાં સૌથી સારે ઘેર એ અમને, આરામ થાય એટલા માટે, લેઈ ગયો. એ ઘર બ્રાહ્મણનું હતું. બ્રાહ્મણે અમારી સાથે સંબંધ રાખી શકે એવી સ્થિતિના અમે હોવાથી એ બ્રાહ્મણકુટુંબમાં (બ્રાહ્મણ) સરખો આદર પામ્યાં, પાણીના કરવા વાપરી શક્યાં; વળી હાથ ધોવાને ચોકખું પાણી મળ્યું અને પછી તરત જ સ્વાદિષ્ટ ભોજન અમને જમાડ્યાં; અમે ઉપકાર માન્યો કે અમને આવી પ્રભુની પ્રસાદી મળી. અમે હાથ મોં ધોઇને અમારા પગના ઘામાં ગરમ ઘી મુક્યું, અને ત્યાર પછી એ કુટુંબમાંથી વિદાય લેઈ નિકળ્યાં.

૧૧૫૬. આમ ફરી અમે હતાં એવાં થઈ ગયાં ને હવે બંને જણાં ઘોડા ઉ-

પર ચઢ્યાં. કુલ્માષહસ્તી અને તેના સિપાઇઓ તથા માણુસોને લેઈને ઘર તરફ અમે ચાલ્યાં.

૧૧૫૭–૧૧૭૭. પહેલાં તો અમે પ્રણાશક નગર ભણી ચાલ્યા. એ નગર એવું તો સુંદર છે કે એને આંખા પ્રદેશનું મોતી અને ભાગ્યદેવીનું સ્થાન કહેવું જોઇએ. પોતાની સખીને ઉતાવળી ઉતાવળી મળવા જતી, ને નીચાણના પ્રદેશમાં બે કાંઠે વહેતી, ને પીવા જેવા સ્વચ્છ પાણીવાળી તમસા નદી (માર્ગમાં આવતી હોવાથી) અમે મછવામાં બેશી ઓળંગી ગયાં એટલે અમે પ્રણાશક નગરથી શોભી રહેલા એ બે નદીઓના સંગમસ્થાનમાં તે ને તેજ દિવસે આવી ઉભાં. અને કુલ્માષહસ્તીએ (ઉતાવળે) ગોઠવણ કરી દીધા પ્રમાણે ધોરીમાર્ગે થઇને મહા આનંદે અમારા કુળમિત્રના સંબંધીને ઘેર આવી ઉતર્યાં. ત્યાં અમારો સ્નાનથી, ભોજનથી અને તેલમર્દનથી સારી રીતે સત્કાર થયો અને ત્યાર પછી વળી રાત્રે સુંદર નિદ્રાનો લાહવો મળ્યો. બીજે દિવસે સવારમાં ઉઠીને દાતણપાણી કર્યાં, નાહ્યાં, દેવની ઉપાસના કરી ને પછી થાક, ભય અને ભૂખથી મુક્ત થઇને વળી પાછાં પથારીમાં સુતાં. તે દરમિયાન કુલ્માષહસ્તીએ અમે ઘર તરફ આવીએ છીએ એવા સમાચાર આપવા, કોશામ્બીમાં અમારા માબાપ ઉપર કાગળ લખી નાખ્યા. જેટલા દિવસ અમે ત્યાં રહ્યાં તેટલા દિવસમાં ખાનપાન વગેરે સર્વ પ્રકારની અમને જોઈતી સામગ્રીથી અમારાં દુઃખની નિશાની સુદ્ધાં ભુંસી નાંખવા એ લોકોએ પ્રયત્ન કર્યો. થોડા દિવસ પછી જ્યારે અમે પૂરેપૂરા સાજા થયા ત્યારે કોશામ્બી તરફ જવાની અમે ઈચ્છા દેખાડી. પ્રવાસની સૌ તૈયારીઓ થઇ. સ્ત્રીઓએ બહુ યે ના પાડી, તો ય ઘરનાં બાળકોને મેં એક હજાર કાર્ષાપણની (રકમની) બક્ષીસ કરી, જેમાંથી અમારે માટે થયેલું લગભગ બધું ખર્ચ વળી જાય. મારા સ્વામી એટલી બક્ષીસ આપતાં શરમાતા હતા, કારણ કે એવા સ્નેહભર્યા આદરની એવી કિંમત એમને બહુ ઓછી લાગતી અને એવી વાત કરતાં એમને સંકોચ થતો. (જતી વખતે મળી લેવાને) એ સ્નેહીઘરની સૌ સ્ત્રીઓને મેં અને સૌ પુરૂષોને મારા સ્વામીએ મળી લીધું. પ્રવાસમાં જરૂર પડે એવી સૌ ચીજો ને ઓષધો સુદ્ધાં અમે સાથે લેઇ લીધાં, જેથી માર્ગમાં કશી અડચણ પડે નહિ. ત્યાર પછી મારા સ્વામી સુંદર ઘોડે ચઢ્યા, તે ઘોડો મારા રથની પાછળ ચાલતો હતો. શેઠે અને નગરશેઠે મોકલેલા ચાકરો જ માત્ર નહિ. પણ વળી (એ ચાકરો સાથે કોશામ્બીથી આવેલો એ અમારો ગૃહમિત્ર) કુલ્માષહસ્તી અને તેનાં માણુસો પણ ચારે બાજુ વીંટાઈ વળીને ચાલતાં. તે ઉપરાંત ધાડા પડેલી ત્યારે પોતાની શૂરવીરતા અનેકવાર દેખાડેલી એવા માણુસોને હથિયારબંધ કરીને અમારે રખવાળે મોકલ્યા હતા. આમ અમે ચૌટામાં થઇને પ્રણાશક નગરમાંથી નિકળ્યાં ત્યારે અમારા ભપકાથી સૌ વસ્તી આશ્ચર્યમૂઢ થઇને જોઈ રહી. અને અમારા મિત્રનો અડધો અને અમારો પોતાનો અડધો એમ બેવડો કઠલો લેઈને, કોઈથી ન ઉતરે એવા ભપકાથી, અંતે (એમની નજર) બહાર અમે નિકળી ગયાં ત્યાંસુધી રાજમાર્ગને રસ્તે જતાં હજારો લોક અમારી ઉપર તાકીને જોઈ રહ્યા.

૧૧૭૯–૧૧૮૨. હવે મારા સ્વામીએ ગાડીવાનને કહીને મારો રથ ઉભો રખાવ્યો અને પોતે મારી પાસે અંદર આવ્યા; ત્યારપછી વળી પાછો સાથ ચાલ્યો. (માર્ગમાં) પછી ઉંચી ડાંગરનાં ખેતર, વિસામાના ચોતરા તથા પરબો જોતાં ધીરેધીરે અમે વાસાલિક નામે ગામ આવી પહોંચ્યાં. ત્યાં પર્વતના (લીલોતરીથી ઢંકાયેલા) શિખર જેવું એક પ્રાચીન વડનું ઝાડ જોઇને અમને આનંદ થયો. કોઇપણ પ્રવાસીને આનંદ આપે એવું એ મનોહર ઝાડ હતું. ખુબ પાંદડાવાળી એની ઘટામાં પંખીઓનાં ટોળેટોળાં એના ઉપર બેઠાં હતાં. અમારો ગૃહમિત્ર એ જોઇને બોલ્યો:

૧૧૮૩–૧૧૮૫. 'આપણા ધર્મના પ્રવર્તક વર્ધમાન (મહાવીર–૨૪ માંના છેલ્લા તીર્થંકર) સંસારનો ત્યાગ કરીને જ્ઞાન પામ્યા તે પૂર્વે અહીં એમણે વાસ કર્યો હતો અને તેથી આ જગ્યાનું નામ વાસાલિક પડ્યું. પરિણામે એ જિનેશ્વર ભગવાનના સ્મરણમાં હજારો દેવ, કિન્નર ને માણસો આ વડના ઝાડની પૂજા કરે છે.'

૧૧૮૬–૧૧૮૮. આ વચનો સાંભળીને અમે બંને પુન્યભાવે ને આનંદભર્યે હૈયે રથમાંથી નીચે ઉતર્યાં. જિનભગવાનના સ્થાનકનાં દર્શન કરવાને અમને ઇચ્છા થઇ અને વડના મૂળને અમારા કપાળવડે બહુ શ્રદ્ધાથી અને નમ્રતાથી સ્પર્શ કર્યો. હાથ જોડીને હું બોલી: 'હે ભાગ્યશાળી વૃક્ષ, તું ધન્ય છે કે જિનભગવાન મહાવીર તારી છાયામાં આવી રહ્યા.'

૧૧૮૯–૧૧૯૦ એ વડની એમ પૂજા કર્યા પછી અને ત્રણવાર એની પ્રદક્ષિણા ફર્યા પછી પાછાં અમે તાજાં થઇને વિચાર કરતાં ફરી રથમાં ચઢ્યાં. જ્યાં (ભગવાન) વર્દ્ધમાને શાન્તિએ વાસ કર્યો હતો તે સ્થાનનું દર્શન કર્યાથી મને ઘણો આનંદ અને ઉલ્લાસ થયો અને લાંબા સમય સુધી હું એ વિચારમાં નિમગ્ન થઈ રહી.

૧૧૯૧–૧૧૯૫. સ્વામીની પડખે (બેશી) ગૃહિણીનું સુખ અનુભવતી અનુભવતી એકાકીહસ્તી અને કાળી એ ગામડાં વટાવી ચાલી. પછી રાતવાસો કરવાને અમે, જેની હવેલીઓ વાદળાંએ અડકે છે એવી બહુ વસ્તીવાળી શાખાંજના નગરીમાં, આવી પહોંચ્યાં. અહીં અમે (મારા સ્વામીના) મિત્રને ત્યાં આનંદથી ગયાં, એની કૈલાસના શિખર જેવી હવેલી એ નગરીના અનન્ય શણગારરૂપ હતી. અમારે માટે નાહવાની, ખાવાની અને સુવાની ઉત્તમ ગોઠવણ કરવામાં આવી હતી. અમારા સમસ્ત સાથને પણ જમાડ્યો, વળી સારથિની અને બળદની પણ સારવાર કરી. આમ અમે બહુ સુખમાં તે રાત ગાળી. પછી સવારમાં મોં તથા હાથપગ ધોઇને સૂરજ ઉગતાં ત્યાંથી વિદાય લીધી.

૧૧૯૬–૧૨૦૨. વિવિધ પંખીઓનાં અને ભમરાનાં ટોળાં (ઉડતાં) દેખાતાં; અમે વાતો કર્યે જતાં હતાં તેથી કેટલો પંથ કપાયો, એ તો અમને જણાયું ય નહિ.

કુલ્માષહસ્તીએ આગળથી કહી રાખ્યું હતું તે પ્રમાણે ગામ અને નગરના રસ્તાની (માપ દેખાડવા) નિશાનીરૂપ ઉભાં રહેલાં પવિત્ર ઝાડોને અમે દૂરથી જોઇ લેતાં. પાછું એક બીજું વડનું ઝાડ દેખાયું; તેની કંઇક પાસે આવ્યાં ત્યારે તેનાં લીલાં પાનને લીધે તે પૃથ્વીનું જાણે શ્યામ, ભવ્ય, પ્રકાણ્ડ સ્તન હોય, એવું દેખાતું હતું; પ્રવાસીઓના સંઘને વિસામો કરવાનું એ સ્થાન હતું, રસ્તાના શણગારરૂપ હતું અને (વળી) કૌશામ્બીના સીમાડાનું મોતી હતું. ડાળડાળીઓની ઘટામાં સેંકડો પંખીઓ રહેતાં; વળી સુવાસિત ફુલકળીઓ અનુપમ શોભા આપતી. ઉપર મેઘ જેવા સફેદ પટ ઝુલતા હતા અને નીચે ઉત્સવહાર પહેરાવેલા અને પાણીએ ભરેલા કોરા ઘડા મુકયા હતા. (અમને ત્યાં સુધી સામે લેવા આવેલાં) ઓળખીતાંએ અને સગાંવહાલાંએ અમને ત્યાં વધાવી લીધાં અને અનેકાનેક આશીર્વાદ આપ્યા.

૧૨૦૩–૧૨૦૭. અમે ત્યાં નાહ્યાં અને તેથી અમારો થાક ઉતરી ગયો. પછી અમે અમારાં સાસરીઆંની પાસે ગયાં અને એમનાં ટોળાંમાં આનંદે જઇ બેઠાં. હવે મારે રથમાં બેસવાનું ન હતું ને તેથી ઘોડે ચઢી. મારી પાછળ (મારી સાચી સખી) સારસિકા અને (મને માન આપવાને આવેલો) આયાઓ, ખોજાઓ, દાસીઓ, જુવાનીઆઓ અને બીજાઓનો સાથ ચાલ્યો. પણ ખાસ કરીને મારા સ્વામી પોતાના મિત્રને (કુલ્માષહસ્તીને) લેઇને બીજા ઘોડાઓ જોડેલા સોનાના રથમાં બેશી સાથે ચાલ્યા. વળી નણંદો અને ભોજાઇઓ પણ પોતાના દાસદાસીઓના સાથ સાથે અમને મળવાને આવી હતી, તે પણ સુંદર (બળદ–)ગાડીઓમાં બેશીને મારી સાથે (પિતાના) નગર તરફ ચાલી.

૧૨૦૮–૧૨૧૨. પ્રખ્યાત માણસનાં સુખદુઃખ, જવુંઆવવું, પ્રવાસે નિકળવું ને પાછું ઘેર આવવું, સૌ લોકને તરત માલમ પડી જાય છે. એવી રીતે અમે પણ ઉંચા પ્રભુદ્વારમાં (ઉતાવળે ઉતાવળે તૈયાર કરેલા વિજયતોરણમાં) થઇને કૌશામ્બી નગરમાં પ્રવેશ્યાં. ત્યાં આગળ જમણે હાથે એક નરપંખીનો અવાજ સંભળાયો અને એમ સારા શકુન થયા. અને જે રાજમાર્ગે થઇને અમે ચાલ્યાં તે માર્ગ અમને આવકાર આપવાને સફેદ સુગંધિત ફુલોથી શણગારી કાઢ્યો હતો, અને ઠેઠ સુધી રસ્તાની બેઉ બાજુની ઉંચી હવેલીઓની હારો ઉપર અને સુંદર દુકાનો આગળ અમને જોવાને આતુરતાથી એકઠાં થયેલાં પુરૂષો અને સ્ત્રીઓની ભીડ જામી હતી. સરોવર ઉપરનાં કમળફુલોની સપાટી પવનથી ઉંચીનીચી થાય એવો દેખાવ લોકનાં કમળફુલશાં મુખોને લીધે અમને દેખાવા લાગ્યો.

૧૨૧૩–૧૨૧૬. મારા સ્વામીને માન આપવાને માટે રાજમાર્ગ ઉપરના લોકોએ સ્નેહભરી દૃષ્ટિએ એમની તરફ જોયું, એટલુંજ નહિ પણ હાથ જોડીને નમસ્કાર કર્યા. વાદળાંથી ઢંકાઈ રહ્યા પછી જેમ શરચ્ચંદ્ર આવે એમ પરદેશથી પાછાં અમને ઘેર આવેલાં

જોઇને સૌને આનંદ થયો, એટલું જ નહિ પણ સોએ એમને આશીર્વાદ આપ્યા ને તેમાં પણ બ્રાહ્મણોએ અગ્રેસર થઇને. અને હૃદયના આ ઉમળકાનો એ કશો લુખો ઉત્તર આપી શકયા નહિ. બ્રાહ્મણશ્રમણો અને એવા પૂજ્ય લોકને એમણે પણ હાથ જોડીને નમસ્કાર કર્યા; મિત્રોને આલિંગન દીધાં ને બીજાઓને ધન્યવાદ દીધો.

૧૨૧૭–૧૨૨૦. કોઈ કોઇ બોલવા લાગ્યા: 'નગરશેઠના મહેલ આગળના ચિત્રમાં ચીતરેલો ને જેને શિકારીએ વીંધી નાખ્યો એ ચક્રવાક પેલો રહ્યો. અને તેમાં ચીતરેલી અને જે સતી થઇને નગરશેઠને ઘેર દીકરી થઇને અવતરી છે તે આ જ આ (ભાગ્યશાળી) વધૂ છે. પ્રારબ્ધે ચિત્રમાંનાં એ બેને કેવી સુંદર રીતે એકઠાં આણી દીધાં છે ! બીજા કોઇ બોલવા લાગ્યા: ' કેવો સુંદર છોકરો ! ' બીજાએ ટાપસી પુરી: ' કેવું સાચું ! ' વળી બોલાયું: ' કેવું જુગતે જોડું ! ' ' એ એને શોભતો જ છે ! '— ' ઉસ્તાદ છોકરો છે ! '

૧૨૨૧–૧૨૨૫. એમ સૌ લોકોએ (જુદી જુદી રીતે) મારા પ્રિયતમને વખાણ્યા, પછી અમે ધીરેધીરે એમને મહેલે સાથે આવી પહોંચ્યાં, ત્યાં અમને દાસદાસીઓએ પગ ધોવાનું પાણી આપ્યું અને સુંદર પાત્રો આણીને તેમાંથી દહીં, ચોખા અને ફુલ દેવને ચઢાવ્યાં; પછી અમને માળાઓ અને કમળદંડા આપ્યા ને ત્યાર પછી હું મારા સ્વામીની સંગે બારણામાં પેઠી. હું ભૂલથી જરાક પાછળ પડી ગઇ ને ઉતાવળે ચાલીને પાછી સાથે થઈ ગઈ; અને અમે મારા સસરાના મેહેલના, લોકની ભીડવાળા સુંદર અને વિશાળ ચોકમાં આવ્યાં.

૧૨૨૬–૧૨૩૨. મારા પિતા (નગરશેઠ) પોતાના કુટુંબને લેઇને બીજા વેપારીઓ સાથે આગળથી જ આવીને સાંગામાંચી ઉપર બેઠા હતા. કંઇક સંકોચથી અમે સૌને ચરણે માથું મુકયું, અને એમણે સ્નેહાળ દેવોની પેઠે અમારા ઉપર દૃષ્ટિ કરી. એમણે અમને આલિંગન આપ્યાં, કપાળ ઉપર ચુંબન કર્યા, એમની આંખમાં હર્ષનાં આંસુ આવ્યાં ને ક્યાંય સુધી અમારી સામે જોઈ રહ્યાં. મારી માતા અને સાસુએ પણ અમને હૈયાના ઉમળકાથી આલિંગન આપ્યાં અને રોઇ પડ્યાં–એમની આંખોમાંથી આંસુ નિકળી પડયાં અને સ્તનમાંથી ધાવણ નિકળી પડયું. પછી મારા (આઠ) ભાઈઓને એકેએકે પગે લાગી અને ભક્તિભાવે મારૂં મસ્તકકમળ એમની આગળ નમાવતી ચાલી ત્યારે એમની પણ આંખમાં આંસુ તરી આવ્યાં. વળી જે સૌને હું સ્નેહથી સંભારતી તે સૌ આવી મળ્યાં. મારી દાસીએ અને સખીએ (સારસિકાએ) પ્રથમથી જ એને આડ નીચે વધાવી લેવા આવ્યાં હતાં ત્યારે) પોતાનાં આંસુ રોકી રાખ્યાં પણ અત્યારે છુટથી વહેતાં મુકી દીધાં, (કારણ કે થોડી વાર સુધી) નહિં ત્યાં સુધી સમે એવું નહોતું; ઝાકળનાં મોતી જેના ઉપર પડ્યાં છે એવી ફુલ પડયા હતા. હું (બે) દેખાતી.

૧૨૩૩-૧૨૩૮. નગરશેઠની અને વેપારીઓની સૂચનાથી પછી (ભેટ મુકતી વખતે લાવવામાં આવે છે એવા પ્રકારનો) એક ઘડો આણ્યો. અમને અમારે આસને બેસાડ્યા પછી સૌ સંબંધીજનોએ અમારા આજ સુધીના જીવન વિષેની વાતો પુછવા માંડી. ત્યારે મારા પ્રિયે અમને જે અનુભવ થયો હતો તે સૌ (અથથી ઇતિસુધી અનુક્રમે) એમને કહી સંભળાવ્યોઃ અમે એકવાર સાથે વસતાં, એ સહવાસ પ્રિય હોવા છતાં અમારૂં મૃત્યુ થયું ને તેથી વિયોગ થયો, એ ચિત્રોને લીધે પાછો સંજોગ થયો, મછવામાં બેસીને નાશી ગયાં, લટારાના હાથમાં ફસાયાં, મરણના મોંમાં જઇ પડ્યાં, એમની ગુફામાંથી એક લૂટારાએ બચાવી નસાડ્યાં, વનમાં પ્રવાસ કર્યો, એક ગામ મળી આવ્યું અને છેવટે કુલ્માષહસ્તી સાથે ભેટો થયો. આ સૌ વાતો વર્ણવી.

૧૨૩૯-૧૨૪૪. અમારો એ સૌ અનુભવ મારા સ્વામીએ વર્ણવ્યો તે સાંભળીને બંને પક્ષની (મારા પોતાના કુટુંબની અને મારા સ્વામીના કુટુંબની) આંખોમાં પાછાં આંસુ ભરાઇ આવ્યાં, અને મારા પિતા બોલ્યાઃ ‘ તમે આ વાત અમને પહેલાં કેમ ના કહી ? તમને આટલું દુઃખેય પડત નહિ ને આટલો પસ્તાવોય થાત નહિ. જરા પણ ભલું કર્યું હોય તેને માટે પણ સારો માણસ હદ ઉપરાંત ઉપકાર માને છે અને એનો બદલો વાળી શકાય નહિ ત્યાં સુધી પોતાને ઋણી માને છે. ત્યારે જેનું એક વાર ભલું કર્યું છે તેના ઉપર વળી ફરી ભલું કરાય તે માણસો ઉપકાર માને નહિ તો શી રીતે જીવી શકે ? એવા ભલાનો એને મંદરપર્વત જેટલો ભાર લાગે છે અને તેનો બેવડો બદલો વાળી શકાય ત્યારે જ એને સંતોષ થઇ શકે છે. તમે મને જીવન આપ્યું છે, ત્યારે હું પણ તમને જીવન આપી શકું તો જ જીવવું સારૂં લાગે.’

૧૨૪૫-૧૨૪૮. આવાં આવાં વચનોથી ગૃહપતિએ (મારા પિતાએ) અને બીજા શેઠીઆઓએ અમને રીઝવ્યાં. અને અમારા પાછા આવવાથી અમારા ઘરનાં બધાં માણસો ખુશી થયાં હતાં. ખરે, અજાણ્યા લોક, ને સારૂં નગર પણ, અમને હેતે મળવા ઉતાવળે ભરાઇ ગયું; અને વખાણ કરવા માટે, આશીર્વાદ આપવા માટે અને વધાવવાં માટે અમે સુંદર કીંમતી ભેટો આપી. કુલ્માષહસ્તીને તો બદલામાં હજાર સોનામહોરો મળી અને અમને પણ સૌ સંબંધીઓએ એકઠાં મળીને અમૂલ્ય ભેટ આપી.

૧૨૪૯-૧૨૫૩. શુભ મુહૂર્ત નિરધારીને અમારા બંને કુટુંબને શોભે એવા
લીધે અમને નગરમાં કદી થયો નહિ એવા ઠાઠથી-અમારાં લગ્ન થયાં, આખો વખત એવો
૧૨૧૩ ઉત્સવ મંડાયો કે અનેક લોકે આવો આનંદ કદી નહિ અનુભવ્યો હશે!
સ્નેહભરી દૃષ્ટિએ બંને કુટુંબો હૃદયભરી મિત્રતાએ, આનંદશોકનો સમાન અનુભવ કરવા
વાદળાંથી ઢંકાઈ બંને કુટુંબો જાણે એકજ હોય એમ દેખાવા લાગ્યાં. વળી મારા સ્વામીએ
(આપણા ધર્મનાં) પાંચ વ્રત લીધાં અને જિનપ્રભુના સુંદર અમૃતોપદેશનું મનન

કરતાં આદર્શ ગૃહજીવન ગાળવા લાગ્યા. હું પણ આગળ (૪૫૨-૪૫૪ માં) કહી ગઇ છું એમ એકસો ને સાઠ આયંબિલ વ્રત પૂરાં કરતી હતી—કારણ કે એ જ વ્રતથી મારી કામના સફળ થઇ હતી.

૧૨૫૪. હવે મારી સખી સારસિકાને મેં પુછ્યું: 'હું મારા સ્વામી સાથે ચાલી નિકળી (અને તને ઘેર મોકલી) ત્યાર પછી ઘેર તારી શી સ્થિતિ થઇ?'

૧૨૫૫-૧૨૭૨. સારસિકાએ ઉત્તર દીધો: "તારી સૂચના પ્રમાણે તારા દાગીના લેઇ આવવાને હું તો ઉતાવળી ઉતાવળી ઘેર ગઈ. દરવાજાને આગળો ન જોયાથી ઘરના લોકને વ્યાકુળ થઇ ગયેલા મેં જોયા અને મહેલમાં મને મારી પણ સલામતી લાગી નહિ. છતાં યે તારા ખંડમાંથી તારા દાગીનાની થેલી, નગરના મણિરૂપ એ થેલી લેઇને અહીં આવી. પણ મારી એટએટલી વાંછના છતાં તું તો મને મળી નહિ ને તેથી નિરાશ થઈને એ દાગીનાની થેલી લેઇને પાછી ગઇ. 'આહ મારી સખી' એવો નિસાસો નાખીને તારા ખંડમાં પેઠી ને (દુઃખની મારી) ખૂબ છાતી કુટી. ધીરેધીરે મારી ગભરામણભરી એકાન્તમાં શાન્તિ વળતી ગઈ ને મને આમ વિચાર આવ્યો: '(પૂર્વજન્મના યાદ આવ્યાનો) એમનો પડદો નગરશેઠને નહિ ખોલું તો એ પોતાની દીકરી ઉપર ભારે ક્રોધ કરશે. માટે હું એમ કરીશ, (એટલા માટે કે) જતે દહાડે એ એમની દયા પામે. મારૂં પોતાનું પણ થોડું ઘણું ઋણ આ પ્રમાણે વળશે.' મારા અકળાએલા હૃદયમાં આવા આવા વિચારો ઉઠ્યા અને હું પથારીમાં જઈ પડી, પણ તે રાતે ઉંઘ બીલકુલ આવી નહિ. પછી સવારમાં હું નગરશેઠને પગે પડી અને તારો પૂર્વભવ તને સાંભરી આવ્યાની અને તારા પ્રિયની સાથે તારા ચાલી ગયાની સૌ કથા એમને કહી દીધી. પણ એ તો પોતાના અનગ્ર કુળાભિમાનને કારણે, રાહુએ ગ્રહાએલા ચંદ્રની પેઠે પોતાનું સૌ તેજ હારી બેઠા. હાથ ચોળીને એ બોલ્યા: 'અરેરે! કેટલું ભયંકર. આપણા કુળ ઉપર આ શું કલંક આવી પડ્યું! એ ચક્રવાકનો કે શેઠના દીકરાનો પણ કશો દોષ નથી, દોષ માત્ર મારી દીકરીનો કે જે આમ સ્વચ્છંદ થઇને ચાલી ગઇ. નદી જેમ પોતાના જ કિનારાને ડુબાડે તેમ ભ્રષ્ટ નારીઓ પોતાના કુળની આબરૂને ડુબાડે. અશુદ્ધ પુત્રી ઉંચા અને ધનવાન્ કુળને હાનિ કરે છે, અને એ પોતાના બ્રહ્મચર્યથી આખા કુળને, તે ગમે તેવું સારૂં હોય તો ય, કલંક આણે છે, તેથી તે એ કુળને શોભતી નથી. સાચું જ કહ્યું છે કે કલ્પનાનાં સ્વપ્ન ઉપર અને સુંદર મૃગજલ ઉપર જેટલો વિશ્વાસ રખાય એટલો જ વિશ્વાસ ચંચળ અને ચતુર નારી ઉપર રખાય.' વળી એમણે કહ્યું: 'પણ તેં આ બધી વાત મને વહેલી કેમ ના કહી? હું ત્યારે જ એને પરણાવત અને આ સંકટ આવવા ના દેત.'

૧૨૭૩-૧૨૭૪. "મેં ઉત્તર દીધો: 'એની કામના સફળ થાય નહિં ત્યાં સુધી એ વાત છાની રાખવા માટે મારે એના જીવના સોગન ખાવા પડ્યા હતા. હું

એ સંતલસમાં ભળી હતી, તેથી મારે પરાણે પણ ચુપ રહેવું પડ્યું હતું. તેથી શેઠ, મારા ઉપર દયા કરો.'

૧૨૭૫–૧૨૭૯. " શેઠાણીએ જ્યારે આ બધી વાત સાંભળી ત્યારે એ તો તારા દુઃખના ને વિજોગના વિચારમાં બેભાન થઇ પડ્યાં. અને એમને પડેલાં જોઈને, નાગણને ગરૂડના પંજામાં સપડાએલી જોઇને ગભરાએલા નાગરાજની પેઠે, શેઠ પોતે પણ તરત જ છુટે મ્હોંએ રડવા લાગ્યા. ભાન આવ્યા પછી શેઠાણી એવું તો હૃદયભેદક રૂદન કરવા લાગ્યાં કે બીજાં બધાંને રોવું આવ્યું. ભાઇઓ ભોજાઇઓ ને બીજાં બધાં, સખી, તું જતી રહી તેથી, ખૂબ રોપીટ કરવા લાગ્યાં. પણ શેઠાણીનું હૈયું સ્નેહાળ, તેથી દીકરીના સ્નેહને કારણે એમના શોકનો ને રૂદનનો તો પાર જ રહ્યો નહિ; છેવટે એમણે શેઠને કાલાવાલા કરી કહ્યું:

૧૨૮૦–૧૨૮૪. " જે લોક શુદ્ધાચારી હોય છે ને આબરૂદાર મનાય છે એમને પણ દીકરી તરફનાં બે દુઃખ તો હોય છેઃ વિજોગ ને કલંક. પણ એ સૌ પૂર્વકર્મે કરીને નક્કી થયેલા પ્રારબ્ધને આધીન છે. માણસની ઇચ્છા હોય કે ના હોય, પણ એ પ્રારબ્ધ વડે માણસ સુખદુઃખ પામે છે, તેથી ભૂલ થઇ જાય તેનો દોષ લેવો ના ઘટે; કારણકે કુટિલ કાળદેવતા એને ખેંચી ગયો, પૂર્વભવની વાત એને સાંભરી આવી અને તેથી એક વખતના કર્મનું ફળ એને મળ્યું, ત્યારે તો એની ભૂલ બહુ નાની કહેવાય. અને મારો એ દીકરી ઉપર એવો ભાવ છે અને મારા હૈયામાં એ એવી વશી રહી છે કે એના વિના મારાથી જીવાશે નહિં.'

૧૨૮૫–૧૨૮૯. " આવે વચને કાલાવાલા કરીને નગરશેઠની પત્ની પોતાના સ્વામીને પગે પડી, અને 'ઠીક ત્યારે' એવું એમની મરજી ના છતાં ય એમની પાસે કહેવરાવ્યું. પછી એમણે કહ્યું: ' ધીરજ ધર ! એ તારી લાડકી તને લાવી આપીશ; એ બે કયાં ઉપડી ગયાં છે તેની શેઠ પાસેથી ખબર પડશે.' એમ બોલી તારા પિતા પછી રથમાં બેશીને અહીં આવ્યા અને તમને બેને શી રીતે ઘેર પાછાં લાવવાં એ બાબત શેઠ સાથે વિચાર કરવા લાગ્યા, પણ (તે દરમિયાન તારા પિતાના) ખરાબ કુટુંબે તો મને ધમકાવી, આંખો કાઢીને એક લપડાક ચોઢી કાઢી ને આમ મને સજા કરી. વળી એ કહેવા લાગ્યાં કે ' તું એને ત્યાં લેઈ જ કેમ ગઇ ? ' વળી તમને ખોળવાને માટે માણસો મોકલ્યાં અને તમને આવતાં સાંભળીને એ સૌ રાજી થઇ અહીં પાછાં આવ્યાં. "

૧૨૯૦–૧૨૯૧. (સાધ્વી કહે છે:) સારસિકાએ જે બધું જાણ્યું હતું એ સૌ એણે મને વિગતવાર કહી સંભળાવ્યું. અને પછી મારા સ્વામીએ શા માટે ઉતાવળ કરી હતી ને દાસદાસી વગર અમે કેમ ચાલ્યાં ગયાં એ વાત મેં એને કહી સમજાવી:

૧૨૯૨–૧૨૯૭. મારા પતિએ વિદ્વાન મિત્રોની સહાયતાથી એક નાટક રચ્યું હતું. તે નાટક નટીઓ મને ભજવી બતાવે એવી વ્યવસ્થા થોડા દિવસ પછી મારા સસરાએ કરી. આમ અમે આ ભવ્ય મહેલમાં સંબંધીઓ અને મિત્રો વચ્ચે, કમળ-સરોવરમાંના ચક્રવાકની પેઠે, મહા આનંદે રહેવા લાગ્યાં. અમારાં હૈયાં સ્નેહાનંદે કરીને ગંઠાઇ ગયાં અને અમે પળવાર પણ એક બીજાથી અળગાં રહી શકતાં નહિ. હું જાણે સ્નેહના લાંબા સુખને માટે સરજાઇ હતી તેથી એક પળ પણ જો હું એકલી પડતી તો ય મને એ પળ બહુ લાંબી લાગતી; નાહતાં, ખાતાં, શણગાર સજતાં, સુતાં, બેસતાં, ટુંકમાં સૌ કાજ કરતાં, અને અંદરની એકતાનો આનંદ ભોગવતાં, તે એટલે સુધી કે અમે માળાઓ પહેરીને, અને સુગંધી પદાર્થો અમારા શરીર ઉપર છાંટીને અને ચોળીને નાટક જોવા જતાં ત્યારે પણ એવી એકતાનો આનંદ ભોગવતાં. આમ અમે કશી પણ ચિંતા વિના સ્નેહમાં એકવત્ થઈ રહેતાં. . . .

૧૨૯૮–૧૩૦૮. આમ સુખસાગરમાં તરતાં તરતાં તારાઓ અને ચંદ્રથી પ્રકાશતી રાતોવાળી સુંદર શરદ્ સુખમાં ચાલી ગઇ. પછી શિશિરની રાતો આવી. તે લાંબી થવા લાગી ને ઝાકળ પડવા લાગ્યો, (એ ઋતુમાં) સૂરજ પોતાનો પ્રકાશ ઉતાવળે ખેંચી લેવા લાગ્યો; (ગ્રીષ્મની વિલાસસામગ્રીઓ) ચંદ્ર, ચંદન, મોતીની માળા, કંકણ, સુતરનાં ને રેશમનાં કપડાં એ સૌ મનથી ઉતરવા લાગ્યાં. શિયાળો આવ્યો, બરફ સાથે એની પણ મજાઓ લેતો આવ્યો. ઘેરઘેર સ્નેહીજન અને (ઘેર આવેલા) બધા પ્રવાસીઓ આનંદ કરવા લાગ્યા. ત્યારપછી વસંતમાં ઠંડી ચાલી ગઈ ત્યારે સહકાર ફુલ (સૌ પ્રકૃતિમાં) ખીલ્યાં તેની સાથે સ્નેહનું રાજ્ય પણ ખીલ્યું. તેવારે નારીઓએ કામ પડતાં મેલવા માંડયાં ને ઉતાવળી ઉતાવળી હીંદોળાખાટે ગઈ. હિંદોળાખાટને મજબુત બાંધી હોય અને સ્નેહી હાથે કરીને એ હિંદોળાય તો વગર લોએ ખુબ હીંચકા આવે ને ખૂબ આનંદ મળે. અમારા અતુલ, અદ્ભુત અને જોવાજેવા બાગની શોભા નિહાળતાં અમે નંદનવનના દેવજુગલની પેઠે આનંદ કરતાં. (મારા પ્રિય મને કહેતાઃ) 'મદનવાડીના દૂતરૂપ આ ભમરા તો જો. ઝાડનાં ફુલ અને બીજી વનસ્પતિ ઉપર, નારી લોકની આંખના કાજળની પેઠે, ચોંટી બેઠા છે અને વેલીઓ ઉપર (તેમની કળીઓ રૂપ) ચંદ્રને (ચંદ્રગ્રહણમાં) ઢાંકી નાખતા રાહુ સરખા દેખાય છે.' આવી શૃંગારિક ઉપમાઓથી મારા સ્વામી મને આનંદ આપતા અને મારા વાળમાં ફુલ ખોસતા, જેથી એ બધાંનો મિશ્ર સુગંધ નિકળતો. આવું આવું કરવાને લીધે ખીલેલી વનસ્પતિ જોવામાં અમને બહુ મજા પડતી અને આવી રીતે આનંદમાં તથા સ્નેહમાં અમે ગંઠાયાં રહેતાં.

(૧૦ લૂટારાનું સાધુ થવું.)

૧૩૦૯–૧૩૧૪. (ઋતુઓ બદલાતાં ફરી પાછી વસંત આવી અને પ્રકૃતિની શોભા નિહાળવા ફરી પાછાં અમે બાગમાં ગયાં) ત્યાં એક અશોક વૃક્ષની નીચે મુકેલી પત્થરની બેઠક ઉપર (આપણા ધર્મના) એક સાધુને નિશ્ચિંતમને મ્હોં નીચું રાખીને બેઠેલા જોયા. તરત જ મારા વાળમાંનાં ફુલ ખરી પડયાં; મેં મારાં અંગ ઢાંકી દીધાં અને મારા મ્હોંને શોભાવતા ચૂર્ણ(પાઉડર)ને લુછી નાખ્યો. મારા સ્વામી પણ સ્વસ્થ થઇ ગયા; એમણે જોડા ઉતારી દીધા ને ફુલ મુકી દીધાં, કારણ કે ભભકાલેર પોશાકે મહાપુરુષ પાસે જવું શોભે નહિ. પછી અમે ઉતાવળે ઉતાવળે એમની તરફ ગયાં, અને કંઇક દૂરથી માથું નમાવી પૂજ્યભાવે, પણ શાન્તિથી, અમૂલ્ય રત્નની પેઠે એમને નિહાળવા લાગ્યાં. પછી અમે જરા વધારે નજીક ગયાં, અને માયા, મદ, મોહ આદિથી વિરક્ત, શુભધ્યાનમાં સંલગ્ન અને શરીર તરફ પણ અનાસક્ત એવી એ ધર્મમૂર્તિના ચરણમાં અમે અમારી કરાંજલિ અર્પણ કરી. ક્ષણભર અમે પણ એમની આગળ, અન્યત્ર મનવાળા થઇ, શાન્તચિત્તે ધ્યાન ધરીને બેઠાં અને પછી જ્યારે પોતાના ધ્યાનમાંથી મુક્ત થઇ, એમણે પ્રશાન્તદષ્ટિએ અમારી તરફ જોયું ત્યારે અમે ઉભા થઇ વિનયભાવે એમને ત્રણ વાર વંદન કર્યું.

૧૩૧૫–૧૩૧૭. આ પ્રમાણે વંદન અને નમન કરીને તપોગુણનો ઉત્કર્ષ ઇચ્છીને એમના શરીર અને જીવનયાત્રાના કુશળ પ્રશ્નો પૂછયા.

૧૩૧૮. એના જવાબમાં તેમણે આશીર્વાદ આપીને કહ્યું કે 'જયાં જવાથી જગતનાં બધાં દુઃખોનો અંત થાય છે અને અતુલ તથા અક્ષય સુખ પમાય છે એવું જે નિર્વાણ સ્થાન તે તમને પ્રાપ્ત થાઓ.'

૧૩૧૯–૧૩૨૦. તેમનો એ આશીર્વાદ અમે અતિ નમ્ર અને શ્રદ્ધાળુ ભાવે મસ્તકે ચઢાવ્યો અને પછી જરા અને મૃત્યુની પેલી પાર લઇ જનાર કલ્યાણકારક ધર્મનો ઉપદેશ આપવાની પ્રાર્થના કરી.

૧૩૨૧. એના ઉત્તરમાં તેમણે જીવ–આત્માનાં બંધન અને મોક્ષ વિષે શાસ્ત્રમાં જણાવ્યા પ્રમાણે ધીરેધીરે સરળતાપૂર્વક આ રીતે ઉપદેશ આપ્યોઃ

૧૩૨૨–૧૩૨૬. 'જગતમાં રહેલા પદાર્થોનાં સ્વરૂપને જાણવાનાં ચાર સાધન છેઃ ૧ પ્રત્યક્ષ, ૨ અનુમાન, ૩ ઉપમાન, અને ૪ આગમ. આપણી ઇંદ્રિયોથી જે વસ્તુ જોઇ–જાણી શકાય, તે પ્રત્યક્ષ ગણાય. જે વસ્તુના કોઇએક ગુણધર્મને જોઇ–જાણી તેના વિશેષ સ્વરૂપનો નિર્ણય કરવો, તે અનુમાન કહેવાય. પ્રત્યક્ષ અગર પરોક્ષ વસ્તુ સાથે કોઈ બીજી વસ્તુને સરખાવવી તેનું નામ ઉપમાન હોય છે; અને કોઈ શાસ્ત્ર અગર શિક્ષક પાસેથી જે વસ્તુનું જ્ઞાન મેળવવું તે આગમ કહેવાય છે. આ ચાર રીતે બંધ અને મોક્ષનું પણ જ્ઞાન મેળવી શકાય છે.

૧૩૨૭–૧૩૩૪. 'હવે આત્મા તે શું છે તે વિચારીએઃ આત્મા રૂપ, શબ્દ, ગંધ, રસ અને સ્પર્શ એ ઇંદ્રિયગોચર ગુણોથી સદા સર્વદા મુક્ત છે, એ ઇંદ્રિયથી પણ

અગોચર છે. એ અનાદિ અને અનંત છે. જ્યાં સુધી એ શરીરના બંધનથી બંધાયો છે ત્યાં સુધી એ સુખદુઃખ અનુભવે છે, અને ત્યારે (અનુભવે એટલે) – ઇંદ્રિયોવડે નહિ, પણ પ્રત્યક્ષ પ્રમાણ વડે – વિવિધ પ્રકારની સમ્મતિ, ઇચ્છા, વિચારો આદિ દર્શાવવા માટે દેહનાં જે હલનચલન થાય છે તેના વડે – પ્રમાણભૂત થાય છે. વિચાર, અહંકાર, જ્ઞાન, સ્મરણ, બુદ્ધિ આદિ સ્વરૂપે એ પ્રકટ થાય છે. સંસારના સ્વભાવ નિયમ પ્રમાણે (પૂર્વ જન્મનાં પુણ્યનાં કે પાપનાં ફળરૂપ) કર્મ ભોગવતો આત્મા હર્ષ કે શોકનો, સુખ કે દુઃખનો, શાન્તિ કે અશાન્તિનો, આનંદ કે ઉદ્વેગનો, ભય કે ધૈર્યનો અનુભવ કરતો પરિભ્રમણ કર્યા કરે છે.

૧૩૩૫–૧૩૩૯. “આત્મા પોતે કરેલાં સારાં નરસાં કર્મવડે સંસાર વધારે છે: અને તે ત્રણ રીતે: મનથી, વાચાથી ને કર્મથી. મૂઢ જીવન (મોહે કરીને સંસારમાં) લિપ્ત થઇ જતાં કર્મના બંધનમાં પડે છે; પણ મોહથી મુક્ત થઇને સંસારમાં વસે છે તો તે પોતે કર્મથી અલિપ્ત રહે છે; એ જ તીર્થંકરોએ (આપણા ધર્મના સંસ્થાપકોએ) એ જ પ્રકારનો ટુંકામાં (આત્માના) બંધ અને મોક્ષ સંબંધે ઉપદેશ આપ્યો છે. એક બાજુથી આત્મા (અમુક કર્મોથી) મુક્ત થાય છે, અને બીજી બાજુથી (અમુક કર્મોથી) એ બંધાય છે; એ રીતે સંસારપ્રવાહના યંત્રમાં ભમરડાની પેઠે એ ફર્યા કરે છે. સારાં કર્મે એ બંધાય તો (ફળ પાકીને) દેવયોનિમાં અવતરે છે; મધ્યમ કર્મથી માનવયોનિમાં અવતરે છે, મોહમય કર્મથી પશુયોનિમાં પુનર્જન્મ પામે છે, ને બીલકુલ ખરાબ કર્મથી નરકમાં પડે છે.

૧૩૪૦–૧૩૪૩. “રાગ અને દ્વેષને જે દબાવી દેતો નથી, તે કર્મના બંધનમાં પડે છે. વળી (પાંચ મહાપાપ, જેવાં કે) પ્રાણાતિપાત, અસત્ય, અદત્તાદાન, મૈથુન અને પરિગ્રહ; તેમજ ક્રોધ, માન, માયા અને લોભ; (તથા વિવિધ પ્રકારની બીજી નિર્બળતા) ભય, તરંગ, કુટિલતા, અપ્રામાણિકતા આદિ; આ બધા દુર્ગુણો જ્યારે અજ્ઞાન સાથે ભેગા થાય છે, ત્યારે કર્મના બંધનનું મૂળ દૃઢ બને છે; એમ સારરૂપે તિર્થંકરોએ કહ્યું છે.

૧૩૪૪–૧૩૪૬. “તેલ ચોળેલા માથા ઉપર જેમ ધૂળ ચોંટી જાય છે, તેમ રાગ અને દ્વેષના વિચારોએ ખરડાએલા આત્માને કર્મ ચોંટી જાય છે, અને તેના પ્રભાવથી આત્મા પૃથ્વી, પાણી, અગ્નિ, પવન, અને વનસ્પતિ જેવી અતિ સૂક્ષ્મ જીવયોનિઓમાં વારંવાર જન્મમરણ કરતો પરિભ્રમણ કર્યા કરે છે.

૧૩૪૭–૧૩૪૮. “સાધારણ રીતે વર્ણવીએ તો (આત્માને બંધનમાં રાખનારાં) કર્મ આ આઠ પ્રકારનાં છે:

૧. જ્ઞાનાવરણીય	૫. આયુઃ
૨. દર્શનાવરણીય	૬. નામ
૩. વેદનીય	૭. ગોત્ર
૪. મોહનીય	૮. અન્તરાય

૧૩૪૯–૧૩૫૨. “અને જેમ જુદા જુદા દાણાનાં બીજ પૃથ્વીમાં વેરવાથી પોતપોતાની જાત પ્રમાણે જુદાં જુદાં ફળફુલ આપે છે, તેમજ વિવિધ પ્રકારનાં કર્મો

પોતપોતાની વિવિધતા પ્રમાણે શુભ અશુભ—સારાં નરસાં ફળ આપે છે. કર્મકૃત ફળોદયનું સ્વરૂપ દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ, ભાવ અને ભવને આશ્રયે જાણી શકાય છે. દ્રવ્ય એટલે કે (આ વિષયમાં) આત્મા, નક્કી થયેલે ક્ષેત્રે એટલે કે ત્રણ લોકમાં (સ્વર્ગમાં, મર્ત્યમાં અને પાતાળમાં અથવા નરકમાં), કાળમાં એટલે કે ફળને અનુસરી જન્મજન્માન્તરના ફેરામાં ભટકે છે, જેથી એક સ્થિતિ ફરીને બીજી થાય છે અને પૂર્વનાં કર્મને લેઈને નવાં નવાં જીવન ધારણ કરે છે.

૧૩૫૩-૧૩૫૬. "(આત્માના સામયિક શરીરને ધારણ કરતી) સ્થિતિ ઉપર શરીર આધાર રાખે છે, શરીર ઉપર માનસિક કર્મનો આધાર છે, માનસિક કર્મ ઉપર અંતઃકરણનો આધાર છે, અંતઃકરણ ઉપર તદ્રૂપતાનો (ભાવ અને વસ્તુની એકરૂપતાનો) આધાર છે, તદ્રૂપતા ઉપર પરિણામનો આધાર છે અને પરિણામ ઉપર આત્માને લાગતાં બાહ્ય અને આભ્યંતરિક દુઃખોનો આધાર છે. આ દુઃખો ટાળવાને માટે માણસ આનંદ કરવા જાય છે ને ત્યાં બહુ પાપ આચરે છે; આ પાપને લીધે (કારણકે એનું પ્રાયશ્ચિત્ત કરવાને માટે બીજા દેહ ધરવાજ જોઇએ) જન્મમરણના ફેરા ફર્યા જ કરવાની ઘટમાળને ચાકે બંધાય છે. આમ માણસને પોતાનાં કર્મને અનુસરીને યોજાયા પ્રમાણે ગમે તો નરકમાં, ગમે તો પશુયોનિમાં, ગમે તો માનવજાતિમાં કે ગમે તો સ્વર્ગમાં ભમવું જ પડે.

૧૩૫૭-૧૩૬૧. "(ઉપર બતાવેલી યોનિઓમાંથી ત્રીજીમાં એટલે માનવજાતિમાં અવતરે તો) માણસને (ઉદાહરણ તરીકે) તેના કર્મને અનુસરીને પુનર્જન્મમાં ચંડાળ, ભિલ, અંત્યજ, પારધિ, શક (સિથિયન), યવન (સેમેટિક અને ગ્રીક), બર્બર (વનવાસી) આદિને ત્યાં અવતાર આવે. માનવજાતિમાં જન્મ આવતા પણ તેને પોતાનાં (પૂર્વ)કર્મને અનુસરી અનંત સુખદુઃખ ભોગવવાં પડે; શરીર અને બુદ્ધિના વિકાશને અનુસરી માણસ ચાકર થઈ દુઃખ ભોગવે કે ધણી થઈ સુખ ભોગવે, સંજોગ પામે કે વિજોગ સહે, કુલીનને ઘેર કે કુલહીનને ઘેર અવતરે, જીવનબળ ને જીવનવિલાસમાં આગળ કે પાછળ પગલાં ભરે; લાભ પામે કે હાનિ સહે: સૌ કરતાં પણ વધારે તો એ ધ્યાન રાખવાનું છે કે આત્મા મનુષ્યના જ (સ્વર્ગના બીજા કોઇમાંથી નહિ) અવતારમાંથી સર્વ દુઃખનો અંત આણનાર મોક્ષને પામી શકે

૧૩૬૨-૧૩૭૧. "(હવે આ મોક્ષ સંબંધે:) સંસારમાંનો અજ્ઞાન ઝાંખરાંએ પુર ગયેલો જે માર્ગ તે તીર્થંકરોએ સમ્યગ્ જ્ઞાને તથા શુદ્ધ જીવને કરીને ઠેઠ મોક્ષ સુધી ચોકખો કર્યો છે. પૂર્વકાળથી પોતાને વળગી આવેલાં કર્મને (જીવના જન્મજન્માન્તર માર્ગમાં એના ઉપર લાગેલા કર્મસંસ્કારને) આત્મસંયમ વડે જે દબાવે છે અને (ઉગએલાં અથવા વધતાં જતાં) બાકીનાં કર્મને સંયમ વડે નષ્ટ કરે છે. એ જ્યારે (આ દેહમાંથી મરીને) પોતાનાં સર્વ કર્મનો ક્ષય કરે છે ત્યારે તે કર્મમુક્ત થાય છે: પરમપવિત્ર બને છે. નિમેષમાત્રમાં એ ઉંચામાં ઉંચું સ્થાન પ્રાપ્ત કરે છે, અને

જન્મવાના દુઃખથી અને ચિંતાથી મુક્ત થઇને, અવિચળ પવિત્રતા ભોગવે છે. વિવિધ યોનિમાં અવતાર આપનાર કર્મથી મુક્ત થતાં આત્મા પવિત્ર બનીને ઉપાધિના પંજામાંથી છુટી પોતાની મેળે જ ઉંચે ચઢે છે. સર્વોત્તમ દેવોના (પ્રદેશોના) ઉપર એ પવિત્ર પ્રદેશ આવેલો છે, તે પ્રભાતના જેવો પ્રકાશે છે અને સોના તથા શંખ જેવો સ્વચ્છ છે. ત્રિલોકને શિખરભાગે એ અવસ્થિત છે અને રત્નનિર્મિત છત્રના જેવો આકાર ધારણ કરે છે. એને કોઇ સિદ્ધક્ષેત્ર, કોઇ પરમપદ, કોઇ અનુત્તરસ્થાન અને કોઇ બ્રહ્મલોક કહે છે. અખિલ જગતને શિરોભાગે આવેલા એ સ્થાનની ઉપરે સર્વ કર્મથી વિમુક્ત થએલા સિદ્ધાત્માઓનો શાસ્વત વાસ હોય છે. એ સિદ્ધાત્માઓ સર્વ કર્મથી મુક્ત હોય છે, રાગદ્વેષના સંસ્કારોથી અલિપ્ત હોય છે. પાપ અને પુણ્યની પેલે પાર ગએલા હોય છે. સુખદુઃખના વિકારોથી અસ્પૃષ્ટ હોય છે. અનંતજ્ઞાન અને શકિતથી પરિપૂર્ણ હોય છે. એ સિદ્ધાત્માઓ ફરી વાર કયારે પણ પુનર્જન્મને પ્રાપ્ત થતા નથી. એક આત્મજ્યોતિમાં અનંત આત્મજ્યોતિઓ સંમિલિત થાય તોપણ તેમના સ્વરૂપાવસ્થાનમાં કોઇ પણ પ્રકારનો સંકોચ કે વિસ્તાર થતો નથી.”

૧૩૭૨–૧૩૭૪. (સાધ્વી તરંગવતી એ શેઠાણી આગળ બોલે છેઃ) સાધુના આ ઉપદેશથી હું તો એક પ્રકારના આનંદમાં ડુબી ગઇ, ને હાથ કપાળે લગાડીને બોલીઃ ‘અમે આ ઉપદેશને કારણે આપનાં અત્યંત ઋણી છીએ.’ મારા પ્રિયે તો એમને અચળ શ્રદ્ધાથી નમસ્કાર કરી કહ્યુંઃ ‘આપ જગતના બંધનથી મુક્ત થઇ ગયા છો, ધન્ય છે આપને. જો આપને સૌ સાંભરતું હોય તો આપ એ સાધના શી રીતે સાધી શકયા છો, તે પણ મને કહો. મારી ઉત્કંઠાને માટે, હે મહાત્મા, મને ક્ષમા આપશો.’

૧૩૭૫. તીર્થંકરોના ધર્મમાં પારંગત થયેલા એ સાધુએ પોતાના જીવનની કથા આનંદમય શાંન્તિએ મીઠી અને શાન્ત વાણી વડે આ પ્રમાણે કહીઃ

૧૩૭૬–૧૩૮૪. “ભેંસ, સાપ, ચિત્તા અને જંગલી હાથીઓ જ્યાં વસે છે એવા ભયંકર વનપ્રદેશમાં આવેલા ચંપાપ્રાન્તની ધારે પારધિઓ રહેતા હતા; તેઓ વનમાં સંહાર કર્યા કરતા; તેમનું સંસ્થાન યમરાજના ગુપ્તવાસ સ્વરૂપ હતું. તેમની જોબનવંતી કન્યાઓ રાતા રંગનાં વસ્ત્ર પહેરતી અને વળી એમની નારીઓ જુવાન હાથીઓના દાંતવડે હથિયાર બનાવવાનું કામ કરતી. હું પણ પાછલા ભવમાં ત્યાં પારધિ હતો. અને હાથીઓનો શિકાર કરતો. વનમાં જીવન ગાળતો ને માંસ ખાતો; મારા સફળ બાણવેધનાં લોક વખાણ કરતા અને તેથી મને ‘સિદ્ધબાણ’ કહેતા. મારા પિતા પણ પારધિ હતા, એ પોતાની નેમ કદી ચુકતા નહિ; પોતાના ધંધામાં કુશળ હોવાથી એમને લોક ‘વ્યાધરાજ’ કહેતા. મારી માતા મારા પિતાની માનીતી હતી ને તે પોતે પણ એક પારધિની પુત્રી હતી. વનનું ભયંકર અને અભિમાનભર્યું સૌન્દર્ય તેનું પોતાનું જ હતું, એથી લોક એને ‘વનસુંદરી’ કહેતા.

૧૩૮૫–૧૩૯૩. “જુવાનીમાં એકવાર મેં મારૂં તીર એક હાથી ઉપર તાક્યું,

ત્યારે મારા પિતાએ મને શીખામણ આપી: 'આપણા કુળમાં જે આચાર પળાય છે તે તું સાંભળ. પ્રજા ઉત્પન્ન કરી શકે એવો હોય ને ટોળાનો નાયક હોય એવા ભવ્ય હાથીને તારે મારવો નહિ; વળી પોતાનાં બચ્ચાંનું રક્ષણ કરવાને સ્નેહવશ થઈને પારધિનો ભય કર્યા વિના બચ્ચાની સાથે ચાલે છે એવી જે હાથણી તેને પણ બચાવવી. તેમજ હાથીનું જે બચ્ચું હજી ધાવતું હોય તેને પણ મારવું નહિ, કારણ કે નાનાને મોટું થવા દેવું જોઈએ. વળી કોઈ નર તથા માદા સ્નેહવશ થઈને દૈવજોગે આગળથી જ સંભોગ કરતાં દેખાય, તો તારે એ બેને વિખુટાં નહિ પાડવાં, કારણકે તેમના સ્નેહસંભોગથી બચ્ચાં થાય છે. આવો આપણો કુળનો આચાર છે તે તારે પાળવો જોઈએ. જે એ આચાર ઓળંગે છે તે અને તેનાં કુટુંબીઓ નાશ પામે છે. (હાથીનાં) બચ્ચાંને મારવાં નહિ અને તેના વંશને બચાવવો જોઈએ. આ શીખી લે અને (પછીથી) તારા પુત્રોને પણ શીખવજે.' આ ભાવનાએ જ હું મારો ધંધો ચલાવતો હતો. અને ગાઢા જંગલમાં રસ્તો કાપતો અને ગેંડા તથા જંગલી બળદો તથા જંગલી ભેંસો તથા હરણો તથા હાથીઓ તથા સુવરોની પાછળ પડતો.

૧૩૯૪-૧૪૦૦. "સરખા ઘરની એક જુવાન ને સુંદર કન્યા સાથે મને મારાં માબાપે પરણાવ્યો. એ મને સ્નેહાનંદ આપતી. એ રંગે શ્યામળી હતી, એનાં સ્તન કામોદ્દીપક હતાં, નિતંબ ભારે હતા અને ચંદ્રમાના હાસ્યથી પ્રકાશ પામતું હોય એવું એનું મુખ હતું. એની આંખો રાતા કમળ જેવી હતી અને જુવાનીના જોરથી એનું કલેવર ખીલી ઉઠેલું હતું. ટુંકામાં, એની વિશુદ્ધ સુંદરતાને લીધે અને એના સ્નેહને બળે મારી જુવાનીમાં એ મારા મહાભાગ્ય રૂપ બની રહી હતી. વનનું આવું મનગમતું રત્ન જેની પાસે હોય તે શિકારના આવા ખજાનાથી સંતોષ પામ્યા વગર કેમ રહે! મારી પારધણના મોહભર્યા આલિંગનમાંથી છુટી સવારમાં ઉઠતો અને પછી મદિરા અને રતિક્રીડાના ઉપભોગમાંથી જે કંઇ થાક ચઢયો હોય તેને દૂર કરી અમારા પારધિલોકની દેવીની પ્રાર્થના કરવા જતો. પછી ખાનપાન કરી તાજો થઇ પાછો મારા લોહીથી ખરડાએલે ધંધે લાગી જતો.

૧૪૦૧-૧૪૧૪. "એક દિવસ ઉનાળામાં મેં ધનુષબાણ લીધાં, ભાથું લટકાવ્યું ને રસ્તે પડયો. કાન પાછળ વનફુલ ખોસ્યાં હતાં ને પગમાં પાવડીઓ પહેરી હતી. એવી રીતે હું વનહાથીની શોધમાં નિકળ્યો, અને આખરે (ખાધાપીધા વગર ને કંઈ શિકાર મેળવ્યા વિના) તાપે ને દુઃખે નબળો પડી જઇ આખા વનમાં રખડતો રખડતો ગંગાનદી સુધી જઈ પહોંચ્યો. ત્યાં સ્નાન કરીને તરતનો જ નિકળેલો પર્વત જેવો ઉંચો માત્ર એક જ હાથી મેં જોયો. હું જાણી ગયો કે એ મહાજીવ ગંગાની ઝાડીમાંનો ના હોય, કારણ કે ઝાડોથી ગાઢી થયેલી આ ઝાડીમાં એને હતા એવા સુંદર વાળ (વાળા હાથી) મળી શકે એમ નહોતા. તેથી એ હાથી બીજા કોઇ વનમાંથી આવેલો હોવો જોઈએ; એને દાંત તો હતા નહિ, તોપણ એ સર્વોત્તમ શિકાર હોવાને માટે એને મારવો

જોઈએ. તેથી પારધિના નિયમ પ્રમાણે અરાબર એકાગ્ર થઈને એ હાથી ઉપર જીવનસંહારક બાણ છોડયું. પણ તે બાણ કંઈક ઉંચું નિકળી ગયું ને હવામાં ઉડયું; એ બાણથી એ હાથી ન વિંધાતાં એક ચક્રવાક વિંધાઈ પડયો. દુઃખથી પીડાતા એ ચક્રવાકની એક પાંખ તુટી પડી અને પળવારમાં એ જળપટ ઉપર આવી પડયો. પાણી જાણે રક્તસાગરમાંનું હોય એમ રાતું થઇ ગયું. એની નારી, રૂદન કરતી એના કલેવર ઉપર આમ તેમ ઉડવા લાગી. એથી મને પણ રડવું આવ્યું ને હું બોલ્યોઃ 'અરેરે, સ્નેહી જોડા ઉપર મેં આ શું દુઃખ આણ્યું!' પતિ હજી જીવતો છે એ ભ્રમમાં એણે મારૂં બાણ ઘામાંથી એંચ્યું. એટલામાં તો હાથી અદૃશ્ય થઇ ગયો. મેં એ પંખીને ત્યાંથી ઉપાડી રેતીને કિનારે મુકયો અને પછી થોડી વારે સહાનુભૂતિ સાથે એનો અગ્નિસંસ્કાર કર્યો. પણ એટલામાં તો મેં જે અગ્નિ સળગાવ્યો હતો તેમાં એની ચક્રવાકી પોતાના સાથીના સ્નેહબંધનથી તણાઇને પડી, અને એની સાથે બળી મુઇ.

૧૪૧૫-૧૪૨૨. "એ જોઇને મને ભયંકર પરિતાપ થયો (ને વિચાર આવ્યો): 'આવા સુખી જોડાનો મેં શા માટે નાશ કર્યો !' હું વિલાપ કરવા લાગ્યોઃ 'અમારા કુળધર્મના નિયમો મેં પાળ્યા છે અને છતાં યે, અરેરે, આજે આ બીજનો (જેમાંથી ફળ પેદા થઇ શકે તેનો) નાશ કર્યો. આવા વિહારથી અને આવા કુળધર્મથી મને તો તિરસ્કાર છુટે છે. મારાથી આવું જીવન જીવાય શી રીતે? આ જીવન કરતાં તો મરવું ભલું !' આમ આપઘાત કરવાની મને પ્રબળ ઈચ્છા થઈ આવી અને તેના આવેશમાં મેં પણ ચક્રવાકીની પાછળ અગ્નિમાં પડતું મેલ્યું ને મારા પાપી શરીરને બાળીને ભસ્મ કર્યું. હું મારા કુળધર્મને સખ્ત રીતે વળગી રહ્યો હતો, અને વળી મને મારા કર્મનો પસ્તાવો થયો હતો, તેમજ મારા એ જન્મની અપૂર્ણતાથી ખેદ થયો હતો. આ કારણથી, પશ્ચાત્તાપને લીધે પ્રાપ્ત થએલા શુભકર્મના ફળથી—એ શરીરનો નાશ થતાંની સાથે જ નરકમાં પડવાને બદલે, ગંગા નદીને ઉત્તર કિનારે એક ધનવાન વ્યાપારીને ત્યાં મારો જન્મ થયો.

૧૪૨૩-૧૪૨૭. "અનેક ખેડુતોની વસ્તીવાળો, ફળદ્રુપતાએ વખણાએલો અને ઉત્સવોથી ભરપુર એવો બહુ વિશાળ કાશી નામે દેશ છે. કમળસરોવર ઉપર અને બાગમાં આનંદ કરવાને અનેક પ્રવાસીઓ અહીં આવે છે. સાગરરાણી ગંગાનદી કાંઠે દ્વારવતી સમાન વારાણસી નગરી એ દેશમાં મુખ્ય નગરી છે, ગંગા નદીના મોજાં એ નગરીને કિલ્લા સમાન છે. એમાં અનેક મોટા વ્યાપારીઓ વસે છે. તેમની સ્ત્રીઓ અમૂલ્ય આભૂષણોથી કલ્પવૃક્ષ જેવી શણગારાએલી રહે છે. એકેકો વ્યાપારી લાખોને હિસાબે માલ વેચે છે ને ખરીદે છે. એમની હવેલીઓ અલગ અલગ છે, તેથી તેમનાં આંગણાંમાં જ નહિ પણ (હવેલીઓની) વચ્ચે લાંબે રાજમાર્ગે પણ વાતાવરણમાં થઇને ઠેઠ જમીન સુધી સૂરજ પોતાનાં કિરણ ફેંકી શકે છે.

૧૪૨૮-૧૪૪૦. "અહીં (એક વ્યાપારીની આવી હવેલીમાં) મારો

જન્મ થયો અને મારૂં નામ રૂદ્રયશસ્ પડ્યું. રિવાજ પ્રમાણે લેખન આદિ વિવિધ કળાઓ શીખ્યો. પણ થોડા જ સમયમાં ઉડાઉ બનાવનાર, કલંક લાવનાર, ટુંકામાં બધા દુર્ગુણ વસાવનાર જુગારની રમત તરફ મારૂં વલણ થયું. એ રમતે કરીને (વ્યાપારી વર્ગના) હલકા લોકો અનેક રીતે નફ્ફટ થઇ જાય છે અને છળકપટમાં નિર્દય અને જિતવાને માટે ગાંડા બની જઇને બધા સદ્ગુણોને વિસારી મુકે છે. આ જુગારના શોખમાં હું પડ્યો અને અંતે ચોરી કરવા લાગ્યો અને એથી મારા કુળ-પર્વત દાવાનળની પેઠે બળવા લાગ્યો. ઘર ફાડવાં ને વટેમાર્ગુઓને લૂટવા એ મારો ધંધો થઇ પડ્યો ને મારાં આવાં કર્મને લીધે મારાં(કુટુંબીઓ)ને નીચું જોવાનો પ્રસંગ આવ્યો. એવી રીતે (એકવાર) બીજાઓનું ધન લૂટવાને ઇરાદે રાતે હાથમાં તલવાર લેઇને રાજમાર્ગે નિકળી પડ્યો, પણ નગરમાં આ વાતની જાણ થઇ ગઇ અને હવેથી ચોરનો જીવ હવે સલામત નહોતો એમ જોઇને હું ખાતીકવનમાં નાશી ગયો. વિંધ્યાચળની વિભૂતિ સમાન એ વનમાં અનેક જાતનો શિકાર મળી શકે એમ હતો, પંખીઓનાં પુષ્કળ માળા હતા તથા લૂટારાની પુષ્કળ ગુફાઓ હતી. વિવિધ પ્રકારનાં ઝાડોની ઘટા સૌને અંધારામાં ઢાંકી દેતી. વિંધ્યાચળની અંદરની બાજુએ આવેલી આવી એક ગુફામાં હું આવી પહોંચ્યો. એને એક જ બારણું હતું અને એ ગુફાનું

નાખતો, મિત્રોને બક્ષીસો આપતો અને જુગાર રમતી વખત સરતમાં મારી જાતને પણ મુકતો, એવી રીતે બહુ કાળ સુધી મેં એ લૂટારાઓની ગુફામાં મારા સાથીઓ સાથે યમદેવના ખભા હલાવ્યા.

૧૪૫૧–૧૪૫૫. "એકવાર અમારી એક ટોળી અમારા એ નિત્યકર્તવ્ય ઉપર ગઈ હતી ને ત્યાંથી લૂટમાં એક જુવાન જોડાને ઘેર લેઈ આવી. એ વાતની ખબર થતાં, એમને જોયા પહેલાં જ કાળીની સ્તુતિ થવા લાગી ને એમને (અમારા) સરદાર પાસે આણ્યાં. એ સ્ત્રીપુરૂષને જ્યારે એણે જોયાં, ત્યારે તે સ્ત્રીએ પોતાની સુંદરતાને લીધે એનું હૈયું હરી લીધું. એણે નિશ્ચય કર્યો કે આ અપ્સરાશી સુંદરીનો કાળીને ભોગ આપવો. કાળીની બીકથી એને પોતાની સ્ત્રી બનાવવાની એની હિંમત ચાલી નહિ, પણ મનમાની રીતે લૂટારાઓને દાગીના તો લેઇ લેવા દીધા અને એ જોડા પાસે જે કંઇ કીંમતી ચીજ હતી તે સૌ એણે એમને સોંપી દીધી.

૧૪૫૬–૧૪૬૧. "સરદારે મને કહ્યું: 'આ મહિનાની નવમીએ એ બેનો કાળીને ભોગ આપવાનો છે.' પછી મને એમના ઉપર ચોકી કરવા રાખ્યો, અને મરણચિંતાને લીધે એ બે જણ આંસુભરી આંખોએ બાવરાં જેવાં થઈ ગયાં, ત્યારે હું એમને મારા ઘરમાં લેઈ ગયો. એ પુરૂષને મેં તાણી બાંધ્યો તેથી તે સ્ત્રી પોતાના સ્વામી ઉપરના સ્નેહને લીધે ભયંકર વિલાપ કરવા લાગી ને છાતીફાટ ચીસો પાડવા લાગી: એથી બીજી કેદ પકડાએલી ને જીવનથી નિરાશ થઈ ગયેલી સ્ત્રીઓ ત્યાં ટોળે મળી ગઇ ને દયાભાવે ને આકાંક્ષાએ એમને પુછવા લાગી: 'ક્યાંથી આવો છો ને ક્યાં જતાં હતાં ? લૂટારાના હાથમાં કેવી રીતે પડ્યાં ?'

૧૪૬૨–૧૪૭૧. "આંસુભરી આંખે હુસકાં ખાતાં એણે ઉત્તર આપ્યો: 'અમે અહીં શી રીતે આવ્યાં એનું દુ:ખભર્યું વર્ણન પહેલેથી સાંભળો. સુંદર ચંપાનગરવાળા વનમાં ગંગાને કાંઠે અમે ગેરૂઆ રંગનાં ચક્રવાક પંખી હતાં. આ મારા સ્વામી તેવારે મારા ચક્રવાક હતા અને હું એમની પ્રિય નારી હતી. અમે ગંગા ઉપર કુશળતાએ તરતાં અને મોજાંના રેતીકિનારા પેઠે શણગારરૂપ હતાં. એકવાર એક પારધિ ધનુષબાણ લેઇને આવ્યો અને એણે એ જંગલી હાથીને મારવા જતાં એમને મારી નાખ્યા. (આ અપકૃત્યને કારણે) ખેદ કરતાં કરતાં એણે એમના મૃતદેહને અગ્નિદાહ દેવા માટે કિનારા ઉપર અગ્નિ સળગાવ્યો. સ્વામીની પાછળ જવાને માટે મેં પોતે પણ એ અગ્નિમાં પડતું મેલ્યું. એમ મરી ગયા પછી જમુનાને કિનારે આવેલા સુંદર કૌશામ્બી નગરમાં નગરશેઠને ઘેર હું તો કન્યારૂપે અવતરી, અને તે જ નગરમાં ત્રણ સમુદ્ર પાર અખ્યાત થયેલા શેઠને ઘેર આ મારા પ્રિય નવા અવતારમાં પુત્ર થઇને અવતર્યા. (મોટાં થતાં) અમે ચિત્રવડે એક બીજાને ખોળી કાઢ્યાં, એમણે મારૂં માગું કરાવ્યું, પણ મારા પિતાએ એ માગું પાછું વાળ્યું. મેં એમની પાસે દૂતી મોકલી અને પછી એક વારના સ્નેહથી પ્રેરાઇને રાતને અંધારે હું પોતે પણ મારા પ્રિયની હવેલીએ ગઇ.

અમને અમારાં માબાપની બીક લાગી, તેથી મછવામાં બેશી નાશી ચાલ્યાં ને પછી ગંગાને રેતીકિનારે લૂટારાને હાથે પકડાઈ ગયાં.'

૧૪૭૨-૧૪૭૮. "એ રીતે એ જુવતીએ પોતે અનુભવેલી પોતાની સુખદુઃખભરી સૌ કથા રોઈરોઈને એ પકડાએલી સહભાગિનીઓને કહી સંભળાવી. પણ મને એ વર્ણનથી મારાં પૂર્વભવની વાતો સાંભરી આવી ને તેથી હું બેભાન થઇ ગયો. જ્યારે મને પાછું ભાન આવ્યું ત્યારે તે (ભવના) મારા પિતા, મારી માતા તથા પત્ની અને તે વખતનો મારો સૌ અનુભવ તેમજ (તે કાળે હું પાળતો હતો તે) કુળધર્મ પણ મારા મન આગળ તરી આવ્યો. અને તે સ્ત્રીએ તેના (પોતાના સ્મૃતિ-) સ્વપ્નમાં જે જોયું હતું તે હું સમજી ગયો, તેથી મારૂં હૈયું દયાથી અને ભલી લાગણીથી (એ જોડા તરફ) નરમ બની ગયું. હું જાણી શકયો કે જેનું મેં વગર વિચારે મોત નિપજાવ્યું તે ગંગાના શણગારરૂપ ચક્રવાકનું જોડું આ જ છે. હવે આ સંકટમાં આવી પડેલા સ્નેહજુગલને ફરી તો મોતના મોંમાં મુકી શકું નહિ. એકવાર કરેલી એ હિંસાનો બદલો મારા જીવનને જોખમે પણ આપવો જોઇએ. એ બંનેને હું ઉગારી લેઈશ અને તે રીતે હું શાન્તિ પામીશ.

૧૪૭૯-૧૪૮૨. "આવો ઠરાવ કરીને હું ઘરમાંથી નિકળ્યો અને તે પુરૂષના બંધ ઢીલા કરી નાખ્યા. પછી મેં પોતે કેડ બાંધી કટાર તથા તલવાર લીધી અને રાત્રે તે કેદીને અને તેની સ્ત્રીને લૂટારાની ગૂફામાંથી બહાર કાઢયાં ને ભયંકર જંગલમાં થઈને એક ગામ સુધી મુકી આવ્યો. જુદા પડયા પછી સંસારથી વિરક્ત થઇને મેં હૈયામાં વિચાર્યું:

૧૪૮૩-૧૪૮૬. મેં "લૂટારાઓનો અપરાધ કર્યો છે તેથી હું એમની પાસે તો પાછો જઇ શકું નહિ. એ જમદૂત સરદારની આંખ સામે હવે ફરી હું શી રીતે જઇ શકું? વળી મેં લોભે ને વિલાસવાસનાએ જે કર્યું છે એ સૌ મહાભયંકર પાપ છે, માટે હવે તો એમાંથી મોક્ષ મેળવવાને માટે મારે પ્રાયશ્ચિત્ત કરવું જોઇએ. વિલાસની માયામાં પડીને જે બીજાની હિંસા કરે છે તે પોતાની મૂર્ખતાએ કરીને (મનગમતું) વધારે દુઃખ માગી લે છે. જે મમતામાયામાંથી મુક્ત થઇ શકે છે, સ્ત્રીઓના પ્રપંચજાળમાંથી સરકી શકે છે અને પ્રેમનાં બંધનથી છુટો રહી શકે છે એ જ સુખી થઇ શકે છે અને સુખદુઃખમાં સમાન રહી શકે છે.'

૧૪૮૭-૧૫૦૦. "આવો વિચાર કરીને હું ઉત્તર તરફ (અથવા પાછો પર્વત તરફ) ચાલ્યો, મેં સંન્યસ્ત લીધું ને (સાંસારિક) વાસનાઓનો ત્યાગ કર્યો. દેવનગરી અલકાપુરીનાં તાલવનોની યાદ આપતી 'પૂર્વતાલ' (નામની નગરી) જઇ પહોંચ્યો. નગરની દક્ષિણ બાજુએ કોઇપણ મદનવાટિકા કરતાં પણ સુંદર, અને માત્ર સ્વર્ગના નંદનવનની જ સરખામણીમાં મુકી શકાય એવો એક બાગ છે. એની લીલોતરી, ફુલ અને ફળની શોભાએ કરીને હૃદયને આનંદ આપે છે. ભમરાનાં ટોળાંએ અને પંખીઓના

ગાને કરીને પૃથ્વીના સૌ બાગોનો જાણે અહીં સાર ખેંચાઈ આવ્યો હોય એવું લાગે છે. માત્ર ખામી એટલી જ છે કે પંખીના ગીતનો અને ભમરાના ઉડવાનો મધુર સુર (ત્યાં ભરાતાં) માણસોની વાતચિતના ગણગણાટમાં ભળી જાય છે. એ ઉદ્યાનમાં, ધોળાં વાદળાંમાંથી નિકળતા સૂર્યના વિમાન જેવું ભવ્ય અને ચળકતું દેવમંદિર મારી દૃષ્ટિએ પડયું, તે લાકડાંના કોતરકામ વાળું અને સો થાંભલા ઉપર ઉભું કરેલું હતું. એનાં આંગણમાં શ્રદ્ધાળુ જાત્રાળુઓ દ્વારા ફુલ, ફળ, પત્ર, માળા અને ચંદન વિગેરેથી પૂજાએલ અને વસ્ત્રખંડોથી વિભૂષિત થએલ રમણીય ન્યગ્રોધ વૃક્ષ શોભી રહ્યું હતું. પ્રથમ તો મેં એ દેવમંદિરની બહારથી પ્રદક્ષિણા કરી અને પછી એ પવિત્ર વૃક્ષ નીચે જઇ ઉભો રહ્યો. એની નરમ પાંદડાંવાળી ડાળીઓ ચારે બાજુ પ્રસરી હતી અને મીઠી મધુર પત્રશોભા આપતી હતી. ત્યાં ઉભેલા એક જણને મેં પુછયું: 'આ બાગનું નામ શું? અને કયા દેવની અહીં સ્થાપના છે? મેં ઘણાં ઘણાં સ્થાનો અને સ્થળો જોયાં છે, પણ કયાંય કદી મેં આવો બાગ તો જોયો નથી.'

૧૫૦૧-૧૫૦૬. "હું કોઇ પરદેશી છું એવું એ તુરત કળી ગયો ને તેથી તેણે ઉત્તર આપ્યોઃ 'આ બાગનું નામ શકટમુખ છે. પૂર્વે ઇક્ષ્વાકુ કુળના મુકુટમણિ સમાન ઋષભ નામે રાજા થઇ ગયા. તેઓ હિમાચળથી લઈ સાગર સુધી પ્રસરી રહેલી પૃથ્વીના સ્વામી હતા. જન્મમરણની જાળમાંથી છુટવા માટે જ્યારે તેઓ એ સર્વ ઋદ્ધિસમૃદ્ધિનો ત્યાગ કરી તપસ્યા તપતા હતા ત્યારે આ વૃક્ષ નીચે તેમને અનંત અને અક્ષય એવું કેવલ્ય જ્ઞાન પ્રાપ્ત થયું હતું. એટલા માટે આ પરમપવિત્ર સ્થાન મનાય છે અને એથી જ અદ્યાપિ લોકો એની પૂજા કરે છે. આ મંદિરમાં પણ એ જ યુગાદિદેવ ઋષભતીર્થંકરની પ્રતિમા સ્થાપિત થએલી છે.'

૧૫૦૭-૧૫૦૯. "આ સાંભળીને મેં પણ એ ઝાડની અને મૂર્તિની વંદના કરી. ત્યાર પછી આસન વાળીને ઉંડી શાન્તિમાં બેઠેલા એક સાધુને–મહાપુરૂષને મેં ત્યાં જોયા. એમણે પાંચે ઇંદ્રિયોને પોતાની અંદર વાળી દીધી હતી અને તેમના સર્વે વિચારો ધ્યાનમાં અને આત્મસંયમમાં વળી ગયા હતા. હું ત્યાં ગયો ને જેમના હૃદયમાંથી સૌ પાપવાસના ચાલી ગઇ છે એવા એ પુરૂષને પગે લાગ્યો. પૂજ્યભાવે હાથ જોડીને હું બોલ્યોઃ

૧૫૧૦-૧૫૧૧. "'હે પરમપૂજ્ય, રાગ અને દ્વેષનો નાશ કરવા, ધનજનનો મોહ છોડવા અને પાપપ્રવૃત્તિઓમાંથી નિવૃત થવા માટે હું આપનો શિષ્ય થવા ઇચ્છું છું. જન્મમરણનાં વમળ જ્યાં ઘેરાય છે, મૃત્યુ બંધન ને વ્યાધિરૂપી સમુદ્ર રાક્ષસ જ્યાં પ્રવર્તે છે એવા સંસારસાગરથી તમારૂં શરણરૂપી શઢ લેઇને તરી જઇશ.'

૧૫૧૨-૧૫૧૩. "કાનને ને હૃદયને મધુર લાગતે સુરે એ બોલ્યાઃ 'મરતા સુધી સાધુનો ધર્મ પાળવો ને ભાર વહેવો એ કંઇક કઠણ છે. ભલે ને માથે જડ વસ્તુનો ભાર વહેવો એ માણસ માટે બહુ સહેલું છે, પણ ધર્મનો ભાર વહન કરવો ઘણું કઠણ કામ મનાય છે.'

૧૫૧૪-૧૫૧૫. " મેં ઉત્તર આપ્યોઃ '(જીવનના એક કે બીજા હેતુ માટે અર્થાત્) આનંદ, પવિત્રતા કે લાભની ઇચ્છા જેને હોય તે જો નિશ્ચય કરે તો એને કશું વસમું નથી. ગૃહસ્થાશ્રમમાંથી નિકળી સાધુજીવન ગાળવાનો મેં નિશ્ચય કર્યો છે, કારણ કે એથી જ દુઃખ ટળશે.'

૧૫૧૬-૧૫૨૪. "પછી મને એ સાધુએ જીવને તારનાર અને જન્મમરણમાંથી મુક્તિ અપાવી મોક્ષે લેઈ જનાર વીતરાગ દીક્ષા આપી. આ સાધુધર્મ પંચમહાવ્રત સ્વરૂપ છે, તેથી તેનું રહસ્ય, અને વિનય, પ્રત્યાખ્યાન, પ્રતિક્રમણ, સમ્યગ્ભાષણ વિગેરે આચાર-વિચાર એમણે મને સમજાવ્યા. ત્યાર પછી ક્રમથી મને જૈન આગમોનો અભ્યાસ કરાવ્યો; એમાં સૌથી પ્રથમ હું ઉત્તરાધ્યયનરૂપે ગણાતાં ૩૬ અધ્યયનો શીખ્યો. એ અધ્યયનોમાં બ્રહ્મચર્ય, ગુપ્તિ, કર્મ વિગેરેનું સ્વરૂપ બતાવેલું છે. એના પછી આચારાંગસૂત્ર ભણ્યો, એમાં મુક્તિમાર્ગ બતાવનાર નવ અધ્યયનો આવેલાં છે. એના પછી સૂત્રકૃત, સ્થાન અને સમવાય નામનાં શાસ્ત્રો ઉંડે ઉતરીને નિયમ પ્રમાણે શીખ્યો. તે પછી શેષ રહેલા કાલિકસૂત્રો અને અંગપ્રવિષ્ટ ગ્રંથો શીખ્યા બાદ પૂર્વગત ગ્રંથોનો પણ બરાબર અભ્યાસ કર્યો, એણે કરીને જગતના ભાવિક અને મૌલિક સ્વરૂપનું મને જ્ઞાન થયું. આવી રીતે બાર વર્ષ ભણવામાં ને સાથે સાથે સંસાર ઉપરનો મોહ છોડવામાં ચાલ્યાં ગયાં. આમ સમ્યગ્ જ્ઞાન અને આત્મસંયમ વડે હું મારા આત્મકલ્યાણને માર્ગે આગળ વધતો જાઉં છું અને લોકોને પણ એ અનુત્તર-સર્વશ્રેષ્ઠ ધર્મનો ઉપદેશ આપ્યા કરૂં છું."

(૧૧. ત્યાગ અને સાધના.)

૧૫૨૫-૧૫૨૯. (સાધ્વી આગળ કથા કહે છેઃ) જ્યારે અમે આ ખેદજનક અનુભવ સાંભળ્યો, ત્યારે અમે અનુભવેલું દુઃખ નવેસરથી તાજું થયું. આંસુભરી આંખે અમે એકબીજા તરફ જોયું (અને અમને લાગ્યું): 'આ પુરૂષ આપણને વિષ તેમજ અમૃત સમાન નિવડ્યા છે. (વળી અમે વિચાર્યું) જ્યારે એકવારના આ મહાપાપીએ પણ પોતાના ઉપર વિજય મેળવ્યો છે, ત્યારે આપણે તો દુઃખનો નાશ કરવાને માટે, જરૂર જ તપસ્યા કરવી જોઇએ. વીતેલાં દુઃખનો વિચાર કરતાં અમને સ્નેહવિલાસ ઉપર ઉપરતિ થઇ અને અમે એ પવિત્ર પુરૂષને પગે પડયાં. પછી પાછાં અમે ઉભાં થયાં, મેં બે હાથ જોડી કપાળે અડાડી અમારા એ જીવનતારકને અને પછીથી બની રહેલા અમારા સન્મિત્રને કહ્યું:

૧૫૩૦-૧૫૩૩. 'જે ચક્રવાકનું જોડું માનવદેહમાં તમારે હાથે લૂંટારાની ગૂફા-માંથી ઉગરી ગયું તે અમે પોતે જ છીએ. તમે અમને જ્યારે જીવન આપ્યું ત્યારે તો હવે દુઃખમાંથી મોક્ષ પણ આપો. મરણ અને દુઃખ જ્યાં રોજરોજ આવ્યા જ જાય છે એવા જીવનરૂપની સાંકળોવાળો ચંચળ સંસાર અમને સંતાપે છે. અમને નિર્વાણની ઇચ્છા છે. તીર્થંકરોએ બતાવેલે પવિત્ર માર્ગે અમને, કૃપા કરીને દોરી જાઓ! સાધુ-જીવનનાં વિવિધ શાસનો અમારી જાત્રાનું ભાથું હો!'

૧૫૩૪–૧૫૪૨. એ મહાસંયમી બોલ્યા: ‘ધર્મને જે આત્મિક બળ રાખી પાળે છે, તે જરૂર બધાં દુઃખમાંથી તરત મુક્તિ પામે છે. જો તમે પુનર્જન્મનાં વિવિધ પરિણામોનાં દુઃખ ટાળવા ઇચ્છતાં હો, તો સ્વાર્થવૃત્તિ છોડી દો ને હવે હમેશને માટે તપસ્યા કરો. માણસ એ તો જરૂર જાણે છે જ કે મરણ આવશે, પણ ક્યારે આવશે તે માત્ર જાણતો નથી; તેથી એ આવે તે પહેલાં તેણે ધર્મ પાળી લેવો જોઇએ; હાથણી વગાડતું મોત આવે, ત્યાર પછી તો કંઇ તપસ્યા થઇ શકે નહિ. જ્યાં લગી ઇંદ્રિયો સાબુત હોય અને શરીર ચાલતું હોય ત્યાં સુધી માણસ મુક્તિની તૈયારી કરી શકે. જીવન ચંચળ છે અને અનેક વિઘ્નોથી ભર્યું છે, માણસે એના ઉપર વિશ્વાસ ન રાખવો અને પારમાર્થિક કાર્ય કરવા માટે ક્ષણભરનો પણ વિલંબ ન કરવો. જો મરણ ને દુઃખ કંઇ હોય જ નહિ તો માણસ ધર્મ આચરે કે છોડે તે પાલવે; પણ જો મરણ આવવાનું જ છે તો કરેલી આળસ માથે પડશે. તેથી શરીર સાજું હોય ને શક્તિઓ સારી પેઠે હોય ત્યાં સુધી જ જીવન-સુધારણાનું કાર્ય મનુષ્ય સફળતાપૂર્વક કરી શકે છે.’

૧૫૪૩–૧૫૪૬. એ પવિત્ર પુરૂષના શબ્દો સાંભળીને સંસાર ઉપર અમને ક્ષોભ થયો અને પવિત્ર જીવન આરંભવાનો અમે નિશ્ચય કર્યો. તેથી અમે ત્યાં જ અમારો શણગાર ઉતારી દીધો અને દાસીઓને સોંપી દેઇ કહ્યું: “અમારાં માબાપને આ સોંપજો અને કહેજો કે ‘એ બંને દુઃખથી અને જન્મમરણના પરંપરાથી કંટાળ્યાં છે. અને એટલા માટે એ દુઃખથી પાર કરનાર ધર્મમાર્ગે ચઢ્યાં છે. અવિચાર અને બેદરકારીને કારણે અમે જે સારાનરસા આચારથી તમને હેરાન કર્યાં હોય એને માટે તમે અમને ક્ષમા આપજો.’ ”

૧૫૪૭–૧૫૪૯. આ સમાચાર દાસીઓમાં ફેલાતાં તે તથા નર્તકીઓ પણ દોડતી આવી. એ મારા પ્રિયને પગે પડ્યાં ને કાલાવાલા કરવા લાગ્યાં: ‘અમને અનાથ કરી મારી નાખો ના!’ કેટલીકે એમના પગને અડવા ફુલ વેર્યાં, જે ફુલ એમણે જાણી જોઇને હાથમાંથી સેરવી દીધાં હતાં (અને તે બોલી):

૧૫૫૦–૧૫૫૨. ‘અમારા જીવનમાં વગર કંટાળ્યે અમારી (શુભ) કામના પ્રમાણે તમારા આલિંગનની આશામાં અમે અમારા જીવનને આનંદી માનતી આવી છીએ. હવે એ અમારી કામના તમારી પાસેથી જો પરિપૂર્ણ ન થાય તો ભલે માત્ર તમને જોઈને જ અમે સંતોષ ધરીશું. શ્વેત કમળ જેવા ચંદ્રને માણસ જો અડકી શકે નહિ, તોય એના શુદ્ધ બિંબને જોઈ કોને આનંદ ના થાય!’

૧૫૫૩–૧૫૫૯. એમ તે સ્ત્રીઓ અનેક રીતે રોવા લાગી અને મારા સ્વામીને પોતાના વિરક્તભાવમાંથી પાછા વાળવા કાલાવાલા કરવા લાગી. પણ આવાં પ્રલોભનોની પરવા કર્યા વિના અને પોતાને અડવા દીધા વિના મારા પ્રિય એ બધાંથી ફરી જઇને પેલા સત્પુરૂષ તરફ મોં કરીને ઉભા. સંસારથી વિરક્ત થઇને સાધુજીવનમાં પ્રવેશવા માટે એમણે જાતે જ એકેએક બધા વાળ ખુંટી નાખ્યા. મેં પણ પોતે મારા બધા વાળ ખુંટી નાંખ્યા ને મારા સ્વામી સાથે એ સાધુને પગે પડી, અમે પ્રાર્થના

કરીઃ 'અમને દુઃખમાંથી મોક્ષ આપો.' તે ઉપરથી એમણે આગળ કહ્યા પ્રમાણે (સાધુસાધ્વીઓને માટે નક્કી થએલું) સામાયિક વ્રત અમારી પાસે લેવરાવ્યું. (તેમાં એવી પ્રતિજ્ઞા લેવાની છે કેઃ 'હે પૂજ્યપુરૂષ, હું સામાયિક વ્રત પાળીશ, એટલે જ્યાં સુધી એ વ્રતમાં હોઇશ ત્યાં સુધી ધર્મથી મના કરેલાં બધાં અસત્કર્મોનો ત્યાગ કરીશ, અને મનસા વાચા કાયા, બનતા સુધી હું જાતે એવાં કર્મ નહિ કરૂં; બીજા પાસે નહિ કરાવું, તેમ જો કોઇ કરે તો તેમાં સમ્મતિ પણ નહિં આપું; આવાં બધાં કર્મોથી, હે પૂજ્યપુરૂષ, હું દૂર રહીશ.') આ વ્રત જો સરળતાથી સારી રીતે પળાય તો મોક્ષ પમાય. વળી આ વ્રતને કારણે જીવહિંસાથી, અસત્યથી, અસ્તેયથી, સ્ત્રીસંસર્ગથી અને પરિગ્રહથી તથા રાત્રિભોજનથી, અમારે દૂર રહેવાનું હતું. વળી જીવનના, મરણના અને દેહના સંબંધોથી ત્યાગ કરવા જણાવનારાં જે ઉપવ્રતો તે પણ અંતે અમે ગ્રહણ કર્યાં.

૧૫૬૦-૧૫૬૬. ચાકરોએ ખબર પહોંચાડ્યાથી અમારાં માબાપ ત્યાં આવી પહોંચ્યાં અને અમારી દીક્ષાની વાત સાંભળીને નગરમાંથી બાળકો વૃદ્ધો ને સ્ત્રીઓ પણ ઉત્કંઠિત થઇને આવી પહોંચ્યાં. એમ એ મોટો બાગ સંબંધીઓથી અને અનેક જિજ્ઞાસુજનથી ભરાઈ ગયો. લોકનાં શરીર એકબીજાથી દબાવા લાગ્યાં અને મ્હોંમાથાંનો પરથાર થઈ ગયો હોય એટલી ભીડ થઈ ગઈ. વ્રતના નિયમને અનુસરીને અમે અમારૂં એકે એક ઘરેણું ઉતારી દીધું હતું એ જોઇને અમારાં સગાં તો રોવા મંડ્યાં, અને અમારાં બંનેનાં માબાપ તો આવતાંની સાથે જ છુટે મ્હોંડે રડવા લાગ્યાં. વળી મારાં સાસુસસરા તો અમને જોતાની સાથે જ મૂર્છા ખાઇ જમીન ઉપર પડ્યાં. મારાં માબાપનો આત્મા ધર્મના બોધથી કંઈક વિશુદ્ધ બનેલો હતો અને એ જન્મમરણના સંસારદુઃખને જાણતાં હતાં જ, તેથી એ પોતાની આંખનાં આંસુ કંઇક ખાળી શક્યાં, ત્યારે મને ઠપકો દેતાં હોય એમ નહિ, પણ વારતાં હોય એમ બોલ્યાંઃ

૧૫૬૭-૧૫૬૮. 'દીકરી, તારી આ નાની ઉમરમાં આ તે તેં શું સાહસ કર્યું? આવી કુમળી સ્થિતિમાં સાધુજીવનનાં ધર્મકર્મ પાળી નહિ શકાય. તારી નિર્બળતાને કારણે એ જીવનમાં પાપ ના થઇ જવાય એટલા માટે હજી ચેતી જા. જ્યારે જીવનના આનંદને ભોગવી રહે ત્યારે તું સાધુજીવન લેજે.'

૧૫૬૯-૧૫૭૦. હું બોલી ઉઠીઃ 'જીવનના આનંદોનો ભોગ તો ક્ષણિક છે અને પછીથી તે કડવા બની જાય છે. કુટુંબજીવનથી ઘણું દુઃખ ખમવું પડે છે, નિર્વાણના જેવું કશું સારૂં નથી. બને ત્યાંસુધી માણસે ધર્મને માર્ગે આવી જવું જોઇએ એમાં કલ્યાણ છે; મોત આવી ચઢે તે પહેલાં આપણે પરવારી લેવું જોઈએ.'

૧૫૭૧. ત્યારે મારા પિતાએ ઉત્તર આપ્યોઃ 'જાળામાં લૂટારા ભરાઈ રહે એમ ઇંદ્રિયો ભરાઇ રહેલી છે જેમાં, એવી તમારી જુવાની હોવા છતાં યે આ સંસાર-સાગરની ઉપર થઇને નિર્લેપતાએ તરી જજો.'

૧૫૭૨. એટલામાં સગાંસંબંધીના ઉપચારથી મારાં સાસુસસરાને ચેતન આવ્યું, તેમણે મારા સ્વામી તરફ જોઇને કહ્યુંઃ

૧૫૭૩-૧૫૭૭. ' દીકરા, આ તને કોણે શીખવ્યું ? અમારી સાથે રહેવું તને ના ગમ્યું ? એવું તે તને શું દુઃખ પડ્યું કે કંટાળીને તું સાધુ થઇ ગયો ? આધ્યાત્મિક જીવનથી જ નહિ પણ ધર્મવિહિત સંસારભોગથી પણ સ્વર્ગ મળે છે. અને લોકમાં કહેવત છે કે જીવનમાં સ્ત્રી એ રત્નરૂપ છે. અપ્સરા જેવી સુંદર તારે માટે અહીં સ્ત્રીઓ છે. તું જ્યારે સ્નેહ ભોગવી રહે ત્યારે ધર્મજીવન પાળજે. આપણા વિશાળ ધનને, અમને પોતાને અને (તેં છોડવેલી) આ દીકરીને, એ બધાંને તું શું છોડી જશે ? હજી યે થોડાં વર્ષ તું જીવનનો આનંદ ભોગવી લે; ત્યાર પછી, જ્યારે આવા કઠણ વ્રત સ્વીકારવાના દહાડા આવે ત્યારે તું તે ખુશીથી લેજે.'

૧૫૭૮. શેઠને પુત્રે દૃઢમને દૃષ્ટાન્તો દેઇને (અને રડીઆ આપીને) પોતાનાં માબાપના કાલાવાલાભર્યા શબ્દોનો આમ જવાબ આપ્યો:

૧૫૭૯-૧૫૯૩. " અજ્ઞાને કરીને રેશમનો કીડો જેમ પોતે ઉપભોગ કરવાને પોતે જ વણેલા કોકડામાં ગુંચાઈ રહે છે, તેવી જ રીતે મોહાન્ધ પુરૂષ ઉપભોગની લાલસાએ સ્ત્રીને કારણે માયામાં પડે છે અને તેથી અનેક દુઃખ ભોગવે છે. ખોટા રૂપથી ભોળવાઇને અને મોહથી ભરમાઇને વિવિધ પ્રકારની વસ્તુઓરૂપ કાંટાવાળા સંસાર-માર્ગના જાળામાં એ ફસાઈ પડે છે. સ્ત્રીના વિજોગથી જેટલું દુઃખ થાય છે એટલું પણ સુખ સ્ત્રીથી એને મળી શકતું નથી. ધનમાલથી પણ દુઃખ છે, તેને પ્રાપ્ત કરતાં પણ દુઃખ અને સાચવતાં પણ દુઃખ; અને જ્યારે નાશ પામે છે ત્યારે ખેદ થાય છે. અને માબાપ, ભાઈ, વહુ, છોકરાં ને સગાંવહાલાં એ તો નિર્વાણના માર્ગમાં બંધનની સાંકળો છે. જેમ સંઘમાં એકઠા મળેલા લોક એકબીજાની સાથે રહેવા ઇચ્છે છે અને પ્રવાસનાં દુઃખને લેઇને સાથે ચાલે છે, પણ વનમાં (ભય) આવી પડતાં જુદી જુદી દિશામાં પોતપોતાને માર્ગે વેરાઈ જાય છે, તેમ સગાંસંબંધી આ સંસારજાત્રામાં સ્નેહસંબંધે સુખદુઃખ ભોગવવાને અને એકબીજાને મદદ કરવાને એકઠાં મળ્યાં છે, પણ પછી મરણ થવાથી કે સંસારમાંથી નિકળી જવાથી એ જુદાં પડે છે, ત્યારપછી પોતપોતાનાં કર્મ પ્રમાણે પોતપોતાને માર્ગે ચાલતાં થાય છે. પોતાનાં સંબંધીઓ વિના કે બીજી કશી પ્રતીતિ વિના માણસે પોતે જ મોહ છોડીને સમજી જવું જોઇએ કે એમાંથી મુક્ત થયે જ નિર્વાણને માર્ગે જઈ શકાશે; અને તેને સારી રીતે નિશ્ચય થયો હોય તો તો કાળદેવ પોતાની ગુફામાંથી નિકળીને જીવન તોડી નાખે તે પહેલાં જ પોતે ડાહ્યા થઇને અને જાતને કબજે રાખીને કરવા જેવું કરી લેવું જોઇએ. તેથી અંતર્દૃષ્ટિ અને ઇચ્છાબળવાળો પુરૂષ તો, સ્વર્ગનો માર્ગ સહેલો કરવો હોય તો, કશાને (ન તો વસ્તુને કે ન તો માણસને, ન તો માતને કે ન તો સગાંને) વળગી ન રહે. ત્યારે 'હજી યે થોડાં વર્ષ તું જીવનનો આનંદ ભોગવી લે' એવો જો છેવટે ઉપદેશ તમે આપતાં હો તો એ પણ ભૂલ છે, કારણ કે સંસાર તો અનિત્ય છે અને જીવનની

કોઇને ખાતરી નથી. મરણની સત્તાને અહીં કોઇથી હડસેલી શકાતી નથી, તેથી એ આવે તે પહેલાં, વખત ખોયા વિના માણસે આ વ્રત લેઇ લેવું ઉચિત છે."

૧૫૯૪–૧૬૦૨. આવાં આવાં વચનોથી શેઠને પુત્રે પોતાનાં માબાપને અને સગાંસંબંધીઓને પાછાં જવા સમજાવ્યું; વળી જે મિત્રો એમની સાથે નાનપણથી ધૂળમાં રમીને મિત્રતાને બંધને બંધાયા હતા તેમને પણ પાછા જવા સમજાવ્યું. પોતાના પુત્ર ઉપરની ખૂબ મમતાને કારણે અમને છોડીને જવું શેઠને ગમતું નહોતું અને એમણે કહેલી વાત અમને ગમતી નહોતી, કારણકે જે સાધુજીવનનું વ્રત અમે લીધું હતું તેને પાળવાની જ અમારી ઇચ્છા હતી. (પાસે ઉભેલા) ઘણા લોકોએ જ્યારે કહ્યું: 'પોતાની ઇચ્છા પ્રમાણે એ બે જણ પોતાની આધ્યાત્મિક સાધના ભલે સાધે, કારણકે જન્મમરણની ચિંતાથી એ પીડાય છે; સંસારસુખથી પાછા હઠેલા અને તપસ્યા તરફ વળેલા ચિત્તને જે પકડી રાખે છે તે મ્હોં ઉપરથી મિત્ર છે, પણ સાચી રીતે તો શત્રુ છે,' ત્યારે અંતે લોકોએ કહેલા સમજાવટના એ શબ્દોથી માની જઇને, માત્ર કમને, (કુટુંબથી) અમને જુદા પડવાની એમણે રજા આપી અને એ હાથ જોડીને બોલ્યાઃ 'ત્યારે તમે આત્મસયમ પાળવામાં અને તપો કરવામાં વિવિધ પ્રકારની કઠણ સાધ-નાઓવાળી તપસ્યા આચરીને પાર ઉતરો. આ ક્ષણભંગુર સમુદ્રમાંથી, જન્મમરણનાં રેનાં મોજાંમાંથી, એક ખોળેથી બીજે ખોળે જવાનાં વમળમાંથી, અષ્ટપ્રકારનાં મોંએ ફરીને વલોવાતા જળમાંથી જોગવિજોગના કલેશનાં તોફાનમાંથી અને તેના મો-ડમાંથી પાર ઉતરી જાઓ.'

૧૬૦૩–૧૬૦૭. વખતે અમારા પગ નગર તરફ વળવાનું મન કરે, પણ આ ચનોથી શેઠ ભલા થઇ તેમને અટકાવ્યા. નગરશેઠે (મારા પિતાએ) તો કહ્યું: 'તમે ધન્ય છો કે (ગૃહસ્થજનને પાળવા જેવું જે સાદું વ્રત એ નહિ પણ) પુરૂં વ્રત લીધું છે અને તેથી કલેશમય ગૃહજીવન તજી દીધું છે અને સ્નેહના બંધમાંથી ને બેડીઓમાંથી છુટાં થયાં છો. સુખદુઃખમાં સમાન થવાય એવાં મોહમુક્ત ધર્મસ્વરૂપ તમે ધારણ કર્યાં છે. સ્ત્રીજાળ તોડીને, સ્નેહસર્પમાંથી છુટીને જે વિનાઅભિમાને ને વિનાક્રોધે તીર્થંકરોના ઉપદેશને અનુસરે છે તેને ધન્ય છે. અમે તો હજી લોભ અને ભોગમાં આનંદ માન્યા જઇએ છીએ અને મોહના પાશથી ને સાંકળોથી બંધાયલા હોવાથી તમારી સાથે આવી શકીએ એમ નથી.'

૧૬૦૮–૧૬૧૩. આમ નગરશેઠે સાધુવ્રત ઉપર અનેક રીતે વ્યાખ્યાન કર્યું, કારણ કે એ બાબતમાં એમને ઉંડું જ્ઞાન હતું. પણ બંને કુટુંબની સ્ત્રીઓ, અમારા ઉપરના સ્નેહને લીધે રડાયું એટલું રડી; એટલા વિલાપ કર્યા, એટલાં ડુસકાં ખાધાં કે વરસાદથી પલળે એમ આગની જમીન એમનાં આંસુથી પલળી ગઇ. અંતે શેઠ ને નગરશેઠને સ્ત્રીઓ, સંબંધીઓ, અને મિત્રોને લેઇને, દાસ તથા દાસીઓને લેઇને, સૌને રડતાં લેઇને પાછા નગરમાં આવ્યા. અને (જતાં જતાં ય નગરશેઠ અમારા તરફ

પાછું વાળી જોતા હતા, ત્યારે માણસોના ટોળામાં પેલા ભવ્ય સાધુને એમણે જોયા.) અમારા સંસારત્યાગથી ચકિત થતા અને ધર્મ ઉપરની આસ્થામાં ડુબેલા એ સૌ લોક જ્યાંથી આવ્યા હતા ત્યાં ચાલ્યા ગયા.

૧૬૧૪–૧૬૨૧. હવે એક સાધ્વી એ સાધુનાં દર્શન કરવાને એમની પાસે આવી; એનો દેખાવ સાધ્વીને ઘટે એવો જ હતો. તે નમ્ર હતી, ને ધર્મનું તેમજ સાધ્વીઓનું રક્ષણ કરનારી હતી; તપસ્યામાં તથા જ્ઞાનમાં પ્રખ્યાત થયેલી ('મહાવીર દેવના શાસનમાં પ્રખ્યાત થયેલી) સાધ્વી ચંદનાની એ શિષ્યા હતી. એણે ધર્મિષ્ઠ સાધુનાં અને એમના સાથનાં દર્શન કર્યાં, ત્યાર પછી સંઘનિયમોના પોતાના જ્ઞાનને લીધે એ બોલ્યાઃ 'સંસારદુઃખથી વિરક્ત થતી આ સાધ્વીને તમારી શિષ્યા બનાવો.' સાધ્વીએ પોતાની ખુશી બતાવી, તેમાં તેમના આત્માનો વિવેક અને સાધુજીવનમાં પણ પળાતી સભ્યતા સાફ તરી આવતી. પછી એ સાધુએ મને કહ્યું: 'આ સાધ્વીની પૂજા કર, એ સાધ્વી પોતાના રક્ષણ નીચે તને લેઇ જાય છે, પંચમહાવ્રતના ધર્મમાં સફળ થએલાં એ પ્રસાધ્વી સુવ્રતા છે.' યોગ્ય રીતે મેં કપાળે હાથ અડાડીને નમસ્કાર કર્યા, અને નિર્વાણને પંથે ચઢવા માટેની આકાંક્ષાએ એ સાધ્વીને પગે પડી. એમણે મારા તરફ જોઇને આશીર્વાદ આપ્યાઃ 'પાળવે અઘરૂં એવું જે સાધ્વીજીવન તે તને સફળ થાઓ. અમે તો માત્ર ઉપદેશ આપીને તને ધર્મને માર્ગે ચઢાવીશું; જો તું સત્યરીતે પ્રયત્ન કરીશ તો નિર્વાણને માર્ગે ચઢી શકીશ.'

૧૬૨૨–૧૬૨૭. મેં ઉત્તર આપ્યોઃ 'પૂજ્ય સાધ્વીજી, જન્મમરણથી ભર્યા સંસારપ્રવાહમાં અથડાવાનો ભય મને બહુ લાગ્યો છે, તેથી તમારા શબ્દોને અનુસરીશ.' પછી (છુટાં પડતી વખતે) પોતાની વિશાળ ને કઠણ તપસ્યાને બળે બળતા અગ્નિસમાન દીસતા એ સાધુને શ્રદ્ધાપૂર્વક મેં નમસ્કાર કર્યો. તેમજ પ્રેમનો ત્યાગ કર્યો છે અને સર્વોચ્ચ સાધના ગ્રહણ કરી છે જેમણે એવા એ વણિક્પુત્રને પણ (એમની વિદાય લેતાં) નમસ્કાર કર્યો. ત્યાર પછી સ્ત્રીઓ જ આવી શકે એવા અમારા શાન્ત એકાન્ત મઠમાં આ સાધ્વીઓની સાથે જવા માટે (એ પ્રસાધ્વી તથા એમની સંગિનીઓ સાથે) નગર તરફ ચાલતી થઈ. એટલામાં તો આકાશના શણગારરૂપ સૂર્યે પશ્ચિમમાં ઉતરવા માંડ્યું. પ્રસાધ્વીની સાથે જ્ઞાનની અને (આજ સુધીના વ્યવહારના) ત્યાગની વાતો કરતાં કરતાં ધર્મમાં શ્રદ્ધા બેસાડતી હતી ને એમાં રાત કેમ પડી ગઇ એ તો જણાયું ય નહિ.

૧૬૨૮–૧૬૩૦. બીજે દિને તે વણિક્પુત્ર તથા તે ઉત્તમ (અમને દીક્ષા આપનાર) સાધુ કંઇ પણ સ્થાન નિર્ણય કર્યા વિના પરિભ્રમણ કરવાને માટે અન્ય દિશામાં નિકળી પડ્યા. મને તો એ પ્રસાધ્વીએ બંને પ્રકારના (સાધુજીવનમાં અને સાધ્વીજીવનમાં પાળવાના) નિયમો શીખવ્યા, અને હું તપસ્યામાં તથા સંસારત્યાગમાં દૃઢ થઇ. આવું

જીવન ગાળતાં ગાળતાં (થોડું એક સ્થાનમાં રહીએ અને થોડું સ્થાને સ્થાને પરિભ્રમણ કરીએ એમ કરતે કરતે) અંતે અહીં (રાજગૃહ નગરમાં) અમે આવી પહોંચ્યાં છીએ; અને આજે (મારી સહચરો સાથે) છઠના પારણાને માટે ભિક્ષા માગવા નિકળી છું.

૧૬૩૧. (શેઠાણી,) તમારા પુછયા પ્રમાણે, ગયા જન્મમાં અને ત્યાર પછી જે સુખદુઃખ ભોગવ્યાં છે અને તેનાં જે પરિણામ આવ્યાં તે બધું આ વર્ણવી બતાવ્યું.

(૧૨. પ્રશસ્તિ.)

૧૬૩૨–૧૬૩૬. સાધ્વી તરંગવતીએ પોતાની કથા પુરી કરી ત્યારે શેઠાણીએ વિચાર્યું: 'કેવું કઠણ આમણે કર્યું છે ! આવી કુમળી અવસ્થામાં, આવી સારી સ્થિતિમાં, આવું વૈધવ્યવ્રત ગ્રહણ કરીને પણ આવી કઠણ તપસ્યા !' અને તેણે નગરશેઠની દીકરીને કહ્યું: 'હે સાધ્વી, તમારા જીવન સંબંધે પ્રશ્ન પુછીને મેં આપને જે આટલું બધું કષ્ટ આપ્યું તેને માટે કૃપા કરીને ક્ષમા આપો.' તે એને પગે પડી અને અનંત ભવસાગરના કલેશને કારણે કહેવા લાગી: 'સંસારભોગના કાદવમાં કળી ગયેલાં એવાં જે અમે તેમનું શું થશે ! મોહાન્ધકારે અમને ઘેરી લીધાં છે અને ત્યારે તમે તો કઠણ આ સાધુજીવન ગ્રહણ કર્યું છે. છતાં યે અમને બતાવો કે પુનર્જન્મમાં કષ્ટ ટાળવાને માટે અમારે શું કરવું જોઇએ ?'

૧૬૩૭–૧૬૪૧. તરંગવતીએ જવાબ દીધો: 'તમે સાધુજીવન પાળી શકો એમ ન હો, છતાં યે સંસારમાં એવી રીતે રહો કે તીર્થંકરના ઉપદેશ પ્રમાણે ચાલી શકો.' તે સાધ્વીના આ શબ્દો અમૃતની પેઠે શેઠાણી ઉતારી ગઈ અને મહાકૃપાએ મળ્યા હોય એમ માનવા લાગી. અંતે નિશ્ચય કરીને શ્રદ્ધાપૂર્વક ગૃહસ્થધર્મ પાળવાનું માથે લીધું અને (સજીવને ઉગારવા માટે) સજીવનિર્જીવ વચ્ચેનો ભેદ જાણી લીધો. આમ (ગૃહસ્થજન પાળી શકે એવાં) સરળ પાંચ વ્રતો અને બીજી અનેક ક્રિયાઓ અને વિધિઓ એણે પાળવા માંડી. જે જુવાન દાસીઓએ પણ આ કથા સાંભળી હતી તેમને પણ અસર થઈ અને તીર્થંકરોના ઉપદેશ ઉપર ઉંડી શ્રદ્ધા તેમને બેઠી.

૧૬૪૨. સાધ્વીએ અને તેની સહચરીએ (પોતાના ધર્મને બાધ ન આવતો હોય એવી) ભિક્ષા લીધી અને જોઇજોઇને અને જાળવીજાળવીને પગલાં ભરતી જ્યાંથી આવી હતી ત્યાં એ પાછી ગઈ.

૧૬૪૩. તમને (સાંભળનારને અને વાંચનારને) મેં આ કથા આધ્યાત્મિક જ્ઞાન થાય એટલા માટે કહી બતાવી છે. આના શ્રવણથી સર્વ દુરિત દૂર થાઓ અને જિનેશ્વરની ભક્તિમાં તમારૂં મન લીન થાઓ.

૧૬૪૪. હાર્ઇય પુરીય ગચ્છમાં થએલા આચાર્ય વીરભદ્રના શિષ્ય સાધુ નેમિચન્દ્રગણિએ આ કથાનું આલેખન કર્યું.

आवश्यक सूचना.

जैन साहित्य संशोधकनी आन्तरिक अने बाह्य व्यवस्थामां खास केटलाक सुधारा वधारा करवामां आवनार छे अने हवे पछी आ पत्र वधारे नियमित अने व्यवस्थित रूपे प्रकट थाय तेवी स्थायी योजना करवामां आवनार छे. तेथी ए बधी व्यवस्थानो सुप्रबन्ध थई रह्या पछी ज हवे त्रीजा खंडनो प्रारंभ करवामां आवशे अने तेनी विशेष सूचना जाहेर पत्रक द्वारा सर्वने विदित करवामां आवशे. माटे त्रीजा खंडना नवीन ग्राहक थवानी अगर चालू रहेवानी जे सज्जनोनी इच्छा होय तेमणे ए सूचना मळ्या पछी ज कार्यालय साथे पत्रव्यवहार करवा निवेदन छे.

—जिन विजय।

आ पछीना पानावाळुं मजकूर सौथी प्रथम अने अवश्य वांचशो.



संपादकीय निवेदन



बीजा खंडनो बीजो अंक ज्यारे गया वर्षना ज्येष्ठ मासमां प्रकट थयो हतो त्यारे त्रीजा अंकनुं पण केटलुं मुद्रण थई चुक्युं हतुं अने ते पछी थोडा ज समयमां ते प्रकट करी शकाशे एवी आशा रहेती हती तेथी तेवी सूचना पण ए बीजा अंकना मुखपृष्ठ उपर आपी देवामां आवी हती । पण धार्या प्रमाणे तेमांनुं कशुं थयुं नहि अनेक आन्तर-बाह्य अगवडोना सबबे लगभग आखा वर्ष जेटलो लांबो समय व्यतीत थई गयो—पण ए अंक ग्राहकोने पहोंचाडी शकायो नहि । छेवटे आजे त्रीजो अने चोथो—एम बंने अंको एक साथे ज रवाना करवानो प्रसंग प्राप्त थयो छे । नियतरीते काम करी शकवानी अगवडनो विचार करतां मारी जातने तो एथी पण कांईक आश्वासन मळे छे अने आम विलंबे-पण आजे बीजा खंडना ग्राहकोना ऋणमांथी मुक्त थवानो जे अवसर मने मळे छे ते जाणी मारा दिलनो भार कांईक हलको थाय छे ।

जैन साहित्य संशोधकना ग्राहकोनी संख्या आजे घणी ओछी छे । एटली बधी ओछी छे के तेनी पासेथी आवता वार्षिक-मूल्यवडे मात्र एक अंकनो प्रेसचार्ज पण पूरो थई शकतो नथी । एटली ओछी संख्याना आधारे सामान्य प्रकारनुं मासिक पत्र पण चलाववानो कोई उद्योग न करे तो पछी आ प्रकारना प्रौढ, दळदार, अने खूब खर्चाळ पत्रना प्रकाशननो तो मनोरथ पण कोण करी शके । वस्तुस्थिति आवी होवा छतां पण आजे आ पत्र जे बीजा खण्डनी समाप्तिनी सीमाए पहुंचे छे तेनुं कारण फक्त एना पोषक, पालक, के संरक्षक,—जे कहुं ते—बंधु श्रीहरगोविंददास रामजीनी निष्काम दानशीलता अने बहुजन-दुर्लभ सात्त्विक सज्जनता छे । ए समानशील बन्धुनी सौहार्द-पूर्ण प्रेरणा अने विकल्प-वगरनी द्रव्यसहायताना प्रतापे ज आ पत्रे जन्म धारण कर्युं छे अने मात्र एक अनियमितताना रोगने छोडीने बाकी बधी सुंदर रीते बे वर्षनुं कीर्तिवन्त अने आकर्षक जीवन पसार कर्युं छे.

* * * * * *

सामान्यरीते आ प्रकारना उच्चकोटिना पत्रोना वाचको अने ग्राहको सर्वत्र ओछा ज होय छे; तेमां वळी आ पत्र तो एक अल्प संख्यक समाजवाळा धर्मना तात्त्विक विषयोने अनुलक्षीने ज खास पोतानुं कार्यक्षेत्र खेडतुं होवाथी, एना ग्राहकोनी संख्या-बहुलतानी आशा राखवानुं तो कशुं ज प्रलोभन न होई शके । छतां आ पत्रने पोताना निर्वाह-पुरता प्रबन्धनी तो समाज पासे आशा राखवानो हक्क होय ज—अने ते आशा पूरी करवी ए समाजनुं पण कर्तव्य होय ज । परंतु अद्यापि ए आशा पूरी थई नथी । एमां कांईक दोष आ कार्यालयनो पण खास छे; ए मारे प्रथम ज कबूल करवुं जोईए । कारण के एक तो पत्र नियमित रीते समय ऊपर प्रकट थतुं नथी अने बीजुं, ग्राहको तरफथी आवता पत्रो विगेरेनो यथा समय संतोष कारक उत्तर विगेरे आपी शकातो नथी । आवा प्रबन्ध शैथिल्यना लीधे घणा खरा जिज्ञासु ग्राहकोने निराशा थाय अने तेथी तेओ कंटाळी ग्राहक—श्रेणिमांथी पोतानुं नाम खातल करावे एमां तेमनो जराए दोष काढी न शकाय ।

* * * * * *

कार्यालय उपर आवता पत्रो अने प्रत्यक्ष थती मुलाखातो उपरथी मने ए तो चोक्कस खात्री थई छे के अत्यारे जे अल्पस्वल्प ग्राहक वर्ग आ पत्रनो रहेलो छे तेनो पत्र उपर खूब प्रेम छे अने पत्रने नियमित समये मेळववा अने वांचवा ते अति उत्सुक रहे छे । ए उत्सुकताना परिणामे घणा बन्धुओ तो अनेक प्रकारना उपालंभ भरेला पत्रो पण मारी उपर मोकली पोतानो पत्र उपरनो विशिष्ट अनुराग व्यक्त करे छे । हुं आ स्थळे ए

बधा बन्धुओना अनुरागनो उपकार मानुं अने तेनी साथे तेमनी जे प्रशंसनीय जिज्ञासाने संतोषी शकतो नथी ते माटे क्षमा पण मांगु; ए ज अत्यारे तो मारा माटे उचित कर्तव्य छे ।

कार्यालयना प्रबन्धमां आ जातनी जे शिथिलता छे तेनुं कारण पण मारे ग्राहको आगळ प्रकट करी देवानी फरज रहे छे । ए शिथिलता होवानुं कारण कोई जातनो प्रमाद नहि पण सहायकनो जे अभाव छे, ते ज छे । घणा खरा बन्धुओ तो जाणता ज हशे के छेल्ला ३–४ वर्षथी मारुं कार्यक्षेत्र पूना अने अमदावाद एम बे दूरवर्ती स्थळोमां समान भागे व्हेंचाई गएलुं छे । पूनानुं **भारत-जैन-विद्यालय** जेम मारी समग्र सेवानी अपेक्षा राखे छे तेम अमदावादनुं **गूजरात-पुरातत्त्व-मंदिर** पण समग्र सेवा मांगे छे । तेमांथी ए बंने स्थळे वर्षनो लगभग अडधो अडधो भाग रही हुं मारी अल्पशक्ति प्रमाणे ए बंने संस्थाओनी अडधी सेवा बजावी रह्यो छुं। आम आ संस्थाओना प्रबन्धमां ज हाल मारो समय मुख्यरीते व्यतीत थतो होवाथी जैन-साहित्य-संशोधकना प्रबन्धमाटे हुं वधारे समय काढी शकतो नथी अने तेथी ज उपर जणाव्या प्रमाणे एना कार्यमां अनियमितता अने अव्यवस्था थई रही छे ।

पत्रनुं दळ घणुं मोटुं-आखुं जाणे एक पुस्तक होय तेटलुं मोटुं-होवाथी छपावतां ज घणो वखत वह्यो जाय छे। जो कोई छापखानुं नियमितरीते काम आपे अने तेवी ज रीते तेने पाछुं तपासीने तरत मोकलवामां आवे तो ज मांड मांड त्रण महिने एक अंक पूरो छपाय । पण मारी तो स्थिति पूना अने अमदावाद वच्चे घडियाळना लोलकनी जेम महिने बब्बे महिने फरती रहे छे; तेथी महिनामां थई शके तेटलुं काम त्रण महिने पण थई शकतुं नथी अने तेमां प्रेसवाळाओनी अनियमितता जे हेरान करे छे ते तो वळी बाकी ज रहे छे । उदाहरण तरीके- आ अंकनो केटलोक भाग पूनामां छपाया बाद बाकीनो भाग अमदाबाद छपाववो शुरु कर्यो त्यारे, प्रेसवाळाना कथन उपर आधार राखी, गई होळी पहेलां ज ग्राहकोना हाथमां आ अंको पहोंचता करी देवानी इच्छाए पूनामां छपाएलो बधो भाग रेल्वे पार्सलथी अमदाबाद मंगाववामां आव्यो । पण ते प्रेस, कह्या प्रमाणे होळी सुधी काम पूरुं करी शक्यो नहि अने समय थए अमदावाद छोडी मारे पूना आववुं थयुं। एटले फरी ते बधुं काम पाछुं पूना आव्युं अने फाल्गुणना बदले आम ठेठ वैशाखमां आ अंक बहार पाडी शकायो । आवी एकंदर परिस्थिति छे ।

* * * * * *

सने १९२० ना जान्युआरी मासमां पहेला खंडनो प्रथम अंक छपाववो शुरु थयो हतो अने ते वर्षना एप्रील मासमां ए अंक प्रकट थयो हतो । आजे १९२५ ना एप्रीलमां आ बीजा खंडनो ४ थो अंक प्रकट थाय छे–एटले लगभग पांच वर्षमां बे खंडो बहार पड्या एम कही शकाय ।

* * * * * *

आ जातना साहित्य विषयक पत्रो सामान्यरीते बधा ज अनियमित के अर्ध-नियमित होय छे। इन्डियन् एंटीक्वेरी जेवा बहु-साधन-संपन्न मासिक पत्रो पण घणी वखते ६–८ महिना जेटली 'लेइट' थई जाय छे तो पछी बीजाओ थाय तेमां तो नवाई ज शी । वळी आवा पत्रोना लेखो केटला बधा परिश्रमे तैयार थाय छे तेनी पण साधारण वांचकने तो कल्पना सुधां आववी कठिन । एक एक लेख वर्षोना अभ्यासना परिणामे तैयार थई शके छे । दश पन्दर पंक्तिओना लखाण माटे घणी वखते आखी लाईब्रेरियो खोळी काढवी पडे छे । एक एक पंक्तिना टांचण माटे काम पडे तो सो–पचास रुपियानां पुस्तको खरीदवां पडे छे । केटलीक वखते महिनाओनी महेनते तैयार करेला लेखो एक आध दुष्प्राप्य पुस्तकना प्रमाण माटे वर्षो सुधी आमना आम फाईलोमां बांधी राखवा पडे छे । एटले आटली बधी महेनते तैयार थतां पत्रो के पुस्तको समयनी मर्यादाने तावे जो न रही शके तो तेमां कांई मोटो

संपादकीय निवेदन



बीजा खंडनो बीजो अंक ज्यारे गया वर्षना ज्येष्ठ मासमां प्रकट थयो हतो त्यारे त्रीजा अंकनुं पण केटलुंक मुद्रण थई चुक्युं हतुं अने ते पछी थोडा ज समयमां ते प्रकट करी शकाशे एवी आशा रहेती हती तेथी तेवी सूचना पण ए बीजा अंकना मुखपृष्ठ उपर आपी देवामां आवी हती। पण धार्या प्रमाणे तेमांनुं कशुं थयुं नहि। अनेक आन्तर-बाह्य अगवडोना सबबे लगभग आखा वर्ष जेटलो लांबो समय व्यतीत थई गयो–पण ए अंक ग्राहकोने पहोंचाडी शकायो नहि। छेवटे आजे त्रीजो अने चोथो–एम बंने अंको एक साथे ज रवाना करवानो प्रसंग प्राप्त थयो छे। नियतरीते काम करी शकवानी अगवडनो विचार करतां मारी जातने तो एथी पण कांईक आश्वासन मळे छे अने आम विलंबे-पण आजे बीजा खंडना ग्राहकोना ऋणमांथी मुक्त थवानो जे अवसर मने मळे छे ते जाणी मारा दिलनो भार कांईक हलको थाय छे।

जैन साहित्य संशोधकना ग्राहकोनी संख्या आजे घणी ओछी छे। एटली बधी ओछी छे के तेनी पासेथी आवता वार्षिक-मूल्यवडे मात्र एक अंकनो प्रेसचार्ज पण पूरो थई शकतो नथी। एटली ओछी संख्याना आधारे मान्य प्रकारनुं मासिक पत्र पण चलाववानो कोई उद्योग न करे तो पछी आ प्रकारना प्रौढ, दलदार, अने बहु खर्चाळ पत्रना प्रकाशननो तो मनोरथ पण कोण करी शके। वस्तुस्थिति आवी होवा छतां पण आजे आ पत्र जे बीजा खण्डनी समाप्तिनी सीमाए पहुंचे छे तेनुं कारण फक्त एना पोषक, पालक, के संरक्षक,–जे कहूं ते–भाई **श्रीहरगोविंददास रामजीनी** निष्काम दानशीलता अने बहुजन-दुर्लभ सात्त्विक सज्जनता छे। ए समानशील बन्धुनी सौहार्द-पूर्ण प्रेरणा अने विकल्प-वगरनी द्रव्यसहायताना प्रतापे ज आ पत्रे जन्म धारण कर्युं छे अने मात्र एक अनियमितताना रोगने छोडीने बाकी बधी सुंदर रीते बे वर्षनुं कीर्तिवन्त अने आकर्षक जीवन पसार कर्युं छे.

* * * * * *

सामान्यरीते आ प्रकारना उच्चकोटिना पत्रोना वाचको अने ग्राहको सर्वत्र ओछा ज होय छे; तेमां वळी आ पत्र तो एक अल्प संख्यक समाजवाळा धर्मना तात्त्विक विषयोने अनुलक्षीने ज खास पोतानुं कार्यक्षेत्र खेडुं होवाथी, एना ग्राहकोनी संख्या-बहुलतानी आशा राखवानुं तो कशुं ज प्रलोभन न होई शके। छतां आ पत्रने पोताना निर्वाह-पुरता प्रबन्धनी तो समाज पासे आशा राखवानो हक्क होय ज–अने ते आशा पूरी करवी ए समाजनुं पण कर्तव्य होय ज। परंतु अद्यापि ए आशा पूरी थई नथी। एमां कांईक दोष आ कार्यालयनो पण खास छे; ए मारे प्रथम ज कबूल करवुं जोईए। कारण के एक तो पत्र नियमित रीते समय उपर प्रकट थतुं नथी अने बीजुं, ग्राहको तरफथी आवता पत्रो विगेरेनो यथा समय संतोष कारक उत्तर विगेरे आपी शकातो नथी। आथी प्रबन्ध शैथिल्यना लीधे घणा खरा जिज्ञासु ग्राहकोने निराशा थाय अने तेथी तेओ कंटाळी ग्राहक-श्रेणिमांथी पोतानुं नाम बातल करावे एमां तेमनो जराए दोष काढी न शकाय।

* * * * * *

कार्यालय उपर आवता पत्रो अने प्रत्यक्ष थती मुलाखातो उपरथी मने ए तो चोक्कस खात्री थई छे के अत्यारे जे अल्पस्वल्प ग्राहक वर्ग आ पत्रनो रहेलो छे तेनो पत्र उपर खूब प्रेम छे अने पत्रने नियमित समये मेळववा अने वांचवा ते अति उत्सुक रहे छे। ए उत्सुकताना परिणामे घणा बन्धुओ तो अनेक प्रकारना उपालंभ भरेला पत्रो पण मारी उपर मोकली पोतानो पत्र उपरनो विशिष्ट अनुराग व्यक्त करे छे। हुं आ स्थळे ए

बधा बन्धुओना अनुरागनो उपकार मानुं अने तेनी साथे तेमनी जे प्रशंसनीय जिज्ञासाने संतोषी शकतो नथी ते माटे क्षमा पण मांगु; ए ज अत्यारे तो मारा माटे उचित कर्तव्य छे ।

कार्यालयना प्रबन्धमां आ जातनी जे शिथिलता छे तेनुं कारण पण मारे ग्राहको आगळ प्रकट करी देवानी फरज रहे छे । ए शिथिलता होवानुं कारण कोई जातनो प्रमाद नहि पण सहायकनो जे अभाव छे, ते ज छे । घणा खरा बन्धुओ तो जाणता ज हशे के छेल्ला ३–४ वर्षथी मारुं कार्यक्षेत्र पूना अने अमदावाद एम बे दूरवर्ती स्थळोमां समान भागे व्हेंचाई गएलुं छे । पूनानुं **भारत-जैन-विद्यालय** जेम मारी समग्र सेवानी अपेक्षा राखे छे तेम अमदावादनुं **गूजरात-पुरातत्त्व-मंदिर** पण समग्र सेवा मांगे छे । तेमांथी ए बंने स्थळे वर्षनो लगभग अडधो अडधो भाग रही हुं मारी अल्पशक्ति प्रमाणे ए बंने संस्थाओनी अडधी सेवा बजावी रह्यो छुं । आम आ संस्थाओना प्रबन्धमां ज हाल मारो समय मुख्यरीते व्यतीत थतो होवाथी जैन-साहित्य-संशोधकना प्रबन्धमाटे हुं वधारे समय काढी शकतो नथी अने तेथी ज उपर जणाव्या प्रमाणे एना कार्यमां अनियमितता अने अव्यवस्था थई रही छे ।

पत्रनुं दळ घणुं मोटुं-आखुं जाणे एक पुस्तक होय तेटलुं मोटुं-होवाथी छपावतां ज घणो वखत वह्यो जाय छे । जो कोई छापखानुं नियमितरीते काम आपे अने तेवी ज रीते तेने पाछुं तपासीने तरत मोकलवामां आवे तो ज मांड मांड त्रण महिने एक अंक पूरो छपाय । पण मारी तो स्थिति पूना अने अमदावाद वच्चे घडियाळना लोल्कनी जेम महिने बब्बे महिने फरती रहे छे; तेथी महिनामां थई शके तेटलुं काम त्रण महिने पण थई शकतुं नथी अने तेमां प्रेसवाळाओनी अनियमितता जे हेरान करे छे ते तो वळी बाकी ज रहे छे । उदाहरण तरीके-आ अंकनो केटलोक भाग पूनामां छपाया बाद बाकीनो भाग अमदावाद छपाववो शुरु कर्यो त्यारे, प्रेसवाळाना कथन उपर आधार राखी, गई होळी पहेलां ज ग्राहकोना हाथमां आ अंको पहोंचता करी देवानी इच्छाए पूनामां छपाएलो बधो भाग रेल्वे पार्सलथी अमदावाद मंगाववामां आव्यो । पण ते प्रेस, कह्या प्रमाणे होळी सुधी काम पूरुं करी शक्यो नहि अने समय थए अमदावाद छोडी मारे पूना आववुं थयुं । एटले फरी ते बधुं काम पाछुं पूना आव्युं अने फाल्गुनना बदले आम ठेठ वैशाखमां आ अंक बहार पाडी शकायो । आवी एकंदर परिस्थिति छे ।

* * * * *

सने १९२० ना जान्युआरी मासमां पहेला खंडनो प्रथम अंक छपाववो शुरु थयो हतो अने ते वर्षना एप्रील मासमां ए अंक प्रकट थयो हतो । आजे १९२५ ना एप्रीलमां आ बीजा खंडनो ४ थो अंक प्रकट थाय छे-एटले लगभग पांच वर्षमां बे खंडो बहार पडया एम कही शकाय ।

* * * * *

आ जातना साहित्य विषयक पत्रो सामान्यरीते बधा ज अनियमित के अर्ध-नियमित होय छे । इन्डियन् एंटीक्वेरी जेवा बहु-साधन-संपन्न मासिक पत्रो पण घणी वखते ६–८ महिना जेटली 'लेइट' थई जाय छे तो पछी बीजाओ थाय तेमां तो नवाई ज शी । वळी आवा पत्रोना लेखो केटला बधा परिश्रमे तैयार थाय छे तेनी पण साधारण वांचकने तो कल्पना सुधां आववी कठिन । एक एक लेख वर्षोना अभ्यासना परिणामे तैयार थई शके छे । दश पन्दर पंक्तिओना लखाण माटे घणी वखते आखी लाईब्रेरीयो खोळी काढवी पडे छे । एक एक पंक्तिना टांचण माटे काम पडे तो सो–पचास रुपियानां पुस्तको खरीदवां पडे छे । केटलीक वखते महिनाओनी महेनते तैयार करेला लेखो एक आध दुष्प्राप्य पुस्तकना प्रमाण माटे वर्षो सुधी आमना आम फाईलोमां बांधी राखवा पडे छे । एटले आटली बधी महेनते तैयार थतां पत्रो के पुस्तको समयनी मर्यादाने ताबे जो न रही शके तो तेमां कांई मोटो

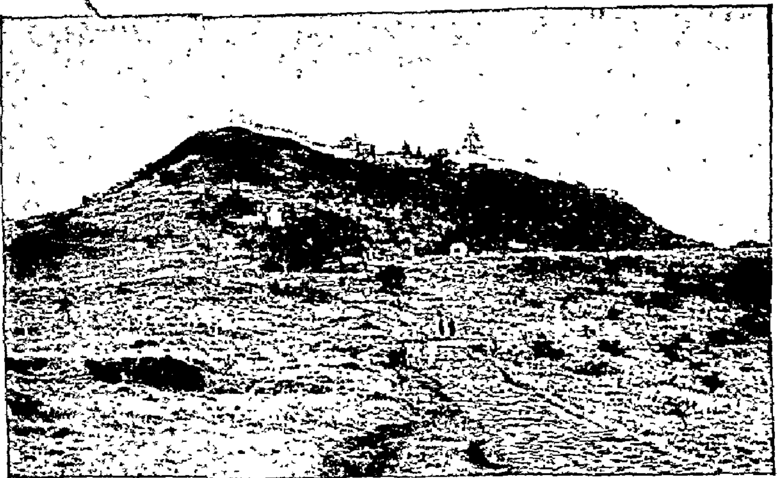
दोष न गणाय । तेम ज एवा पत्रोनो कोई खास वर्तमान समाचारनी साथे संबंध होतो नथी जेथी महिना-बे-महिना आगळ-पाछळ थतां तेमांनुं लखाण उतरी गएलुं के वासी थई गएलुं मनाय । मतलब के आवा पत्रो ग्राहकोनी साथे समयनी दृष्टिए बंधाएला होता नथी; ए वात पण लक्ष्य-बहार न रहेवी जोईए । तेम छतां जैन-साहित्य संशोधकनी चालू अनियमितताना हुं आथी बचाव करवा नथी मांगतो, कारण के आनी अनियमितता,.. ते, अनियमितताना व्याख्या करतां घणी वधारे पडती थई गई छे, ए मारे स्पष्ट कबूल करवुं ज जोईए ।

* * * * * *

अस्तु । आम अनियमितताना चीलामां जेम तेम गबडतुं आ पत्रनुं रगसियुं गाडुं आजे बीजा खण्डना छेल्ले नाके आवी पहोंच्युं छे अने तेम थवाथी ग्राहकोनी साथे थएला करारमांथी कार्यालय मुक्त थाय छे । हवे प्रश्न मात्र भविष्यना विचारनो छे । जेम वाचकोने पत्रनी अनियमितता खटके छे तेम मने अने मारा साहित्यप्रिय स्नेहिओने पण ते खूब खटके छे । आवी रीते वर्षे दोढ वर्षे जेम तेम एक अंक प्रकट थाय तेना करतां तो एने सर्वथा बन्ध करी देवुं सारुं; एवी पण केटलाक मित्रोनी सलाह मळ्या करे छे । पण ए सलाह मने जरा कडवी लाग्यां करे छे । कारण के मारी मनोवृत्तिनुं मुख्य वळण प्रारंभथी ज जैन साहित्यनी सेवा तरफ वळेलुं होवाथी, ए सेवाना एक मुख्य साधन रूप आ पत्रने सर्वथा बन्ध करी देवानी कल्पना मने आघात कारक लागे ए स्वाभाविक छे । तेथी पत्रने चालू ..उं ए तो मारी प्रबल इच्छा छे ज । परंतु त्रीजा खंडनो प्रारंभ हवे त्यारे ज कराशे ज्यारे अत्यार सुधी अनुभवाती ..ना अने अगवडतानो कोईक संतोष कारक निकाल आवशे । आशा तो रहे छे के ए समय पण जल्दी ज थशे ।

वैशाख—सं. १९८१.
भारत जैन विद्यालय, पूना सीटी.

—संपादक



सिद्धक्षेत्र शत्रुंजय गिरि

॥ अर्हम् ॥

॥ नमोऽस्तु श्रमणाय भगवते महावीराय ॥

जैन साहित्य संशोधक

'पुरिसा ! सच्चमेव समभिजाणाहि । सच्चसाणाए उवट्ठिए मेहावी मारं तरइ ।'
'जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ; जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ ।'
'दिट्ठं, सुयं, मयं, विण्णायं जं एत्थ परिकहिज्जइ ।'

—निर्ग्रन्थप्रवचन-आचारांगसूत्र ।

खंड २] [अंक ३

महाकवि पुष्पदन्त के समय पर विचार ।

[लेखक—बाबू हिरालालजी जैन एम्० ए०, एलएल्० बी०।]

अपभ्रंश भाषा के इन जैन महाकवि का परिचय पाठक श्रीयुक्त नाथूरामजी प्रेमी के एक लेख से पाचुके हैं।[1] कवि के बनाये हुए 'महापुराण' और 'यशोधर चरित' से कर्ता के सम्बन्ध में जो कुछ विदित होसका है वह प्रेमीजी ने उक्त लेख में दे दिया है। कवि के बनाये हुए 'नागकुमार चरित' नामक एक और काव्य का उल्लेख उक्त लेख में आया है, पर लेख लिखते समय तक प्रेमीजी को उसकी कोई प्रति देखने नहीं मिल सकी थी। हाल में मुझे कारंजा (बरार) के शास्त्रभंडारों को देखने का अवसर मिला। वहां के बलात्कार गण मन्दिर में पुष्पदन्त कवि के 'महापुराण' और 'यशोधर चरित' के अतिरिक्त 'नागकुमार चरित' की दो प्रतियां विद्यमान हैं। एक संवत् १५५६, चैत्र शुक्ल १, शनिवार की लिखी हुई १३६ पत्रों की है, व दूसरी ८८ पत्रों की है, जिसमें लिखने का संवत् नहीं पाया गया, पर देखने से वह प्रथम प्रति से कुछ पीछे की जान पड़ती है। ग्रंथ ९ संधि अर्थात् परिच्छेदों में समाप्त हुआ है। इसके भी आदि और अंत में कविने अपना कुछ परिचय दिया है। अपने पिता "केशवभट्ट" व माता 'मुग्धादेवी'

१ 'जैन साहित्य संशोधक,' खण्ड २, अंक १, पृष्ठ ५७–८०.

अपने आश्रयदाता भरत के पुत्र 'नन्न' व उनके 'कौण्डिन्य' गोत्र और अपने 'ब्राह्मणकुल' व 'काश्यप गोत्र', का कविने यहां भी उल्लेख किया है। एक पद्य से कुछ ऐसा भाव निकलता है कि कवि पहले शिवभक्त थे, पर पीछे 'गुरु' के वचनामृत-पान से जिनभक्त हो गये थे[2]। उक्त दोनों प्रतियों में 'गुरु' पर 'दिगम्बर' ऐसा टिप्पण दिया हुआ है, जिससे विदित होता है कि किसी दिगम्बर मुनि के उपदेश से वे शैव धर्म को छोड जिन धर्मावलम्बी हुए थे। अपने आश्रयदाता 'नन्न' की माता भरतमंत्री[3] की भार्या का नाम कविने 'कुंदव्वा'[4] दिया है। जिस प्रकार भरत के अनुरोध से उन्होंने महापुराण की रचना की थी, उसी प्रकार 'नागकुमार चरित' उन्होंने 'नन्न' की प्रार्थना से रचा। उनके दो शिष्य 'गुणध(व)र्म' और 'शोभन'[5] व अन्य दो सज्जन 'नाइल्ल' और 'शीलभट'ने भी इस रचना के लिये कवि को प्रेरणा की। ग्रंथ के आदि और अंत में कविने नन्न की खूब प्रशंसा की है।

साहित्य-क्षेत्र में पुष्पदन्त की खूब ख्याति रही है। उनका उल्लेख बहुतसे कवियोंने किया है। 'कनकामर' कविने अपने करकण्डु चरित में उन्हें 'वाएसरि घरु' (वागेश्वरी गृह) कहा है, यथाः-

'जयएव सयंभु विसाल चित्तु। वाएसरिघरु सिरि पुप्फयंतु॥'

सोमकीर्ति अपने 'यशोधर चरित' (संपूर्ण हुआ वि० सं० १५३६) में कहते हैं:—

यत्प्रोक्तं हरिषेणाद्यैः पुष्पदन्त पुरःसरैः।
श्रीमद्वासवसेनाद्यैः शास्त्रस्यार्णवपारगैः॥
तच्चरित्रं मया नूनं बालेन शक्यते कथम्।
बाहुभ्यां सागरं घोरं केनापि तरितुं यथा॥

सोलहवीं शताब्दि के एक और अपभ्रंश भाषा के कवि 'सिंहसेन' अपने आदिपुराण में पुष्पदन्त को स्मरण करते हैं:—

पुणु वि सयंभु महाकइ जायउ। चउमुह पुप्फयंतु विक्खायउ॥

यहां हम पुष्पदन्त कवि के समय पर विचार करेंगे। महापुराण में पुष्पदन्त ने जिन आचार्यों व कवियों का उल्लेख किया है उन में 'अकलंक' 'वीरसेन' और 'जिनसेन' सबसे पीछे के विदित होते हैं। 'राज वार्त्तिक' आदि ग्रंथों के कर्त्ता प्रसिद्ध तार्किक अकलंक राष्ट्रकूट नरेश कृष्णराज के समय में हुए हैं जिन्हों ने शक संवत् ६७५ से ६९७ तक राज्य किया[6]। जयधवल सिद्धान्त की वीरसेनीया टीका के पूर्व भाग को वीरसेन स्वामी ने जयतुंग देव के समय में रचा था और उसी के उत्तर भाग को उन के शिष्य जिनसेन ने शक सं० ७५९ में अमोघवर्ष नृप के

---

२ 'सिवभत्ताइमि जिण सण्णासे। वेविमयाइ दुरियणिण्णासे।
बंभणाइ कासवगिसि गोत्तइं। 'गुरु' वयणामय पूरिय सोत्तइं। (अवतरण देखिये)

३ शक सं. १०६० मे 'होयसाला नरेश' 'विष्णुवर्धन' के एक मंत्री का नाम भी 'भरत' था। वह जैन धर्मावलम्बी व माघनन्दि आचार्य का शिष्य था। (Repertoire D'Epigraphic Jaina by Guerinot p. 13, Ins. No. 307-308).

४ 'कुंदव्वागब्भसमुब्भवस्स'। राष्ट्रकूटवंशी प्रसिद्ध नरेश महाराज अमोघवर्ष की रानी का नाम 'कन्दक देवी' था। ये 'कन्दक देवी' चेदि नृप 'युवराज' की राज कन्या थी।

(Studies in South Indian Jainism)

५. सम्भवतः ये दोनों भरत के सात पुत्रों में से थे। (देखो प्रेमीजी का लेख)

६ देखो 'जैनहितैषी' भाग ११, अंक ७-८ पृ. ४२७-४२९

समय में समाप्त किया था। जयधवल सिद्धान्त का भी उल्लेख पुष्पदन्त ने अपने काव्य में किया है। अतः अकलंक, वीरसेन, जिनसेन व जयधवल सिद्धान्त का उल्लेख करनेवाले कवि को शक सं० ७५९ से पीछे होना चाहिये।

अब हमें देखना चाहिये कि क्या कोई अन्य बातें भी पुष्पदन्त के काव्यों में ऐसी हैं जो उन के समय-निर्णय में सहायक हो सकती हों। आदिपुराण की उत्थानिका से विदित होता है कि कवि ने उस की रचना मान्यखेटपुर में आकर की थी और उस समय वहां 'तुडिगु' नाम के राजा राज्य करते थे जिन्होंने चोड़ राजा का मस्तक काटा था। 'मान्यखेट' निज़ाम हैदराबाद के राज्यान्तर्गत आधुनिक 'मलखेड़' का ही प्राचीन नाम है। अनुमान होता है कि कवि के समय में वह चोड़ मंडल को जीतनेवाले किसी प्रतापी नरेश की राजधानी थी। पर जब हम इतिहास के सफे उलटते हैं तो शक सं० ७३७ से पूर्व मान्यखेट का कोई पता नहीं चलता। जान पड़ता है कि उक्त समय तक वह कोई प्रसिद्ध नगर नहीं था। उस के आसपास का प्रदेश चालुक्य राज्य के अंतर्गत था, जिस की राजधानी नासिक के निकट 'वातापि' या 'बादामि' नगरी थी। चालुक्य वंश की इतिश्री शक सं० ६७५ में राष्ट्रकूट वंश के राजा 'दन्तिदुर्ग' द्वारा हुई; और उन के वंशज महाराज अमोघवर्ष ने शक सं० ७३७ (सन् ८१५) में अपनी राजधानी 'मान्यखेट' में प्रतिष्ठित की। इसी समय से यह नगर इतिहास में प्रसिद्ध हुआ है।

अब हमें यह खोज करना चाहिये कि क्या 'तुडिगु' नाम के यहां कोई राजा हुए हैं? महापुराण में अन्य कई स्थानों पर पुष्पदन्त ने इसी राजा का उल्लेख 'शुभतुंगदेव' और 'भैरवनरेन्द्र' के नाम से किया है और 'यशोधरचरित' व 'नागकुमारचरित' में राजा का नाम 'वल्लभराय' पाया जाता है। जहां २ इन नामों में से किसी का भी उल्लेख आया है वहां टिप्पणकार ने उस पर 'कृष्णराज' ऐसा टिप्पण दिया है। इस पर से यही अनुमान किया जा सकता है, जैसा कि प्रेमीजी ने कहा है, कि 'तुडिगु' 'शुभतुंगदेव' 'भैरवनरेन्द्र,' 'वल्लभराय' और 'कृष्णराज' ये पांचों किसी एक ही राजा के नाम हैं और इन्हीं के समय में पुष्पदन्त ने अपने काव्यों की रचना की है। 'वल्लभराय' राष्ट्रकूट नरेशों की आम उपाधि थी। अरब के कई लेखकोंने इन नरेशों का उल्लेख 'बल्हारा' शब्द से किया है, जो वल्लभराय का ही अपभ्रंश है[10]। जिनसेनाचार्यने हरिवंशपुराण की प्रशस्ति में 'इन्द्रायुध' को 'श्रीवल्लभ' विशेषण दिया है[11]।

'कृष्णराज' नाम के तीन राजा राष्ट्रकूट वंश में हुए हैं। इन में से प्रथम तो वे हैं जिनके समय में अकलंक स्वामी हुए हैं, व जिनके पुत्र और उत्तराधिकारी 'इन्द्रायुध' के समय (शक

---

७ देखो 'विद्वद्रत्नमाला' भाग १ पृ० २९.

८ 'उव्वद्धजूड भूभंग भीसु। तोडेप्पिणु चोडहो तणउ सीसु।
भुवणेक्कराम रायाहिराउ। जहि अच्छइ तुडिगु महाणुभाउ।
तं दीण दिण्ण घन कणयपयरु। महिपरि भमंत मेवा(त्पा)डिनयरु॥

9 V. Smith: Early History of India. Ed. III. p. 424-430.

10. "They (Arabs) called the 'Rāshtrakuta kings 'Balhāra' because those princes were in the habit of assuming the title 'Vallabha' (Beloved Bier, aime) which, in combination with the word 'Rai' (prince) was easily corrupted in to the form 'Balhāra'.
[V. Smith, E. H. I. p. 424-430.]

११ 'पातीन्द्रायुधि नाम्नि कृष्णनृपजे श्रीवल्लभे दक्षिणाम'।

सं० ७०५) में जिनसेनने हरिवंश पुराण की रचना समाप्त की थी। इन के समय तक मान्यखेट राजधानी नहीं हुई थी। पर दूसरे और तीसरे कृष्णराज मान्यखेट के सिंहासन पर हुए हैं। कृष्णराज द्वि० अमोघ वर्ष के उत्तराधिकारी थे, जिन्होंने लगभग शक सं० ८०० से ८३७ तक राज्य किया। इन के समय में मान्यखेट पुरी चालुक्य वंशी राजा विजयादित्य तृतीय द्वारा लूटी और जलाई गई थी[१२]। कृष्णराज तृतीय के लिये शिलालेखों से शक सं० ८६२, ८६७, ८७३ और ८७८ के उल्लेख मिले हैं। उन का सब से अन्तिम उल्लेख शक सं० ८८१ का सोमदेव ने अपने 'यशस्तिलकचम्पू' में किया है। इन सबसे पहले की एक तिथि कृष्णराज के लिये मुझे कारंजा भंडार के 'ज्वाला मालिनि कल्प' नामक ग्रंथ में देखने को मिली, इस ग्रंथ के अन्तिम पद्य ये हैं--

अष्टाशत सैकषष्ठिप्रमाण शक वत्सरेष्वतीतेषु।
श्री-मान्यखेटकटके पर्वण्यक्षयतृतीयायाम् ॥ १ ॥
शतदलसहित-चतुःशत-परिमाण-ग्रंथ-रचनया युक्तम्।
श्रीकृष्णराज-राज्ये समाप्तमेतन्मतं देव्याः ॥ २ ॥

इससे विदित होता है कि उक्त ग्रंथ की रचना शक संवत् ८६१ की अक्षय तृतीया को समाप्त हुई थी और उस समय मान्यखेट नगर में 'कृष्णराज' राज्य करते थे। ये राजा कृष्णराज तृतीय के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकते। इस प्रकार कृष्णराज तृतीय का राज्य काल कम से कम शक सं० ८६१ से लगा कर ८८१ तक सिद्ध होता है।

हम ऊपर कह आये हैं कि पुष्पदन्त ने अपने समय के 'तुडिगु' अपर नाम कृष्णराज द्वारा चोड़ नृप के मारे जाने का उल्लेख किया है। राष्ट्रकूट वंशी राजा जैन धर्मानुयायी थे और इस समय के चोड़ नरेश कट्टर 'शैव'। दोनों खूब बलवान् भी थे। अतः दोनों बीच अक्सर ही युद्ध छिड़ा रहता था। कभी राष्ट्रकूटों की जीत हो जाती थी तो कभी चोड़ों की। मैसूर प्रान्त के 'अतकूर' नामक स्थान से एक शिलालेख मिला है जिस में ऐसे ही एक युद्ध का उल्लेख है। उससे विदित होता है कि शक सं० ८७१ (सन् ९४९) में जब राष्ट्रकूट नरेश कृष्णराज और चोड़ नृप 'राजादित्य' के बीच युद्ध चल रहा था तब कृष्णराज के सहायक व उन के बहिनोई गंगनरेश 'बुतुग' (भूतराय द्वि०) द्वारा राजादित्य की मृत्यु हुई[१३]। इसी शिलालेख के आधार पर सर विन्सेन्ट स्मिथने अपने 'भारत के प्राचीन इतिहास' में लिखा है कि 'कृष्ण तृतीय' के समय की राष्ट्रकूटों और चोड़ों की लड़ाई विशेष उल्लेखनीय है-क्यों कि सन् ९४९ में चोड़ राजा 'राजादित्य' की समरभूमि में ही मृत्यु हुई[१४]। क्या आश्चर्य यदि पुष्पदन्त ने अपने पुराण में इसी घटना का उल्लेख किया हो।

प्रेमीजीने उत्तर पुराण के ५० वें परिच्छेद के प्रारम्भ का एक श्लोक उद्धृत किया है जिससे विदित होता है कि उस पुराण के समाप्त होने से कुछ पूर्व मान्यखेट पर किसी 'धारा नरेश' ने चढ़ाई की थी और उस सुन्दर नगर को नष्ट भ्रष्ट कर डाला था[१५]। हम ऊपर कह आये हैं कि

12. 'The Eastern Chalukya Vijayaditya III (A. D. 844-888) boasts that he captured the Rashtrakuta capital and burnt it; and the assertion seems to be borne out by other inscriptions. Imp. Gaz. Vol II, p. 33.

13. Epigraphia Indica Vol. III, p. 50.

14. V. Smith. E. H. I. pp. 424-430.

१५ दीनानाथधनं सदा बहुधनं प्रोत्फुल्ल-वल्ली-वनम् मान्याखेटपुरं पुरंदरपुरीलीलाहरं सुन्दरम्।
धारानाथनरेन्द्रकोपशिखिना दग्धं विदग्धप्रियम्। क्वेदानीं वसतिं करिष्यति पुनः श्रीपुष्पदन्तः कविः।

कृष्णराज द्वितीय के समय में मान्यखेट पुरी लूटी और जलाई गई थी, पर किसी 'धारानाथ' के द्वारा नहीं, वेंगी के चालुक्यवंशी राजा ने उसे लूटा था। देखना चाहिये कि क्या कभी किसी धारा के राजा द्वारा भी मान्यखेट लूटा गया है। धनपाल कवि अपने 'पाइयलच्छी नाम माला' नामक कोष के अंत में, श्लोक २७६ आदि में लिखता है कि 'विक्रम संवत् १०२९ में जब मालवा वालों के द्वारा मान्यखेट लूटा गया था तब धारा नगरी निवासी धनपाल कविने अपनी बहिन सुन्दरा के लिये यह पुस्तक बनाई[16]'। इस उल्लेख से हमें मान्यखेट पर आक्रमण करनेवाले राजा का नाम तो विदित नहीं हुआ, पर इतना पता चल गया कि वि० सं० १०२९ (शक सं. ८९४) के लगभग धारा वालों ने मान्यखेट को लूटा था। खोज करना चाहिये। शायद इस विषय पर कहीं से कुछ और प्रकाश पड़े। ग्वालियर के 'उदयपूर' नामक स्थान से एक शिलालेख मिला है, जिस में मालवा के परमारवंशी राजाओं की प्रशस्ति दी हुई है[17]। इस प्रशस्ति का बारहवाँ पद्य यह है:—

तस्माद् (वैरिसिंहात्) अभूदरिनरेश्वर-संघ-सेवा-
गर्जद्गजेन्द्र-रव-सुन्दर-तूर्य-नादः।
श्रीहर्षदेव इति खोट्टिगदेव-लक्ष्मीं
जग्राह यो युधि नगाद-सम-प्रतापः॥

'खोट्टिगदेव' कृष्णराज तृतीय के चचेरे भाई थे जो उन के पीछे मान्यखेट के सिंहासन पर आरूढ हुए। उक्त पद्य से हमें दो बातें नई विदित हुईं। एक तो वही कि जिस की हम खोज में थे। अर्थात् मान्यखेट की लूटमार करानेवाले 'धारानाथ' का नाम। और दूसरी यह कि उस लूटमार के समय मान्यखेट के स्वामी खोट्टिगदेव थे। वैरिसिंह के पुत्र श्रीहर्षदेव का नाम 'नव साहसांकचरित' में 'श्रीहर्ष' या 'सीयक,' तिलकमंजरी में हर्ष और सीयक व प्रबन्धचिन्तामणि में श्रीहर्ष, सिंहभट और 'सिंहदन्त' पाया जाता है[18]। इस प्रकार 'पाइयलच्छी नाममाला' और उदयपूर प्रशस्ति से यह सिद्ध हुआ कि वि० सं० १०२९ लगभग जब सीयक 'श्रीहर्ष' द्वारा मान्यखेट लूटा गया था उस समय कृष्णराज तृतीय की मृत्यु हो चूकी थी और उन का उत्तराधिकारी खोट्टिगदेव वहां के सिंहासन पर था।

अब इससे आगे बढने से पूर्व हमें यहां तक की छानबीन को पुनः दृष्टि गोचर कर लेना चाहिये:—

१. पुष्पदन्तने अकलंक, वीरसेन और जिनसेन का उल्लेख किया है। इससे उनका काव्य-रचना-काल शक सं० ७५९ से पीछे होना चाहिये।

२. पुष्पदन्तने अपने समकालीन मान्यखेट नरेश का 'वल्लभराय' नाम से उल्लेख किया है, जिसपर 'कृष्णराज' टिप्पण पाया जाता है। मान्यखेट के सभी राष्ट्रकूट वंशी राजाओं की 'वल्लभराय' उपाधि थी, उनमें कृष्णराज नाम के दो राजा हुए हैं।

३. पुष्पदन्तने अपने समय के मान्यखेट नरेश द्वारा 'चोड' राजा के मारे जाने का उल्लेख किया है। कृष्णराज तृतीयने शक सं. ८७१ में चोड़ राजा से युद्ध किया था और वहां के राजा की समरभूमि में ही मृत्यु हुई थी।

---

१६ विक्कमकालस्सगए अउणत्तीसुत्तरे सहस्सम्मि। मालवनरिन्द धाडिए लूडीए मन्नखेडम्मि॥ इत्यादि

17. Epigraphia Indica Vol I. p. 226.

१८ 'भारत के प्राचीन राजवंश' भाग १, पृ. ९२

४. पुष्पदन्तने धारा नरेश द्वारा मान्यखेट के लूटे जाने का उल्लेख किया है। शक सं० ८९४ के लगभग धारा के परमार राजा श्रीहर्ष द्वारा मान्यखेट के लूटे जाने का पता चलता है।

इस प्रकार इन ऐतिहासिक तथ्यों के मिलान से इसमें बहुत कम सन्देह रह जाता है कि पुष्पदन्तने अपने काव्यों की रचना मान्यखेट के राष्ट्रकूट वंशी राजा कृष्णराज तृतीय के समय में की थी, जिन के अभी तक, जैसा कि हम ऊपर बता आये हैं, शक सं० ८६१ से लगाकर ८८१ तक के उल्लेख मिले हैं। यह राजा जैनियों का बड़ा भक्त था व बड़ा प्रतापी और बलवान् भी था। सोमदेवने उसे पांड्य, सिंहल, चोल, चेरम, आदि प्रदेशों का विजेता कहा है। शिलालेखों से भी सिद्ध है कि उसने चोड़ मण्डल के प्रबल राजा को परास्त कर वहां राष्ट्रकूटाधिपत्य स्थापित किया था। उसने गंगराजा 'राचमल' को पराजित कर वहां की गद्दीपर 'भूतराय' को बैठाया था[19]। ये ही 'भूतराय' चोड़युद्ध में उनके सहायक हुए थे और इन्हीं द्वारा चोड़ राजा का मस्तक काटा गया था! सम्भव है कि इसी प्रताप के कारण उन्होंने 'भैरव नरेन्द्र' की उपाधि भी प्राप्त कर ली हो, जिसका कि उल्लेख पुष्पदन्तने अपने काव्य में किया है। या स्वयं पुष्पदन्तने ही उनके लिये उक्त 'विरुद' निर्धारित करलिया हो। कविराजों को ऐसी स्वतंत्रता रहती है। 'शुभतुंग' कृष्णराज प्रथम का उपनाम अनुमान किया जाता है। मल्लिषेणदत्तने इस राजा का इसी पद से उल्लेख किया है[20]। उसी का 'मल्लिषेण प्रशस्ति' में 'साहसतुंग' नाम पाया जाता है[21]। पर सम्भव है कि ये भी वल्लभराय के समान राष्ट्रकूट नरेशों के सामान्य 'विरुद' थे। देवली के ताम्रपत्रों से यही बात सिद्ध होती है[22]। यह भी हो सकता है कि शुभतुंग व साहसतुंग इस वंश के खास २ प्रतापी नरेशों की उपाधि रही हो। हम देख चुके हैं कि मान्यखेट की लूटमार से कुछ पूर्व ही कृष्णराज की मृत्यु हो चुकी थी क्योंकि उस लूटमार के समय उनके उत्तराधिकारी 'खोट्टिगदेव' सिंहासन पर थे। यदि इसी लूटमार का उल्लेख पुष्पदन्तने किया है तो स्वयंसिद्ध है कि उन्होंने उत्तरपुराण का अन्तिम भाग, 'यशोधर चरित' और 'नागकुमार चरित' कृष्णराज के उत्तराधिकारियों के समय में लिखे थे। ये राजा 'कृष्णराज' के समान प्रतापशाली नहीं हुए। इनके समय में राष्ट्रकूट राज्य की अवनति प्रारम्भ हो गई थी। शायद इसी से हम उत्तरपुराण के अन्तिम भाग, यशोधर चरित और नागकुमार चरित में शुभतुंगराय व भैरवनरेन्द्र का उल्लेख नहीं पाते। यहां राजा का उल्लेख केवल 'वल्लभराय' से किया गया है जो राष्ट्रकूट नरेशों की साधारण

---

१९ Duff's Chronology p. 89.

२० "अत्रैव भारते मान्यखेटाख्ये नगरे वरे। राजाभूत् शुभतुंगाख्यस्तन्मंत्री पुरुषोत्तमः'॥

यहां शुभतुंग (कृष्ण प्रथम) को मान्यखेट का राजा कहा है, पर इतिहास कहता है कि इनके समय तक राष्ट्रकूट राजधानी वातापि में थी। मान्यखेट पुरी को अमोघवर्ष प्रथम ने सन् ८१४ ईस्वी में बसाया था। (Deoli plates).

२१ 'राजन् साहसतुंग सन्ति बहवः श्वेतातपत्रा नृपाः
किंतु त्वत्सदृशा रणे विजयिनस्त्यागोन्नता दुर्लभाः। इत्यादि।

२२ 'The Rashtra-Kutas are stated in it (Deoli plates) to have sprung from the *Satyaki* branch of Yadava race and to be known as '*Tunga*'
(Ins. in C. P. & Berar, p. 10)

उपाधि थी। 'तुडिगु' तामिल व कनड़ी आदि किसी दक्षिणी भाषा का शब्द है। सम्भवतः यह भी कोई प्रतापसूचक उपाधि होगी।

अब हमें प्रेमीजी के उस पाठ पर विचार करना चाहिये, जिससे महापुराण की समाप्ति सं० ६०६ में पाई जाती है। समयसूचक पद्य 'जैन साहित्य संशोधक' में उद्धृत अंश के अनुसार ये हैं:—

पुप्फयंत कयणा धुयपंके। जइ अहिमाण मेरुणामंके॥
कयउं कव्वु भत्तिए परमत्थें। छसय छडोत्तर कय सामत्थें।
कोहण संवच्छरे आसाढए। दहमए दियहे चंद रुइ रूढए।

निस्सन्देह इन पदों से संवत् ६०६, क्रोधन, आषाढ शुक्ल १० वीं को महापुराण समाप्त होने का बोध होता है। अब इनके स्थान पर कारंजा की प्रति का पाठ देखिये[23]:—

पुप्फयंत कइणा धुयपंके। जइ अहिमाण मेरुणामंके।
कयउ कव्वु भत्तिए परमत्थें। जिणपयपंकय मउलियहत्थें।
कोहण संवच्छरे आसाढए। दहमइ दियहे चंदरुइ रुढए।

यह पाठ और तो सब बातों में ऊपर के पाठ के ही समान है पर इसमें सं० ६०६ के सूचक पद का पता नहीं है। उसके स्थान पर जो पद है उससे संवत् का कोई बोध नहीं होता। इन पाठों में से कौनसा शुद्ध और कौनसा अशुद्ध माना जाय। प्रेमीजी मुझे सूचित करते हैं कि ऊपर वाला पाठा अनेक प्राचीन प्रतियों में पाया जाता है। इससे उसे सहसा अशुद्ध और जाली कहने का भी साहस नहीं होता। न तो सं० ६०६ शक गणना के अनुसार क्रोधन था और न विक्रम गणना के अनुसार। पर सम्भव है कि यह इन से भिन्न कोई और संवत् का वर्ष हो[24]।

अब हमें महापुराण की समाप्ति का समय अन्य प्रकार से शोधना पड़ेगा। इस पुराण के प्रारम्भ के एक पद्य से विदित होता है कि पुष्पदन्तने उस पुराण की रचना किसी सिद्धार्थ संवत्सर में प्रारम्भ की थी। सोमदेवकृत यशस्तिलक चम्पू के उपसंहार वाक्य को देखिये:—

"शक-नृप-कालातीत-संवत्सर-शतेष्वष्टस्वेकाशीत्यधिकेषु गतेषु अंकतः (८८१) सिद्धार्थ-संवत्सरान्तर्गत चैत्रमासमदन-त्रयोदश्यां पांड्य-सिंहल-चोल-चेरम-प्रभृतीन्महीपतीन्प्रसाध्य मेलपाटी-प्रवर्धमान-राज्य-प्रभावे श्रीकृष्णराजदेवे सति तत्पादपद्मोपजीविनः समधिगत-पञ्च-महा-शब्द-महासामन्ताधिपतेश्चालुक्यकुल-जन्मनः सामन्तचूडामणेः श्रीमदरिकेसरिणः प्रथम पुत्रस्य श्री-मद्वद्दिगराजस्य लक्ष्मीप्रवर्द्धमान-वसुंधरायां गंगाधारायां विनिर्मापितमिदं काव्यमिति।"

इससे प्रसंगोपयोगी हमें केवल इतनी बात विदित होती है कि शक सं० ८८१ सिद्धार्थ संवत्सर था और उस समय मान्यखेट में चोल आदि नरेशों को जीतने वाले राजा कृष्णराज (तृतीय) का राज्य था। महापुराण का प्रारम्भ भी इसी सिद्धार्थ संवत्सर में होना चाहिये। पुराण की समाप्ति का समय प्रेमीजी के पाठ के समान ही 'कारंजा' की प्रति में भी क्रोधन संवत्सर आषाढ शुक्ल १० वीं दिया हुआ है। क्रोधन संवत्सर साठ-साला-संवत्-चक्र में सिद्धार्थ संवत्सर से ६ वर्ष बाद आता है। अतः महापुराण की समाप्ति का ठीक समय शक

२३ यह प्रति संवत् १६०५ मार्गशीर्ष वदि ८, बुधवार की है।

२४ गुप्त और कलचुरि संवत् से भी यह समय ठीक नहीं बैठता। गुप्त संवत् का प्रारम्भ सन् ३१९ ईसवी व कलचुरि संवत् का सन् २४९ ईसवी से माना जाता है।

सं० ८८७ आषाढ शुक्ल १० वीं सिद्ध होता है। श्रीयुत राय बहादुर बाबू हीरालालजीने मेरे लिये इस तिथि का मि. स्वामी कन्नूपिलाइ के 'इंडियन एफेमेरिस' नामक सारिणी से मिलान किया तो इसकी अंग्रेजी सम-तिथि ११ जून सन् ९६५ ईस्वी (रविवार) आती है। प्रेमीजीने 'चंदरुइ-रूढए' का अर्थ 'सोमवार' किया है। पर मेरी समझ में उसका ठीक अर्थ चंद्रवार नहीं शुक्ल-पक्ष है। चंद्ररुचि रूढे—अर्थात् जब चंद्रमा वृद्धिशील होता है। मुझे भी सन्देह था कि सम्भव है उक्त पद में 'सोमवार' का भी भाव हो और शायद आषाढ शुक्ल १० वीं रविवार को प्रारम्भ होकर सोमवार तक गई हो। पर राय बहादुर हीरालालजी उसका ठीक मिलान कर लिखते हैं कि उक्त तिथि रविवार को ही सूर्योदय से १३ घंटे १५ मिनट पश्चात् अर्थात् सायंकाल को समाप्त हो चुकी थी।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि जब पुष्पदन्तने अपने पुराण समाप्त होने के माह और तिथि दिये हैं तब क्या उन्होंने संवत् का उल्लेख नहीं किया होगा? यह तो सिद्ध है कि 'छसय छडोत्तर कय सामत्थे' वाला पाठ ठीक नहीं है या कम से कम उपर्युक्त चार संवतों के अनुसार वह ठीक नहीं बैठता। पर उसके स्थान पर कारंजा की प्रति का जो पाठ है उसमें संवत् आदि का कोई भाव नहीं है। जब मैंने कारंजा की प्रति का अवलोकन किया था, उस समय तक प्रेमीजी के अवतरण मेरे देखने में नहीं आये थे। तब मुझे ऊपर उद्धृत पद्यों में 'जइ अहिमाण मेरुणामंके' में किसी संवत् की सूचना छुपी होने का सन्देह हुआ था, पर प्रेमीजी के संवत् का स्पष्ट बोध करानेवाले पाठ को देखकर मेरा वह सन्देह दूर हो गया था। पर अब पुनः मेरी दृष्टि उसी पद पर जाती है। मैंने अपने इस सन्देह का संकेत बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार से भी किया था। पर उन्होंने लिखा कि 'अभिमानमेरु' कवि का उपनाम है, उसमें अंकों आदि का कोई भाव नहीं। पर मुझे इससे सन्तोष नहीं हुआ 'अभिमानमेरु' कवि का उपनाम अवश्य है; कई स्थानोंपर उन्होंने अपने इस 'विरुद' का उल्लेख किया है; पर हो सकता है कि यहां पर कवि का वह भाव रहा हो और अंकों का भी। खासकर 'अंके' शब्द से यह सन्देह और भी दृढ़ होता है। अंक का लांछन भी अर्थ होता है और गणना भी। अतः संभव है कि प्रयत्न करने से उसमें संवत् का भाव निकले। उक्त पद के एक २ अक्षर को लीजिये। 'जइ' संस्कृत के 'यति' का अपभ्रंश-रूप विदित होता है। उससे सप्त ऋषियों का भी बोध हो सकता है अतः उसकी अंक संख्या ७ मानी जा सकती है। 'अहिमाण' अभिमान के बराबर है जिससे अष्ट मद का बोध होता है और उसकी अंक संख्या ८ ली जा सकती है। 'मेरु' से आठ का भाव लेने के लिये मैं कोई प्रमाण नहीं पा सका[२५]। पर यदि उससे ८ का भाव लिया जा सकता हो और 'अंकानां वामतो गतिः' के नियमानुसार हम इन अंकों को 'दाये से बांई ओर को रक्खें' तो संवत् ८८७ निकल सकता है। बहुत सम्भव है कि इस पद में ऐसा अर्थ हो, पर जब तक अष्ट मेरु के लिये कोई प्रमाण न मिल जावे तब तक इस कल्पना पर अधिक जोर नहीं दिया जा सकता।

जब हम यह सिद्ध करते हैं कि महापुराण शक संवत् ८८७-(वि० सं० १०२२) में समाप्त हुआ था तब हमें मानना पड़ेगा कि मान्यखेट की जिस लूटमार का कविने उक्त पुराण के ५० वें

२५ जैन शास्त्रों में 'मेरु' पांच माने गये हैं। शक संवत् ५८७ भी क्रोधन था पर अन्यप्रमाणों से वह समय पुष्पदन्त के लिये ठीक नहीं माना जा सकता।

परिच्छेद में उल्लेख किया है वह वि० सं० १०२२ से पश्चात् नहीं हो सकता। पर धनपाल की 'पायलच्छी नाम माला' में उस घटना के उल्लेख से ऐसा मालूम पड़ता है कि वह उस ग्रंथ के समाप्त होने के वर्ष वि० सं० १०२९ में ही हुई थी। इस विरोध का परिहार कैसे हो? उदयपुर प्रशस्ति से सिद्ध है कि उक्त घटना के समय मान्यखेट के सिंहासन पर 'खोट्टिगदेव' आरूढ थे। 'खोट्टिग' के उत्तराधिकारी ककराज का एक दानपत्र शक सं० ९९४ (वि० सं० १०२९) आश्विन शुक्ल १५ का मिला है।[२६] उस से सिद्ध होता है कि 'खोट्टिग' की मृत्यु आश्विन शुक्ल १५ सं० १०२९ से पूर्व ही हो चुकी थी और उस समय तक हर्षदेव के भीषण आक्रमण के पश्चात् इतना समय वीत चुका था कि राजधानी में फिर से शान्ति और सुप्रबंध स्थापित हो जाय। यदि ऐसा न होता तो उक्त समय में मान्यखेट के राजा को दान पत्र निकालते बैठने का अवकाश न मिलता। इस से अनुमान किया जा सकता है कि वि०सं० १०२९ में उक्त घटना कम से कम पांच सात वर्ष पुरानी हो चुकी थी। हर्षदेव का आक्रमण मलयखेट पर कब हुआ इस का कुछ अनुमान इस प्रकार लगाया जा सकता है। 'महापुराण' 'सिद्धार्थ' संवत्सर में प्रारम्भ हो कर क्रोधन संवत्सर में समाप्त हुआ था। अतः उस के १०२ परिच्छेदों की रचना में कवि को छह वर्ष लगे, जिस की औसत एक वर्ष में १७ परिच्छेदों की आती है। कविने मान्यखेट की लूटमार का उल्लेख आदिपुराण के ३७ व उत्तर पुराण के ४९ परिच्छेद पूर्ण हो जाने पर किया है। उत्तर पुराण के शेष १६ परिच्छेदों की रचना में कवि को अधिक से अधिक एक वर्ष लगा होगा। अतः वि० सं० १०२२-१ = १०२१ के लगभग मान्यखेट की लूटमार होना सिद्ध होता है। लगभग आठ वर्ष पुरानी घटना का वि० सं० १०२९ में हुई जैसी उल्लेख करने का यह कारण हो सकता है कि हर्षदेव मान्यखेट पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् और कई प्रदेशों को जीतते हुए वि० सं० १०२९ में धारा राजधानी में पहुंचे होंगे। इस विजय यात्रा में मान्यखेट की विजय ही सबसे अधिक कीर्त्तिकारी हुई होगी। इसी से धनपाल ने उस का उल्लेख विशेषरूप से किया। ऐसी यात्रा में सात आठ वर्ष व्यतीत हो जाना कोई बड़ी बात नहीं है।

महापुराण की उत्थानिका से विदित होता है कि पुष्पदन्त किसी राजा द्वारा सताये हुए मान्यखेट पुर को आये थे। आंध्र-कर्नाटकदेश में विक्रम की १० वीं शताब्दि तक तो जैन-धर्म का खूब जोर रहा और वहां के राजा जैन आचार्यों की अच्छी भक्ति करते रहे, पर दशवीं शताब्दि के अन्तिम भाग में वहां शैवधर्म का प्राबल्य बढा और जैनियों को आपत्ति पहुंचाने जाने लगी। 'वारंगाल कैफियत' से जाना जाता है 'राजराज नरेन्द्र' के समय में वहां के एक बड़े जैन आचार्य 'वृषभनाथ तीर्थ' को राजधानी 'राजमहेन्द्री' छोड़ कर वारंगाल भाग आना पड़ा था, जिस का कारण उन का राजराजनरेन्द्र द्वारा सताया जाना ही विदित होता है। यह राजा कट्टर शैव था, जो सन् १०२२ (शक ९४४) में राजमहेन्द्री के तख्त पर बैठा[२७]। क्या आश्चर्य यदि महाकवि पुष्पदन्त भी यहीं के किसी ऐसे ही राजा द्वारा सताये हुए मान्यखेट आये हों। मान्यखेट के राष्ट्रकूट नरेश जैनधर्म में श्रद्धा और जैन कवियों को आश्रयदान के लिये खूब विख्यात थे। यही नहीं, उन में से कई स्वयं अच्छे कवि हुए हैं। 'प्रश्नोत्तर रत्नमाला' के कर्त्ता अमोघवर्ष प्रसिद्ध ही हैं। इन्हीं की छत्र-छाया में जिनसेन, गुणभद्र, सोमदेव, महावीराचार्य आदि धुरंधर जैनाचार्यों ने वह जैनधर्म की ध्वजा फहराई थी। मान्यखेट में जैन कवियों का

२६ Ind. Ant. Vol XII p. 263.

२७ Studies in South Indian Jainism. p. 18.

अच्छा जमाव रहता था। कवि ने स्वयं उसे 'दीनानाथ-धनं सदा बहुधनं' कहा है। इसी कीर्त्ति से आकर्षित हो कर पुष्पदन्त मान्यखेट आये होंगे। पर वे 'अभिमान मेरु' थे, इस से सीधे राजदरबार में नहीं गये। नगर के बाहर ही एक उपवन में टिक रहे। पर मान्यखेट में उन के जैसे कवि रत्न देर तक छिपे नहीं रह सकते थे। वे मंत्री भरत से मिला दिये गये। वहां उन का खूब आदर सत्कार हुआ, स्वयं भरत के प्रासाद में उन्हें रहने को स्थान दिया गया और वे कविता करने को प्रोत्साहित किये गये।

यह निर्णय किये जाने के अभी कोई साधन उपलब्ध नहीं हैं कि महापुराण से कितने समय पश्चात् 'यशोधर चरित' और 'नागकुमार चरित' की रचना हुई। पर इतना निश्चित है कि ये दोनों महापुराण से पीछे लिखे गये हैं। महापुराण पूर्ण होने तक भरत मान्यखेट के मंत्रित्व पद पर थे। पर अन्य दो काव्यों की रचना के समय उन के पुत्र 'नन्न' उक्त पद को विभूषित कर रहे थे। उन्हीं की प्रेरणा से उन्हीं के शुभतुंग प्रासाद में रहते हुए कवि ने उक्त दो काव्यों की रचना की। इन काव्यों में यथावसर 'नन्न' की ही कीर्ति वर्णित है। इस समय या तो भरत की मृत्यु हो चुकी थी या उस समय की प्रथा के अनुसार वे अपने चौथे पन में संसार से विरक्त हो, गृहभार अपने सुयोग्य पुत्र को सौंप, मुनि-धर्म का पालन करने लगे थे। आश्चर्य है कि कवि ने अपने काव्यों में इस विषय का कोई उल्लेख नहीं किया। 'नागकुमार चरित' की रचना के समय कवि के माता पिता भी स्वर्गवासी हो चुके थे"।

हम ऊपर सिद्ध कर चुके हैं कि कृष्णराज की मृत्यु महापुराण पूर्ण होने से पूर्व ही हो चुकी थी। पर 'यशोधर चरित' और 'नागकुमार चरित' में जो वल्लभराय का उल्लेख आया है उस पर भी महापुराण के समान 'कृष्णराज' ऐसा टिप्पण पाया जाता है। टिप्पणकर्ता की यह अवश्य भूल है। यहां 'वल्लभराय' से कृष्णराज के उत्तराधिकारियों का तात्पर्य लेना
कई स्थानोंपर उन्होंने अपनी चुके हैं कि राष्ट्रकूट वंशी सभी राजा 'वल्लभराय' कहलाते थे।
का वह भाव रहा हो और अंकोत और नागकुमार चरित के अतिरिक्त भी महाकवि पुष्पदन्त ने
होता है। अंक का लांछन भो अर्थ रने के लिये कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं।
से उसमें संवत् का भाव निकले। उक्त पद
'यति' का अपभ्रंश-रूप विदित होता है। उसरने का का कुछ भाग]
उसको अंक संख्या ७ मानी जा सकती है। 'अहिमल वज्जिउ गुणभरिउ।
का बोध होता है और उसको अंक संख्या ८ ली जा सुकुमार चारु चरिउ॥
लिये में कोई प्रमाण नहीं पा सके। पर यदि उसने ८ का भाव ाइं दिंति।
वामतो गतिः' के नियमानुसार हम इन अंकों को 'दाये से बांई भमम धरंति॥
निकल सकता है। बहुत सम्भव है कि इस पद में ऐसा अर्थ हो, परगयरि।
कोई प्रमाण न मिल जावे तब तक इस कल्पना पर अधिक जोर नहीं रि॥ १॥

जब हम यह सिद्ध करते हैं कि महापुराण शक संवत् ८८७-(ल चित्तु।
हुआ था तब हमें मानना पड़ेगा कि मान्यखेट की जिस लूटमार का क गण महंतु॥
रोसवण॥१॥
णण॥
य।

२५ जैन शास्त्रों में 'मेरु' पांच माने गये हैं। शक संवत् ५८७ भी क्रोधन पुष्पदन्त के लिये ठीक नहीं माना जा सकता।

तुहुं वाईसरि देवी निकेउ । तुहुं अम्हहं पुण्ण निबंध हेउ ॥
तुहुं भव्वजीव पंकरुह भाणु । पइं घणु मणे मण्णिउ तिण समाणु ।
गुणवंत भत्तु तुहुं विणय गम्मु । उज्झाय पयासहि परम धम्मु ॥
घत्ता । ओलग्गिउ भावें दिणि जिदिणे । णिय मण पंकयप्पिरु थविउ ।
कइ कव्व पिसल्लउ जस धवलु । सिसजुयलेण पविण्णवउ ॥
भणु भणु सिरि पंचमि फलु गहीरु । आयण्णहि णायकुमारु धीरु ।
ता वल्लहराय महत्तपण । कलिविलसिय-दुरिय-कयंतपण ॥
कोण्डिण्णगोत्त-णह-ससहरेण । दालिद्दकंद-कंदल-हरेण ।
वर कव्व रयण रयणायरेण । लच्छी पोमिणि माणस सरेण ॥
पसरंत किंत्ति बहु-कुलहरेण । विच्छिण्ण संसारसइवंधवेण ।
बहु दीणलोयपूरिय धणेण । मइ-पसर-पराजिय-परवलेण ॥
णियवइवि दिण्ण चिंतियफलेण । छण इंद बिंब सन्निह मुहेण ।
कुंदव्व[2]-भरह दिय तणुरुहेण ।
णण्णेण पवुत्तु महाणुभाव । भो कुसुमदसण हय वसण ताव ।
करि कव्वु मणोहरु मुयहि तंदु । जिणधम्म कज्ज मा होहि मंदु ॥
आयण्णमि भणु हउं णिम्मलाइं । सियपंचमि उववासहो फलाइं ।
णण्णेण पवोल्लिउ पम जाम । णाइलइं सीलइं पण ताम[3]॥
घत्ता । कइ भणिउं समंजसु जस विमलु, णण्णु जि अण्णु न घरसिरिहे ।
तहो केरउ णाउ महग्घयरु, देविहिं गायउ सुरगिरिहे ॥
तं तुहुंपि चडावहु नियकव्वें । दिहि होउ णण्णे आसण्ण भव्वें ।
बुद्धीए णण्णु सुरगुरु णमंति । पर णण्णहो णाउ वइरिय जिणंति ॥
पहुभत्तिए हणु व समाणु दिट्ठु । परणण्णु ण वाणरु णरु विसिट्ठु ।
गांगेउ सउच्चें जणिय तुट्ठि । पर णण्णु ण वइरिहुं देइ पुट्ठि ॥
धम्मेण जुहिट्ठिलु धम्मरत्तु । पर णण्णु पवासदुहेण चत्तु ।
चापण कण्णु जण दिण्ण चाउ । पर णण्णु ण बंधुहुं देइ घाउ ॥
कंतीए मणोहरु छण ससंकु । पर णण्णहो णाउ दीसइ कलंकु ।
गरुयत्तें महि सुविसुद्ध चरिउ । पर णण्णु ण किडि दाढ़इ धरिउ ॥
सुथिरत्तें मेरु भणंति जोइ । पर णण्णु पुरिसु पसरु ण होइ ।
सायरु व गहीरु कयायरेहिं । पर णण्णु ण मंथिउ सुरवरेहिं ॥
घत्ता । जो एहउ वण्णिउ वर कइहिं । भाविं णियमणे भावहि ।
तहो णण्णहो केरउ णाउ तुहुं । सुललिय कव्वें चडावहि ॥
णाइल्ल सील भट्टारु वयणु । तं आयण्णेवि नवकमल वयणु ।
पडिजंपइ वियसिरि पुप्फयंतु । पडिवज्जमि णण्णु जि गुणमहंतु ॥
भणु पुणु महुं तणु व तणाउ कट्ठु । धम्मेण णिवद्धु मुयवि सट्ठु । (शाठ्यं)
हउं कहउं कव्वु णिंदंतु पिसणु । वण्णंतु सुयण विप्फुरिय वयणु ॥
दुज्जण सज्जणहो सहाउ एहु । सिंहि,उण्हउ सीयलु होइ मेहु ।

---

२ कुंदाम्बा मातुर्नाम ।

भो णिसुणि णण्ण कुलकमल सूर । सुरसिहरि धीर पडिवण्ण सूर ॥
जिण भणिउं अणंताणंत गयणु । तहो मज्झे परिठिउ तिविहु भुअणु ।
पहिलउ मल्लय संकासु दिट्ठु । वीयउ कुलिसोवमु रिसिहि सिट्ठु ॥
तइयउ मुइंद साणिहु कहंति । अरहंत अरुह भणु किं रहंति ।
घत्ता । तइ लोकु कमलरुह हरि हरिहिं ण धरिउ ण किउ ण णिट्ठियउ ।
तहिं घहु दीवोवहि मंडियउ । मज्झिउ भुअणु परिट्ठियउ ॥
इय णाय कुमार चारु चरिए णन्ननामंकिए महाकइ पुप्फयंत विरइए महाकव्वे
जयंधर-विवाहकल्याण वण्णणो नाम पढमो परिच्छेओ सम्म तो ॥ छ ॥

(नागकुमार चरित का अंतिम भाग ।)

गोत्तम गणहर एवं सिट्ठउ । सूरिपरंपराए उवइट्ठउ ।
णायकुमारचारित्तु पयासिउ । इयसिरिपंचमि फल मई भासिउ ॥ १ ॥
सो णंदउ जो पढइ पढावइ । सो णंदउ जो लिहइ लिहावइ ।
सो णंदउ जो विवरि विदावइ । सो णंदउ जो भावें भावइ ॥ २ ॥
णंदउ सम्मइ सासणु सम्मइ । णंदउ पयसुह णंदउ नरवइ ।
चिंतिउ चिंतिउ वरिसउ पाउसु । णंदउ णण्णु होउ दीहाउसु ॥ ३ ॥
णण्ण हो संभवंतु सुपवित्तइं । णिम्मल दंसण णाण चरित्तइं ।
णण्णहो होउ पंच कल्लाणइं । रोय-सोय-खयकरण विहाणइं ॥ ४ ॥
णण्णहो जसु भुअणत्तए विलसउ । णण्णहो घरे वसुहार पवरिसउ ।
सिवभत्ताइमि जिणसण्णासें । वे वि मयाइं दुरिय णिण्णासें ॥ ५ ॥
बंभणाइं कासवरिसि गोत्तइं । गुरुवयणामय पूरिय सोत्तइं ॥
मुद्धाएवी केसव णामइं । महुं पियराइं होंतु सुहधामइं ॥ ६ ॥
संप्पज्जउ जिण भावें लइयहो । रयणत्तय विसुद्धि दंगइयहो ।
मज्झु समाहि वोहि संपज्जउ । मज्झु विमलु केवलु उप्पज्जउ ॥ ७ ॥
घत्ता । णण्णहो मज्झु वि दय करउ । पुप्फयंत जिणणाहपियारी ।
खमउ असेसु वि दुव्वयणु । वसउ वयणे सुयदेवि भडारी ॥ ८ ॥
सुहतुंग भवण वावार भार णिव्वहण वीर धवलस्स ।
कोंडिल्ल गोत्त नहससहरस्स पयइए सोमस्स ॥ ९ ॥
कुंदव्वागब्भसमुब्भवस्स सिरि भरहभट्ट तणयस्स ।
जस पसर भरिय भुअणोयरस्स जिणचरण कमल भसलस्स ॥ १० ॥
अणवरय रइय वरजिणहरस्स जिण भवण पूयाणिरयस्स ॥
जिण सासणायमुद्धारणस्स मुणादिण्णदाणस्स ॥ ११ ॥
कालिमलकलंक परिवज्जियस्स जियदुविहवइरिणियरस्स ।
कारुण्णकंद णव जलहरस्स दीणयण सरणस्स ॥ १२ ॥
णिवलच्छी कीला सरवरस्स वाएसरि णिवासस्स ।
णिस्सेस विउस विज्जाविणोय णियरस्स सुद्ध हिययस्स ॥ १३ ॥
णण्णस्स पत्थणाए कव्व पिसल्लेण पहसिय मुहेण ।
णाय कुमार चरित्तं रइयं सिरिपुप्फयंतेण ॥ १४ ॥

——*——

કવિવર સમયસુન્દર

(ભાવનગર મુકામે ભરાએલી ૭ મી ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષદ્ માટે લખાએલો નિબંધ.)

[लेखकः श्रीयुत मोहनलाल दलीचंद देशाई, बीए. एलूएल्. बी.; मुंबइ.]

જૈન સાધુઓ ભારતની એક ધાર્મિક સંસ્થા છે અને પોતાના આચાર-નિયમ પ્રમાણે ભ્રમણશીલ-પરિવ્રાજક છે. એક વર્ષમાં એકી સાથે ચાતુર્માસ એક સ્થળે ગાળવું તેમને અપરિહાર્ય છે, જ્યારે બાકીના આઠ માસમાં એક ગામથી બીજા ગામ અપ્રતિહત વિહાર કરી દરેક સ્થલે ઉપદેશ આપતા રહી વિહાર કર્યે જાય છે. લગભગ પચીસસો વર્ષ પહેલાં થયેલા ધર્મ સંસ્થાપક શ્રી મહાવીરના અનુયાયી જૈન શ્રમણોની સંસ્કૃતિ સમય ધર્મ પ્રમાણે અનેક ઉદય અને અસ્તના હિંડોલે હીંચીને હજુ સુધી પણ અખંડ પણે ચાલી આવી છે. તે શ્રમણ-પંથે સ્થાપેલા દયા ધર્મની અસરથી ભારતમાં હિંસક યજ્ઞયાગ બંધ પડયા એટલું જ નહિ પણ જાતિભેદના જુલમને ઘણા સૈકાઓ સુધી વિશેષ અવકાશ મળ્યો નહિ. વિશેષમાં કાવ્ય, નાટક, કથા-ભાષા વગેરે સાહિત્ય પ્રદેશમાં પણ તે શ્રમણોએ દરેક શતકમાં-દરેક યુગમાં અન્ય પંથોની સાથે સાથે પ્રબળ ફાળો આપ્યો છે, અને એ સત્યની પ્રતીતિ તેના સાહિત્યનો ઇતિહાસ લખાશે ત્યારે, અતિ સ્પષ્ટ રીતે અને જરૂર થશે.

સંસારની ઉપાધિઓના બંધનથી મુક્ત એવા નિબંધ પંખીઓ પેઠે વિચરતા માત્ર ધર્મ પરાયણ જીવન ગાળવા નિર્માયેલા સાધુઓના સૂર વિશ્વબંધુ ભાવનાં, પ્રભુ ભક્તિનાં, અને નીતિના ઉપદેશનાં ગીતો ગાવામાં જ નીકળી શકે. પોતપોતાના જમાનાની ભાવનાઓને વ્યક્ત કરવી; પોતાના સમયના જૂદા જૂદા આદર્શોને અને નોખા નોખા વહેતા લાગણી-પ્રવાહોને એકત્ર કરી પયગમ્બરી વાણીમાં તેનું ઉદ્બોધન કરવું એ કવિઓનું કર્તવ્ય છે. સામાન્ય લોકોના દિલમાં જે સુન્દર ભાવો જાગે-પણ જે સમજવાની કે સમજાવવાની તેમનામાં તાકાત નથી-તેમને ભાષા આપવી, તેમને અમર વાણીમાં વ્યક્ત કરવા એ કવિઓનું કાર્ય છે. નિર્બંધ પંખીઓમાં કોકિલા જેવું ભ્રમણશાલી

શિષ્ય સુન્દરદાસે (જન્મ સં૦ ૧૬૫૩, દાદૂજી પાસે દીક્ષા સં૦ ૧૬૫૯, મરણ ૧૭૪૬) વેદાન્ત જ્ઞાનને સુમધુર સરલ અને ઉચ્ચ હિન્દી કાવ્યમાં વિવિધ પ્રકારની રચના કરી. તેમણે અદ્વૈત બ્રહ્મવિદ્યાનો પ્રચાર કરવાથી અને તેઓ અતિ કુશલ વિદ્વાન્ હોવાથી તેમને દાદૂ પંથીઓ 'બીજા શંકરાચાર્ય' કહે છે. [1]

ગોસ્વામી તુલસીદાસઃ—(જન્મ સં૦ ૧૬૦૦; મરણ સં૦ ૧૬૮૦) આ હિન્દી સાહિત્યના અપ્રતિમ મહાકવિ છે. તેમણે રામાયણ રચી તે એટલી બધી આજસુધી પ્રસિદ્ધ છે કે, તેનું વાંચન દરેક હિન્દી કુટુમ્બમાં થાય છે. તેમજ અનેક હિન્દી કાવ્યો રચ્યાં. અકબરના પ્રસિદ્ધ કવિ ગંગના તથા અન્ય હિન્દી પ્રસિદ્ધ કવિ વિહારી તથા કેશવદાસના સમકાલીન છે.

મહારાષ્ટ્રમાં અઢાર પર્વના મહાભારતને મરાઠીમાં પહેલવહેલાં અવતારનાર કવિ વિષ્ણુદાસ, અને મુક્તેશ્વર (જન્મ ૧૬૫૬, સ્વર્ગ૦ ૧૭૦૬) તેમજ પ્રસિદ્ધ સંતકવિઓ એકનાથ (જન્મ સં૦ ૧૬૦૫, સ્વ૦ ૧૬૫૬); તુકારામ (જન્મ સં૦ ૧૬૩૪ યા ૧૬૬૪–સ્વ૦ ૧૭૦૮), સમર્થ રામદાસ (જન્મ સં૦ ૧૬૬૫ સ્વ૦ ૧૭૩૮) આદિ થયા.

ગૂર્જર ભાષાના આ યુગ માટે એમ કહેવામાં આવે છે કે 'જે ભાષાના પ્રથમ યુગમાં–સાહિત્યના પ્રભાતમાં–નરસિંહ મહેતા જેવા ભક્ત કવિનાં પ્રભાતિયાં ગાજી રહ્યાં હતાં તેના મધ્ય યુગમાં–સોળમા અને સત્તરમા શતકમાં–કવિતાનાં સ્વર્ગીય ગાનનો ધ્વનિ છેક મન્દ પડી ગયો'—આ વાત સત્ય નથી. જૈનેતર ગૂર્જર કવિઓ આ યુગમાં વધુ સંખ્યામાં મળી નથી આવ્યા તેથી તેવી વાત મૂકવામાં આવે તે સ્વાભાવિક છે, પણ મને ખાત્રી છે કે આ ઉન્નતિના અને જાગ્રતિના યુગમાં અનેક જૈનેતર ગૂર્જર કવિઓ થયા હોવા જોઈએ; અને તે શોધખોળ કરતાં સાંપડી શકશે. જ્યારે મધ્ય યુગમાં જૈન કવિઓ માટે તો નિર્વિવાદ રીતે સ્પષ્ટ કહી શકાય તેમ છે કે તેમણે સાહિત્યની ધારા અખંડ નિરાવરણ અને નિર્મલ રાખી, તેનામાં ઓજસ્વાળું પયઃ સિંચી તેને બલવતી, વેગવતી અને ઉજ્વલ બનાવી હતી.

આ સત્તરમા શતકમાં જેમ અંગ્રેજીમાં, રાણી એલિઝાબેથનો સમય (સં૦ ૧૬૧૫–

૧ રાઘવીય ભક્તમાલમાં જણાવ્યું છે કે 'શંકરાચાર્ય દૂસરો, દાદૂ કે સુંદર ભયો.' આ સુન્દરદાસજીએ સં૦ ૧૬૬૩–૧૬૮૨ કાશીમાં રહી વિદ્યા લઇ લોકને આપી. પછી બહુ પર્યટન કર્યું. ગુજરાતમાં પણ તે ઘણો કાળ રહ્યા હતા અને ગુજરાતી ભાષા પોતે શીખી લીધી હતી. તેના અપ્રસિદ્ધ 'દશોં દિશાકે સવૈયે'માં ગૂજરાત સંબંધી લખ્યું છે કેઃ—

'આભડછોત અતીત સૈં કીજિયે, બિલાઇ રૂ કૂકર ચાટત હાંડી'

આ પરથી જણાય છે કે વૈષ્ણવ સંપ્રદાયની અસરથી ગુજરાતમાં આભડછેટ પર લોકોનું ઘણું ધ્યાન રહેતું હશે.

૧૬૬૦) ઉક્ત ભાષા માટે એક મહાન્ ઉન્નતિનો છે, તેવો જ અકબરનો રાજત્વકાલ (સં૦ ૧૬૧૩-૧૬૬૨) સર્વ દેશી ભાષાઓ માટે વૃદ્ધિ અને ગૌરવનો યુગ થયો છે. બંને દેશોમાં આ સમૃદ્ધિશાલી સમયમાં અતિશય સંતોષજનક ઉન્નતિ થઈ છે અને સારા સારા કવિ અને લેખક પાક્યા છે. ઉર્દુ ભાષાની સ્થાપના-પ્રતિષ્ઠા મુખ્યપણે આ સમયમાં થઈ. હિંદી ભાષાના સમયવીર-મુખ્ય નાયક ગોસ્વામી તુલસીદાસ આ યુગમાં થયા કે જેમનો કવિતાકાલ (સં૦ ૧૬૩૧-સં૦ ૧૬૮૦) છે. તે મહાનુભાવ-મહાત્માએ રામાયણ આદિ રચી હિન્દી પર જેટલો ઉપકાર કર્યો છે તેવો કોઇએ કર્યો નથી; કવિપ્રિયા અને રસિકપ્રિયાના કર્ત્તા હિન્દી કવિ કેશવદાસ (કવિતાકાલ સં૦ ૧૬૪૮-૧૬૬૮) એક પ્રતિષ્ઠિત નામી કવિ થયા; આ ઉપરાંત અકબરના દરબારમાંના ગંગકવિ, બીરબલ ('બ્રહ્મ' ઉપનામથી) આદિ, તેમજ સેનાપતિ, દાદૂ દયાલ, સુન્દરદાસ, બનારસીદાસ પ્રભૃતિ કવિઓ ઉદ્‌ભવ્યા. આ બૃહત્કાલમાં આની પહેલાં સૂરદાસ આદિએ વ્રજભાષાદ્વારા કૃષ્ણ કવિતા પર અધિક ધ્યાન આપ્યું હતું, જ્યારે તુલસીદાસના કાલથી રામભક્તિની ધારા વહી અને પછી રામભક્તોએ કૃષ્ણની પેઠે રામનું પણ શૃંગારપૂર્ણ વર્ણન કર્યું. (આની અસર જૈનસાહિત્યમાં નેમિનાથ-રાજુલ અને સ્થુલિભદ્ર ને કોશ્યાના પ્રસંગો લઇ શૃંગાર પર મર્યાદિત સ્વરૂપે ઉતરી વૈરાગ્ય પરિણામ પર લાવવા પ્રત્યે જૈન કવિઓ પ્રેરાયા હોય એવું સંભવે છે) મહારાષ્ટ્રમાં મહાભારત મરાઠીમાં અવગત થયું અને તત્ત્વજ્ઞાનમય અભંગો-દાસબોધ જેવા તાત્ત્વિક ઉપદેશો ભાષામાં ઉતરવા લાગ્યા. આવા પ્રતાપી-ઉત્સાહભર્યા શતકમાં ગૂજરાતી સાહિત્યમાં ગાનનો ધ્વનિ મંદ પડે એ માનવાને આંચકો આવે.

મધ્યયુગ ભાષા

ગૂર્જર પ્રાચીન સાહિત્યના ત્રણ યુગ નામે અપભ્રંશ યા પ્રાચીન ગુજરાતી યુગ, મધ્યકાલીન યુગ અને અર્વાચીન યુગ એમ પાડીએ, તો અપભ્રંશ યુગમાં 'અપભ્રંશ કિંવા પ્રાચીન ગૂજરાતીનાં વ્યાકરણ આદિપ્રવર્ત્તક અને પ્રાકૃત બોલીઓના પાણિની '-હેમાચાર્ય (વિ૦ સં૦ ૧૧૪૫ થી ૧૨૨૯), પ્રબંધચિંતામણિના કર્ત્તા મેરૂતુંગ (વિ૦ સં૦ ૧૩૬૧), કવિ ધનપાલ (ભવિષ્યદત્ત કથાના કર્ત્તા) આદિ અનેક જૈન ગ્રંથકારોએ પ્રબલ સાહિત્ય-સેવા કરી છે. જૈન ભંડારોમાં અપભ્રંશનાં અનેક પુસ્તકો મળી શકે તેમ છે. એ સિદ્ધ વાત છે કે સંવત પંદરમા સૈકા સુધી સૌરાષ્ટ્ર, ગુજરાત અને રાજસ્થાન એ સર્વ પ્રદેશોમાં અપભ્રંશ ભાષા જ વ્યાપક ભાષા તરીકે પ્રવર્ત્તતી હતી. સંવત્ ૧૩ મા સૈકાથી સં૦ ૧૫૫૦ સુધીની ભાષાને અન્તિમ અપભ્રંશ ભાષા ગણી શકીએ. આને ડા૦ ટેસીટેરી જૂની પશ્ચિમ રાજસ્થાની ભાષા કહે છે.

મધ્યકાલીન યુગ વિક્રમ પંદરમા શતકથી સત્તરમા શતકનો ગણીએ તો તેમાં પંદરમા શતકમાં થોડા, પણ સોળમા શતકમાં ઘણા વધુ, અને સત્તરમામાં તો અતિ વિપુલ પ્રમાણમાં જૈનકવિઓ અને ગ્રંથકારો મળી આવે તેમ છે. મધ્યકાલીન કે અર્વાચીન યુગમાં

એક પણ શતક જૈનોની ગૂર્જર સાહિત્યસેવા વગરનું રહ્યું નથી. જૈન સાધુઓએ ભંડારોદ્વારા આ સર્વ સાચવી રાખ્યું છે, તે માટે તેમને ધન્યવાદ ઘટે છે, અને તેથી તે સર્વ સાહિત્યનો ઇતિહાસ અખંડ લખી શકાશે. તેમ થયે વિશેષ પ્રભાનાં દર્શન થશે.

રા. નરસિંહરાવે આંકેલ ગૂજરાતી ભાષાના વિકાસક્રમની સમયરેખામાં સં૦ ૧૬૫૦ થી ૧૭૫૦ સુધીની ભાષાને 'મધ્ય ગૂજરાતી' કહી છે. આ મધ્ય ગૂજરાતી કે ઉપર નિર્દેશેલ મધ્યકાલીન યુગમાં પ્રસ્તુત કવિ (વિક્રમ સત્તરમો સૈકો) થયેલ છે. તે સૈકામાં અનેક સુંદર કૃતિઓ રચી પોતાને સિદ્ધહસ્ત આખ્યાન-કથા કવિ તરીકે સિદ્ધ કરનાર જૈનકવિઓ નામે કુશલ લાભ (કૃતિઓ સં૦ ૧૬૧૭ થી ૧૬૨૪), સોમવિમલ સૂરિ (કૃતિ સં૦ ૧૬૧૫ થી ૧૬૩૩), નયસુંદર (કવિતાકાલ સં૦ ૧૬૩૨ થી ૧૬૬૯), પ્રસ્તુત કવિ સમયસુંદર (સં૦ ૧૬૫૮ થી ૧૭૦૦), અને શ્રાવક કવિ ઋષભદાસ (કવિતાકાલ સં૦ ૧૬૬૨ થી ૧૬૮૭) એ પાંચ અગ્રભાગ લે છે. આ પૈકી ઋષભદાસ સંબંધી લેખ પાંચમી ગૂર્જર સાહિત્ય પરિષદ્‌માં મેં જરા વિસ્તારથી લખી મોકલ્યો હતો તે છપાઇ ગયો છે, અને નયસુન્દર સંબંધી મારો નિબંધ આનંદ કાવ્ય મહોદધિના છઠ્ઠા મૌક્તિકની પ્રસ્તાવનામાં પ્રકટ થયો છે. આ લેખદ્વારા કવિવર સમયસુન્દર સંબંધી-કંઇક હકીકત જણાવવા મેં પ્રયત્ન કર્યો છે.

૧ મધ્યયુગનું કથાસાહિત્ય.

સં૦ સત્તરમા સૈકાના પ્રારંભથી લોકકથાઓને કાવ્યમાં મૂકવાના સુંદર પ્રયાસો જૈન સાધુઓના હાથથી થઇ રહ્યા હતા. માત્ર પોતાના ધાર્મિક કથા સાહિત્યમાંથી જ વસ્તુ લઈ જૈન સાધુઓએ પોતાનું-જૈન કાવ્ય સાહિત્ય અખંડપણે ઉત્પન્ન કર્યું છે (જેમ પ્રેમાનંદાદિએ કર્યું છે તેમ), એટલું જ નહિ, પણ તે ઉપરાંત લોકકથાઓને પણ કાવ્યમાં (શામળદાસાદિની માફક) ઉતારી છે; વિશેષમાં તેઓએ, એ બંને કવિઓ-પ્રેમાનંદ અને શામળભટ્ટ-ની અગાઉના સૈકામાં એટલે સંવત સત્તરમા સૈકામાં-તેના આરંભથી ભાષામાં અવતાર્યું છે.

આના સમર્થનમાં કહીશું કે સં૦ ૧૫૬૦ માં સિંહકુશલે નંદબત્રીશી રચી, ઉદયભાનુએ વિ૦ સં૦ ૧૫૬૫ માં વિક્રમસેન ચોપાઇ રચી કે જેના માટે રા. મણિભાઈ બકોરભાઇએ નોંધ કરી છે કે 'પાંચસેં છાસઠ ટુંકનો આ પ્રબંધ છે. દરેક રીતે તે શામળભટની વાતો સાથે હરીફાઇ કરે તેવો છે. આ પ્રબંધની રચના કોઇપણ રીતે શામળભટ્ટની વાતોથી ઉતરતા પ્રકારની નથી'; ત્યારપછી[૨] કુશલલાભે સં૦ ૧૬૧૬ માં માધવ-કામકુંડલા

૨ કુશળલાભ-ખરતર ગચ્છના અભયધર્મ ઉપાધ્યાયના શિષ્ય. તેમણે ઉક્ત બે કથાઓ ઉપરાંત તેજસાર રાસ, વીરમગામમાં સં૦ ૧૬૨૪ માં, અગડદત્તરાસ, નવકાર છંદ, ગોડી પાર્શ્વનાથ છંદાદિ રચેલ છે.

પર રાસ, અને સં૦ ૧૬૧૭ માં મારૂઢોલા પર ચોપઈ; [3]દેવશીલે સં૦ ૧૬૧૯ માં વેતાલ પચવીશી અને હેમાનંદે તેજ નામનો ગ્રંથ સં૦ ૧૬૪૬ માં; ગુણમેરૂસૂરિ શિષ્ય રત્નસુંદર ઉપાધ્યાયે પંચોપાખ્યાન (પંચતંત્ર) ચતુષ્પદી સં૦ ૧૬૨૨ માં સાણંદમાં અને શુકબહોતરી ઉર્ફે રસમંજરી સં૦ ૧૬૩૮ માં ખંભતમાં, [4]વરછરાજે નીતિશાસ્ત્ર પંચાખ્યાન (પંચતંત્ર) ચોપઈ સં૦ ૧૬૪૮ માં; [5]હીરકલશે સિંહાસનબત્રીશી સં૦ ૧૬૩૬ માં; [6]મંગલમાણેકે વિક્રમાદિત્ય અને ખાપરા ચોરનો રાસ સં૦ ૧૬૩૮ માં; નરપતિ કવિએ વિક્રમાદિત્ય ચોપઈ સં૦ ૧૬૪૯ માં અને નંદબત્રીશી; [7]હેમરત્ને ગોરાવાદલ પદમિણી કથા ચોપઇ સં૦ ૧૬૬૦ માં; સારંગે ભોજપ્રબંધ ચોપઇ સં૦ ૧૬૫૧ માં; અને બિલ્હિણ પંચાશિકા; અને કનકસુંદરે સં૦ ૧૬૬૭ માં સગાલ શા રાસ; એમ અનેક કવિઓએ અનેક કૃતિઓ રચી છે. જૈનેતરમાં માત્ર એકાદ જેમકે સં૦ ૧૫૭૪ માં આમ્રપદ્ર (આમોદ)ના કાયસ્થ કવિ નરસા સુત ગણપતિએ માધવાનળની કથા ગૂજરાતીમાં બનાવેલી લોકકથા મળી આવી છે અને શોધ કરતાં બીજી પણ થોડી ઘણી મળી આવે. જો કે સત્તરમા શતકના ઘણાખરા મળેલા ગ્રંથો ધાર્મિક છે, પણ તેમાં આ લોકકથાના ગ્રંથ મળવાથી તેમાંથી લૌકિક બાબતો ઘણી પ્રાપ્ત થઇ શકે તેમ છે.

કેટલાકો એમ માનતા હતા અને માને છે કે ગૂજરાતીમાં વાર્તાઓ લખનાર મૂળ કવિ શામળભટ્ટ આદિ છે; પરંતુ તેમની પહેલાંના જૈન રાસાઓમાંથી અનેક રાસાઓ વાર્તાઓ રૂપે બનાવેલા મળી આવે છેઃ એ વાત ઉપર કર્તાઓ અને તેમની કૃતિઓનો

૩ દેવશીલ–તપાગચ્છના સૌભાગ્યસૂરિ શિ૦ સોમવિમલસૂરિ શિ૦ લક્ષ્મીભદ્ર શિ૦ ઉદયશીલ શિ૦ ચારિત્રશીલ શિ૦ પ્રમોદશીલના શિષ્ય. તેની આ કૃતિ રા. જગજીવનદાસ દયાલજી મોદીએ વડોદરામાં પ્રસિદ્ધ કરી છે.

૪ વચ્છરાજ–પાર્શ્વચંદ્રસૂરિ–સમરચંદ્રસૂરિ–રત્નચારિત્ર શિ૦ તેની અન્ય કૃતિઓ સં૦ ૧૬૪૨ માં ખંભાતમાં શાંતિનાથ ચરિત્ર.

૫ હીરકલશ–ખરતર દેવતિલક શિ૦ હર્ષપ્રભ શિ૦ અન્યકૃતિઓ સમ્યકત્વ કૌમુદી સં૦ ૧૬૨૪, કુમતિ વિધ્વંસ ચોપઇ સં૦ ૧૬૦૭.

૬ મંગલમાણેક—આંચલિક ગચ્છના બિડાલંબ ગચ્છ, મુનિરત્ન–સૂરિ આનંદરત્ન–સૂરિ જ્ઞાનરત્ન ઉદયસાગર–ભાનુભટ્ટ શિ૦ તેણે વિશેષમાં અંબડ કથાનક ચોપાઇ સં. ૧૬૩૮ જેઠ શુદ ૧૫ ગુરૂએ શરૂ કરી સં. ૧૬૩૯માં કાર્તિક શુદ ૧૩ ઉજ્જેણીમાં નિઝામના રાજ્યમાં પૂરી કરી છે.

૭ હેમરત્ન—પૌર્ણમિક ગચ્છ દેવતિલક સૂરિ–જ્ઞાન તિલક સૂરિ–પદ્મરાજ ગણિ શિષ્ય. અન્યકૃતિ શીલવતી કથા સં૦ ૧૬૭૩ પાલીમાં બનાવી.

આ બધા જૈન શ્વેતામ્બર સાધુઓ છે. ગૂજરાતના શ્વેતામ્બર સાધુઓએ કથા સાહિત્ય માટે કેવી સેવા બજાવી છે તે માટે જર્મન વિદ્વાન ડૉક્ટર હર્ટલકૃત "ઑન ધી લિટરેચર ઑફ ધી શ્વેતાંબરાસ્ ઑફ ગુજરાત." એ નામનું ચોપાનીયું અવલોકવું.

નામ નિર્દેશ કરી જણાવી છે; તે પરથી શામળભટ્ટને વાર્તાઓના આદિ રચયિતા નહિ કહી શકાય. વિશેષમાં એ પણ સંભવ છે કે ૧૮ મા શતકમાં થયેલા શામળભટ્ટે પોતાની વાર્તાઓનાં મૂળ-વસ્તુ પણ પ્રાચીન જૈન કવિઓના વાર્તારૂપે લખાયેલ રાસાઓ પરથી પ્રાયઃ લીધેલાં હોય. સં૦ ૧૫૭૨ માં સિંહકુશલે નંદબત્રીશી રચી છે કે જે ટુંકી છે, તેની સાથે સરખાવો શામળભટ્ટની નંદબત્રીશી કે જે વિસ્તારવાળી થયેલી છે. ઉપરોકત કુશલલાભની માધવાનળ અને કામકુંડલાની કથા સાથે સરખાવો શામળભટ્ટે રચેલી બત્રીશ પુતળીની વાર્તામાંની ૨૬ મી માધવાનળની વાર્તા, કે જે કેટલીક થોડી બાબતમાં જૂદી પડે છે; પણ તે શામળભટ્ટની કથા બહુ સંક્ષેપમાં છે અને ઝાઝા માલ વગરની છે.૮ તેમ વૈતાળ પચીસી, સિંહાસન બત્રીશી, સુડાબહોતેરી વગેરે જેવી કૃતિઓ સાથે શામળભટ્ટની તે નામની કૃતિઓ સરખાવી શકાય. વખતે જૈન કવિઓએ જેમ લોકમાં પ્રચલિત કથાઓને એકત્રિત આકારમાં ગોઠવી સંગ્રહ કરી યા કોઇ અન્ય ભાષાના ગ્રંથોમાંથી સ્વ ભાષામાં ઉતારી હોય, તેવી રીતે સામળભટ્ટે પણ કર્યું હોય. લોક કથાના સાગર રૂપ કથાસરિત્સાગર, ક્ષેમંકર કૃત સિંહાસન દ્વાત્રિંશિકા અને સંસ્કૃત વેતાલ પંચવિંશતિ જૂની-પ્રાચીન કૃતિઓ છે.

કેટલાક એમ કહેતા હોય કે જૈન સાધુઓ શૃંગારસથી યુકત કાવ્યને તે રચે યા રચવાનો દાવો કરે તો તે જૈન ધર્મનો દીક્ષિત યતિ જ ન કહેવાય૯ તો આના ઉત્તરમાં જણાવવવાનું કે ઉપરોકત કુશલલાભની માધવાનળની કથા શૃંગારરસથી ભરેલી ઉત્તમ પ્રતિની વાર્તા છે, એ રા. હરગોવિન્દદાસ કાંટાવાળાએ સ્વીકાર્યું છે. જૈન કવિઓ અલબત ઉઘાડો અમર્યાદિત શૃંગાર નહિ મૂકે, કે જેથી જેમ શામળભટ્ટને માટે નર્મદ કવિને કહેવું પડયું કે 'શામળભટ્ટે કેટલીક વાર્તાઓ ન લખી હોત તો સારૂં' તેમ જૈન કવિઓ માટે કહેવું નહિજ પડે. " વિશેષમાં જૈન સાધુઓ જેમ અમુક સદ્ગુણનું પ્રતિપાદન કરે છે, તેમ આ (માધવાનળની કથાના) ગ્રંથમાં શીળનો મહિમા બતાવ્યો છે, એટલે તે બાબતમાં તે (જૈન કવિ) શામળભટ્ટ કરતાં ચઢે છે........આ કૃતિ શામળભટ્ટની પૂર્વેના શતકમાં રચાઇ હતી. " (રા. હરગોવિન્દદાસ કાંટાવાળા).

આ કથા તેમજ મારૂ ઢોલાની ચોપાઈ બંને જેસલમેરમાં ત્યાંના મહારાજા રાવળ માલદેવજીના પાટવીકુમાર શ્રી હરરાજજી (કે જેમણે વિ૦ સં૦૧૬૧૮ થી ૧૬૩૪ સુધી જેસલમેરનું રાજ્ય કર્યું) ના કુતુહલ અને વિનોદ અર્થે બનાવેલ છે. મારૂઢોલાની ચોપાઇ સંબંધી એવી વાત છે કે હરરાજજીએ સં૦ ૧૬૧૭ માં અકબરનું સ્વામીત્વ સ્વીકારી

૮ સ્વ. ચિમનલાલ ડાહ્યાભાઇ દલાલનો માધવાનળ કામકંદલાની લોક કથાપર 'સાહિત્ય' મ આવેલ લેખ.

૯ લખપતિ શૃંગાર એ મથાળાનો લેખ. સ્વ. કવિ જીવરામ અજરામર ગોર. ગુજરાતી દીવાળી અં સં૦ ૧૯૬૭.

દિલ્હી દરબારમાં જવા આવવા માંડયું હતું. એમણે પૃથ્વીરાજની કરેલ 'વેલિ' (કૃષ્ણ રૂકિમણીનીવેલી) [૧૦]નાં વખાણ સાંભળી પોતે યુવરાજ હતા ત્યારે અને પટ્ટાભિષેક થયા પછી જેસલમેરના સર્વે કવિ અને વિદ્વાનોને એકઠા કરી 'મારૂઢોલાની વાર્તાના પ્રાચીન દોહા એકઠા કરી તેને વાર્તાના આકારમાં યથાક્રમે ગોઠવી જે ઉત્તમ ગ્રંથ બનાવશે તેને હું ઇનામ આપીશ' એમ કહી કેટલાક ગ્રંથો રચાવેલા પોતા પાસે તૈયાર હતા તેમાંથી સર્વોત્તમ જે ગ્રંથ બન્યો હતો તે બાદશાહને ભેટ ધર્યો. આ વાતને મારૂઢોલાની વાર્ત્તા પર જેટલા ગ્રંથો બન્યા છે તે હરરાજજીની આજ્ઞાથી બન્યા છે એવું છ સાત ગ્રંથોની પ્રશસ્તિ પરથી જણાતાં ટેકો મળે છે. (વાક્ સૌંદર્ય સં૦ ૧૯૭૩ માર્ગશીર્ષનો અંક).

આ રીતે આપણે આ મધ્યયુગના—સત્તરમા સૈકાના ખાસ વિશિષ્ટ ગુણો જોયા. જૈન કૃતિઓ અપ્રકટ હોવાના કારણે યા તે પર અલક્ષ હોવાના કારણે માત્ર જૈનેતર કૃતિઓ લઈ યુગોનાં લક્ષણો જૈનેતરો બાંધે અને તે માટે તેમજ અમુકના અમુક જૈનેતર ઉત્પાદક એમ સિદ્ધાન્તો (theories) ઘડે એ સ્વાભાવિક છે. પણ જે અત્ર ભારપૂર્વક નમ્ર વકતવ્ય છે તે એ છે કે જૈનકૃતિઓ પર લક્ષ રાખવાથી તે સિદ્ધાંતો ખંડિત બની ચૈતન્યશૂન્ય થાય તેમ છે. ગૂર્જર વાગ્દેવીનાં બંને સંતાનો—જૈનેતર તેમજ જૈનો—સમાન-દૃષ્ટિએ નિરખાવાં ઘટે. બંનેનો ફાળો સંયુક્ત અવિભકત પુંજી છે. કોઈ ઓછો, કોઈ વધુ ફાળો આપે, પણ એકેયનો અનાદર ન ઘટે. જૈનેતરોમાં સંસ્કૃત ભાષાપ્રત્યેના મોહને લીધે, યા મુસલમાનોના આક્રમણથી થયેલી હિન્દુ રાજ્યની પાયમાલીને કારણે ભાષાસાહિત્ય મુખ્યપણે ન ખીલ્યું હોય તો તે સંભવિત છે, તેમજ જૈનોમાં મુખ્યપણે ત્યાગી અને પરિભ્રમણશીલ સાધુઓ બ્રહ્મચર્ય સેવી વિદ્યાવ્યાસંગી રહી ભાષાસાહિત્યપ્રત્યેના મોહને લીધે તે વિશેષ ખીલવી શકયા હોય તે તદ્દન સંભવિત છે; સ્વ૦ રણજીતરામ વાવાભાઇ મહેતાએ સત્યરીતે અને આગળ વધીને જણાવ્યું છે કેઃ—

"અલાઉદ્દીન ખીલજીના સરદારોએ ગુજરાતના હિંદુ રાજ્યને પાયમાલ કીધું ત્યાર પછી ચાલેલી અંધાધૂધીમાં નાસભાગ કરતા બ્રાહ્મણોએ શારદાસેવન ત્યજી દીધું, પણ મંદિરો—પ્રતિમા આદિની આશાતના થવા છતાં જૈનસાધુઓ પોતાના અભ્યાસમાં આસકત રહ્યા અને શારદા દેવીને અપૂજ ન થવા દીધી. આવા ધર્મપરાયણ અને વિદ્વાન્ સાધુઓને

૧૦ જુઓ ગુજરાતીનો દીવાળી અંક સં૦ ૧૯૭૭ પૃ. ૬૬. 'રાઠોડ પૃથ્વીરાજ અને વેલી ક્રિસન રૂકમણીરી' એ નામનો લેખ. તેમાં તેનો રચ્યા સં૦ ૧૬૩૪ આપેલ છે ને ભાટ ચારણો આગળ પરીક્ષા માટે સં૦ ૧૬૪૪ માં મૂકેલ હોય એમ તેની છેલ્લી બે કડીઓ પરથી જણાય છે. જો આ કડીઓ પાછળથી ઉમેરી ન હોય ને પૃથ્વીરાજની સ્વરચિત હોય, તો પછી હરરાજજી તે કૃતિની સામે મૂકવા બીજી કૃતિ સં. ૧૬૧૭ માં ઉત્પન્ન કરાવવા માંગે એ બંધબેસ્તું નથી. બાકી હરરાજજીના આનંદ માટે તે કૃતિ થઇ અને બનાવરાવી એ કથન સિદ્ધ છે.

પાટે, અમદાવાદની સલતનત તૂટી ત્યારે, શ્રી હીરવિજયસૂરિ નામે સાધુ હતા. આગ્રે જઈ ઈબાદતખાનામાં અકબર બાદશાહ અને અન્ય ધર્મીઓને તેમણે જૈનધર્મનો મહિમા બતાવ્યો.

" આ ઇતિહાસ શું કહે છે ? ગુજરાતના અગ્રગણ્ય નાગરિક જૈનોનો સૂર્ય ગુજરાતના હિન્દુ સામ્રાજ્ય દરમ્યાન મધ્યાન્હમાં હતો અને હેમચંદ્રની માફક અમાસને દિવસે પ્રકાશોજ્જ્વલ પૂર્ણિમા આણવા સમર્થ હતો. તેઓ મહિનાઓના મહિના સૂધી દરિયો ખેડી લાંબી સફરો કરી દેશદેશાવરની લક્ષ્મી લાવી ગુજરાતમાં ઢાળતા; પોતાનાં વીરત્વ અને વફાદારીથી રાજા પ્રજા ઉભયને સંકટ અને સૌભાગ્યના સમયમાં મદદ કરતા, અણહિલપુરની ગાદીનું ગૌરવ જાળવતા-વધારતા; બીજા દેવોનાં મંદિરો ખંડિયર થઈ જતાં હતાં, છતાં સરસ્વતી દેવીનાં મંદિરો જૈન સાધુઓના ભીષ્મ પરિશ્રમને લીધે ઘંટનાદથી ગાજી રહ્યાં હતાં. દેલવાડાપરનાં વિમળશાહનાં દેહરાં જેવાં અનેક સૌંદર્યથી ગૂજરાત વિભૂષિત થતું હતું; રાજ્યની ઉથલ પાથલો, અંધાધૂધી, અને બીન સલામતી વારંવાર નડતી છતાં પોતાના ઉત્કૃષ્ટ વૈશ્ય ગુણોને લીધે ગૂજરાતનો વેપાર પડી ભાંગવા ન દીધો અને આજ પર્યંત વેપાર ખેડવાની લાયકાત અને શક્તિ તેજ રાખ્યાં. "

(જૈનધર્મ પ્રકાશનો જ્યુબિલી અંક).

આટલું કહી હવે આપણે પ્રસ્તુત કવિનો પરિચય કરવા પ્રત્યે વળીશું.

કવિનો પરિચય.

કવિ પોતાના જૂદા જૂદા ગ્રંથમાં નાની મોટી પ્રશસ્તિ આપી પોતાનો કંઇક પરિચય કરાવતો ગયો છે. તે પરથી સમજાય છે કે પોતાનો ગચ્છ જૈનશ્વેતામ્બર મૂર્તિપૂજક સંપ્રદાયના પૈકી ખરતર ગચ્છ હતો. તે ગચ્છના ઉત્પાદક સંબંધી એવો ઉલ્લેખ કરે છે કેઃ—

"ત્યાર પછી તેમના શિષ્ય જિનવલ્લભસૂરિ થયા, તેમના પછી ૬૪ જોગણીને વશ કરનાર જિનદત્તસૂરિ થયા. તેના જિનચંદ્રસૂરિ, તેના પછી અનુક્રમે જિનપતિસૂરિ, જિનેશ્વરસૂરિ, જિનપ્રબોધસૂરિ અને જિનચંદ્રસૂરિ થયા. જિનચંદ્રસૂરિના આદેશથી તેજઃપાલે શાંતિનાથનું બિંબ બનાવ્યું, તેના પછી જિનકુશલસૂરિ (ખરતરગચ્છની પટ્ટાવલિમાં ૪૩ મા.) ત્યાર પછી જિનપદ્મ, જિનલબ્ધિ, જિનચંદ્ર, જિનોદય, જિનરાજ, જિનભદ્ર અનુક્રમે થયા. આ ૫૬ મા જિનભદ્રસૂરિએ જેસલમેર, જાબાલિપુર (જાલોર), દેવગિરિ, અહિપુર (નાગપુર-નાગોર), અને પાટણમાં પુસ્તક ભંડારો કરાવ્યા. (પટ્ટધર ૫દ સં૦ ૧૪૭૫ અને મરણ સં૦ ૧૫૧૪). ત્યાર પછી ક્રમે જિનચંદ્ર, જિનસમુદ્ર, જિનમાણિક્ય થયા. જિનમાણિક્યના જિનચંદ્રસૂરિ થયા કે જે હાલ વિદ્યમાન છે. તે જિનચંદ્રસૂરિને અકબ્બર બાદશાહે આનંદથી 'યુગ પ્રધાન' પદ આપ્યું."

ઉક્ત (૬૧ મા) જિનચંદ્રસૂરિના[૧૨] હસ્તદીક્ષિત મુખ્ય શિષ્ય સકલચંદ્ર ઉપાધ્યાય[૧૩] થયા અને તેના શિષ્ય તરીકે હું, સમય સુંદર વાચક-ઉપાધ્યાય થયો. (જુઓ સં૦ ૧૬૭૬ માં રચેલી અર્થરત્નાવલી અથવા અષ્ટલક્ષીની પ્રશસ્તિ. પીટર્સન ચતુર્થ રીપોર્ટ. નં. ૧૧૭૪-પૃ૦ ૬૮.)

જબરો ઝઘડો થયો હતો. ધર્મસાગરે એવું પ્રતિપાદન કરવા માંડ્યું હતું કે ખરતર ગચ્છની ઉત્પત્તિ જિનેશ્વરસૂરિથી નહિ, પણ જિનદત્તસૂરિથી થઇ છે. અભયદેવસૂરિ ખરતર ગચ્છમાં થઇ શકતા નથી. જિનવલ્લભસૂરિએ શાસ્ત્ર વિરૂદ્ધ પ્રરૂપણા કરી છે. વગેરે ચર્ચાના વિષયો પોતાના ઔષ્ટ્રિક મતોત્સૂત્રદીપિકા નામના ગ્રંથમાં મૂકયા (રચ્યા સં૦ ૧૬૧૭.) આ ગ્રંથનું બીજું નામ પ્રવચનપરીક્ષા છે યા બંને જૂદા હોય-બંનેમાં વિષયો સરખા છે. તેમાંનાં એકનું બીજું નામ કુમતિકંદકુદ્દાલ છે. આથી બહુ હોહાકાર થયો. બે ગચ્છ વચ્ચે અથડામણી અને અંતે પ્રબળ વિખવાદ ઉત્પન્ન થતાં તે કયાં અટકશે એ વિચારવાનું રહ્યું. જોખમદાર આચાર્યોને વચ્ચે પડયા વગર ચાલે નહિ, તેથી તપાગચ્છના વિજયદાનસૂરિએ ઉક્ત કુમતિકંદકુદ્દાલ ગ્રંથ સભાસમક્ષ પાણીમાં બોળાવી દીધો હતો અને તે ગ્રંથની નકલ કોઇની પણ પાસે હોય તો, તે અપ્રમાણ ગ્રંથ છે માટે તેમાંનું કથન કોઇએ પ્રમાણભૂત માનવું નહિ, એવું જાહેર કર્યું હતું. ખરતરગચ્છ વાળાએ પોતાના મતનું પ્રતિપાદન કરાવવા ભગિરથ પ્રયત્ન સેવ્યો હતો એ વાતના પ્રમાણમાં જણાવવાનું કે આપણા નાયક સમક સુંદર ઉપાધ્યાયજીના સં૦ ૧૬૭૨ માં રચેલા સામાચારી શતકમાં સં૦ ૧૬૧૭ માં પાટણમાં થયેલા એક પ્રમાણ પત્રની નકલ આપેલી છે કે જેમાં એવી હકીકત છે કે અભયદેવસૂરિ ખરતર ગચ્છમાં થયેલા છે એ વાત પાટણના ૮૪ ગચ્છોવાળા માને છે, અને એ પ્રમાણ પત્ર સાચું જણાય છે, અને તેનો હેતુ ઉપરનો કલહ-વાદ શમાવવા અર્થે હતો.

૧૨. જિનચંદ્રસૂરિ-ગોત્ર રીહડ, પિતા શ્રીવંત, માતા શ્રિયાદેવી. જ્ઞાતિ વણિક, તિમરી (તીવરી) -જોધપુર રાજ્ય) ની પાસે આવેલા વડલી ગામમાં સં૦ ૧૫૯૫ માં જન્મ. માત્ર નવ વર્ષની ઉમરે સં૦ ૧૬૦૪ માં જૈન સાધુની દીક્ષા. ૧૭ વર્ષની વયે સં૦ ૧૬૧૨ બાદ્રપદ શુદિ નવમી ગુરૂવારે જેસલમેરમાં સૂરિપદ. તેમણે અકબર બાદશાહને જૈન ધર્મનો બોધ આપ્યો હતો અને બાદશાહે યુગમાં પ્રધાન

આ રીતે પોતાની ગુરૂ પરંપરા પોતે આપી છે તે અત્ર જણાવી. પોતે પોતાના ગચ્છનું નામ બૃહત્ ખરતર ગચ્છ આપેલું છે કારણ કે ખરતર ગચ્છમાં પોતાના સમય સુધીમાં અનેક શાખાઓ મૂળ વૃક્ષમાંથી નીકળી હતી અને પોતાનું મૂળ વૃક્ષમાંથી ચાલી આવેલ થડ બતાવવા 'બૃહત્' શબ્દ યોજેલ છે.

સં૦ ૧૬૪૯ ના ફાગણ શુદિ ૨ ને દિને યુગપ્રધાન જિનચંદ્ર સૂરિએ અકબ્બર બાદશાહના કહેવાથી લાહોરમાં (લાભપુરમાં) માનસિંહને આચાર્યપદ આપી તેમનું નામ જિનસિંહ સૂરિ૧૪ રાખ્યું, તે સમયે તેજ જિનચંદ્ર સૂરિએ સ્વહસ્તે કવિ સમયસુંદર

પુરૂષ સૂચક 'યુગપ્રધાન' પદ આપ્યું હતું. એમ કહેવાય છે કે બાદશાહને જૈનધર્મી-જૈનધર્મ પ્રશંસક બનાવ્યો હતો (प्रबोधितो येन दया परेण ह्यकव्वराख्यः पतिसाहि मुख्यः-જિનલાભ સૂરિના સં૦ ૧૮૩૩ ના આત્મપ્રબોધની પ્રશસ્તિ). તેમને સકલચંદ્ર ઉપાધ્યાય ઉપરાન્ત ૯૫ શિષ્યો હતા-તેમાં મુખ્ય સમયરાજ, મહિમારાજ, ધર્મ, નિધાન, રત્નનિધાન, જ્ઞાનવિમલ વિગેરે હતા. તેમનો સ્વર્ગવાસ વેનાતટે (બિલાડા -મારવાડ) સં૦ ૧૬૭૦ ના આશ્વિનવદિ બીજના દિને થયો. (જુઓ ઇંડિયન એંટિક્વરીમાં આપેલ ખરતર ગચ્છની પટ્ટાવલિ-મારૂં ભાષાન્તર, સનાતન જૈનના ૧૯૦૭ ના જુલાઇના અંકમાં વધુ માટે જુઓ રત્નસાગર ભાગ ૨ જો પૃ૦ ૧૨૫) તેમણે પોતાની પાસે ગેલી નામની શ્રાવિકાએ સં૦ ૧૬૩૩ ફા૦ વદ ૫ ને દિને બાર વ્રત સ્વેચ્છા પ્રમાણે ગ્રહણ કર્યાં તે સંબંધી 'ઇચ્છા પરિણામ ટિપ્પનક' યા બાર વ્રતનો રાસ ભાષામાં સં૦ ૧૬૩૩ માં બનાવ્યો છે. વળી મેડતામાં જેને હાલ 'લોઢાંરો મંદિર' કહેવામાં આવે છે તેમાં ચિંતામણિ પાર્શ્વનાથની પ્રતિમાની તેમણે સં૦ ૧૬૬૯ ના માઘ શુદિ ૫ શુક્રવારે મહારાજા સૂર્યસિંહના રાજ્યમાં પ્રતિષ્ઠા કરી છે (પ્રાચીન લેખ સંગ્રહ ભા૦ ૨ પૃ૦ ૩૦૭). તેમના જ સમયમાં તેમના અનુયાયી ભક્ત, પ્રખ્યાત કર્મચંદ્ર મંત્રીએ સં૦ ૧૬૩૫ ના ભયંકર દુકાળના વખતમાં સવાકરોડ રૂપીઆ ખર્ચી સત્રાકારો બંધાવી બહુ જનોને બચાવ્યા હતા અને તે કર્મચંદ્રે તેમનો યુગપ્રધાન મહોત્સવ-તેમના શિષ્ય જિનસિંહ સૂરિનો આચાર્ય પદ મહોત્સવ અતિ દ્રવ્ય ખર્ચી સં૦ ૧૬૪૯ માં ઉજવ્યો હતો. વળી તેમના સમયમાં સોમજી અને શિવજી એ બે પ્રસિદ્ધ શ્રાવકોએ રાણકપુર, ગિરનાર, આબુ, ગોડીપાર્શ્વનાથ અને શત્રુંજય એ પાંચ જૈનતીર્થોએ સંઘ કાઢી લઇ ગયા હતા. (જુઓ સમયસુંદરની કલ્પસૂત્ર ટીકાની પ્રશસ્તિ). આ કર્મચંદ્ર મંત્રીએ સથર નગરમાં જિનકુશલ સૂરિનો મોટા સ્થૂભ સં૦ ૧૬૫૫ માહા શુદ ૧૦ મે કરાવ્યો. તે સિવાય બીજાં સ્થલોએ તેમના અનેક સ્થૂભ કરાવ્યા હતા.

૧૩ સકલચંદ્ર ગણી-તેઓ વિદ્વાન પંડિત અને શિલ્પશાસ્ત્રમાં કુશલ હતા. પ્રતિષ્ઠાકલ્પ શ્લોક ૧૧૦૦૦, જિનવલ્લભ સૂરિકૃત ધર્મશિક્ષા પર વૃત્તિ (પત્ર ૧૨૮), અને પ્રાકૃતમાં હિતાચરણ નામના ઔપદેશિક ગ્રંથ પર વૃત્તિ ૧૨૪૩૯ શ્લોકમાં સં૦ ૧૬૩૦ માં રચેલ છે.

૧૪. જિનસિંહ સૂરિ-પિતા ચાંપસી, માતા ચતુરંગા દેવી, ગોત્ર ગણધર ચોપડા, વણિક જ્ઞાતિ. જન્મ ખેસર (ખેતાસર) ગામમાં સં૦ ૧૬૧૫ ના માગશર શુદિ પૂર્ણિમાને દિને; તેમનું મૂલ નામ માનસિંહ. દીક્ષા બીકાનેરમાં સં૦ ૧૬૨૩ ના માગશર વદિ ૫ ને દિને; વાચક-ઉપાધ્યાય પદ જેસલમેરમાં સં૦ ૧૬૪૦ ના માઘ શુદિ ૫ ને દિને; સૂરિપદ લાહોરમાં સં૦ ૧૬૪૯ ના ફાલ્ગુન શુદિ ૨ ને દિને. અકબ્બર બાદશાહને મળવા માટે કાશ્મીરમાં કઠિન વિહાર (મુસાફરી) કર્યો હતો. વાર, સિંદૂર અને ગજ્જણા (ગિઝની) આદિ દેશોમાં પણ તેમણે અમારિ એટલે જીવદયા-અહિંસા પ્રવર્તાવરાવી હતી. અકબર

તથા ગુણવિનય એ બે સાધુઓને ઉપાધ્યાય પદ આપ્યું. આ વાત ઉક્ત ગુણવિનય[૧૫]ઉપાધ્યાયે જ સં૦ ૧૬૫૫ માં રચેલા કર્મચંદ્ર મંત્રિવંશ પ્રબંધ-કર્મચંદ્રવંશાવલિ પ્રબંધમાં આપેલી છે. કે જે કર્મચંદ્ર મંત્રીએ આ આચાર્ય મહોત્સવ કરેલો. આ સમયે જ જિનચંદ્ર સૂરિને યુગ પ્રધાનપદ મળેલું જણાય છે.

વાચક પદ ગુણ વિનયનઇ, સમયસુંદરનઇ દીધઉ રે
યુગ પ્રધાનજીનઇ કરઈ, જાણિ રસાયણ સીધઉ રે.
—શ્રી જિન શાસન ચિર જયઉ.

આ ઉત્સવના શુભ કાર્યના ઉપલક્ષમાં બાદશાહ અકબ્બર ખંભાતના બંદર ઉપર એક વર્ષ સુધી કોઈ મગર કે માછલીઓ ન મારે એવો હુકમ બહાર પાડયો હતો. તેમ લાહોરમાં પણ એક દિવસ કોઇપણ જીવની હિંસા નહિ કરવાની આજ્ઞા ફેરવી દીધી હતી. (જુઓ ઉક્ત પ્રબંધ ઐતિહાસિક રાસમાળા ભા૦ ૩; જૈન ઐતિહાસિક ગૂર્જર કાવ્ય સંચય.) જુઓ પં૦ જયસોમ કૃત સંસ્કૃતમાં કર્મચંદ્ર મંત્રી પ્રબંધ. ઉક્ત જિનસિંહ સૂરિએ બાદશાહ પર પોતાનો પ્રભાવ પાડી તેની પાસેથી આષાઢ શુદિ ૯ થી આષાઢ શુદિ ૧૫ સુધીના સાત દિવસોમાં બીલકુલ જીવવધ ન થાય એવું ફરમાન મેળવ્યું હતું. આ અસલી ફરમાન પત્ર હાથ આવ્યું છે ને તે હિન્દી 'સરસ્વતી' માસિકના જૂન, સને ૧૯૧૨ ના અંકમાં છપાયું છે. આમાં હીરવિજય સૂરિના ઉપદેશથી પર્યુષણના આઠ અને બીજા ચાર એમ બાર દિવસો સુધીમાં જીવવધના નિર્બંધ માટે ફરમાન આપ્યું છે તેનો પણ ઉલ્લેખ કર્યો છે.

જિનચંદ્રસૂરિ એક પ્રભાવક મહાપુરૂષ હતા. તેમનાં જ્ઞાન અને આચારની ખ્યાતિ અકબ્બર બાદશાહે ઉક્ત કર્મચંદ્ર બછાવત પાસેથી સાંભળી પોતાની નિજકલમવડે ફુરમાન (વિનતિ) પંજાબના લાહોર નગરથી લખી અને પોતાના ખાસ મરજી દાન ઉમરાવો તે ગુરૂને બોલાવવા માટે મોકલ્યા. તે વખતે તે ગુરૂના ૮૪ શિષ્યમાં મુખ્ય સકલચંદ્ર ઉપાધ્યાયના શિષ્ય પંડિત સમયસુંદરજી પણ વિહારમાં સાથે હતા. તે વિહાર કયાંથી કયાં કર્યો અને લાહોરમાં આવ્યા પછી ઉપરોકત મહોત્સવ કેમ થયો એ સંબંધી સમયસુંદરેજ 'ગુરૂ ગુણ છંદ અષ્ટક' હિન્દીમાં બનાવેલ છે તે અત્ર જણાવીશું.

બાદશાહે પોતાના રાજ્યવહિવટના છેલ્લા વર્ષમાં (સં૦ ૧૬૬૦ માં) દસ્તાવેજ કરી ફરમાન કરી આપ્યું હતું કે ભાદરવા શુદ ૯ થી ભાદરવા શુદ ૧૫ સુધી પોતાના સંપૂર્ણ રાજ્યમાં જીવહિંસા બંધ રાખવી. ત્યાર પછી જહાંગીર બાદશાહે તેમને 'યુગપ્રધાન' પદ આપ્યું હતું. પટ્ટધર જિનચંદ્ર સૂરિ સ્વર્ગસ્થ થતાં વેનાતટમાં (બિલાડા મારવાડમાં) ગચ્છનાયક પદ સં૦ ૧૬૭૦ ના પોષ વદિ ૧૩ ને દિને મેડતામાં થયો. (જુઓ ઉપરોક્ત ખરતર ગચ્છ પટ્ટાવલિ; સનાતન જૈન, જુલાઇ ૧૯૦૭, રત્નસાગર ભા૦ ૨ પૃ૦ ૧૨૭; જ્ઞાનવિમલ કૃત સં૦ ૧૬૫૪ ની શબ્દ પ્રભેદ વૃત્તિમાંની ગુરૂ પટ્ટાવલિ; પીટર્સન રીપોર્ટ બીજો પૃ૦ ૬૫) તેમની પાટે જિનરાજ સૂરિ (બીજા) આવ્યા.

૧૫. ગુણવિનય વાચક-તેમણે ભાષામાં આ પ્રબંધ ઉપરાન્ત અંજનાસુંદરી પ્રબંધ સં૦ ૧૬૬૨

૧૬ સંતનકી મુખ વાણિ સુણી જિનચંદ મુણિંદ મહંત જતી,
તપજપ કરે ગુરૂ ગુજ્જરમેં પ્રતિબોધત હૈ ભવિકું સુમતી,
તબહી ચિતચાહન ચૂંપ ભઇ સમયસુંદરકે ગુરૂ ગચ્છપતી,
એજી પતસાહ અકબ્બરી છાપ બોલાયે ગુરૂ ગજરાજ ગતી. ૧

એજી ગુજ્જરતેં ગુરૂરાજ ચલે વિચમેં ચોમાસ જાલોર રહે,
મેદનીતટમેં મંડાણ કિયો ગુરૂ નાગોર આદરમાંન લહે,
મારવાડરિણી ગુરૂવંદનકોં તરસે સરસે વિચ વેગ વહે,
હરખ્યો સંઘ લાહોર આયે ગુરૂ પતસાહ અકબ્બર પાંવ ગહે. ૨

એજી સાહ અકબ્બરી વબ્બરકે ગુરૂ સૂરત દેખત હી હરખે,
હમ જોગી જતી સિદ્ધ સાધ વ્રતી સબહી ખટ દરસન કે નિરખે,
ટોપી બસડમાવાસ ચંદ ઉદય અજ તીન બતાય કલા પરખે,
તપ જપ દયા ધર્મ ધારણકોં જગ કોઈ નહીં ઇનકે સરખે. ૩

ગુરૂ અમૃતવાણિ સુણી સુલતાન એસા પતસાહ હુકમ્મ કિયા,
સબ આલમ માંહિ અમાર પલાય બોલાય ગુરૂ ફુરમાણ દિયા,
જગજીવ દયા ધર્મ દાક્ષણતેં જિન સાસનમેં જુ..સોભાગ લિયા,
સમયસુંદર કહે ગુણવંત ગુરૂ દગ દેખત હરખત ભવ્ય હિયા. ૪

એજી શ્રીજી ગુરૂ ધર્મ ધ્યાન મિલે સુલતાન સલેમ અરજ્જ કરી,
ગુરૂ જીવ દયા નિત નેમ ધરે ચિત અંતર પ્રીતિ પ્રતીતિ ધરી,
કર્મચંદ બુલાય દિયે ફુરમાણ છોડાય ખંભાયતકી મચ્છરી,
સમયસુંદરકે સબ સજ્જનમેં નિત ખરતર ગચ્છકી ખ્યાતિ ખરી. ૫

ના ચૈત્ર શુદ ૧૩ બુધે; ગુણસુંદરની ચોપઇ; અંચલમત સ્વરૂપ વર્ણન રાસ સં૦ ૧૬૭૪ માઘ શુદ ૬ રવિવારે માલપુરમાં રચેલ છે. ખરતર ગચ્છની ક્ષેમ શાખામાં ક્ષેમરાજ ઉપાધ્યાયના પ્રમોદમાણિક્ય શિષ્ય, તેના જયસોમ, અને તેના તેઓ શિષ્ય થાય. આ કવિએ સંસ્કૃતમાં પણ અનેક ગ્રંથો રચ્યા છે તે પૈકી ખંડ પ્રશસ્તિ કાવ્ય ટીકા સં૦ ૧૬૪૧, દમયંતી ચંપૂ ટીકા સં૦ ૧૬૪૬, રઘુવંશ ટીકા સં૦ ૧૬૪૬, વૈરાગ્યશતક ટીકા સં૦ ૧૬૪૭, ઇંદ્રિય પરાજયશતક વૃત્તિ સં૦ ૧૬૬૪, ઉત્સૂત્રોદ્ઘટ્ટન કુલક ખંડન સં૦ ૧૬૬૫ કે જેમાં ઉપરોક્ત ધર્મસાગર ઉપાધ્યાયના મતનું ખંડન કરેલું જણાય છે, સંબોધસત્તરી ટીકા, લઘુઅજિતશાંતિ સ્તોત્ર ટીકા છે. આ પરથી તેઓ એક સત્તરમા સૈકામાં વિદ્વાન ટીકાકાર અને સાક્ષર હતા એ નિર્વિવાદ છે. (વધુ માટે જુઓ એ૦ રાસસંગ્રહ ભાગ ૩ જો)

૧૬. ૨. મેદનીતટ-મેડતા; મારવાડરિણી-મારવાડની સ્ત્રીઓ. ૩. ટોપી......હરખે=આનો અર્થ બરાબર સમજાતો નથી, પણ એમાં એમ હોવાનો સંભવ છે કે ટોપી ઉડાડી અધર રાખી હોય, અમાવાસને દિને ચંદ્રનો ઉદય બતાવ્યો હોય અને ત્રણ બકરાં બતાવીચમત્કાર બતાવ્યા હતા. ૪. ભવ્ય—પાઠાંતર હોત. મચ્છરી—માછલી પકડવાનું ખંભાતમાં થતું હતું તે ફુરમાનથી દૂર કરાવ્યું. ૬–ચામર છત્ર......જિયરે—પાઠાંતર–જુગપ્રધાનકાએ ગુરૂદૂં ગિગડદું ગિગડદું ધુંધું બાજીયેરે સમયસુંદરકે ગુરૂ માન ગુરૂ, પતિસાહ અકબ્બર ગાજીયેરે. (જૈનસંપ્રદાય શિક્ષા પૃ. ૬૪૯)

એજી શ્રી જિનદત્ત ચરિત્ર સુણી પનસાદ ભયે ગુરૂ રાજિયે રે,
ઉમરાવ સબૈ કર જોડ ખડે પભણે અપણે મુખ હાજિયે રે,
ચામર છત્ર મુરા તબ ભેટ ગિગડદૂં ધૂંધૂં બાજિયે રે,
સમયસુંદર તૂંહી જગત્ર ગુરૂ પતસાહ અકબ્બર ગાજિયે રે. ૬

હેજી જ્ઞાન વિજ્ઞાન કલા ગુણ દેખ મેરા મન સદગુરૂ રીઝીયેજી,
હુમાયૂકો નંદન એમ અખૈ, અબ સિંધ (માનસિંઘ) પરોધર કીજીયેજી,
પતસાહ હજૂર થપ્યાં સંઘ સૂરિ મંડાણ મંત્રીશ્વર વીઝીયેજી,
જિણચંદ પટે જિણસિંહ સૂરિઃ ચંદ સૂરજ જ્યૂં પ્રતપીજીયેજી. ૭

હેજી રીહડવંસ વિભૂષણ હંસ ખરતર ગચ્છ સમુદ્ર શશી,
પ્રતપ્યો જિન માણિક્ય સૂરિ કે પાટ પ્રભાકર જ્યૂં પ્રણમૂં ઉલસી,
મન શુદ્ધ અકબ્બર માંનત હૈ જગ જાણત હૈ પરતીત એસી,
જિનચંદ મુણીંદ ચિરં પ્રતપો સમયસુંદર દેત આશીશ એસી.× ૮

આ પરથી એમ અનુમાન થાય છે કે જિનચંદ્રસૂરિ, અકબર બાદશાહે બોલાવવાથી ગૂજરાતમાં હતા ત્યાંથી અનેક શિષ્યો સાથે લઇ ગયા તેમાં સમયસુંદર હતા. ગૂજરાતમાંથી વિહાર કરતાં પહેલાં જાલોર, ત્યાંથી મેદિનીતટ-મેડતા, નાગોર એમ મારવાડમાંથી પસાર થઇને લાહોર આવ્યા.

સં૦ ૧૬૪૯ પહેલાં તો સમયસુંદર ગૂજરાતમાં જ રહ્યા હતા અને સં૦ ૧૬૪૯ માં લાહોર આવી ઉપાધ્યાય પદ મેળવી પછી તે બાજુ ને વિશેષમાં મેવાડ-મારવાડમાં પ્રવાસ કર્યો છે, અને તેથી તેમની મુખ્ય ગૂજરાતી ભાષામાં અનેક દેશોના પ્રાન્તીય શબ્દો, મારવાડી શબ્દો, ફારસી શબ્દો જોવામાં આવે છે. આ વાત તેમણે જે ગ્રંથો રચ્યા તેના નિર્દિષ્ટ સ્થલપરથી-તે ગ્રંથોપરથી જણાઈ આવે છે.

×આ અષ્ટક 'મહાજન વંશ મુક્તાવલિ'-ઉ૦ રામલાલ ગણી. રાંઘડી વિદ્યાશાલા બીકાનેરમાંથી તેની પ્રસ્તાવના પૃ૦ ૫-૬ પરથી ઉતારેલું છે. તેમાં વિશેષ જણાવ્યું છે કે "આ વખતે નકાસ (ચિતારા) એ તસવીર બાદશાહ અને ગુરૂમહારાજની ઉતારી તે બીકાનેરના ખરતર ભટ્ટારક શ્રી પૂજ્યજી પાસે મોજૂદ છે. ચિતારાએ બાદશાહ અકબ્બરની સભામાંથી બાદશાહની પાછળ મુખ્ય ૩ તસબીર લખી છે. બિરબલ, કરમચંદ બછાવત, તથા કાજી ખાનખા; અને શ્રી ગુરૂ મહારાજના સર્વ સાધુ સમુદાયમાંથી ૩ ત્રણ સાધુ નામ લખ્યાં છેઃ- વેષહર્ષ (ખરૂં નામ વિવેક હર્ષ) પરમાનંદ, તથા સમયસુંદર." આ છબી પ્રકટ થાય તો ઘણો પ્રકાશ પડે અને કવિ સમયસુંદરની તસબીર મળી આવે. આવીજ છબી તપાગચ્છીયહીરવિજય સૂરિની તે વખતની પ્રકટ થઇ છે (જુઓ સાક્ષર શ્રી જિનવિજયજીએ કૃપારસકોશની લખેલી ભૂમિકા સાથે પ્રકટ કરેલ છબી. તેમાં પણ અકબ્બર સાથે ત્રણ અમીરાદિ, અને હીરવિજય સાથે ત્રણ જૈન સાધુઓ છે. આ અને ઉપરની છબી બંને એકતો નથી એમ શંકા રહે છે. વળી આ અષ્ટક જૈન સંપ્રદાય શિક્ષા (યતિ શ્રી પાલચંદની) માં પૃ૦ ૬૪૯ ની ટિપ્પણીમાં પ્રકટ થયું છે.

સં૦ ૧૬૫૮ અમદાવાદ, સં૦ ૧૬૫૯ ખંભાત, સં૦ ૧૬૬૨ સાંગાનેર, સં૦ ૧૬૬૫ આગ્રા, સં૦ ૧૬૬૭ મરોટ સં૦ ૧૬૬૮ મુલતાન, સં૦ ૧૬૭૨ અને ૧૬૭૩ મેડતા. સં૦ ૧૬૭૪ માં જિનચંદ્રસૂરિ મેડતામાં સ્વર્ગસ્થ થયા ને જિનરાજસૂરિને[૧૬] તેમની ગાદી ત્યાં મળી. સં૦ ૧૬૭૬ માગશર માસમાં રાણકપુર (સાદડી પાસે) ની જાત્રા કરી. [તે રાણકપુરની જાત્રા વખતે કરેલા સ્તવનમાં તેના મંદિરનું વર્ણન આપ્યું છે કે 'ચારે દિશાના ૨૪ મંડપ, ચાર ચતુર્મુખ (ચોમુખ) પ્રતિમા, તે દેહરાનું નામ ત્રિભુવન દીપક. ૮૪ દેરી, ભોંયરાં. મેવાડ દેશમાં. ૯૯ લાખ ખર્ચી પોરવાડ ધરણાકે બંધાવ્યું. ત્યાં ખરતર વસતિ છે ને તે ઉપરાંત બીજા પ્રાસાદ છે.] અને તે વર્ષમાં લાહોર ગયા, સં૦ ૧૬૮૧ જેસલમેરમાં હતા. આની પછી સં૦ ૧૬૮૨ માં જેસલમેર પાસેના પાંચ ગાઉ પરના-અસલ રાજ્યધાની લોદ્રવપુરમાં રહેતા[૧૭] થેરૂ ભણશાલીએ જેસલમેરથી શત્રુંજયપર જવાનો સંઘ કાઢ્યો.

આમાં શ્રી જિનરાજસૂરિ પ્રમુખ અનેક આચાર્ય સાથે હતા અને સમયસુંદર ઉપાધ્યાય પણ આ સંઘમાં ગયા હતા. આ સંઘ શત્રુંજયની યાત્રા કરી આવ્યો-સં૦ ૧૬૮૨. પછી સમયસુંદર ૧૬૮૨ માં નાગોર આવ્યા, કે જ્યાં શત્રુંજય રાસ રચ્યો. ત્યાંથી સં૦ ૧૬૮૩ મેડતામાં, સં૦ ૧૬૮૫ લૂણકર્ણસર, સં૦ ૧૬૮૭ પાટણ. આ વર્ષમાં ભારે દુકાળ પડયો હતો કે જેનું વર્ણન તેમણે ચંપક ચોપઈમાં કર્યું છે. સં૦ ૧૬૯૧ ખંભાત, સં૦ ૧૬૯૪ અને ૧૬૯૫ જાલોર, સં૦ ૧૬૯૬ અમદાવાદ, સં૦ ૧૬૯૮ અહમદપુર (અમદાવાદ); એ રીતે એ સ્થલોએ આપણા કવિએ અચૂક નિવાસ કર્યો હતો.

આ ઉપરાંત સમેતશિખર (પાર્શ્વનાથહિલ જેને હાલ કેટલાક કહે છે), ચંપા, પાવાપુરી, ફલોધી (મારવાડ), નાદોલ, વીકાનેર, આબુ, શંખેશ્વર, જીરાવલા, ગોડી, વરકાણા, અંતરીક્ષ પાર્શ્વનાથ, તેમજ ગિરનાર વગેરે અનેક જૈન તીર્થોની જાત્રા કરી હતી. ૧૭૬ જેસલમેરમાં પોતે ઘણાં વર્ષો ગાળ્યાં લાગે છે.

'રાયજાદા' નો ખિતાબ બક્ષ્યો. આથી આની ઓલાદ 'રાયભણશાલી' કહેવાય છે. આગ્રામાં મોટું જિનમંદિર થિરૂશાહે કરાવ્યું કે જે હાલ મોજૂદ છે. ભણશાલી એ મૂળનામ એ રીતે પડયું કે લોદ્રપુરના યદુવંશી ધીરાજી ભાટી રાજાના યુવરાજ પુત્ર સગરની માતાને બ્રહ્મરાક્ષસ લાગ્યો હતો તેને સં૦ ૧૧૯૬ માં ખરતર ગચ્છના ચમત્કારી આચાર્ય જિનદત્ત સૂરિએ કાઢ્યો તેથી રાજા કુટુંબ સહિત જૈન થયો અને તેના પર આચાર્યે જૈનત્વની ક્રિયારૂપે ભંડશાલમાં વાસક્ષેપ કર્યો તેથી તેનું ગોત્ર ભંડશાલી (ભણશાલી) સ્થાપિત થયું, અને તેના આ વંશજ થેરૂશાહ થયા. આ રીતે મૂલ ભણશાલી જૈન હતા. જુઓ મહાજન વંશ મુક્તાવલિ પૃ. ૨૯-૩૦.

૧૭૬. જેસલમેર—આનો કિલ્લો રાજસ્થાનમાં પ્રસિદ્ધ છે. યદુવંશી ભટ્ટી મહારાવલોએ લોદ્રપુરથી આવી સં૦ ૧૨૧૨ માં બાંધ્યો. જૈનના ખરતર ગચ્છના શ્વેતામ્બરી સાધુઓનો આ પ્રબલ નિવાસરૂપ હતો. જિનરાજ, જિનવર્ધન, જિનભદ્ર આદિ સૂરિયોએ અનેક જૈન દેવાલયોની પ્રતિષ્ઠા કરી છે. કિલ્લાપર આઠ જૈન મંદિર છે; તે પૈકી મુખ્ય ચિંતામણી પાર્શ્વનાથનું છે—સં૦ ૧૪૫૮ માં જિન રાજસૂરિના આદેશથી તેના ગર્ભગૃહમાં સાગરચંદ્રસૂરિએ પ્રતિમા સ્થાપિત કરી, અને સં૦ ૧૪૭૩ માં મહારાઉલ લક્ષ્મણ સિંહના સમયે સંપૂર્ણ થયું. તે રાજાના નામ પરથી તેનું નામ લક્ષ્મણવિહાર રાખ્યું ને તેમાં જિનવર્ધન સૂરિએ પ્રતિષ્ઠા કરી. તેમાંની ચિંતામણી પાર્શ્વનાથની મૂર્તિ ભટ્ટીઓની પ્રાચીન રાજધાની લોદ્રપુરથી આણેલી વેલુની હોઇ પ્રાચીન છે. બીજું મંદિર સંભવનાથનું સં૦ ૧૪૯૪ માં જિનભદ્ર સૂરિના ઉપદેશથી આરંભાયેલું તે ૧૪૯૭ માં પૂરૂં થયું ને તેમાં તે સૂરિએ પ્રતિષ્ઠા કરી. તે વખતે ૩૦૦ મૂર્તિની પ્રતિષ્ઠા થઇ. આ મંદિરની નીચે જ્ઞાનભંડાર વાસ્તે ભોંયરૂં બંધાવ્યું. તેમાં ભંડાર રાખ્યો, જે હજુ વિદ્યમાન છે. તેમાં ૧૦ મીથી ૧૫ મી વિક્રમ સદીનાં લખાએલાં તાડપત્રના પ્રાચીન દુર્લભ પુસ્તકો મોજુદ છે. બીજા મંદિરો—આદીશ્વર, શાંતિ, શીતલ, ચંદ્રપ્રભ, મહાવીર વગેરેનાં વિક્રમના સોળમા શતકના પૂર્વાર્ધમાં નજીક નજીક ત્યાં બંધાવેલાં છે. આ તથા સર્વ બીજાં મંદિરોમાં કુલ મળી આશરે ૭૦૦૦ જિનબિંબો છે. વળી બધાં મળી ૬ જ્ઞાન ભંડારો છે. ત્યાંના ભંડારોની પુસ્તકસૂચિ સદ્ગત સાક્ષર ચિમનલાલ ડાહ્યાભાઇ દલાલે મહાશ્રમ લઇ કરેલી તે ગાયકવાડ સરકારે હમણાં બહાર પાડી છે. જોધપુર બિકાનેર રેલ્વેમાં

જૈનોનાં ભારતવર્ષમાં તેમના તીર્થંકરોની જન્મભૂમિ, દીક્ષાભૂમિ, કેવલજ્ઞાનભૂમિ, નિર્વાણભૂમિ તરીકેનાં તીર્થો અનેક છે. તેમાં મુખ્ય શત્રુંજય, ગિરનાર, સમ્મેત–શિખરાદિ છે. તે સર્વની યાત્રા દરેક ચુસ્ત જૈનને માટે આવશ્યક ગણાય. આ કવિએ રચેલ 'તીર્થમાલા સ્તવન' પરથી જણાય છે કે તેમાં લખેલ અષ્ટાપદ અને નંદીશ્વર એ શાસ્ત્રોક્ત તીર્થ સિવાય બધાંય તીર્થની યાત્રા તેમણે કરી હતી. તે સ્તવન નીચે પ્રમાણે છેઃ—

૧૮ શત્રુંજે ઋષભ સમોસર્યા ભલા ગુણ ભર્યારે, સિદ્ધા સાધુ અનંત, તીરથ તે નમુંરે,
તીન કલ્યાણક તિહાં થયાં, મુગતેં ગયારે, નેમીશ્વર ગિરનાર, તીરથ તે નમુંરે. ૧

અષ્ટાપદ એક દેહરો, ગિરિસેહરોરે, ભરતેં ભરાવ્યાં બિંબ—તી૦
આબુ ચૌમુખ અતિ ભલો, ત્રિભુવનતિલોરે, વિમલ વસઇ વસ્તુપાલ. ૨

સમેતશિખર સોહામણો, રલિયામણોરે, સિદ્ધા તીર્થંકર વીશ.
નયરી ચંપા નિરખીયે, હૈયે હરખીયેરે, સિદ્ધા શ્રી વાસુપૂજ્ય. ૩

પૂર્વ દિશે પાવાપુરી, ઋદ્ધિ ભરીરે, મુક્તિ ગયા મહાવીર.
જેસલમેર જુહારીયે, દુઃખ વારીયેરે, અરિહંત બિંબ અનેક. ૪

વિકાનેર જ વંદીયે, ચિર નંદીયેરે, અરિહંત દેહરાં આઠ.
સેરિસરો સંખેસરો, પંચાસરોરે, ફલોધી થંભણ પાસ. ૫

અંતરિક અંજાવરો, અમીઝરોરે; જીરાવલો જગનાથ.
'ત્રૈલોક્ય દીપક' દેહરો, જાત્રા કરોરે, રાણપુરે રિસહેશ. ૬

શ્રી નાહુલાઇ જાદવો, ગોડી સ્તવોરે, શ્રી વરકાણો પાસ.
નંદીશ્વરનાં દેહરાં, બાવન ભલાંરે, રૂચકકુંડલે ચાર ચાર. ૭

શાશ્વતી આશાશ્વતી, પ્રતિમા છતીરે, સ્વર્ગ મૃત્યુ પાતાલ.
તીરથ યાત્રા ફલ તિહાં, હોજો મુઝ ઇહાંરે, સમયસુંદર કહે એમ. ૮

બાડમેર સ્ટેશનથી જેસલમેર ૯૨ માઇલ છે. તપાગચ્છે ૧૭ મી સદીમાં પ્રવેશ કર્યો ને મહાકષ્ટે ૧૮૬૯ માં કોટની નીચે તેમના તરફથી શિખરબંધ દહેરૂં બંધાયું. ત્યાંના દહેરાં સંબંધી વિગત જિનસુખ સૂરિએ જેસલમેર ચૈત્ય પરિપાટી બનાવેલ છે તેમા મળે છે. (જુઓ પ્રાચીન તીર્થમાલા સંગ્રહ પૃ૦ ૧૪૬.)

૧૮. શત્રુંજય—પાલીતાણા કાઠીયાવાડમાં–આવેલો પવિત્રગિરિ. ગિરનાર–જુનાગઢમાં. આબુ કે જ્યાં વિમલ મંત્રીએ અને વસ્તુપાલ મંત્રીએ મહાન્ કારીગરીનાં અદ્ભુત જૈન દેવાલયો બંધાવેલાં છે. સમેત-શિખર કે જ્યાં ૨૪ તીર્થંકરો પૈકી ૨૦ મુક્તિ પામ્યા છે–કલકત્તાથી જવાય છે.

ચંપાએ વાસુ પૂજ્યની નિર્વાણ ભૂમિ. પાવાપુરી—મહાવીરની નિર્વાણ ભૂમિ. જેસલમેર—વીકાનેર પ્રસિદ્ધ છે.

સેરીસરો, સેરિસા–કલ્લોલ પાસે. આ તીર્થનો હમણાં જ ઉદ્ધાર કરવામાં આવ્યો છે.

શંખેશ્વર પાર્શ્વનાથ–પાટણથી ૨૦ ગાઉ દૂર. પંચાસરો પાર્શ્વનાથ પાટણમાં વનરાજ ચાવડાએ સ્થાપેલ.

ફલોધી—મેડતારોડ સ્ટેશનથી ૫ા ગાઉ. સં૦ ૧૧૮૧ માં પાર્શ્વનાથની પ્રતિમા સ્થાપાયેલી છે.

શિષ્ય પરંપરા.

હર્ષનંદન નામના એક વિદ્વાન્ શિષ્ય તેમને હતા. તે શિષ્યે સં૦ ૧૬૭૩ માં ' મધ્યાન્હે વ્યાખ્યાન પદ્ધતિ ' તથા બીજો ગ્રંથ નામે ' ઋષિમંડલ સ્તવ '(મહર્ષિ સ્તવ) ગાથા ૨૭૧ નું,- તેના પર ૪૨૦૦ શ્લોકની ટીકા રચેલ હતી. ખરતર ગચ્છમાં લદ્ધ્વાચાર્યીય નામનો આઠમો ગચ્છભેદ ખ૦ જિનસાગરસૂરિએ સં૦ ૧૬૮૬ માં કર્યો હતો તે ગચ્છને હર્ષનંદને ઘણો વધાર્યો. વિશેષમાં હર્ષનંદને, તથા ખ૦ સુમતિકલ્લોલ એ બંને એ મળીને તૃતીય જૈન આગમ નામે સ્થાનાંગ પરની વૃત્તિમાંની ગાથાઓ પર શ્લોક ૧૩૬૦૪ ની વૃત્તિ રચી હતી.

સમયસુંદરના શિષ્યના શિષ્ય નામે હર્ષકુશલ ગણી (ઉપાધ્યાય) હતા કે જેણે સમયસુંદરની ભાષાકૃતિ નામે ધનદત્તની ચોપઇ પોતે સંશોધિત કરી હતી.

સમયસુંદરની શિષ્ય પરંપરા અખંડ પણે સં૦ ૧૮૨૨ સુધી તો ચાલી આવેલી હતી એ વાત સિદ્ધ છે. સં૦ ૧૮૨૨ ના માગશર શુદિ ૪ ના દિવસે તેમની શિષ્ય પરંપરામાંના આલમચંદે ' સમ્યકત્વ કૌમુદી ચતુઃપદી ' એ નામની પદ્યકૃતિ મક્ષુદાબાદમાં બનાવેલ છે તેમાં પોતાની પ્રશસ્તિ આપતાં જણાવે છે કે.

> યુગવર શ્રી જિનચંદ સૂરીંદા, ખરતર ગચ્છ દિણંદાજી
> રીહડ ગોત્ર પ્રસિદ્ધ કહંદા સદ્‌ગુરૂ સુજસ લહંદાજી.
> પ્રથમ શિષ્ય તસુ મહા વૈરાગી જિણુ મમતા સહુ ત્યાગીજી
> સકલચંદજી સકલ સોભાગી સમતા ચિત્તસું જાગીજી.
> તાસુ સીસ પરગટ જગમાંહી સહૂ કોઇ ચિત્ત ચાહેજી
> પાઠક પદવીધર ઉચ્છાહૈ સમય સુંદરજી કહાહેજી.
> તાસુ પરંપરમે સુવિચારી ભયે વાચક પદ ધારીજી
> કુશલચંદજી બહૂ હિતકારી તાસુ શિષ્ય સુખકારી જી.
> સદ્‌ગુરૂ આસકરણજી સુહાયા જગમે સુજસ ઉપાયાજી
> તાસુ શિષ્ય આલમચંદ કહાયા એ અધિકાર બણાયાજી.

આ રીતે સમયસુંદરની શિષ્ય પરંપરામાં કુશલચંદ ઉપાધ્યાય થયા, તેના શિષ્ય આસકરણજી અને તેના શિષ્ય આલમચંદ.

થંભણ—સ્થંભનક પાર્શ્વનાથ. હાલ ખંભાતમાં. તેની પ્રતિમા અભયદેવસૂરિના સમયમાં પ્રકટેલી.

અંતરિક્ષ પાર્શ્વનાથ—આકોલાથી લગભગ ૨૦ ગાઉ દૂર.

અજાવરો (અજાહરો) પાર્શ્વનાથ-કાઠિયાવાડના ઉના ગામ પાસે.

અમીઝરો પાર્શ્વનાથ—દુઆમાં (પાલણપુર તાલુકો.))

જીરાવલા પાર્શ્વનાથ (મારવાડ). નાડુલાઇ—મારવાડમાં. ગોડી પાર્શ્વનાથ—પારકરમાં. વરકાણા પાર્શ્વનાથ-મારવાડમાં.

સંસ્કૃત ભાષામાં કૃતિઓ.

કવિ એક સમર્થ વિદ્વાન્, ટીકાકાર, સંગ્રહકાર, શબ્દશાસ્ત્રી; છંદશાસ્ત્રી અને અનેક ગ્રંથોના અવલોકનકાર અને અવગાહનાર હતા એ તેમનાં નીચેના ગ્રંથો પરથી જણાઈ આવે છે. આ ગ્રંથો ગૂર્જર ભાષા સિવાયના છે:-

ભાવશતક શ્લોક ૧૦૧ સં૦ ૧૬૪૧.

રૂપકમાલા પર વૃત્તિ શ્લો૦ ૪૦૦, સં૦ ૧૬૬૩ આ વૃત્તિ કવિના પ્રગુરૂ ઉક્ત જિનચંદ્ર સૂરિના શિષ્ય રત્નનિધાન ગણીએ શોધી હતી.

કાલિકાચાર્ય કથા (સંસ્કૃત) સં૦ ૧૬૬૬.

સામાચારી શતક સં૦ ૧૬૭૨ મેડતામાં.

વિશેષ શતક (પત્ર ૬૭) સં૦ ૧૬૭૨ મેડતામાં, આનો ઉલ્લેખ કર્ત્તાએ પોતાની ગાથા સહસ્રીમાં કર્યો છે. રચ્યા દિન પાર્શ્વજન્મ દિને.

વિચાર શતક (પત્ર ૪૫) સં૦ ૧૬૭૪.

[૧૯] **અષ્ટલક્ષી** સં૦ ૧૬૭૬ (રસ જલધિરાગ ગોસમેતે) લાહોર. આ राजानो ददते सौख्यम्-એ રીતના વાક્યના આઠ લાખ અર્થોવાળો ગ્રંથ છે. આનું બીજું નામ અર્થરત્નાવલિ છે. તે લાભપુર (લાહોર) માં પૂર્ણ કર્યો. (પી. રી. ૪ થો. પૃ. ૬૮-૭૩)-

આ અષ્ટલક્ષી ગ્રંથ કવિએ સં૦ ૧૬૪૯ પહેલાં શરૂ કરી તે વર્ષમાં એક પુસ્તકના પ્રમાણનો કરી નાંખ્યો હોવો જોઇએ એમ જણાય છે. એટલું જ નહિ પણ તે વર્ષમાં શ્રી અકબર બાદશાહે ખુદ રાજસભામાં વાચી સાંભળી આ પુસ્તક સ્વહસ્તે લઇ કવિના હાથમાં આપી તે રીતે પ્રમાણ-ભૂત કર્યો એવું પોતે આ ગ્રંથમાં જ જણાવે છે:—

---

[૧૯] આમાં પહેલા એક શ્લોકમાં સૂર્યદેવની સ્તુતિ કરી છે તે ખાસ ધ્યાન ખેંચે છે. ત્યારપછી બીજા શ્લોકમાં બ્રાહ્મી-સરસ્વતીની સ્તુતિ કરી જણાવે છે કે 'રાજા નો દદતે સૌખ્યં' એ શ્લોકના એક પાદનાજ્યે નિજબુદ્ધિની વૃદ્ધિ નિમિત્તે અર્થો કર્યા છે તેમાં તે પાદમાંના 'રાજા' નો અર્થ સૂર્ય પણ થાય છે એમ જણાવી સૂર્યદેવના નામો આપે છે:-

सावित्री भविता राजा विसृजो विघृणो विराट् ।
सत्तार्चिः सततुरगः सत्तालोकनमस्कृतः ॥

એમ સ્કંદપુરાણમાં શ્રી સૂર્યસહસ્ર નામમાં જણાવ્યું છે તેથી રાજા એટલે શ્રી સૂર્ય, નઃ એટલે અમને સૌખ્ય આપે છે.

આમ જૂદા જૂદા અર્થો દરેક શબ્દોના મૂકી આખા વાક્યનો અર્થ કરી, સર્વે મળી આઠ લાખ અર્થ કર્યા છે તે જણાવી છેવટે પોતાની પ્રશક્તિ આપે છે.

संवति १६४९ प्रमिते श्रावण शुक्ल १३ दिने सन्ध्यायां कश्मीरदेश विजयमुद्दिश्य श्री राजश्री **रामदास** वाटिकायां कृतप्रथमप्रयाणेन श्री अकब्बर पातशाहिना जलालदीनेन अतिजात साहिजाने श्री सिलेम सुरत्राण सामंतमंडलिकराजराजिविराजितराजसभायां अनेकवैयाकरणतार्किकविद्वत्तमभट्टसमक्षं अस्मद् गुरुवरान् युगप्रधानखरतर–भट्टारकश्री जिनचन्द्र सूरीश्वरान् आचार्य श्रीजिनसिंहसूरिप्रमुखकृतमुखसुमुखशिष्यव्रातपरिकरान् असमानसन्मानबहुदानपूर्वं समाहूयायमष्टलक्षार्थी ग्रन्थो मत्पार्श्वाद् वाचयांचक्रेऽवक्रेण चेतसा । ततस्तदर्थश्रवण समुत्पन्नप्रभूतनूतनप्रमोदातिरेकेण संजातचित्तचमत्कारेण बहुप्रकारेण श्रीसाहिना बहु प्रशंसापूर्वं 'पठ्यतां सर्वत्र विस्तार्यतां सिद्धिरस्तु.' इत्युक्त्वा च स्वहस्तेन गृहीत्वा एतत् पुस्तकं मम हस्ते दत्वा प्रमाणी कृतोऽयं ग्रन्थः । अतः सोपयोगित्वात् श्रीसाहिनापि समुद्दिश्यार्थमाह–राजा श्री अकब्बरः नोऽस्मभ्यं सौख्यं सुखं ददते प्रजानामिति ।

એટલે—સંવત્ ૧૬૪૯ ના શ્રાવણ સુદ ૧૩ દિને સાંજે કાશ્મીર દેશપર વિજય કર્યો તે નિમિત્તે શ્રીરાજ શ્રી રામદાસ (આ રામદાસ તે જણાય છે કે જેણે સં૦ ૧૬૫૨ માં સેતુબંધ (રાવણવહો) ની ટીકા રચી છે અને જેને માટે પ્રાજ્ય ભટ્ટની રાજતરંગિણિમાં વિશેષ ઉલ્લેખ મળી આવે છે) ની વાડીમાં શ્રી અકબર બાદશાહ–જલાલદીને પ્રથમ પ્રયાણ કરી અતિ ખાનદાન શાહજાદા શ્રી સલીમ (પાછળથી જહાંગીર બાદશાહ) સુલતાન સામંત મંડલિક રાજાઓથી વિરાજિત રાજસભામાં અનેક વ્યાકરણીઓ તાર્કિક વિદ્વત્તમ ભટ્ટ–પંડિત સમક્ષ અમારા ગુરૂવર યુગપ્રધાન ખરતર ભટ્ટારક શ્રી જિનચંદ્ર સૂરીશ્વરને આચાર્ય શ્રી જિનસિંહસૂરિ વગેરે આણેલા શિષ્ય સમુદાય સહિતને અતિશય સન્માન આપીને બોલાવી આ અષ્ટલક્ષાર્થી ગ્રંથ મારી પાસે શુદ્ધ ચિત્તથી વંચાવ્યો, ત્યારપછી તેના શ્રવણથી તેને અતિ નવીન પ્રમોદનો અતિરેક થતાં ચિત્તમાં ચમત્કૃતિ થતાં બહુ પ્રકારે શ્રી બાદશાહે બહુ પ્રશંસા કરી અને 'સર્વત્ર વાંચી આનો વિસ્તાર કરો' એમ કહી સ્વહસ્તે તેને લઇને આ પુસ્તક મારા હાથમાં આપી આ ગ્રંથ પ્રમાણ ભૂત કર્યો. પછી પોતે જેના અર્થ કરવા ચાહે છે તે પદ લઈ રાજા એટલે બાદશાહ અકબર તે નઃ એટલે આપણને પ્રજાને સૌખ્ય આપે છે. આ ગ્રંથની અંતે કવિએ 'અકબરગુણ વર્ણન અષ્ટક' મૂકેલ છે તે ખાસ અવગાહવા યોગ્ય છે-

વિસંવાદ શતક સં૦ ૧૬૮૫ આમાં સૂત્રાદિમાં પરસ્પર જે વિરોધ ભાસે છે તે બતાવ્યો છે.

सूत्र प्रकरण टीका प्रबंध संबंध चारु चरितेषु ।
ये केऽपि विसंवादा दृष्टा एकीकृता इह ते ॥ પી. રી. ૩ પૃ. ૨૯૦.

વિશેષ સંગ્રહ સં૦ ૧૬૮૫ લુણકર્ણસરમાં.

આ રચનામાં શ્રી જિનસિંહ સૂરિના શિષ્ય ઉપાધ્યાય સમયરાજ ગણિએ (મદ્‌વિવેક ગુરૂ-કે જે મારા વિદ્યાગુરુનાજ શિષ્ય થાય) મારા પર અનુગ્રહ કરેલો છે એમ પોતે સ્વીકારે છે.

ગાથાસહસ્રી સં૦ ૧૬૮૬ (પી. રી. ૩ પૃ. ૨૮૮).

આમાં જમાલિ આદિ નિન્હવોની આવશ્યક ચૂર્ણિમાંથી ૧૬ ગાથા ટાંકી કહેલ છે કે આની વ્યાખ્યા સંબંધ સહિત મારા રચેલ વિશેષ સંગ્રહમાંથી વિદિત થશે. આમાંની અનેક ગાથાઓ જૈન ઇતિહાસ અને સાહિત્ય માટે ઉપયોગી થાય તેવી છે.

गाथाः कियत्यः प्रकृताः कियत्यः श्लोकाश्च काव्यानि कियंति संति ।
नानाविध ग्रंथ विलोकन श्रमादेकीकृता अत्र मया प्रयत्नात् ॥

જયતિહુયણ નામના સ્તોત્રપર વૃત્તિ સં૦ ૧૬૮૭ પાટણમાં.

૨૦ **દશવૈકાલિક સૂત્રપર** શબ્દાર્થ વૃત્તિ. ટીકા શ્લો. ૩૩૫૦ સં૦ ૧૬૯૧ ખંભાતમાં.

વૃત્તરત્નાકર વૃત્તિ સં૦ ૧૬૯૪ જાલોરમાં.

૨૧ **કલ્પસૂત્રપર** કલ્પકલ્પલતા નામની વૃત્તિ શ્લો૦ ૭૭૦૦.

નવતત્વપર વૃત્તિ.

વીર ચરિત્ર સ્તવ એ નામના જિનવલ્લભસૂરિ કૃત સ્તવન પર ૮૦૦ શ્લોકની ટીકા વીરસ્તવ વૃત્તિ (દુરિયરવ સમીર વૃત્તિ)

સંવાદસુંદર ૩૩૩ શ્લો૦

ચાતુર્માસિક વ્યાખ્યાન.

રઘુવંશ વૃત્તિ (પત્ર ૧૪૫)

કવિ કાલિદાસ કૃત રઘુવંશ નામનો ગ્રંથ જૈનોમાં સાહિત્ય અર્થે પઢાવવામાં આવતો અને તેથી તેના પર વૃત્તિઓ પણ જૈન સાધુઓએ અનેક કરેલી જોવામાં આવે છે.

આ રીતે સંસ્કૃત ભાષામાં કૃતિઓ તેમણે કરી છે. વૃત્તિ-ટીકા ઉપરાંત અનેક ગ્રંથો સૂત્રો વાંચી તે સર્વેનું દિગ્દર્શન કરાવી તેમાં રહેલા વિસંવાદ શોધી પોતાનું બહુશ્રુતપણું દાખવ્યું છે.

---

૨૦. દશવૈકાલિક—સૂત્ર એ પ્રાચીન સય્યંભવ સૂરિકૃત જૈનાગમ છે તે પર પ્રસિદ્ધ હરિભદ્ર સૂરિએ ટીકા કરી છે. કર્ત્તા કહે છે કે તે ટીકા વિષમ છે તેથી શિષ્યોને અર્થે શીઘ્રબોધ થાય તે હેતુથી સુગમ કરી છે. (મુદ્રિત સં૦ ૧૯૭૫)

૨૧. કલ્પસૂત્ર—એ પણ પ્રાચીન, ભદ્રબાહુકૃત જૈનાગમ છે. આ પરની કર્ત્તાની ટીકા ડૉ૦ જેકોબી (કે જેણે અંગ્રેજીમાં આ સૂત્રનો અનુવાદ કરેલ છે. જુઓ સેક્રેડ બુક્સ ઓફ ધ ઇસ્ટ) ના કહેવા પ્રમાણે જિનપ્રભ મુનિએ કલ્પસૂત્ર પર રચેલી સંદેહવિષૌષધિ નામની ટીકાનો માત્ર સંક્ષિપ્ત સાર-abstract-છે. આ જિનરાજસૂરિ (કે જેનું સૂરિપદ સં૦ ૧૬૭૪થી મરણ સં૦ ૧૬૯૯ સુધી રહ્યું) ના રાજ્યમાં ને જિનસાગર સૂરિના યૌવરાજ્યમાં લૂણકર્ણસર ગામમાં આરંભ કરીને તેજ વર્ષે [illegible]રિણી પુરમાં પૂર્ણ કરેલ છે. તેથી આ રચના સં૦ ૧૬૭૪ થી ૧૬૮૬ ની વચમાં કરી છે.

ગૂર્જર ભાષાની પદ્યકૃતિઓ.

૧ ચોવીશી (૨૪ તીર્થંકરનાં સ્તવનો) સં૦ ૧૬૫૮ વિજ્યાદશમી અમદાવાદમાં આને કવિએ 'ચતુર્વિશતિ તીર્થંકરગીતાનિ' એ નામ આપ્યું છે. આની શુદ્ધ પ્રત આણંદજી કલ્યાણજી હસ્તકના પાલીતાણાના ભંડારમાં છે.

૨ શાંબપ્રદ્યુમ્ન પ્રબંધ રચ્યા સં૦ ૧૬૫૯ વિજ્યાદશમી. ખંભાતમાં સ્તંભન પાર્શ્વનાથના પસાયથી.

ભાષામાં મોટો ગ્રંથ રચવાનો આ તેમનો પહેલો પ્રયાસ છે એમ તે જણાવે છે.

> શક્તિ નહી મુઝ તેહવી બુદ્ધિ નહી સુપ્રકાશ ·
> વચનવિલાસ નહી તિસ્યઉ એ પણિ પ્રથમ અભ્યાસ.

કૃષ્ણના કુંવર શાંબ અને પ્રદ્યુમ્ને આખરે નેમીશ્વર પાસે દીક્ષા લીધી અને વિમલગિરિ પર સંલેખના કરી મોક્ષે ગયા. આ બંનેનો અધિકાર આઠમા અંગમાંથી (અંતકૃત્ દશાંગ-અંતકૃત્ એટલે તદ્ભવ મુક્ત થનાર-ચરમભવી મહાત્માઓ સંબંધીનું સૂત્ર) લઇ આ પ્રબંધ બે ખંડમાં રચ્યો છે. ગાથા ૫૩૫, ઢાલ ૨૧, શ્લોક ૮૦૦ છે અને તે જેસલમેરના વતની નાનાવિધશાસ્ત્ર વિચાર રસિક લોઢા સા૦ સિવરાજની અભ્યર્થનાથી રચેલો છે એવું એક જૂની પ્રતમાં લખેલું છે. સં૦ ૧૬૭૦ ની લખેલી સારી અને જૂની પ્રત લીંબડીના ભંડારમાં મોજૂદ છે.

૩ દાન શીલ તપ ભાવના સંવાદ.P (અથવા સંવાદ શતક)[૨૨] સં૦ ૧૬૬૨ સાંગાનેરમાં 'પદ્મપ્રભુ સુપસાઉલે'–

જૈનમાં ધર્મના ચાર પ્રકાર નામે દાન, શીલ, તપ અને ભાવના જણાવ્યા છે–તે દરેક પોતપોતાને વડો માને છે અને એ રીતે ચારે પોતપોતાના ગુણ ગાઈ પોતપોતાથી કેટલા સુખી અને સિદ્ધ થયા તે જણાવી તકરાર કરી આપ વડાઈ, વીરની પરિષદ્‌માં, વીર પ્રભુ પાસે કહે છે ત્યારે છેવટે વીર સમાધાન કરી જણાવે છે કેઃ–

લૂણકર્ણસરમાંજ સં૦ ૧૬૮૫ માં પોતે હતા તે વિશેષસંગ્રહના રચનાકાલ અને સ્થલ પરથી જણાય છે. તેથી આ રચના સં૦ ૧૬૮૫ માં જ પૂર્ણ થયેલી છે.

આ P ચિન્હ મુદ્રિત થયેલ ગ્રંથ સૂચવે છે.

૨૨. કોઈક પ્રતમાં પાઠાંતર બાસઠ ને બદલે 'છાસઠ' છે. પણ ઘણી પ્રતોમાં બાસઠ છે તેથી તે જ પાઠ યોગ્ય લાગે છે. આ સંવાદને 'સંવાદશતક' કર્તાએ પોતે એક ઠેકાણે કહેલ છે. પોતાની સીતારામ ચોપાઇમાં એક ઢાલનો રાગ મૂકતાં જણાવ્યું છે કે "રાગ ધન્યાસિરી–સીલ કહે જંગિ હું વડું, મુઝ વાત સુણો એક મીઠીરે (કે જે આ સંવાદમાં બીજી ઢાલમાં શીલ કહે છે) એ સંવાદ શતકની બીજી ઢાલ." કુલ ૫ ઢાલ છે અને ૫૦ કડી છે. આ સંવાદ સજ્ઝાયમાળા અને રત્નસમુચ્ચયમાં મુદ્રિત થયેલ છે.

કો કેહની મ કરો તુમ્હે નિંદા ને અહંકાર
આપ આપણે ઠામે રહો સહુકો ભલો સંસાર

તોપણ અધકો ભાવ છે, એકાકી સમરત્થ
દાન શીલ તપ ત્રિણે ભલા, પણ ભાવ વિના અકયત્થ.

અંજન આંખે આંજતા, અધિકો આણી રેખ
રજમાંહે તજ કાઢતાં, અધિકો ભાવ વિશેષ.

૪ ચાર પ્રત્યેક બુદ્ધનો રાસ. P મારૂ સં૦ ૧૬૬૫ જેઠ શુ. ૧૫ આગ્રામાં.

પ્રત્યેક બુદ્ધ થઈ સિદ્ધ થયેલા જૈન કહેલા કરકંડુ, દુર્મુખ, નેમિરાજ અને નિર્ગતિ (નિગ્ગઇ) એ ચાર સંબંધી ચાર ખંડમાં આ રાસ વિભક્ત છે. પ્રત્યેક ખંડ સં૦ ૧૬૬૪ માં પૂર્ણ કર્યો છે પણ દરેકની તીથિ જૂદી જૂદી છે. ૧ કરકંડુ પરનો સં૦ ૧૬૬૪ ફાગણ સિદ્ધિયોગ બુધવારે. ઢાલ ૧૦, ગાથા ૧૮૭, શ્લોક ૨૫. ૨ દુમુહપર ચૈત્ર વદ ૧૩ શુક્ર. ઢાલ ૮. ૩ નેમિરાજ પર-તીથિ નથી જણાવી ઢાલ ૧૭. ૪ નિગ્ગઈ પરનો મારૂ સંવત ૧૬૬૫ જેઠ શુદ ૧૫ આગ્રામાં 'વિમલનાથ પસાઉલે' સાન્નિધ્ય 'કુશલસૂરીંદ'; ઢાળ ૯. આચારે ખંડ નાગડ-ગોત્રના સંઘનાયક સૂરશાહના આગ્રહથી રચ્યા છે. આખો રાસ અતિ સુંદર અને રસમય છે. મદનરેખા (મયણરેહા) સંબંધી આખ્યાન ત્રીજા ખંડમાં અંતર્ગત થાય છે. મુંબઇના શ્રાવક ભીમસી માણેકે આ મુદ્રિત કરેલો છે. ચાર પ્રત્યેક બુદ્ધ પર તિલકાચાર્યકૃત ૨૧૫ પત્રમાં, ૧૧૩૮ શ્લોકમાં, ૬૦૦ શ્લો. અને ૩૫૦ શ્લોકમાં રચાયેલી એમ ચાર પુસ્તક રૂપે કથાઓ જૈન ગ્રંથાવલીમાં નોંધાઈ છે.

૫ પોષધવિધિ સ્તવન. (એક નાની કવિતા) સં૦ ૧૬૬૭ માગશર શુદ ૧૦ ગુરૂ. મરોટમાં.

૬ મૃગાવતી ચરિત્ર રાસ–ચોપઇ. સં૦ ૧૬૬૮ મુલતાનમાં.

વત્સદેશની રાજધાની કોશામ્બીના રાજા શતાનીકની રાણી અને ઉદાયનની માતા મૃગાવતી પતિ પોતાના પુત્રને સગીર મૂકી સ્વર્ગસ્થ થતાં પોતે રાજ્ય ચલાવે છે તે વખતે તેના પર આસક્ત બની અવંતીનો રાજા ચંડપ્રદ્યોત આક્રમણ કરે છે, પણ તેને સમજાવી રાજ્યને દુર્ગઆદિથી પ્રબલ કરી આખરે મહાવીર ભગવાન્ પાસે પોતે દીક્ષા લે છે. આ પ્રમાણે શીલ સાચવી પુત્રહિતાર્થે રાજ્યવ્યવહાર કરી ધર્મ વૈરાગ્ય પામી મુક્તિ મેળવે છે; તે જૈન સતી પર આ સુંદર આખ્યાન છે. જુદી જુદી ગુજરાતી, મરૂધરની, સિંધી, પૂર્વની નવી નવી ઢાળોમાં ત્રણ ખંડોમાં આ 'મોહનવેલી' ચોપઈ રચેલી છે. પ્રથમ ખંડમાં ૧૩ ઢાળ, ગાથા ૨૬૬ અને બીજામાં પણ ઢાળ ૧૩, ગાથા ૨૬૬, ત્રીજામાં ઢાલ ૧૨, ગાથા ૨૧૧ છે. મૂળ જેસલમેર નિવાસીને મુલતાનવસતા રીહડ ગોત્રના કરમચંદ શ્રવક વગેરે માટે મુલતાનમાં કે જ્યાં 'સિંધુ શ્રાવક સદા સોભાગી ગુરૂગચ્છ કેરા બહુ રાગી' —સિંધી શ્રાવકો વસતા હતા ત્યાં રચેલ છે.

આ રચનાની પહેલાં પોતે સાંબપ્રદ્યુમ્નની ચોપાઈ રચી હતી એવું આના મંગલાચરણમાં જ જણાવ્યું છે.

૭ **કર્મ છત્રીશી**–P સં૦ ૧૬૬૮ માહ શુદ ૬ મુલતાનમાં ૩૬ કડીનું કર્મવશ સર્વ જીવ છે એમ જણાવી તે માટેનાં દૃષ્ટાંત આપ્યાં છે. (પ્ર૦ ચૈત્યવંદન સ્તુતિ સ્તવનાદિ સંગ્રહ પુના.)

૮–૧૦ **પુણ્ય છત્રીશી** (સં૦ ૧૬૬૮ સિદ્ધપુર) **શીલ છત્રીશી. અને સંતોષ છત્રીશી** } સં૦ ૧૬૬૯ દરેકમાં ૩૬ કડી

૧૧ **ક્ષમા છત્રીશી.** નાગોરમાં.

(આદરજીવ ક્ષમા ગુણ આદર એથી શરૂ થતું ૩૬ કડીનું પ્રસિદ્ધ કાવ્ય.)

૧૨ **સિંહલ સુત પ્રિયમલેક રાસ.** [૨૩]સં૦ ૧૬૭૨ મડેતામાં.

દાન વિષય ઉપર આ આખ્યાન છે. સાધુને દાન દેવાથી સિંહલસુત સિંહલસિંહ કેવાં સુખ પામે છે તે અને તેમાં પ્રિયમેલક નામના તીર્થનું મહાત્મ્ય જણાવી તે ઉતમ શ્રાવક તરીકે ધર્મના રૂડાં કામ કરે છે અને સમાધી મૃત્યુ પામી સુરપદવી લહે છે એ બતાવ્યું છે. ઢાલ ૧૦ છે. આ પોતાની સ્વકલ્પિત કથા લાગે છે.

૧૩ **નલદમયંતી રાસ.** સં૦ ૧૬૭૩ વસંત માસમાં મેડતામાં.

કવિ પ્રેમાનંદે નલાખ્યાન રચ્યું છે, તેની પહેલાના સેકામાં કવિ સમયસુંદરે જૈન કથામાં નિરૂપેલું નલદમયંતી ચરિત્ર પરથી ભાષામાં આ રસમય રાસ રચ્યો છે. [૨૪]તિલકાચાર્ય કૃત દશવૈકાલિક વૃત્તિ અને પાંડવ નેમિ ચરિતમાંથી અધિકાર ઉદ્ધરી 'કવિયણ કેરી કિહાં કણિ ચાતુરી' કેળવી છ ખંડમાં, સર્વ ગાથા ૯૧૩, શ્લોક સંખ્યા ૧૩૫૦, અને

---

૨૩ આમાં પ્રાચીન સુભાષિત મૂકેલ છે કેઃ—

યતઃ–ઘરિ ઘોડો નંઈ પાલો જાય, ઘરિ ઘેણુ ને લૂખઉ પાય,
ઘરિ પલ્યંક નેં ધરતી સૂઈ, તિણરી બદ્દંયરિ જીવતાનેં રૂઈ.

આની પ્રત મારી પાસે છે. પત્ર ૧૧. પંક્તિ ૧૩. બીજી પ્રતો ધોરાજીના સર્વજ્ઞ મહાવીર ભંડાર, તેમજ ગારીયાધરના, પાલણપુરના ભંડારોમાં છે.

૨૪. તિલકાચાર્ય–શ્રી ચંદ્રપ્રભ–ધર્મઘોષ–ચક્રેશ્વરસૂરિ–શિવપ્રભસૂરિ અને તેના શિષ્ય. તેમણે આવશ્યક સૂત્ર લઘુવૃત્તિ ૧૦૬૫૦ શ્લોકમાં સં. ૧૨૯૬ માં. ચૈત્યવંદના વંદનક પ્રત્યાખ્યાનવૃત્તિ શ્લો. ૫૫૦, શ્રાવકપ્રતિક્રમણ સૂત્રવૃત્તિ શ્લો. ૨૦૦, સાધુપ્રતિક્રમણવૃત્તિ શ્લો. ૨૯૬, ઉક્ત દશ વૈકાલિક સૂત્રવૃત્તિ શ્લોક ૭૦૦૦, સં. ૧૩૪૬ માં, જીતકલ્પવૃત્તિ શ્લો. ૧૭૦૦, સં. ૧૨૭૪ માં, શ્રાદ્ધજીતકલ્પ મૂળગાથા ૩૬ અને તેના પર સ્વોપજ્ઞવૃત્તિ શ્લો. ૧૧૫, પૌર્ણમિક સામાચારી શ્લો. ૨૫૦૦, નેમિનાથ ચરિત્ર શ્લો. ૩૫૦૦ અને પ્રત્યેક બુદ્ધ ચતુષ્ટય કથા રચેલ છે. આ પૈકી છેલ્લો ગ્રંથ પણ કવિએ ચાર પ્રત્યેક બુદ્ધનો રાસ રચતાં કદાચ જોયો હોય.

ઢાલ ૩૮ માં રચના કરી છે. આની પ્રત મુંબઇની મોહનલાલજી સેંટ્રલ લાયબ્રેરીમાં; આણંદજી કલ્યાણજીના પાલીતાણાના ભંડારમાં, લીંબડીના ભંડાર વગેરે સ્થળે વિદ્યમાન છે.

૧૪. પુણ્યસાર ચરિત્ર. સં૦ ૧૬૭૩ આની પ્રત મને પ્રાપ્ત થયેલ નથી.

૧૫. રાણકપુર સ્તવન સં૦ ૧૬૭૬ માગશર. રાણકપુરમાં.

મારવાડમાં સાદડી પાસે રાણકપુરમાં સોમસુંદરસૂરિથી પ્રતિષ્ઠિત થયેલું ૯૯ લાખ ખર્ચી ધનાશા પોરવાડે સં૦ ૧૪૯૧ માં બંધાવેલું અતિ ઉત્તમ અને શિલ્પકારીગરીથી ભરપૂર અનેક સ્તંભોવાળું 'ત્રિભુવન દીપક' નામનું મંદિર વિરાજે છે. તેની કવિએ જાત્રા કરી તેના ટુંક વર્ણન રૂપે આ સ્તવન રચ્યું છે. ચારે દિશાના ૨૪ મંડપ, ચાર ચતુર્મુખ (ચોમુખ) પ્રતિમા, ૮૪ દેરી, ભોંયરાં. ત્યાં ખરતર વસતિ-દેહરૂં છે.

૧૬. વલ્કલચીરી રાસ. સં૦ ૧૬૮૧ જેસલમેરમાં.

ઉપરોક્ત જેસલમેરી કર્મચંદ મુલતાનમાં વસતો હતો તેના આગ્રહથી આ પણ રાસ રચ્યો છે. આની પ્રત પ્રવર્તક શ્રી કાન્તિવિજયજીના વડોદરાના ભંડારમાં છે. અને લીંબડીના ભંડારમાં છે.

૧૬અ. એકાદશી (મૌન એકાદશી) નું વૃદ્ધ (મોટું) સ્તવન.P સં૦ ૧૬૮૧ જેસલમેર પ્ર. રત્નસમુચ્ચય પૃ. ૧૭૨-૩.

૧૭. વસ્તુપાલ તેજપાલનો રાસ. સં૦ ૧૬૮૨ (પાઠાં ૧૬૮૬) તિયરી પુરમાં.

આ એક બહુ ટૂંકી કૃતિ છે. આમાં વસ્તુપાલ અને તેજપાલ જે ગૂર્જરરાજ વીરધવલના પ્રખ્યાત શૂરવીર જૈન મંત્રીઓ થયા તેમણે જે દેવલ કર્યાં તેનો તથા બીજાં ધર્મ કાર્યોનો ટુંક અહેવાલ છે. આની પ્રત મેં લખી લીધેલી છે. એક પ્રત ફાર્બસ સભા પાસે છે.

૧૮. શત્રુંજય રાસ. P. સં૦ ૧૬૮૨ (પાઠાં. ૧૬૮૬)[૨૫] નાગોરમાં શ્રાવણ વદમાં. આ રાસ ટૂંકો છે. તેમાં લખ્યું છે કે સં૦ ૪૭૭ માં ધનેશ્વરસૂરિએ શત્રુંજય માહાત્મ્ય નામનો ગ્રંથ શિલાદિત્ય હજૂર કર્યો (આ એક દંત કથા છે) તેનો કંઈક આધાર આમાં લીધો છે. આમાં પહેલી ઢાલમાં શેત્રુંજયનાં ૨૧ નામ, પછી તેનું પ્રમાણ, બીજી ઢાલમાં ત્યાં સિદ્ધ થયેલાનાં નામ, ત્રીજી તથા ચોથી ઢાલમાં તેના સોલ ઉધ્ધાર વર્ણવેલાં છે, પછી માહા-

૨૫. બાસી અને છાસી: એમ તેમ બાસઠ અને છાસઠ એમ પાઠાંતર બા અને છા એકબીજાને બદલે લખાઇ જવાના હસ્તદોષથી સંભવે છે. આ બંને રાસો માટે જુઓ ફાર્બસ ગુજરાતી સભાની હસ્તલિખિત પુસ્તકોની સવિસ્તર નામાવલી પૃ. ૪૭ અને પૃ.૬૭.

તમ્ય બતાવી પાંચમી ઢાલમાં ત્યાં પાપનું આલોયણ (આલોચના) કરતાં છુટકો થાય છે એ બતાવી છઠી ઢાલમાં ત્યાંના દેવળોનું ટુંક વર્ણન કરી-ચૈત્ય પ્રવાડિ વર્ણવી જણાવે છે કે-

'ચૈત્ય પ્રવાડિ ઇણ પર કરીએ, સીધાં વંછિત કામ.
જાત્રા કરી શેત્રુંજ તણીએ, સફલ કિયો અવતાર
કુશલ ક્ષેમશું આવિયોએ, સંઘ સહૃ પરિવાર-

આ રીતે સંઘ સાથે પોતે જાત્રા કરી કુશલક્ષેમ આવ્યા ને ત્યાર પછી સં૦ ૧૬૮૨ માં નાગોરમાં આ રાસની રચના કરી. તો આ સંઘ કયો તે અંદર જણાવેલ સોમજીશાહ

વંશ પોરવાડે પરગડો એ સોમસી સાહ મલાર
રૂપજી સંઘવી કરાવીઓ એ, ચૌમુખ મૂલ ઉધ્ધાર

નો સંઘ કદાચ હોય એવી કલ્પના થવા સંભવ છે. કારણ કે તે અમદાવાદના શેઠ સોમજી સવાઇએ સં૦ ૧૬૭૫ માં આ ચૌમુખની ટોંક બંધાવી. તેમાંના બહારના ભાગને ખરતરવસહિ અને અંદરના ભાગને ચૌમુખ-વસહી કહે છે. મીરાતે-અહમદી કહે છે કે આ મંદિર બંધાવવામાં ૫૮ લાખ રૂપીઆ લાગ્યા હતા.

(રત્નસમુચ્ચયમાં પૃ. ૨૭૦ થી ૨૮૦ ને પાને પ્રસિધ્ધ થયેલ છે. છેલ્લી પ્રશસ્તિ આમાં છે તેથી વધારે ૧૯ મી કડી પછી ત્રણ કડી બીજી પ્રતમાં વિશેષ છે તેમાં જણાવેલ છે કે આ રાસ શત્રુંજય માહાત્મ્ય સાંભળી તે અનુસાર રચ્યો છે અને તે જેસલમેરથી ભણશાલી થિરે શત્રુંજયનો સંઘ કાઢયો હતો, તો આ થિરનો સંઘ જ ઉપર જણાવેલ કુશલક્ષેમથી આવેલ સંઘ હોવાનું સ્પષ્ટ પ્રતીત થાય છે.)

૧૯. સીતારામ પ્રબંધ ચોપઇ. સં૦ ૧૬૮૩ મેડતામાં.

આ રાસ ઘણો મોટો છે અને જૈન રામાયણ આખી તેમાં મૂકી છે. આમાં પ્રથમ જ પોતે આની અગાઉ ચાર રાસ રચ્યા છે તેમાં 'હે સરસ્વતિ તેં મદદ કરી હતી તેમ આમાં પણ મદદ કરજે 'એવું જણાવે છેઃ—

સમરૂં સરસતિ સામિણી, એક કરૂં અરદાસ
માતા દે જે મુજને કરૂં વચન વિલાસ.
સંબ પ્રજૂન કથા સરસ (૧), પ્રત્યેક બુદ્ધ પ્રબંધ (૨)
નલ દવદંતી (૩) મૃગાવતી (૪), ચઉપઇ ચ્યાર સંબંધ.
આઇ તું આવી તિહાં સંભર્યાં દીધો સાદ,
સીતારામ સંબંધ પણિ સરસતિ કરે પ્રસાદ.

આ પદ્મ ચરિત્ર (પઉમ ચરિયમ્)-સીતાચરિતના આધારે રચેલ છે. હિન્દુ રામાયણુંમાંથી અનેક આખ્યાનો જૂદા જૂદા હિન્દુ કવિએ લખેલાં છે. કવિ કહે છે કે-

જિનશાસન શિવશાસને સિતારામ ચરિત્ર સુણીજેરે
ભિન્નભિન્ન શાસન ભણી કે કે વાર્ત્તા ભિન્ન કહિજેરે.

આ નવ ખંડમાં લગભગ ૩૭૦૦ ગાથાનો આ રાસ, ગોલછા ગોત્રીય પ્રસિધ્ધ રાયમલના પુત્રરત્ન અમીપાલ અને નેતસી, તથા ભત્રીજા રાજસીના આગ્રહે રચેલો છે. તેમાં કવિએ ગૂજરાતી, સિંધી, મારવાડી, મેવાડી, ઢુંઢારી, દિલ્હી વગેરે અનેક સ્થાળોનાં ગીતો તથા દેશીઓ લઇ તેની લયમાં પોતાની દેશીઓ બનાવી કાવ્યચાતુરી એવી કુશલતાથી રશને ખીલવી બતાવી છે કે ન પૂછો વાત. આ કૃતિ તો કવિની અદ્ભૂત થઇ છે અને તે ગૂર્જર કવિ શિરોમણી પ્રેમાનંદથી અનેકધા ટક્કર મારી કેટલીક બાબતમાં ચડી જાય છે. કવિ પોતે આ કૃતિને માટે મગરૂર છે એમ તે છેલ્લે જે જણાવે છે તે પરથી સ્પષ્ટ થશેઃ—

સીતારામની ચોપઇ જે ચતુર હુંઇ તે વાંચો રે,
રાગ રતન જવહર તણો, કુણ ભેદ લહે નર કાચો રે—
નવરસ પોષ્યા મેં ઇહાં, તે સુઘડો સમજી લેજ્યો રે,
જે જે રસ પોષ્યા ઇહાં, તે ઠામ દેખાડિ દેજ્યો રે—
કે કે ઢાલ વિષમ કહિ તે, દુષણ મત ઘો કોઇ રે,
સ્વાદ સાબૂણી જે હુવે તે લિંગ હટે કહે ન હોઇ રે—
જે દરબારે ગયો હુસે ઢુંઢાડિ મેવાડિ ને ઢિલ્લી રે,
ગુજરાત મારૂઆડિમેં તે કહિસે ઢાલ એ ભલ્લી રે—
મત કહો મોટિ કાં જોડી, વાંચનાં સ્વાદ લહેસો રે,
નવનવા રસ નવનવી કથા, સાભલતાં શાબાશ દેશો રે—

આ રાસ ખાસ પ્રકટ કરવા યોગ્ય છે. દેવચંદ લાલભાઈ પુસ્તકોદ્ધાર ફંડવાળા પાસેથી આની પ્રત મને જોવા મળી હતી. તેઓ પ્રકટ કરવા ઇચ્છતા હોય એમ જણાતું હતું, પણ આને ત્રણ ચાર વર્ષ થયા છતાં કંઇપણ તે માટે પ્રયાસ થયો નથી જણાતો તે શોચનીય છે. આ રાસની કવિ સ્વહસ્તલિખિત પ્રત આગ્રાભંડારમાં છે.

૨૦ બારવ્રતરાસ સં. ૧૬૮૫
૨૧ ગૌતમપૃચ્છા સં. ૧૬૮૬
૨૨ થાવચ્ચા ચોપાઇ સં. ૧૬૯૧

[થાવચ્ચા પુત્ર કથા શ્લોકબદ્ધ પત્ર ૧૧ ની જૈનગ્રંથાવલિમાં નોંધાયેલી છે.]

૨૩ ચંપક શ્રેષ્ઠીની ચોપાઇ સં. ૧૬૯૫ જાલોરમાં.

આ અનુકંપાદાન ઉપર કથાનક છે. પોતાના અધિક સ્નેહી શિષ્યના આગ્રહથી. બે ખંડ. કુલ ગાથા ૫૦૬. ગ્રંથાગ્રંથ શ્લો. ૭૦૦. પ્રત આણંદજી કલ્યાણજીના તથા પોરાજીના ભંડારમાં છે.

આમાં એ પણ બતાવ્યું છે કે સરજત ઉપર આધાર રાખનાર હોય છે પણ ઉદ્યમ અને ભાવી બંનેને ભાવી કરતાં ઉદ્યમ અધિકું છે.

'સહુ કો લોક કહઇ છઇ સરજ્યું, તે બોલ કેતા વાંચું,
ઉદ્યમ છઇ ઇમ પણિ ભાવી આધિકું, સમયસુંદર કહઇ સાચું.

[ચંપકશ્રેષ્ઠિ કથા એ નામથી (૧) ૩૫૫ શ્લોકમાં, (૨) જયસોમ (કવિ સમયસુંદર સાથે જેણે ઉપાધ્યાય પદ લીધું તે ગુણવિનયના ગુરૂ) કૃત, (૩) વિમલગણિ કૃત, એમ ત્રણ જૈન ગ્રંથાવલિમાં નોંધાએલ છે.]

૨૪ ધનદત્ત ચોપાઇ સં૦ ૧૬૯૬ આસો માસ. અમદાવાદમાં.

આ વ્યવહારશુદ્ધિ પર કથાનક છે. શ્રાવકે વ્યવહારમાં કેવી રીતે વર્તવું એ આનો ઉદ્દેશ છે. શુદ્ધ વ્યવહાર–ચોખવટભર્યો વ્યવહાર કયો તે કવિ બતાવે છે. શ્રાવકના ૨૧ ગુણ ગણાવે છે.

વિણજ કરન્તઉ વાણીયઉ, સાહજી, ઓછું નાપઇ ટાંક,
અધિકું પિણ તોલઇ નહી, સાહજી, મનમાંહિ આણઇ સાંક–
સુણઉ રે ભવિકજન, શ્રાવક ગુણ ઇકવીસ દણિ પરઇ.

સખર વચન ન કહઇ નિખર, સા૦ નિખર સખર ન કહેઇ
જિણ વેલા દેવું કહ્યું. સા૦ તિણિ વેલા તે દેઇ–સુ૦

ઝૂઠું કદિ બોલઇ નહિ, સા૦ સાચું કહઇ નિતમેવ,
પહિલઉ વ્યવહાર શુદ્ધિ ગુણ, સા૦ ઇમ કહ્યુ અરિહંતદેવ. સુ૦

લગભગ દોઢસો ટુંકનો આ રાસ છે. આની પ્રત અમદાવાદમાં, ધોરાજી અને પાટણના ભંડારમાં છે. પાટણના હાલાભાઇના ભંડારના ડાબડા ૮૨ માં પત્ર ૯ ની આ રાસની એક પ્રત છે તેની અંતે લખ્યું છે કે 'સર્વ ગાથા ૧૬૧ શ્રી સમયસુંદર મહોપાધ્યાયાનાં પૌત્રેણ પં. હર્ષકુશલ ગણિના સંશોધિતા. સા. હરજી ધનજી સુશ્રાવિકાગ્રહેણ.' પત્ર ૯. આ પરથી જણાય છે કે કવિની શિષ્ય પરંપરા હતી અને તે પૈકી તેના શિષ્યના શિષ્યનું નામ પંડિત હર્ષકુશલ હતું.

[ધનદત્ત કથા (૧) શ્લોકબદ્ધ પત્ર ૨૪, (૨) ગદ્યમાં પત્ર ૧૦, (૩) પત્ર ૧૭ માણિક્યસુંદર કૃત, (૪) ૩૩૦ શ્લોકની, એમ ચાર અને સૌથી પ્રાચીન તાડ પત્રમાં લખેલી અમરચંદ્ર કૃત એમ પાંચ જૈન ગ્રંથાવલિમાં નોંધાયેલ છે.]

૨૫ સાધુવંદના સં૦ ૧૬૯૭ (લીં૦ ભંડાર)

૨૬ પાપ છત્રીશી સં૦ ૧૬૯૮ અહિમદપુરમાં. (પૂરણચંદજી નહાર પાસે પ્રત છે

૨૭ સુસઢ રાસ આ પ્રાપ્ત થયેલ નથી. [મૂળ આ કથા પ્રાકૃતમાં દેવેંદ્રસૂરિ કૃત ૫૩૭ ગાથામાં અને બીજી પ્રાકૃતમાં ૩૫૦ ગાથા, જૈન ગ્રંથાવલિમાં નોંધાયેલ છે.]

૨૮ **પુણ્યાઢ્ય રાસ** (ડહેલાનો અપાસરો તથા રત્નવિજયજીનો ભંડાર. અમદાવાદ)

૨૯ **પુંજા ઋષિનો રાસ.**

નાગપુરીય તપાગચ્છની પટ્ટાવલિમાં થએલા એક મુનિના તપનું વર્ણન કરવા સમયસુંદર ઉપાધ્યાયે આ રાસ કરેલો જણાવ્યો છે. પાર્શ્વચંદ્રસૂરિ સંતાનીય વિમલચંદ્રસૂરિ થયા તેની પાસે પુંજા મુનિએ રાજનગરમાં વિ. સં૦ ૧૬૯૦ માં અષાઢ શુદિ ૯ ને દિને દીક્ષા લીધી, અને ત્યાર પછી ઉગ્ર તપ ક્રિયા કરી ૧૨૩૨૨ (?) ઉપવાસ કર્યા અને બીજાં અનેક તપ કર્યા. આ સર્વ તપની સંખ્યા વગેરે ઉક્ત રાસમાં આપી છે.

આ સિવાય કવિએ અનેક સ્વાધ્યાયો (સઝાયો), સ્તવનો, પદ વગેરે ટુંકી કવિતાઓ રચેલી છેઃ-

સઝાયો—મહાસતી યા મહાપુરૂષો પર લખેલી, અને બીજી વૈરાગ્યોપદેશક સઝાયો એમ બે પ્રકારે છે.

(૧) રાજુલ પર સઝાય. (પ્રથમ ચરણ-રાજુલ ચાલી રંગ શું રે)
ગજસુકુમાલ સ૦ (નયરી દ્વારામતિ જાણિયેજી)
અનાથી મુનિ સ૦ (શ્રેણિક રયવાડી ચડયો)
બાહુબલિ સ૦ (રાજતણા અતિ લોભિયા...વીરા મ્હારા ગજથકી ઉતરો)
ચેલણા સ૦ (વીર વાંદી વલતાં થકાંજી........વીરે વખાણી રાણી ચેલણાજી)
અરણક મુનિ સ૦-(અરણિક મુનિવર ચાલ્યો ગોચરી)
કરકંડુ સ૦-(ચંપા નગરી અતિ ભલી, હું વારી લાલ)
નમિરાજર્ષિ સ૦. પ્રસન્નચંદ રાજર્ષિ સ૦. સ્થૂલભદ્ર સ૦
મેઘરથ રાય સ૦-દશમે ભવે શ્રી શાંતિજી, મેઘરથ જીવડો રાય-રૂડારાજા....ધન્ય ધન્ય મેઘરથ રાયજી, જીવદયા ગુણખાણ....)
શાલિભદ્ર સ૦ (પ્રથમ ગોવાળિયા તણે ભવેજી, દીધું મુનિવર દાન....)
ભૂદેવ-નાગિલાની સ૦ (અર્ધ મંડિત ગોરી નાગલા રે-આ દેશી વિનય વિજય અને યશોવિજય કૃત શ્રી પાળરાસમાં લેવાઈ છે) અપ્રગટ.
ધનાની સઝાય-(જગિ જીવન વીરજી, કવણ તમારો શીષ)-અપ્રકટ.

(૨) નિંદા પર-(નિંદા મ કરજો કોઇની પારકી રે)
માયા પર-(માયા કારમીરે માયા મ કરો ચતુર સુજાણ.)
દાનશીલ તપ ભાવ પર-(રે જીવ જિન ધર્મ કીજીએ.)

ધોબીડા પર-(ધોબીડા તું ધોજે મનનું ધોતિયું રે.)

પંચમઆરા.

(શ્રાવકના) એકવીસ ગુણ સ૦ (પુરણચંદજી નહાર-કલકત્તા પાસે પ્રત છે)-
આ કદાચ વ્યવહાર સુદ્ધિ રાસનો ભાગ હોય.

સ્તવનો

(૧) મુનિસુવ્રત સ્વામી સ્ત૦ (પખવાસાનું સ્ત૦)-૧૫ દિવસના ઉપવાસ કરવાના તપ ઉપર-(જંબૂદ્વીપ સોહામણો દક્ષિણ ભરત ઉદાર.)

ઋષભદેવ સ્તવન.

તીર્થમાલા સ્તવન (શત્રુંજયે ઋષભ સમોસર્યા)

રાણકપુર સ્ત૦ સં૦ ૧૬૭૬ (રાણકપુર રળિયમણું રે...શ્રી આદીશ્વર દેવ મન મોહ્યું રે)

અષ્ટાપદ ગિરિ સ્ત૦(મનડો અષ્ટાપદ મોહ્યો માહરોજી, નામ જપુ નિશિદીસ જી)

સીમંધર સ્ત૦ (ધન ધન ક્ષેત્ર મહાવિદેહજી.)

શત્રુંજય મંડણ શ્રી આદિનાથ સ્તવન-સં૦ ૧૬૯૯ માં કવિના હાથનું લખાયેલું પંડિત લાલચંદ પાસે છે. 'સંવત સોલ ૯૯ વર્ષે ભાદ્રવા સુદિ ૧૩ દિને લિખિતં ॥ સ્વયમેવ ॥' એમ છેલ્લે ઉલ્લેખ છે. તેમાંની ૨૨ મી કડી

'ચંચલ જીવ રહે નહીંજી રાચઈ રમણી રુપ,
કામ વિટંબણ સી કહુંજી તું જાણઈ તે સરુપ.'

તે જિન હર્ષે પોતાના 'આદિજિન વિનતિ' સવનમાં થોડા ફેરફાર સાથે લીધી જણાય છે.

(૨) પંચમી તપ પર નાનું સ્ત૦-(પંચમી તપ તમે કરો રે પ્રાણી.)

પંચમી તપ પર વૃદ્ધ (મોટું) સ્ત૦-ઢાલ ૩નું (પ્રણમી શ્રી ગુરૂપાય નિર્મલ જ્ઞાન ઉપાય)
જ્ઞાન પંચમી એ જૈનોમાં જ્ઞાન વૃદ્ધિ અર્થે એક ધાર્મિક પર્વ છે. આમાં જણાવ્યું છે કે.

જ્ઞાન વડો સંસાર, જ્ઞાન મુગતિ દાતાર
જ્ઞાન દીવો કહ્યો એ સાચો સદ્દહો એ.
જ્ઞાન લોચન સુવિલાસ, લોકા લોક પ્રકાશ,
જ્ઞાન વિના પશુ એ, નર જાણે કિસ્યું એ.

એકાદશી વૃદ્ધ સ્ત૦ ૧૩ કડીનું. (સમવસરણ બેઠા ભગવંત, ધરમ પ્રકાશે શ્રી અરિહંત). મૌન એકાદશી નામના ધાર્મિક પર્વ પર જેસલમેરમાં સં૦ ૧૬૮૧

ઉપધાન તપ સ્ત૦-(શ્રી મહાવીર ધરમ પરગાસે, બેઠી પરષદ બારજી.)
પોષધવિધિ સ્ત૦-

(૩) વિનતિ એટલે સંબોધન રૂપે આપવીતિ-સ્વદોષ જણાવી પ્રભુની કરૂણા અને દયા માંગવા માટે જેમાં આર્જવ પૂર્વક વિનતિ કરવામાં આવી છે તેવાં વિનતિ સ્તવનો.

મહાવીર વિનતિ સ્ત૦ (વીર સુણો મોરી વિનતિ, કરજોડી હો કહું મનની વાત) આ જેસલમેરમાં વાચનાચાર્ય પોતે હતા ત્યારે બનાવ્યું છે.

અમર સરપુર મંડન શીતલનાથ વિનતિ સ્ત૦ (મોરા સાહેબ હો, શ્રી શીતલનાથ કિ, વીનતી સુણો એક મોરડી)

આલોયણ (આલોચના) રૂપે વિનતિ સ્ત૦

(૪) છંદ—પાર્શ્વનાથ છંદ (આપણ ઘર બેઠાં લીલ કરો.)

(૫) દાદાજી સ્ત૦ (ખરતર ગચ્છમાં પોતાની ગુરૂ પરંપરામાં થએલ જિન કુશલ- સૂરિજી 'દાદાજી' તરીકે ઓળખાય છે. ઘણા ચમત્કારી હોઈ તેમણે સમરતાં ઘણાને પરચા આપ્યા છે એમ મનાય છે. એવો પરચો કવિને મળ્યો હતો તેવું આ સ્તવનમાં જણાવેલ છે, તેમજ પોતાની કૃતિમાં પણ સ્તુતિ રૂપે તેમનું સાંનિધ્ય લઈને આવ્હાહન કરેલું છે. આદિ ચરણ-આયો આયોજી સમરંતા દાદોજી આયો.)

સ્તુતિઓ. પ્રભુ સ્તુતિ.

વિમલાચલ ઋષભ સ્તુતિ.

[26]કેટલાંક પદો. વૈરાગ્ય-ઉપદેશ બોધક ટૂંકાં કાવ્યોને 'પદ' એ નામ અપાય છે. જે મળેલાં તે આ નિબંધમાં ઉધ્ધૃત કર્યાં છે. આ બધાં હિન્દી ભાષામાં છે.

અન્ય કૃતિઓ—ઉપરોક્ત સિવાય અન્ય કૃતિઓ કવિની હોવાનો સંભવ છે. એ પૈકી ષિમંડળ પર પોતાની ટીકા કે સ્તવન-કંઇ પણ હોવી જોઇએ.[27]

૨૬ ઉપરની સઝાયો, સ્તવનો, પદ વગેરે સર્વ મુદ્રિત થયાં છે. જુઓ જૈનપ્રબોધ સઝાયમાળા, રત્નસાગર, રત્નસમુચ્ચય, જૈન કાવ્યસંગ્રહ, ચૈત્યવંદનસ્તુતિ સ્તવનાદિ સંગ્રહ.

૨૭ કારણ કે પં૦ શિવચંદ પાઠકે ૨૪ જિન પૂજા સં. ૧૭૭૯ (નંદ મુનિ નાગધરણી) વર્ષમાં માશી શુદ ૨ ને શનિને દિને જયપુરમાં રચેલ છે તેમાં સમયસુંદરની આ કૃતિનો પોતે આધાર લીધેલો જણાવ્યો છે:—

સમયસુંદર અનુગ્રહી ઋષિમંડલ, જિનકી શોભ સવાયા,
પૂજા રચી પાઠક શિવચંદે આનંદ સંઘ વધાયા- ...
રત્નસાગર ભાગ ૧ લો પૃ. ૨૮૮.

કવિની અન્યે કરેલી પ્રશંસા.

આ સર્વ કૃતિઓ પરથી જણાય છે કે સમયસુન્દર એ એક પ્રતીષ્ઠિત, નામી કવિ, ગ્રંથકાર અને લેખક હતા. તેમના સમકાલીન, શ્રાવક-કવિ પ્રસિધ્ધ ઋષભદાસે પણ માત્ર નામથી ઉલ્લેખેલા પ્રસિદ્ધ કવિઓમાં સમયસુંદરને પણ ગણાવ્યા છેઃ—

સુસાધુ હંસ સમયો સુરચંદ, શીતલ વચન જિમ શારદચંદ
એ કવિ મોટા બુદ્ધિ વિશાલ, તે આગલિં હું મુરખ બાલ.
—કુમારપાલ રાસ, રચ્યા સં૦ ૧૬૭૦.

આ પરથી સં૦ ૧૬૭૦ પહેલાં જ સમયસુંદરે શરચ્ચંદ્ર સમાન શીતલ વચન જેનાં છે એવા મોટા બુધ્ધિ વિશાલ કવિ તરીકેની ખ્યાતિ ઋષભદાસ જેવા ઉત્તમ અને તે યુગના એક આધારભૂત કવિ પાસે મેળવી હતી એ સ્પષ્ટ જણાય છે.

સં૦ ૧૬૭૦ પછી તો તેમણે અનેક સુંદર અને મોટી કૃતિઓ રચી છે અને તેથી તેમની ખ્યાતિ દિન પ્રતિદિન વધતી ગઈ છે. તેમની કવિતાઓના પ્રથમ ચરણો લઇને તેની દેશીઓ મૂકીને તે દેશીઓ પર અનેક જૈનકવિવરો—સારા સારા કવિઓએ (સમકાલીનમાં ઋષભદાસ, અને પછીના આનંદઘન વિગેરે) પોતાનાં કાવ્યો રચ્યાં છે એ વાત વિસ્તારથી હવે પછી સમજાવેલ છે.

વિશેષમાં તે પછીના જ અઢારમ સૈકામાં થયેલા એક કવિ નામે પંડિત જ્ઞાનતિલકના શિષ્ય વિનયચંદ્રે પોતાના સં૦ ૧૭૫૨ ના ફાગણ શુદિ ૫ ના દિને પાટણમાં ૪૨ ઢાલ અને ૮૪૮ ગાથાના ઉત્તમકુમાર ચરિત્ર રાસમાં પોતાની માહીતી આપતી છેવટની પ્રશસ્તિમાં સમયસુંદર માટે યથાર્થ જણાવ્યું છે કેઃ—

જ્ઞાન પયોધિ પ્રબોધિવા રે, અભિનવ શશિહર પ્રાય, સુ.
કુમુદચંદ્ર ઉપમા વહે રે, સમયસુંદર કવિરાય સુ. ૮
તતપર શાસ્ત્ર સમરથિવા રે, સાર અનેક વિચાર સુ.
વલિ કુલિંદિકા કમલિની રે, ઉલ્લાસ દિનકાર. સુ. ૯

આ રીતે કવિરાજ સમયસુંદર જ્ઞાન સમુદ્ર માટે ભરતી આણુનાર અભિનવ ચંદ્રમા સમાન, કુમુદ માટે ચંદ્ર સમ, અને શાસ્ત્ર સમર્થન કરવા તત્પર-શાસ્ત્રના ગર્ભમાંથી અનેક વિચારથી સાર-અર્ક કાઢનાર અને કમલના ઉલ્લાસ માટે જેમ સૂર્ય તેમ શાસ્ત્રનું ઉલ્લાસન કરનાર હતા.

કવિની લઘુતા.

કવિએ પોતાનાં આખ્યાનો ઘણી સુન્દર, મનોરમ અને સાદી ભાષામાં આળેખ્યાં છે,

અને કવિત્વ બતાવ્યું છે; છતાં પોતે પોતાના નામ પાછળ ' કવિ ' એ પદ ક્યાંય ધારણ કરેલું દેખાતું નથી; ઉલટું પોતાની લઘુતા તેમણે બતાવી છે.

૧ પ્રણમીં ગુરૂ માતા પિતા, જ્ઞાનદષ્ટિ દાતાર,
કીડીથી કુંજર કરે, એ મોટા ઉપગાર.
ગારૂડ ફણીની મણિ ગ્રહે, તે જિમ મંત્રપ્રભાવ,
તિમ મહિમા મુઝ ગુરૂ તણો, હૂં મતિ મૂઢ સ્વાભાવ.
—પ્રત્યેકબુદ્ધરાસ.

૨ હું મૂઢ મતિ કિસ્યું જાણું મુઝ વાણિ પણિ ન સવાદો રે,
પણિ જે જોડિ મેં રસ પડયો તે દેવગુરૂનો પરસાદોરે;
હું શીલવંત નહિ તિસો, મુઝ પોતે બહુ સંસારોરે,
પણિ શીલવંતનો જશ કહતાં મુઝ થાશે સહિ નિસ્તારો રે.
—સીતારામ ચોપાઇ.

પણ કવિ પોતે ' કવિ ' નાં લક્ષણ એક સ્થલે જણાવે છે કે;

ચપલ કવીસરનાં કહ્યાં એક મન ને વચન એ બેહરે,
કવિ કલ્લોલ ભણિ કહે, રસના વાલા પણ કેહરે,
—સીતા રામ.

કાવ્યનો હેતુ

સાધુઓનાં ગુણ ગાવાથી અનંત લાભ છે, તેથી ભવનો અંત આવે. પ્રહસમે ઉઠી શીલવંતનાં નામ સહુ જપે છે તેથી હું પણ ભક્તિથી આ મૃગાવતી શીલવતીનું ચરિત્ર ભણું છું. દાન ઉત્તમપાત્રને દેવાથી અઢળક લક્ષ્મી થાય છે તેથી આ સિંહલસુતની દાન કથા કહું છું. જીભ પવિત્ર કરવા આ દમયંતી સતિનું ચરિત્ર કહું છું. કોઇને કલંક ન દેવું—પાપ વચન પરિહરવું એ સીતાનું દુખ જોઇ બોધ લેવાનો છે તેમ જ શીલ પાળી સીતાની પેઠે સુખ અને લીલવિલાસ પામો તે માટે સીતા રામનો સંબંધ કહું છું. અનુકંપાપર ચંપક શ્રેષ્ઠી, અને વ્યવહાર શુદ્ધ શ્રાવક ધર્મપર ધનદત્તની કથા કહું છું—એમ કવિ જણાવે છે.

પોતાની કૃતિમાં મંગલાચરણમાં મહાવીર આદિ તીર્થંકર, ગૌતમસ્વામી, સરસ્વતી, સુમતિ, માતપિતા, ગુરૂ—દીક્ષાગુરૂને વિદ્યાગુરૂની, સ્તુતિ—સ્મરણ કરે છે તે પૈકી સરસ્વતી આદિની સ્તુતિ ખાસ ધ્યાન ખેંચે છે.

સરસ્વતી સ્તુતિ

વીણા પુસ્તક ધારિણી સમરૂં સરસતિ માય,
મૂરખનૈ પંડિત કરૈ કાલિદાસ કહિવાય.
—ચાર પ્રત્યેક બુદ્ધ રાસ.

સમરૂં સરસતિ સામિની, પ્રણમું સદગુરૂ પાય;
બે કરજોડી વીનવું, માગું એક પસાય.
સરસ વચન દીઉ સરસતિ, સુણતાં અમીય સમાણ;
સદગુરૂ પણિ સાનિદ્ધ કરો, નિરમલ દિઉ મુઝ ગ્યાન.

—મૃગાવતી રાસ.

સમરૂં સરસતિ સામિણી, એક કરૂં અરદાસ;
માતા દેજે મુજગ્નને કરૂં વચન વિલાસ.
સંબપ્રજૂન કથા સરસ (૧), પ્રત્યેકબુદ્ધ પ્રબંધ (૨)
નલ દવદંતિ (૩) મૃગાવતી (૪), ચઉપઇ ચ્યાર સંબંધ.
આઇ તું આવી તિહાં, સમર્યાં દીધો સાદ
સીતારામ સંબંધ પણિ, સરસતિ કરે પ્રસાદ

—સીતારામ ચોપાઇ.

સુમતિ

મુજને સુમતિ જગાઇયો, ઉઠ ઉઠ રે ઉઠ,
ગુણ વરણને ગરૂવા તણા, હૂં તુઝ પૂરસો પૂઠ.
તિણ મુઝ ઉદ્યમ ઊપનો, પંખીને જિમ પંખ,
એક લાભ વલિ કહે સુમતિ, દૂધ ભર્યો વલિ શંખ.

—ચારપ્રત્યેક બુદ્ધ રાસ.

માતપિતા-ગુરૂસ્તુતિ

માતપિતા પ્રણમું સદા જનમ દીયો મુઝ જેણ,
વાંદું દીક્ષા ગુરૂ વલી, ધરમ રતન દિયો તેણ.
વિદ્યાગુરૂ વાંદું વલી, ગ્યાન દૃષ્ટિ દાતાર,
જગમાંહિ મોટા જાણિજ્યો, એ ત્રિહુનો ઉપકાર.
એ ત્રિહુને પ્રણમી કરી, છઠો ખંડ કહેસિ,
ષટ રસ મેલી એકલા સગલા સ્વાદ લહેસિ.

—સીતારામ ચોપાઇ.

આ સિવાય ચમત્કારી ગુરૂઓ પોતાના ગચ્છમાં પૂર્વે થયેલા તે જિનદત્તસૂરિ, અને જિનકુશલસૂરિ વગેરેનું આવ્હાહન કરે છે અને સાંનિદ્ધ માગે છે.—

શ્રી જિનદત્ત સુરિ જાગતો, હવઇ પ્રણમું તસ પાય
અખંડ ૧૨ અક્ષર થકી, યુગ પ્રધાન કહિવાય.
જીતી ચોસઠિ જોગિણી, ક્ષેત્રપાલ બાવન;
નામઇ ન પડઇ વીજલી, લોક કહઇ ધનધન.

ખંડ બીજઇ સાનિધિ કરી જિમ શ્રી કુશલ સૂરીંદ,
તિમ ત્રીજઇ કરજ્યો તુમ્હે, હું પણિ છું મતિમંદ,

—મૃગાવતી ત્રીજા ખંડની આદિમાં.

આનાજ બીજા ખંડમાં જિનકુશલ સૂરિની સહાય માગી હતી.

શ્રી જિનકુશલ સૂરીસર, સુણિ મોરી અરદાસ,
મુઝનઇ આળસ ઊપજઇ, મતિ પણિ નહીં પ્રકાસ.
ઉદાસીન મને માહરૂં, કહો કીમ કીજઇ જોડિ,
તું સદ્ગુરૂ જગિ જાગતાં, પૂરઇ વંછિત કોડિ.
પરતો એક મઇ પેખીઉં, નગર મરોટ મઝાર,
મેહ માગ્યો વૂઠો તુરત; ઇમ અનેક પ્રકાર.
તેણઇ તુજનઈ મઇ પ્રારથ્યો, સમરથ સાહિબ જાંણિ,
મઇ બીજો ખંડ માંડીઉં, તું શિઘ્ર ચાડિ પ્રમાણિ,

આ રીતે 'પરતો'—ચમત્કાર—પરિચય પોતાને મરોટનગરમાં જિનકુશલ સૂરિના નામ સ્મરણથી વાંછિત મેઘવૃષ્ટિ થયાનો પોતાને મળેલો કવિ સ્વીકારે છે. એ ઉપરાંત બીજો 'પરતો' પણ દેરાવરમાં પોતાને મળેલ તે હકીકત પણ પોતે તેમના સ્તવનમાં નોંધી છે.

આયો આયો જી સમરંત દાદોજી આયો,
સંકટ દેખ સેવકકું સદ્ગુરૂ, દેરાવર તેં ધ્યાયો જી—સમરંતા૦
દાદા વરસે મેહ ને રાત અંધેરી, વાયપિણ સબલૌ વાયૌ,
પંચ નદી હમ ઊંડે બેડી, દરીયે હો દાદા દરિયે ચિત્ત ડરાયો જી—સમરંતા૦
દાદા ઉચ્ચ ભણી પોહચાવણ આયો, ખરતર સંઘ સવાયો,
સમયસુંદર કહે કુશલ કુશલ ગુરૂ, પરમાનન્દ સુખ પાયો જી—સમરંતા૦

—[પ્ર૦ રત્નસાગર ભા. ૧ પૃ. ૬૪૮]

ચાર પ્રત્યેક બુદ્ધના રાસની અંતે પણ જિનકુશલ સૂરિના સાંનિધ્યથી એ પૂર્ણ થયો એમ જણાવે છે.

વિમલનાથ સુપસાઉલે એ, સાન્નિધ્ય કુશલ સૂરીંદ,
ચારે ખંડ પૂરા થયા. એ, પામ્યો પરમાણંદ—

વાર્ત્તાનો ઉપયોગ.

કવિ પ્રેમાનન્દ, અને શામળના પુરોગામી આ કવિએ પણ વાર્ત્તાઓને કૌતુકવતી બનાવી વિમલવાણીમાં મૂકી. વાર્ત્તાઓનું મૂલ કથામાંનું વસ્તુ લઇ તેને મનમાં ખડી રાખી તેનામાં પોતાનો અનુભવ પૂરતા જઇ લોકોત્તર ગિરામાં મૂકતા જઈ રસની સાથે વાર્ત્તાના પ્રવાહનું અનુસંધાન કવિ રાખતો ગયો છે:

वार्ता च कौतुकवती विमला च वाणी लोकोत्तरः परिमल श्च कुरंगनाभेः
तैलस्य बिन्दुरिव वारीणि दुर्निवारमेतत्त्रयं प्रसरति स्वमेव भूमौ ॥

કૌતુકવતી વાર્ત્તા, વિમલ વાણી અને કસ્તૂરીમૃગની નાભિની લોકોત્તર સુગંધઃ આ ત્રણ પાણીમાં તેલનું ટીપ અનિવાર્યપણે પ્રસરે તેમ પૃથ્વી પર સ્વયમેવ પ્રસરે છે.

આ કવિ જૂની વસ્તુને નવા આકારમાં—નવી ભાષામાં—પોતાની માતૃભાષામાં મૂકતા જઇ તેને ખીલાવ્યે ગયો છે અને તેવી ખીલાવટમાં આવશ્યક એવી પ્રેરણા અને તર્ક શક્તિનો ઉપયોગ કવિ પોતે કવિ અને વાર્તાકાર તરીકે કર્યે ગયો છે. વાર્ત્તાઓમાં લોકોનું અને સંસાર વ્યવહારોનું ચિત્ર-પ્રતિબિંબ કવિએ આળેખ્યું છે. તેનામાં પ્રેરણા છે, અને ક્લિષ્ટતા નથી.

કૃતિઓ ભાષાન્તર નથી.

કવિ પ્રેમાનન્દે પૌરાણિક સાહિત્યનું અનુકરણ અને ભાષાંતર કર્યું તે પહેલાં જૈન સાધુઓએ પોતાની પૌરાણિક કથાઓનું અનુકરણ અને ભાષાંતર કરવાનો માર્ગ ઘણાં વર્ષોથી લઈ લીધો હતો. પ્રેમાનન્દને પુરાણમાંની કથાનું વસ્તુ લઇ તે પર પોતાના કવિત્વનો ઓપ આપ્યો અને તેના સમયને 'કવિત્વ' જો કાળની ઉપમા અપાય તો તેની પહેલાંના જૈન કવિ, નય સુંદર, આ કવિ, ઋષભદાસ વગેરેને 'ભાષાંતર કાળ' માં ઉદ્ભવેલા નહિ કહી શકાશે. કારણકે તેઓએ માત્ર ભાષાંતર નથી કર્યું પણ મૂળ વસ્તુ પર પોતાનાં 'કવિ કેળવણી'થી ચણેલા સુંદર રોગાનો—રંગોવાળાં ચણતર કરી તેમાં 'કવિત્વ' દાખવ્યું છે—એ બધા છુટથી અને છટાથી ભાષાદ્વારા મનોભાવ દાખવવામાં સફલ અને વિજયી થયા છે.

દેશી દેશીઓ

સામાન્ય જન સમૂહમાં વાર્તા સાંભળવાનો અત્યંત રસ હોય છે અને તેવા વાર્તાના રસીયાઓને-ભાવવાહી લોકભોગ્ય ભાષામાં એક ધારે વહેતી જૂદી જૂદી ઢાળો-દેશી રાગણીઓમાં પોતાની સ્વોત્પન્ન શક્તિથી કાવ્યમાં મૂકી આ કવિએ કથાનકો પૂરાં પાડયાં છે.

એવું કહેવામાં આવે છે કે ગૂર્જર સાહિત્યમાં કવિ પ્રેમાનંદે ગૂર્જર ભૂમિનાં જ 'વૃત્તસંતાનો'-ગૂજરાતી રાગો જેવા કે મારૂ, રામેરી, રામગ્રી આદિ દેશી રાગોનો બહુ છુટથી ઉપયોગ કર્યો છે; પરંતુ અત્રે મને કહેવા દો કે તેમના પૂરોગામી આ સમયસુન્દરે તેમની પહેલાં જ દેશી રાગોને અતિ વિસ્તૃત પ્રમાણમાં પોતાની સર્વ કૃતિઓમાં વાપર્યા છે, એટલું જ નહિ, પણ સમયસુંદરના સમકાલીન, અને તેમના સત્તરમા સૈકામાં જ થયેલ સર્વ જૈન કવિઓએ દેશી ઢાળો-રાગોનો જ ઉપયોગ કર્યો છે.

સમયસુન્દર તો દેશી રાગો-ઢાળો-દેશીઓના માર્મિક જાણકાર અને વાપરનાર હતા અને તે વાપરી જે સુન્દર કાવ્યો રચતા તે એટલે દરજ્જે સુધી પ્રસિદ્ધ થઇ ગયા હતાં કે તેમના પછીના જ નહિ, પણ નયસુંદર અને ઋષભદાસ જેવા તેમના સમકાલીન સમર્થ જૈન કવિઓએ પણ સમયસુન્દરનાં કાવ્યોની દેશીઓ ટાંકી તે દેશી ઢાળોમાં પોતાની કવિતાઓ રચી છે.

દેશી રાગો યથાસ્થાને વ્યાપરવામાં સમયસુંદરે વિવેચક બુદ્ધિથી કૌશલ દાખવ્યું છે.

(૧) સિંધુડે રાગે રે, સુણિ શરિમા જાગે રે;
અતિ મીઠી પણ લાગે ઢાલ એ સાતમી રે.

(૨) ગોડી રાગે પહેલી ઢાળ, સમયસુંદર કહે વચન રસાલ.

× × × ×

ગોડી રાગ રસાલ બીજી ઢાલ કહી,
સમયસુંદર કહે એમ સુણતાં સરસ સહી.

(૩) ટોડીને ધન્યાશરીજી, નવમી ઢાલે રાગ,
સમયસુંદર કહે સાંભલોજી, જિમ ઉપજે વૈરાગ.

× × × ×

ઢાલ ભણી એ સાતમી, ધન્યાસિરિ રાગ સોહેરે,
સમયસુંદર કહે ગાવતાં, નરનારી મન મોહેરે.

(૪) ભલો રાગ ખંભાયતીરે, સોહેલાની ઢાલ છઠ્ઠી રે,
સમયસુંદર કહે શ્રાવકો રે, સાંભલતાં અતિ મીઠીરે.

યુદ્ધમાં વીર રસ ઉત્પન્ન કરાવવા યુદ્ધગીત 'કડખા' માં મૂકાય છે. હાલ ઝૂલણા છંદ યા પ્રભાતિયું જે રીતે ગવાય છે તેજ રીતે બારોટ ચારણાદિ ગાઈ તેને 'કડખું' નામ આપે છે. જૈન કવિઓ બનતાં સુધી યુદ્ધ સંગ્રામનાં ગીત આ કડખાની દેશીમાં જ મૂકે છે. સમયસુંદરે યુદ્ધ સંગ્રામનું ગીત-યુદ્ધ વર્ણન આ દેશીમાં મૂકયું છે અને છેવટે કહ્યું છે કે "રામગ્રી રાગની ઢાલ એ પાંચમી, સમયસુંદર કહે જાતિ કડખો.—

ચડયો રણ ઝૂઝવા ચંડપ્રદ્યોત નૃપ, ચડતનાં તુરત વાજાં વજાયાં,
સુભટ ભટ કટક ચટ મટકિ ભેલા થયાં, વડવડા વાગીયા વેગે ધાયા.—૧ ચડયો૦

(ગજવર્ણન) શીશ સિંદૂરીયા પ્રબલ મદ પૂરીયા, ભમર ગુંજાર બીષણ કપોલા,
સુંઢ ઉલાલતા શત્રુદલ ગાલતા, હાથીયા કરત હાલા કલોલા—૨ ચડયો૦

ઘંટ બાજે ગલે રહે એકઠા મલે, મેહ-કાલી ઘટા જાણે દીસે,
ઢલકતી ઢાલ ને શીશ ચામર ઢલે, મત્ત માતંગ રહે ભર્યા રીસે—૩ ચડયો૦

હાલતા ચાલતા જાણે કરી પર્વતા, ગુહર ગુંજાર ગંભીર કરતા,
ચંડપ્રદ્યોત રાજા તણા કટકમેં, હસ્તી લાખ દોય મદવારિ ઝરતા—૪ ચડયો૦

(અશ્વવર્ણન) દેશ કાશ્મીર કંબોજ કાબુલ તણા, ખેત્ર ખુરસાણ સુધા બુખારા,
અવલ ઉત્તર પવન પાણી પંથા વલી, ભલ ભલા કચ્છી તેજી તુખારા—૫ ચડયો૦
નીલડા પીલડા સબલ કંબોજડા, રાતડા રંગ કવિલા કિહાડા,
કિરઠીયા કાલૂઆ ધૂંસરા દૂસરા, હાંસિલા વાંસલા બાગ જાડા—૬ ચડયો૦
પવન વેગ પાખર્યા ફોજ આગલ ધર્યા, ચાલતા જાણે ચિત્રામ લેખ્યા,
એહવા અશ્વ ઉજેણી રાજા તણે, કટકમેં લાખ પંચાસ સંખ્યા—૭ ચડયો૦

(પાયક વર્ણન) શિર ધરે આંકડા બાંહે પેહેરી કડાં, ભાજની પરતના બોલવાલા,
એહથી એકડા કટક આગલ ખડા, શૂર વીર વાંકડા સુભટ પાલા—૮ ચડયો૦
સબલ કાંધાલ મૂછાલ જિન સાજિયા, લોહ મય ટોપ આટોપ ધારા,
પંચ હથિયાર હાથે ને બાથે ભડિ, ભીમ સમ વડ ભલા પાસિ હારા—૯ ચડયો૦
તીર તર કસ ધરા અભંગ ભટ આકરા, સહસ જોધાર સંગ્રામ શૂરા,
ચંડપ્રદ્યોત રાજાતણે એહવા, સાત કોડિ સાથ પાયક પૂરા—૧૦ ચડયો૦

(રથવર્ણન) નિજ નિજ નામ નેજા ધજા ફરહરે ધર હરે ઘોર નીશાણ વાજા,
જરહ જોશાણ કીયા લાખ બે રથ શીયા, સાથમેં ચંડપ્રદ્યોત રાજા—૧૧ ચડયો૦
ચાલીયા કટક જાણે ચક્રવર્તિકા, ધસરી ધૂલ ઉડે ગગન લાગી,
સમુદ્ર જલ ઊછલ્યાં સેષ પણ સલસલ્યા, સુહર ગોપીનાથકી નિંદ ભાગી—૧૨ ચડયો૦
ઇંદ્રને ચંદ્ર નાગેન્દ્ર પણ ખલભલ્યા લંક ગઢ પોલિ તાલાં જડાયાં;
સબલ સીમાલ ભૂપાલ ભાગી ગયા, ચંડપ્રદ્યોત રાજા ન આયા—૧૩ ચડયો૦
આવીયો ચંડપ્રદ્યોત ઉતાવલો, દેશ પંચાલની સીમમાંહિ,
દુમુહ રાજા પણ દેઈદિમામાં ચડયો, આવી સાહમો અડયો મન ઉચ્છાહેં-૧૪ ચડયો૦
ફોજ ફોજેં મલી ભાટ ભટ ઊછલી, સબલ સંગ્રામ ભારથમંડાણો,
ભડે ભડ મલ્યા ભૂપ ભૂપેં ભડયા, સુભટ સુભટેં અડયા દેખી રાણો—૧૫ ચડયો૦
મુકુટ પરભાવે રાજન જીત્યો દુમુહ, કટકમાં પ્રગટ જસ પડહ વાગો,
કાછ લંપટ સદા કૂડ કપટી તદા, ચંડપ્રદ્યોત રાજાન ભાગો—૧૬ ચડયો૦
નાસતો ભાજતો ચંડપ્રદ્યોત નૃપ, જાલિ કરી બેડીયામાંહે દીધો,
કટક ભાજી દશોદિશિ ગયું તેહનું, 'ધર્મ જય પાપ ક્ષય' વચન સીધો—૧૭ ચડયો૦
દુમુહ રાજા ન આયો ઘેર આપણે, કહે ઇહાં રાજ પંચ રાત પડખો,
રામગ્રી રાગની ઢાલ એ પાંચમી, સમયસુંદર કહે જાતિ પડખો—૧૮ ચડયો૦

આમ ઉજ્જયિનીના વિષયલંપટ રાજા ચંડપ્રદ્યોતને અને પંચાલના કંપિલપુરના રાજા દુર્મુખ સામેના યુદ્ધનું વર્ણન કવિએ કડખાની દેશીમાં આપ્યું; તેમ 'સિંધુડો' એ યુદ્ધના રાગમાં કવિએ કંચનપુરનાં કરકંડુ રાજા ચંપાના દધિવાહન રાજા પર ચડે છે તેનું વર્ણન કરે છે.

કરકંડુ રાજા રે, સુણિ દરત દીવાજા રે, તતકાલ વજાયાં, વાજાં ચઢતરાં રે.
કટકી કરી ધાયો રે, ચંપા પુરી આયો રે, તપ તેજ સવાયો રે, પુર વીંટી રહ્યો રે.
ગઢરો હોં મંડયો રે, અભિમાન ન છંડયો રે, નિજ બોલ ન ખંડયો, નૃપ સાહામો અડયો રે.
રણ ભૂમિકા રૂડે રે, નાલગોલા છોડે રે, ગડડંત ગયગુડે, શેષનાગ સલસલે રે,
સરણાઇ વાજે રે, સિંધૂડો સાજે રે શૂરવીર વિરાજે ઉંચા ઉચ્છલે રે.
પહેર્યાં જિણ શાલા રે, ઉમટયા મેહ કાલા રે, શિર ટોપ તેજાલા ઝબઝબ ઝબકતા રે,
ભાલાં અણીયાલાં રે, ઉછાલે પાલા રે એક સુભટ મુછાલા, ચાલે ચમકતા રે.
વાજે રણતૂરાં રે, બેઉ દલ પૂરાં રે, એક એકથી શૂરા સુભટ તે સાથમેં રે.
જમકી ઝુંભ લબકે રે, જાણે વિજલી ચમકે રે, તરવાર ઉઘાડી ઝબકે હાથમેં રે.
વહે તીર વચાલેં રે, આવંતાં ટાલે રે વયર પોતાનું વાલે તે સાસે નહી રે.
નવા નેજા ફરકે રે, વઢવાને થરકે રે પગ એક ન સરકે પાછા તે સહી રે.
મૂછે વલ ઘાલે રે, આગલથી ચાલે રે ફોજ આવંતી પાળે તે વલી વારકી રે.
એક પાગડા છોડે રે, નૃપ હોડાહોડે રે, અણીએં અણી જોડે ફોજાં મારકી રે.
છોઠી આતસ બાજી રે, બેઉ રાજા-રાજી રે ન રહે ગજ વાજી ઝાલ્યા કેમ કિયે રે.
ઠાકુરબ પુકારે રે, બાપ બિરૂદ સંભારે રે આજ જય તે તુમ્હારે ભુજેં પામીયેં રે.
ભાજણરા સુસ લીધા રે, ગંગોદક પીધાં રે, ભલાં ભોજન કીધાં તાજાં ચૂરમાં રે.
રાણીરા જાયા રે, આમ્હા સામ્હા ધાયા રે ઘણા અમલ ખવરાયા ચઢિયા શૂરમાં રે.
એક કાયર કંપેરે, ચિહું દિશિ દલ ચંપે રે, મુખ જંપે હાહા હવે કિણ દિશિ ભાગશું રે.
શૂરવીર ત્રાડુકે રે, હોંશે રણ ઢૂકે રે, મુખ કૂકે આવો આજ લટાપટ લાગશું રે.
સંગ્રામ મંડાણો રે, નહીકો તિસો શાણો રે, રાય રાણો સમજાવે જે બિહું રાયને રે.
હુંતી વાત થોડી રે, થઇ કલેશની કોડી રે, ન શકે કોઇ છોડી સમજાયને રે.
સિંધુડે રાગેં રે, સુણિ શૂરિમા જાગે રે, અતિ મીઠી પણિ લાગે ઢાલ એ સાતમી રે
સમયસુંદર ભાંખેરે, હવે વઢતાં રાખે રે, પદ્માવતી પાખેં એ કુણ મતિ સમીરે.

કવિએ અનેક દેશદેશાંતર ભ્રમણ કરેલ છે અને ત્યાં ત્યાંથી ગવાતાં ગીતોને-દેશીઓને લઇ તેમાં પોતાનાં કાવ્યો ગાયાં છે-સંગીત કાવ્યો રચ્યાં છે. પોતાના 'મૃગાવતી રાસ' માં જણાવે છે કે:-

સંધી પૂરવ મરૂધર ગુજરાતી, ઢાલ નવી નવ ભાતી,
ચતુર વિચક્ષણ તુમ્હે હોઇ, ઢાલ મ ભાંગજ્યો કોઇ.

એટલે સિંધની સિંધી, પૂર્વ હિંદની, મારૂવાડની મરૂધર અને ગુજરાતની ગુજરાતી ઢાળો નવી નવી પોતે કરી છે, તે ઢાળને હે શ્રોતા! તમો ચતુર વિચક્ષણ હોઇને કોઇ ભાંગતા નહિ-અખંડ રાખજો એટલે રાગથી અળગી નહિ કરતા-ગાયે જ જજો, કારણ કે

ભાંગી ચૂડિમેં નહી સકારા, તૂટિ લટિમેં જ્યું હારા,
ભાંગે મને ન સોહે વૈરાગી, તિમ ન સોહે ઢાલ ભાંગી.
કનક મુદ્રડી નંગ વિહુણી, રસવતી જેમ અલૂણી,
કંત વિના જિમ નારિ વિરંગી, રાગ વિણ ઢાલ ન ચંગી.

મીઠી ઢાલ રાગસિઉ મેલી, જિમ મિશ્રી દૂધ ભેલી;
તેહ ભણી ઢાલ રાગસિઉ કહ્યો, ચતુર તુમ્હે જસ લેયો.

આ ઉપરાંત ઢુંઢાડી (મારવાડ પાસેનો પ્રદેશ), મેવાડી, દિલ્હી વગેરેની દેશીઓ લીધી છે. (જુઓ ઉપર સીતારામ ચોપાઈ પર લખતાં જણાવ્યું છે તે)

હવે ઉપરના પ્રાંતની ઢાલો જોઇએ. સિંધી, એટલે સિંધ પ્રદેશની. પોતે મુલતાનમાં વસ્યા હતા અને ત્યાં અનેક સિંધીઓ વસતા હતા એમ તેમણે જણાવ્યું છે. તે લોકોમાંથી—

(૧) સિંધી ઢાળ. ૧. "રાગ-મારુણી-ઝાંખર દીવા ન બલે રે, ઢાલરિ કમલ ન હોઇ,
છોરિ મૂરખ મોરી બાંહરી, મીયા જોરે પ્રીતિ ન જોઈ,
કન્હઇયા બે, ધયારલ બાસિયા, જોવન જાસિયા બે, બહુર ન આસિયા.

એની ઢાલ-એ ગીત "સંધિ માહે પ્રસિદ્ધ છે." આ પ્રમાણે કવિએ સ્વહસ્તલિખિત પોતાની સીતારામ પ્રબંધ ચોપાઈમાં આઠમા ખંડની બીજી ઢાલમાં લખ્યું છે.

૨. સંધિની રાગ આસાઉરી. મન રાજી તો શું કરઇ કાજી; એ ઢાલ.

૩. રાગ આસાઉરી સિંધૂડો. ઢાલ સિંધની.

—આ બંને મૃગાવતી રાસમાં વાપરી છે.

(૨) પૂરવની ઢાળ.-રાગ હુસેની. ધન્યાસિરી મિશ્ર.

દિલ્લી કે દરબારમેં લખ આવે લખ જાઇ, એક ન આવે નવરંગ ખાન જાકિ પધરિ ઢલિર જાઇ.
—નવરંગ વેરાગીલાલ એ દેશી.

(૩) મરૂધર ઢાલ-(ઢુંઢાડી તથા મેવાડી) તો પુષ્કળ લીધી છે કારણ કે ત્યાં પોતે બહુ વાસ કર્યો છે:-કવિએ પોતે જણાવેલ તે પ્રમાણે નીચે મૂકવામાં આવેલ છે.

૧. વરસાંરી હોલી આવઇ, પ્રાહુણા—એ ગીત
૨. જોજરાજરી ગીતરી. હાથીયાં રઇ હલકઇ આવઇ માહરઇ પ્રાહુણીરે-એહની ઢાલ.
૩. ઇડરીયો ઇડરીયો ઓલગાણે આખૂ ઉલગમેં આયુ ઉલગ્યોરે લાલ.
૪. તોરા કીજ્યે મ્હારા લાલ, દારૂ પીજ્યે જી, પડવે પધારો મ્હારા લાલ, લસરક સેજોજી.-
તેરી અજબ સૂરતિ મ્હાંકો મનડો રંજ્યો રે લોભી લંજ્યાજી-એ ગીતની ઢાલ.
૫. રે રંગ રત્તા કરહલા, મો પ્રીઉ રતો આંણ, હુંતો ઉપરીકા દિનેં પ્રાણ કરૂં ખુરબાંણ
સુરંગા કરહલા રે, મો પ્રીઉ પાછો વાલ. મજિઠા કરહલા રે-એ દેશી રાગ મારુણી.
૬. અમ્હાં આંકી ચિત્રાલાં ઠીઈ જોઇ, અમ્હાં મારૂડે મેવાસીકો સાદ સોહામણો રે લો.
૭. રૂઠીરે રૂઠીરે બારણે સમલા પદમિનીરે. એ દેશી રાગ મારુણી. —આ બધાં મૃગાવતીમાં.
૮. રાગ આસાઉરી. સિંધુરો મિશ્ર. ચરણાંલી ચામુંડા રણે ચડે, ચખ કરી રાતા ચોલેરે
વિરતિ દાનવ દલ વિચિ, ધારૂ દીયો ધમરોલો રે—રારણાલી૦

૯. વેસર સોનાકી, ઘરિદે ચતુર સોનાર વે૦, વેસર પહેરી સોનાકી રંગે નંદકુમાર વે૦
—એહ ગીતની. રાગ અસાઉરી.

૧૦. નોખારા ગીતરી-નોખારા ગીત મારવાડિ ઢુંઢાડિ માંહે પ્રસિદ્ધ છે.

૧૧. રાગ ખંભાયતી. સોહલાની જાતિ. અમાં મોરી મોહિ પરણાવિ હે અમાં મોરી.
જેસલમેરા મેરા જાદવાં હે—જાદવ મોટા રાય, જાદવ મોટા રાય હો.
અમાં મોરી કદિ મોડીને ઘોડે ચડેહો—એ ગીતની ઢાલ.

૧૨. રાગ ખંભાયતી-સુંબરા તું સુલતાણ, બીજાહો થારા સુંબરાં ઓલગૂ હો-એ ગીતની ઢાલ.
-એ સુંબરાના ગીતની ઢાલ-જોધપુર મેડતા નાગોર નગરે પ્રસિદ્ધ છે.

૧૩. તિલ્લીરા ગીતરી ઢાલ-મેડતાદિક દેસે પ્રસિદ્ધ છે. (આ સીતારામ પ્રબંધમાંથી છે.)

(૪) ગૂજરાતની

૧. પોપટ ચાલ્યઉ રે પરણવા-એ સંસારી ગીતની ઢાલ ખંભાતમાં પ્રસિદ્ધ છે. (ચંપકશેઠ રાસ)
૨. ઢાલ ગાગી ગૂજરાતી કુલડાંની.
૩. રાગ વયરાડી-જાજારે બાંધવ તું વડો-એ ગૂજરાતી ગીતની ઢાલ.
૪. કપૂર હુયે અતિ ઉજલું રે, વલિ અનોપમ ગંધ—એ ગીતની ઢાલ.

આવી અનેક દેશીઓ ગીતો વગેરેની લીધી છે તે પરથી એમ સમજાય છે કે સ્ત્રી ગીતો-લોકગીતોનું સાહિત્ય તે વખતે-કવિના જમાનામાં ઘણું હતું. એક સ્થળે એક એવી દેશી ઉતારી છે; જેમકે રાગ પરજીયો. ઢાલ:—

સિહરાં સિહર મધુ સુરીરે, ગઢાં વડો ગીરનારી રે
રાંણ્યા સિરહર રૂકમિણીરે, કુંયરાંનંદ કુંમાર રે
કંસાસુર મારણ આવિને રે પલાદ ઉધારણ રાસ રમણ ધરિ આવ્યો
ધરિ આજ્યો ધરિ આજ્યો, હો રાંમ રાંમજી ધરિ આજ્યો.—એ દેશી.

આ પરથી કવિની અગાઉનાં કાવ્યો હતાં તે પૂરવાર થાય છે. 'સોરઠ દેસ સોહામણો સાહેલડી રે દેવાં તણો નિવાસ-એ ગજસુકુમાલની ચોઢાલીયાની' દેશી એક સ્થળે કહી છે અને બીજે સ્થળે સુબાહુ સંધીની ઢાલ કહી છે તે પરથી ગજસુકુમાલ [..]સં તથા સુબાહુ સંધિ એ કવિના અગાઉનાં અન્ય કવિએ રચેલાં પરથી ચાર ઢાલવાળું [..]ચતુર વિચક્ષણ છે. સુપ્રસિદ્ધ કાવ્યો હતાં તે [..] પૂર્વે [..]

કવિ પોતે જોડેલાં [..] દેશી તરીકે પણ બીજાં પોતાનાં કાવ્યમાં મૂકી છે તે પરથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે પોતાની દેશીઓ પર પણ પોતાને મોહ હતો. દાખલા તરીકે સીતારામ પ્રબંધમાં—

(૧) પ્રત્યેક બુદ્ધની બીજા ખંડની આઠમી ઢાલ.
(૨) સુણોરે ભવિક ઉપધાન વહ્યાં વિણ કિમ સૂઝે નવકાર. એ સ્તવનની ઢાલ.
(આ ઉપધાન સ્ત૦ પોતાનું છે)

(૩) રાગ બંગાલો-ઇમ સુણી દૂત વચન્ન, કોપીઓ રાજા મન્ન-એ મૃગાવતીની ચોપઇની બીજા ખંડની દશમી ઢાલ.

(૪) રાગ ધન્યાસિરી-સીલ કહે જગિ હું વડું, મુઝ વાત સુણો એક મીઠીરે-એ સંવાદ શતકની બીજી ઢાલ (આ સંવાદ શતક તે દાનશીલ તપભાવના સંવાદ પર ચોઢાળીયું સ્વરચિત છે તે).

(૫) શ્રેણિકરાય હુંરે અનાથી નિર્ગ્રંથ (અનાથી પર સઝાય)

(૬) આદરજીવ ક્ષમા ગુણ આદર (ક્ષમાબત્રીશી)

(૭) હવે રાણી પદમાવતી જીવરાશિ ખમાવે. (પ્રત્યેક બુદ્ધ રાસ) વગેરે વગેરે અનેક ઉદાહરણ છે.

રસાલંકાર જ કાવ્યનું લક્ષણ છે?

રસાલંકારવાળું કાવ્ય લખનારને જ કવિ કહેવાય એવો નિયમ સર્વાંશે ગ્રહણ કરી ન શકાય. રસાલંકારવાળું કાવ્ય કરવું શ્રમસાધ્ય છે અને તે પંડિતોને માટે-વિદ્વદ્‌ભોગ્ય થાય છે. જે સહજ સરલતાથી અખંડપણે વ્હેતા ઝરાની માફક સ્વાભાવિક, સરલતાથી રસિકભાવ અર્પતી કવિતા છે તે કાવ્ય નથી એમ કેમ કહી શકાય ? આવી કવિતામાં ચરિત્ર વિષયક ગ્રંથમાં ચરિત્રનાયકનું રસાળ અને ચિત્તવેધક કથાનક સુરસરીતિથી કવિએ વર્ણવેલું હોય છે ત્યારે માનવી વૃત્તિના ભિન્નભિન્ન દશ્યો વાચકની હૃત્પટ્ટિકા પર આબેહૂબ આલેખવાનું અમોઘ સામર્થ્ય કવિનું સ્થળે સ્થળે જણાઈ આવે છે. ભયપ્રદ યુદ્ધસંગ્રામ, રમ્ય સુરમ્ય સ્થાનો, રાજ્યાભિષેકના પ્રસંગો, અને નગરશોભાના અપ્રતિમ દેખાવો-એ સર્વનાં મનોહર રીતિથી વર્ણન કરેલાં હોય છે. આમાંના કેટલાંક વર્ણનો આ કવિનાં આપણે અગાઉ જોઇ ગયા. વિશેષ હવે પછી જોઈશું.

પ્રકૃતિ પર કાવ્યો.

પ્રકૃતિનું સૌંદર્ય કવિ જે આંખથી જોઈ શકે છે તે પ્રકૃત--સામાન્ય જનો જોઈ શકતા નથી. પ્રકૃતિના વિવિધ દેખાવ જોઈને સુંદર શબ્દ રચનાથી તેનું વર્ણન કરવામાં કવિનો ભાવ વહે છે અને તે ભાવથી સૌન્દર્યબોધ કરતો કવિ વિશેષ આકર્ષક બને છે. આપણા જૂના સાહિત્યમાં બહુ સુન્દર કાવ્યો આ સંબંધી મળતાં નથી, છતાં સામાન્ય એવા કંઈ નમુનાઓ મળી આવે છે:---

વસંતવિહાર

તેણે અવસરે સોહામણો, આયો માસ વસંત, સુરંગાં ખેલણાં.
રસિયા ખેલે બાગમેં, ગાયે રાગ વસંત, સુરંગા ખેલણાં.
બોલસિરી જાઇ જાૂઇ, કુંદ અને મુચ કુંદ,-
ચંપક પાડલ માલતી, ફૂલી રહ્યાં અરવિંદ-
દમણો મરૂઓ મોગરો, સબ ફૂલી વનરાય,-
એક ન ફૂલી કેતકી, પીઉ વિણ હર્ષ ન થાય-

આંબા મોર્યા અતિ ઘણા, માંજર (મંજરી) લાગી સાર,–
કોયલ કરે ટહુકડા, ચિહું દિશિ ભમર ગુંજાર–
જુગબાહુ રમવા ચલ્યો, મયણરેહા લે સાથ,–
બાગમાંહિ રમે રંગશું, ડફ્ ધર્યું નિજ હાથ–
નિર્મલ નીર ખડો ખલી, ક્રીડે રાજ મરાલ,–
પ્રેમદા શું પ્રેમે રમે, નાખે લાલ ગુલાલ–
ભોજન ભક્તિ યુક્તિ ભલી, કરતાં થઇ અવેર,–
રાત પડી રવિ આથમ્યો, પ્રસર્યો પ્રબલ અંધેર–
નિર્ભય ઠામ જાણી રહ્યો, રાતે બાગ મઝાર,–
કેલીઘર સૂતો નૃપ, થોડો શો પરિવાર–
ચોથી ઢાલ પૂરી થઇ, ઝુંબખડાની જાતિ,–
સમયસુંદર કહે હવે સુણો, રાતે હોશે જે વાત–
—નમિરાજા પ્રત્યેક બુદ્ધ રાસ રચ્યા સં० ૧૬૬૨

વસંતવર્ણન

એહવે માસ વસંત આવીઉ, ભોગી પુરૂષાં મન ભાવીઉ,
રૂડી પરઈ ફૂલી વનરાઇ, મહકે પરિમલ પુહવી ન માઈ.
સખર ઘણું મહોર્યા સહકાર, માંજરી લાગી મહિકે સાર,
કોઇલ બઇઠી ટીહૂકા કરે, શાખા ઉપરિ મધુરે સ્વરે.
છયલ છબીલા નર છોગાલ, ગાઈ વાઈ બાલ ગોપાલ,
ચતુર માણસને હાથે ચંગ, મેઘનાદ વાજઈ મિરદંગ.
ફૂટરાં ગીત ગાઈ ફાગનાં, રસિક ભેદ કહઈ રાગનાં,
ઊડે લાલ ગુલાલ અબીર, ચિહું દિસિ ભીંજાઇ ચરણા ચીર.
નગરમાંહિ સહુકો નરનારિ, આણંદ ક્રીડા કરઇ અપાર,
ઢલતી રામગિરિ એ ઢાલ, સમયસુંદર કહે વચન રસાલ.
—પ્રિયમેલક રાસ, સં० ૧૬૭૨.

કવિ પોતાના સમયનું પ્રતિબિંબ છે.

કવિ એ પોતાના સમયનું ચિત્ર નજર આગળથી દૂર કરી શકતો નથી. કલ્પનાના અંતર્પટ પર ખેંચેલાં ચિત્રો કે આદર્શભાવનામાંથી ઉતારેલાં પાત્રોનાં આલેખનો વાણીમાં ચિતરતી વખતે કવિ આસપાસની પરિસ્થિતિ થોડો વખત ભૂલી જાય, છતાં યે સંપૂર્ણ રીતે પોતાના સમયની સ્થિતિમાંથી સંપૂર્ણ રીતે કવિ મુકત થઇ શકતો નથી. પ્રચલિત કથાઓ કે શાસ્ત્ર—પુરાણની દંતકથાઓને સ્વભાષામાં, કવિતામાં, અવતારતીવેળા આખ્યાનક કવિઓથી સ્વસમયની સ્થિતિ કદિ વીસરાતી નથી. આખ્યાનોનો હેતુ રસ અને બોધ આપવાનો છે અને તેથી મનુષ્યઆત્માની સ્વભાવિક પ્રેરણા–(ideal) ને વ્યાપકરીતે અંત સુધી અખંડપણે આપવામાં ભાવનામય-આદર્શમય કવિઓ ચીવટથી વળગી રહે તેવું

આખ્યાનોમાં સ્વાભાવિક રીતે હોતું નથી. આટલું છતાં આખ્યાનમાં માત્ર હકીકતો કહી જવી એટલું જ કાર્ય કવિનું નથી, તેમાં તેને પ્રેરણામય ભાવના સાથે વસ્તુ-સ્થિતિના ચિત્રકાર (realist) થવું પડે છે. રાસાઓ એ મુખ્યપણે આખ્યાનો છે-કથા વર્ણનો છે. તેના રચનાસમયનાં આચાર, વ્યવહાર અને રહેણી-કહેણીની વાતો તેમાં પ્રવેશ પામે છે તેથી તે સમયનું થોડું ઘણું સામાજિક જ્ઞાન પણ થાય છે.

આ કવિએ દુમુખરાજા (પછીથી પ્રત્યેક બુદ્ધ) ની પટરાણી ગુણમાલાને સાત પુત્ર થયા છતાં પુત્રીની ઈચ્છા થઇ તે હકીકત પર કેટલીક સ્ત્રીઓ સામાન્ય રીતે અતૃપ્ત હોય છે તેના પર એક ઢાળ તેના પ્રબંધમાં રચી અને ખાસ કરી છેવટે ગૂજરાતી સ્ત્રીઓને માટે તે હકીકત લાગુ પડે છે એવું જણાવી કવિ ટોણો મારે છે કે પોતાનું કહેવું સાચું છે કે નહિ તે જાણવું હોય તો 'ગૂજરાતી લોક પૂછજ્યોરે, તે કહેશે તતકાલ!' તે ઢાલ નીચે પ્રમાણે છેઃ—

અતૃપ્ત સ્ત્રી

આ કામિની તૃપ્તિ ન પામે કેમ,
રઢ લીધી મૂકે નહી રે, પગ પગે નવનવા પ્રેમ રે—આ કામિની.
જનમથી માયા કેલવી રે. શીખે ઘરનું સૂત્ર,
ધૂલડી યેં રમતી કહે રે, એ મુજ પતિ એ પુત્ર રે—
દેહ સમારે દિન પ્રત્યેં રે, શીખી નાણ વિન્નાણ,
અણખ અદેખાઇ કરે રે, ગાયે ગીત નેં (ત્રિયનાં) ગાન રે—
આરાધે કુલ દેવતા રે, વિનતિ કરે વારંવાર,
ગૌરી ગણ ગોરી રમે રે, ભલો હોજ્યે ભરતાર રે—
પરણી પણ રહે પૂછતી રે, વશીકરણ એકાંત,
કિમહિ પિયુડો વશ કરૂં રે, પૂરૂં મનની ખાંત રે—
સુખ પામે ભરતારનું રે, તો પુત્ર વાંછે નાર,
પુત્ર પાંખે કહે કામિની રે, કાંઇ સરજી કિરતાર રે—
પુત્ર પરણાવું પ્રેમશું રે, વહૂ દેખું એક વાર,
ગોદ ખેલાઉં પોતરા રે, સફળ કરૂં અવતાર રે—
બાલક પીડા ઉપજે રે, પ્રાયેં ઉગમતે સૂર,
ખેત્રપાલેં ભમતી રહે રે, ઢોલે તેલ સિંદૂર રે—
પુત્ર પ્રમુખ સુખ ઉપનાં રે, તો પણ જીવ ઉદ્વેગ,
ગુણમાલા રહે ઝૂરતી રે, પુત્રી ન પામી એક રે—
ચોરી ન બાંધી આંગણે રે, તોરણેં નાવી જાન,
પેસતો જમાઇ ન પોંખીયેં રે, તે જીવ્યું અપ્રમાણ(કુલ જ્ઞાન) રે—
હાથ મુકાવણ હાથીયો રે, કે ઘોડા કે ગામ,
જમાઇ ન દીધો દાયજો રે, તો ધન કેહું (કેહે) કામ રે—
ધનતન (ધણતણ) સદાલી નારીનો રે, સરજ સદારો એહ,

પુત્ર થકી પણ વાલહો રે, નવલ જમાઇ નેહરે —
માંન્યા ઇચ્છણાં માનણાં રે, દોડિ દેવાલે જાય,
દોડધાવ કરતા થકાં રે, કિણુ મેલે પુત્રી થાય રે—
સમયસુંદર કહે મેં ભણી રે, એણીપરેં ત્રીજી ઢાલ,
ગુજરાતી લોક પૂછજ્યો રે, તે કહેશે તતકાલ.
—(દુમહ નામના બીજા પ્રત્યેક બુદ્ધના રાસ.)

નમિરાજ ઋષિ નામના ત્રીજા પ્રત્યેક બુદ્ધના ચરિત્ર પરના રાસમાં કવિ પહેલાં સુદર્શન નામના નગરનું વર્ણન કરે છે તેનો મુખ્ય ભાગ જે આગ્રા નગરમાં કવિ તે રાસ રચી રહ્યા છે તેનું જ વર્ણન કરતા હોય તેમ જણાય છે. આગ્રામાં રચના સમયે (સં૦ ૧૬૬૨) મહાન્ અકબ્બર સ્વર્ગસ્થ થયા પછી જહાંગીર બાદશાહ થયો હતો. મોગલ સલ્તનતના દરબારો અને તેની રાજધાની કેવી હોઈ શકે તેનું કંઈક વર્ણન સુદર્શન નગરના વર્ણનમાં કવિએ મૂકેલું છે:—

નગર વર્ણન

જંબૂદ્વીપ સોહામણો, ક્ષેત્ર ભરત રસાલ, દેશ અવંતી દીપતો, કદી ન પડે દુષ્કાલ.
નગર સુદર્શન અતિ ભલું, બહુ ઋદ્ધિ સમૃદ્ધિ, વારૂ વસે વ્યવહારીયા, દેશ દેશ પરસિદ્ધ.—નગર૦
ઉંચા મંદિર માલીયાં, ઉંચા રાજ પ્રાસાદ, દંડ ઉપર ધ્વજ લહલહે, કરે સ્વર્ગશું વાદ.
અંતેઉર જાણે અપછરા, ઇંદ્રે મૂકી આણી, દૈત્ય થકી ડરતે થકે, નિર્ભય ઠામ જાણી.
કિહાં કિણે રાજસભા જડી, મહેતા પરધાન, શેઠ સેનાપતિ સૂત્રવી, ખોજા ને ખાન.
કિહાં કણે છત્ર ધરાવતો, બેઠા ભૂપાલ, હુકમ ચલાવે આપણો, માને બાલ ગોપાલ.
કિહાં કણે ભૂપ આગળ ભલા, વઢે જેઠીમલ્લ, હુશીયાર રહે રવે રામલા, વાહે વલી ગાલ.
કિહા કણે શુંઢ ઉલાલતા, ઝરતાં મદવારિ, સુંદર શશિ સિંદૂરીયા, ઘૂમે દરબારિ.
કિહાં કણે ઘોડા જુલમતી, સોવન જડિત પલાણ, તાજા તેજી હીંસતા, દીસે દીવાણ.
કિહાં કણે વલી પાયક લડે, સામે હથિયાર, એક વાહે ઘા એકને, એક ટાલણહાર.
કિહાં કણે ઘડીયાલાં ઘડી, વાજે વારંવાર, કાલ જણાવે લોકને, રેહેજ્યે હુશિયાર.
કિહાં કણે વલી નોબત તણા, વાજે નીશાણ, જાગોરે જાગો ધર્મ કરો, લોકને કરે જાણ.
કિહાં કણે કનક રૂપા તણી, પડે તિહાં ટંકશાલ, ગંજ ખજાના ઉપર રહે, બહુત રૂખવાલ.
કિહાં કણે બેઠા ચઉતરે, કાજી કોટવાલ, ઝગડો ભાજે લોકનો, ન લીયે લાંચ વિચાલ.
કિહાં કણે દોશી કાપડા, વેચે પટકૂલ, જેમ તેમ સાટું મેલવે, દલાલ વાતુલ.
કિહાં કણે બેઠા જવહરી, જવાહીર લેઇ જોય, મોતી માણક લાલડે, લાભ પામે સોય.
કિહાં કણે માંડયાં કંદોઇએં, સુખડી બહુ હાટ, ગુંદવડાં પેડા ભલા, દીઠે ગલે દાઢ.
કિહાં કણે સખરા સુરહીએ, ચૂઆ ચંપેલ, મહમહતા માંડયાં ઘણાં, મોઘરેલ ફૂલેલ.
કિહાં ઘંટા રણકે દેહરે, જિનબિંબ વિચિત્ર, શ્રાવક સ્નાત્ર પૂજા કરે, કરે જન્મ પવિત્ર.
કિહાં વલી સાધુને સાધવી, બેઠાં પોશાલ, દ્યે ભવિયણને દેશના, વાંચે સૂત્ર રસાલ.
કિહાં ભલે આંક ભણે ઘણા, નીશાલે બાલ, છઠ્ઠ બાર મુખે કહી, ઘડો દે તતકાલ.

કિહાં કાજી મુલ્લાં પડે, કિતાબ કુરાણ, કિહાં વલી બ્રાહ્મણ વેદીયા, ભણે વેદ પુરાણ.
કિહાં બજાર બાજી પડે, કિહાં ગીતને ગાન, કિહાં પવાડા ગાઇયેં, કિહાં દીજે દાન
કિહાં વલી નગરની નાયકા, બૈઠી આવાસ, હાવ ભાવ વિભ્રમ કરી, પાડે નર પાસ.
કિહાં વલી મોતી પ્રોઇયેં, કિહાં ફટિકની માલ, કિહાં પરવાલાં કાઢીયેં, હીંગલો હરિયાલ.
કિહાં ધાનના ઢગ માંડીયા, કિહાં ખડના ગંજ, કિહાં ઘી તેલ કૂડાં ભર્યા, કિહાં કાઇના પુંજ.
ચઉરાશી ચઉટા ભલા, ભલી પોલ પ્રાકાર, ભલી બાજાર ત્રિપોલિયા, ભલા સકલ પ્રકાર.
નગર સુદર્શન વર્ણના, એ પહેલી ઢાલ, સમયસુંદર કહે હવે કહું, તિહાં કોણ ભૂપાલ.

આમાં ખોજા, ખાન, કાજી, કોટવાલ, જવેરી, ટંકશાલ, ઘડિયાલ, સરેયા (અત્તર-વાળા), મુલ્લા-કુરાન, નાયિકા વગેરેને સ્થાન આપ્યું છે. તેમ જ ભૂપાલ પણ જહાંગીરી હુકમ વાળો (હુકમ ચલાવે આપણો, માને બાલ ગોપાલ) વર્ણવ્યો છે એટલું જ નહિ પણ જેને મલ્લબાજી, પટ્ટાબાજી, હાથીને ઘોડાના ખેલો પસંદ છે એવું જણાવ્યું છે તે જહાંગીર બાદશાહને લાગુ પડે છે. મોટી ઘડિયાલ અકબર બાદશાહના વખતમાં દાખલ થઇ હતી તેનો પણ ઉલ્લેખ કર્યો છે.

ચંપક શ્રેષ્ઠીની ચોપાઇ સં૦ ૧૬૯૫ માં કવિએ રચી તેમાં કથા પ્રસંગમાં દુકાલનું વર્ણન કરતાં કવિ પોતાના સમયમાં સં૦ ૧૬૮૭ માં પડેલા દુકાળનું વર્ણન ટાંકે છે:—

૩ દુકાળનું વર્ણન

તિણિ દેસઇ હિવ એકદા, પાપી પડયઉ દુકાલ, બાલ વરસ સીમ બાપડા, કીધા લોક કરાલ.
વલિ મત પડજ્યો એહવઉ, કાલ મહા વિકરાલ, જિણિ વિછોડયા માબાપ સુત, ભાગા સબલ ભૂપાલ.
ખાતાં અન્ન ખૂટી ગયા, કીજઇ કુંણ પ્રકાર, ભુખ સગી નહી કેહની, પેટ કરઇ પોકાર.
સગપણ કોઈ ગિણઇ નહી, મિત્રાઇ ગઇ ભૂલ, કો કદાચિ માંગઇ કદે, તઉ માથઇ ચઢઇ સૂલ.
ત્રાણ મૂંકિ વડ માણસે, માંગવા માંડી ભીખ, તે પણિ કો આપઇ નહી, દુખીએ લીધી દીખ.
કે બઇયર મૂંકી ગયા, કે મૂંકી ગયા બાલ, કે માબાપ મૂંકી ગયા, કુંણ પડઇ જંજાલ.
બાપે બેટા વેચીયા, માંડી વેચી બયર, બયરે માંડી મૂકીયા, અન્ન ન ઘાઇ એ બયર.
પરદેશી ગયા પાધરા, સાંભલ્યઉ જેથિ સુગાલ, માણસ સંબલ વિણ મૂઆ, મારગમાંહિ વિચાલ.
ગઉખે બઇઠે ગોરડી, વીંઝણે દોલતિ વાય, પેટનઇ કાજિ પદમિની, યાચઇ પરઘરિ જાઇ.
ભોજન અમૃત જીમતા, ખાતા દ્રાખ અખોડ, કાંટી ખાવઇ કેરડી, કે ખેજડનાં છોડ.
જતીયાં દેખી જીમતા, ઉભા રહતા આડિ, તે તઉ ભાવ તિહાં ટલ્યા, જિમતાં જડાઇ કમાડ.
દેવ ન પૂજઇ દેહરઇ, પડિક્મઇ નહી પોસાલ, સિથિલ થયા શ્રાવક સહૂ, જતી પડયા જંજાલ.
રડવડતા ગણિ એ મુઆ, મડા પડયા ઠામિ ઠામિ, ગલીમાંહિ થઇ ગંદગી, ઘઇ કુણ નાંખણ દામ.
સંવત સોલ સત્યાસિયઇ, તે દીઠઇ એ દીઠ, હિવ પરમેસર એહનઇ, મ્મલગઇ કરે અદીઠ.
હાહાકાર સબલઉ હૂઅઉ, દીસઇ ન કો દાતાર, તિણ વેલા ઊઠયઉ તિહાં, કરિવા વલી ઉદ્ધાર.

હવે આપણે જોશીનું વર્ણન જોઇએ:—

ઢાલ દસમી-કપૂર હૂયઇ અતિ ઊજલું રે. એહની. રાગ કેદારો ગોડી
રૂપ કીધું બ્રાહ્મણ તણું રે, ચાલ્યઉ નગર મઝારિ
હાથે લીધું ટીપણું રે, વાંચઇ તિથિ નઇ વાર. ૧
—જોસીયડઉ જાણઇ જોતિષ સાર,
એતઉ નિમિત્ત પ્રકાશઇ અપાર—જોસિયડઉ૦
સ્નાન કરી તટની જલઈ રે, ઢલતા મુક્યા કેસ,
માથઈ બાંધ્યું ફાલીયું રે. વારૂ બણાયઉ વેસ—જોસિ૦ ૨
તિલક કીધું કેસર તણું રે, વિચિમાંહિ નખસું ચીરિ,
અદભુત આડિ ત્રિહુ ગમાં રે, સુંદર ચક્ર સરીરિ—જો૦ ૩
ધોલું ખારોદક ધોતીયું રે, જન્નોઈ સુવિસાલ,
હરિ વિષ્ણુ હરિ વિષ્ણુ મુખિ જપઇરે, તુલસીની જપમાલ—જો૦ ૪
હેમ કમંડલુ હાથમઇ રે, નીર ભરિઉં નિત જાણિ,
વેદ ભણઈ મુખિ વેદીયઉરે, કહઇ સહુનઈ કલ્યાણ—જો૦ ૫
ભમતઉ ભામા ઘરિ ગયઉરે, દીઠઊ કુબજા દાસિ,
સુંદર રૂપ સરલ તનૂરે, તતખિણ કીધું તાસિ—જો૦ ૬
અચરિજ દાસી ઊપનું રે, કીધું ચરણ પ્રણામ,
પૂછ્યું કેથિ પધારસ્યઉ રે, જમસ્યું ભોજન કામ?—જો૦ ૭
સત્યભામા મુઝ સામિની રે, આવઉ તસુ આવાસિ,
મોદક મીઠા આપસ્યું રે, દેસ્યઉ મુઝ સાબાસિ—જો૦ ૮
વિપ્ર બાહિરિ મુંકિ માંહિં ગઇ રે, દાસી ભામા પાસિ,
દીવ્ય રૂપ નવિ ઉલખીરે, રહિય વિમાંસિ વિમાંસિ—જો૦ ૯
કુબજા દાસી હું તુમ્હ તણી રે, કહી બ્રાહ્મણની વાત,
દઉડિ તેડી આવિ તેહનઈ રે, સિદ્ધ પુરૂષ સુવિખ્યાત—જો૦ ૧૦
વેદ ભણંતઉ આવીયઉ રે, દીધઉ આસિરવાદ,
ભામા ઊઠિ ઊભી થઇ રે, પ્રણમ્યા ચરણ પ્રસાદ—જો૦ ૧૧
ભામા ભગતિં ઇમ ભણઇ રે, એક કરૂં અરદાસ,
રૂકમણિનું રૂપ રૂયડું રે, મૂઝથી અધિક પ્રસાદ—જો૦ ૧૨
તિણિ તેહનઈ માનઇ ઘણું રે, કૃષ્ણજી કંત મુરારિ,
અધિક રૂપ કરિ માહરૂં રે, મનિસું તુમ્હ ઉપગાર—જો૦ ૧૩
ચિત્ત ઉતરઈ કંતનુરે, રૂકમણિથી એક વાર,
તઉ હું જાણું માહરૂં રે, જીવિત સફલ સંસાર—જો૦ ૧૪
વિપ્ર કહિં વિધિ છઇ ઘણી રે, તે જઉ સર્વ કરેસિ,
તઉ રૂપ થાસ્યઈ તેહવું રે, દેખી વિસમય ધરેસિ—જો૦ ૧૫
જે કહો તે સ્વામી હું કરૂં રે, વેગિ મ લાયઉ વાર,
મસ્તક મુંડિ તું આપણું રે, આભ્રણ સવિ ઊતારિ—જો૦ ૧૬

ખંડિત દંડિત અતિ જર્યા રે, પહેરી પુરાંણાં ચીર,
મસ્તક મુખ આંખિ મસિ ઘસીરે, સઘલું લેપિ શરીર—જો૦ ૧૭
જિમ કહ્યું તિમ ભામા કર્યઉ રે, અરથી ન દેખઇ દોષ,
દીસઈ રૂપ બીહામણું રે, જાણુઇ ભુત પ્રદોષ—જો૦ ૧૮
રૂંડ મુંડ સ્વાહા રૂડ બુડ સ્વાહારે, અઠોતરસઉ વાર,
મંત્ર ગુણે અણબોલતી રે, હોસ્યઉ રૂપ અપાર—જો૦ ૧૯
ભામા હું ભુખ્યો થયઉરે, ભોજન ઘઇ ભરપૂર,
બઇસાર્યઉ વિપ્ર જમાડવારે, પ્રીસ્યા બહુ ઘૃત પૂરરે—જો૦ ૨૦
પ્રીસ્યા લાડૂ પાજલારે, વીવાહના પકવાન,
નિરખંતા સવિ નીઠયારે, અચરિજ એ અસમાન—જો૦ ૨૧
રે રે વિપ્ર તું કૂણ છઇ રે, ત્રિપતિ ન પામઇ કિમ,
ઊઠિ ઊઠિ તું ઇહાં થકીરે, પભણુઇ દાસી એમ—જો૦ ૨૨

—સં૦ ૧૬૫૯ મા રચેલ સાંબપ્રદ્યુમ્ન રાસ, લખ્યા સં૦ ૧૬૫૯.

આમાં બ્રાહ્મણ જોશીનું કેવું તદ્રૂપ ચિત્ર આપ્યું છે તે હાલના જોશી સાથે સરખાવવા જેવું છે. તેવી રીતે ચીતારાનું આબેહૂબ સ્વરૂપ કવિએ પોતાના એક અન્ય રાસ –બે હજાર વર્ષ પર થયેલ મૃગાવતી પરની ચોપાઈમાં આળેખ્યું છે તે અત્ર નીચે આપવામાં આવે છે. તેમાં કવિ પોતાના સમયની સ્થિતિ ભૂલી શકતો નથી. જે ચિત્ર ચિતારાએ દોર્યાં છે તેમાં રાતાં મોં અને ચુંચી આંખવાળાને માથે મોટા પાઘડા વાળા તિરંદાજ મુગલ અને કાબલી, કાળા હબસી, પાંડુવર્ણ પઠાણ, કુરાન કિતાબ વાંચતા બુઢા કાજીનાં ચિત્રો મૂક્યાં છે, એટલું જ નહિ પણ માથે મોટા ટોપા ઘાલનારા ને કોથળા જેવા ઢીલા સુંથણા (પાટલુન) પહેરનારા છેડતી કરતાં કોપાયમાન થનારા ફિરંગીઓને પણ બાકી રાખ્યા નથી. આ અકબર–જહાંગીરના સમયમાં વેપાર અર્થે જૂદે જૂદે સ્થલે કોઠીઓ નાંખનાર અંગ્રેજો–પોર્ટુગીઝો છે. આમ કરી કવિએ સમય વિરોધનો દોષ વ્હોરી લીધો છે, અને એવો કાલ વિરોધ ઘણે સ્થળે દેખા દે છે, તેનાં દષ્ટાંતો ત્રણેક અગાઉ અપાઈ ગયાં છે.

ચતુર ચિતારો

ખંડ ૨ જો ૫ રી ઢાળ. રાતડીયાં રમીનઈ કિહાંથી આવીયારે-એ દેશી

રાગ પરજીઓ.

સકલ ચીતારામાંહિ સુંદર રે, નિપુણ છઇ જેહનું નામ રે,
રાજમહલ દીધો તેહનઇ રે, વારૂ કરવા ચિત્રામરે
—ચતુર ચીતારો રૂપ ચીતરઇ રે.

ચતુર ચીતારો રૂપ ચીતરઇ રે, રાજમહલ તણી ભીંતિરે,
ન્યાન વિન્યાન નવાં કેલવઇ રે, રંજવા રાજાનૂં ચીતરે- ચતુર૦

ચઉદ સુપન પહિલાં ચીતર્યા રે, ચીતર્યા આઠ મંગલીક રે,
રામ સીતા રૂપ ચીતર્યા રે, લષમણ રામ નજીક રે- ચતુર૦

વળીરે વાનર હનુમંત ચીતર્યા રે, જેહનું લાંબું પુછરે,
રૂપ વિસિષ્ટ તણું ચીતર્યું રે, મોટી ડાઢી મોટી મુંછ રે- ચતુર૦

રૂપ લષ્યું રાવણ તણું રે, દસ માથાં ભુજ વીસરે,
ષડગ ચંદ્રહાસ તે હાથમઇ રે, શ્રવણ નયણ જસ વીસરે- ચતુર૦

ઇશ્વરનું રૂપ ચીતર્યું રે, અહિ આભરણ રૂંડમાલરે,
ચંદ્રકલા ગંગા સિરઇં રે, વૃષભ વાહન કંઠ કાલ રે- ચતુર૦

રૂપ બ્રહ્માતણું ચીતર્યું રે, ચતુર્મુખ બુઢો જટાલરે,
હાથ કમંડલ જલ ભર્યું રે, જનોઇ જપમાલ રે- ચતુર૦

રૂપ લિષ્યું શ્રી કૃષ્ણનું રે, મુરલી મનોહર સામ રે,
શંખ ગદા ચક્ર હાથમઈં રે, ચતુર્ભુજ અતિ અભિરામ રે- ચતુર૦

ચંદ સૂરજ નવગ્રહ ચીતર્યા રે, ચીતરિઉં ગણેસનું રૂપ રે,
પેટ મોટું સુંડિ ગજ તણી રે, ઉંદિર વાહન અનૂપ રે- ચતુર૦

ભલા નઇ ભારંડ પંષી ચીતર્યા રે, એક ઉદર ગાબડિ હોય રે,
જુગતિં ભષઇ ફલ જુજુઆં રે, જીવ જુદા બેઊ હોઇ રે- ચતુર૦

ગરૂડ મયૂર સુક સારિકા રે, પંખી રૂપ અનેક રે,
નિપુણ ચીતારઇ સઘલાં ચીતર્યા રે, વારૂ જાણે વિવેક રે- ચતુર૦

મુગલ કાબલી ચીતર્યા રે, મુખ રાતા ચુંચી આંષિરે,
માથઇ મોટા પાઘડ દૂમણા રે, તે જાંણઇ તીર નાંષિ રે- ચતુર૦

રૂપ ફરંગી ચીતર્યા રે, માથઇ મોટા ટોપ રે,
ઢીલા પહિરઈં સુથણ કોથલા રે, છેડયા કરઇ બહુ કોપ રે- ચતુર૦

પંચવરણ આભાં ચીતર્યા રે, ચીતર્યા પોલિ પાગાર રે,
ચતુર ચીતારો જાંણ પણઇ ઘણું રે, ચીતર્યા સકલ પ્રકાર રે- ચતુર૦

હુબસી કાલા, અતિ ઘણું રે, પાંડુર વરણ પઠાણ રે,
ગરઢા બૂઢા કાજી ચીતર્યા રે, વાંચતા કતેબ કુરાણ રે- ચતુર૦

નિપુણ ચીતારઇ દીઠો એકદા રે, મૃગાવતી તણો અંગૂઠ રે,
વસ્ત્ર અંતરિ પણિ પ્રગટીઓ રે, કાંતિ કરી અતિ સુદ્ધ રે- ચતુર૦

તેહ નઇ અનુસારઈં સઘલી ચીતરી રે, મૃગાવતી રાણીનું રૂપ રે,
સકલ કલા આપણી કેલવી રે, કીધો તેહનૂં સરૂપ રે- ચતુર૦

રૂપ ચીતરતાં રાણી તણો રે, સાથલિ પડયો મસિ બિંદ રે,
ચતુર ચીતારો વિલખો થયો રે, એહ જણાવઇ દુપ દંદ રે- ચતુર૦
બીજી વાર બિંદુ ભૂંસીઉ રે, વલિ પડયો તેણિ જ ઠામ રે,
વલી રે ચીતારઇ ફરઇ કીઉ રે, એહનો ઇહાં નહી કામ રે- ચતુર૦
ઇમ વાર વાર તિહાં પડઇ રે, મસિનો બિંદ તે એક રે,
ચતુર ચીતારઇ ફરઇ કીઉ રે, મન ધરી પરમ વિવેક રે- ચતુર૦
—મૃગાવતી ચોપઇ.

વીણાધારી ગાયક.

ઢાલ પનરગી-ખંભાયતી રાગ-જેસલમેરૂ જીરાઉલઈ રે-એ દેશી

સંબ પ્રજૂન કુમર ચઢ્યા રે, વિદ્યાબલિ આવાસો રે,
રૂપ કીધું ચંડાલનું રે, કાંતિ કલા સુપ્રકાશો રે-૧

તોરે કોડડે વેદરભી, પરણિ કુયરી, મોરી માતજી, મન આસા પૂરૂં તાહરી રે- તોરે૦ ૧
ભોજક હટક નગરમહિં ભમઇ રે, ગાયઇં ગીત રસાલોરે,
વિચિ વિચિ વાયઇ વાસલી રે, એક વીણા એક તાલો રે- તોરે૦ ૨
હા હા હૂ હૂ અવતર્યા રે, દેવ ગાયક દિવ્ય રૂપો રે,
સંગીત ભેદ સમુચ્ચરઇ રે, સુંદર સકલ સરૂપો રે- તોરે૦ ૩
સપ્ત સ્વર ત્રિણ ગ્રામસું રે, મૂર્ચ્છના એકવીસ માનો રે,
સર મંડલ પૂરઉ જઈ રે, ચ્યાલીસ ને નવ તાંતો રે- તોરે૦ ૪
ટોલઇ ટોલઇ મિલઇ તિહાં રે, નરનારીના વૃંદ રે,
દેવ વિમાન થંભી રહઇ રે, પામઈ પરમાણુંદો રે- તોરે૦ ૫
પામઈ સુખ સંયોગિની રે, વિરહણી રાઙ આરાધઇ રે,
ચંદ્ર વાહન મૃગ નવિ ચલઈ રે, નાદિ બંધ્યો નિસિ વાધઇ રે- તોરે૦ ૬
કાચિત હાર પરોવતી રે, અધવિચ નાંખી આવઇ રે,
કાચિત પ્રીયુ અણપ્રીસતી રે, ધી અણ પ્રીસ્યાં ધાવઇ રે- તોરે૦ ૭
કાચિત ગીત વિનોદિની રે, પ્રીયુ હટકી વિલખાણી રે,
કાચિત પગતે માંડણે રે, અણ સુકી ઊજાણી રે- તોરે૦ ૮
કાચિત ધરિ ધીનઉ ધડઈ રે, નીસરિ મૂકી ઢલતોરે,
કાચિત ધાન ચૂલ્હઇ ચડયઉ રે, મુગધા મૂંકઇ બલતો રે- તોરે૦ ૯
કાચિત ન ગણઈ નાહલઉ રે, ગાલિ દેતઉ ઊછલતો રે,
કાચિત છાયલ છેહડઉ રે, ઉચઉ લ્યઇ નહી રલતઉ રે- તોરે૦ ૧૦
કાચિત વીણ ગુંથાવતી રે, નીસરી છૂટઇ કેસો રે,
કાચિત ભોલી ભામિની રે, અરધઉ પહિરઇ વેસો રે- તોરે૦ ૧૧

દેવ ગુરૂ ધર્મ રાગિણી રે લાલ, અતિ દાતાર ઉદાર રે, મૃ૦
ભગતિ ઘણી ભરતારની રે લાલ, સ્રીનો એ આચાર રે, મૃ૦ ૨૫૦
એ બીજી ઢાલ જાણયો રે લાલ, નાયકા કેરી એહ રે, મૃ૦
સમય સુંદર કહઈ સાંભલો રે લાલ, રાગ કેદારઇ તેહ રે, મૃ૦ ૨૫૦

—સં૦ ૧૬૬૮ માં રચિત મૃગાવતી ચોપઇ, લખ્યા સં૦ ૧૭૧૫.

દમયંતીનો ચંદ્રદ્વારા નલને સંદેશ.

ઢાલ ૫ મી ભાવનરી.

હો સાયરસુત સોહામણો, સોહામણો રે, હો સાંભલિ સુગુણ સંદેસ
હો ગગનમંડલ ગતિ તાહરી, તાહરી રે, હો દેખઇ તું સગલા દેસ,
—દેખઇ સગલા દેસ.

ચંદલિયા સંદેશો રે કહે માહરા કંતનઇ રે–
થાહરી અબલા કરઇ રે અંદેસ, અબલા કરઇ રે અંદેસ,
નાહલીઇ વિહુણી રે નારી હું કયું રહું રે–

હો વાલમ મઇ તોનઇ વારીઉ, વારીઉ રે, હો જૂવટઇ રમવા તું મ જાય,
હો રાજ હારી નલ નીસર્યો, નલ નીસર્યો રે, હો વનમાંહિ ગયો વિલખાય
વારીયો રહો વનમાંહિ–

ચંદલિયા સંદેસો હો કહે માહરા કંતનઇ રે–
હો નલ તુઝસું હું નીસરી, નીસરી રે હો આગમ લીધો દુખ આધ
હો મુઝનઇ તું છોડી ગયો, એવડો કિસ્યો અપરાધ,
ચંદલિયા સંદેસો હો કહે માહરા કંતનઇ રે–

હો સૂતી મૂકી તઈ કાં સતી, કાં સતી રે, હો પ્રમદા ન જાણી તઈ પીડ,
હો હાથિ જિને પરણી હુતી, પરણી હુતી રે, હો ચતુર કર્યંણો કિમ ચીર– ચંદલિયા૦
હો ઝબકિ જાગી ઝૂરવા, ઝૂરવા રે, હો પ્રિય તું ન દીઠો પાસ,
હો વનિ વનિ જોઉં તુનઇ વાલહા, હો વાલહા, હો સાદ પણિ કીધા સો પચાસ– ચંદલિયા૦
હો નિરતિ ન પામી થાહરી નાહલા, નાહલા રે, હો પગિ પગિ મૃગલી પણિ પૂછી,
હો રોઇ રોઇ મુઇ રાંનમાં, રાનમાં રે, હો મહીઅલ પઠી હું મુર્છિ– ચંદલિયા૦
હો કીધું તઈ ન તે કો કરઇ, કો કરઇ રે, કો પુરૂષાં ગમાડી પરતીતિ,
હો વિસ્વાસ ભાગો હવિ વાલહા, હો વાલહા રે, હો પુરૂષાં કેહ પ્રીતિ– ચંદલિયા૦
હો દ્રષ્ટાંત થાહરો નલ! દાખસ્યઇ, દાખસ્યઇ રે, હો કવિયણ કેરી રે કોડિ,
હો પુરૂષ કુડા મહા કપટીયા, કપટીયા રે, હો ધરી લગાડી ખોડિ– ચંદલિયા૦

હો એહવા ચંદસું ઉલંભડા, ઉલંભડા રે, હો દીધાં દવદંતી નારી,
હો ચઉથી ઢાલ પુરી કરી, પુરી કરી રે, હો સમયસુંદર સુ વિચાર–
હો સમયસુંદર સુ વિચાર
—ચંદલીયા સંદેશો રે હો કહે માહગ કંતનઇ રે,
—સં• ૧૬૭૩ માં રચિત નલ દવદંતી રાસ, લખ્યા પ્રત. સં૦ ૧૭૬૬

કવિએ પોતાના સં૦ ૧૬૭૨ માં રચેલા પ્રિયમેલક રાસમાં રાજકુમારને સાહસિક બનાવી સમુદ્ર યાત્રા કરાવી તેનાં સાહસો વર્ણવ્યાં છે તેની વાનગી રૂપે એક કાવ્ય લઇશું. જે પ્રતમાંથી આ ઉતારવામાં આવ્યું છે તે સં૦ ૧૬૮૦ માં લખાયેલી પ્રત છે એટલે કે રચ્યા સાલ પછી આઠ વર્ષે જ અને તે વળી કવિના જીવનમાં જ લખાયેલી પ્રત છે, તેથી તે વખતની ભાષાનો નમુનો પણ આ કાવ્ય પૂરો પાડશે.

ભાગ્ય પરીક્ષા

(ઢાલ ત્રીજી, વાલુંરે સવાયો વયર હું માહરૂંજી–મૃગાવતી ચઉપઇની એ ઢાલ)

અમર્ષ કુમરનઇ આવીયોજી, કીયો મુઝશું પિતા કૂડી,
અવહીલ્યા જે આધા પડઇજી, ધિગ તે જનમનઈ ધૂલિ. ૧
કરમ પરીક્ષા કરણ કુમર ચલ્યોજી, ધનવતી ચલી ઘણી સાથિ,
કંત વિહુંણી કિસિ કામિનીજી, અસ્ત્રી નઈ પ્રીયુ આથ. ૨

—*કર્મ પરીક્ષા કરણ કુમર ચલ્યોજી.

દેસ પ્રદેસે અચરિજ દેખસ્યુંજી, ભાગ્યનઉ લહસ્યું ભેદ,
સાજણ દૂજણ સમજસ્યુંજી, ઇમ મનિ ધરીરે ઉમેદ. ૩ કરમ૦

યતઃ " દીસઇ વિવિહચ્ચરિયં જાણિજ્જઇ સજ્જણ દુજ્જણ વિસંસો,
અપ્પાણં ચ કલિજ્જઈ હિંડિજ્જઇ તેણ પુહવીએ. "
આધિ રાતિ ઉઠિઊજી, સુંદરિ લીધી સાથિ,
સિંહલ સુત મહા સાહસીજી, હથિયાર તરવારિ હાથિ. ૪ કરમ૦
તુરત ગયો દરિયાનઈ તટઇજી, સમુદ્ર ચડયો સાહસીક,
પ્રવહણ બઇઠેઇ પરદ્વીપ ભણીજી, નારિનઇ લેઇરે નજીક. ૫ કરમ૦
આગલિ જાતાં દરિયઉ ઊછલ્યોજી, નિમ વલી લાગઉ તોફાન,
પ્રવહણ ભાગો કોલાહલ પડયઉજી, અતિ દુખ પડયઉ અસમાન. ૬ કરમ૦
પુન્ય સંયોગઈ પામ્યઉં પાટીયોજી, ધનવતી લીધઉં આધાર,

* આ ' કર્મ પરીક્ષા કરણ કુમર ચલ્યોજી, ' એ દેશી કવિના પછીના અનેક કવિઓએ પોતાની કૃતિઓ માટે લીધી છે. સમયસુંદરની કૃતિની દેશીઓ ઘણી પ્રસિદ્ધ થયેલી દેખાય છે.

નારિ સેંતી દુખ નીસરીજી, પામ્યઇ સમુદ્રનઉ પાર. ૭ કરમ૦

અબલા ચાલી તિહાંથી એકલીજી, વસતી જોઉં કિણુ વેગિ,
કેત વિહૂણી રૂપવંત કામિનીજી, ઉપજઈ કોડિ ઉદ્વેગ. ૮ કરમ૦

નગરિ નજીકિ નારી ગઇજી, પેખ્યો એક પ્રસાદ,
દંડ કલસ ધ્વજ દીપતાજી, નવલા સંખનઇ નાદ. ૯ કરમ૦

ધનવતી પુછે કાંઇ ધરમિણીજી, કહિ બાઇ કુણુ છ ગામ,
કુણુ તીરથ એહ કેહનઉજી, એ મહિમા અભિરામ. ૧૦ કરમ૦

ગામ કુસમપુર ગુણતિલકઉજી, ઇંદ્રપુરી અવતાર,
પ્રિયમેલક તીરથ પરગડઉજી, સહુ જાણુઈ સંસાર. ૧૧ કરમ૦

વેગા મિલઇ પ્રિય વિછડયઉજી, નિત તપ કરઇ જે નારિ,
ઇહાં બઇઠી અણુબોલતીજી, પરતા પૂરઇ અપાર. ૧૨ કરમ૦

ધનવતી મૌન વરત ધરીજી, જાઇ બઇઠી જોગ ધ્યાન,
નાહ મિલ્યા વિણુ બોલું નહીજી, એહ બલીયો અસમાંન. ૧૩ કરમ૦

મન ગમતી ઢાલ મારૂણીજી, દુખિયાં જગાવઈ દુખ,
સમયસુંદર કહઇ સુણતાં થકાંજી, સુખિયાં સંપજઇ સુખ. ૧૪ કરમ૦

દૂહા સોરઠી

કુમરઇ પણુ એક કોય, લાધઉ લાંબઉ લાકડઉં, તરતઉ તરતઉ તોય, પાહિઈ પહુતઉ પાધરઉ. ૧

જેહવઇ આગઇ જાય, નગર રત્નપુર નિરખીયો, રત્નપ્રભ તિહાં રાય, રાણી રતનાસુંદરી. ૨

રતનવતી બાલરૂપ રાજા નામ બેટી રતન, સુંદર સકલ સરૂપ, ભરજોબન આવી ભલી. ૩

કુમર આંણ્યઉ કુમરી કન્હઇ રે, નિરમલ આણ્યઉ નીર,
ઉહલી મુંદડી આપણી રે, સહૂ છાંટયો કુમરી શરીર—　　૬ રાજા૦
પાણી પાયઉં પ્રેમસું રે, ઉઠિ બયઠી થઇ આપ,
કુમર ઉપગાર એ કીયઉ, બહુ હરખ્યા માઇ નઇ બાપ રે—　　૭ રાજા૦
રૂપિઈં દીઠઉ રૂયડઉ રે, ગુણ દીઠઉ ઉપગાર,
ઉત્તમ કુલ તિણિ અટકલ્યઉ રે, પ્રગટિઉ પુણ્ય પ્રકાર—　　૮ રાજા૦
રતનપ્રભ ગુણ રંજીયઉ રે, કીધઉં કુમરી વીવાહ,
દીધઉં કુમરનઇ દાયજઉ, અધિકઉ કુમરી ઉચ્છાહ રે—　　૯ રાજા૦
રાતિ પડી રવિ આથમ્યઉ રે, જાગ્યઉ મદન જુવાંન,
રંગમહલ પહુતા રલી વારૂ જાંણે ઇંદ્ર વિમાન રે—　　૧૦ રાજા૦
વર પલ્લંક બિછાઇયઉ રે, પાથર્યા બહુ પટકૂલ,
અગર ઉખેવ્યા અતિ ઘણા રે, મહકઇ પરિમલ અનુકૂલ રે—　　૧૧ રાજા૦
દીવા કીધા ચિહું દિસેઇ રે, રતનવતી બહુ રંગ,
કુમર પલિંગ છોડી ધરતી સુયઇ, સુતઉ ધરતી તજિ સંગ રે—　　૧૨ રાજા૦
ચતુર નારી મનિ ચિંતવઇ રે, કરમ કુટઉં મુઝ કોય,
સેજ છોડી ધરતી સુયેઇ, રમણી જીવતઇ નઈં રોય રે—　　૧૩ રાજા૦

યતઃ " ધરિ ઘોડઉ નઈં પાલો જાઈ, ધરિ ઘેણુઉં નઇ લૂખઉં ખાઇ,
ધરિ પલંગ નઇ ધરતી સોયેઇ, તિણરી બઇરિ જીવતા નઇ રોયઇ "
પૂછ્યો કુમરી પ્રેમસુ રે, ભેદ કહિઉં ભરતાર,
એવઇ રાગ તુમ્હે આદરિઉં, કિમ રાગ તણઇ અધિકાર રે—　　૧૪ રાજા૦
કુમરઇ મનમાંહિ અટકલઉં રે, સ્ત્રી નઇ ન કહિયઇ સાચ,
વલી વિસેષ વાત સઉકિની, વદઇ પંડિત એહવી વાચા રે—　　૧૫ રાજા૦
કુમરે કહિઇં વાત કેલવી રે, સુણિ સુંદરી મુઝ સંચ,
માબાપથી મઇં વીછડેઇ, રાખ્યઉ અભિગ્રહ રંચ રે—　　૧૬ રાજા૦
સોસ્યું ધરતી સર્વદા રે, પાલિસિ સીલ પ્રતાપ,
સુંસ લીયઉં મઇ સુંદરી, મિલસેઇં નહિ જાં માઇ બાપ રે—　　૧૭ રાજા૦
કહઇ કુમરી સુણ કંતજી રે, ધન્ય તુમ્હે ધર્યો નેહ,
ભગતિ માબાપ તણી ભલી, ઉત્તમ પુત્ર લક્ષણ એહ રે—　　૧૮ રાજા૦
ભેદ જાણ્યઉ સહુ ભૂપતી રે, ચિંતાતુર થયઉ ચિત્ત,
કુમરનઇ પૂછ્યું કિહાં વસઉ, કુલવંસ કહઉ સવિત્ત રે—　　૧૯ રાજા૦
કુમર કહો કુલ આપણુઉ રે, વંસ અનઇ વલી વાસ,
સમયસુંદર સહુ સુખી રે, રહી રતનવતી નિરાસ—　　૨૦ રાજા૦

—પ્રિય મેલક તીર્થ રાસ રચ્યા સં૦ ૧૬૭૨–લખ્યા સં૦ ૧૬૮૦.

ઉપદેશમય રાસ કવિએ રચ્યા છે. વ્યવહાર શુદ્ધિ રાખવા માટે કવિએ ધનદત્તનો રાસ રચી તે ધનદત્ત વાણિયો સાધુ પાસે વ્યવહાર શુદ્ધિ પાળવાનો નિયમ લઈ વેપાર કરતાં નુકશાન સહી આખર સ્વદેશ તજી પરદેશ જાય છે અને જીવન પર્યંત વ્યવહાર શુદ્ધિ રાખે છે તે તેના ચરિત્રથી બતાવી-પાત્રદ્વારા લોકને ઉપદેશો કવિએ આપ્યો છે. તે કાવ્યમાંથી નીચેનો એક ખંડ લઇ મૂકવામાં આવે છેઃ—

તું ધન તું કૃતપુણ્ય તું સાધ કહે ધનદત્ત,
પણિ રૂડી પરિ પાલજે, નિશ્ચલ કરિ નિજ ચિત્ત- ૧
વ્યવહાર શુદ્ધપણું ગ્રહી, આયો આપણ ગેહ,
ભલો કિયો કહઇ ભારિજા, પણ દુકર છઇ એહ- ૨
વ્યાપાર માંહિ વાંણિઇં, સગલો બોલે સાચ,
પાડ કહઇ તંત પાડિનઇં, ન વદઇં બીજી વાચ- ૩
સાચાં તોલાં તાકડી, સાચા ગજ શ્રીકાર,
ઉછો ઘઇ નહીં આપણો, અધિકો ન લિઇ લિગાર- ૪
સાચ ઉપરિ રાચઇ નહી, સોટ કહી કહે એહ,
વિણજ વ્યાપાર મા(ઠો) પડયો, દ્રવ્ય સો આવ્યો છેહ- ૫
સુહલતિ પૂગી વાણિયા, આવી માગઇ દામ,
ઘરમાહિં દેવા નહીં, ચિંતાતુર થયો જામ- ૬
તેહવઇ બોલી ભારજા, સાંભલી સામી! વાત,
ધન તૂટાં લાગઇ ખરચ, કિમ ગમસ્યાં દિનરાતિ- ૭
ઘર ધંધા દુખ પાલણા, સાયર કૂખ સમાન,
એકાણિ રાતિં વીસર્યા, ગાહા પંચ સયાણ- ૮
રૂડું કરતાં પાડુઉં, આઇ કલિજુગ તેહ,
પણિ ધરમિં જય નેહિ છઇ, હિયૈ રખઇ નર જેહ- ૯
સાચ કહ્યો તઇ સુંદરી, પણિ હિવ કરસ્યાં કેમ,
સોંસજ ભાજ્યું સર્વથા, માંગણરો મુઝ નેમ- ૧૦
પરદેસ ચલિ સહુ પાધરો, દરિયાં ચલિ સહુ દેખિ,
લખમી તિહાં લહિઇ ઘણી, વારૂ ભાગ્ય વિશેષ- ૧૧
બાઇયર બોલી ચાલતાં, સાંભલયો ભરતાર,
હું અઇહી વ્રત પાલેસ્યું, તું પાલે વ્યવહાર- ૧૨

આમાં વાણિયાણી કેવી બહાદુર રહી પોતાના પતિને શિખામણ આપે છે તે જોઇ શકાશે. 'ગામસ્યાં' 'કરસ્યાં' 'માંગણરો' એ મારવાડી રૂપો આમાં જણાય છે. કવિ મેવાડ મારવાડમાં જ બહુ ફર્યા છે-રહ્યા છે.

હવે કવિના સર્વ કાવ્યના કલશ રૂપ મહાકાવ્ય નામે સીતારામ પ્રબંધમાંથી પોતાની હસ્ત લિખિત પ્રતમાંથી કાવ્યનો એક નમુનો લઇએ તે પરથી કવિનાં સમયની તેમ જ પોતે વાપરેલી ભાષાનું સ્વરૂપ સમજાશે.

સીતાપર લોકાપવાદ.

આઠમો ખંડ. ઢાલ ૧ લી. રાગ મારૂણી.

[અમાં મ્હાંકી ચિલા સિંગી જોઇ, અમાં અમામ્હાંકી, મારડે મેવાસી કો સાદ સોહામણો રે લો. એ ગીતની ઢાલ]

સહિયાં મોરી સુણિ સીતાની વાત, સહિયાં, સહિયાં મોરી આપણે ઘરિ રાખી, રાવણ રાજીયે રે લો૦ સહિયાં૦
તે કામી કહિવાઇ સહિયાં, સહિયાં મોરી, તે પાસે બેઠાં પણિ લોકમેં લાજીયે રે લો૦ સહિયાં૦ ૧
સીતા સતીય કહાય, સ૦ સ૦ પણિ રાવણ ભોગવ્યાં પિણ સહી મુંકે નહી રે લો૦ સહિયાં૦
[1]ભૂખ્યો ભોજન ખીર, સ૦ સ૦ વિણ જીમ્યાં છોડે નહી, ઇમ જાણો સહી રે લો૦ સહિયાં૦ ૨
[2]તરસ્યો ન છોડે નીર, સ૦ સ૦ પંડિત તો સુભાષિત તરસિયો કિમ તજે રે લો૦ સહિયાં૦
[3]દલિદ્રી લાધું નિધાન, સ૦ સ૦ કિમ છોડે જાણે ઇમિ, વલિ નહિ સંપજે રે લો૦ સહિયાં૦ ૩
તિણ હું નિશ્ચય જાણિ, સ૦ સ૦ ભોગવિને મુકી પરી, સીતા રાવણે રે લો૦ સહિયાં૦
રામે કીધો અન્યાય સ૦ સ૦ સીતાને અપણે ઘરમાંહે આણુણે રે લો૦ સહિયાં૦ ૪
લોકાં મેં અપવાદ સ૦ સ૦ સગલે હી સીતા શ્રી રામનો વિસ્તર્યો રે લો૦ સહિયાં૦
અંતેઉર પરિવાર સ૦ સ૦ બીરતલે લોકે કહ્યો તે મનમે ધર્યો રે લો૦ સહિયાં૦ ૫
એક દિવસ એક ઠામિ સ૦ સ૦ નગરીમેં મહિલાના ટોલ મિલ્યા ઘણા રે લો૦ સહિયાં૦
તિહાં એક બોલી નારિ સ૦ સ૦ અસ્ત્રીમે સબલા પુણ્ય આજ સીતા તણા રે લો૦ સહિયાં૦ ૬
દેવીને દુરલંભ સ૦ સ૦ તે રાવણ રાજાસું સીતા સુખ લહ્યો રે લો૦ સહિયાં૦
સીતા સતીય કહાઇ સ૦ સ૦ એ ન ઘટે એવડી વાત ઇમ બીજી કહ્યો રે લો૦ સહિયાં૦ ૭
એક કહે ચાલીએ સ૦ સ૦ અસ્ત્રીનું સીલ તાં લગિ કહિયે સાબતો રે લો૦ સહિયાં૦
જાં લગિ કામી કોઇ સ૦ સ૦ પ્રારથના ન કરે બહુ પરિ સમઝાવતો રે લો૦ સહિયાં૦ ૮
એહને રાવણરાય સ૦ સ૦ વીનતિને વચને કરિ વશિ લીધી ઘણું રે લો૦ સહિયાં૦
રાચી અસ્ત્રી રંગે સ૦ સ૦ તન મન ધન સગલું હી આપે આપણું રે લો૦ સહિયાં૦ ૯
એક કહે વલિ એમ સ૦ સ૦ સીતાને જાણે તુમ્હે જગિ સોભાગિણી રે લો૦ સહિયાં૦
નારી સહસ અઢાર સ૦ સ૦ મંદોદરિ સારિખી સહુને અવગણી રે લો૦ સહિયાં૦ ૧૦

× સરખાવો આ કવિના સમય પછી થયેલા શામળભટ્ટની નંદબત્રીશીમાં

૧ અમૃત પીરસ્યું થાળમાં, આપે કરવા આહાર,
દીઠું પણ ચાખ્યું નહીં, પડ પાસા પોબાર.

૨ હંસ ગયો સરોવર વિષે, દીઠું અમૃતવાર,
પિધા વિના પાછો વળ્યો, પડ પાસા પોબાર.

૩ રત્ન અમૂલ્ય સુહામણું, લોભે ગયો તે ઠાર,
દીઠું પણ લીધું નહીં, પડ પાસા પોબાર.

કવિના અખંડ કાવ્યો-મહાકાવ્યમાંથી નમુના લઇ તેમની કાવ્ય શક્તિ પર વિચાર કરવાનાં સાધન જોયાં, હવે તેનાં ખંડ કાવ્યો-ટૂંકા કાવ્યો પર જઇએ.

આલોયણ (આલોચના) સ્તવન.

આમાં શત્રુંજય ગિરિની યાત્રા કરતાં ત્યાં ઋષભદેવ પાસે પોતાના હૃદયની વાત કરી જે કંઇ પોતે પાપો કર્યાં હોય તે ગણાવી તેની આલોચના કરી માફી ચાહે છેઃ-

બે કરજોડી વીનવૂં જી, સુણિ સ્વામી સુવિદીત,
કૂડ કપટ મૂંકી કરી જી, વાત કહૂં આપ વીત.
કૃપાનાથ ! મુઝ વીનતી અવધાર-
તૂં સમરથ ત્રિભુવન ધણીજી, મુઝને દુત્તર તાર- કૃપા૦
ભવસાયર ભમતાં થકાંજી, દીઠાં દુખ અનંત,
ભાગ સંયોગે ભેટિયોજી, ભય ભંજણ ભગવંત- કૃપા૦
જે દુઃખ ભાંજે આપણાજી, તેહને કહિયે દુઃખ,
પરદુખભંજન તૂં સુણ્યોજી, સેવકને દ્યો સુખ- કૃપા૦

હવે પોતાના સમયની સ્થિતિ જણાવે છેઃ—

દૂષમ કાલે દોહિલોજી, સૂધો ગુરૂ સંયોગ,
પરમારથ પીછે નહીજી, ગડર પ્રવાહી લોક- કૃપા૦
[તિણ તુઝ આગલ આપણા જી, પાપ આલોઉં આજ,
માય બાપ આગલ બોલતાં જી, બાલક કેહી લાજ- કૃપા૦]
જિન ધર્મ જિન ધર્મ સહૂ કહેજી, થાપે અપણી જી વાત,
સામાચારી જુઇ જુઇ જી, સંશય પડયાં મિથ્યાત- કૃપા૦
જાણ અજાણપણેં કરી જી, બોલ્યા ઉત્સૂત્ર બોલ,
રતને કાગ ઉડાવતાજી, હાર્યો જનમ નિટોલ- કૃપા૦

આ પછી પોતાની આપવીતી-નિર્બળતા ઉત્કટ હૃદય નિર્મળતાથી જણાવે છે.

ભગવંત-ભાખ્યો તે કિહાંજી, કિહાં મુઝ કરણી એહ.
ગજ પાખર ખર કિમ સહેજી, સબલ વિમાસણ તેહ- કૃપા૦ ૧૦
આપ પ્રરૂપ્યું આકરૂંજી, જાણે લોક મહંત,
પિણ ન કરૂં પરમાદિયોજી, માસાહસ દૃષ્ટાંત- કૃપા૦ ૧૧
કાલ અનંતે મેં લહ્યાંજી; તીન રતન શ્રીકાર,
પિણ પરમાદે પાડિયાંજી, કિહાં જઇ કરૂં પુકાર- કૃપા૦ ૧૨
જાણું ઉત્કૃષ્ટી કરૂંજી, ઉદ્યત કરૂં અવિહાર,
ધીરજ જીવ ધરે નહીંજી, પોતે બહુ સંસાર- કૃપા૦

મહાવીર સ્તવન.

વીર સુણો મોરી વીનંતી, કરજોડી હો કહું મનની વાત,
બાલકની પરેં વીનવૂં, મેરા સ્વામી હો ! તૂં ત્રિભુવન તાત—
વીર સુણો મોરી વીનતી. ૧

તુમ દરશણ વિણ હૂં ભમ્યો, ભવ માંહે હો સ્વામી ! સમુદ્ર મઝાર,
દુખ અનંતા મેં સહ્યાં, તે કહિતાં હો કિમ આવે પાર. વીર. ૨

પર ઉપગારી તૂં પ્રભુ, દુખ ભંજે હો જગ દીન દયાલ,
તિણ તોરે ચરણે હું આવિયો, સામી ! મુઝને હો નિજ નયણ નિહાલ. વીર. ૩

અપરાધી પિણ ઉધર્યા, તેં કીધી હો કરૂણા મેરા સ્વામ,
હું તો પરમ ભક્ત તાહરો, તિણ તારો હો નહીં ઢીલનો કાંમ. વીર. ૪

× × × ×

[આ પછી શુલ પાણિ, ચંડકૌશિક નાગ, ગોશાલો, ગૌતમ, જમાલિ, અયમન્તા ઋષિ, મેઘકુમાર, નંદિષેણ, આર્દ્રકુમાર, ચેલણા, શ્રેણિક એ સર્વને ઉદ્ધર્યા જણાવી]

ઇમ અનેક તેં ઉધર્યા, કહું તોરા હો કેતા અવદાત,
સાર કરો હિવ માહરી, મનમાંહે હો આણો મોરડી વાત. વીર. ૧૫

સૂધો સંજમ નહિ પલે, નહિ તેહવો હો મુઝ દરશણ જ્ઞાન,
પિણ આધાર છે એતલો, ઇક તોરો હો ધરૂં નિશ્ચલ ધ્યાન. વીર. ૧૬

મેહ મહિતલ વરસતો, નવિ જોવે હો સમ વિષમાં ઠાંમ,
ગિરૂવા સહજે ગુણ કરે, સ્વામી ! સારો હો મેરા વંછિત કામ. વીર. ૧૭

તુમ નામેં સુખ સંપદા, તુમ નાંમે હો દુખ જાપે દૂર,
તુમ નામે વંછિત ફલે, તુમ નામે હો મુઝ આનંદ પૂર. વીર. ૧૮

કલશ (હરિગીતના લયમાં કલશ મૂકાય છે)

ઇમ નગર જેસલમેર મંડન, તીર્થંકર ચોવીસમો,
શાસનાધીશ સિંહ લંછન સેવતાં સુરતરૂસમો.
જિનચંદ ત્રિશલા માત નંદન સકલચંદ કલા નિલો,
વાચના ચાર જ સમયસુંદર સંથુણ્યો ત્રિભુવનતિલો.

ચાર ચરણમાં છેલ્લું ચરણ સાધારણ—સામાન્ય એક જાતનું આવે એવું—ભુજંગી; કે એવી જાતના છંદ વાળું કાવ્ય તેને સામાન્ય રીતે 'છંદ' એ નામ જૈનોમાં અપાયું છે. આવો 'છંદ' પાર્શ્વનાથનો ૭ કડીનો કવિએ કરેલો નોંધવામાં આવ્યો છે, તેનાં પ્રથમની બે કડીઓ આ છેઃ—

આપણ ઘર બેઠાં લીલ કરો, નિજ પુત્ર કલત્ર શું પ્રેમ ધરો,
તમેં દેશ દેશાંતર કાંઇ દોડો, નિત્ય પાસ જપો શ્રી જિન રૂડો. ૧

મનો વંછિત સઘલાં કાજ સરે, શિર ઉપર ચામર છત્ર ધરે,
કલમલ ચાલે આગલ ઘોડો, નિત્ય પાસ જપો શ્રી જિન રૂડો. ૨

સીમંધર જિન સ્તવન

* ચાંદલિયા સંદેશડોજી, કહેજો સીમંધર સ્વામ,
ભરતક્ષેત્રનાં માનવીજી, નિત ઉઠી કરે રે પ્રણામ.

× × ×

રાયને વહાલાં ઘોડલાંજી, વેપારીને વહાલા છે દામ,
અમને વહાલા સીમંધર સ્વામી, જિમ સીતાને રામ.

નહિ માગું પ્રભુ ! રાજ ઋદ્ધિજી, નહિ માગું ગરથ ભંડાર,
હું માગું પ્રભુ ! એટલું જી, તુમ પાસે અવતાર.

દૈવ ન દીધી પાંખડીજી, કેમ કરી આવું રે હજૂર,
મુજરો માહારો માનજોજી, પ્રહ ઉગમતે સૂર.

એક રૂપક allegory રૂપે મનની શુદ્ધિ અર્થે કવિએ સુન્દર કવિતા કરી છે અને તે અતિ રસથી જૈનોમાં ગવાય છેઃ—

ધોબીડા તું ધોજે મનનું ધોતીયું રે, રખે રાખતો મેલ લગાર રે,
એણે રે મેલે જગ મેલો કર્યો રે, વિણુ ધોયું ન રાખે લગારરે. ધો૦

જિનશાસન સરોવર સોહામણું રે, સમકિત તણી રૂડી પાલી રે,
દાનાદિક ચાર બારણાં રે, માંહી નવ તત્ત્વ કમલ વિશાળ રે. ધો૦
તિહાં ઝીલે મુનિવર હંસલા રે, પીયે છે તપ જપ નીર રે,
શમ દમ આદે જે શીલ રે, તિહાં પખાલે આતમ ચીર રે. ધો૦
તપવજે તપ તડકે કરીરે, જાળવજે નવ બ્રહ્મ વાડરે,
છાંટા ઉડાડે પાપ અઢારના રે, એમ ઉજળું હોશે તતકાલ રે. ધો૦
આલોયણ સાબુડો સધો કરે રે, રખે આવે માયા શેવાળ રે,
નિશ્ચે પવિત્રપણું રાખજે રે, પછે આપણા નિયમ સંભાળ રે. ધો૦
રખે મૂકતો મન મોકળું રે, પડ મેલીને સંકેલ રે,
સમયસુંદરની શીખડી રે, સુખડી અમૃત વેલ રે. ધો૦

પ્રથમ તીર્થંકર ઋષભદેવના પુત્રો—ભરત ચક્રવર્ત્તિ અને તેના ભાઈ બાહુબલી બંને રાજ્ય માટે લડયા, પછી બાહુબલીએ પિતા પાસે દીક્ષા લઇ વનમાં ઉભા રહી કાયોત્સર્ગ કરી ધ્યાનસ્થ રહ્યા થકાં પણ મનમાંથી અહંકાર ઉતરતો નથી તેથી ઋષભદેવે તેની મોટી બહેનો સાધ્વી બ્રાહ્મી અને સુંદરીને મોકલી. પોતાના લઘુ બંધુ ગર્વ-માન-અહંકારના ગજ પર આરૂઢ બની આત્માનું હિત બગાડે છે એ બતાવવા તે બહેનો કહે છે કેઃ

* કવિ પદ્મવિજયે આ સીમંધર સ્વામી પાસે ચંદ્રદૂતની કલ્પના પોતાના એક ખંડ કાવ્યમાં મૂકી છે (સુણો ચંદાજી ! સીમંધર પરમાતમ પાસે જા જો.)

વીરા મારા ગજ થકી ઉતરો, ગજ ચઢે કેવળ ન હોય રે—
વીરા મારા ગજ થકી ઉતરો.
ઋષભદેવ તિહાં મોકલે, બાહુબળજીની પાસે રે,
બંધવ ગજ થકી ઉતરો, બ્રાહ્મ સુંદરી એમ ભાષે રે— વીરા૦
લોચ કરીને ચારિત્ર લિયો, વળી આવ્યું અભિમાન રે,
લઘુ બંધવ ! વાંદુ નહીં, કાઉસ્સગ્ગા રહ્યા શુભ ધ્યાન રે— વીરા૦
વરસ દિવસ કાઉસગ્ગ રહ્યા, શીત તાપથી સુકાણા રે,
પંખીડે માળા ઘાલીઆ, વેલડીએ વીંટાણા રે— વીરા૦
સાધ્વીનાં વચન સુણી કરી, ચમકયો ચિત્ત મોઝાર રે,
હય ગય રથ સહુ પરિહર્યા, વળી આવ્યો અહંકાર રે— વીરા૦
વૈરાગ્યે મન વાળીયું, મૂકયું નિજ અભિમાનરે,
પગ રે ઉપાડયો વાંદવા, ઊપન્યું તે કેવળ જ્ઞાન રે— વીરા૦
પોહોતા તે કેવળી પરષદા, બાહુબળ મુનિરાય રે,
અજરામર પદવી લઈ, સમયસુંદર વંદે પાય રે—
વીરા મારા ગજ થકી ઉતરો.

નિંદા પર 'સ્વાધ્યાય' લખી છે તે કેવી ઉપદેશકારક છે તે આખી વાંચ્યા પછી સમજાશે. નિંદા કરવી તો આત્મનિંદા કરવી કે જેથી 'છુટકબારો'—સંસારથી મુક્તિ થાય.

નિંદા મ કરજો કોઇની પારકી રે, નિંદાનાં બોલ્યાં મહા પાપરે,
વૈર વિરોધ વધે ઘણો રે, નિંદા કરતાં ન ગણે માય બાપ રે- નિંદા૦
દૂર બળંતી કાં દેખો તુમ્હે રે, પગમાં બળતી દેખો સહુ કોય રે,
પરના મલમાં ધોયાં લુગડાં રે, કહો કેમ ઊજલાં હોય રે- નિંદા૦
આપ સંભાલો સહુ કો આપણો રે, નિંદાની મુકો પડી ટેવ રે,
થોડે ઘણે અવગુણે સહુ ભર્યા રે, કેહનાં નલીઆં ચુએ કેહનાં નેવરે- નિંદા૦
નિંદા કરે તે થાયે નારકી રે, તપ જપ કીધું સહુ જાય રે,
નિંદા કરો તો કરજો આપણી રે, જેમ છુટકબારો થાય રે- નિંદા૦
ગુણ ગ્રહજો સહુ કો તણો રે, જેહમાં દેખો એક વિચાર રે,
કૃષ્ણ પરે સુખ પામશો રે, સમયસુંદર સુખકાર રે- નિંદા૦

શાલિભદ્રની સ્વાધ્યાય ૩૬ કડીની રચી છે; શ્રી મહાવીર સમયમાં રાજગૃહે શાલિભદ્ર મહા સમૃદ્ધિવાન્ શ્રેષ્ઠી હતો—તેને બત્રીશ સ્ત્રીઓ હતી. તેની બહેન ધન્ય (ધના) નામના શ્રેષ્ઠીની સાથે તેજ શહેરમાં પરણાવી હતી કે જેને તે મળીને આઠ પત્નિઓ

भक्ति गुण लवलेश भाख्यो, सुविधि जिन सुखकार, समयसुंदर कहत हमकुं, स्वामी तुमारो आधार-प्रभु०

प्रभु सेवानो उल्लास-राग मलार.

क्युं न भये हम मोर, विमलगिरि क्युं न भये हम मोर.
ऋषभजी देखत आनंद उपजत, जेसे चंद चकोर— विमल० क्युं०

क्युं न भये हम शीतल पानी, सिंचित तरुअर छोड,
अहनिश जिनजीको अंग पखालत, तोरत कर्म कठोर— विमल०

क्युं न भये हम बावना चंदन, उर केशर कोरी छोर;
क्युं न भये हम मोगर मालती, रहेत जिनजीके उर— विमल०

क्युं न भये हम मृदंग झलरीयां, करत मधुर ध्वनी घोर,
जिनजीके आगे नृत्य सोहावत, पावत शिवपुर ठोर— विलास०

जगमंडल साचो ए जिनजी, और देखा न रायत मोर,
समयसुंदर कहे ए प्रभु सेवो, जनम जरा नही ओर. विमल०

मनने उपदेश

मेरा जीव आरति काहा धरे,
जेसा वे खातमे लखित विधाता, तिनमें घट न बढे— मेरा० १

चक्रवर्त्ति शिर छत्र धरावत, के क न मंगल करे,
एक सुखीया एक दुखी दीसे, ए सब करम करे— मेरा० २

आरति अब छोर दे जीउडा, रोते न राज चडे,
समयसुंदर कहे जो सुख वांछे, कर धरम चित्त अरे— मेरा० ३

समयना पलटा पर वैराग्य सूचक पद-राग आशावरी.

किसिकुं सब दिन सरखे न होय. प्रह उगत अस्तंगत दिनकर, दिनमें अवस्था दोय—किसिकुं.
हरि बलभद्र पांडव नळ राजा, रहे षट्खंड सिद्धि खोय; चंडाळ के घर पाणी आण्युं, राजा हरिचंद जोय.
गर्व म कर तुं मूढ गमारा, चडत पडत सम कोय; समय सुंदर कहे इतर पैरत सुख, साचो जिनधर्म सोय.

राग षट.

स्वारथकी सब हे रे सगाइ कुण माता कुण बेनड भाई—स्वारथकी० ०
स्वारथ भोजन भुक्त सगाइ, स्वारथ बिन कोइ पाणी न पाइ—
स्वारथ माबाप शेठ बडाइ, स्वारथ बिन नहु होत सहाइ—
स्वारथ नारी दासी कहाइ, स्वारथ बिन लाठी ले धाइ—
स्वारथ चेला गुरु गुरुभाइ, स्वारथ बिन नित होत लराइ—
समय सुंदर कहे सुणोरे लोकाइ, स्वारथ हे भलि परम सगाइ—

(पाठांतर) स्वारथ हे भला धर्म सखाइ—

વેરણ નિદ્રા—રાગ ૫૨.

સોઇ સોઇ સારી રેન ગુમાઇ, બૈરન નિદ્રા કહાંસેં રે આઇ—સોઇ૦
નિદ્રા કહે મેં તો બાલી રે ભોલી, બડે બડે મુનિજનકું નાખું રે ઢોલી—
નિદ્રા કહે મેં તો જમકી દાસી, એક હાથે મૂકી બીજે હાથેં ફાંસી—
સમયસુંદર કહે સુનો ભાઇ બનીયા, આપ મૂએ સારી ડુબગઇ દુનીયાં—

[આમાં પોતાના શ્રોતાઓ 'વાણીઆ' ને ઉદ્દેશેલ છે ને કબીરનું ચરણઃ 'કહેત કબીરા સુનો મેરે ભૈયા, આપ મુએ પિછે ડૂબ ગઇ દુનિયાં' એનું અનુકરણ કર્યું જણાય છે.]

સમયસુંદરજી એક વખત હાલના અજમેર પાસેના કિસનગઢ શહેરમાં પધાર્યા હતા, ત્યાં શ્રાવકોને આપસ આપસમાં ક્લેશ અને એક બીજાની નિંદા કરતા જોઈ તેઓશ્રીએ નીચે પ્રમાણે હૃદયની ઉર્મિઓ પ્રકટ કરી છે તે આત્માર્થી જનોએ મનન કરવા જેવી છે.

કયારે મુવશે શ્રાવક એહવા, સુણસ્યે આવી વખાણોજી,
ધર્મગોષ્ઠી ચર્ચા કરીશું અમે, વીતરાગ વચન પ્રમાણોજી. કયારે૦

ધુરથી સમકિત જે સુધો ધરે, માને નહિ મિથ્યાતોજી,
સ્વામીશું ધરણે બેસે નહિ, નહિ રાગદ્વેષની વાતોજી. કયારે૦

[વખાણ—વ્યાખ્યાન, ધુરથી—મૂળથી, સમકિત—સમ્યગ્દર્શન—શ્રદ્ધા; સુધો—શુદ્ધ, મિથ્યાત્વ—અશ્રદ્ધા—મિથ્યા શ્રદ્ધા; સ્વામી—સહધર્મી—સ્વધર્મી; ધરણો—ગ્રહણ—આડું.]

છેલ્લે સ્થૂલભદ્ર અને કોશાનો પ્રસંગ લઇ એક ગીત કવિએ રચ્યું છે તે અપ્રકટ હોવાથી અત્ર આપું છું:—

રાગ સારંગ.

પ્રીતડિયા ન કીજઇ હો નારિ! પરદેસીયા રે, ક્ષણે ક્ષણે ક્ષણે દાઝે દેહ,
વીછડિયા વહાલેસર મલવો દોહિલોજી, સાલે સાલે અધિક સનેહ—પ્રીતડિયા૦

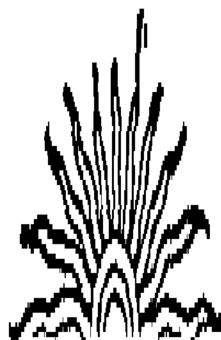
કાલ આવ્યા નેં આજ ઉઠિ ચાલસોરે, ભમર ભમતા જોઈ,
સાજણિઆ વળાવીને પાછા વળતાજી, ધરતિ ભાર ન હોઇ—પ્રીતડિયા૦

મનના મનોરથ સવિ મનમા રહ્યાજી, કહીએ કેહનિ સાથિ.
કાગળીઓ લખતા ભીનો આસુએજી, ચડિયો હો દુર્જન હાથ,—પ્રીતડિયા૦

થૂલભદ્ર કોસા બુઝવીજી, પાલ્યો હો પૂરવ પ્રેમ,
સીલ સુરંગિ પેહરો ચુનડિજી, સમય કહે એમ—પ્રીતડિયા૦

[સીલસુરંગી ચુનડી ઉપર પછીના કેટલાક કવિઓએ નવાં કાવ્ય કર્યા છે.]

આ કવિની કૃતિઓમાં, કવિ રજપુતાના—મારવાડ મેવાડમાં બહુ રહેલા તેથી તે ભાષાનાં છાંટણાં જોવામાં આવે છે એટલું જ નહિ, પણ ઉર્દુ—ફારસી શબ્દો પણ ઘણા વપરાયા જણાય છે કારણ કે કવિને દિલ્હી અને મુગલ દરબારમાં—શહેનશાહ અને તેના રાજદ્વારીઓના પ્રસંગમાં બહુ આવવું પડયું હતું તેથી અને તેમ જ ગૂજરાતમાં પણ મુસલમાની રાજ્યનો



મુદ્રણસ્થાન: આદિત્યમુદ્રણાલય, રાયખડ રોડ,—અમદાવાદ.

મુદ્રક: રામચન્દ્ર વિશ્વનાથ પાઠક.

॥ अर्हम् ॥

॥ नमोऽस्तु श्रमणाय भगवते महावीराय ॥

जैन साहित्य संशोधक

' पुरिसा ! सच्चमेव समभिजाणाहि । सच्चस्साणाए उवट्ठिए मेहावी मारं तरइ । '

' जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ; जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ ! '

' दिट्ठं, सुयं, मयं, विण्णायं जं एत्थ परिकहिज्जइ । '

—निर्ग्रन्थप्रवचन-आचारांगसूत्र ।

पुरातत्त्व संशोधननो पूर्व इतिहास

(સંવત્ ૧૯૭૭ ની શ્રાવણી પૂર્ણિમાના દિવસે, ગૂજરાત મહાવિદ્યાલય, અમદાવાદમાં અપાએલું વ્યાખ્યાન.)

પુરાતત્ત્વ એ એક સંસ્કૃત શબ્દ છે. સામાન્ય રીતે ઈંગ્રેજીમાં જેને " એન્ટીક્વીટીઝ " (Antiquities) કહે છે તે અર્થમાં આ શબ્દ યોજવામાં આવ્યો છે. પુરાતત્ત્વ એટલે પુરાતન-જૂનું પુરાણું; અને સંશોધન એટલે શોધખોળ કરવી. જૂની વસ્તુઓની શોધખોળ કરવી તે પુરાતત્ત્વ સંશોધન કહેવાય. હિંદુસ્તાનની જૂની પુરાણી વસ્તુઓની શોધખોળ કરવાની શરૂઆત ક્યારથી થઇ અને કઇ કઈ સંસ્થાઓએ તથા કઈ કઈ વ્યક્તિઓએ આ કાર્યમાં વિશેષ ભાગ લીધો તેનું કાંઇક દિગ્દર્શન કરાવવાનો આજના આ મારા વ્યાખ્યાનનો મુખ્ય ઉદ્દેશ છે.

મનુષ્ય એક વિશિષ્ટ બુદ્ધિશાલી પ્રાણી છે. તેથી દરેક વસ્તુના સ્વરૂપને જાણવાનો અથવા જાણવાની જીજ્ઞાસા હોવાનો તેનો મુખ્ય સ્વભાવ છે. આત્માનું અમરત્વ માનનારા દરેક આસ્તિક મનુષ્યના મતે પ્રત્યેક પ્રાણીમાં તેના પૂર્વસંચિત સંસ્કારો પ્રમાણે ન્યૂનાધિક પ્રમાણમાં જ્ઞાનનો વિકાસ થયેલો હોય છે. મનુષ્ય પ્રાણી જે સર્વ પ્રાણીઓમાં શ્રેષ્ઠ મનાય છે તેનું કારણ એ છે કે બીજી જીવ-જાતિઓ કરતાં મનુષ્ય જાતિમાં જ્ઞાનનો

વિકાસ સર્વાધિક થયેલો છે. જ્ઞાનના વિકાસ અથવા પ્રસારનું મુખ્ય સાધન વાણી એટલે ભાષા છે; અને એ વાણીનું વ્યક્ત સ્વરૂપ સંપૂર્ણ રીતે મનુષ્યજાતિમાં જ ખીલેલું છે. તેથી બીજા બધા દેહધારી જીવાત્માઓ કરતાં મનુષ્યાત્મામાં જ્ઞાનનો વિશેષ વિકાસ થાય તે સ્વાભાવિક છે. મનુષ્ય જાતિમાં પણ વ્યક્તિગત પૂર્વસંચિતાનુસાર જ્ઞાનના વિકાસનું અપ્રમિત તારતમ્ય રહેલું છે. સંસારમાં એવા પણ મનુષ્યો દૃષ્ટિગોચર થાય છે કે જેમનામાં જ્ઞાનશક્તિનો લગભગ છેક અભાવ જ હોય છે અને જેઓ મનુષ્યરૂપમાં પણ સાક્ષાત્ અબુદ્ધ પશુ જેવા હોય છે. બીજી બાજુએ એવા પણ મનુષ્યો ઉત્પન્ન થાય છે કે જેમનામાં જ્ઞાનશક્તિ અપ્રમેયરૂપે ખીલેલી હોઈ જેઓ પૂર્ણ પ્રબુદ્ધ ગણાય છે. પ્રાચીન ભારતવાસીઓના મોટા ભાગનો તો એવો પણ પૂર્ણ વિશ્વાસ હતો, કે એ જ્ઞાનશક્તિ કોઈ કોઇ વ્યક્તિમાં એટલે સુધી સંપૂર્ણ ખીલેલી હોય છે અથવા ખીલી શકે છે કે જેથી તે જગત્‌ના સમસ્ત પદાર્થોનું સંપૂર્ણ જ્ઞાન મેળવી શકે છે; વિશ્વની દૃશ્ય કે અદૃશ્ય એવી એક પણ વસ્તુ કે બાબત તેનાથી અજ્ઞાત હોતી નથી. આવી વ્યક્તિને આર્યો "સર્વજ્ઞ"ના નામે ઓળખે છે. આર્યોની આ મોટા ભાગની શ્રદ્ધા પ્રમાણે આવી કોઈ યથાર્થ સર્વજ્ઞ વ્યક્તિનું અસ્તિત્વ હોઈ શકે કે નહિ એ એક પ્રાચીનકાળથી જ મોટો વિવાદગ્રસ્ત વિષય થઈ પડયો છે; અને સર્વજ્ઞના અસ્તિત્વ–નાસ્તિત્વના વિષયમાં આજ સુધીમાં અસંખ્ય વિદ્વાનોએ અનંત શંકા–સમાધાનો કર્યાં છે. પરંતુ મારે કહેવું જોઇએ કે નરી આંખે જોઇ શકાય એવા સર્વજ્ઞનું અસ્તિત્વ સાબીત કરનારૂં તો કોઈ પણ પ્રત્યક્ષ પ્રમાણ આજ સુધીમાં ચિકિત્સક સંસાર આગળ રજુ કરવામાં આવ્યું નથી. અસ્તુ. એ "સર્વજ્ઞ" ના વિષયમાં ગમે તેમ હો, પણ એટલી બાબત તો ચોક્કસ છે કે કોઇ કોઇ મનુષ્ય વ્યક્તિમાં જ્ઞાનશક્તિનો એટલો બધો વિકાસ અને પ્રકર્ષ થયેલો પ્રત્યક્ષ જોવાયો છે અને જોવાય છે કે જેનું માપ કાઢવું બીજાઓના માટે અશક્ય છે. શબ્દશાસ્ત્રની બીકને લીધે આપણે એવી પ્રબુદ્ધ વ્યક્તિને જો સર્વજ્ઞ ન કહી શકીએ તો પણ બહુજ્ઞ–અનલ્પજ્ઞ તો અવશ્ય કહી શકીએ છીએ. એવી એક બહુજ્ઞ વ્યક્તિની જ્ઞાનશક્તિની તુલનામાં બીજા સાધારણ એવા લાખો કરોડો મનુષ્યોની એકત્રિત જ્ઞાનશક્તિ પણ પૂરી થઈ રહે તેમ નથી.

ઇતિહાસ–અતીત કાલથી સંસારમાં આવી અસંખ્ય અનલ્પજ્ઞ વ્યક્તિઓ ઉત્પન્ન થતી આવી છે, અને જગત્‌ને તેઓ પોતાની એ અગાધ જ્ઞાનશક્તિનો અમૂલ્ય વારસો સોંપતી રહી છે. છતાં મનુષ્ય જાતિએ જગત્‌ના વિષયમાં હજી બહુ જ અલ્પ જાણ્યું છે. જગત્ અદ્યાપિ એવું ને એવું જ અગમ્ય અને અજ્ઞેય છે. જગત્‌ની બીજી અનંત વસ્તુઓને તો બાજુએ મૂકીએ પણ મનુષ્ય જાતિએ પોતાના વિષયમાં જ હજુ કેટલું જાણ્યું છે? જેવી રીતે માનવી સંસ્કૃતના પ્રથમ નિદર્શક અને સંસારના સાહિત્યના આદિમ ગ્રંથ ઋગ્વેદમાંના ઋષિઓ મનુષ્ય જાતિના ઇતિહાસને અનુલક્ષીને પૂછતા હતા કે—

को ददर्श प्रथमं जायमानम्?

'સૌથી પ્રથમ ઉત્પન્ન થનારને કોણે જોયો છે?' તેવી જ રીતે આજે વીસમી

શતાબ્દીના તત્ત્વજ્ઞાનીઓ પણ હજી એ જ પ્રશ્ન પૂછી રહ્યા છે. જેવી રીતે જગતના પ્રાદુર્ભાવના વિષયમાં સત્ યુગીન નાસદીય સૂક્તનો રચયિતા મહર્ષિ જાણવા ઈચ્છતો હતો કે

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्
कुत आ जाताः कुत इयं विसृष्टिः ।

'આ જગત્‌નો પસાર ક્યાંથી આવ્યો છે–અને ક્યાંથી નીકળ્યો છે, એ કોઈ જાણે છે ? અને કોઈ બતાવે છે ?' તેવી જ રીતે આજના આ કલિયુગનો તત્ત્વજીજ્ઞાસુ પણ હજી તે જ પ્રશ્નનો ઉત્તર જાણવા તલપી રહે છે. જો કે આવી રીતે જગત્–તત્ત્વ બહુ ગૂઢ અને અગમ્ય છે; ગૂજરાતી ભક્ત કવિ અખો કહે છે તેમ એ ખરેખર "અંધારો કુઓ" છે અને એનો ભેદ પાઈ કોઈ મુઓ નથી. છતાં માનવી જીજ્ઞાસા અને જ્ઞાનશક્તિએ એ "અંધારા કુઆ" નાચે કેટલાક ખડકો ખોળી કાઢવાનો ભગીરથ પ્રયત્ન કર્યો છે. એ કુઆના ઉંડા પાણી ઉપર ફરી વળેલી નીળી શેવાળને જ્યાં ત્યાંથી ખસેડી એના જળકણોનો આસ્વાદ મેળવવા મોટી આપત્તિઓ ઉઠાવી છે. ગૂઢતર અને ગૂઢતમ જણાતા એ જગતનાંયે કંઇ કંઈ રૂપોને મનુષ્યે ઓળખ્યાં છે.

સૃષ્ટિના સ્વાભાવિક નિયમ પ્રમાણે ચોમાસાની મોસમમાં આકાશ ઉપર ચડી આવતાં વાદળાં અને તેમાં થતી ગર્જના તથા વિજળીઓને જોઇને જેમ આપણા વેદકાલીન પૂર્વજો મહા ભયભીત થતા હતા અને કુદરતના એ ઉપયોગી કાર્યને પણ મોટી આફત રૂપે માનતા હતા તેમ આજે આપણે માનતા નથી. પોતાની અસાવધાનતાને લીધે જેમતેમ પ્રજ્વાળેલા અગ્નિમાં ભસ્મ થઇ જતી પોતાની પર્ણકુટિઓને જોઇને, કોઈ રાક્ષસ કે દેવ પોતાના ઉપર કુપિત થઇ આ અગ્નિના રૂપે આવેલો છે એમ સમજી તેની આગળ દૂરથી ઉભા ઉભા હાથ જોડી જેમ તેઓ તેની પ્રાર્થના કરતા તેમ આજે આપણે કરતા નથી. વાયુના વેગથી ઉડી જતાં ઝુંપડાં અને ઘાસના ઢગલાઓને જોઇને જેમ તેઓ તેને કોઈ મોટો અદૃષ્ટ ચોર સમજી ઇંદ્ર પાસે તેને શિક્ષા કરાવવા માટે ઇન્દ્રની વિવિધ પ્રાર્થનાઓ કરતા તેમ આજે આપણે કરતા નથી. આપણા પૂર્વજો અને આપણામાં થયેલા આ ફેરફારનું કારણ શું છે ? વેદકાલીન આર્યો પછી તેમની સંતતિએ કરેલી કુદરતનાં એ ગૂઢતત્ત્વોની કેટલીક શોધખોળો તે જ તેનું કારણ છે. વિશ્વના રહસ્યને સમજવા માટે જેમ જેમ પાછળના મનુષ્યો વધારે બુદ્ધિપૂર્વક વિચાર કરતા ગયા તેમ તેમ તેમને સૃષ્ટિના એ સાધારણ નિયમો સમજાતા ગયા. તેઓએ મેઘના સ્વરૂપને જાણ્યું, અગ્નિના સ્વભાવને ઓળખ્યો, વાયુની પ્રકૃતિને પહેચાણી, અને તેથી, પછી નિર્ભય અને નિશ્ચિંત થવાના ઉપાયો યોજ્યા. તેનાથી પણ આગળ વધી આધુનિક યુગના મનુષ્ય પ્રાણીએ કુદરતની એ સ્વચ્છન્દ શક્તિઓના આંતર મર્મને સમજી, તેમને કાબુમાં આણી, તેમની પાસેથી કેવાં કેવાં કામો લેવા માંડયાં છે તે આપણે પ્રત્યક્ષ જોઈ અને અનુભવી રહ્યા છીએ.

મનુષ્ય પોતાના ઇન્દ્રિય બલથી માત્ર પોતાના સમય દરમ્યાન સત્તા ધરાવતી અને

પોતાના સંસર્ગ કે અનુભવમાં આવતી બાબતોનું જ જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી શકે છે. સંસર્ગાતીત કે અનુભવાતીત બાબતોનું જ્ઞાન મનુષ્યોને પોતાની ઇન્દ્રિયો દ્વારા થઈ શકતું નથી. તેમ છતાં આપણે જેટલા વિશ્વાસથી આજના બનાવોની ચર્ચા કરીએ છીએ, તેટલા જ વિશ્વાસથી હજારો લાખો વર્ષો પહેલાં બની ગયેલા બનાવોની પણ ચર્ચા કરીએ છીએ. શિવાજી કે પ્રતાપ, અકબર કે અશોકને આપણા યુગના કોઇ પણ મનુષ્યે પ્રત્યક્ષ જોયા નથી, છતાં જેમ આપણને આપણા પોતાના અસ્તિત્વની ખાતરી છે તેટલી જ તેમના અસ્તિત્વની પણ ખાતરી છે. જેમ આજે આપણે આપણી વચ્ચે વિચરતા સંસારના એક મહાત્માના આદર્શમાં પૂર્ણ શ્રદ્ધા ધરાવીએ છીએ તેમ જ આજથી અઢીહજાર વર્ષો પહેલાં થઈ ગયેલા તીર્થંકર મહાવીર કે તથાગત બુદ્ધના આદર્શમાં પણ તેટલી જ પૂર્ણ શ્રદ્ધા ધરાવીએ છીએ. જેવી રીતે આપણે ભગવદ્ગીતાના અંતિમ રહસ્યકાર લોકમાન્ય તિલકની પ્રથમ શ્રાદ્ધ તેથિ ગયા પરમ દિવસે ઉજવી છે, તેવી જ રીતે પાંચ હજાર વર્ષ પહેલાં જન્મ લેનાર અને ભગવદ્ગીતાના મૂળ ઉપદેષ્ટા ભગવાન્ શ્રી કૃષ્ણની જન્મતિથિ આવતા પરમ દિવસે ઉજવવાના છીએ. આ અનુભવાતીત અને સમયાતીત બાબતોનું જ્ઞાન કરાવનાર કોણ છે? કયા સાધનદ્વારા આપણે એ ભૂતકાલની વાતોને જાણીએ છીએ? કહેવાની આવશ્યકતા નથી કે એ બાબતનું જ્ઞાન કરાવનાર ઇતિહાસ શાસ્ત્ર છે. ઐતિહાસિક સાહિત્ય દ્વારા જ આપણે ભૂતકાલની વાતોને જાણી શકીએ છીએ. ઇતિહાસ જેટલો યથાર્થ અને વિસ્તૃત હોય તેટલું જ આપણું ભૂતકાલીન જ્ઞાન પણ યથાર્થ અને વિસ્તૃત હોઇ શકે, એ સ્વતઃ સિદ્ધ છે. આપણા કમનસીબે આપણા પૂર્વજોએ રચેલો આપણા દેશનો યથાર્થ કે વિસ્તૃત ઇતિહાસ ઉપલબ્ધ નથી. જગતની બીજી પ્રાચીન પ્રજાઓને તેમના દેશોના વિષયમાં જેટલો પ્રાચીન તથા વિસ્તૃત ઇતિહાસ મળી આવે છે તેટલો આપણા આ વિશ્વવૃદ્ધ આર્યાવર્તનો ઇતિહાસ મળી આવતો નથી. પ્રાચીન અને વિસ્તૃત ઇતિહાસ તો બાજુએ રહ્યો પરંતુ આપણા માટે તો આપણી પહેલાંની ત્રીજી પેઢીનો ય ઇતિહાસ બહુ દુર્લભ્ય છે. વર્તમાન શતાબ્દીનો પણ પૂરો વૃત્તાન્ત આપણે જાણતા નથી. જે રાષ્ટ્રીય શક અને સંવતનો આપણા પૂર્વજો અનેક સૈકાઓથી ઉપયોગ કરતા આવ્યા છે અને જેના આધાર ઉપર આપણી આખી મધ્યકાલિન કાલગણના અવલંબિત છે, તેના પ્રવર્તક કોણ છે એ હજી પણ અજ્ઞાત કે અનિશ્ચિત છે. આવી સ્થિતિમાં પુરાતત્ત્વ-સંશોધન એ જ આપણા ઇતિહાસના નિર્માણનો પાયો છે. આપણો ઈતિહાસ જૂનીપુરાણી વસ્તુઓની શોધખોળ કરીને તેના ઉપરથી નીકળતાં પરિણામો ઉપર રચાએલો છે અને રચાવાનો છે. એમ તો સાધારણ રીતે દુનીઆના દરેક પ્રાચીન પ્રદેશની પુરાતન પરિસ્થિતિ કે જેનું દર્શન ઈતિહાસરૂપી દૂરદર્શક યંત્રથી પણ થઇ શકતું નથી, તેને જાણવા માટે જૂનીપુરાણી વસ્તુઓ જ આધારભૂત હોય છે; પરંતુ ભારતવર્ષને માટે તો આપણા જન્મદિવસથી જ લઈને ઠેઠ યુગની આદિ સુધીની પરિસ્થિતિ જાણવા માટે બધો આધાર જૂની પુરાણી વસ્તુઓ ઉપર જ રાખવો પડે છે. કારણ કે શાસ્ત્રીય પદ્ધતિથી જેને આપણે

ઈતિહાસ કહીએ તેવો ઈતિહાસ તો ભારતવાસીઓએ નાનો મોટો એક પણ લખ્યો નથી, અથવા તો છેવટે તે મળતો નથી. ઈતિહાસ નિર્માણના કામમાં આવે તેવી જૂની-પુરાણી વસ્તુઓમાં જૂના ગ્રન્થો, શિલાલેખો, તામ્રપત્રો, શિક્કાઓ તથા ધાતુપાત્રો, મંદિરો, મસ્જીદો, જલાશયો, કીર્તિસ્તંભો અને તેવાં બીજાં મકાનો અથવા ખંડેરો વિગેરે ગણાય છે. આપણા પૂર્વજોએ ઈતિહાસના સ્વતંત્ર ગ્રન્થો તો નિર્માણ નથી કર્યા પરંતુ ઇતિહાસનાં સાધનો તો ઘણાં જ નિર્માણ કર્યાં છે એમાં શંકા નથી. પણ આપણે તો એ પણ જાણતા ન હતા—કે પછી જાણવાની દરકાર રાખતા ન હતા કે આ સાધનોની શી રીતે છાણવીણ કરી તેમાંથી આપણો ઇતિહાસ ઉપજાવી કાઢીએ. એ પાઠ આપણને પશ્ચિમવાસીઓએ શીખવ્યો છે. કેવળ પાઠ જ શીખવ્યો છે એમ નથી પરંતુ અનેક પ્રકારનાં કષ્ટો વેઠી અને પરિશ્રમો લઈ તેમણે આપણા માટે ઈતિહાસના અનેક અધ્યાયો પણ તૈયાર કર્યા છે. અને એ માટે આપણે હમેશાં તેમના કૃતજ્ઞ જ રહેવું જોઈએ. આટલું આનુષંગિક કહી હવે હું મારા વ્યાખ્યાનના મુખ્ય-પ્રતિપાદ્ય વિષય ઉપર આવું છું.

જેમ મેં પ્રારંભમાં જણાવ્યું છે, તેમ મનુષ્ય એ વિશિષ્ટ બુદ્ધિશાલી, જ્ઞાનવાન્ પ્રાણી છે તેથી દરેક વસ્તુના સ્વરૂપને વિશેષપણે જાણવાની જીજ્ઞાસા તેનામાં સ્વાભાવિક જ રહેલી છે. તેમાં વળી જે મનુષ્યો સાધારણ મનુષ્યો કરતાં વધારે જ્ઞાનવાન્ હોય છે તેમનામાં એ જીજ્ઞાસા ઘણા ઉત્કટ પ્રમાણમાં હોય છે. એવા મનુષ્યોને જ્યારે કોઇ અપરિચિત પ્રદેશનો અથવા માનવ સમાજનો નવીન સમાગમ થાય છે ત્યારે તેમને તેમના ધર્મ, સમાજ, ઇતિહાસ આદિના વિષયમાં જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવાની તીવ્ર ઇચ્છા ઉત્પન્ન થાય છે. આ જ્ઞાન-પિપાસાથી પ્રેરિત થઈ તે મનુષ્યો તે તે બાબતની શોધખોળમાં પડે છે. એ અપરિચિત પ્રદેશની ભાષા શીખે છે. તેના જ્ઞાનભંડારને તપાસવાનો પ્રયત્ન કરે છે, અને તેમ કરી પોતાના દેશબંધુઓને પોતે મેળવેલા નવીન જ્ઞાનનો લાભ આપવા માટે પોતાની ભાષામાં તે નવા ભંડારને ઉતારવાનો ઉપક્રમ કરે છે. ભારત વર્ષમાં વ્યાપારદ્વારા પૈસા કમાઇ પેટપૂજા કરવા અર્થે આવેલા ઈંગ્રેજો આ જ પ્રમાણે આપણા ઈતિહાસની શોધખોળમાં ઉતર્યા હતા.

ઇ. સ. ૧૭૫૭ માં ઇસ્ટ ઇન્ડિઆ કંપનીએ, પ્લાસીના પ્રસિદ્ધ યુદ્ધ પછી ધીરે ધીરે બંગાલ ઉપર અધિકાર પ્રાપ્ત કરવાનો પ્રારંભ કરી દીધો હતો. ૧૭૬૫ માં તેણે બંગાલ, બીહાર અને ઉડીસાની દીવાની હસ્તગત કરી લીધી. ૧૭૭૨ માં બંગાલના નવાબ પાસેથી અધિકાર પડાવી લીધા; અને પછી તરત, એટલે ૧૭૭૪ માં નવાબને સમૂળગો પદચ્યુત કરી પોતાનો ગવર્નર-જનરલ નિયુક્ત કરી દીધો. અંગ્રેજોના માટે એ સ્વાભાવિક જ હતું કે તેઓ હવે આ દેશના ધર્મ, સમાજ આદિનું થોડું ઘણું જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરે. જે દેશની સાથે વ્યાપાર કરીને તેમણે કરોડો નહિ પણ અબજો રૂપીઆ મેળવ્યા હતા, અને હજારો નહિ પણ લાખો વર્ગ માઇલ જમીન તેઓ પચાવી પડયા હતા, તે જ દેશની અમૂલ્ય જ્ઞાનસંપત્તિ મેળવવાનો પણ પ્રશસ્ત લોભ કેટલાક વિદ્વાન્ અંગ્રેજોને થઇ

આવ્યો. જે કેટલાક વિદ્યાપ્રેમી અંગ્રેજો કંપની તરફથી ભારતનું શાસનકાર્ય ચલાવવા માટે નિયુક્ત થતા, ઘણું કરીને, તેઓ જ આ કાર્યમાં અગ્રેસર બનતા હતા. જો કે પાછળથી તો, ફ્રાંસ અને જર્મનીના વિદ્વાનોએ જ ભારતીય પુરાતત્ત્વમાં મહત્ત્વનાં કામો કર્યાં હતાં અને ભારતીય સાહિત્યની તેમણે જ વધારે સેવા કરી હતી, તો પણ આ કાર્યનો પ્રારંભ કરવાનો પહેલો યશ તો અંગ્રેજોને જ છે. સૌથી પહેલાં સર વીલીયમ જોન્સે આ કાર્યની મંગલમય શરૂઆત કરી હતી. આર્ય સાહિત્યના સંશોધન કાર્ય સાથે સર જોન્સનું નામ સદાને માટે જોડાયલું રહેશે. સર જોન્સ ભારતીયોના મત પ્રમાણે મ્લેચ્છ હતા; અને તેથી તેમને સંસ્કૃત શીખવવામાં ઘણી અડચણો નડી હતી. બ્રાહ્મણોના કટ્ટરપણાને લીધે તેમને પોતાનું અધ્યયન ચાલુ કરવામાં કેવી મુશ્કેલીઓ પડી હતી તેનું રમુજી વર્ણન તેમના જીવનવૃત્તાંતમાં આપેલું છે. આખરે તેઓ આ મુશ્કેલીઓમાંથી પાર થયા અને અપેક્ષિત જ્ઞાન મેળવ્યા બાદ તુરત શકુન્તલા નાટક અને મનુસ્મૃતિનો ઈંગ્રેજી અનુવાદ પ્રકટ કર્યો. તેમના આ અનુવાદો જોઈ ભારતીય સભ્યતાનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવા માટે યૂરોપના વિદ્વાનોમાં ઘણી જીજ્ઞાસા ઉત્પન્ન થઈ. જે પ્રજા આવી જાતનું ઉત્કૃષ્ટ સાહિત્ય નિર્માણ કરી શકે છે તે પ્રજાનો ભૂતકાળ કેટલો ભવ્ય હશે તે જાણવાની આકાંક્ષા ત્યાંના લોકોમાં ખૂબ જાગી. સને ૧૭૭૪ ના જાન્યુઆરીની ૧૫ મી તારીખે તત્કાલિન ગવર્નર જનરલ વૉરન હેઇસ્ટીંગની સહાયતાથી, એશિયાખંડના ઈતિહાસ, સાહિત્ય, સ્થાપત્ય, ધર્મ, સમાજ, વિજ્ઞાન આદિ બધા વિષયોની શોધખોળ કરવા માટે સર જાન્સે "એશિયાટિક સોસાયટી" નામની સંસ્થાની શુભ સ્થાપના કરી. એ સંસ્થાની સ્થાપના સાથે જ હિંદુસ્તાનના ઈતિહાસના અન્વેષણનો અમર આરંભ થયો એમ આપણે ઉપકાર સાથે સ્પષ્ટપણે કબુલ કરવું જોઈએ. તે પહેલાં આપણું ઐતિહાસિક જ્ઞાન કેટલું અલ્પ અને નિર્મૂલ હતું તે એક ભોજ-પ્રબંધ જેવા લોકપ્રિય નિબંધના વાંચનથી જ જણાઇ આવે છે. એ પ્રબંધમાં, કાલિદાસ, બાણ, માઘ આદિ ભોજથી અનેક શતાબ્દીઓ પહેલાં અને જુદા જુદા વખતે થઈ ગયેલા કવિઓને પણ ભોજના દરબારી કવિઓ તરીકે વર્ણવી બધાને એક જ દરબારમાં લાવી બેસાડયા છે; તેમ જ સિંધુરાજ કે જે વાક્પતિરાજના મૃત્યુ પછી તેના રાજ્યનો સ્વામી બન્યો હતો, તેને બદલે એ પ્રબંધ લેખકે વાક્પતિરાજને સિંધુરાજની ગાદીએ બેસાડી બાપને દીકરો બનાવી મૂકયો છે. જ્યારે ભોજ જેવા પ્રસિદ્ધ રાજાના ઈતિહાસ-લેખકને પણ તેના વંશ અને સમયના વિષયમાં આટલી બધી અજ્ઞાનતા હતી તો પછી સર્વ સાધારણની અજ્ઞાનતાના વિષયમાં તો કહેવું જ શું ? અશોક જેવા પ્રતાપી સમ્રાટ્ની તો લોકોને સામાન્ય કલ્પના પણ ન હતી. જો કે હિંદુસ્તાનના ઈતિહાસનાં ઘણાંક પુસ્તકો અને બીજાં સાધનો મુસલમાનોના જમાનામાં નષ્ટ થઇ ગયાં હતાં; તો પણ બૌદ્ધકાલીન અનેક સ્તૂપ, સ્તંભ, મંદિર, ગુફા, જલાશય આદિ સ્થાનો; ધાતુ અને પાષાણની દેવી-દેવતાઓની મૂર્તિઓ; ખડકો, શિલાઓ અને તામ્રપત્રો ઇત્યાદિ ઉપર કોતરેલા અસંખ્ય લેખો કે જે ઈતિહાસનાં ખરાં અને મુખ્ય શાધનો મનાય છે, હજીએ અસંખ્ય વિદ્યમાન હતાં; તેથી તેમના ઉપરથી જો

ઇતિહાસ તારવી કાઢવાનો પ્રયત્ન કરવામાં આવ્યો હોત તો આજની માફક તે સમયમાં પણ આપણા ઇતિહાસના ઘણાક અધ્યાયો રચી શકાયા હોત, પરંતુ તેમના તરફ કોઇની દૃષ્ટિ જ ગઈ ન હતી; અને પાછળથી તો જેમ જેમ દેશમાં અરાજકતા અને અજ્ઞાનતા વધતી ગઈ તેમ તેમ લોકો પ્રાચીન કાળની લિપિ અને તેની સાથે સ્મૃતિને પણ ભૂલતા ગયા અને એ રીતે સાધનોની હયાતી હોવા છતાં પણ તેનો કાંઇ ઉપયોગ થયો નહિ.

ઈ. સ. ૧૩૫૬ માં દિલ્હીના સુલતાન ફીરોજશા તુગલકે ટોવરા અને મેરઠથી અશોકના લેખવાળા બે મોટા સ્તંભો ઘણા ઉત્સાહ અને પરિશ્રમ સાથે દિલ્હીમાં અણાવ્યા હતા; (જેમાંનો એક ફીરોજશાહના કટરામાં અને બીજો 'કુશ્ક શિકાર' પાસે ઉભો કરેલો છે.) એ સ્તંભો ઉપર ખોદેલા લેખોમાં શું લખેલું છે તે જાણવા માટે એ બાદશાહે ઘણી મહેનત કરી અને ઘણા ઘણા પંડિતોને બોલાવી તે વાંચવા માટે કીધું, પણ કોઇનાથી તે વાંચી શકાયા નહિ, અને તેથી અંતે તે બાદશાહને બહુ જ નિરાશા થઈ હતી. સાંભળવા પ્રમાણે અકબર બાદશાહને પણ એ લેખોના મર્મ જાણવાની બહુ જીજ્ઞાસા હતી પરંતુ કોઇપણ મનુષ્ય તે પૂરી કરી શકયો ન હતો. પ્રાચીન લિપિઓને ઓળખવાનું ભૂલી જવાને લીધે જ્યારે કયાંએ કોઈ આવા જૂનાં શિલાલેખો અથવા તામ્રપત્રો મળી આવતાં ત્યારે લોકો તેમના વિષયમાં વિવિધ કલ્પનાઓ કરતા. કોઇ તેને સિદ્ધિદાયક યંત્ર કહેતા, કોઇ તેને દેવતાનો લખેલો મંત્ર માનતા, અને કોઇ તેને કયાંએ જમીનમાં દાટેલા ધનની નોંધ સમજતા. આવી અજ્ઞાનતાને લીધે લોકોને એવા શિલાલેખો કે તામ્રપત્રોની કાંઈ પણ કિમ્મત જણાતી ન હતી. ભાંગેલાં તૂટેલાં જૂના મંદિરો આદિના શિલાલેખોને તોડી ફોડી કયાંક તેમને પગથીઆંઓમાં ચણી દેવામાં આવતા અને કયાંક ભાંગ અને ચટણી વાટવાના કામમાં લેવાતા. અનેક જૂના તામ્રપત્રો તાંબાના ભાવે કંસારાને ત્યાં વેચવામાં આવતાં. કંસારાઓ તેમને ગાળી-ઉકાળી તેમાંથી નવાં વાસણો તૈયાર કરતા. લોકોની એ અજ્ઞાનતા હજી પણ ચાલુ છે. મેં મારા ભ્રમણ દરમ્યાન અનેક શિલાલેખોની આવી આવી દુર્દશાઓ થયેલી જોઇ છે. અનેક જૈનમંદિરોમાંના શિલાલેખો ઉપર ચોટાડેલો ચૂનો મેં મારા હાથે ઉખાડેલો છે. ચાર વર્ષ ઉપર મુંબઇમાં એક બ્રાહ્મણ, જે ખંભાતની પાસેના એક ગામડામાં રહેતો હતો તે ત્રણ ચાંર તામ્રપત્રો લઈને મારી પાસે આવ્યો હતો. તેની જમીન સંબંધે સરકારમાં કોઇ કેસ ચાલતો હતો, તેથી પોતાના ઘરમાં પડી રહેલા એ તાંબાપત્રમાં પોતાની જમીન માટે કંઇ લખેલું હશે એમ ધારી તે વંચાવવા મારી પાસે લાવ્યો હતો. તેમાંના એક પત્રાની વચ્ચોવચ્ચથી બે ઇંચ વ્યાસ જેટલો ગોળ ટુકડો કાપી લીધેલો હતો. તેથી એ લેખનો કેટલોક મહત્વનો ભાગ જતો રહ્યો હતો. આ સંબંધમાં મેં તેને પૂછ્યું ત્યારે તેણે જવાબ આપ્યો કે થોડાક મહિના ઉપર એક લોટાનું તળીયું બનાવવા માટે એમાંથી એટલો ટુકડો કાપી લેવામાં આવ્યો હતો ! આવા તો અનેક દાખલાઓ હજીએ બને છે. આવી જ દુર્દશા આપણા જુના ગ્રન્થોની થઇ છે. યુગોના યુગો સુધી સારસંભાળ લીધા વગર અંધારી કોટડીઓમાં પડી રહેલા હજારો હસ્તલેખો ઉંદરડાઓના ઉદરમાં ગરક થયા છે, અને છાપરામાંથી

પડતા પાણીના ભેજથી સડી–ગળી માટીમાં મળ્યા છે. અનેક ગુરૂઓના નાલાયક ચેલાઓના હાથે પણ આપણા સાહિત્યની ઓછી વિટંબણા નથી થઈ. એક દાખલો આપું. ઇંદોરમાં એક વિદ્વાન્ ગોરજી હતો તેણે કોઈના બે છોકરાઓને ચેલા બનાવવા માટે પાળ્યાપોષ્યા હતા. એ ગોરજી મરી ગયા પછી પાછળથી એ છોકરાઓ તેનો જે વિશાળ પુસ્તકભંડાર હતો તેમાંથી રોજ ફાવે તેમ હજાર બે હજાર પાનાંઓ ફાડી હલવાઈને ત્યાં પડીકાં બાંધવા માટે આપી આવતા અને બદલામાં પાશેર ગરમાગરમ જલેબી લઈ આવી સવારમાં નાસ્તો પાણી કરી મજા માણતા. મને જ્યારે એની ખબર પડી ત્યારે તે હલવાઈ પાસે જઇ બધાં પાનાં તપાસ્યાં તેમાંથી પાંચસો વર્ષ જેટલાં જૂનાં લખેલાં બે ત્રણ જૈનસૂત્રો મને અખંડ મળી આવ્યાં હતાં. પાટણના જૈનભંડારોમાં સિદ્ધરાજ, કુમારપાળ અને તેનાથી યે પહેલાંનાં લખેલાં તાડપત્રોનો તંબાખૂના પાનના ભૂકાની માફક થયેલા ભૂકો મેં મારી આ નરી આંખે જોયો છે. આવી રીતે આપણે આપણી અજ્ઞાનતાને લીધે આપણા ઈતિહાસનાં સાધનો નષ્ટ કર્યાં છે એટલું જ નહિ પણ પરસ્પરની મતાન્ધતા અને સાંપ્રદાયિક અસહિષ્ણુતાના વિકારને વશ થઈને પણ આપણે આપણા સાહિત્યને ઘણી રીતે ખંડિત અને દૂષિત કર્યું છેઃ શૈવોએ વૈષ્ણવોના સાહિત્યનું નિકંદન કર્યું છે, વૈષ્ણવોએ જૈનોના સ્થાપત્યને દૂષિત કર્યું છે; દિગંબરોએ શ્વેતામ્બરોના લેખોને ખંડિત કર્યા છે તથા લુંકાઓએ તપાઓની નોંધો બગાડી છે. એમ પરસ્પર એક બીજાનું એકબીજાએ ઘણું જ ખોયું છે. શોધખોળના વૃત્તાન્તોમાં આવાં અનેક ઉદાહરણો નોંધાયલાં મળી આવે છે. છેવટે મુસલમાન ભાઈઓએ હિન્દુઓનાં સ્વર્ગીય ભુવનોને તોડી ફોડી ખેદાન મેદાન કર્યાં છે, અને તેમનાંય પવિત્ર ધામોને આખરે કાળે જમીનદોસ્ત કર્યાં છે. આવી જાતની સંકટની પરંપરાઓમાંથી જે બચી રહેલા હતા તેમને સુરક્ષિત રાખવા માટે, જે અર્ધમૃત દશામાં હોય તેની પાસેથી કાંઇક છેવટનું જાણી લેવા માટે અને તેમ કરી ભારતનો ભૂતકાળ કે જે વિસ્મૃતિ અને અજ્ઞાનના પડ નીચે સજ્જડ દબાઈ રહ્યો હતો તેનો ઉદ્ધાર કરવા માટે ઉપર જણાવેલી એશિયાટિક સોસાયટીની સ્થાપના થઇ હતી. એ સોસાયટીની સ્થાપનાના દિવસથી હિન્દુસ્તાનના ઐતિહાસિક અજ્ઞાનાન્ધકારનો ધીરે ધીરે લોપ થવા લાગ્યો. અનેક અંગ્રેજો એ સંસ્થાના ઉદ્દેશને પૂર્ણ કરવા માટે જુદા જુદા વિષયોનું અધ્યયન કરવા લાગ્યા અને તે તે વિષયોના લેખો લખવા લાગ્યા. એ લેખોને પ્રગટ કરવા માટે ‘એશિઆટિક રિસર્ચીઝ’ નામની એક ગ્રંથમાળા ચાલુ કરવામાં આવી. સને ૧૭૮૮ માં એ માળાનો પ્રથમ ભાગ પ્રકટ થયો. ૧૭૯૭ સુધીમાં એના પાંચ ભાગો પ્રકાશિત થયા. ૧૭૯૮ માં તેનું એક નવીન સંસ્કરણ ઇંગ્લાંડમાં ચોરીથી જ છપાવી દેવામાં આવ્યું. ત્યાં એ ભાગોની એટલી બધી માગણી થઇ કે ૫–૬ વર્ષમાં જ તેની બે આવૃત્તિઓ પ્રકટ થઇ ગઈ, અને એમ. એ. લૅબૉમ નામના એક ફ્રેન્ચ વિદ્વાને, ‘રિસર્ચેસ્ એશિયાટિકસ્’ ના નામે તેનો ફ્રેન્ચ અનુવાદ પણ પ્રકટ કરી દીધો. સોસાઇટિની એ ગ્રન્થમાળામાં બીજા વિદ્વાનોની સાથે સર વીલીયમ જોન્સે પણ હિંદુસ્તાનના ઈતિહાસના વિષયમાં અનેક ઉપયોગી લેખો લખ્યા.

સૌથી પહેલાં તેમણે જ પોતાના એક લેખમાં એ વાત જાહેર કરી હતી કે મેગાસ્થનીસે વર્ણવેલો સાંડ્રોકોટસ્ અને ચંદ્રગુપ્ત મૌર્ય એ બન્ને એક જ વ્યક્તિ છે. પાટલિપુત્રનું જ અપભ્રષ્ટ રૂપ પાલીબોથ્રા છે અને તે આધુનિક પટના જ છે. કારણ કે પટનાની પાસે વહેતા શોણનદને હિરણ્યબાહુ કહેવામાં આવે છે અને મેગાસ્થનીસનું "એરાનોવાઓ" એ જ હિરણ્યબાહુનું અપભ્રષ્ટ નામ છે. આ રીતે ચન્દ્રગુપ્ત મૌર્યનો સમય સૌથી પહેલાં જોન્સ સાહેબે જ નિશ્ચિત કીધો હતો.

જે અંગ્રેજ સૌથી પહેલાં સંસ્કૃત ભાષા શીખ્યો હતો તેનું નામ ચાર્લ્સ વિલ્કીન્સ હતું. તેણે જ પ્રથમ દેવનાગરી અને બંગાળી ટાઈપો બનાવ્યા. બદાલ પાસેના સ્તંભ ઉપરનો લેખ સૌથી પ્રથમ તેણે જ ખોળી કાઢયો હતો. એ સિવાય બીજાં પણ કેટલાંક તામ્રપત્રો અને શિલાલેખો ઉપર એણે એશિયાટીક રીસર્ચીસના પ્રારંભના ભાગોમાં કેટલીક નોંધો લખી હતી. ભગવદ્ગીતાનું પહેલ વહેલું ઇંગ્રેજી ભાષાન્તર પણ એ જ અંગ્રેજે કર્યું હતું.

સને ૧૭૯૪ માં સર જોન્સનું મરણ થયું. તેમના પછી તેમના સ્થાન ઉપર હેનરી કોલબ્રુકની સ્થાપના થઇ. કોલબ્રુક અનેક વિષયોમાં પ્રવીણ હતા. તેમણે સંસ્કૃત સાહિત્યનું ઘણું પરિશીલન કર્યું. મૃત્યુના સમયે સર જોન્સ પ્રસિદ્ધ પંડિત જગન્નાથ દ્વારા સંપાદિત "હિન્દુ અને મુસલમાનોના કાયદાઓનો સાર" એ નામક સંસ્કૃત ગ્રન્થનો અનુવાદ કરતા હતા. એ અધુરા અનુવાદને પૂર્ણ કરવાનું કામ કોલબ્રુક સાહેબને સોંપવામાં આવ્યું. તેમણે કેટલાક સંસ્કૃત પંડિતોની સહાયતાથી સને ૧૭૯૭ માં એ કામ પૂરું કર્યું. આ પછી તેમણે 'હિન્દુઓના ધાર્મિક રીતરીવાજો' 'ભારતીય માપનું પરિમાણ' 'ભારતીય વર્ણવ્યવસ્થાની ઉત્પત્તિ' 'ભારતવાસીઓની જાતો' આદિ વિષયો ઉપર ગંભીર નિબંધો લખ્યા. એ પછી ૧૮૦૧ માં 'સંસ્કૃત અને પ્રાકૃત ભાષા' 'સંસ્કૃત અને પ્રાકૃત છન્દઃશાસ્ત્ર' વિગેરે લેખો લખ્યા. એ જ વર્ષમાં દિલ્હીના લોહસ્તંભ ઉપર કોતરેલી વિશળદેવની સંસ્કૃત પ્રશસ્તિનું અંગ્રેજી ભાષાન્તર પ્રકાશિત કર્યું. સને ૧૮૦૭ માં તેઓ એશિયાટિક સોસાયટીના સભાપતિ બન્યા. એ જ વર્ષમાં તેમણે હિન્દુ જ્યોતિષ એટલે ખગોળ વિદ્યા ઉપર એક ગ્રન્થ લખ્યો; જૈનધર્મ ઉપર એક વિસ્તૃત નિબંધ પ્રકટ કર્યો. કોલબ્રુકે વેદ, સાંખ્ય, ન્યાય, વૈશેષિક, વેદાન્ત, બૌદ્ધ આદિ ભારતનાં બધાં દર્શનો ઉપર મોટા મોટા નિબંધો લખ્યા હતા. તે સિવાય કૃષિ, વાણિજ્ય, સમાજવ્યવસ્થા, સાધારણ સાહિત્ય, કાનૂન, ધર્મ, ગણિત, જ્યોતિષ, વ્યાકરણ આદિ બધા વિષયો ઉપર તેમણે ખૂબ વિસ્તૃત પ્રબંધો લખ્યા હતા. તેમના એ લેખો-નિબંધો-પ્રબંધો આજે પણ તેટલા જ માનથી વંચાય છે. વેબર, બુલ્હર અને મેક્સ મૂલર આદિ વિદ્વાનોએ નિશ્ચિત કરેલા કેટલાક સિદ્ધાન્તો ભ્રમપૂર્ણ સિદ્ધ થઇ ગયા છે પરંતુ કોલબ્રુકે જાહેર કરેલા વિચારો ઘણા જ ઓછા તેમ થવા પામ્યા છે. એ એક સૌભાગ્યની જ વાત હતી કે આપણા સાહિત્યને શરૂઆતમાં જ એક એવો ઉપાસક મળી આવ્યો કે જેણે યુરોપની આગળ આપણા પ્રાચીન

તત્ત્વજ્ઞાન અને સાહિત્યને નિષ્પક્ષપાતપૂર્વક મૂળ સ્વરૂપમાં ઉપસ્થિત કર્યું અને જેણે દુનીયાનું ધ્યાન આપણી પ્રાચીન સંસ્કૃતિ તરફ સહાનુભૂતિપૂર્વક આકર્ષ્યું. જો તેણે આવો અપૂર્વ પરિશ્રમ ન કર્યો હોત તો આજે યુરોપમાં સંસ્કૃતનો આટલો પ્રચાર ન થયો હોત. કોલબ્રુક ભારત છોડી જ્યારે ઇંગ્લાંડમાં ગયા ત્યારે ત્યાં પણ તેમણે રૉયલ એશિયાટિક સોસાઈટિની સ્થાપના કરી અનેક વિદ્વાનોને સંસ્કૃતનું અધ્યયન કરવા માટે ઉત્સાહિત કર્યા, અને આંખે અપંગ થતા સુધી બીજા અનેક ઉપાયો દ્વારા સંસ્કૃત સાહિત્યની સતત સેવા કરતા હતા.

જ્યારે એક તરફ કોલબ્રુક સાહેબ સંસ્કૃત સાહિત્યના અધ્યયનમાં ગરક થયા હતા ત્યારે બીજી તરફ બીજા કેટલાક તેમના જાતભાઇઓ હિંદુસ્તાનના જુદા જુદા પ્રાંતોના પુરાતત્ત્વની ગવેષણા કરવામાં મચી રહ્યા હતા. સને ૧૮૦૦ માં માર્કિવસ વેલસ્લિ સાહેબે માઇસોર પ્રાન્તના કૃષિ આદિ વિભાગોની તપાસ કરવા માટે ડૉ. બુકૅનનની નેમણુંક કરી હતી. તેમણે પોતાના કૃષિવિષયક કાર્યની સાથે સાથે તે પ્રાંતની જુની પુરાણી બાબતોનું કેટલુંક જ્ઞાન મેળવ્યું. તેમના કાર્યથી સંતુષ્ટ થઇને કંપનીએ તેમને ૧૮૦૭ માં બંગાળ પ્રાંતના એક વિશિષ્ટ પદ પર યોજ્યા. સાત વર્ષ પર્યંત તેમણે બિહાર, શાહાબાદ, ભાગલપુર, ગોરખપુર, દિનાજપુર, પુરનિયા, રંગપુર અને આસામમાં કામ કીધું. જો કે તેમને પ્રાચીન સ્થાનો વિગેરેની શોધખોળનું કામ સોંપવામાં આવ્યું ન હતું તો પણ તેમણે ઈતિહાસ અને પુરાતત્ત્વની ખૂબ ગવેષણા કરી. તેમની આ ગવેષણાથી ઘણો લાભ થયો. અનેક અજ્ઞાત ઐતિહાસિક બાબતોની માહીતી મળી. આમ પૂર્વીય ભારતની પ્રાચીન વસ્તુઓની શોધખોળ સૌથી પ્રથમ એમણે જ કરી.

પશ્ચિમ ભારતની પ્રસિદ્ધ કેનેરી ગુફાઓનું વર્ણન સૌથી પ્રથમ સાલ્ટ સાહેબે અને હાથીગુફાઓનું વર્ણન રસ્કિન સાહેબે લખ્યું. આ બન્ને વર્ણનો બોમ્બે ટ્રાંઝેકશન નામના પુસ્તકના પહેલા ભાગમાં પ્રકાશિત થયાં. એ જ પુસ્તકના ત્રીજા ભાગમાં સાઈકસ સાહેબે બીજાપુર (દક્ષિણ) નું વર્ણન લોકોની આગળ મૂક્યું.

છેક દક્ષિણ હિંદુસ્તાનનું વર્ણન ટૉમસ ડેનિયલ નામના સાહેબે મેળવવું શરૂ કર્યું. તે જ વખતે દક્ષિણમાં કર્નલ મેકેન્ઝીએ પણ પુરાતત્ત્વ–વિદ્યાના અભ્યાસનો પ્રારંભ કીધો હતો. તે સર્વે ડિપાર્ટમેન્ટમાં નોકર હતા. તેમણે અનેક પ્રાચીન ગ્રન્થો અને શિલાલેખોનો સંગ્રહ કર્યો હતો. મેકેન્ઝી સાહેબ કેવળ સંગ્રહકાર હતા. તેઓ ગ્રન્થો અને લેખોને વાંચી શકયા ન હતા. પરંતુ તેમના પછીના શોધકોને તેમનાં આ સંગ્રહથી ઘણો લાભ થયો હતો. દક્ષિણના કેટલાક અનતિ–પ્રાચીન શિલાલેખોનાં ભાષાન્તરો ડૉ. મિલે કીધાં હતાં. આવી જ રીતે રાજપુતાના અને મધ્ય ભારતના કેટલાક ભાગોનું જ્ઞાન કર્નલ ટૉડે મેળવ્યું અને એ પ્રદેશોમાંની અનેક જુની પુરાણી વસ્તુઓની શોધખોળ તેમણે કરી.

આ પ્રમાણે જુદા જુદા વિદ્વાનો દ્વારા ભારતના ભિન્ન ભિન્ન પ્રાંતોના વિષયમાં ઘણુંક જ્ઞાન મેળવવામાં આવ્યું ને ઘણીક વસ્તુઓ જાણવામાં આવી; પરંતુ પ્રાચીન લિપિ-

નું સ્પષ્ટ જ્ઞાન હજી કોઈને મળેલું ન હોવાથી ભારતનાં પ્રાચીન ઐતિહાસિક સાધનોના ભંડાર ઉપર હજી તેવો ને તેવો જ અંધકારનો પડદો પડેલો હતો. જુદા જુદા વિદ્વાનોએ અનેક પુરાતન સિક્કાઓ અને શિલાલેખોનો ઘણો સારો સંગ્રહ મેળવી લીધો હતો ખરો, પણ લિપિજ્ઞાનના અભાવે તેમનો ત્યાં સુધી કાંઈ ઉપયોગ થયો ન હતો.

ભારતવર્ષના પ્રાચીન ઇતિહાસના પ્રથમ અધ્યાયનો ખરો પ્રારંભ ઈ. સ. ૧૮૩૭ થી થાય છે. એ વર્ષમાં એક નવીન નક્ષત્રનો ઉદય થાય છે કે જે ભારતીય પુરાતત્ત્વ વિદ્યા ઉપર પડેલા પડદાને દૂર ખસેડે છે. એશિયાટિક સોસાઇટિની સ્થાપનાના દિવસથી તે ૧૮૩૪ સુધીમાં પુરાતત્ત્વ સંબંધી ખરૂં કામ બહુ જ ઓછું થયું હતું. ત્યાં સુધી વિશેષ કરીને જુના ગ્રંથોના અનુવાદો જ થતા રહ્યા હતા. શિલાલેખો કે જે ભારતના ઇતિહાસના એક માત્ર ખરા સાધન તરીકે ગણાય છે તેમના સંબંધમાં ઘણું જ ઓછું કાર્ય થયું હતું. કારણ એ હતું કે પ્રાચીન લિપિનું સંપૂર્ણ જ્ઞાન મેળવવું અદ્યાપિ બાકી હતું.

મેં ઉપર એક ઠેકાણે જણાવ્યું છે તેમ પહેલ વહેલાં સંસ્કૃત ભાષા શીખનાર અંગ્રેજ ચાર્લ્સ વિલ્કીન્સ હતો, અને સૌથી પ્રથમ શિલાલેખ તરફ ધ્યાન આપનાર પણ તે જ હતો. તેણે ઈ. સ. ૧૭૮૫ માં દીનાજપુર જીલ્લાના બદાલ નામક સ્થાન પાસે મળેલા એક સ્તંભ ઉપરનો લેખ વાંચ્યો હતો જે બંગાળના રાજા નારાયણ પાલના સમયનો લખેલો હતો. તે જ વર્ષમાં એક હિંદુસ્થાની પંડિત નામે રાધાકાન્ત શર્માએ ટોમરાવાળા દિલ્હીના અશોક સ્તંભ ઉપર ખોદેલા અજમેરના ચૌહાણ રાજા અનલદેવના પુત્ર વીસલદેવના ત્રણ લેખો વાંચ્યા જેમાંના એકની મિતિ ‘ સંવત્ ૧૨૨૦ વૈશાખ સુદી ૫ ’ છે. આ લેખોની લિપિ બહુ જુની ન હોવાથી સરલતાની સાથે તે વાંચી શકાયા હતા. પરંતુ તે જ વર્ષમાં જે. એચ. હેરિંગ્ટને બુદ્ધગયા પાસે આવેલી નાગાર્જુની અને બારાબાર ગુફાઓમાં, ઉપરના લેખો કરતાં વધારે જુના એવા મૌખરી વંશના રાજા અનંતવર્માના ત્રણ લેખો ખોળી કાઢ્યા હતા કે જેમની લિપિ ગુપ્તકાલીન લિપિથી ઘણે અંશે મળતી હોવાથી તેમનું વાચન કઠિણ થઇ પડયું હતું. પણ ચાર્લ્સ વિલ્કીન્સે ચાર વર્ષ સુધી સતત પરિશ્રમ લઈ તે ત્રણે લેખોને વાંચી લીધા અને તેમ કરી તેણે ગુપ્તલિપિની લગભગ અડધી વર્ણમાળાનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી લીધું.

ગુપ્તલિપિ એટલે શું એની તમને ખબર નહિ હોય તેથી તેનો સહેજ ખુલાસો અહિં કરી દઉં. હાલમાં જે લિપિને આપણે દેવનાગરી (અથવા બાળબોધ)ના નામે ઓળખીએ છીએ, તે સાધારણ રીતે ત્રણ અવસ્થાઓમાંથી પસાર થયેલી છે. આ ચાલુ આકૃતિ પૂર્વે તેની જે આકૃતિ હતી તેને કુટિલ લિપિના નામે ઓળખવામાં આવે છે. એ આકૃતિનો સમય સાધારણ સમજવાની ખાતર ઈ. સ. ના ૬ ઠ્ઠા સૈકાથી તે ૧૦ મા સૈકા સુધીનો માની લેવો જોઇએ. તેની પહેલાંની આકૃતિને ગુપ્તલિપિના નામે ઓળખવામાં આવે છે, જેનો સામાન્ય સમય ગુપ્તવંશનો રાજત્વકાળ ગણાય છે. તે પહેલાંની આકૃતિવાળી લિપિ બ્રાહ્મીલિપિ કહેવાય છે. અશોકના લેખો આ જ લિપિમાં લખાયલા છે. એનો સમય ઈ. સ. પૂ. ૫૦૦ થી ઈ. સ. ૩૫૦ સુધીનો મનાય છે.

સન્ ૧૮૧૮ થી ૧૮૨૩ લગી કર્નલ જેમ્સ ટૉડે રાજપુતાનાના ઇતિહાસની શોધખોળ કરતાં રાજપુતાના અને કાઠિયાવાડમાંથી કેટલાક પ્રાચીન લેખોનો પત્તો મેળવ્યો હતો. જેમાંના ૭ મી શતાબ્દીથી લઈ ૧૫ મી શતાબ્દી સુધીના અનેક લેખો તે કર્નલના ગુરૂ યતિ જ્ઞાનચંદ્રજીએ વાંચ્યા હતા, અને જેનો સારાંશ યા અનુવાદ ઉક્ત સાહેબે પોતાના "રાજસ્થાન" નામક પ્રસિદ્ધ ઇતિહાસમાં આપ્યો છે,

ઈ. સ. ૧૮૨૮ માં બી. જી. બેબીંગ્ટને મામલ્લપુરના કેટલાક સંસ્કૃત અને તામીલ લેખો વાંચી તેમની વર્ણમાલાઓ તૈયાર કીધી. તેવીજ રીતે વૉલ્ટર ઇલિયટે પ્રાચીન કાનડી અક્ષરોનું જ્ઞાન મેળવી તેમની વિસ્તૃત વર્ણમાળાઓ પ્રકાશિત કરી.

ઇ. સ. ૧૮૩૪ માં કેપ્ટન ટ્રૉયરે પ્રયાગના અશોકસ્તંભ ઉપર ખોદેલા ગુપ્તવંશી રાજા સમુદ્રગુપ્તના લેખનો કેટલોક ભાગ વાંચ્યો, અને પાછળથી તે જ વર્ષમાં ડૉ. મિલે તે લેખને સંપૂર્ણ વાંચી ૧૮૩૭ માં ભિટારીના સ્તંભ ઉપરનો સ્કંદગુપ્તનો લેખ પણ ઉકેલી લીધો.

૧૮૩૫ માં ડબલ્યુ. એચ. વૉથને વલ્લભીનાં કેટલાંક દાનપત્રો ઉકેલ્યાં:

૧૮૩૭-૩૮ માં જેમ્સ પ્રિન્સેપે દીલ્હી, કમાઉ અને એરણના સ્તંભો ઉપરના, સાંચી અને અમરાવતીના સ્તૂપો ઉપરના, તેમ જ ગિરનારના ખડક ઉપરના ગુપ્તલિપિના બધા લેખો વાંચી કાઢયા.

સાંચી સ્તૂપના ચંદ્રગુપ્તવાળા મહત્ત્વના લેખ સંબંધે જે પ્રિન્સેપે ૧૮૩૪ માં લખ્યું હતું કે 'પુરાતત્ત્વના અભ્યાસીઓ હજી સુધી સાંચીના શિલાલેખોમાં શું લખ્યું છે એ કાંઇ પણ જાણી શકયા નથી.' તેજ પ્રિન્સેપ ૧૮૩૭ માં એ બધા લેખોને યથાર્થ અનુવાદ સાથે પ્રકટ કરવાની સંપૂર્ણ સફળતા મેળવી શકયા હતા.

આ રીતે કેપ્ટન ટ્રૉયર, ડૉ. મિલ અને જેમ્સ પ્રિન્સેપના સતત પરિશ્રમથી ચાર્લ્સ વિલ્કીન્સે:જે ગુપ્તલિપિની અપૂર્ણ વર્ણમાળા તૈયાર કરી હતી તે સંપૂર્ણ થઇ અને તેથી ગુપ્તવંશી રાજાઓના સમય સુધીના શિલાલેખો, તામ્રપત્રો, શિક્કાઓ વિગેરે વાંચવામાં પૂરેપૂરી સફળતા અને સરળતા મળી.

હવે બધી લિપિઓની જે આદિજનની બ્રાહ્મી લિપિ તેનો વારો આવ્યો. તે લિપિ ગુપ્ત લિપિથી પ્રાચીન હોવાના સબબે તેનું એકદમ ઉકેલવું કઠિણ હતું. એ લિપિનાં દર્શન તો ઈ. સ. ૧૭૯૫ માંજ શોધકોને થઈ ગયાં હતાં. એ સાલમાં સર ચાર્લ્સ મૅલેટે ઇલોરાની ગુફાઓમાંના કેટલાક નાના નાના બ્રાહ્મી લેખોની નકલો સર વિલિયમ જોન્સ પર મોકલી હતી. તેમણે એ નકલોને મેજર વિલ્ફોર્ડ કે જે તે વખતે કાશીમાં હતો તેના તરફ, ત્યાંના કોઇ પંડિત મારફત, ઉકેલવા માટે રવાના કરી. પ્રથમ તો ત્યાં તે ઉકેલનાર કોઇ મળ્યો નહિ પણ પાછળથી એક ચાલાક બ્રાહ્મણે કેટલીક પ્રાચીન વર્ણમાળાઓનું એક કૃત્રિમ પુસ્તક તે બિચારા જીજ્ઞાસુ મેજરને બતાવી તે લેખોને પોતાની ઇચ્છા પ્રમાણે ખોટી રીતે વાંચી બતાવ્યા અને બદલામાં ખૂબ દક્ષિણા મેળવી. વિલ્ફોર્ડ સાહેબે આવી

કલ્પિત રીતે વાંચેલા લેખો ઉપર પૂર્ણ વિશ્વાસ આણી તે બ્રાહ્મણના સમજાવ્યા પ્રમાણે તે લેખોનું ઇંગ્રેજી ભાષાન્તર પણ કરી લીધું અને પછી લેખોની નકલો સાથે તે ભાષાન્તર સર જોન્સ ઉપર મોકલી આપ્યું. આ સંબંધમાં મેજર વિલ્ફોર્ડે સર જોન્સ ઉપર જે પત્ર લખ્યો હતો તેમાં તે બહુ ઉત્સાહ પૂર્વક લખે છે કે—"આ સાથે કેટલાક લેખોની નકલો તેના ખુલાસા સાથે મોકલવાની રજા લઉં છું. પ્રથમ તો મેં એ લેખોને કોઇ દિવસે પણ ઉકેલી શકવાની આશા સમૂળગી છોડી દીધી હતી, કારણ કે હિંદુસ્તાનના આ ભાગમાં (બનારસ તરફ) જુના લેખો મળતા નથી, તેથી તે ઉકેલવાની કળાની બુદ્ધિની અજમાયશ કરવાની કે શોધ કરવાની તક જ મળી ન હતી. તેમ છતાં, અને મારા ઘણા પ્રયત્નો નિષ્ફળ ગયા પછી, આખરે સદ્ભાગ્યે, એક વૃદ્ધ ગુરૂ મને મળી આવ્યો જેણે એ લખોને વાંચવાની કુંચી બતાવી અને જુના જમાનામાં હિંદુસ્તાનના જુદા જુદા ભાગોમાં જે લિપિઓ ચાલતી હતી તેનું એક સંસ્કૃત પુસ્તક તેણે મારી પાસે રજુ કર્યું. આ એક ખરેખર સૌભાગ્યસૂચક શોધ થઈ છે, જે આપણને. ભવિષ્યમાં ઘણી ઉપયોગી થઈ પડશે." મે. વિલ્ફોર્ડની આ "શોધ" માટે ઘણાં વર્ષો સુધી કોઇને શંકા સુદ્ધાં થઈ નહિ. કારણ કે સને ૧૮૨૦ ના અરસામાં, ખંડગિરિના ખડક ઉપરના એજ લિપિવાળા લેખના સંબંધમાં લખતાં મી. સ્ટર્લિંગ લખે છે કે:—"જૂના લેખો ઉકેલવાની કુંચી એક વિદ્વાન્ બ્રાહ્મણ પાસેથી મેળવી મે. વિલ્ફોર્ડની વિદ્વત્તા અને બુદ્ધિએ ઈલોરા. અને સાલ્સેટના લેખો કે જે આજ લિપિમાં લખાયલા છે તેનો કેટલાક ભાગ ઉકેલ્યો હતો. ત્યાર પછી દિલ્હી અને બીજાં સ્થળોના તેવા લેખો ઉકેલવામાં તે કુંચીનો કાંઇ પણ ઉપયોગ કરવામાં આવ્યો નથી તે દિલગીર થવા જેવું છે." મી. પ્રિન્સેપને ૧૮૩૩ માં ખરી કુંચી જડી, તે પહેલાં આસરે એક વર્ષ ઉપર તેમણે પણ આવી જ રીતે મે. વિલ્ફોર્ડની કુંચીનો ઉપયોગ ન કરવા બાબત પોતાની દિલગીરી પ્રકટ કરેલી છે. એક શોધક અને જીજ્ઞાસુ વિદ્વાન્‌ને આવી દીલગીરી થવી સ્વાભાવિક છે. પણ વિદ્વાન્ બ્રાહ્મણની બતાવેલી કુંચીનો વધારે ઉપયોગ ન કરવામાં આવ્યો તેમાં આશ્ચર્ય માનવા જેવું કશું ન હતું. કારણ કે જેમ પુરાતત્ત્વની બીજી શોધખોળોમાં મે. વિલ્ફોર્ડની શ્રધ્ધાનું શ્રાધ્ધ કરનારા યુક્તિબાજ બ્રાહ્મણોની ચાલાકીનો તે બીચારો ભોગ થઈ પડયો હતો તેમ આ બાબતમાં પણ બન્યું હતું. એ ગમે તેમ હો, પરંતુ એટલું તો ચોક્કસ છે કે મે. વિલ્ફોર્ડની કહેવાતી શોધ એક સંપૂર્ણ ભ્રમણા હતી. કારણ કે તેમણે વાંચેલો લેખપાઠ તદ્દન કલ્પિત હતો અને તેનો તેમણે કરેલો તરજુમો પણ તેવો જ નિર્મૂળ હતો,—યુધિષ્ઠિર અને પાંડવોના વનવાસ અને નિર્જન. જંગલોમાં પરિભ્રમણની ગાથાઓનો તે ન સમજાય તેવો બ્રહ્મગોટાળો હતો. એ ધૂર્ત બ્રાહ્મણે બતાવેલા અગડં બગડં અર્થનું અનુસન્ધાન કરવા માટે વિલ્ફોર્ડે કલ્પના કરી હતી કે પાંડવો વનવાસ દરમ્યાન મનુષ્યોના સંસર્ગમાં ન આવવાના કરારથી બંધાયલા હતા. તેથી તેમના વિદુર અને વ્યાસ જેવા સ્નેહી અને સંબંધિયોએ તેમને સાવધાન રહેવાની સૂચના આપવા માટે આ યુક્તિઓ કરી હતી. તેઓ જંગલોમાં ખડકો

અને શિલાઓ ઉપર ટુંકા ટુંકા અને સહેલાઇથી ન સમજાય તેવાં વાક્યો, પહેલેથી જ સંકેત કરી રાખેલી લિપિમાં લખી, પોતાનો હેતુ પાર પાડતા રહેતા હતા. અંગ્રેજો પોતાને બહુ જ બુદ્ધિમાન્ અને ચાલાક માને છે અને હસતે મુખે તેઓ દુનીઆના બીજા ભોળા લોકોને ઠગવાની પૂરી કળા જાણે છે, પરંતુ તેઓ પણ ભારતવર્ષની સ્વર્ગપુરી ગણાતી કાશીના "વૃદ્ધ ગુરૂ" ની ઝોળીમાં એક વખત આવી રીતે મૂકાઈ જતા હતા. અસ્તુ.

એશિયાટિક સોસાયટિની પાસે દિલ્લી અને અલાહાબાદના સ્તંભો તથા ખંડગિરિના ખડકો ઉપરના લેખોની નકલો એકઠી થએલી હતી, પરંતુ વિલ્ફોર્ડ સાહેબની 'શોધ' નિષ્ફળ જવાથી કેટલાંએ વર્ષો સુધી તે લેખોને ઉકેલવાનો પ્રયત્ન થયો નહિ. એ લેખોના મર્મને જાણવાની ઉત્કટ જિજ્ઞાસા રહેવાને લીધે મી. જેમ્સ પ્રિંસેપે ઇ. સ. ૧૮૩૪-૩૫ માં અલાહાબાદ, રધિઆ અને મથિઆના સ્તંભો ઉપરના લેખોની છાપો મંગાવી, અને તેમને દિલ્લીના લેખની સાથે મુકી-એ જાણવાની કોશીશ કીધી કે તેમાં કોઈ શબ્દ એક સરખો છે કે નહિ. આ પ્રમાણે ચારે લેખોને પાસે પાસે મુકવાથી તુરત તેમને જણાયું કે એ ચારે લેખો એક જ જાતના છે. આથી પ્રિંસેપનો ઉત્સાહ વધ્યો અને પોતાની જિજ્ઞાસા પૂર્ણ થવાની તેમને આશા બંધાઈ. પછી તેમણે અલાહાબાદ-સ્તંભ ઉપરના લેખના ભિન્ન ભિન્ન આકૃતિવાળા અક્ષરો જુદા તારવ્યા, જેથી તેમને સમજાયું કે ગુપ્ત લિપિના અક્ષરોની માફક તેના પણ કેટલાક અક્ષરો સાથે સ્વરોની માત્રાઓનાં જુદાં જુદાં પાંચ ચિન્હો લાગેલાં છે. પછી તેમણે એ પાંચે ચિન્હોને એકત્ર કરી પ્રકટ કર્યાં. આથી કેટલાક વિદ્વાનોને એ અક્ષરોની બાબતમાં યુનાની હોવાનો જે ભ્રમ હતો તે દૂર થઈ ગયો.

અશોકના લેખોની લિપિ સાધારણ રીતે જોનારને ઇંગ્રેજી અથવા ગ્રીક લિપિની ભ્રાંતિ ઉત્પન્ન કરી શકે છે. ટૉમ કોરિએટ નામના મુસાફરે અશોકના દિલ્લીવાળા સ્તંભના લેખને જોઈ એલ્. વ્હીટરને એક પત્રમાં લખ્યું હતું કે "હું આ દેશના દિલ્લી નામના શહેરમાં આવ્યો છું કે જ્યાં આગળ મહાન્ અલેકઝાંડરે હિન્દુસ્થાનના રાજા પોરસને હરાવ્યો હતો, અને પોતાના વિજયની સ્મૃતિમાં તેણે એક મોટો સ્તંભ ઉભો કરાવ્યો હતો જે અદ્યાપિ અહિં મૌજુદ છે." પાદરી એડવર્ડ ટેરીએ લખ્યું છે કે— "ટૉમ કોરિએટે મને કીધું હતું કે તેણે દિલ્લીમાં ગ્રીક લેખવાળો એક સ્થંભ જોયો છે જે મહાન્ અલેકઝાંડરની સ્મૃતિ માટે ત્યાં સ્થાપિત કરવામાં આવ્યો હતો." આવી રીતે બીજા પણ લેખકોએ એ લેખને ગ્રીક લેખ માન્યો હતો.

ઉક્ત રીતે સ્વરોનાં ચિન્હોને ઓળખી લીધા પછી મી. પ્રિંસેપે અક્ષરોને ઓળખવાનો ઉદ્યોગ શરૂ કર્યો. તેમણે પ્રથમ પ્રત્યેક અક્ષરને ગુપ્ત લિપના અક્ષર સાથે મેળવવવાનો અને જે તેની સાથે બરાબર મળતો થાય તેને ક્રમથી વર્ણમાળામાં દાખલ કરવાનો ક્રમ લીધો. આ રીતે ઘણાક અક્ષરો તેમની જાણમાં આવી ગયા.

પાદરી જેમ્સ સ્ટીવન્સને પણ પ્રિંસેપની માફક આ જ શોધમાં અનુરક્ત થઈ 'क', 'ज', 'प', 'व', અને 'व' એટલા અક્ષરો ઓળખી કાઢયા, અને આ અક્ષરોની સહાયતાથી તેમણે લેખોને પુરા વાંચી તેનો અનુવાદ કરવાનો મનોરથ કીધો. પરંતુ કાંઈક તો અક્ષરોને ઓળખવામાં ભૂલ થઈ જવાથી, કાંઈક વર્ણમાળાની અપૂર્ણતાથી અને કાંઈક એ લેખોની ભાષાને સંસ્કૃત સમજવાથી તેમનો એ ઉદ્યોગ પૂરેપૂરો સફળ થયો નહિ. આથી પ્રિંસેપને નિરાશા થઇ નહિ. ઈ. સ. ૧૮૩૫ માં પ્રસિદ્ધ પુરાતત્ત્વજ્ઞ પ્રો. લૅસ્સને એક બાક્ટ્રિઅન ગ્રીક શિક્કા પર આ જ અક્ષરોમાં લખેલું ઍગૅથૅક્લિસનું નામ વાંચ્યું, પરંતુ ૧૮૩૭ ની શરૂઆતમાં જ મી. પ્રિંસેપે પોતાના અલૌકિક સ્ફુરણદ્વારા એક નાનો સરખો દાન શબ્દ શોધી કાઢયો હતો જેણે એકદમ આ સઘળી ગૂઢ બાબતોનો નિકાલ કરી દીધો. હકીકત આ પ્રમાણે છેઃ–ઈ. સ. ૧૮૩૭ માં મિ. પ્રિંસેપે સાંચીસ્તૂપના સ્તંભો આદિ ઉપર ખોદેલા કેટલાક નાના લેખોની છાપોને એકત્ર કરીને જોઇ તો તે બધામાં અંતે બે અક્ષરો એક જ સરખા જણાયા અને તેનો પહેલાં स અક્ષર લખેલો દેખાયો જેને પ્રાકૃતભાષાનો છઠ્ઠી વિભક્તિનો પ્રત્યય (સંસ્કૃત स्य ના બદલે) માની એ અનુમાન કર્યું કે બધા લેખો જુદા જુદા મનુષ્યો દ્વારા કરાએલા દાનનું સૂચન કરતા હોવા જોઈએ. છેલ્લા બધે એક સરખા જણાતા બે અક્ષરો કે જે ઓળખાતા ન હતા, તેમાંથી પહેલા અક્ષરની સાથે 'ा' આ ની માત્રા અને બીજાની સાથે અનુસ્વારનું ચિન્હ લાગેલું હોવાથી પહેલો અક્ષર તે दा અને બીજો તે नं હોઈ એમ એ શબ્દ दानं જ હોવો જોઈએ એમ તેમણે નિશ્ચય કીધો. આ અનુમાનાનુસાર द અને न ને ઓળખવાથી એ આખી વર્ણમાળા પૂરી થઇ અને તેના આધારે દિલ્હી, અલાહાબાદ, સાંચી, મથિયા, રધિયા, ગિરનાર, ધૌલી આદિના અશોકના બધા લેખો સરલતા પૂર્વક વાંચી લેવાયા. એ વાંચનથી એ પણ નિશ્ચય થઈ ગયો કે એ લેખોની ભાષા જેમ અત્યારસુધી સંસ્કૃત સમજવામાં આવતી હતી તે ન હતી, પરંતુ તે ઉક્ત સ્થાનોની પ્રચલિત પ્રાચીન દેશભાષા હતી (જેને તે વખતે સાધારણ રીતે પ્રાકૃતના નામે ઓળખવામાં આવતી.)

આવી રીતે બ્રાહ્મી લિપિનું સંપૂર્ણ જ્ઞાન મેળવવામાં આવ્યું અને તેના યોગે ભારતના જૂનામાં જૂના લેખો વાંચવામાં સંપૂર્ણ સફળતા મળી.

હવે એક તેવી જ બીજી જૂની લિપિની શોધના વિષયમાં કાંઈક જણાવું છું કે જેનું જ્ઞાન પણ એ જ સમયમાં મેળવવામાં આવ્યું હતું. એ લિપિનું નામ ખરોષ્ઠી છે. ખરોષ્ઠી લિપિ એ આર્ય લિપિ નથી પણ અનાર્ય લિપિ છે. તેને સેમેટિક્ લિપિના કુટુંબની અરમઈક લિપિમાંથી નિકળેલી માનવામાં આવે છે. એ લિપિની લખવાની પદ્ધતિ ફારસી લિપિ જેવી છે, અર્થાત્ ડાબી બાજુથી જમણી બાજુ તરફ લખતા જવાની છે. એ લિપિ ઇ. સ. પૂર્વે ત્રીજી–ચોથી શતાબ્દીમાં માત્ર પંજાબના જ કેટલાક ભાગમાં પ્રચલિત હતી. શહાબાજગઢી અને મન્સોરાના ખડકો ઉપરના અશોકના લેખો આ લિપિમાં ખોદેલા છે. તે સિવાય શક, ક્ષત્રપ, પાર્થિઅન અને કુશાનવંશી રાજાઓના સમયના કેટલાક બૌદ્ધ

લેખો તથા બાક્ટ્રિઅન, ગ્રીક, શક, ક્ષત્રપ વિગેરે રાજવંશોના કેટલાક શિક્કાઓ ઉપરના લેખો આ લિપિમાં કોતરેલા મળી આવે છે. તેથી ભરતીય પુરાતત્ત્વજ્ઞોને આ લિપિના જ્ઞાનની પણ ખાસ આવશ્યકતા હતી.

કર્નલ જેમ્સ ટૉડે બાક્ટ્રિઅન, ગ્રીક, શક, પાર્થિઅન અને કુશાનવંશી રાજાઓના શિક્કાઓનો મોટો સંગ્રહ કર્યો હતો, જેની એક બાજુએ ગ્રીક અને બીજી બાજુએ ખરોષ્ઠી અક્ષરોના લેખો કોતરેલા હતા. જનરલ વેંટુરાએ સને ૧૮૩૦ માં માનિકિઆલ સ્તૂપ ખોદાવ્યો તો તેમાંથી ખરોષ્ઠી લિપિના કેટલાએક શિક્કાઓ અને બે લેખો મળી આવ્યા. આ શિવાય સર અલેકઝેંડર બર્ન્સ આદિ પ્રાચીન શોધકોએ પણ એવા અનેક શિક્કાઓ એકત્ર કર્યા હતા જેની એક બાજુના ગ્રીક અક્ષરો તો વાંચી શકાતા હતા પરંતુ બીજી બાજુના ખરોષ્ઠી અક્ષરોને ઉકેલવાનું કાંઈ પણ સાધન ન હતું. એ અક્ષરો માટે ભિન્ન ભિન્ન કલ્પનાઓ થવા લાગી હતી. સને ૧૮૨૪ માં કર્નલ ટૉડે કડફિસેસના શિક્કા ઉપરના આ અક્ષરોને 'સસેનીઅન્' અક્ષરો જાહેર કર્યા. ૧૮૩૩ માં ઍપોલોડોટસના શિક્કા ઉપરના આ જ અક્ષરોને પ્રિંસેપે "પહલવી" અક્ષરો માન્યા. એક બીજા શિકકા ઉપરની આજ લિપિને તથા માનિકિઆલ સ્તૂપના લેખની લિપિને પણ પાલી એટલે બ્રાહ્મી લિપિ માની, અને એની આકૃતિ જરા વાંકી હોવાથી એ અનુમાન કર્યું કે છાપેલી અને ચોપડામાં લખેલી ગુજરાતી લિપિમાં જેમ અંતર હોય છે તેમ જ અશોકની દિલ્હી આદિ સ્તંભોવાળી અને આ લિપિમાં અંતર છે. પરંતુ પાછળથી સ્વયં પ્રિન્સેપને જ આ અનુમાન અનુચિત લાગવા માંડયું. ૧૮૩૪ માં કેપ્ટન કોર્ટને એક સ્તૂપમાંથી આ જ લિપિનો લેખ મળ્યો જેને જોઇને પ્રિંસેપે ફરી આ અક્ષરોને "પહલવી" અક્ષરો કલ્પ્યા. પરંતુ એ જ વર્ષમાં શોધક મી. મેસનને કાબૂલની ઘાટીમાં શોધખોળ કરતાં અનેક એવા શિકકાઓ મળી આવ્યા જેના ઉપર ખરોષ્ઠી અને ગ્રીક બન્ને લિપિમાં રાજાઓનાં નામો લખેલાં હતાં. મેસન સાહેબે જ સૌથી પ્રથમ મિનેંડો, અપોલડોટો, અરમાઈઓ, બાસિલિઓ અને સેટિરો વગેરે નામો વાંચ્યાં. પરંતુ આ તેમની માત્ર કલ્પના હતી. તેમણે આ નામો પ્રિંસેપ સાહેબને લખી મોકલ્યાં. આ કલ્પનાને સત્ય કરવાનો યશ પ્રિન્સેપ સાહેબના ભાગ્યમાં જ હતો. તેમણે મેસન સાહેબના સંકેતો અનુસાર શિકકાઓ વાંચવા માંડયા તો તેમાંથી બાર રાજાઓનાં તથા છ પહ્વીઓનાં નામો તેમને મળી આવ્યાં.

આવી રીતે ખરોષ્ઠી લિપિના ઘણાક અક્ષરોનો બોધ થયો, અને સાથે એ પણ જ્ઞાન થયું કે આ લિપિ ડાબી બાજુથી જમણી બાજુએ વંચાય છે. તેથી એ પણ નિશ્ચય થયો કે આ લિપિ સેમેટિક વર્ગની છે, પણ તે સાથે તેની ભાષા કે જે વાસ્તવમાં બ્રાહ્મી લેખોની ભાષા માફક પ્રાકૃત જ હતી, તેને પહલવી માની લેવાની ભૂલ કરવામાં આવી. આ પ્રકારે ગ્રીક લેખોની સહાયતાથી ખરોષ્ઠી લિપિના ઘણાક અક્ષરો તો જણાઇ ગયા પણ ભાષાના વિષયમાં ભ્રાન્તિ થવાથી, પહલવીના નિયમો તરફ ધ્યાન રાખી લેખોને વાંચવાનો ઉદ્યોગ કરવાથી અક્ષરોને ઓળખવાની અશુદ્ધતા આવવા લાગી, જેથી થોડાક સમય પર્યંત તેનું

કાર્ય અટકી પડયું. પરંતુ ૧૮૩૮ માં બે બાક્ટ્રીઅન ગ્રીક શિક્કાઓ ઉપર પાલી લેખો જોતાં જ બીજા શિક્કાઓની ભાષા પણ તે જ હશે એમ માની તેના નિયમાનુસાર તે લેખો વાંચવાથી પ્રિંસેપનું કામ આગળ ચાલ્યું; અને એકંદર ૧૭ અક્ષરો તેમણે તેના ખોળી કાઢયા. પ્રિંસેપની માફક મી. નૉરિસે પણ આ વિષયમાં કેટલીક શોધ કરી એ લિપિના બીજા ૭ અક્ષરો નવા શોધી કાઢયા. બાકી રહેલા થોડાક અક્ષરો જનરલ કનિંગહામે ઓળખી લીધા, અને તેમ કરી ખરોષ્ઠીની સંપૂર્ણ વર્ણમાળા તૈયાર કરી લેવામાં આવી.

ભારતવર્ષની જૂનામાં જૂની લિપિઓનું જ્ઞાન મેળવવાનો સામાન્ય ઇતિહાસ આ પ્રમાણે છે. ઉપરોક્ત વર્ણનથી આપણને જણાય છે કે લિપિ વિષયક શોધખોળમાં મી. પ્રિંસેપની કામગિરી ઘણી મોટી છે. એશિયાટિક સોસાઇટી તરફથી બહાર પડેલા "સેન્ટેનરી રિવ્યુ" નામના પુસ્તકમાં "એન્શ્યેન્ટ ઇન્ડીઅન અલ્ફાબેટ" વાળા આર્ટિકલના પ્રારંભમાં જ આ બાબત વિષે ડૉ. હૉર્નેલ લખે છે કેઃ—

'જૂના શિલાલેખોને ઉકેલવાનું અને તેનું ભાષાંતર કરવાનું સોસાઈટિનું અત્યુપયોગી કાર્ય સને ૧૮૩૪ થી ૧૮૩૯ સુધીમાં ચાલ્યું હતું. એ કાર્યની સાથે મી. જેમ્સ પ્રિંસેપ, કે જે તે વખતે સોસાઈટિના સેક્રેટરી હતા તેમનું નામ સદાને માટે જોડાઈ રહેશે. કારણ કે હિન્દુસ્તાન વિષયક જૂની લેખનકલા, ભાષા અને ઇતિહાસ સાથે સંબંધ ધરાવનારી અને આપણા આધુનિક જ્ઞાનના આધારભૂત એવી મોટી શોધો તે એક જ મનુષ્યના પુરૂષાર્થને લઇને અને તે પણ વળી આટલા અલ્પ સમયમાં થઈ હતી."

પ્રિન્સેપના પછી લગભગ ત્રીસ વર્ષ સુધી પુરાતત્ત્વ સંશોધનનાં સૂત્રો જેમ્સ ફર્ગ્યુસન, મેજર કિટ્ટો, એડવર્ડ ટૉમસ, અલેકઝાંડર કનિંગહામ, વાલ્ટર ઇલિયટ, મેડોઝ ટેલર, સ્ટીવન્સન, ડૉ. ભાઉ દાજી વિગેરેના હાથમાં રહ્યાં. આમાંના પહેલા ચાર વિદ્વાનોએ ઉત્તર હિંદુસ્તાનમાં, ઇલિયટ સાહેબે દક્ષિણ હિંદુસ્તાનમાં, અને પાછળના ત્રણે પશ્ચિમ હિંદુસ્તાનમાં કામ કર્યું હતું. ફર્ગ્યુસન સાહેબે પુરાતન વાસ્તુવિદ્યા (Architecture) નું જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવામાં ઘણી મહેનત લીધી હતી; અને તેમણે આ વિષય ઉપર અનેક ગ્રંથો લખ્યા હતા. આ વિષયનો તેમનો અભ્યાસ એટલો બધો આગળ વધી ગયો હતો કે તેઓ કોઇપણ ઇમારતને આંખેથી જોઇને જ સાધારણ રીતે તેનો સમય નિશ્ચિત કરી લેતા હતા. મેજર કિટ્ટો બહુ વિદ્વાન્ તો ન હતો પણ તેની શોધક બુદ્ધિ બહુ તીક્ષ્ણ હતી. જ્યાં બીજા અનેક વિદ્વાનોને કાંઇ પણ જડયું ન હતું, ત્યાં જ તેણે પોતાની ગીધ જેવી ઝીણી દૃષ્ટિના બળે કેટલીયે ચીજો ખોળી કાઢી હતી. તે ચિત્રકલામાં પણ નિપુણ હતો. તેણે પોતાના હાથથી કેટલાં યે સ્થાનોનાં ચિત્ર કાઢયાં હતાં અને તે પ્રકાશિત કર્યાં હતાં. તેની આવી શિલ્પકળા વિષયક ઉંડી કુશળતા જોઇ સરકારે તેને બનારસ સંસ્કૃત કૉલેજનું મકાન તૈયાર કરાવવાનું કામ સોંપ્યું હતું. તેણે આ કામમાં ઘણો પરિશ્રમ ઉઠાવ્યો હતો. આ પરિશ્રમને કારણે તેની તબીયત બગડી ગઈ અને આખરે ઇંગ્લાંડમાં જઇ તે સ્વર્ગસ્થ

થયો. ટૉમસ સાહેબે ખાસ કરીને પોતાનું લક્ષ્ય શિક્કાઓ તથા શિલાલેખો તરફ ખેંચ્યું. તેણે ઘણા પરિશ્રમ સાથે ઇ. સ. પૂર્વે ૨૪૬ થી લઇ ૧૫૫૪ સુધીનો ૧૮૦૦ વર્ષોનો પ્રાચીન ઇતિહાસ તારવી કાઢયો હતો. જનરલ કનિંગહામે પ્રિંસેપનું જ બાકી રહેલું કામ હાથમાં લીધું. તેમણે બ્રાહ્મી તથા ખરોષ્ઠી લિપિના સઘળા પ્રકારોનું સંપૂર્ણ જ્ઞાન પ્રાપ્ત કર્યું. દક્ષિણના ચાલુક્ય વંશનું વિસ્તૃત જ્ઞાન લોકોની આગળ તેમણે જ પ્રથમ મૂક્યું. ટેલર સાહેબે ભારતની ભૂમિનિર્માણવિદ્યાનું જ્ઞાન મેળવ્યું અને સ્ટિવન્સને શિક્કાઓની શોધખોળ કરી. પુરાતત્ત્વ સંશોધનના કામમાં પહેલવહેલી પ્રવીણતા જે ભારતવાસી વિદ્વાને મેળવી હતી તેમનું નામ ડૉ. ભાઉ દાજી હતું. તેમણે અનેક શિલાલેખો ઉકેલ્યા અને પ્રાચીન ભારતના ઈતિહાસના જ્ઞાનમાં ખૂબ વૃદ્ધિ કરી. એ વિષયમાં બીજા નામાંકિત ભારતના વિદ્વાન્ તરીકે કાઠિયાવાડના વતની પંડિત ભગવાનલાલ ઇંદ્રજીનું નામ લેવું જોઇએ. તેમણે પશ્ચિમ ભારતના ઇતિહાસમાં ઘણી અમૂલ્ય વૃદ્ધિ કરી છે. અનેક શિલાલેખો અને તામ્રપત્રો ઉકેલ્યાં હતાં. તેમની વિદ્વત્તાનું ખરૂં સ્મારક તો તેમણે ઉડીસાના ખંડગિરિ-ઉદયગિરિ વાળી હાથીગુફામાંના સમ્રાટ્ ખારવેલના લેખને શુદ્ધ રીતે ઉકેલ્યો તે છે. બંગાલના વિદ્વાન્ ડૉ. રાજેન્દ્રલાલ મિત્રનું નામ પણ આ વિષયમાં ખાસ ઉલ્લેખ કરવા યોગ્ય છે. તેમણે નેપાલના સાહિત્ય અને ઈતિહાસ વિષયમાં આપણને ઘણું જ્ઞાન આપ્યું છે.

આ બધું કામ વિદ્વાનોએ ખાસ પોતાના શોખથી જ કીધું હતું. ત્યાં સુધી સરકાર તરફથી એ વિષય માટે કોઇ ખાસ પ્રબંધ કરવામાં આવ્યો ન હતો. પરંતુ એ કામ એટલું બધું મહાભારત છે કે સરકારની ખાસ મદદ વગર સંપૂર્ણ થવું અશક્ય છે. સને ૧૮૪૪ માં લંડનની રૉયલ એશીઆટિક સોસાઈટીએ ઇસ્ટ ઇન્ડીઆ કંપનીને વિનતિ કરી કે આ કામમાં સરકારે ખાસ મદદ કરવી જોઇએ અને સરકાર મારફત જ આ કામ થવું જોઈએ. તેથી ૧૮૪૭ માં લોર્ડ હાર્ડિંજના પ્રસ્તાવથી બોર્ડ ઑફ ડાયરેક્ટર્સે આ કામમાં ખર્ચ કરવાની મંજુરી આપી. પણ સન્ ૧૮૫૦ સુધીમાં તેનું વાસ્તવિક પરિણામ કાંઇ પણ ન આવ્યું. ૧૮૫૧ માં સંયુક્ત પ્રાંતના ચીફ એન્જીનીઅર કર્નલ કનિંગહામે એક યોજના ઘડીને સરકાર ઉપર મોકલી અને સાથે એ પણ સૂચવ્યું કે જો ગવર્નમેંટ આ કામ તરફ લક્ષ્ય નહિ આપશે તો કદાચિત્ ફ્રેંચ અને જર્મન લોકો આ કામ ઉપાડી લેશે; અને તેમ થશે તો તેમાં અંગ્રેજોના યશની હાનિ થશે. ક. કનિંગહામની આ સૂચનાનુસાર અને ગવર્નર જનરલની ભલામણથી ૧૮૫૨ માં આર્કિઓલૉજીકલ સર્વે નામનું એક ડિપાર્ટમેન્ટ કાયમ કરવામાં આવ્યું અને ૨૫૦ રુપીઆ માસિક પગારે કનિંગહામ સાહેબની જ આ ડિપાર્ટમેન્ટના ડાયરેક્ટર તરીકે નેમણુંક કરવામાં આવી. આ યોજના સ્થાયી રૂપે ન હતી. સરકારની ધારણા એમ હતી કે મોટાં મોટાં મહત્ત્વપૂર્ણ સ્થાનોનું યથાતથ વર્ણન, તત્સંબંધી ઇતિહાસ અને કિંવદન્તીઓનો સંગ્રહ કરવામાં આવે. નવ વર્ષ સુધી સરકારની આ જ નીતિ ચાલૂ રહી હતી. તે દરમ્યાન કનિંગહામ સાહેબે પણ પોતાના નવ રિપોર્ટો બહાર પાડયા.

૧૮૭૧ થી સરકારની આ ધારણામાં કાંઈક ફેરફાર થયો. કનિંગહામના રિપોર્ટોથી સરકારની ખાત્રી થઈ કે આખું હિન્દુસ્તાન મહત્ત્વપૂર્ણ સ્થાનોથી ભરેલું છે અને તે બધાંની શોધખોળ થવાની આવશ્યકતા છે. એટલા માટે આખા હિન્દુસ્તાનની શોધખોળ કરવા માટે કનિંગહામ સાહેબને ડાયરેક્ટરને બદલે ડાયરેક્ટર-જનરલ બનાવ્યા અને તેમની મદદ માટે બીજા વિદ્વાનોની નેમણુંકો કરી. પરંતુ ૧૮૭૪ સુધી એકલા કનિંગહામ સાહેબ જ ઉત્તર હિંદુસ્થાનમાં શોધખોળનું કામ કરતા હતા. ૧૮૭૪ માં દક્ષિણ ભાગની ગવેષણા કરવા માટે ડૉ. બર્જેસની યોજના કરવામાં આવી.

આ ડિપાર્ટમેન્ટનું કામ કેવળ પ્રાચીન સ્થાનોની શોધ કરવાનું હતું; તેમનું રક્ષણ કરવાનું કામ પ્રાંતિક સરકારોને સ્વાધીન હતું. પણ પ્રાંતિક સરકારોએ આ તરફ લક્ષ્ય ન આપવાથી અનેક પ્રાચીન સ્થાનો, સંરક્ષણના અભાવે, નષ્ટ થવા લાગ્યાં. આ દુર્દશા જોઈ લૉર્ડ લિટને ૧૮૭૮ માં "ક્યુરેટર ઑફ એન્શ્યેન્ટ મોન્યુમેન્ટસ્" નામના એક અધિકારીની નેમણુંક કરવાનો વિચાર કીધો. તે અધિકારી માટે દરેક પ્રાન્તનાં સંરક્ષણીય સ્થાનોની યાદી તૈયાર કરી, તેમાં કયાં કયાં સ્થાનો સુરક્ષિત રહી શકે છે, કયાં કયાં સ્થાનો મરામત કરવા લાયક તો નથી પણ હજી પૂર્ણ નષ્ટ થયાં નથી, અને કયાં કયાં મહત્વપૂર્ણ સ્થાનો તદ્દન નષ્ટ થઈ ગયાં છે; એ સઘળી વિગતો લખવાનું કામ નિશ્ચિત કરવામાં આવ્યું. આ યોજનાના સંબંધમાં 'સેક્રેટરી ઑફ સ્ટેટ' ને લખવામાં આવ્યું પણ તેણે લૉર્ડ લિટનની યોજનાનો અસ્વિકાર કર્યો અને આ કામ કરવાનો ભાર ડાયરેક્ટર ઉપર નાંખવા જણાવ્યું. પરંતુ ૧૮૮૦ માં હિન્દી સરકારે ભારતમંત્રીને લખ્યું કે ડાયરેક્ટર-જનરલને આ કામ કરવા જેટલી ફુરસદ નથી, અને બીજો કોઈ ઉચિત પ્રબંધ કર્યા સિવાય ઘણાં મહત્વનાં સ્થાનો નષ્ટ થતાં જાય છે. ત્યારે ૧૮૮૧ થી લઈને ૧૮૮૩ સુધી મેજર કોલ. આ. ઈ. ની ક્યુરેટર તરીકે નેમણુંક કરવામાં આવી. આ ત્રણ વર્ષમાં એ ક્યુરેટરે "પ્રીઝર્વેશન ઑફ નેશનલ મોન્યુમેન્ટ્સ ઑફ ઇન્ડીઆ" નામના ત્રણ રિપોર્ટો પ્રકટ કર્યા. તે પછી એ ક્યુરેટરનું પદ કાઢી નાંખવામાં આવ્યું.

સને ૧૮૮૫ માં જનરલ કનિંગહામ સાહેબ પોતાના પદથી રિટાયર્ડ થયા. ૧૮૬૨ થી ૧૮૮૫ સુધીમાં તેમણે ૨૪ રિપોર્ટો બહાર પાડયા હતા. આ રિપોર્ટો જોવાથી કનિંગહામ સાહેબના અલૌકિક પરિશ્રમનો ખ્યાલ આવી શકે છે. આટલી યોગ્યતા સાથે આટલું બધું કામ ઘણા થોડા જ માણસોએ કર્યું હશે. તેમના પછી ડાયરેક્ટર-જનરલ તરીકે ડૉ. બર્જેસની નેમણુંક કરવામાં આવી. ત્યારથી અન્વેષણની સાથે સંરક્ષણનું કામ પણ આ ખાતાને સોંપવામાં આવ્યું. સર્વે કરવા માટે હિન્દુસ્તાનના પાંચ ભાગો કરવામાં આવ્યા; અને દરેક ભાગ માટે એક સર્વેયરની યોજના કરવામાં આવી. મુંબઇ; મદ્રાસ; રાજપુતાના અને સિંધ સાથે પંજાબ; મધ્ય પ્રદેશ અને વાયવ્ય પ્રાંત સાથે મધ્ય ભારત; અને આસામ સાથે બંગાલ; એમ પાંચ ભાગો નિયત કરવામાં આવ્યા. પરંતુ સર્વેયર કેવળ ઉત્તર

ભારતના ત્રણ ભાગો માટે જ નિયત થયા. મુંબઈ અને મદ્રાસ પ્રાન્તોનું કામ ડૉ. બર્જેસના હાથમાં જ રહ્યું.

આ સમય સુધી પણ સરકારની ઇચ્છા એ ખાતાને સ્થાયી કરવાની ન હતી. સરકારની સમજ એવી હતી કે પાંચ વરસમાં આ કામ પુરૂં થઇ જશે. એટલા માટે પ્રાચીન લેખોને ઉકેલવા સારૂ એક યુરોપીઅન પંડિતની નેમણુંક કરી અને સાથે દેશી વિદ્વાનોની પણ મદદ લેવાનો નિશ્ચય કર્યો.

૧૮૮૯ માં ડૉ. બર્જેસ પણ પોતાના હોદ્દાથી ફારેગ થયા. આથી એ ખાતાની હાલત ઉતરતી થવા લાગી. આ ખાતાના હિસાબની તપાસ કરવા માટે સરકારે કમિશન નીમ્યું. તેણે પોતાના રિપોર્ટમાં ખર્ચની બાબતમાં કેટલીક કાપકૂપ કરવાની સીફારસ કરી. હિન્દુસ્તાનના લાભ માટે થતા ખર્ચમાં કાપકૂપ કરવાની સીફારસને સ્વીકારવા સરકાર હમ્મેશાં તૈયાર જ હોય છે એ કહેવાની ખાસ આવશ્યકતા નથી. ડૉ. બર્જેસ પછી ડાયરેકટર જનરલનું સ્થાન ખાલી રાખવામાં આવ્યું. બંગાલ અને પંજાબના સર્વેયરોને પણ રજા આપી. આટલું ઓછું કરીને પણ સરકારે ચાલૂ યોજનાને ફક્ત પાંચ જ વર્ષ સુધી જારી રાખવાનું જાહેર કર્યું. પણ સરકારી હુકમ માત્રથી જ કામ એકદમ કેમ થઇ શકે ? ૧૮૯૦ થી ૧૮૯૫ સુધીનાં પાંચ વરસ આ ખાતા માટે ઘણી જ દીનદશામાં વીત્યાં, અને કામ પણ પૂરૂં ન થયું. ૧૮૯૫ થી ૧૮૯૮ સુધી સરકાર વિચાર જ કરતી રહી કે આ વિષયમાં શું કરવું જોઇએ. ૧૮૯૮ માં તેનો એવો વિચાર થયો કે શોધખોળનું કામ બંધ કરીને હવે તો આ ખાતા પાસેથી ફક્ત સંરક્ષણનું જ કામ લેવું જોઈએ. આ નવા વિચાર પ્રમાણે નીચે મુજબ પાંચ ક્ષેત્રો નક્કી કરવામાં આવ્યાં.

(૧) મદ્રાસ અને કુર્ગ (૨) મુંબઇ, સિંધ અને બરાર
(૩) સંયુક્ત પ્રાંત અને મધ્યપ્રદેશ (૪) પંજાબ, બ્રિટિશ બલુચિસ્તાન અને અજમેર
(૫) બંગાલ અને આસામ

૧૮૯૯ ના ફેબ્રુઆરી માસની ૧ લી તારીખે એશિઆટિક સોસાયટિના સમારંભમાં લૉર્ડ કર્ઝને આ ખાતાને ખૂબ ઉન્નત કરવા માટેનો પોતાનો વિચાર જાહેર કર્યો. ત્યારબાદ ૧૯૦૧ માં વાર્ષિક એક લાખ રૂપીઆ ખર્ચ કરવાની આ ખાતાને મંજુરી આપવામાં આવી, અને ડાયરેકટર-જનરલની ફરીથી નેમણુંક કરવામાં આવી. સન ૧૯૦૨ માં નવા ડાયરેકટર-જનરલ માર્શલ સાહેબ હિંદુસ્તાનમાં આવ્યા, ત્યારથી આ ખાતાનો નવો ઇતિહાસ શરૂ થાય છે. તે આંજે કહેવાનું કામ મારૂં નથી. જ્યારે એ ખાતા ઉપર આપણી સત્તા થશે ત્યારે એના ઇતિહાસનું આપણે અવલોકન કરીશું.

ઇંગ્રેજ સરકારના આ કામનું ઉદાહરણ લઈ કેટલાંક દેશી રાજ્યોએ પણ પોતાનાં રાજ્યોમાં આ વિષયના ડિપાર્ટમેંટો ખોલ્યાં છે. ભાવનગર સંસ્થાને કેટલાક પંડિતોદ્વારા કાઠિયાવાડ, ગૂજરાત અને રજપુતાનના અનેક શિલાલેખો અને દાન પત્રોની નકલો મેળવી "ભાવનગર પ્રાચીન શોધ સંગ્રહ" ના નામે એક પુસ્તક દ્વારા તેમને પ્રકાશિત કરી છે.

કાઠિયાવાડના આગળના પૉલિટિકલ એજન્ટ કર્નલ વૉટસનને પ્રાચીન વસ્તુઓ ઉપર બહુ પ્રેમ હતો; તેથી કાઠિયાવાડના કેટલાક રાજાઓએ મળીને રાજકોટમાં "વૉટસન મ્યુઝીઅમ" નામનું પરાણુ-વસ્તુ-સંગ્રહાલય સ્થાપ્યું જેમાં કેટલાક લેખો, તામ્રપત્રો, પુસ્તકો, શિક્કાઓ આદિનો સારો સંગ્રહ થયેલો છે. માઇસોર રાજ્યે પણ આવું એક સંગ્રહાલય સ્થાપ્યું છે; અને સાથે આર્કિઑલૉજીકલ ડિપાર્ટમેંટ પણ સ્વતંત્ર રીતે ઉઘાડયું છે, જે દ્વારા આ જ સુધીમાં અનેક રિપોર્ટો, પુસ્તકો અને લેખસંગ્રહો છપાઈ પ્રસિદ્ધ થયા છે. ત્યાંથી એપિગ્રાફિઆ કર્નાટિકા નામની એક સીરિઝ નીકળે છે જેની અંદર હજારો શિલાલેખો-તામ્રપત્રો ઇત્યાદિ પ્રસિદ્ધ થયાં છે. ત્રાવણકોર, હૈદરાબાદ અને કાશ્મીરનાં રાજ્યોએ પણ આ કામ સ્વતંત્ર રીતે કરવા માંડયું છે. એ સિવાય, ઉદયપુર, ઝાલાવાડ, ગ્વાલીઅર, ભોપાળ, વડોદરા, જુનાગઢ, ભાવનગર, આદિ રાજ્યોમાં પણ સ્થાનિક સંગ્રહાલયો થતાં જાય છે.

બ્રીટિશ રાજ્યમાં સરકાર અને બીજી સંસ્થાઓ અથવા સ્વતંત્ર વ્યક્તિઓ દ્વારા થયેલા પુરાણુ-વસ્તુ-સંગ્રહને મુંબઈ, મદ્રાસ, કલકત્તા, નાગપુર, અજમેર, લાહોર, લખનૌ, મથુરા, સારનાથ, પેશાવર, આદિ સ્થળોનાં પદાર્થ-સંગ્રહાલયોમાં સુરક્ષિત રાખવામાં આવે છે; તેમ જ ઘણીક વસ્તુઓને લંડનના બ્રીટિશ મ્યુઝિઅમમાં મોકલવામાં આવે છે. એ બધી વસ્તુઓનાં તે તે સંસ્થા દ્વારા પ્રકટ કરવામાં આવતા રિપોર્ટો અને કેટલૉગોમાં વર્ણન આપેલાં હોય છે. શિલાલેખો, તામ્રપત્રો અને શિક્કાઓ એ વિષયનાં ખાસ જુદાં પુસ્તકો અને ગ્રંથમાળાઓ પણ પ્રકટ થાય છે.

જેવી રીતે હિંદુસ્તાનમાં આ પ્રમાણે પુરાતત્ત્વની ગવેષણાનું કામ ચાલ્યું છે, તેવી રીતે યુરોપમાં પણ ચાલ્યું છે. ફ્રાંસ, જર્મની, ઑસ્ટ્રિયા, ઇટલિ, રશીયા આદિ રાજ્યોએ પોતપોતાનાં રાજ્યોમાં એ વિષય માટે સ્વતંત્ર સોસાઇટિયો, ઍકેડેમીઓ, વીગેરે સ્થાપેલી છે અને ત્યાંના પણ અનેક વિદ્વાનોએ હિન્દુસ્તાનના સાહિત્ય અને ઇતિહાસને પ્રકાશમાં આણવા ઘણો પરિશ્રમ ઉઠાવ્યો છે. નષ્ટપ્રાય થતા આપણા હજારો ગ્રંથોને તેમણે ઉદ્ધર્યા છે અને સંગ્રહ્યા છે, વાંચ્યા છે અને છપાવ્યા છે. સંસ્કૃત અને પ્રાકૃત સાહિત્યને પ્રકાશમાં આણવાનું જેટલું કામ જર્મન વિદ્વાનોએ કર્યું છે તેટલું બીજા કોઇએ કર્યું નથી. તુલનાત્મક ભાષાશાસ્ત્રને જેટલું જર્મનોએ ખીલવ્યું છે તેનો શતાંશ પણ બીજાઓએ ખીલવ્યું નથી. બીજી પણ બધી મૌલિક શોધો મોટે ભાગે જર્મન વિદ્વાનોના હાથે જ થયેલી છે. અંગ્રેજોનો હિંદુસ્તાન સાથે ખાસ સંબંધ હોવાથી જ તેઓ આ વિષયમાં થોડું ઘણું કરવાનો ડોળ કરે છે એટલું જ. અસ્તુ.

આ પ્રમાણે દેશ અને વિદેશમાં વ્યક્તિ અને સંસ્થાએ કરેલા પુરાતત્ત્વાનુસંધાનથી આપણી પ્રાચીન સંસ્કૃતિના ઘણાક અજ્ઞાત અધ્યાયો લખાયા છે, અને લખાય છે. શિશુનાગ, નંદ, મૌર્ય, ગ્રીક, શાતકર્ણી, શક, પાર્થીઅન, કુશન, ક્ષત્રપ, આભીર, ગુપ્ત, હૂણ,

યૌધેય, એસ, લિચ્છવી, પરિવ્રાજક, વાકાટક, મૌખરી, મૈત્રક, ગુહિલ, ચાવડા, ચાલુક્ય, પ્રતિહાર, પરમાર, ચાહમાન, રાષ્ટ્રકૂટ, કચ્છવાહા, તોમર, કલચૂરી, ત્રૈકુટક, ચંદેલા, યાદવ, ગુર્જર, મિહિર, પાલ, સેન, પલ્લવ, ચોલ, કદંબ, શિલાર, સેંદ્રક, કાકતીય, નાગ, નિકુંભ, બાણ, મત્સ્ય, શાલંકાયન, શૈલ, મૂષક આદિ અનેક પ્રાચીન રાજવંશો. કે જેમના વિષયમાં એક અક્ષર જેટલું પણ આપણે જાણતા ન હતા તેમના વિસ્તૃત ઇતિહાસો જાણવામાં આવ્યા છે. અનેક જાતિ, ધર્મ, સંપ્રદાય, ધર્માચાર્ય, વિદ્વાન્, ધનવાન્, દાની અને વીર પુરૂષોના વૃત્તાન્તોનો પરિચય થયો છે; અને અસંખ્ય પ્રાચીન નગર, મંદિર, સ્તૂપ, અને જળાશયોની હકીકતો મળી છે. સો વર્ષ પહેલાં આપણે આમાંનું કંઈ પણ જાણતા ન હતા.

આ ઉપરથી સ્પષ્ટ સમજી શકાય એમ છે કે પુરાતત્ત્વના સંશોધનનું કેટલું બધું મહત્ત્વ છે. તે દેશના ઇતિહાસને શુદ્ધ અને સંપૂર્ણ બનાવે છે. તેનાથી પ્રજાના ભૂતકાળનું યથાર્થ જ્ઞાન થાય છે; અને ભવિષ્યકાળમાં કયે માર્ગે જવું તેનું ખરૂં સૂચન મળે છે.

વિદ્વાનોનો અભિપ્રાય છે કે પુરાતત્ત્વ સંબંધી જે કામ અદ્યાપિ થયું છે તે ભારતવર્ષની વિશાલતા અને વિવિધતા તરફ લક્ષ્ય કરતાં હજી બાળપોથીનું પહેલુંજ પાનું ઉઘાડવામાં આવ્યું છે એમ કહેવામાં કોઈ પણ જાતની અત્યુક્તિ થતી નથી. આ દેશમાં એટલી બધી વસ્તુઓ છુપાયલી, દટાયલી, ખોવાયલી પડી છે કે જ્યારે સેંકડો વિદ્વાનો સૈકાઓ સુધી પરિશ્રમ કર્યા કરશે ત્યારે જ તેમને પ્રકાશમાં લાવી શકશે.

ભારતના રાષ્ટ્રીય જીવનના નવીન ઇતિહાસ માટે બંધાયેલા કોરા પુસ્તકમાં "ૐ નમઃ" લખવાનું મોટું માન ગૂજરાતને મળે એવો ઈશ્વરીય સંકેત દેખાય છે. તેથી રાષ્ટ્રીય ઇતિહાસના દરેક અધ્યાયમાં ગૂજરાતનો આદિ ઉલ્લેખ આવે એમ જો આપણે ઈચ્છીએ તો દરેક વિષયમાં આપણે પ્રગતિ કરવી જોઈએ; અને એવા જ કોઈ અજ્ઞાત સંકેતથી આપણે રાષ્ટ્રીય શિક્ષણ મંદિરની સાથે **પુરાતત્ત્વ મંદિર**ની પણ સ્થાપના કરી છે. એને સફળ બનાવવાનું લક્ષ્ય આપણે દરેક વિદ્યાર્થીમાં પ્રભુ ઉત્પન્ન કરે એમ ઈચ્છી હું મારૂં વ્યાખ્યાન સમાપ્ત કરૂં છું.*

---

*પુરાતત્ત્વ મંદિર ગ્રંથાવલીમાં પ્રકટ થએલ "આર્યવિદ્યા વ્યાખ્યાનમાળા" નામના પુસ્તકમાંથી આ વ્યાખ્યાન અત્ર ઉદ્ધૃત કરવામાં આવ્યું છે.

વૈશાલીના ગણસત્તાક રાજ્યનો નાયક રાજા ચેટક.

જૈન સાહિત્યમાં વૈશાલીનો રાજા ચેટક ઘણી રીતે પ્રસિદ્ધ છે. શ્રમણ ભગવાન્ મહાવીરે પ્રચારેલા ધર્મના એક મહાન્ ઉપાસક તરીકે તો તેની ખ્યાતિ છે જ, પરંતુ બીજી રીતે વ્યાવહારિક પ્રસંગોથી પણ તેની તેટલી જ પ્રસિધ્ધિ છે. એ પ્રસિદ્ધિનું પહેલું કારણ તો એ છે કે જૈન ધર્મના છેલ્લા તીર્થંકર નિગ્રન્થ જ્ઞાતપુત્ર શ્રી મહાવીરના ઘરાણા સાથે તેનો બેવડો સંબંધ હતો. શ્રી મહાવીરની માતા ત્રિશલા ક્ષત્રિયાણી એ ચેટકની સગી બ્હેન થતી હતી અને એ ત્રિશલાના મોટા પુત્ર અને મહાવીરના મોટા ભાઈ નન્દિવર્ધન સાથે એની વચલી પુત્રી નામે જેષ્ઠાએ લગ્ન કર્યા હતાં. બીજું કારણ, જેવી રીતે મહાવીરના ઘરાણા સાથે એનો કૌટુંબિક સંબંધ હતો તેવી જ રીતે તત્કાલીન ભારતના બીજા કેટલાક પ્રધાન રાજવંશો સાથે પણ એનો સગપણનો સંબંધ બંધાએલો હતો. સિંધુસૌવીરનો રાજા ઉદ્રાયણ, અવંતીનો રાજા પ્રદ્યોત, કોશાંબીનો રાજા શતાનિક, ચંપાનો રાજા દધિવાહન અને મગધનો રાજા બિંબિસાર એ બધા એના જામાત થતા હતા. જૈન સાહિત્યમાં કુણિક અથવા કોણિકના અને બૌદ્ધસાહિત્યમાં અજાતશત્રુના નામે પ્રસિદ્ધ પામેલો મગધનો સમર્થ સમ્રાટ્; તથા સામાન્ય રીતે જૈન, બૌદ્ધ અને બ્રાહ્મણ-ત્રણે સંપ્રદાયના કથાસાહિત્યમાં વ્યાપક થએલો ઉદયન વત્સરાજ; એ ચેટકના સગા દૌહિત્ર થતા હતા. ત્રીજું તે વખતે હયાતી ધરાવતા ભારતના ગણસત્તાક રાજ્યોમાંના એક પ્રધાન રાજ્યતંત્રનો તે વિશિષ્ટ નાયક કહેવાતો હતો. અને છેલ્લું, જૈન પરંપરા પ્રમાણે આખા આર્યાવર્તમાં ક્યારે યે નહી થએલી એવી એક ભયંકર જનનાશક લડાઈ એને લડવી પડી હતી, જેમાં એનો પ્રતિપક્ષી, એનો પોતાનો જ સગો દૌહિત્ર મગધરાજ અજાતશત્રુ હતો !

જૈન પરંપરામાં આટલી બધી પ્રસિદ્ધિ મેળવનાર અને ઉક્ત રીતે તાત્કાલીન ભારતમાં એક મહત્ત્વનું સ્થાન પ્રાપ્ત કરનાર એ રાજાના વિષયમાં જૈન સાહિત્ય સિવાય અન્યત્ર ક્યાંયે ઉલ્લેખ મળી આવતો ન હોવાથી ઐતિહાસિકોની દૃષ્ટિમાં અદ્યાપિ એનું અસ્તિત્વ ધ્યાન ખેંચવા લાયક રીતે અંકિત થયું નથી. બ્રાહ્મણ સંપ્રદાયના સાહિત્ય તરફ નજર કરિએ છીએ ત્યારે તેમાં, એ સમયના ભારતના મગધ, કોસલ, કોશાંબી અને અવન્તી જેવા રાજસત્તાક રાજ્યોની તો નાની મોટી નોંધો લેવાએલી મળી આવે છે ખરી, પણ વૈશાલી જેવું સ્થાન કે જેમાં ગણસત્તાક રાજ્યપદ્ધતિ ચાલતી હતી તેનો નામનિર્દેશ પણ તેમાં ભાગ્યે જ જડી આવે છે.

બૌધ્ધ સાહિત્યમાં વૈશાલી અને ત્યાં આધિપત્ય ભોગવતી લિચ્છવી નામની ક્ષત્રિય જાતિના સંબંધમાં ઘણી ઘણી વાતો લખેલી મળી આવે છે, પરંતુ એ સ્થાન અને એ

સમાજ ઉપર સર્વોપરિ અધિકાર ચલાવનાર કોણ હતો તેનો ઉલ્લેખ બૌધ્ધ લેખકો પણ કાંઈ કરતા નથી.

હિન્દુસ્થાનના ઐતિહાસિક યુગના ઉદ્‌ગમકાલ તરીકે ગણાતા એ સમયના ઇતિહાસના અભ્યાસિઓનું ધ્યાન ખેંચવા માટે, આ લેખમાં હું જૈન મતે વૈશાલીના ગણસત્તાક રાજ્યના રાજા મનાતા એ ચેટક અને તેની સાથે સંબંધ ધરાવનારા રાજાઓના સંબંધમાં જેટલી પરંપરા જૈન ગ્રન્થકારોએ નોંધી રાખી છે તેનાં સાર અને સંકલના કરવા પ્રયત્ન કરૂં છું.

૧. તીર્થંકર શ્રી મહાવીરના ઘરાણા સાથે ચેટકનો સંબંધ.

ઉપર મેં સૂચવ્યું છે કે તીર્થંકર શ્રી મહાવીરની માતા ત્રિશલા ક્ષત્રિયાણી ચેટક રાજાની સગી બ્હેન થતી. હતી. તેનો પુરાવો જૈન આગમોમાં જૂનામાં જૂના આગમ તરીકે મનાતા આવશ્યક સૂત્રની ચૂર્ણિમાં મળે છે. એ ચૂર્ણિ ક્યારે રચાઇ તેનો નિશ્ચય અદ્યાપિ જોઇએ તેવો થઈ શકયો નથી, પરંતુ વિક્રમના આઠમા સૈકા કરતાં અર્વાચીન નથી તેટલું તો ચોક્કસ જણાય છે. આવશ્યક સૂત્રની સસ્કૃત ટીકા કરનાર આચાર્ય હરિભદ્રનો સમય મેં વિક્રમ સંવત્ ૮૦૦ ની આસપાસ નિર્ણીત કર્યો છે. (જુઓ **જૈન સાહિત્ય સંશોધક**, ખંડ ૧, પૃષ્ઠ ૫૩). આચાર્ય હરિભદ્રે પોતાની એ સંસ્કૃત ટીકામાં ઉક્ત પ્રાચીન ચૂર્ણિમાંથી સેંકડો અવતરણો લીધાં છે, તેથી હરિભદ્ર પહેલાં ચૂર્ણિકારનો સમય સ્વતઃ સિધ્ધ છે. એ ચૂર્ણિમાં શ્રી મહાવીરની માતા ત્રિશલાને સ્પષ્ટ રૂપે ચેટકની ભગિની લખી છે અને તે જ ઠેકાણે ત્રિશલાના મોટા પુત્ર નંદિવર્ધનની ભાર્યા–શ્રી મહાવીરની ભોજાઈ–ને ચેટકની પુત્રી જણાવી છે. પાઠ આ પ્રમાણે છેઃ–

भगवतो माया चेडगस्स भगिणी; भो (जा) यी चेडगस्स धूया।

'ભગવાન મહાવીરની માતા, ચેટકની ભગિની;[1] ભોજાઈ ચેટકની પુત્રી' આ ઉલ્લેખને ધ્યાનમાં રાખી પાછળના બીજા ગ્રન્થકારોએ પણ કેટલાંક ઠેકાણે ચેટકને મહાવીરના માતુલ (મામા) તરીકે ઉલ્લેખ્યો છે. મહાવીરના જીવનવૃત્તાંતની નોંધ જૈન આગમોમાં સૌથી પ્રાચીન અને પ્રથમ ગણાતા આગમ આચારાંગ સૂત્રમાં લેવાએલી છે. તેમાં મહાવીરની માતાનું એક **विदेहदिन्ना** નામ પણ લખેલું છે. જેમકે—

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स अम्मा वासिट्ठस्सगुत्ता तीसेणं तिन्नि नामधिज्जा एवमाहिज्जंति, तं जहा तिसला इवा विदेहदिन्निा इवा पियकारिणो इ वा।

(આચારાંગ, આગમોદય સમિતિ દ્વારા પ્રકાશિત, પૃ. ૪૨૨)

---

૧. જૂઓ કલ્પસૂત્રની ધર્મસાગર ગણિકૃત કિરણાવલી નામે ટીકા પૃષ્ઠ ૧૨૪ '**चेटकमहाराजस्य भगवन्मातुलस्य**–'ભાવનગરની આત્માનંદ જૈન સભાએ પ્રકટ કરેલ, ધર્મસાગર ગણિ કૃત ટીકા કિરણાવલી પૃ. ૮૩; તથા વિનયવિજયોપાધ્યાય કૃત ટીકા સુબોધિકા, પૃ. ૧૪૪.

'શ્રમણ ભગવાન્ મહાવીરની માતા-જેનું વાસિષ્ઠ ગોત્ર હતું, તેનાં ત્રણ નામ હતાં એમ કહેવાય છે; જેમ કે ૧ ત્રિશલા, ૨ વિદેહદિન્ના, અને ૩ પ્રિયકારિણી.'' 'વિદેહદિન્ના' ના વ્યુત્પત્ત્યર્થ ઉપરથી જણાય છે કે તેનો જન્મ વિદેહના રાજકુળમાં થયો હતો. માતાના આ કુળ સૂચક નામ ઉપરથી મહાવીરનું પણ એક નામ વૈદેહદિન્ન હતું જેનો ઉલ્લેખ આચારાંગ સૂત્રમાં ઉપર્યુક્ત સૂત્ર પછી તરત જ કરવામાં આવેલો છે. જેમકે—

समणे भगवं महावीरे नाम नायपुत्ते नायकुलनिव्वत्ते विदेहे विदेहदिन्ने विदेहजच्चे विदेहसूमाले। (પૃ. ૪૨૨)

આ બંને અવતરણો કલ્પસૂત્રમાં પણ અવિકલરૂપે ઉદ્ધૃત થએલાં છે. ત્યાં ટીકાકારો વિદેહદિન્નની વ્યાખ્યા આ પ્રમાણે કરે છેઃ विदेहदिन्ना त्रिशला तस्या अपत्यं वैदेहदिन्नः। આગળ ઉપર આપણે જોઇશું કે વૈશાલી એ એક વિદેહનો જ ભાગ હતો. અને તેથી ચેટકનું ઘરાણું વિદેહ રાજકુળ તરીકે લેખાય એ સ્પષ્ટ જ છે. આ રીતે મહાવીરની માતા ત્રિશલા વિદેહ રાજકુળના ચેટકની બ્હેન થતી હતી તે ઉક્ત આવશ્યકચૂર્ણિ અને આચારાંગના ઉલ્લેખ ઉપરથી સ્પષ્ટ થઈ જાય છે.

ત્રિશલાના મોટા પુત્ર અને મહાવીરના મોટા ભાઇ નંદિવર્ધનની સ્રી ચેટકની પુત્રી થતી હતી તેનો એક ઉલ્લેખ તો ઉપર આવી ગયો છે. બીજો ઉલ્લેખ પણ એજ આવશ્યકચૂર્ણિમાં આગળ ઉપર થએલો છે જેમાં ચેટકની કઇ પુત્રીએ કોની સાથે લગ્ન કર્યાં તેની નોંધ લેવામાં આવી છે. એ નોંધ પ્રમાણે ચેટકને એકંદર સાત પુત્રીઓ હતી જેમાંથી છનાં લગ્ન થયાં હતાં અને એક કુમારિકા જ રહી હતી. એ સાત પુત્રીઓમાંથી પાંચમી પુત્રી જેનું નામ જ્યેષ્ઠા હતું તેનું લગ્ન નન્દિવર્ધન સાથે થયું હતું. ઉલ્લેખ આ પ્રમાણે છે:

'जेट्ठा कुंडग्गामे वद्धमाणसामिणो जेट्ठस्स नन्दिवद्धणस्स दिन्ना'

જ્યેષ્ઠા [નામે કન્યા] કુંડગ્રામમાં વર્દ્ધમાન (મહાવીરનું મૂળ નામ) સ્વામિના જ્યેષ્ઠ [બંધુ] નન્દિવર્ધનને આપી હતી.' આ ઉલ્લેખ આચાર્ય હેમચંદ્રે પોતાના મહાવીરચરિત્રમાં પણ કરેલો છેઃ-

कुण्डग्रामाधिनाथस्य नन्दिवर्धनभूभुजः ।
श्रीवीरनाथज्येष्ठस्य, ज्येष्ठा दत्ता यथारुचि ॥[१]

શ્રી મહાવીરના મોટા ભાઇનું નામ નન્દિવર્ધન હતું તેનો સ્પષ્ટ ઉલ્લેખ તો આચારાંગ અને કલ્પસૂત્ર-એમ બંને મૂળ સૂત્રોમાં આવેલો છે,-યથા

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स जिट्ठे भाया नंदिवद्धणे कासवगुत्तेणं। (આચારાંગ પૃ૦ ૪૨૨, કલ્પસૂત્રમાં પણ આજ પાઠ છે.)

૧. ભાવનગરની જૈન ધર્મ પ્રસારક સભાએ છપાવેલ 'ત્રિષષ્ઠીશલાકાપુરુષચરિત્ર'ના ૧૦ પર્વનું પૃષ્ઠ ૭૭.

[કેટલાક દેશો અને કેટલીક જાતોમાં મામાની કન્યા ઉપર ભાણેજનો પ્રથમ હક્ક હોય એમ પ્રચલિત રીવાજ અને જૂનાં પ્રમાણો ઉપરથી સ્પષ્ટ જણાઈ આવે છે. મહારાષ્ટ્રમાંની મરાઠા જાતિમાં ખાસ કરીને આજે પણ એ રીવાજ ચાલૂ છે. આવશ્યક સૂત્રની ટીકામાં હરિભદ્રસૂરિએ એક ઠેકાણે 'દેશકથા'નું વર્ણન કરતાં જૂની ગાથા ઉતારી છે જેમાં જણાવ્યું છે કે દેશ દેશના રીત રીવાજો જુદા જુદા હોઈ, કોઈ દેશમાં જ્યારે એક વસ્તુ ગમ્ય કે સ્વીકાર્ય હોય છે ત્યારે બીજા દેશમાં તે જ બાબત અગમ્ય કે અસ્વીકાર્ય હોય છે. ઉદાહરણાર્થ-જેમ અંગ અને લાટ દેશના લોકોને માતુલદુહિતા એટલે મામાની છોકરી ગમ્ય હોય છે ત્યારે ગોડ દેશના લોકો માટે તે ભગિની હોઈ અગમ્ય છે. ગાથા આ પ્રમાણે-

छंदो गम्मागम्मं जह माउलदुहियमंग-लाडाणं।
अण्णेर्सि सा भगिणी गोलाइणं अगम्मा उ ॥

જેમ મહાવીરની મામાની પુત્રીએ પોતાની ફઈના પુત્ર નન્દિવર્ધન સાથે લગ્ન કર્યાં હતાં તેમ ખુદ મહાવીરની પુત્રી પ્રિયદર્શનાનાં લગ્ન પણ તેની સગી ફઈ સુદર્શનાના પુત્ર જમાલિ નામના ક્ષત્રિય કુમાર સાથે થયાં હતાં જેનો ઉલ્લેખ ઘણા પ્રાચીન અર્વાચીન ગ્રંથોમાં થએલો છે. આવશ્યક સૂત્રના ભાષ્ય, ચૂર્ણિ, ટીકા આદિમાં પણ એ બાબતની સ્પષ્ટ નોંધ છે. યથા—

कुण्डपुरनगरं तत्थ जमाली सामिस्स भाइणिज्जो...तस्स भज्जा सामिस्स दुहिता। (હરિભદ્ર કૃત આવશ્યક સૂત્ર ટીકા, પૃષ્ઠ, ૩૧૨)]

૨. ભારતનાં બીજાં કેટલાંક પ્રધાન રાજ્યો સાથે ચેટકનો કૌટુંબિક સંબંધ.

ઉપરના ભાગમાં જણાવ્યા પ્રમાણે ચેટકને એકંદર સાત પુત્રીઓ હતી જેમાં એક તો કુમારિકા જ રહી હતી અને બાકીની છનાં, ભારતના તે વખતના જુદા જુદા નામાંકિત રાજાઓ સાથે લગ્ન થયાં હતાં. એ પુત્રીઓ અને જેમની સાથે તેમનાં લગ્ન થયાં તે રાજાઓ વિગેરેનો ટુંક ઉલ્લેખ આવશ્યક ચૂર્ણિમાં નીચે પ્રમાણે કરેલો છે.

एतो य वेसालीए नगरीए चेडओ राया हेहयकुलसंभूतो। तस्स देवीणं अण्णमण्णाणं सत्त धूताओ। पभावती, पउमावती, मिगावती, सिवा, जेट्ठा, सुजेट्ठा, चेल्लण त्ति। सो चेडओ सावओ परवीवाहकरणस्स पच्चक्खातं। धूताओ ण देति कस्स त्ति। ताओ माति मिस्सगाओ रायं आपुच्छित्ता अण्णेसिं अच्छितकाणं सरिसगाणं देन्ति। पभावती वीतिभए उद्दायणस्स दिण्णा, पउमावती चंपाए दहिवाहणस्स, मिगावती कोसंबीए सताणियस्स, सिवा उज्जेणीए पज्जोतस्स, जेट्ठा कुंडग्गामे वद्धमाणसामिणो जेट्ठस्स नन्दिवद्धणस्स दिण्णा। सुजेट्ठा चेल्लणा य देवकारिओ अच्छंति।[1]

અર્થાત્—'વૈશાલી નગરીમાં હૈહયવંશમાં જન્મેલો ચેડગ (ચેટક) નામે રાજા તેને

૧ થોડા અક્ષરોના ફેરફાર સાથે આનો આ જ ઉલ્લેખ હરિભદ્રવાળી આવશ્યક ટીકામાં પણ આપેલો છે. જુઓ આગમોદય સમિતિદ્વારા પ્રકાશિત એ ટીકા, પૃષ્ઠ ૬૭૬-૭.

જુદી જુદી રાણીઓથી સાત પુત્રીઓ થઈ:-૧ પ્રભાવતી, ૨ પદ્માવતી, ૩ મૃગાવતી, ૪ શિવા, ૫ જ્યેષ્ઠા, ૬ સુજ્યેષ્ઠા, અને ૭ ચેલ્લણા. તે ચેટગ શ્રાવક હોવાથી તેણે કોઇનાં પણ લગ્ન ન કરવાની પ્રતિજ્ઞા લીધેલી હતી, તેથી તે પોતાની પુત્રીઓનાં લગ્ન નથી કરતો, આથી તે પુત્રીઓની માતાઓએ રાજાની સંમતિ મેળવી પોતાને ઇચ્છિત અને પુત્રીઓને સદૃશ એવા રાજાઓને તે કન્યાઓ આપી. જેમાં ૧ પ્રભાવતી વીતિભયના ઉદાયનને, ૨ પદ્માવતી ચંપાના દધિવાહનને, ૩ મૃગાવતી કૌશાંબીના શતાનીકને, ૪ શિવા ઉજ્જયિનીના પ્રદ્યોતને, અને ૫ જ્યેષ્ઠા કુંડગામમાં વર્દ્ધમાન સ્વામિના મોટા ભાઈ નંદિવર્દ્ધનને પરણાવી હતી. સુજ્યેષ્ઠા અને ચેલ્લણા [ત્યાં સુધી] કુમારિકા જ હતી.' આની આ જ હકીકત આચાર્ય હેમચંદ્રે પણ મહાવીરચરિત્રમાં, પોતાના શબ્દોમાં આ પ્રમાણે નોંધી છે-

इतश्च वसुधावध्वा मौलिमाणिक्यसन्निभा ।
वैशालीति श्रीविशाला नगर्यस्त्यगरीयसी ॥
आखंडल इवाखण्डशासनः पृथिवीपतिः ।
चेटीकृतारिभूपालस्तत्र चेटक इत्यभूत् ॥
पृथग्राज्ञीभवास्तस्य बभूवुः सप्त कन्यकाः ।
सप्तानामपि तद्राज्यांगानां सप्तेव देवताः ॥
प्रभावती पद्मावती मृगावती शिवापि च ।
ज्येष्ठा तथैव सुज्येष्ठा चिल्लणा चेति ताः क्रमात् ॥
चेटकस्तु श्रावकोऽन्यविवाहनियमं वहन् ।
ददौ कन्या न कस्मैचिदुदासीन इव स्थितः ॥
तन्मातर उदासीनमपि ह्यापृच्छ्य चेटकम् ।
वराणामनुरूपाणां प्रददुः पञ्च कन्यकाः ॥
प्रभावती वीतभयेश्वरोदायनभूपतेः ।
पद्मावती तु चंपेशदधिवाहनभूभुजः ॥
कौशाम्बीशशतानीकनृपस्य तु मृगावती ।
शिवा तूज्जयिनीशस्य प्रद्योतपृथिवीपतेः ॥
कुण्डग्रामाधिनाथस्य नन्दिवर्धनभूभुजः ।
श्रीवीरस्वामिज्येष्ठस्य ज्येष्ठा दत्ता यथारुचि ॥
सुज्येष्ठा चिल्लणा चापि कुमार्याविव तस्थतुः ॥
रूपश्रियोपमाभूते ते द्वे एव परस्परम् ॥[1]

આ છેલ્લી બન્ને પુત્રીઓ જે કુમારિકા રહેલી છે તેમાંથી ચેલ્લણા મગધના રાજા શ્રેણિક સાથે કેમ પરણે છે અને સુજ્યેષ્ઠા કુમારિકાવસ્થામાં જ જૈન ભિક્ષુણી કેમ થઈ જાય છે તેની હકીકત આગળ ઉપર જોઇશું. એ પહેલાં પાંચે પરિણીત પુત્રીઓના વિષયમાં જરા વધારે વિસ્તારથી તપાસ કરિએ. આ પાંચમાંથીયે વયથી કનિષ્ઠ પણ નામથી જ્યે-

૧ મહાવીરચરિત્ર, ૫૪-૭૭,

થના વિષયમાં તો ઉપર જે નોંધ લીધી છે તે કરતાં વધારે કાંઇ હકીકત જૈનગ્રંથકારો આપતા નથી. તેથી હવે ચાર જ પુત્રીઓની હકીકત આપણે જાણવાની રહી.

પ્રભાવતી.

ઉપર આપેલા ઉતારા પ્રમાણે ચેટકની પ્રથમ પુત્રીનું નામ પ્રભાવતી હતું અને તે વીતિભયના ઉદાયન વેરે પરણી હતી. આ ઉદાયનનો ઉલ્લેખ ઘણા જૈન ગ્રંથોમાં થએલો છે. સૌથી જૂનો ઉલ્લેખ ખાસ ભગવતી નામના સુપ્રસિદ્ધ સૂત્રમાંથી મળી આવે છે. એ સૂત્રના ૧૩ મા શતકના, ૬ ઠા ઉદ્દેશકમાં, એના દેશસ્થાનાદિની નોંધ આ પ્રમાણે લેવાએલી છેઃ

तेणं कालेणं तेणं समयेणं सिंधुसोवीरेसु जणवएसु वीतीभए नामं नगरे होत्था। तस्स णं वीतीभयस्स नगरस्स बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए एत्थ णं मियवणं नामं उज्जाणे होत्था। तत्थ णं वीतीभए नगरे उदायणे नामं राया होत्था...तस्स...रन्नो पभावती नामं देवी होत्था...तस्स णं उदायणस्स रन्नो पुत्ते पभावतीए देवीए अत्तए अभीतिनामं कुमारे होत्था।...तस्स णं उदायणस्स रन्नो नियए भायणेज्जे केसी नामं कुमारे होत्था।...से णं उदायणे राया सिंधुसोवीरप्पामोक्खाणं सोलसण्हं जणवयाणं वीतीभयप्पामोक्खाणं तिण्हं तेसट्ठीणं नगरागरसयाणं महासेणप्पामोक्खाणं दसण्हं राईणं बद्धमउडाणं विदिन्नछत्तचामरवालवीयणाणं अन्नेसिं च बहूणं राईसरतलवर जाव सत्थवाहप्पभिईणं आहेवच्चं जाव कारेमाणे पालेमाणे समणोवासए अभिगय जीवाजीवे जाव विहरइ।[1]

તાત્પર્યાર્થ—તે કાલ અને તે સમયમાં, સિંધુસૌવાર નામના દેશમાં વીતિભય નામે એક શહેર હતું. તે શહેરની ઉત્તર-પૂર્વ બાજૂએ મૃગવન નામે નગરોદ્યાન હતું. તે વીતિભય શહેરમાં ઉદાયન નામે રાજા હતો, તે રાજાની પ્રભાવતી નામે પટરાણી હતી. તેને અભીતિ નામે પુત્ર હતો. તે ઉદાયન રાજાને કેસી નામે એક કુમાર ભાણેજ હતો. એ ઉદાયન રાજા સિંધુસૌવીર આદિ સોળ જનપદ, વીતિભય આદિ ત્રણસો ત્રેસઠ નગર અને આકર (ખાણ) તથા મહાસેન પ્રમુખ દશ મોટા મુકુટબદ્ધ રાજાઓનો, તેમ જ બીજા અનેક નગરરક્ષક, દણ્ડનાયક, શેઠ, સાર્થવાહ આદિ જનસમૂહનો સ્વામી હતો. એ શ્રમણોપાસક અર્થાત્ જૈનશ્રમણોનો ઉપાસક હતો અને જૈનશાસ્ત્ર પ્રતિપાદિત જીવ અજીવ આદિ તત્ત્વ-પદાર્થનો જાણકાર હતો. ઇત્યાદિ.

આ સૂત્રપાઠ ઉપરથી સ્પષ્ટ જણાય છે કે ચેટકની મોટી પુત્રી પ્રભાવતીનાં લગ્ન વીતિભયના ઉદાયન સાથે થએલાંનો જે ઉલ્લેખ આવશ્યક ચૂર્ણિમાં કરેલો છે તે 'પરંપરાને બરાબર અનુસરતો છે. આ સૂત્ર પાઠમાં ઉદાયનને જે મહાસેન પ્રમુખ દશ મુકુટબદ્ધ રાજાઓનો સ્વામી જણાવ્યો છે તે હકીકત ખાસ વિચારવા જેવી છે. મહાસેન સિવાયના બીજા કયા નવ રાજા એના આજ્ઞાંકિત હતા તેની નોંધ તો કોઇ પણ જૈન ગ્રંથમાં મારા જોવામાં આવી નથી. પણ મહાસેન શી રીતે એનો આજ્ઞાંકિત થયો તેની કથા ઘણા

[1] ૧. આગમોદયસમિતિદ્વારા પ્રકાશિત ભગવતી સૂત્ર, પૃષ્ઠ ૬૧૮.

ગ્રંથોમાં આપેલી છે. આ મહાસેન, તે ઇતિહાસપ્રસિદ્ધ અવન્તીનો રાજા તે જ મહાસેન છે જેનું વધારે પ્રખ્યાતિ પામેલું નામ પ્રદ્યોત અથવા ચંડપ્રદ્યોત છે. અવંતીના એ મહાસેન ઉપર ઉદાયને જે નિમિત્તથી ચઢાઈ કરી એને પરાજિત કર્યો તેનું વર્ણન, આવશ્યક ચૂર્ણિ અને ટીકા બંનેમાં દશપુરનગરની ઉત્પત્તિ બતાવતાં કરેલું હોઈ તેનો સારાર્થ આ પ્રમાણે છેઃ—

એક વખતે કેટલાક મુસાફરો સમુદ્રની યાત્રા કરતા હતા. સમુદ્રમાં ખૂબ તોફાન થવાથી તેમનું વહાણ ખરાબે ચઢયું અને કોઈ પણ રીતે તે આગળ વધતું ન હતું. તેથી લોકો બહુ ગભરાયા. તેમની આ દશા એક દેવના જોવામાં આવી અને તેથી પોતાની શક્તિ વડે તે વહાણને ખરાબામાંથી બહાર કાઢી રસ્તે પાડયું અને વળી તે લોકોને મહાવીર તીર્થંકરની ચંદનકાષ્ઠની બનાવેલી એક મૂર્તિ—જે તે દેવે જાતે જ બનાવી હતી—લાકડાની પેટીમાં બંધ કરીને આપી અને કહ્યું કે આમાં દેવાધિદેવની મૂર્તિ મુકેલી છે. એના પ્રભાવથી તમે સહિસલામત રીતે સમુદ્રપાર જઇ શકશો. થોડા જ દિવસોમાં એ વહાણ સિંધુસૌવીરના કાંઠે આવી લાગ્યું. પછી તે લોકોએ દેવે આપેલી તે મૂર્તિને વીતભયમાં ઉતારી દીધી. તેને ત્યાંના રાજા ઉદાયનની રાણી પ્રભાવતીએ પોતાના મહેલમાં એક ચૈત્યગૃહ બનાવી તેમાં સ્થાપી અને હંમેશાં તેની પૂજા કરવા લાગી. રાજા જો કે પહેલાં તો તાપસધર્મિઓનો ભક્ત હતો પણ પાછળથી ધીમે ધીમે તે એ મૂર્તિ ઉપર શ્રદ્ધાવાળો થવા લાગ્યો. એક દિવસે રાણી પ્રભાવતી નાચ કરતી હતી અને રાજા વીણા વગાડતો હતો. તે વખતે રાજાની દૃષ્ટિમાં રાણીનું માથું નહીં દેખાવાથી તે અધીરો થયો અને તેથી તેના હાથમાંથી વીણા વગાડવાનો ગજ સરી પડયો. રાણી આ જોઇ ગુસ્સે થઈ અને બોલી કે "સ્વામિન્! શું મ્હેં ખરાબ નાચ કર્યો છે, જેથી તમે વીણા વગાડવી બંધ કરી દીધી?" વધુ આગ્રહ કરતાં રાજાએ ખરી હકીકત કહી અને તેથી રાણી સમજી ગઈ કે હવે મારૂં આયુષ્ય થોડું જ બાકી રહ્યું છે. તેથી જીવનનું શ્રેયઃ સાધવા સંસારનો ત્યાગ કરી ભિક્ષુણી થવું જોઈએ. ભિક્ષુણી થવા માટે રાજાની અનુમતિ માંગતાં, ઘણા વિરોધ પછી, રાજાએ એવી સરતે તેને અનુમતિ આપી કે "જો તું મરીને સ્વર્ગમાં દેવતા થાય તો પછી અહીં આવીને મને તારે સદ્બોધ આપવો." રાણીએ તે સરત કબુલ કરી અને ભિક્ષુણી થઈ. થોડા જ દિવસમાં કાલ કરી તે સ્વર્ગમાં દેવતા રૂપે ઉત્પન્ન થઈ. પૂર્વે આપેલા વચન પ્રમાણે તેણે સ્વર્ગમાંથી આવીને રાજાને સદ્બોધ કર્યો અને તેથી રાજા પણ દિવસે દિવસે વધારે ધર્મિષ્ઠ થયો.

રાણીના મરી ગયા પછી તે મહાવીરની મૂર્તિની, રાણીની એક વિશ્વાસુ પણ શરીરે કૂબડી એવી એક દાસી હતી તે હમેશાં ભક્તિપૂર્વક પૂજા કર્યા કરતી હતી. એક વખતે ગાંધાર દેશનો એક શ્રાવક એ પ્રભાવશાલી મૂર્તિનાં દર્શન કરવા માટે ત્યાં આવ્યો. દાસીએ તે શ્રાવકની ખૂબ પરિચર્યા કરી તેથી તે ખુશી થઈને જતી વખતે પોતાની પાસે એક પ્રકારની દેવી પ્રભાવવાળી ગોળિઓ હતી તે તેને આપતો ગયો. એ ગોળીઓના ભક્ષણથી

દાસીનું કૂબડાપણું મટી જઈ તેને બદલે અપ્સરા જેવું રૂપસૌંદર્ય પ્રાપ્ત થયું. એની એ સુવર્ણ જેવી શરીરકાંતિને લીધે લોકો તેને હવે સુવર્ણગુલિકાના નામે ઓળખવા લાગ્યા. તેના એવા દૈવી સૌંદર્યની ખબર જ્યારે ઉજ્જયિનીના ચંડપ્રદ્યોતના સાંભળવામાં આવી ત્યારે તે એના ઉપર મોહિત થયો અને એને મેળવવાનો પ્રયત્ન કરવા લાગ્યો. ગુપ્તચરો દ્વારા પ્રદ્યોતનો મનોભાવ દાસીના જાણવામાં અવતાં તે પણ એના ઉપર અનુરક્ત થઈ. આખરે એક રાત્રિએ પોતાના નલગિરિ નામે દેશપ્રસિદ્ધ હાથી ઉપર બેસીને ચંડ-પ્રદ્યોત જાતે ત્યાં આવ્યો અને દાસીને ઉપાડી ગયો. જતી વખતે દાસી પોતાની સાથે તે મહાવીરની ચમત્કારિક મૂર્તિ પણ લેતી ગઈ અને તેને ઠેકાણે, ઉદાયન રાજાને તરત ખબર ન પડે તેટલા માટે પહેલાંથી જ પ્રદ્યોત પાસે તૈયાર કરાવી મંગાવેલી તેના જેવી બીજી મૂર્તિ સ્થાપિત કરતી ગઈ. બીજે દિવસે સવાર થતાં ઉદાયનને એ બધી હકીકતની ખબર પડી. ચંડપ્રદ્યોત તરફ તેણે તરત એક દૂત મોકલી તેના એ કૃત્ય પ્રત્યે પોતાનો ખૂબ તિરસ્કાર અને ક્રોધ બતાવ્યો અને છેવટે જણાવ્યું કે જો દાસી તેને રાખવી હોય તો ભલે રાખે, પણ તેની સાથે લઈ જવામાં આવેલી મહાવીરની મૂર્તિને પાછી મોકલી આપવી. ચંડપ્રદ્યોતે આનો કાંઈ જવાબ ન આપ્યો અને તેથી ઉદાયન પોતાના મોટા દળબળ સાથે અવંતી ઉપર ચઢાઈ કરવા ચાલી નીકળ્યો. એ વખતે જેઠ મહિનો ચાલતો હોવાથી મરુભૂમિ પસાર કરતાં તેના સૈન્યને પાણી વિના ઘણી પીડા ભોગવવી પડી હતી અને છેક જ્યારે પુષ્કરના પ્રદેશમાં આવ્યો ત્યારે કાંઈક શાંતિ મળી. ત્યાં થોડોક સમય થોભી તે ઉજ્જયિની પહોંચ્યો. ત્યાં આગળ પ્રદ્યોત પણ એનો ભેટો કરવા સામે તૈયાર થઈ ઉભો હતો. યુદ્ધની વાટાઘાટ ચાલી ત્યારે ઉદાયને જણાવ્યું કે 'જો તારી મરજી હોય તો આપણે બંને જાતે જ યુદ્ધ કરી એક બીજાના ભાગ્યનો નિર્ણય કરી લઈએ. વિના કારણ આ બીજા માણસોનો સંહાર કરવા કરાવવામાં શો લાભ છે?' પ્રદ્યોત ઉદાયનના આ વિચાર સાથે સમ્મત થયો અને બંનેયે રથવડે યુદ્ધ કરવાનું નિશ્ચિત કર્યું. પરંતુ પ્રદ્યોત કપટથી પાછળથી પોતાના જગપ્રસિદ્ધ નલગિરિ હાથી ઉપર ચઢી બેસી ઉદાયન ઉપર ધસી ચાલ્યો. ઉદાયન પ્રદ્યોતની આ ધૂર્તતા જોઈ સ્હેજ આશ્ચર્ય પામ્યો અને છેવટે પોતાની બાણ ચલાવવાની કુશળ કળાથી પ્રદ્યોતના હાથીના પગોને વીંધી નાંખી તેને ભોંય ભેગો કર્યો અને પછી પ્રદ્યોતને પકડી પોતાના શિબિરમાં કેદ કર્યો. આ રીતે પ્રદ્યોતનો પરાજય કરી તેને પોતાનો બંદી બનાવ્યો અને ઉદાયન ત્યાંથી તુરત પોતાના રાજ્ય તરફ રવાના થયો. ઉજ્જયિનીથી કેટલેક છેટે જતાં ચોમાસાનું જોર વધ્યું તેથી વચ્ચે એક ઠેકાણે સારૂં મેદાન જોઈ ઉદાયનના સૈન્યે ચોમાસું વિતાડવા વ્યવવસ્થિત રીતે પડાવ નાખ્યો. એ આખું સૈન્ય ૧૦ વિભાગોમાં ગોઠવાયું અને દરેક વિભાગની આસપાસ કામચલાઉ માટીની દીવાલો બાંધી લેવામાં આવી. ભર ચોમાસામાં જ્યારે પર્યુષણા (પજુસણ) નું પર્વ આવ્યું ત્યારે ઉદાયને પોતાની સાથેનાં બધાં માણસો સાથે વૈરવિરોધની ક્ષમા માંગી. પ્રદ્યોત પણ તેની સાથે જ હતો તેથી તેની પણ ક્ષમા માંગવાની તેને ધર્મદૃષ્ટિએ ફરજ જણાઈ. એટલે

તેણે પ્રદ્યોતને બંધનમુક્ત કીધો અને સ્વસ્થાનમાં જવા માટે વિસર્જિત કર્યો. ચોમાસું ઉતર્યા બાદ ઉદાયન પોતાના નગરમાં આવ્યો.

જે ઠેકાણે ઉદાયનનું સૈન્ય દસ વિભાગમાં કિલ્લેબંધી કરી ચોમાસું વિતાડવા રહ્યું હતું. ત્યાં સૈન્યના આશ્રયને લઇને બીજા પણ કેટલાક વ્યાપારી વગેરે લોકો આવી વસ્યા હતા કે જેઓ સૈન્યના ચાલ્યા ગયા પછી પણ ત્યાં જ સ્થિર થઈ ગયા હતા. તેથી તે સ્થાનને લોકો દશપુરના નામે ઓળખવા લાગ્યા*

---

*આવશ્યકસૂત્ર ટીકા, પા. ૨૯૬–૩૦૦.

માળવામાં આવેલા મન્દસોર શહેરને દશપુર કહેવામાં આવે છે. જૂના લેખોમાં એનું નામ દશપુર એવું જ લખેલું મળી આવે છે. 'દશપુર' નું નામ 'મંદસોર' કેમ થયું તે બાબતમાં ડૉ. ફ્લીટે Corpus Inscriptionum Indicarum ના ૩ જા ભાગમાં પાન ૭૯ ઉપર એક નોટ લખી છે તેમાં જણાવે છે કે—

"એ ગામને, ત્યાંના તથા ઇંદોર સુધીના આજુબાજુના ગામડીયા અને ખેડુતો, મન્દસોરને બદલે દસોરના નામથી વ્યવહારે છે. લગભગ દોઢેક સૈકા પહેલાંની દ્વૈભાષિક સનદોમાં અત્રત્ય ભાષામાં લખેલા લેખોમાં દસોર, તથા ફારસી ભાષામાં લખેલા લેખમાં મન્દસોર એમ લખેલું જોવામાં આવે છે. વળી, જેમ બેલગામ જિલ્લામાં સંપગામ અને ઉગરગોળને સ્થાને પંડિત લોકો અનુક્રમે અહિપુર અને નખપુરનો પ્રયોગ કરે છે, તેમ અહીં પણ પંડિતો પોતાના વ્યવહારમાં એને માટે સામાન્ય રીતે 'દશપુર' નામ વાપરે છે, પરંતુ, આ સંસ્કૃત નામો મૂળ અસ્તિત્વમાં હતાં, અગર તો મૂળ ગ્રામીણ શબ્દોનાં પંડિતોએ કરેલાં સંસ્કૃત ભાષાંતરિત નામો છે એ વિષે શંકાને પૂરતું સ્થાન રહે છે. પૂર્વે, એ સ્થળે પૌરાણિક રાજા દશરથનું નગર હતું એમ સ્થાનિક લોકો સમજાવે છે, એ સમજણ ખરી માનવામાં આવે, તો એ ગામનું નામ 'દસરથોર' થવું જોઇએ. હવે એનો ખરો અર્થ આ પ્રમાણે હોય એમ લાગે છે:–જેમ હાલમાં આજુબાજુ આવેલાં ખિલચીપુર, જંકુપુરા, રામપુરિયા, ચંદ્રપુરા, બાલાગંજ વગેરે બાર–પંદર ગામડાંનો સમાવેશ એ નગરમાં થાય છે. તેમ પૂર્વે પણ તેમાં 'દશ' ગામડાં ('પુર') નો સમાવેશ થતો હશે. પરંતુ, મન્દસોર એવું જે આખું નામ સર્વત્ર પ્રસિદ્ધ છે તથા નકશામાં લખવામાં આવે છે તેના મૂળ વિષે હાલમાં કાંઇપણ સમજુતી આપી શકાય તેમ નથી.' તેનું નામ 'મન્દ–દશપુર' પડયું હશે એમ ડા. ભગવાનલાલ ઇંદ્રજીએ મને એક વખત સૂચવ્યું હતું. મન્દ એટલે દુઃખી થયેલું કારણ કે મુસલમાનોના હાથે તેની તથા હિંદુ દેવાલયોની અત્યંત ખરાબી કરવામાં આવી હતી, અને જેને લીધે હાલમાં પણ નાગર બ્રાહ્મણો ત્યાંનું પાણી પીતા નથી. આ સૂચનાના સમર્થનમાં મારે જણાવવાનું કે જ્યારે હું એ સ્થળે ઉભો હતો, ત્યારે મેં એક પંડિતને એ વિષે પ્રશ્ન કર્યો અને તેના ઉત્તરમાં તેણે એ ગામનું 'મજસોર' એવું એક ત્રીજું નામ પણ જણાવ્યું. એ વિષે બીજી એક સૂચના મી. એફ. એસ. ગ્રાઉઝની છે. તે જણાવે છે કે એ નામમાં 'મદ' અને 'દશપુર' એમ બે નામો મળેલાં છે, આમાનું પહેલું મદ (જુઓ. ઇં. એં. પુ. ૧૫, પા. ૧૯૫) એક ગામનું નામ છે, જેને અફઝલપુર પણ કહે છે, તથા મન્દસોરથી દક્ષિણ–પૂર્વમાં લગભગ ૧૧ મૈલ દૂર છે. એમ કહેવાય છે કે આ 'મદ' નાં ભાગેલાં હિંદુ દેવાલયો પત્થરો વડે મન્દસોરનો મુસલમાની કિલ્લો બાંધવામાં આવ્યો હતો. હું ધારૂં છું કે ગમે તેવી સત્ય હકીકત 'દશપુર-મહાત્મ્ય' માંથી મળી શકશે. પરંતુ તે પુસ્તક

આ રીતે, જૈનપરંપરામાં મહાસેન પ્રદ્યોત વીતિભયના ઉદાયનનો આજ્ઞાંકિત થએલો માનવામાં આવે છે.

ઉદાયનનું પાછલું જીવન.

ઉદાયનના રાજકીય જીવન સંબંધમાં આટલી હકીકત પાછળના જૈન ગ્રંથોમાં મળે છે, મૂળ ભગવતી સૂત્ર કે જેનો ઉલ્લેખ ઉપર કરવામાં આવ્યો છે તેમાં ફક્ત એટલી જ બાબત વર્ણવી છે, કે જ્યારે શ્રી મહાવીર વીતિભયમાં આવ્યા ત્યારે ઉદાયન તેમનો ધર્મોપદેશ સાંભળી તેમની પાસે દીક્ષા લઈ તેમનો શિષ્ય બન્યો. આ દીક્ષા લેતી વખતે તેણે પોતાનું રાજ્ય કોને સોંપવું એ માટે એક વિલક્ષણ વિચાર કર્યો. રાજ્યનો ખરો હક્કદાર એનો પુત્ર અભીતિકુમાર થતો હતો. પણ, રાજ્યાધિકાર ચલાવનાર મનુષ્યો ઘણા ભાગે દુર્વ્યસની અને દુરાચારી થઇ જાય છે અને એવા વ્યસની અને આચારહીન મનુષ્યો મરીને દુર્ગતિમાં જાય છે, તેથી પોતાનો પુત્ર રખેને રાજ્યસત્તાના યોગે દુર્વ્યસની બની દુર્ગતિમાં જઇ પડે એવી બ્હીકથી પુત્રને રાજ્ય ઉપર ન બેસાડતાં પોતાનો ભાણેજ જે કેશીકુમાર કરીને હતો તેને બેસાડયો. પિતાના આ કૃત્યથી અભીતિકુમાર બહુ નારાજ થયો અને તેથી પોતાની બધી માલમત્તા લઇ તે ત્યાંથી ચાલ્યો ગયો અને ચંપાના રાજા કુણિક પાસે (કે જે તેનો માસિયાઈ ભાઈ થતો હતો) જઇ રહ્યો. આ પ્રમાણે આખી જીંદગી તે પિતા ઉપર વૈરભાવ રાખતો થકો ત્યાંનો ત્યાં જ મરી ગયો. નમુના ખાતર સૂત્રકારનાં કેટલાંક વચનો અહિં આપું છુ—

तए णं से उदायणे राया समणस्य भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे उट्ठाए। उट्ठेइत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो जाव नमंसित्ता एवं वयासी 'एवमेयं भंते ! तहमेयं! जहेयं तुब्भे वदह' त्ति......अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता जाव पव्वयामि।'...तए णं तस्स उदायणस्स रन्नो अयमेया- रूवे अब्भत्थिए...समुप्पज्जित्था-' एवं खलु अभीयीकुमारे ममं एगे पुत्ते इट्ठे कंते जाव किमंग पुण पासणयाए, तं जइ णं अहं अभीयीकुमारं रज्जे ठावेत्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुंडे भवित्ता जाव पव्वयामि; ता णं अभीयीकुमारे रज्जे य, रट्ठे य जाव जणवए माणुस्सएसु य कामभोगेसु मुच्छिए गिद्धे

મને જોવા મળી શકયું નથી. આ લેખ ઉપરાંત, ઉષવદાતના નાસિકના એક પ્રાચીન લેખમાં બીજી લીટીમાં દશપુર એ સંસ્કૃત નામ વાપરવામાં આવેલું છે. (જુઓ આર્કી. સર્વે. વેસ્ટ. ઇં. પુ. ૪ પા. ૯૯, પ્લે, ૫૨ નં. ૫); તથા મન્દસોરના જ એક બીજા લેખમાં એ નામ વપરાયેલું જોવામાં આવે છે. મિતિ (વિક્રમ) સંવત્ ૧૩૨૧ (ઇ. સ. ૧૨૬૪-૬૫) ગુરુવાર ભાદ્રપદ શુક્લ પંચમી છે; તથા એ લેખ કિલ્લાના પૂર્વ તરફના પ્રવેશદ્વારના અંદરના દરવાજાની ડાબી બાજુએ ભીંત પર ચણી લીધેલા એક શ્વેત પત્થર પર લખેલો છે. વળી, બૃહત્સંહિતા ૧૪, ૧૧-૧૬ (જુઓ કર્નનો અહેવાલ જર્ન. રૉ. એ. સો. નૉ. સ. પુ. ૫. પા, ૮૪) માં પણ અવંતિ સાથે આ સ્થળનો પણ એ જ નામથી ઉલ્લેખ કરેલો છે.

गढिए अज्झोववन्ने अणादीयं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरन्तसंसार कन्तारं अणुपरियट्टिस्सइ। तं नो खलु मे सेयं अभीयीकुमारं रज्जे ठावेत्ता...पव्वइत्तए। से यं खलु मे णियगं भाइणेज्जं केसिं कुमारं रज्जे ठावेत्ता...पव्वइत्तए।...तए णं से केसी कुमारे राया जाए ...।...तए णं से उदायणे राया सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ...जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

तए णं तस्स अभीयिस्स कुमारस्स अन्नदा कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुंबजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अब्भत्थिए जाव समुप्पज्जित्था-' एवं खलु अहं उदायणस्स पुत्ते पभावतीए देवीए अत्तए, तए णं से उदायणे राया ममं अवहाय नियगं भाइणिज्जं केसिकुमारं रज्जे ठावेत्ता समणस्स महावीरस्स अन्तिए पव्वइए।' इमेणं एयारूवेणं महया अप्पत्तिएणं मणो माणसिएणं दुक्खेणं अभिभूए समाणे अंतेपुरपरियालसंपरिवुडे सभंडमत्तोवगरणमायाए वीतीभयाओ नयराओ पडिनिग्गच्छंति। पडिनि० २ पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दुइज्जमाणे जेणेव चंपानयरी जेणेव कूणिए राया तेणेव उवागच्छइ...कूणियं रायं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। तत्थ वि णं से विउलभोगसमिद्धिसमन्नागए यावि होत्था। तए णं से अभीयीकुमारे समणोवासए यावि होत्था। अभिगयजीवाजीवे...उदायणंमि रायरिसिंमि समणुबद्धवेरे कालमासे कालं किच्चा...। (भगवती, पृष्ठ ६१८-२०)

ઉદાયનના મરણની હકીકત.

આવશ્યકચૂર્ણિ, ટીકા આદિ ગ્રન્થોમાં ઉદાયનના મૃત્યુની નોંધ આ પ્રમાણે લીધેલી મળી આવે છે:–ઉદાયન રાજાએ દીક્ષા લીધા પછી લૂખા-સૂકા મળેલા ભિક્ષાહારને લીધે તેના શરીરમાં વ્યાધિ ઉત્પન્ન થયો. વૈદ્યોએ તેને દહીં ખાવાનું જણાવ્યું. તેના માટે તે વ્રજમાં રહેતો. એક વખતે વીતભયમાં ગયો. ત્યાં તેનો ભાણેજ કેશી રાજા રાજ્ય કરતો હતો કે જેને તેણે જ રાજ્ય ઉપર બેસાડયો હતો. કેશીકુમારને તેના દુષ્ટ મંત્રિઓએ ભરમાવ્યો કે 'આ ઉદાયન ભિક્ષુજીવનના કષ્ટથી કંટાળ્યો છે અને રાજ્ય મેળવવા ચાહે છે.' તેણે કહ્યું–'આપી દઈશ.' મંત્રિઓએ કહ્યું કે 'એ રાજધર્મ નથી. મળેલું રાજ્ય તે કોઈ આપી દેતું હશે?' લાંબાકાળે મંત્રિઓએ તેને સમજાવી પટાવી રાજ્ય ન આપવા માટે પાકો કર્યો. ત્યારે તેણે પૂછયું કે–'તો પછી શું કરવું જોઈએ?' મંત્રી કહે–'વિષ અપાવવું જોઈએ.' પછી તેની વ્યવસ્થા કરવામાં આવી. એક ગોવાળણના હાથે દહીંમાં ઝેર નંખાવી તે મુનિને અપાવ્યું અને એ રીતે તેના જીવનનો અંત આણ્યો. આ વૃત્તાંત જાણી નગરની દેવતાને ભારે ક્રોધ થયો અને તેથી તેણે આખા નગર ઉપર ધૂળની વૃષ્ટિ કરવી શરૂ કરી. ઉદાયન મુનિ ત્યાં એક કુંભારના ઘરમાં ઉતર્યા હતા અને તે કુંભાર એમની પરિચર્યા કરતો હતો તેથી તેને અનપરાધ જાણી દેવતાએ ત્યાંથી ઉપાડી સિનવલ્લી નામના પ્રદેશમાં મુકયો કે જ્યાં તેના નામથી બીજું નગર વસ્યું. વીતભય પત્તન દેવ-

તાએ વર્ષાવેલા ધૂળના વર્ષાદથી આખું તેની અંદર દટાઇ ગયું. આજે પણ ત્યાં ધૂળનો ઢગલો મોજુદ છે.[1]

[1] આવશ્યકસૂત્રટીકા, પૃષ્ઠ ૫૮૭-૩૮. ઉદાયન સંબંધી આ બધી હકીકતવાળી કથા, પુરાતત્ત્વ મંદિર તરફથી પ્રકટ થએલ પ્રાકૃત કથાસંગ્રહમાં પણ આવેલી છે.

આચાર્ય હેમચંદ્રની બીજી નવી હકીકત.

આચાર્ય હેમચંદ્રે પોતાના મહાવીરચરિત્રમાં, મહાવીરના સમયને લગતી જેટલી હકીકતો-કથાઓ વિગેરે પ્રાચીન જૈન ગ્રંથોમાં મળી આવી છે તે બધીનો તેમણે ઉપયોગ કર્યો છે. અને જ્યાં ત્યાં પ્રસંગ લઇ એ હકીકતોને બંધ બેસતી બનાવી છે. ઉદાયનની ઉપર આપેલી બધી કથા પણ તેમણે પોતાના એ ચરિત્રમાં સંપૂર્ણ રીતે ગોઠવી છે અને તેમાં બીજી પણ કેટલીક વધારે વાતો મુકી છે જે જૂના ગ્રંથોમાં જોવામાં આવતી નથી. પણ વધારે ધ્યાન ખેંચવા લાયક નોંધ તો તેમણે એક એ કરી છે કે-વીતભય-પત્તન જ્યારે ઉક્ત રીતે, ઉદાયનના મૃત્યુને લીધે, દેવતાના કોપથી નષ્ટ થઇ ગયું ત્યારે તેમાં મહાવીરની તે ચંદનની મૂર્તિ પણ દટાઇ ગઇ હતી. એ મૂર્તિને ગુજરાતના ચાલુક્યરાજા કુમારપાળે, પોતાના કહેવાથી, જમીનમાંથી ખોદી કાઢી હતી અને એક રથમાં બેસાડી તેને પાટણમાં લાવવામાં આવી હતી. પછી તેના માટે કુમારપાળે એક ભવ્ય મંદિર બંધાવ્યું અને હેમચંદ્રના હાથે તે મૂર્તિની એ મંદિરમાં ઘણા મહોત્સવ પૂર્વક પ્રતિષ્ઠા કરાવી. હેમચંદ્રે આ બાબતનું બધું વૃત્તાંત, ભવિષ્ય પુરાણની માફક, મહાવીરના મુખથી કહેવડાવ્યું છે. રાજા શ્રેણિકનો પુત્ર અભયકુમાર મહાવીરને પૂછે છે અને મહાવીર તેનો ઉત્તર આપે છે. ભવિષ્યની ભાષાને છોડી દઇને આપણે જો હેમચંદ્રના કથન ઉપર વિશ્વાસ કરી શકિએ તો તેમાંથી આટલું ઐતિહાસિક તથ્ય આપણે જરૂર કાઢી શકિએ કે-વીતભયનું ઉધ્વસ્ત થએલું પ્રાચીન સ્થાન આચાર્ય હેમચંદ્રને જાણીતું હતું અને ત્યાંથી એક પ્રાચીન તીર્થંકરની મૂર્તિ પણ તેમને મળી આવી હતી જે રાજા કુમારપાળ પાસેથી તેમણે પાટણમાં અણાવી હતી અને તેના માટે એક નવીન મંદિર તૈયાર કરાવી તેમાં તેને સ્થાપન કરવામાં આવી હતી. આ મૂર્તિનો પ્રસંગ લઇ હેમચંદ્રસૂરિએ ગુજરાતની ગૌરવશાલી રાજધાની પાટણ અને તેના રાજા કુમારપાળનું, કાંઇક આલંકારિક પણ ઘણે ભાગે સત્ય એવું જે વર્ણન એમણે પોતાની કલમથી કરેલું છે તે લાંબૂ હોવા છતાં પણ ભાષાંતર રૂપમાં બધું અહીં આપી દેવાનો મને લોભ થાય છે. પુરાતત્ત્વના વાંચકોને એ અવશ્ય ઉપયોગી થઈ પડશે. વર્ણન આ પ્રમાણે શરૂ થાય છેઃ-" અભયકુમારે પુનઃ પૂછ્યું, 'હે પ્રભુ! તમે કહ્યું કે એ પ્રતિમા પૃથ્વીમાં દટાઇ જશે, તે પછી ક્યારે પ્રકટ થશે?' પ્રભુ બોલ્યા કે-સૌરાષ્ટ્ર, લાટ, અને ગુર્જર દેશના સીમાડામાં અણહિલપુર પાટણ નામે એક નગર વસશે, તે નગર આર્યભૂમિનું શિરોમણિ, કલ્યાણોનું સ્થાન અને અર્હત ધર્મનું એક છત્રરૂપ તીર્થ થશે. ત્યાં ચૈત્યોને વિષે રહેલી રત્નમયી નિર્મળ અર્હત પ્રતિમાઓ નંદીશ્વર વિગેરે સ્થાનોની પ્રતિમાની સત્યતા બતાવી આપશે. પ્રકાશમાન, સુવર્ણ કળશોની શ્રેણિથી જેમનાં શિખરો અલંકૃત છે એવાં તે ચૈત્યોથી જાણે સૂર્ય ત્યાં આવીને વિશ્રાંત થયો હોય તેવી શોભાને ધારણ કરશે. ત્યાં પ્રાયઃ સર્વજનો શ્રાવક થશે, અને તેઓ અતિથિસંવિભાગ કરીને જ ભોજન કરશે. બીજાની સંપત્તિમાં ઇર્ષ્યારહિત, સ્વસંપત્તિથી સંતુષ્ટ અને પાત્રમાં દાન આપનાર એવી ત્યાંની પ્રજા થશે. અલકાપુરીમાં યક્ષની જેમ ત્યાં ઘણા ધનાઢ્ય શ્રાવકો થશે. તેઓ અરિહંતભક્ત બની સાતે ક્ષેત્રોમાં દ્રવ્યનો વ્યય કરશે. સુષમા કાળની જેમ ત્યાંના સર્વ લોકો પરધન અને પરસ્ત્રીથી વિમુખ થશે. હે અભયકુમાર! અમારા નિર્વાણ પછી સોળસો ને ઓગણોતેર વર્ષ જશે, ત્યારે એ નગરમાં ચૌલુક્ય -

ઉદાયનના મરણની આ કથા–પરંપરા ઘણી પ્રાચીન હોય તેમ જણાય છે, કારણ કે આ હકીકતનું મૂળ સૂચન ખાસ આવશ્યક સૂત્ર–નિર્યુક્તિમાં કરવામાં આવ્યું છે. એ સૂત્ર-નિર્યુક્તિ ભદ્રબાહુની રચેલી કહેવાય છે અને પરંપરા તેનો સમય મહાવીર નિર્વાણ પછીની બીજી શતાબ્દી જણાવે છે. ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ જોતાં નિર્યુક્તિના કર્તા ભદ્રબાહુ એટલા પ્રાચીન હોય તેમ લાગતું નથી. તેમનો સમય અપેક્ષાકૃત અર્વાચીન છે, પણ ટીકાકારો કરતાં તે સમય ઘણો જ આગળ જાય તેમ છે. તેથી ટીકાકારોએ નોંધેલી ઉદાયનની એ હકીકત ઘણા જૂના સમયથી ચાલતી આવી છે એટલું તો ચોક્કસ કહી શકાય તેમ છે,

---

કુળમાં ચંદ્રસમાન, પ્રચંડ પરાક્રમી અને અખંડ શાસનવાળો કુમારપાળ નામે ધર્મવીર, દાનવીર અને યુદ્ધવીર રાજા થશે. તે મહાત્મા પોતાની પ્રજાને પિતાની જેમ પાલન કરીને મોટી સમૃદ્ધિવાન્ કરશે, સરલ છતાં અતિ ચતુર, શાન્ત છતાં આજ્ઞામાં ઇંદ્ર જેવો અને ક્ષમાવાન્ છતાં અધૃષ્ય એવો તે ચિરકાળ આ પૃથ્વી પર રાજ્ય કરશે. ઉપાધ્યાય જેમ પોતાના શિષ્યોને વિદ્યાપૂર્ણ કરે તેમ તે પોતાની પ્રજાને પોતાના જેવી ધર્મનિષ્ઠ કરશે. શરણેચ્છુઓને શરણ કરવા લાયક અને પરનારીસહોદર તે રાજા પ્રાણથી અને ધનથી પણ ધર્મને બહુ માનશે. પરાક્રમ, ધર્મ, દયા, આજ્ઞા અને બીજા પુરુષગુણોથી તે અદ્વિતીય થશે. તે રાજા ઉત્તર દિશામાં તુરુષ્ક (તુર્કસ્થાન) સુધી, પૂર્વમાં ગંગાનદી સુધી, દક્ષિણમાં વિંધ્યગિરિ સુધી અને પશ્ચિમમાં સમુદ્ર સુધી પૃથ્વીને સાધશે. એક વખતે વજ્રશાખા અને ચાંદ્રકુળમાં થયેલા આચાર્ય હેમચંદ્ર તે રાજાના જોવામાં આવશે. તે ભદ્રિક રાજા મેઘના દર્શનથી મયૂરની જેમ તે આચાર્યના દર્શનથી હર્ષિત થઇ તેમને વંદના કરવાની ત્વરા કરશે. સૂરિ જિનચૈત્યમાં ધર્મદેશના દેતા હતા, ત્યાં તેમને વંદના કરવાને માટે તે રાજા પોતાના શ્રાવક મંત્રીઓની સાથે આવશે; ત્યાં પ્રથમ દેવને નમસ્કાર કરીને પછી તત્ત્વને નહી જાણતા છતાં પણ તે રાજા શુદ્ધ ભાવથી આચાર્યને વાંદશે. પછી તેમના મુખથી શુદ્ધ ધર્મદેશના પ્રીતિપૂર્વક સાંભળીને તે રાજા સમકિત પૂર્વક અણુવ્રત (શ્રાવકનાં વ્રત) સ્વીકારશે. પછી સારી રીતે બોધને પ્રાપ્ત કરીને તે રાજા શ્રાવકના આચારનો પારગામી થશે અને રાજસભામાં બેઠો સતો પણ તે ધર્મગોષ્ઠિથી પોતાના આત્માને રમાડશે, અર્થાત્ ધર્મચર્ચા કરશે. પ્રાયઃ નિરંતર બ્રહ્મચર્યને પાળનાર તે રાજા અન્ન, શાક અને ફળાદિ સંબંધી અનેક નિયમો વિશેષ પ્રકારે ગ્રહણ કરશે. સદ્બુદ્ધિવાન્ તે રાજા અન્ય સાધારણ સ્ત્રીઓને ત્યજી દેશે, એટલું જ નહિ, પોતાની ધર્મપત્નીઓને પણ બ્રહ્મચર્ય પાળવાનો પ્રતિબોધ કરશે. સૂરિના ઉપદેશથી જીવ, અજીવ વગેરે તત્ત્વોને જાણનાર તે રાજા આચાર્યની જેમ બીજાઓને પણ બોધ (સમ્યક્ત્વ) પ્રાપ્ત કરાવશે. અર્હત ધર્મના દ્વેષી એવા પાંડુરોગી બ્રાહ્મણો પણ તેની આજ્ઞાથી ગર્ભશ્રાવક જેવા થઇ જશે. પરમ શ્રાવકપણાને પ્રાપ્ત કરનાર અને ધર્મ જાણનાર તે રાજા દેવપૂજા અને ગુરુવંદન કર્યા વગર ભોજન કરશે નહિ. તે રાજા અપુત્ર મૃત્યુ પામેલાઓનું દ્રવ્ય લેશે નહીં. વિવેકનું ફળ એ જ છે, અને વિવેકીઓ સદા તૃપ્ત જ હોય છે. પાંડુ જેવા રાજાઓએ પણ જે મૃગયા (શિકાર) છોડેલ નહીં તેને એ રાજા છોડી દેશે, અને તેની આજ્ઞાથી બીજા સર્વ પણ છોડી દેશે. હિંસાનો નિષેધ કરનાર એ રાજા રાજ કરતે સતે મૃગયાની વાત તો દૂર રહી, પણ માંકણ કે જુ જેવા ક્ષુદ્ર પ્રાણીઓને અંત્યજ પણ મારી શકશે નહીં. પાપર્દ્ધિ (મૃગયા) નો નિષેધ કરનારા એ મહાન્ રાજાના રાજ્યમાં અરણ્યમાં રહેતી સર્વ મૃગજાતિઓ ગોષ્ઠની ગાયોની જેમ સદા નિર્વિઘ્ને વાગોળશે. શાસનમાં પાકશાસન (ઇંદ્ર) જેવો તે રાજા સર્વ જળચર, સ્થળચર અને ખેચર પ્રાણીઓની રક્ષા કરવાને માટે કાયમની અમારી ઘોષણા કરાવશે. જેઓ જન્મથી જ

ઉઠે છે. આ મૂર્તિને ઉપાડી જવા માટે જુદા જુદા દેશના અનેક રાજાઓએ પોતાની શક્તિ વાપરી છે અને ઘણા માણસોએ ભેગા થઈને એને ખસેડવાનો પ્રયત્ન કર્યો છે પણ તેઓ એને જરા પણ હલાવી શક્યા નથી. તેઓ એ મૂર્તિની પ્રતિકૃતિ બનાવીને તેની પૂજા કરે છે* અને તેમ કરી, મૂળ મૂર્તિની જ તેઓ પૂજા કરે છે એમ શ્રધ્ધા રાખે છે. (જુઓ:–Beal's Buddhist Records of the Western Countries, Book I. p. 234) આવી જ એક મૂર્તિની બીજી નોંધ, એ મુસાફરે ખોતાન પ્રદેશના પિમા શહેરના વૃત્તાતમાં લીધી છે. તે લખે છે કે–" અહીં (પિમા શહેરમાં) ચંદનના લાકડામાંથી બનાવેલી બુદ્ધની એક ઉભી આકૃતિની મૂર્તિ છે. આ મૂર્તિ લગભગ ૨૦ ફીટ ઉંચી છે. આ મૂર્તિ ઘણી ચમત્કારિક છે અને એમાંથી તેજ સ્ફુર્યા કરે છે. જેમને કોઈ પણ પ્રકારનો રોગ થાય છે તેઓ આ મૂર્તિની સોનાના વરખથી પૂજા કરે છે અને તેમ કરવાથી તેઓ સાજા થઈ જાય છે–એવી અહીંના લોકોની માન્યતા છે. જેઓ અંતઃકરણપૂર્વક આ મૂર્તિની પ્રાર્થના કરે છે તેમનું ઇચ્છેલું સફળ થઈ જાય છે. અહીંના લોકો કહે છે કે, આ મૂર્તિ, એ જૂના જમાનામાં કે જ્યારે બુદ્ધ જીવતા હતા ત્યારે, કૌશાંબીના ઉદાયન રાજાએ બનાવી હતી; બુદ્ધ જ્યારે નિર્વાણ પામ્યા ત્યારે એ મૂર્તિ પોતાની મેળે ત્યાંથી આકાશમાં ઉડીને આ રાજ્યના ઉત્તરે આવેલા હો–લો–લો–કિ–અ નામના શહેરમાં આવીને રહી. આ નગરના લોકો શ્રીમાન્ અને વૈભવશાલી હતા, તેમ જ મિથ્યામતના અનુરાગી હતા. તેમને કોઇપણ બીજા પ્રકારના ધર્મને માટે માન ન હતું. જે દિવસથી એ મૂર્તિ ત્યાં આવી હતી ત્યારથી તેની દૈવી ચમત્કૃતિ પ્રકટ થવા લાગી. પણ લોકોએ તેના તરફ જરાએ આદર દેખાડયો નહીં.

ત્યાર પછી એક અર્હતે ત્યાં આવીને તેને નમસ્કાર કરી તેની પૂજા કરી. તે દેશના લોકો એ અર્હતનો આકાર અને વેશ જોઈને ભયભીત થયા અને રાજાને જઈને તરત તેની ખબર આપી. રાજાએ એવું ફર્માન કાઢયું કે એ આગંતુક મનુષ્યને રેતી અને ધૂળથી ઢાંકી દેવો. તેથી લોકોએ તેને તેવી રીતે હેરાન કર્યો અને કોઇએ અન્નપાણી આપ્યાં નહિ. તેની આ સ્થિતિ જોઈને એક માણસ કે જે હંમેશાં એ મૂર્તિની પૂજા કરતો હતો તેને ક્રોધ થયો અને તેથી છાની રીતે આવી તેણે એ અર્હતને ખોરાક આપ્યો. જતી વખતે તે અર્હતે એ માણસને બોલાવીને કહ્યું કે આજથી સાત દિવસ પછી અહીં રેતી અને ધૂળની ભયંકર વૃષ્ટિ થશે જેથી આ આખું નગર દટાઇ જશે અને કોઇપણ જીવવા પામશે નહીં; એટલા માટે તારે પોતાનો જીવ બચાવવો હોય તો અહીંથી તરત ચાલ્યા જવું જોઈએ. ગામના લોકોએ મને જે રેતી અને ધૂળથી ઢાંકી દઇ હેરાન કર્યો છે તેનું આ ફળ મળનાર છે. આવી રીતે કહીને તે અર્હત્ બીજી ક્ષણે અદરય થઇ ગયો. પછી તે માણસે શહેરમાં આવીને પોતાના સગા સંબંધીઓને આ વાત જણાવી પણ

*આવી જાતની એ મૂર્તિની એક પ્રતિકૃતિ યવનચંગ પોતાની સાથે ચીનમાં લઇ ગયો હતો તેની નોંધ પણ એ જ પુસ્તકમાં, પ્રસ્તાવના, પાન ૨૦ ઉપર કરેલી છે.

તેઓ સાંભળીને માત્ર તેની સામે હસી રહ્યા. બીજે દિવસે એકાએક એક ભયંકર વંટોળીયો થયો જેના લીધે જમીનપરની બધી ગંદી ધૂળ આકાશમાં ઉડી ગઈ અને બદલામાં આકાશમાંથી અનેક પ્રકારના મૂલ્યવાન્ પદાર્થો નીચે પડયા. આથી લોકો, તે માણસની ઉલટી ખૂબ નિંદા કરવા લાગ્યા.

પરંતુ તે માણસને તો ભવિષ્યના બનાવની ચોક્કસ ખાત્રી હોવાથી તેણે શહેર બહાર નિકળી જવા માટે જમીનમાં એક માર્ગ બનાવ્યો અને તેમાં જઈ તે છુપાઈ રહ્યો. સાતમે દિવસે સંધ્યા કાળ થતાં ત્યાં રેતી અને ધૂળની ભયંકર વૃષ્ટિ થઈ જેથી તે આખું નગર દટાઈ ગયું. પછી તે માણસ જમીનમાં ખોદેલી સુરંગમાંથી બહાર નીકળી પૂર્વ દિશા તરફ ચાલવા લાગ્યો અને આ પિમા શહેરમાં આવીને મુકામ કર્યો. એ માણસ અહીં આવ્યો કે તરત જ તે મૂર્તિ પણ અહીં આવીને પ્રકટ થઇ. માણસે તેની અહીં પણ પૂજા કરી અને ત્યારબાદ તે અહીં જ રહી ગયો. જૂના ગ્રંથોમાં એમ કહેલું કે "જ્યારે શાક્યધર્મનો અંત આવશે ત્યારે આ પ્રતિમા પાછી નાગલોકમાં ચાલી જશે. હો-લો-લો-કિઅ શહેરની જગ્યાએ આજે એક મોટો રેતીનો ટેકરો થઇ રહેલો છે." (બીલનું ઉપરોક્ત પુસ્તક, ભાગ ૨, પાન ૩૨૪.)

યવનચંગ અને દિવ્યાવદાન.

યવનચંગે આપેલી ઉપરોક્ત હકીકતનું મૂળ શું હશે તે કાંઇ હજી જાણવામાં આવ્યું નથી, પણ એને મળતી કેટલીક હકીકત દિવ્યાવદાનમાં મારા જોવામાં આવી છે. દિવ્યાવદાનમાંની હકીકતનો કેટલોક ભાગ યવનચંગની હકીકત સાથે મળતો જોઇને તો મને આશ્ચર્ય થયું જ, પણ એ કરતાંયે વધારે આશ્ચર્ય એ જાણીને થયું કે યવનચંગ અને દિવ્યાવદાનમાંની-બંને હકીકતો ભેગી મળીને ઉપરોક્ત ઉદાયનવાળી જૈન હકીકત સાથે પણ કેટલેક અંશે, એક થઇ જાય છે. દિવ્યાવદાનમાં રુદ્રાયણાવદાન નામનું એક પ્રકરણ છે જેનો ટુંક સાર આ પ્રમાણે છેઃ-

જે વખતે ભગવાન્ બુદ્ધ રાજગૃહમાં રાજા બિંબિસારના વખતમાં રહેતા હતા તે વખતે, બે મહા નગરો કહેવાતાં હતાં એક પાટલીપુત્ર અને બીજું રોરુક. રોરુક નગરમાં રુદ્રાયણ નામે રાજા રાજ્ય કરતો હતો. તેને ચંદ્રપ્રભા નામે દેવી (રાણી), શિખંડી નામે કુમાર, તથા હિરુ અને ભિરુ નામના બે મુખ્ય મંત્રિઓ હતા. રાજગૃહમાં રાજા બિંબિસાર રાજ્ય કરતો હતો અને તેને વૈદેહી મહાદેવી, અજાતશત્રુ કુમાર અને વર્ષાકાર નામે બ્રાહ્મણ મુખ્ય મંત્રી હતો. એક વખતે રાજગૃહના કેટલાક વ્યાપારિઓ રોરૂક નગરમાં ગયા અને તેઓ ત્યાંના રાજા રુદ્રાયણને મળ્યા. રુદ્રાયણે રાજગૃહના બિંબિસારની હકીકત સાંભળી તેની સાથે મિત્રતા બાંધવાના ઇરાદાથી પોતાના રાજ્યમાં જે રત્ન વિગેરે બહુમૂલ્ય પદાર્થો થતા હતા તે કેટલાક ભેટ રૂપે ત્યાં મોકલી આપ્યા. બિંબિસારે પણ તે ભેટના જવાબમાં પોતાના દેશમાં જે મૂલ્યવાન્ વસ્ત્રો તૈયાર થતાં હતાં તે કેટલાંક મોકલી

આપ્યાં. આ રીતે દિવસે દિવસે એ બંને રાજાઓની મિત્રાચારી વધારે દૃઢ થતી ગઇ. એક વખતે રાજા બિંબિસારે રોરુકના એ રાજાને ધર્મમાર્ગનો પરિચય કરાવવા માટે ભગવાન્ બુદ્ધની એક ભવ્ય છબી તૈયાર કરાવી, તેના તરફ ઘણા માન પૂર્વક મોકલી આપી. તે છબી જોઇ રુદ્રાયણ રાજા બહુ આશ્ચર્ય પામ્યો અને છબી લાવનાર મનુષ્યોને, તે છબી કોની છે એ વિગેરે પ્રશ્નો પૂછી ભગવાન્ બુદ્ધના કલ્યાણકર જીવન અને ધર્મમાર્ગથી પરિચિત થયો. પછી તેની ઇચ્છા પણ એ ધર્મના અનુયાયી થઈ જવાની થઈ. ત્યાર પછી રાજા બિંબિસારે એ રાજાને વિશેષ ધર્મબોધ આપવા માટે ભગવાન્ બુદ્ધને વિજ્ઞપ્તિ કરીને મહા-કાત્યાયન નામના એક ભિક્ષુ અને શૈલા નામની એક ભિક્ષુણીને એ દેશમાં મોકલાવ્યાં. ભિક્ષુએ રાજાને અને ભિક્ષુણીએ રાજાના અંતઃપુરમાં રહીને રાણીને ભગવાન્ બુદ્ધના ધર્મનો બોધ આપવા માંડયો. એ બંનેના ઉપદેશથી રાજા અને રાણીની ધર્મ પ્રતિ ઘણી પ્રીતિ થઈ.

એ રાજા વીણા વગાડવામાં બહુ પ્રવીણ હતો અને રાણી નૃત્ય કરવામાં કુશલ હતી. એક દિવસે જ્યારે રાજા વીણા વગાડતો હતો અને રાણી નૃત્ય કરતી હતી, ત્યારે રાજાએ રાણીના મરણકાલ નજીક આવ્યાનાં લક્ષણો જોયાં, તેથી તેના હૃદયમાં ધ્રાસકો પડયો અને તેના હાથમાંથી વીણા જમીન પર પડી ગઈ. આ જોઇ રાણી ચમકી અને રાજાને કહેવા લાગી કે 'દેવ! શું મ્હેં ખરાબ નાચ કર્યો?' રાજા કહે 'ના, એમ નથી.' પછી તેણે એ જોએલી બધી વાત કહી અને આજથી સાતમે દિવસે તારૂં મૃત્યુ થશે એમ કહ્યું. તે સાંભળીને રાણીએ કહ્યું 'દેવ! જ્યારે એમ છે તો પછી, જો તમે મને અનુમતિ આપો તો મારૂં કલ્યાણ કરવા માટે હું પ્રવ્રજ્યા લઈ ભિક્ષુણી થઈ જાઉં. રાજાએ એવી શરતે અનુમતિ આપી કે-જો તું મરીને દેવ થાય તો અહીં આવીને પછી મને તારે દર્શન આપવું. રાણીએ તે વાત કબૂલ કરી અને શૈલા નામા ભિક્ષુણીની પાસે પ્રવ્રજ્યા લીધી. સાતમે દિવસે તે રાણી મરણસંજ્ઞાની ભાવના કરતી થકી મરીને ચાતુર્મહારાજિક દેવ-લોકમાં દેવતાપણે ઉત્પન્ન થઈ. કરેલી પ્રતિજ્ઞા પ્રમાણે તે પછી રાત્રે આવીને રાજાને પ્રત્યક્ષ થઈ ત્યારે રાજાએ શય્યામાં સૂતા સૂતા બંને હાથો લાંબા કરી તેને આલિંગન કરવા માટે પાસે બોલાવી. દેવી કહે 'મહારાજ! હું તો અહીંથી મરીને સ્વર્ગમાં દેવ-કન્યા થઈ છું. જો તમારે મારો સમાગમ જોઇતો હોય તો તમે પણ ભગવાન્ બુદ્ધ પાસે પ્રવ્રજ્યા લો જેથી કાળ કર્યા પછી તમે સ્વર્ગમાં ઉત્પન્ન થઇ શકશો અને મારી સાથે સમાગમ કરી શકશો.' એમ કહી દેવી અંતર્ધાન થઈ. રાજાએ આખી રાત સંકલ્પ વિક-લ્પમાં વીતાડી, આખરે પ્રવ્રજ્યા લેવાનો નિશ્ચય કીધો, અને તે પ્રમાણે પોતાના પુત્રને શિખંડીને રાજ્ય ઉપર બેસાડી પોતે ત્યાંથી રાજગૃહ નગરમાં જ્યાં ભગવાન્ બુદ્ધ રહેતા હતા ત્યાં ગયો. જતી વખતે પુત્રને ધર્મનીતિપૂર્વક રાજ્યનું રક્ષણ અને પ્રજાનું પાલન કરવા માટે એ શબ્દો કહેતો ગયો અને પોતાના જે બે મુખ્ય મંત્રિઓ હતા તેમને બધી વ્યવસ્થા સાંભળવાનું સૂચન કરતો ગયો. તેણે પછી ભગવાન્ બુદ્ધ પાસે પ્રવ્રજ્યા લીધી અને તે તેમનો શિષ્ય બન્યો.

આ તરફ તેનો પુત્ર શિખંડી બીજા બે દુષ્ટ મંત્રિઓની સંગતિથી અનીતિના માર્ગે ચઢયો અને પ્રજાને પીડા આપવા લાગ્યો. જૂના જે બે સારા મંત્રી હતા તેમને રાજ્યકારભારથી દૂર કર્યા. આ હકીકતની ખબર જ્યારે કેટલાક વ્યાપારિઓ મારફત પ્રવ્રજિત થએલા એ વૃદ્ધ રાજાની જાણમાં આવી ત્યારે તે વ્યાપારિઓ સાથે પ્રજાજન જોગો આશ્વાસનનો સંદેશો મોકલ્યો અને જણાવ્યું કે શિખંડીને એ અન્યાયાચરણમાંથી દૂર રાખવા માટે હું જાતે જ ત્યાં આવીશ. વ્યાપારિઓ સાથે આવેલો એ સંદેશો એક બીજાની કર્ણપરંપરાએ એ દુષ્ટ મંત્રીઓની જાણમાં આવતાં તેઓ મનમાં ગભરાયા અને એ વૃદ્ધ રાજા રોરુક નગરમાં ન આવી શકે તેનો ઉપાય વિચારવા લાગ્યા. પછી તે બંને શિખંડી રાજા પાસે જઈને તેને કહેવા લાગ્યા કે-' દેવ, સંભળાય છે કે વૃદ્ધ રાજા અહીં આવે છે.' રાજા કહે-' તે તો પ્રવ્રજિત થએલો છે, તેને હવે અહીં આવવાનું શું પ્રયોજન હોય?' મંત્રીઓ કહે-' દેવ, જેણે એક દિવસ પણ રાજ્ય કર્યું હોય છે તેનું મન પછી રાજ્ય વિના કયાંએ રમી શકતું નથી. એટલે ફરી એ રાજ્ય મેળવવા પાછો અહીં આવે છે.' રાજા કહે-' જો રાજા થશે તો હું પાછો કુમાર થઈ જઇશ એમાં શો વિરોધ છે!' મંત્રીઓ કહે-' દેવ, એ અયુક્ત છે. જેણે કુમારો, મંત્રીઓ અને પ્રજાજનોના નમસ્કારો ઝીલ્યા હોય તે કેમ પાછો યુવરાજ પદમાં દાખલ થઇ શકે?' ઈત્યાદિ ઘણી રીતે તે રાજાને તેમણે ખોટી રીતે ભરમાવ્યો અને આખરે તેની અનુમતિ મેળવી કેટલાક ઘાતક મનુષ્યોને એ આવતા વૃદ્ધ રાજાની સામે મોકલ્યા જેમણે તેનો શિરઃછેદ કરી તેના જીવનનો અંત આણ્યો. પછી ક્રમે ક્રમે તે શિખંડી રાજા વધારે દુષ્ટ થતો ગયો. એક દિવસે તે શહેર બહાર સઘળા લવાજમા સાથે ફરવા નિકળ્યો. તે વખતે રસ્તામાં એક ઠેકાણે એકાંતમાં ઉભા રહેલા આગળના તે મહાકાત્યાયન ભિક્ષુને જોયો. રાજા તેને જોઈને ક્રોધિત થયો અને પોતાનાં માણસોને તેના ઉપર મૂઠી ધૂળ નાંખવાનો હુકમ કર્યો. લોકોએ તેના ઉપર એટલી બધી ધૂળ નાંખી કે જેથી તેનું આખું શરીર તેમાં દટાઈ ગયું.

આ બાબતની ખબર જ્યારે પેલા બે જૂના મંત્રીઓને થઇ ત્યારે તેઓ ત્યાં આવ્યા અને તે ભિક્ષુને ધૂળના ઢગલામાંથી બહાર કાઢયો. ભિક્ષુએ કહ્યું આ નગરનો વિનાશકાળ આવી ગયો છે અને આજથી સાતમે દિવસે ધૂળની વૃષ્ટિના લીધે આ આ આખું નગર જમીનદોસ્ત થઈ જશે. તેથી તમારે અહીંથી બચી જવું હોય તો ઘરથી માંડી નદી સુધી જમીનમાં એક સુરંગ ખોદાવી રાખો અને એક નાવ તૈયાર કરી મુકો. પહેલે દિવસે એક મોટો વંટોળિયો થશે જેના લીધે શહેરની બધી ખરાબ ધૂળ આકાશમાં ઉડી જશે. પછી બીજે દિવસે ફુલોની વૃષ્ટિ થશે. ત્રીજે દિવસે વસ્ત્રોની વર્ષા થશે. એમ અનુક્રમે રત્નોની વર્ષા થશે અને પછી છેવટે ધૂળની વર્ષા થઇ બધું શહેર તેમાં દટાઇ જશે. તમે પુણ્ય કાર્ય કરનાર હોવાથી એ આફતમાંથી ઉગરી શકશો. એટલે તૈયાર કરી રાખેલી નાવ રત્નોથી ભરીને નદી માર્ગે તમે અન્ય દેશમાં ચાલ્યા જજો. છેવટે બધું તેમ થયું અને તે મંત્રીઓ જે પ્રદેશમાં જઇને રહ્યા ત્યાં તેમના નામથી ક્રમથી હિરુક અને ભિરુકચ્છ નામનાં નગરો વસ્યાં.

મહાકાત્યાયન ભિક્ષુ પણ ત્યાંથી નીકળી લમ્પાક, સ્યામાકરાજ્ય, વોક્કાણ વગેરેના મુલકમાં થતો સિંધુ નદી ઉતરી મધ્યદેશમાં આવેલી શ્રાવસ્તી નગરીમાં જ્યાં આગળ ભગવાન્ બુદ્ધ રહેતા હતા ત્યાં સંઘ ભેગો જઇ મળ્યો.

રુદ્રાયણ રાજાની આ હકીકત, જ્યાં સુધી હું જાણું છું, દક્ષિણના હીનયાન સંપ્રદાયના પાલી સાહિત્યમાં કયાંએ આવેલી નથી. ઉત્તરના મહાયાન સંપ્રદાયના સંસ્કૃત અને ટીબેટીયન સાહિત્યમાંજ આ હકીકત મળી આવે છે. દિવ્યાવદાન સિવાય, ક્ષેમેન્દ્રના અવદાન કલ્પલતા[1] નામક ગ્રંથમાં પણ રુદ્રાયણાવદાન આવેલું છે. અવદાનશતક હાલમાં મારી પાસે નહિ હોવાથી તેમાં એ વૃત્તાંત છે કે નહીં તે હું કહી શકતો નથી. એર. એ બીજા ગ્રંથોમાં હોય કે ન હોય તેની ચર્ચા કાંઈ અહીં પ્રસ્તુત નથી. આપણે એ જોવાનું છે કે, યવનચંગ અને રુદ્રાણાયવદાનની હકીકતમાં કેટલી બધી સમાનતા મળી આવે છે. યવનચંગ અને હો–લો–લો–કિય નગરના નાશની અને આ અવદાનમાં જણાવેલી રો–રુ–ક નગરના નાશની હકીકતમાં જરાએ તફાવત નથી. તેથી હું ધારૂં છું કે આ બંને હકીકતોનું મૂળ એક જ હોવું જોઈએ, એટલું જ નહિ પણ મને તો યવનચંગનું હો–લો–લો–કિય એ અવદાનમાંના રો–રુ–ક નામનું જ ચીની ઉચ્ચારણ હોય એમ સ્પષ્ટ જણાય છે. થોમસ્ વૉટર્સ, એ નામની જોડણી o-loo-lo-ka (Rallaka ?) આ પ્રમાણે કરે છે;[2] અને મિ. બીલ Ho-lo-lo-kia આ પ્રમાણે કરે છે. બીલ આનું બીજું ઉચ્ચારણ (ફુટનોટમાં) Ragha or Raghan, or perhaps Ourgha આ પ્રમાણે આપે છે[3] અને વૉટર્સ સંસ્કૃત ઉચ્ચારણ रल्लक આપે છે. પણ આ બંને ઉચ્ચારણો કરતાં મને અવદાનમાંનું રો–રુ–ક એ ઉચ્ચારણ વધારે સંગત અને ભાષાશાસ્ત્રને મળતું લાગે છે. તેથી આ બંને સ્થાનો એક જ હોવાનું મારૂં અનુમાન મને સપ્રમાણ જણાય છે.

પણ, અહીં એક બીજો ભૌગોલિક પ્રશ્ન ઉપસ્થિત થઈ શકે તેમ છે. દીઘનિકાય નામના પ્રાચીન પાલી આગમના મહાગોવિંદ નામના સુત્તંતમાં[4] તથા જાતકટ્ઠકથામાં[5]

૧. બિબ્લીઓથિકા ઇન્ડિકામાં પ્રકાશિત થએલ अवदानकल्पलता ભાગ ૧, પાન ૯૭૦ થી ૧૦૨૭.

૨. જુઓ, થોમસ્ વૉટર્સનું On Yavan Chwang's "Travels in India," પુસ્તક ૨ જું, પાન ૨૯૮.

૩. બીલનું, Buddhist Records of the western World, પુસ્તક ૨ જું, પાન ૩૨૨.

૪. दंतपुरं कलिंगानं अस्सकानं च पोतनं।
माहीस्सती अवंतीनं सोवीरानं च रोरुकं॥
मिथिला च विदेहानं चंपा अंगेसु मापिता।
बाराणसी च कासीनं, एते गोविंदमापिता ति॥

પાલી ટેક્સ્ટ સોસાયટીએ છપાવેલ, દીઘનિકાય, ભાગ ૨, પૃ૦ ૨૩૫, મહાવસ્તુ ભાગ ૩, પાન ૨૦૮–૨૦૯, માં પણ આ બે ગાથાઓ સંસ્કૃતમાં આપેલી છે.

૫. જાતકટ્ઠકથા ભાગ ૩, પા. ૪૭૦–' अतीते सोवीररट्ठे रोरुवनगरे '।

રોરૂકને સૌવીર દેશનું એક પાટનગર જણાવ્યું છે; અને સૌવીરદેશનું સ્થાન, હિન્દુસ્થાનના નકશામાં, પ્રસિદ્ધ બૌદ્ધ વિદ્વાન્ હ્રીસ ડેવિડસ્ ઘણા ભાગે કચ્છના અખાતના નાકા ઉપર મુકે છે.[૧] ત્યારે બીજી બાજૂ યવનચંગે વર્ણવેલું Ho-lo-lo-kia અગર o-lao-lo-ka એ ખોતાનના પ્રદેશમાં (મધ્ય એશિયામાં) આવેલું હતું. તેથી એ બંને સ્થાનોના ઐક્યના અનુમાનમાં આ પ્રમાણ બાધક રૂપે ઉભું રહે છે. એના સમાધાનમાં ઘણાં સાધક બાધક પ્રમાણો ઉપસ્થિત થાય છે. પ્રથમ તો એ કે દીઘનિકાય આદિમાં જણાવેલો સૌવીર દેશ કયાં આવેલો હતો તેનો હજી કાંઈ ચોક્કસ પત્તો લાગ્યો નથી. વૈદિક પુરાણો અને જૈન સાહિત્યમાં પણ સૌવીર દેશનું નામ આવે છે અને ઘણી વખતે સિન્ધુ-સૌવીરના ભેગા સામાસિક નામ વડે પણ તેનો ઉલ્લેખ થએલો મળી આવે છે. એ સૌવીર દેશ એ જ બૌદ્ધોનો સૌવીર હોય તો તે સિન્ધુ નદીની આસપાસ આવેલો હોવો જોઈએ. પણ જૈન અને બૌદ્ધ બંનેના સૌવીર એક હોય તેમ જણાતું નથી. કારણ કે બૌદ્ધ જેટલા જ જૂના જૈન ગ્રંથોમાં સૌવીરના પાટનગર તરીકે, જેમ આપણે ઉપર જોયું, તથા વળી આગળ જોઈશું તેમ, વીતિભય કે વીતભય નામે પત્તન જણાવ્યું છે, ત્યારે બૌધ્ધો તેના ઠેકાણે રોરુવ અગર રોરુક નામ લખે છે. વળી એ નામના પાઠમાં પણ જૂદા જૂદા દેશના બૌદ્ધ હસ્તલેખો જૂદા જૂદા પાઠ ભેદો આપે છે. ઉદાહરણાર્થ જાતકટ્ઠકથામાં रोरुवनगर અને रोरुयमनगर એવા બે પાઠો મળે છે, ત્યારે દીઘનિકાયમાં સિંહલીવાચનામાં रोरुक, અને બરમીવાચનામાં **रोरुण** પાઠ છે. એટલું જ નહીં પણ દેશના નામમાં પણ પાઠફેર છે. દીઘનિકાયલાં सोवीर ના બદલે એક પાઠાન્તર सोचिर છે અને જાતકટ્ઠકથામાં તો તેના બદલે સ્પષ્ટરૂપે ' शिविरन्ठे ' પાઠાન્તર છે જે ખાસ વિચારણીય છે. લેખકોના પ્રમાદ અને અજ્ઞાનથી આવા પાઠભેદો થવા સુલભ છે.[૨] પણ એ પાઠભેદોથી ઐતિહાસિકોને પરંપરા ગોઠવવી કેટલી દુર્લભ થઈ પડે છે એ કયો પુરાતત્ત્વજ્ઞ નથી જાણતો? ટીબેટિયન સાધનો ઉપરથી વળી રોરુક એ, પાલીસાહિત્યપ્રસિદ્ધ કોલિય ક્ષત્રિયોનું રામગ્રામ હોય એવી શંકા

૧. જુઓ 'Buddhist India' પાન ૩૮; તથા છેવટે આપેલો નકશો.

૨. આવી જાતના પાઠભેદો અને પાઠફેરો જૈન ગ્રંથોમાં પણ ઘણા થાય છે અને તેથી કેટલીક વખતે તે બહુ ગુંચવાડો ઉભો કરે છે. એક ઉદાહરણ આપું. ઉપરની નોટમાં જેમ દીઘનિકાયની ગાથામાં અમુક દેશોની અમુક રાજધાની જણાવેલી છે, એવી જ કેટલીક ગાથાઓ જૈનસૂત્રોમાં પણ મળે છે. હાલમાં જે આગમો આગમોદયસમિતિ નામે સંસ્થા તરફથી છપાયા છે તેમાંથી प्रज्ञापनासूत्र (પાન ૫૫) માં કૌશાંબી જેની રાજધાની છે એ દેશ માટે પણ ' વચ્છ ' (વત્સ) એ શબ્દ લખ્યો છે અને વૈરાટ જેની રાજધાની છે એ દેશ માટે પણ 'વચ્છ' એ જ શબ્દ આપ્યો છે. એની એ જ ગાથાઓ सूत्रकृतांगसूत्र ની ટીકામાં (પાન ૧૨૩) આપેલી છે જ્યાં ' वच्छ कोसंबी ' અને ' वइराड मच्छ ' એવા શબ્દો છે જેનો તાત્પર્ય ક્રમથી ' વત્સદેશમાં કૌશાંબી ' અને ' મત્સ્યદેશમાં વૈરાટ નગર મુખ્ય શહેર છે, એવો થાય છે. ખરો પાઠ આ પાછળના ગ્રંથનો છે જ્યારે પહેલાનો ખોટો છે. લેખક અને શોધકના પ્રમાદ અગર અજ્ઞાનથી આવા ઘણા પાઠોમાં ગરબડ થઈ જાય છે અને પછી શોધકોને યથાશક્યિત પાઠો લેઈ તેના ઉપરથી અનેક તર્ક-વિતર્કો કરવા પડે છે.

રૅકહીલને થાય છે.[1] આ ઉપરથી એમ ફલિત થાય છે કે પ્રથમ તો રોરુક અને સોવીરનો સંબંધ અને સ્થાનાદિ નિશ્ચિત નથી અને જો તેમ નિશ્ચિત થાય તો પણ, દિવ્યાવદાનવાળું રોરુક અને દીઘનિકાયાદિવાળું રોરુક-બંને જૂદાં જૂદાં માની લેવામાં પણ કાંઈ વધારે બાધ હું જોતો નથી. એક નામનાં અનેક સ્થાનો હતાં અને હોય છે. બીજું દિવ્યાવદાનવાળું રોરુક એ હિંદુસ્થાનની હદની બ્હાર હતું એ બાબતના તેમાં કેટલાક ચોક્કસ પુરાવાઓ પણ મળે છે. રોરુક નગરનો નાશ થયા પછી કાત્યાયન ભિક્ષુ જ્યારે પાછો મધ્ય દેશમાં આવવા નિકળ્યો ત્યારે તે લંપાક, સ્યામાક અને વોક્કાણાદિ દેશોમાં થઇ સિંધુ નદીના કાંઠે આવ્યો હતો અને પછી એ નદીને પાર કરી ફરતો ફરતો કેટલાક દિવસે શ્રાવસ્તિએ પહોંચ્યો હતો. બીજાં બીજાં પ્રમાણો ઉપરથી આપણને જણાય છે કે લંપાક, સ્યામાક અને વોક્કાણ વિગેરે દેશો હિંદુસ્થાનની બ્હાર હોઈ તે અનાર્ય મુલકો ગણાતા હતા. સિંધુનદીની પેલીપાર હોવાની બાબત પણ એ વિચારને વધારે સબળ બનાવે છે. તેમ જ અવદાનના વર્ણન ઉપરથી આપણે એ પણ જોઇએ છીએ કે રોરુકમાં જ્યારે રત્ન વિગેરેની ખૂબ પેદાશ થતી ત્યારે વસ્ત્રાદિ ચીજો ત્યાં નહોતી થતી.[2] હવે, હિંદુસ્થાનના બધા ભાગો તરફ જ્યારે આપણે નજર કરીએ છીએ ત્યારે એમાં એકે ભાગ એવો નથી જણાતો કે જ્યાં આગળ રત્નો વિગેરે તો ખૂબ નિપજતાં હોય અને વસ્ત્રાદિ ચીજો ન થતી હોય. એનાથી ઉલટું મધ્યએશિયાના પ્રાંતોમાં આવી સ્થિતિ પ્રાચીનકાળથી ચાલી આવતી હતી એ હકીકત પ્રસિદ્ધ જ છે. આ બધાં કારણો અને પ્રમાણોથી આપણે માનવું જોઇએ કે અવદાનવાળું રોરુક નગર હિંદુસ્થાનની બ્હાર હતું; અને, તેમાં આપેલી હકીકત સાથે યવનચંગે આપેલી હો-લો-લો-કની હકીકત મળતી આવતી હોવાથી તે બંને સ્થાનો એક જ હતાં.

બૌદ્ધ અને જૈનકથામાં સમાનતા.

યવનચંગની અને અવદાનમાંની હકીકતનું સામ્ય તો આપણે ઉપર જોયું છે પણ એ કરતાંયે વધારે સામ્ય બૌદ્ધ અને જૈનકથામાં જણાઇ આવે છે જે એક ખરેખર વિસ્મય ઉપજાવે તેવી બાબત છે. યવનચંગ અને અવદાનમાંની હકીકતમાં તો ફક્ત રોરુક નગરના નાશવાળી હકીકત સાથે જ સામ્ય રહેલું છે પણ જૈનકથામાં વળી અવદાનમાંની બીજી પણ કેટલીક બાબતો સાથે સામ્ય રહેલું છે; જેનો વિચાર ક્રમથી કરવાની આવશ્યકતા છે.

રોરુક નગરના નાશની અને જૈનકથાવાળા વીતિભય નગરના નાશની હકીકત યવનચંગ, અવદાન અને જૈનકથામાં સમાન છે. ત્રણેમાં ધૂળની વૃષ્ટિ થવાને લીધે નગ-

---

૧ જુઓ-'Rockhill's Life of the Buddha', પાન ૧૪૫.

૨ રાજગૃહના વ્યાપારિઓ રોરુકના રાજા રુદ્રાયણને કહે છે કે देवो रत्नाधिपतिः, स राजा वस्त्राधिपतिः, तस्य रत्नानि दुर्लभानि । રાજગૃહના રાજા બિંબિસાર આગળ વ્યાપારિઓ કહે છે કે-देवो वस्त्राधिपतिः, स राजा रत्नाधिपतिः, तस्य वस्त्राणि दुर्लभानि । (દિવ્યાવદાન પાન ૫૪૫.)

રનો નાશ થએલો જણાવ્યો છે. જૈનકથામાં ઉદાયન અને અવદાનમાં રુદ્રાયણ રાજા ભિક્ષુ થાય છે. તેનું મૃત્યુ તેના ઉત્તરાધિકારીની અનુમતિથી, દુષ્ટ અમાત્યો કરાવે છે. એકમાં વિષપ્રયોગથી તે કરવામાં આવે છે અને બીજામાં શસ્ત્રાઘાતથી. ઉત્તરાધિકારીના સંબંધમાં ફરક છે. જૈનો તેને વૃદ્ધ રાજાનો ભાણેજ કહે છે, ત્યારે બૌદ્ધ પુત્ર કહે છે. એક ઔરસ પુત્ર દ્વારા પોતાના જન્મદાતા પિતાનું આવું જઘન્ય કૃત્ય કરાય તેના કરતાં ભાણેજ દ્વારા તે કૃત્ય થાય તેમાં મનુષ્ય જાતિના રોજના વ્યવહારને વધારે બંધબેસતું લાગે ખરૂં. (આ માત્ર એક સામાન્ય કથન છે, બાકી આવા દાખલાઓ જગત્‌ના ઇતિહાસમાં ઘણાએ મળી આવે છે તેથી એ કથન ઉપર ભાર મુકવાની આવશ્યકતા નથી.) આ હકીકતને લગતો જે ઉલ્લેખ બંને પંથવાળાઓ કરે છે તેનું ભાવસામ્ય ખાસ જોવા જેવું છે. રુદ્રાયણ રાજાને આવતો સાંભળીને શિખંડીના દુષ્ટ અમાત્યો તેને કહે છે કે—

देव श्रूयते वृद्धराजा आगच्छतीति। स कथयति प्रव्रजितोऽसौ किमर्थं तस्यागमनप्रयोजनमिति। तौ कथयतः-देव येनैकदिवसमपि राज्यं कारितं स विना राज्येनाभिरंस्यत इति कुत एतत्। पुनरप्यसौ राज्यं कारयितुकाम इति।

शिखण्डी कथयति—यद्यसौ राजा भविष्यत्यहं स एव कुमारः को नु विरोध इति। तौ कथयतः-देव अप्रतिरूपमेतत्, कथं नाम कुमारामात्यपौरजनपदैरञ्जलिसहस्रैर्नमस्यमानेन राज्यं कारयित्वा पुनरपि कुमारवासेन वस्तव्यम्।...स ताभ्यां विप्रलब्धः कथयति-किमत्र युक्तं कथं प्रतिपत्तव्यमिति। तौ कथयतः-देव प्रघातयितव्योऽसौ, यदि न प्रघातयते नियतं दुष्टामात्यविग्राहितो देवं प्रघातयतीति।...न देवेन श्रुतं—

पिता वा यदि वा भ्राता पुत्रो वा स्वांगनिसृतः।
प्रत्यनीकेषु वर्तेत कर्तव्या भूमिवर्धना॥[1]

એ જ ભાવને આચાર્ય હેમચંદ્ર પોતાના મહાવીરચરિત્રમાં આ પ્રકારના શબ્દોમાં પ્રકટ કરે છે—

ज्ञात्वोदायनमायातं केश्यमात्यैर्भणिष्यते।
निर्विण्णस्तपसामेष नियतं तव मातुलः॥
ऋद्धं राज्यं ह्यैन्द्रपदं तत्त्यक्त्वानुशयं दधत्।
नूनं राज्यार्थमेवागाद्विश्वसीर्मा स्म सर्वथा॥[2]

१ દિવ્યાવદાન, પાન ૫૬૪.

૨ આ બે શ્લોકો સાથે ક્ષેમેન્દ્રની અવદાનકલ્પલતામાંના આ નીચેના શ્લોકો સરખાવા જેવા છેઃ-

प्रवादे प्रसृते तस्मिन्नमात्यौ दण्डमुद्गरौ।
अतीतभूपागमनत्रस्तौ भूपतिमूचतुः॥ ८३॥
सर्वत्र श्रूयते देव प्रवादः साधुनिन्दितः।
वृद्धप्रव्रजितो राजा राज्यार्थी यत्नवानिति॥ ८४॥

(અવદાનકલ્પલતા, ભાગ ૧, પાન ૯૯૫.)

केशी वक्ष्यत्यसौ राज्यं गृह्णात्यत्यापि कोऽस्म्यहम्।
गोपालस्य हि कः कोपो धनं गृह्णाति चेद्धनी॥
वक्ष्यन्ति मन्त्रिणः पुण्यैस्तव राज्यमुपस्थितम्।
प्रदत्तं न हि केनापि राजधर्मोऽपि नेदृशः॥
पितुर्भ्रातुर्मातुलाद्वा सुहृदो वापरादपि।
प्रसह्याप्याहरेद्राज्यं तद्दत्तं को हि मुञ्चति॥[1]

રુદ્રાયણની સ્ત્રીનું નામ ચંદ્રપ્રભા છે ત્યારે ઉદાયનની સ્ત્રીનું નામ પ્રભાવતી છે. 'પ્રભા' શબ્દ બંનેમાં જે અનુગત છે તે ધ્યાન ખેંચે તેવો છે, પણ તે કરતાંયે વિશેષ ધ્યાન ખેંચવા લાયક બાબત તો એ છે કે–બંને કથાઓમાં રાણીના નામની અને રાજાની વીણા વગાડવાની હકીકત તથા રાજાને દુશ્ચિન્હ જોઈ રાણીના આસન્ન મરણની વાત જાણી લેવાની, રાણીએ પછી પ્રવ્રજ્યા લઈ લેવાની અને મરી ગયા પછી સ્વર્ગમાંથી આવીને, કરેલી પ્રતિજ્ઞા પ્રમાણે, રાજાને દર્શન દેવાની એ વિગેરે હકીકત અક્ષરેઅક્ષર મળતી આવે છે. સરખાવવા માટે બંનેનાં સંસ્કૃત અવતરણો આપું છું—

रुद्रायणो राजा वीणायां कृतावी चन्द्रप्रभा देवी नृत्ये। यावदपरेण समयेन रुद्रायणो राजा वीणां वादयति चन्द्रप्रभा देवी नृत्यति। तेन तस्या नृत्यन्त्या विनाशलक्षणं दृष्टं, स तामितश्चामुतश्च निरीक्ष्य संलक्षयति। सप्ताहस्यात्ययात् कालं करिष्यति। तस्य हस्ताद् वीणा भ्रस्ता भूमौ निपतिता। चन्द्रप्रभा देवी कथयति—देव मा गया दुर्नृत्यम्। देवि न त्वया दुर्नृत्यं, अपि तु मया तव नृत्यन्त्या विनाशलक्षणं दृष्टं सप्तमे दिवसे तव कालक्रिया भवतीति। चन्द्रप्रभा देवी पादयोर्निपत्य कथयति-देव यद्येवं कृतोपस्थानाऽहं देवस्य, यदि देवोऽनुजानीयाद् अहं प्रव्रज्येयमिति। स कथयति-चन्द्रप्रभे समयतोऽनुजानामि यदि तावत् प्रव्रज्य सर्वक्लेशप्रहाणाद् अर्हत्त्वं साक्षात्करोषि एष एव ते दुःखान्तः। अथ सावशेषसंयोजना कालं कृत्वा देवेसूपपद्यसे देवभूतया ते ममोपदर्शयितव्यमिति।[2]

આ જ હકીકત ઉદાયન અને પ્રભાવતીના સંબંધમાં થએલી જેનું વર્ણન હેમચંદ્રના શબ્દોમાં જોઈએ.

तामन्यदार्चामर्चित्वा प्रमोदेन प्रभावती। पत्या समेता संगीतमविगीतं प्रचक्रमे॥
तानौघानगतश्चव्यं व्यक्तव्यञ्जनधातुकम्। व्यक्तस्वरं व्यक्तरागं राजा वीणामवादयत्॥
तीव्रव्रतपरिक्लिष्टः संभोगाभिमुखादरः। लज्जां प्रव्रज्यया सार्द्धं त्यक्त्वा स पुनरेष्यति॥
व्यक्तांगहारकरणं सर्वांगाभिनयोज्ज्वलम्। ननर्त देव्यपि प्रीता लास्यं तांडवपूर्वकम्॥
राजाऽन्यदा प्रभावत्या न ददर्श शिरः क्षणात्। नृत्यन्तं तत्कबन्धं तु ददर्शाजिकबन्धवत्॥
अरिष्टदर्शनेन द्राक् क्षुभितस्य महीपतेः। तदोपसर्पन्निद्रस्येवागलत् कंबिका करात्॥
अकांडतांडवच्छेदकुपिता राज्ययथावदत्। तालच्युतास्मि किमहं वादनाद्विरतोऽसि यत्॥
इत्थं पुनः पुनः पृष्टः कंबिकापातकारणम्। तत्तथाख्यत् महीपालो वलीयान् स्त्रीग्रहः खलु॥

૧ મહાવીરચરિત્ર, પાન ૧૫૮. ૨ દિવ્યાવદાન, પાન ૫૫૩.

राज्ञयूचे दुर्निमित्तेनाल्पायुरहं प्रिय । * * *

* * * तज्ज्ञापनाय भवति यत्सर्वविरतौ मम ॥

एवमुक्तः सनिर्बन्धमभ्यधाद्वसुधाधवः । अनुतिष्ठ महादेवि यत्तुभ्यमभिरोचते ॥

देवत्वमाप्तया देवि बोधनीयस्त्वयान्वहम् ।[1]

આ બંને અવતરણો ઉપરથી બૌદ્ધ અને જૈન બંને લેખોમાં કેટલી બધી અભિન્નતા છે તે સ્પષ્ટ જણાઈ આવે છે. અને હું તો આથી પણ આગળ વધી એમ કહી શકું છું કે દિવ્યાવદાનમાંનું ઉદ્રાયણ નામ એ જૈન નામ ઉદાયનના બદલે, અગર જૈનનામ ઉદાયન એ બૌદ્ધનામ ઉદ્રાયણના બદલે ભ્રાંતિથી કે લિપિભેદથી જ ઉત્પન્ન થયું છે. કારણ કે બંનેના ગ્રંથોમાં બંને પ્રકારના પાઠભેદો ચોખ્ખા મળી આવે છે. દિવ્યાવદાનમાં જો કે સર્વત્ર રુદ્રાયણ પાઠ આપેલો છે તો પણ બે ચાર ઠેકાણે ઉદ્રાયણ એવું પાઠાંતર પણ મળી આવે છે.[2] અને એમાં વળી એક ઠેકાણે તો ખાસ શ્લોકમાં જ એ પાઠ આવેલો છે, જેમકેઃ—

मुक्तो ग्रन्थैश्च योगैश्च शल्यैर्निवरणैस्तथा ।
अथाप्युद्रायणो भिक्षू राजधर्मैर्न मुच्यते ॥ (પાન ૪૬૭).

ક્ષેમેન્દ્રે તો અવદાનકલ્પલતામાં સર્વત્ર ઉદ્રાયણ એ જ પાઠ આપેલો છે અને તે પદ્યમાં હોવાથી બીજા પાઠાન્તરને તેમાં અવકાશ પણ નથી. ઉદાહરણાર્થ—

—बभूव समये तस्मिन् रौरुकाख्ये पुरे नृपः ।
श्रीमानुद्रायणो नाम यशश्चन्द्रमहोदधिः ॥४॥
—कदाचिद्दिव्यरत्नाङ्कं कवचं काञ्चनोज्ज्वलम् ।
प्राहिणोद् बिम्बिसाराय सारमुद्रायणो नृपः ॥११॥
—बिम्बिसारस्य हस्ताङ्कलेखामुद्रायणो नृपः ॥
—उद्रायणस्य नृपतेरार्यः कात्यायनोऽथ सः ॥

આ અવતરણો ઉપરથી સ્પષ્ટ જણાય છે કે બૌદ્ધગ્રંથોમાં અસલ નામ રુદ્રાયણ નહિ પણ ઉદ્રાયણ હોવું જોઈએ અને એ જ નામ જૈન ગ્રંથકારોને પણ સંમત હોય તેમ લાગે છે. હેમચંદ્ર વગેરેના ગ્રંથોમાં તેમ જ આવશ્યકસૂત્રની સંસ્કૃત ટીકા આદિમાં પ્રાયઃ સર્વત્ર उदायन એવો પાઠ ઉપલબ્ધ થાય છે પણ ભગવતીસૂત્ર તથા આવશ્યકચૂર્ણિના જૂના હસ્તલેખોમાં ઘણી જગાએ ' उद्दायण ' એવો પાઠ સ્પષ્ટ મળી આવે છે.[3] આ ઉપરથી હું માનું છું કે જૈનોને પણ બૌદ્ધોની માફક અસલ નામ उद्रायण જ સંમત હતું જેનું પ્રાકૃતરૂપ उद्दायण થાય છે. ખરી રીતે 'उद्रायण' શબ્દ પણ ખાસ સંસ્કૃત

---

૧. મહાવીરચરિત્ર પાન ૧૫૦.

૨ દિવ્યાવદાન પાન ૫૬૬. ઉપર બે વાર આ નામ આવેલું છે.

૩ આ લેખની શરૂઆતમાં, ઉપર જે મેં, ચેટકની ૭ પુત્રીઓ સંબંધી કથનવાળું આવશ્યકચૂર્ણિનું અવતરણ આપ્યું છે તેમાં ' उद्दायण ' પાઠ જ આપેલો જોવાશે. હાલમાં મારી પાસે જે આવશ્યકચૂર્-

હોય એમ લાગતું નથી. મૂળ એ શબ્દ પ્રાકૃત હોઇ उद्दायण જ હશે જેનું સંસ્કૃત રૂપ બૌદ્ધોએ उद्रायण કલ્પ્યું અને જૈનોએ તેને વધારે સંસ્કૃત કરી તેની જગ્યાએ उदायन મુકયું

આ રીતે આપણે બૌધ્ધ અને જૈન કથામાં કેટલું બધું સામ્ય છે તે જોયું છે. આ વિલક્ષણ સામ્યનું મૂળ ખોળી કાઢવું કઠિણ છે. જૈનોની હકીકત ઉપરથી બૌધ્ધોએ પોતાના કથા ઘડી કહાડી છે કે બૌધ્ધોની હકીકત ને જૈનોએ બંધબેસ્તી કરી લીધી છે કે વળી આ બંને સંપ્રદાયોએ કોઇ ત્રીજી જ હકીકતના મૂળ ઉપરથી પોતાની કથા-કલ્પના ઉપજાવી કાઢી છે, એનો નિર્ણય થઇ શકે તેમ નથી. (પુરાતત્ત્વ, પુસ્તક ૧ લું અંક ૩ માંથી ઉધ્ધૃત.)

ર્ણિની હસ્તલિખિત પ્રતિ છે તેમાં એ જ પાઠ છે. એ પ્રતિ અમદાવાદના ડહેલાના ઉપાશ્રયના ભંડારમાંની છે અને સંવત્ ૧૫૧૮ ની સાલમાં લખાએલી છે. એ પ્રતિ લખાવનારની પ્રશસ્તિ પણ છેવટે આપેલી છે જેમાં કેટલીક ઐતિહાસિક હકીકત નોંધેલી હોવાથી હું તેને અહીં પુરી ઉતારી લઉછું.

॥ सो० माणिक । सो० मांडव । सो० वीजा लेखितग्रंत (थ) प्रशस्तिलिख्यते । यथा ।

श्रीओसवंशांवरपूर्णचन्द्रः सद्वृत्तशोभागुणदीप्यमानः ।
श्रीसांगणो मंत्रिवरो बभूव ढीलीपतेर्ग्रासधराधिपस्य ॥

सो० सांगणसुतः सो० पदमः (?) श्रीशत्रुंजयादितीर्थे संघपतिकार्यकर्ता । सो० पदम (?) सुत सो० धर्ण (?) महानुभावो बभूव तदन्वये सो० धर्णसुत सो० भोजा सो० भोजाभार्या बाई राजलदेइ तस स (सु)त सो० श्रीमाणिक सुतैः सो० मांडण सो० भीमाभिधैः । सो० माणिकभार्या श्रा०......सो० मांडवभार्या श्राव(वि)का सहज । सो० भीमा भार्या श्रा० अहवदे सो० भीमासुत सो०......प्रमुख कुटुंबपरिवारयुक्तैः सरस्वतीकोशे लेषि(खि)त संगृहीतानेकग्रंथैः संघपतीभूय श्रीशत्रुंजयगिरिनारश्रीसोपारकश्रीजीरपल्लीशपार्श्वनाथश्रीअर्बुदाचलषडवाणीश्रीअभिनंदनप्रमुखतीर्थयात्रादिदानपुण्यकारकैः संवत १५१८ वर्षे वडातपागच्छनायक भट्टा० श्री० रत्नसिंहसूरि । भट्टा० श्री उदयवल्लभसूरि । भट्टा० श्री० ज्ञानसागरसूरि । भट्टा० श्री चारित्रसुंदरसूरि । भट्टा० उदयसागर उपाध्याय उदयमंडनगणीनामुपदेशेन स्वश्रेयसे श्रीआवश्यकचूर्णि समाप्तमिति ॥ छ ॥ छ ॥ ब्राह्मणजीवालिखितं करकृतमपराधं क्षंतिमर्हतः सन्तु ॥ (આમાં જેટલા ગૃહસ્થોનાં નામો આવેલા છે તે બધા ઉપર કોણ જાણે કોઇએ શાહી ફેરવી તેમને ભુંસી નાંખવાનો પ્રયત્ન શા હેતુથી કર્યો હશે?) પ્રશસ્તિ પછી બીજા અક્ષરોમાં એક શેરો મારેલો છે જેમાં જણાવ્યું છે-यह प्रति संवत १७४२ वर्षे चैत्रशुदि ७ दिने श्री ६ आचार्यजी ऋषि श्री ६ तेजसिंघजीये वृद्धिभंडारी मुकी छे ॥

॥ अर्हम् ॥

नमोऽस्तु श्रमणाय भगवते महावीराय ।

श्रीमेरुतुङ्गाचार्यविरचिता

विचारश्रेणिः-अपरनाम-स्थविरावलिः

' जं रयणिं कालगओ ' इति गाथाकदम्बके ।
श्रीमेरुतुङ्गसूरीन्द्रैर्व्याख्यालेशो विधीयते ॥

इहागमे

चंदे चंदे अभिवड्डियम्मि चंदेऽभिड्ढिए चेव ।
पंचवरिसेहिं[1] जुगमिणं पन्नत्तं वीयरागेहिं ॥

इति गाथोक्तयुक्त्या पञ्चवर्षैर्युगमुच्यते । तत्रादौ द्वादशमासैः प्रथम[2]श्चन्द्रसंवत्सरः । पुनर्द्वादश[3] मासैर्द्वितीय[4]श्चन्द्रसंवत्सरः । तृतीयवर्षे पोषमासस्य वृद्धिः, अतस्त्रयोदश[5] मासैस्तृतीयोऽभिवर्द्धितसंवत्सरः । ततो द्वादश[6]मासैः पुनश्चतुर्थश्चन्द्रसंवत्सरः । पञ्चमे वर्षे आषाढमासस्य वृद्धिः, अतस्त्रयोदश[7]मासैः पुनः पञ्चमोऽभिवर्द्धितसंवत्सरः । एवं च व्यवहारनयेन त्रिंशता मासैरधिकमासो लभ्यते । यतः—

सावणबहुलपडिवए वालवकरणे अभीइनक्खत्ते ।
सव्वत्थ पढमसमए जुगस्स आई वियाणाहि ॥

इत्यागम[8]वचनाज्जैने श्रावणादिः संवत्सरः । ततः प्रथमे चन्द्रवर्षे १२ मासाः, द्वितीयेऽपि १२, एवं २४ । ततोऽभिवर्द्धितवर्षस्य श्रावणादयः षट् । एवं ३० मासैः पोषवृद्धिः । ततोऽभिवर्द्धितस्यैव शेषा मासा[9] माघादयः षट् । ततश्चतुर्थे चन्द्रवर्षे १२, पञ्चमेऽपि वर्षे १२, एवं ३० । अत्राषाढवृद्धिः, अतोऽसौ पञ्चमोऽभिवर्द्धित इति । उक्तं च—

---

1 पंच सहियं । 2 १चंद्र० । 3 १२ मासैः । 4 २ चंद्र० । 5 १३ मासैः; 6 १२ मासैः । 7 त्रिंशत् मासैः । 8 इत्याद्यगम० । 9 नास्ति ।

जइ जुगमज्झे तो दो पोसा, जइ जुगअंते दो आसाढा ।

एवं रूपस्य च [1]युगस्य द्वितीये चन्द्रसंवत्सरे कार्तिकवदि आमावास्यां[2] श्रीवीरनिर्वाणम् । उक्तं -श्रीकल्पे-' चंदे नामं से दुच्चे संवच्छरे[3] ।' अतं आह—

जं रयणिं कालगओ अरिहा तित्थंकरो महावीरो ।
तं रयणिमवंतिवई अहिसित्तो पालगो राया ॥

यस्यां रजन्यां श्रीअर्हन् तीर्थंकरो महावीरः कालगतः मुक्तिं प्राप्तः, तस्यां रजन्यामुज्जयिन्यां[4] ण्डप्रद्योते मृते तस्यैव पुत्रः पालको राजा अवन्तिपतिस्तस्य पट्टेऽभिषिक्तः ।

(' वीरनिव्वाणरयणीओ चंडपज्जोयरायपट्टम्मि ।
उज्जेणीए जाओ पालयनामा महाराया ॥ ')[5]
' सट्ठी पालगरन्नो पणवन्नसयं तु होइ नन्दाणं ।
अट्ठसयं मुरियाणं तीसच्चिय पूसमित्तस्स ॥
बलमित्त-भाणुमित्ताण सट्ठि वरिसाणि चत्त नहवहणे ।
तह गद्दभिल्लरज्जं तेरस वासे सगस्स चऊ ॥[6]

पालकस्य राज्ञः षष्ठि (६०) वर्षाणि[7] राज्यमभूत् । तावता पाटलीपुत्रेऽपुत्रे कूणिक[8]पुत्रे उदायिनृपे उदायिनृपमारकेण हते पञ्चदिव्यान्तरिताधिवा[9]सितगजेन्द्रेण नापितो गणिकाङ्गजो नन्दो[10] राज्येऽभिषिक्तः । उक्तं च परिशिष्टपर्वणि—

अनन्तरं वर्द्धमानस्वामिनिर्वाणवासरात् ।
गतायां षष्ठिवत्सर्यामेष नन्दोऽभवन्नृपः ॥

नन्दाश्च नव पाटलीपुरे क्रमादभुवन् । तेषां च राज्यं पञ्चपञ्चाशदधिकं शतं (१५५) वर्षाणि बभूव । एवं द्वे शते पञ्चदशाधिके (२१५) । यच्च परिशिष्टपर्वण्युक्तम्—

' एवं च श्रीमहावीरमुक्तेर्वर्षशते गते ।
पञ्चपञ्चाशदधिके चन्द्रगुप्तोऽभवन्नृपः ॥ '

तच्चिन्त्यम् । यतः—एवं ६० वर्षाणि त्रुट्यन्ति, अन्यग्रन्थैः सह विरोधश्च । तदनु, अष्टोत्तरशतं (१०८) वर्षाणि[11] मौर्याणां राज्यम् । मौर्यास्तु नवमं नन्दमुत्थाप्य चाणाक्येन[12] पाटलीपुत्रे स्थापिताश्चन्द्रगुप्तादयः । एवं ३२३ । ततो मौर्यराज्यादनु पुष्यामित्रराज्ञास्त्रिंशत्[13] (३०) वर्षाणि । ततो बलमित्र—

1 नास्ति । 2 अमावास्यायां । 3 संवत्सरे । 4 नास्ति । 5इयं गाथा प्रत्यन्तरे नास्ति । 6 सगह । 7 ६० वर्षाणि । 8 कौणिक० । 9 ०न्तराधिवासित० । 10 नापितो गणिकाङ्गजो नन्दो राजा राज्ये । 11 १०८ वर्षाणि । 12 चाणिक्येन । 13 ३० वर्षाणि ।

भानुमित्रौ राजानौ षष्टि (६०) वर्षाणि[1] राज्यमकार्ष्टाम्। यौ तु कल्पचूर्णौ चतुर्थीपर्वकर्तृकाल-का[2]चार्यनिर्वासकौ उज्जयिन्यां बलमित्र[3]भानुमित्रौ तावन्यावेव। ततश्चत्वारिंशत् [4] (४०) वर्षाणि नभोवाहने राज्यं जातम्। एषः क्वापि नरवाहनो राजेत्युच्यते। एवं वीरनिर्वाणाद् वर्ष ४१३। अस्मिंश्च वर्षे गर्दभिल्लकोच्छेदकस्य श्रीकालकाचार्यस्य सूरिपद[5] प्रतिष्ठाऽभूत्। तथा नभोवाहनराजानन्तरं गर्दभिल्ल-राज्यं द्विपञ्चाशदधिकं शतं (१५२) वर्षाणि [6] ज्ञातव्यम्। अयं भावः—गर्दभिल्लप्रभृतीनां राज्यं गर्दभिल्लराज्यम्। इह यदा यो राजा ख्यातिमानभूत्, तदा तस्य राज्यं गण्यते, न तु पट्टानुक्रमः। ततो नभोवाहनादनु गर्दभिल्लेनोज्जयिन्यां १३ वर्षाणि राज्यं कृतम्। तावता श्रीकालकाचार्येण स्वसुः सरस्वत्याः प्रवट्टके गर्दभिल्लमुच्छेद्य उज्जयिन्यां शकराजाः स्थापिताः। तैः ४ वर्षाणि[7] तत्र राज्यं चक्रे। एवं वर्ष १७। तदनु गर्दभिल्लस्यैव सुतेन विक्रमादित्येन राज्ञोज्जयिन्या राज्यं प्राप्य सुवर्ण[8]पुरुषसिद्धिबलात् पृथिवीमनृणां कुर्वता विक्रमसंवत्सरः प्रवर्तितः। स च वार्षिकदानवर्षाज्जातश्रीवीरसंवत्सराद् द्वादशाधिकपञ्चशतवर्षेभ्योऽनु ज्ञेयः। विक्रमस्य राज्यं ६० वर्षाणि ततस्तत्पुत्रस्य विक्रमचरित्रापरना-म्नो धर्मादित्यराजस्य राज्यं ४० वर्षाणि। ततो भाइल्लराजराज्यं वर्ष ११। ततः श्रीनाइल्ल[9] राज्यं वर्ष १४। ततः श्रीनाहडराज्यं १० वर्षाणि जातम्। यस्य वारके नवनवति-लक्षधनपतिभिरप्राप्तनिवासे नाल्डरपुरसमीपस्थे सुवर्णगिरिशृंगे श्रीमहावीरसनाथः श्रीयक्षवसत्याख्यो[10] महाप्रासादो निष्पन्नः। उक्तं च—

> नवनवइलक्खधणवइ-अलद्धवासे सुवन्नगिरिसिहरे।
> नाहडनिवकालीणं थुणि वीरं जक्खवसहीए॥[11]

विक्रमादित्यादनुवर्ष १३९; तन्मध्ये १७ वर्षेषु क्षिप्तेषु सर्ववर्ष १५२। एतदेवाह—

> विक्कमरज्जाणंतरसत्तरसवासेहिं वच्छरपवित्ती।
> सेसं पुण[12] पणतीससयविक्कमकालम्मि य पविट्ठं॥

सप्तदशवर्षैर्विक्रमराज्यानन्तरं वत्सरप्रवृत्तिः। कोऽर्थः? नभोवाहनराज्यात् १७ वर्षैर्विक्रमा-दित्यस्य राज्यम्। राज्यानन्तरं च तदैव वत्सरप्रवृत्तिः। ततो द्विपञ्चाशदधिकशत (१५२) मध्यात् १७ वर्षेषु गतेषु शेषं पञ्चत्रिंशदधिकशतं (१३५) [13] विक्रमकाले प्रविष्टम्। विक्रमादित्याङ्कित-संवत्सरात् शाकसंवत्सरं यावद् यः कालः स विक्रमकालः। स च पूर्वोक्तयुक्त्या १३५ वर्षमान इति। तत्र प्रविष्टं तत्र स्थितमिति। एवं च सति किं जातमित्याह—

> विक्कमरज्जारंभा परओ सिरिवीरनिव्वुई भणिया।
> सुन्न-मुणि-वेय-जुत्तो विक्कमकालाउ जिणकालो।

1 ६० वर्षाणि। 2 ०कालिका०। 3 बालमी०। 4 ४० वर्षाणि। 5 सूरपद०। 6 गर्दभिल्लराज्यं १५२ वर्षाणि। 7 शकराजा स्थापितः ततः ४ वर्षाणि। 8 स्वर्णपु०। 9 नाइल०। 10 ०वसत्यारेकमहा०।
11 नवनवति क्खधणवइ अलद्धयासे सुवन्नचेइहरे। नाहडनिवकारवियं वीरं जक्खवइवसहीए॥
12 नास्ति। 13 'शेषं १३५' इत्येव।

विक्रमकालाज्जिनस्य वीरस्य काले जिनकालः–शून्य (०) मुनि (७) वेद (४) युक्तः। चत्वारिशतानि सप्तत्यधिकवर्षाणि[1] श्रीमहावीरविक्रमादित्ययोरन्तरमित्यर्थः। नन्वयं कालः श्रीवीर–विक्रमयोः कथं गण्यते ; इत्याह— विक्रमराज्यारम्भात्परतः पश्चात् श्रीवीरनिर्वृतिरत्र भणिता। को भावः ; —श्रीवीरनिर्वाणदिनादनु ४७० वर्षैविक्रमादित्यस्य राज्यारम्भदिनमिति। तथा हि—

पालकः	६०	तदनु विक्रमादित्यः	६०
नन्दाः	१५५	धर्मादित्यः	४०
मौर्याः	१०८	भाइल्लः	११
पुष्यमित्रः	३०	नाइल्लः	१४
वलमित्र-भानुमित्रौ	६०	नाहडः	१०
नभोवाहनः	४०		
गर्द्दभिल्लः	१३	एवं	१३५
शकाः	४		
एवं....	४७०	उभयं	६०५

तदनु शाकसंवत्सरप्रवृत्तिः। उक्तं च—

श्रीवीरनिर्वृतेर्वर्षैः षड्भिः पञ्चोत्तरैः शतैः।
शाकसंवत्सरस्यैषा प्रवृत्तिर्भरतेऽभवत्॥

अत्राधिकारात् स्थविराणां पट्टप्रतिष्ठाकालो भण्यते।

सिरिवीराउ सुहम्मो वीसं, चउ चत्तवास जंबुस्स।
पभवेगारस, सिज्जंभवस्स तेवीस वासाणि॥
पन्नास जसोभद्दे, संभूइस्सट्ठ, भद्दबाहुस्स।
चउदस, य थूलभद्दे पणयालेवं दुपन्नरस्स॥

श्रीवीरनिर्वाणात् सुधर्मस्वामिपट्टवर्ष २०। तदनु जम्बुस्वामिनः पट्टवर्ष ४४। एवं ६४। उक्तं च परिशिष्टपर्वणि—

श्रीवीरमोक्षदिवसादपि हायनानि चत्वारिषष्टिमपि च व्यतिगम्य जम्बूः।
कात्यायिनं प्रभवमात्मपदे निवेश्य कर्मक्षयेण पदमव्ययमाससाद॥

ततः प्रभवः ११, शय्यंभवस्य २३, यशोभद्रे ५०, सम्भूतिविजयस्य ८, भद्रबाहोः १४; एवं श्रीवीरनिर्वाणात् १७०। उक्तं च परिशिष्टपर्वणि—

श्रीवीरमोक्षाद्वर्षशते सप्तत्यग्रे गते सति।
भद्रबाहुरपि स्वामी ययौ स्वर्गं समाधिना॥

[1] '४७० वर्षाणि' इत्येव।

स्थूलभद्रे ४९; एवं ' दुपन्नरस त्ति ' द्वे शते पञ्चदशाधिके (२१५)। श्रीवीरनिर्वाणात् पालक-नृप-सर्वनन्दराज्यकालोप्येतावानेव ।

अज्जमहागिरी तीसं, अज्जसुहत्थीण वरिस छायाला ।
गुणसुंदर चउआला, एवं तिसया पणत्तीसा ॥

आर्यमहागिरिः ३०, आर्यसुहस्तीनां ४६, गुणसुन्दरः ४४, एवं त्रीणि शतानि पञ्चत्रिंशदधिकानि (३३५) ।

तत्तो इगचालीसं निगोय वक्खाय[1] कालिगायरिओ[2] ।
अट्ठत्तीसं खंदिल, एवं चउसय चउद्दस य ॥

ततः ३३५ अनु निगोदव्याख्याता [3]कालकाचार्यः । 'किलास्मद्वत् संप्रति भरते कालकाचार्यो निगोदव्याख्यातेति' श्रीसीमंधरवाचं श्रुत्वा वृद्धविप्ररूपेणेन्द्रः कालकाचार्यपार्श्वे तथैव निगोदव्याख्याश्रवणादनु निजमायुरपृच्छत् । तैश्च श्रुतोपयोगादिन्द्रोऽसाविति ज्ञातः । भिक्षागतयतीनां स्वागमनज्ञप्त्यै वसतिद्वारं परावृत्त्य स्वस्थानमगमदिति । अयं च प्रज्ञापनोपाङ्गकृत् सिद्धान्ते श्रीवीरादन्वेकादशगणभृद्भिः सह त्रयोविंशतितमः पुरुषः श्यामार्य इति व्याख्यातः ।

[उक्तं चोत्तराध्ययने, परीषहाध्ययननिर्युक्तौ........परीषहाधिकारे

उज्जेणि कालखमणा सागरखमणा सुवन्नभूमीसु ।
पुच्छा आउ य सेसं इंदो सा दिव्वकरणं च ॥

इति गाथाचूर्णौ–' उज्जेणीए कालगायरिया जाव सक्को निगोयजीवे पुच्छइ सा दिव्वं ति शालामुखपरावर्तः । ' ततोऽसौ श्यामार्योऽन्यो वेति चिन्त्यम् ।[4]]

असौ वर्ष ४१, स्कंदिलसूरिः ३८; एवं चत्वारि शतानि चतुर्दश च (४१४)[5] । अत्र चायं वृद्धसंप्रदायः–स्थूलभद्रस्य शिष्यद्वयम्–१ आर्यमहागिरिः, २ आर्यसुहस्ती च । तत्र. आर्यमहागिरेर्या शाखा सा मुख्या । सा चैवं स्थाविरावल्यामुक्ता—

सूरिबलिस्सह साई सामज्जो संडिलो य जीयधरो ।
अज्जसमुद्दो मंगू नंदिल्लो नागहत्थी य ॥
रेवइ-सिंहो खंदिल[6] हिमवं नागज्जुणा य गोविंदा ।
सिरिभूइदिन्न–लोहिच–दूसगणिणो य देवड्ढी ॥

असौ च श्रीवीरादनुसप्तविंशतितमः पुरुषो देवर्द्धिगणिः सिद्धान्तान् अव्यवच्छेदाय पुस्तकाधिरूढानकार्षीत् । द्वितीयशाखा तु श्रीकल्पसूत्रोक्ता एवम्–

---

1 विक्खाय । 2 कालिगा० । 3 कालिगा० । 4 कोष्ठकान्तर्गतपाठः प्रति पुस्तके नास्ति । 5 ' एवं ४१४ ' इत्येव पाठः । 6 रेवइ सिंह संदल ।

अज्जसुहत्थी य सुट्ठिय तद्दिंदादिन्ने य अज्जदिन्ने य ।
सीहगिरि वइरसामी सोपारग वइरसेणे य ।

एवं चात्र शाखाद्वयेऽप्यार्यसुहस्तिनोऽनु गुणसुन्दरः, श्यामार्यादनु स्कन्दिलाचार्यश्च न दृश्यते, तथाप्यत्र संप्रदाये दृष्टावतस्तावेव प्रोक्तौ[1]। एवमग्रेऽपि रेवतिमित्रादौ ज्ञेयम् ।

रेवइमित्ते छत्तीस[2] अज्जमंगू अ वीस एवं तु ।
चउसय सत्तरि चउसय तिपन्ने कालगो जाओ ॥
चउवीस अज्जधम्मे, एगुणचालीस भद्दगुत्ते य ।
सिरिगुत्ति पनर, वइरे छत्तीसं एव पण[3] चुलसी ॥
तेरस वासा सिरिअज्जरक्खिए, वीस पूसमित्तस्स[4] ।
इत्थ य पणहिय छसएसु सागसंवच्छरुप्पत्ती ॥

स्कंदिलादनुरेवतिमित्रे ३६, आर्यमङ्गुः २०; एवं श्रीवीरमोक्षात् चत्वारि शतानि सप्ततिश्च (४७०) । अत्र ४५३ वर्षेषु गर्द्दभिल्लोच्छेत्ता कालकसूरि[5]र्जातः । आर्यधर्मे २४ । इह केऽपि मङ्गुधर्मयोर्नाम्नैव भेदमाहुः । तन्मते आर्यधर्मस्य वर्ष ४४, भद्रगुप्ते ३९, श्रीगुप्ते १५, श्रीवज्र[6]स्वामिनि ३६; एवं वीरमोक्षात् पञ्च शतानि चतुरशीतिः (५८४)। तदनु श्रीआर्यरक्षिते १३ । पुष्यमित्रस्य २०, येन सूत्रार्थौ प्रतिवल्लघटतुल्य आर्यरक्षितो[7]ऽकारि । एवं वीराद्वर्ष ६१७ । अत्र च ६०५ वर्षेषु शाकसंवत्सरोत्पत्तिः । इह चायं संप्रदायः — पूर्व चन्द्रगुप्तवारके द्वादशवार्षिकदुर्भिक्ष उत्कृष्टलब्धीनां प्रकीर्णकसहस्राणां च विच्छेदः । बहुलस्स सरिव्वयेति, बलिस्सहेति चैकस्यैव नाम । स्थविरावल्यां तु, आर्यमङ्गोः परोऽनु आर्यधर्मभद्रगुप्त–वज्रस्वामि–आर्यरक्षिता भिन्नशाखोद्भवा अपि तस्मिन् समये प्रधानपुरुषा इत्युपात्ताः। रेवइसिंहेति–रेवतिसूरिः, ब्रह्मद्वीपकसिंहश्च । तथा वज्रस्वाम्यवसाने १२ वार्षिके दुर्भिक्षे सिद्धान्तानुयोगः प्रणष्टः । ततः पुनः सुभिक्षे जाते मथुरायां स्कन्दिलाचार्येण श्रमणसंघमेलयित्वा प्रवर्त्तितः । उक्तं च—

'जेसि इमो अणुओगो' इत्यादि ।

द्वितीयशाखायां तु–सुट्ठिय त्ति आर्यसुहस्तिनो द्वादशशिष्यान्तरवर्ती पञ्चमः, कल्पे– 'सुट्ठियःसुप्पडिबद्धि त्ति' ख्यातः सुस्थितसूरिः । यस्मात् 'कोडियगणो गणो मे' इति पठ्यमानः कौटिकगणो निर्गतः । तथा कल्पसूत्रे इत्युक्तम्–'थेरस्स णं अज्जमहागिरिस्स एलावच्चसगुत्तस्स इमे अट्ठ थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया होत्था । तंजहा–थेरे उत्तरे, इत्यादि जाव, थेरे छलुए रोहगुत्ते कोसियगुत्तेणं । थेरेहिंतो णं छलुएहिंतो णं रोहगुत्तेहिंतो तेरासिया साहा निग्गया ' इत्युक्तम् । आवश्यके तु

चउदस सोलस वासा चउदस विसुत्तराय दुन्निसया ।
अट्ठावीसा य दुवे पंच सया चेव चउयाला ॥
पंचसया चुलसीया छ चेव सया नवुत्तरा हुंति ।

1 न दृश्यते तथाऽप्यत्र संप्रदाये दृष्टः, अतस्तथैव प्रोक्तः । 2 छत्तीय । 3 पुण । 4 पुव्वमित्तस्स ।
5 कालिकाचार्यो । 6 श्रीवज्रे । 7 आर्यरक्षितेना०

इत्यत्र—

पंचसया चोयाला तइया सिद्धिंगयस्स वीरस्स ।
पुरिमंतरंजियाए तेरासिया दिट्ठि उप्पन्ना ॥

इत्युक्तम् । ततो यदि षडुलूको रोहगुप्त आर्यमहागिरिशिष्यः, ततः श्रीवीरात् ५४४ वर्षाणि कथं स्युः ? । यतः—आर्यमहागिरिः स्थूलभद्रशिष्यः, स चोक्तयुक्त्या वीरमोक्षात् २४५ वर्षान्तर्जातः । तच्छिष्यश्चेत् षडुलूकः ततः ५४४ वर्षे कथमिति सन्देहः । ततोऽत्र बहुश्रुताः प्रमाणम् । तथा १२ वार्षिके दुर्भिक्षे श्रीवज्रेण वज्रसेनशिष्यो ' यदा लक्ष्यमूल्यां रसवतीं लभसे तदनु सुभिक्षं जानीयाः ' इत्युक्त्वा विहारितः । सोपारके जिनदत्तेभ्यभार्ययेश्वरीति नाम्न्या विषक्षेपाद्दीयमानां[1] तादृशीं[2] रसवतीं ज्ञात्वा प्रातः सुभिक्षं भावीति तौ संबोध्य तत्र सुखं तस्थौ । तस्य च क्रमेण इन्द्र—चन्द्र—निर्वृति—विद्याधराख्याः ४ शिष्या जाताः । तेषु चन्द्रकुलं वटवृक्षवच्छतशाखमद्य यावत् प्रसरद्विजयते । तदन्वये तेषां शिष्य[3] उपस्थाप्यः ' कोडीगणो गणो मे, वइरसाहा साहा मे, चंदकुलं कुलं मे ' इति दिग्बन्धं कार्यते इति ।

तथा, भृगुक्षेत्रे आर्यखपुटाचार्यो वृद्धवादी च; आर्यधर्मस्य शिष्यः सिद्धसेनः प्रभावकः । तथा, वज्रस्वामिनोऽनु वज्रसेनो वर्ष ३, नागहस्तिः ६९, रेवतिमित्रः ५९, ब्रह्मद्वीपकसिंहः ७८; एवं २३९। तदनु, स्कन्दिल-हिमवत्सूरि-नागार्जुनाः ७८[4] । एषां मध्ये २२ वर्षातिक्रमे वलभीभङ्गः । उक्तं च—

पणसयरी वासाइं तिन्निसयसमन्नियाइं अइकमिउं ।
विक्कमकालाओ तओ वलभीभंगो समुप्पन्नो ॥

यतः श्रीविक्रमात् ११४ वर्षैर्वज्रस्वामी, तदनु २३९ वर्षैः स्कन्दिलः, २२[5] वर्षैर्वलभीभङ्गः। एवं ३७५ । तथा विक्रमादनु ५१०—श्रीवीरमोक्षादनु ९८० वर्षैर्देवार्द्धिगणिभिर्ग्रन्थानुद्धृत्य[6] पुस्तकेषु लिखितः । तदा च तैः श्रीकल्पान्तर्लिखितम्—' समणस्स भगवओ महावीरस्स कालगयस्स० नववाससयाइं वइक्कंताइं दसमस्स वाससयस्स अयं असीइमे गच्छइ त्ति ।' ततः १३ वर्षैश्चतुर्थ्यां पर्युषणा पर्व । तदुक्तम्;

नवसय तेणउएहिं समइक्कंतेहिं वद्धमाणाओ ।
पज्जोसवणचउत्थी कालगसूरिहिं संठविया ॥

श्रीवीरमोक्षात् दशभिः शतैः पञ्चपञ्चाशदधिकैः (१०५५) श्रीहरिभद्रसूरेः स्वर्गः । उक्तं च—

पंचसए पणसीए विक्कमकालाओ झत्ति अत्थमिओ ।
हरिभद्दसूरिसूरो भवियाणं दिसउ कल्लाणं ॥

ततो जिनभद्रक्षमाश्रमणः ६५, पुष्यमित्रः ६० । स्वातिसूरिभिः ७५ वर्षैः पाक्षिकं चतुर्दश्यामानीतम्[7] । उक्तं च—

बारसवाससएसु पन्नासहिएसु वद्धमाणाओ ।
चउदासि पढमपवैसो पकाप्पिओ साइसूरीहिं ॥

---

1 विषक्षेपात्पूर्वं दीयमानां । 2 तादृग् । 3 ' अतः शिष्य ' इत्येवं पाठः । 4 २८ । 5 ३५३
6 देवार्द्धिगणिभिः पुस्तकेषु । 7 पाक्षिकं १४ आनीतं ।

पुष्यमित्रः क्वापि स्वातिसूरेः पश्चादुक्तोऽस्ति तच्चिन्त्यम्, गाथयासहामेलत्वात् ।[1]

तेरसवास सएसु वीराउ समन्निएसु सट्ठीए ।
सिरिवप्पभट्टिसूरी वीउसाण सिरोमणी जाओ ॥

मुख्यप्रतौ तु श्रीवीरात् १३०० वर्षैरित्यस्ति । एतदपि शोध्यं बहुश्रुतैः, यतस्तत्रैव स्वातेरनु सम्भूतयतिः ९०, माढरसम्भूतिगुप्तं ६०, ततो बप्पभट्टिसूरिरित्युक्तमस्ति । अतो बहुश्रुताः प्रमाणम् ।

अथ, सुधर्मादीनां[2] पुष्यमित्रान्तानां क्रमेण गृहस्थपर्याय–सामान्ययतिपर्याय–युगप्रधानत्वपर्याय-सर्वायूंषि प्राह—

पंचास सोल तीसा वीसय पणवीस तह य [3]बायाला ।
पणयाल तीस तीसा तीसा चउवीस वीसा य ॥
बावीस चउद चउदासि-गवास पणतीस अट्ठ य बावीसा[4] ।
सतरस गिहि परियाओ, सामन्नजईण अह एवं ॥
तीसा वीसा चउ चत्ति गार चउवीस चत्त सत्तरसा[5] ।
चउवीस चत्त चउवीस दुतीस पणतीस अडवन्ना ॥
अड चत्ता चउ चत्ता पण चत्ता पन्न तह य चउ चत्ता ।
चालीस तीस, अह जुगपहाणवरिसे भणिस्सामि ॥
वीस चउ चत्तिगारस तेवीस वीस अट्ठ चउदस य[6] ।
पणयाल तीस छत्तालीसा चउ चत्त इगयाला ॥
अडतीसा छत्तीसा चउ चत्तिगयाल पनर छत्तीसा ।
तेरस वीसं, सव्वाउयं च एगं सयमसीई ॥
पणसीई बासट्ठी छासी नवई छहुत्तरी चेव ।
नवनवइ तओ तिण्हं एगसयं छन्नवइ चेव ॥
अट्ठारसुत्तरं सयमट्ठनवइ[7] दुगाहिय सयं च नायव्वं ।
पणाहिय सय सयमडसी पणहत्तरि तह य[8] सगसट्ठी ॥
तिन्नि पुण दुन्नि चउरो पंच य सग पण छ एग तह तिन्नि ।
दो पंच चउ ति सग सत्त सत्त य मासा कमेणुवरिं ॥*

तथा श्रीवीरमोक्षात् १६३९ विक्रमात् १२६९ वर्षैः श्रीविधिपक्षमुख्याभिधानं श्रीमदंचलगच्छं श्रीआर्यरक्षितसूरयः स्थापयामासुः ।

---

1 पश्चादुक्तः सचेति गाथायाः सह मेलत्वात । 2 सुमित्रादीनां । 3 तीसट्ठ वसिं बावसि तहय० । 4 पणतीस अट्ठ बावीसा । 5 चउदस य सत्त सत्तरसा । 6 तेवीसा पन्न अट्ठ चउदस य ।

7 अद्धनवइ 8 तय० । * प्रत्यन्तरे एतादृशः पाठः—ति पण दुन्नि चउर पंच य सग पण पण छ इग तिन्नि दो पंच । चउ ति सग सत्त सत्त य सत्त मासा कमेणुवरिं ॥

श्रीवीरोपासकश्रेणिकपुत्र[1]कूणिकपुत्रोदायिनो[2]ऽनन्तरं[3] पाटलीपुत्रे नवनन्दै राज्यं कृतम् । तानुत्थाप्य[4] चाणिक्यश्चन्द्रगुप्त[5]भूपमस्थापयत् । तत्पुत्रो विन्दुसारः, तत्पुत्रोऽशोकश्रीः; तत्पु०[6] कुणालः–अन्धः, तत्पुत्रः संप्रतिराज[7]उज्जयिन्यां जातः । तद्वंशे एव गर्दभिल्लो राजा; तदुच्छेदे शको राजा । तावता गर्दभिल्लस्यैव पुत्रो विक्रमादित्यः शकमुच्छेद्य तत्रैवोपविष्टः । तेन श्रीवीरमोक्षात् ४७० वर्षे[8] संवत्सरोऽङ्कितः ।

तदनु संवत् ८२१ वर्षे वैशाख सुदि[9] २ सोमे चाउडावंशोत्पन्नः श्रीवनराजः श्रीअणहिलपुरमस्थापयत्, तत्र वर्ष ६० वर्षाणि राज्यमभुक्त । तत्पुत्रेण योगराजेन वर्ष ९ राज्यं कृतम् । ततः संवत् ८९१ वर्षोपविष्टश्रीरत्नादित्येन वर्ष ३ राज्यं कृतम् । ततो वैरिसिंहस्य[10] राज्यं व०११ । ततः सं० ९०५ उप० तत्सुतक्षेमराजस्य राज्यं वर्ष ३९ । ततः ९४४ वर्षोप० सुतचामुंडराजराज्यं[11] व० २७ । ततः सं० ९७१ वर्षोप० सुतघाघडस्य राज्यं व० २७ । ९९८ वर्षोप० सुतपूभडराज्यं[12] व० १९ । इत्थमेवं १०१७ । इत्थं चाउडावंशे अष्टभिः १९६ वर्ष राज्यं कृतम् ।

तदनु सं० १०१७ वर्षे चौलुक्यवंशोपविष्टस्य दौहित्र श्रीमूलराजस्य राज्यं व० ३५ । ततः सं० १०५२ वर्षोप० सुतवल्लभराजराज्यं व० १४ । ततः सं० १०६६ वर्षोप० भ्रातृदुर्लभराजराज्यं व० १२ । सं० १०७८ वर्षोप० भ्रातृनागिलसुतभीमदेवराज्यं ४२ । सं० ११२० वर्षोप० सुतश्रीकर्णदेवराज्यं व० ३० । सं० ११५० वर्षोप० सुतश्रीजयसिंहदेवराज्यं व० ४९ । सं० ११९९ वर्षे कार्तिकशुदि ३ निरुद्धं दिन ३ पादुकाराज्यम् । तत्रैव वर्षे मार्गशुदि ४ उपविष्ट भीमदेवसुत–खेमराजसुत–देवराजसुत–त्रिभुवनपालसुत–श्रीकुमारपालस्य सं० १२२९ पौष शुदि १२ निरुद्धं राज्यं व० ३, मास १, दिन ७ । ततः तस्यामेव तिथौ उपवि० भ्रातृमहिपालदेवसुत–अजयपालदेवस्य सं० १२३२ वर्षे फा० सु० १२ निरुद्धं राज्यं व० ३, मास २ । ततस्तदैव उपविष्टलघुमूलराजस्य सं० १२३४ चैत्र शुदि १४ निरुद्धं राज्यं वर्ष २, मास १ दिन २ । ततस्तदैव उपविष्टश्रीभीमदेवराज्यम् ।

। इति राजावली ।

ततो गज्जनकराज्यम् । उक्तं च—

[1]हुउं थप्पिय [2]वणराइ पढम कन्नउज्जि [3]चलंतीय । जसि[4] वाडिय जोगडिण रयणि [5]वइर वरकित्तिय ।
मन्निय [6]वीमडि अंगाडि तह य भूयडि [7]जयवंतीय । मूलराइ चाउंमि(डि) वल्ल दुल्लहि णस इत्तिय ।
[8]भुय भीमि करणि जयसिंह पहु कुंअरि अजइ मूल रमिय । सत्तंगलच्छि इणि भीमदेवि गज्जणवइ घरि नीगमिय ॥

ततः श्रीवीरधवलबन्धु श्रीवीसलदेव सं० १३०० वर्षे । ततः १३१८ श्रीअर्जुनदेवः । १३३१ सारंगदेवः । १३५३ लघुकर्णः । १३६० यवना माधवनागरविप्रेण [10]आनीताः ।

श्रीकुमारपालामात्यबाहडेन १२११ वर्षे २ [11]कोडि ९७ लक्ष कुमारपालप्रियव्ययेन कीरमयः प्रासादः पाषाणमयः कारितः । ततः १३११ यवनोपद्रवाज्जावडिबिम्बे गते सा० समराकेन नव्यबिम्बं स्थापितम् ।

[इति श्रीमेरुतुङ्गाचार्यविरचिता विचारश्रेणिः समाप्ता]

---

1 कोणिक- । 2 दायनो । 3 नवरं । 4 चाणाक्यं चन्द्र० । 5 गुप्तं । 6 तत्पुत्रोऽन्यः कुणालो । 7-राजा । 8 वर्षैः । 9 शुदि । 10 वैरसिंह- । 11 चामुंडराज्यम् । 12 सुतपूराज्यं । 1 हुं । 2 वणरायकन्नउजे । 3 चल्लंतीज । 4 जासि वाय जोगडिण । 5 वइरहि वर । 6 वीमडि । 7 जयवंती । 8 भूय । 9 नीगमीअ । 10 नीताः । 11 वर्षे कोडि ।

श्रीवीरनि० १७० व० भद्रबाहुस्वामी १० निर्युक्तिकर्ता ।
वीरनि० २१४ व० अव्यक्तवादी निह्नवः । ३ ।
वीरनि० २१५ व० स्थूलभद्रः १० पूर्वधरः श्रुतकेवली ।
वीरनि० २२० व० शून्यवादी निह्नवः । ४ ।
वीरनि० २२८ व० एकस्मिन् समये द्विक्रियावेदकः । ५ ।
वीरनि० ३३५ व० प्रथमः कालकाचार्यः निगोदविचारकर्ता—अविनीतशिष्यपरिहारकः ।
वीरनि० ४५३ व० द्वितीयः कालकाचार्यः सरस्वतीबालकः—गर्दभिल्लोच्छेदी ।
वीरनि० ४७० व० विक्रमादित्यः संवत्सरप्रवर्तकः ।
वीरनि० ५४४ वर्षैर्नोजीवस्थापकः रोहगुप्तः । ६ ।
वीरनि० ५८४ व० वज्रस्वामिस्वर्गगमनम् ।
वीरनि० ५८४ व० गोष्ठामाहिलनिह्नवः । ७ ।
वीरनि० ६०९ व० दिगम्बराः ।
वीरनि० ६२० व० नागेन्द्र–चन्द्र–निर्वृति–विद्याधर–शाखाचतुष्कं जातम् ।
वीरनि० ८८२ व० चैत्यवासी थया ।
वीरनि० ९८० व० सिद्धांत पुस्तकि चडिओ ।
वीरनि० ९९३ व० पञ्चमीतश्चतुर्थ्यां पर्युषणापर्व आनीतम् ।
श्रीगुणधरशिष्येण कालकाचार्येण चतुर्दश्यां चतुर्मासकं भावडायगच्छे ।
वीरनि० १ सहस्रवर्षैः पूर्वश्रुतविच्छित्तिः सर्वथा ।
वीरनि० १००८ व० पौषधशालास्थितिः ।
वीरनि० १४६४ व० वृद्धगच्छात् ८४ गच्छाः ।
वीरनि० १६१४ वर्षैः खरतराः संजाताः ।
वीरनि० १६२९ व० पूर्णिमापक्षः ।
वीरनि० १६८४ आंचलीआ ।
वीरनि० १७५५ व० तपागच्छः ।
वीरनि० २०३२ व०लुंका जाताः ।
वीरनि० २०४० व० कटुकमतिनः ।
वीरनि० २०८० व० पार्श्वचन्द्रीयाः ।
वीरनि० २१२० व० ब्रह्ममतीयाः ।

॥ इति संवत्सराः मतोत्पत्तीनाम् ॥

॥ ॐ अर्हम् ॥

॥ नमोस्तु श्रमणाय भगवते श्रीमहावीराय ॥

यापनीय-यतिग्रामाग्रणिभदन्त-शाकटायनाचार्य-विरचितं

स्त्रीमुक्ति-केवलिभुक्ति-प्रकरणयुग्मम्

॥ स्त्रीमुक्तिप्रकरणं ॥

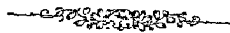
प्रणिपत्य भुक्तिमुक्तिप्रदममलं धर्ममर्हतो दिशतः ।
वक्ष्ये स्त्रीनिर्वाणं केवलिभुक्तिं च संक्षेपात् ॥ १ ॥
अस्ति स्त्रीनिर्वाणं पुंवत्, यदविकलहेतुकं स्त्रीषु ।
न विरुध्यति हि रत्नत्रयसंपद् निर्वृतेर्हेतुः ॥ २ ॥
रत्नत्रयं विरुद्धं स्त्रीत्वेन यथाऽमरादिभावेन ।
इति वाङ्मात्रं नात्र प्रमाणमाप्ताऽऽगमो ऽन्यद् वा ॥ ३ ॥
जानीते जिनवचनं, श्रद्धत्ते, चरति चाऽऽर्यिका शबलम् ।
नाऽस्याऽस्त्यसंभवोऽस्यां नाऽदृष्टविरोधगतिरस्ति ॥ ४ ॥
सप्तमपृथिवीगमनाद्यभावमन्यासमेव मन्यन्ते ।
निर्वाणाऽभावेनाऽपश्चिमतनवो न तां यान्ति ॥ ५ ॥
विषमगतयोऽप्यधस्ताद् उपरिष्टात् तुल्यमासहस्रारम् ।
गच्छन्ति च तिर्यञ्चस्तदधोगत्यूनताऽहेतुः ॥ ६ ॥
वाद-विकुर्वणत्वादिलब्धिविरहे श्रुते कनीयसि च ।
जिनकल्प-मनःपर्यवविरहेऽपि न सिद्धिविरहोऽस्ति ॥ ७ ॥

प्रतिगतपाठाः—१ विकुर्वाण

अष्टशतमेकसमये पुरुषाणामादिरागमः (माहुरागमे) सिद्धिः (सिद्धम)।
स्त्रीणां न मनुष्ययोगे गौणार्थो मुख्यहानिर्वा ॥३५ ॥
शब्दनिवेशनमर्थः प्रत्यासत्त्या क्वचित् कयाचिदतः ।
तद्योगे योगे सति शब्दस्याऽन्यः कथं कल्प्यः ॥ ३६ ॥
स्तन-जघनादिव्यङ्ग्ये 'स्त्री'शब्दोऽर्थे, न तं विहायेपः ।
दृष्टः क्वचिदन्यत्र त्वग्निर्माणवकवद् गौणः ॥ ३७ ॥
'आ पष्ठ्या स्त्री' त्यादौ स्तनादिभिस्त्री स्त्रिया इति च वेदः ।
स्त्रीवेद स्त्र्यनुबन्धास्तुल्यानां (बन्धः पल्यानां) शतपृथक्त्वोक्तिः ॥ ३८ ॥
न च पुंदेहे स्त्रीवेदोदयभावे प्रमाणमङ्गं च ।
भावः सिद्धौ पुंवत् पुमां अपि (पुंसोऽपि) न सिध्यतो वेदः ॥ ३९ ॥
क्षपकश्रेण्यारोहे वेदेनोच्येत भूतपूर्वेण ।
'स्त्री'ति नितरामसुख्ये मुख्येऽर्थे युज्यते नेतराम् ॥४० ॥
मनुषीषु मनुष्येषु च चतुर्दशगुणोक्तिरार्जि (र्यि)कासिद्धौ ।
भावस्तवोपरिक्षप्य..............नवस्था नियत उपचारः ॥ ४१ ॥
पुंसि स्त्रियां, स्त्रियां पुंसि-अतश्च तथा भवेद् विवाहादिः ।
यतिषु न संवासादिः स्यादंगतौ निष्प्रमाणेष्टिः ॥ ४२ ॥
[१]अनड्वाऽनड्वाहीं दृष्ट्वाऽनड्[illegible]
स्त्रीपुंसेत[illegible] [illegible]णामित्यर्हतोच्यत, विनाऽपि ।
[illegible]भात न्यवार्यत (नाऽवार्यत), तत्र स्थविरादिवद् मुक्तिम् (मुक्तिः) ॥१६॥
अर्शो-भगंदरादिषु गृहीतचीरो यतिर्न मुच्येत ।
उपसर्गे वा चीरे ग्दादिः संन्यस्यते चात्ते ॥ १७ ॥
उत्सङ्गमचेलत्वं नोच्येत तदन्यथा नरस्याऽपि ।
आचेलक्या(क्यं)योग्यायोग्याऽसिद्धेरदीक्ष्य इव ॥ १८ ॥
इति जिनकल्पादीनां मुक्त्यङ्गानामयोग्य इति सिद्धेः ।
स्याद् अष्टवर्षजातादिरयोग्यो ऽदीक्षणीय इव ॥ १९ ॥
संवर-निर्झररूपो बहुप्रकारस्तपोविधिः शास्त्रे ।
योगचिकित्साविधिरिव कस्याऽपि कथंचिदुपकारी ॥२० ॥

१ उत्संगं । २ देसको । ३ स्यो । ४ धेम्म । मुल्वंग ।
* ( ) एतच्चिह्नान्तर्गताः पाठाः संपादककल्पिताः ।

॥ केवलिभुक्तिप्रकरणम् ॥



अस्ति च केवलिभुक्तिः समग्रहेतुर्यथा पुरा भुक्तेः ।
पर्याप्ति-वेद्य-तैजस-दीर्घायुष्कोदयो हेतुः ॥ १ ॥

नष्टानि न कर्माणि क्षुधो निमित्तं विरोधिनो न गुणाः ।
ज्ञानादयो जिने किं सा संसारस्थितिर्नास्ति ॥ २ ॥

तम इव भासो वृद्धौ ज्ञानादीनां न तारतम्येन ।
क्षुध् हीयतेऽत्र न च तद् ज्ञानादीनां विरोधगतिः ॥ ३ ॥

अविकलकारणभावे तदन्यभावे भवेदभावेन ।
इदमस्य विरोधीति ज्ञाने न तदस्ति केवलिनि ॥ ४ ॥

क्षुद् दुःखमनन्तसुखं विरोधे तस्येति चेत् कुतस्त्यं तत् ।
ज्ञानादिवन्न तज्जं विरोधि न परं ततो दृष्टम् ॥ ५ ॥

आहारविषयकाङ्क्षारूपा क्षुद् भवति भगवति विमोहे ।
कथमन्यरूपताऽस्या न लक्ष्यते येन जायेत ॥ ६ ॥

न क्षुद् विमोहपाको यत् प्रतिसंख्यानभावननिवर्त्या ।
न भवति विमोहपाकः सर्वोऽपि हि तेन विनिवर्त्यः ॥ ७ ॥

शीतोष्णवाधातुल्या क्षुत् तत् तत्प्रतिविधानकाङ्क्षा तु ।
मूढस्य भवति मोहात् तथा भृशं वाध्यमानस्य ॥ ८ ॥

तैजससमूहकृतस्य द्रव्यस्याऽभ्यवहृतस्य पर्याप्त्या ।
अनुत्तरपरिणामे क्षुत् क्रमेण भगवति च तत् सर्वम् ॥ ९ ॥

ज्ञानावरणीयादेर्ज्ञानावरणादि कर्मणः कार्यम् ।
क्षुत् तद्विलक्षणाऽस्यां न तस्य सहकारिभावोऽपि ॥ १० ॥

प्रतिगतपाठाः:—१ विरोधिनो । २ केवलिनि । ३ -वाच । ४ वाध्यमानस्य । ५ तैजसमूह ।

क्षुद्बाधिते 'न जाने, न चेक्ष' इत्यस्ति न तु विपर्यासः ।
तद् वेद्यं सहकारि तु, तस्य न तद् वेद्यसहकारि ॥ ११ ॥

ज्ञानावरणादीनामशेपविगेमे क्षुधि प्रजातायाम् ।
अपि तद् ज्ञानादीनां हानिः स्यादितरवत् तत्र ॥ १२ ॥

नष्टविर्पाका क्षुदिति प्रतिपत्तौ भवति-चागमविरोधः ।
शीतोष्ण-क्षुद्-उदन्याऽऽद्यो हि ननु वेदनीय इति ॥ १३ ॥

उदँये फलं न तस्मिन् उदीरणेत्यफलता न वेद्यस्य ।
नोदीरणा फलात्मा तथा भवेदायुरप्यफलम् ॥ १४ ॥

अनुदीर्णवेद्य इति चेद् न क्षुद् वीर्ये किमत्र नहि वीर्यम् ।
क्षुदभावे क्षुदभावेन स्थित्यै क्षुधि तनोर्विलयः ॥ १५ ॥

अपवर्तते कृतार्थं नायुर्ज्ञानादयो न हीयँन्ते ।
जगदुपकृतावनँन्तं वीर्यं किं गततृपो भुक्तिः ॥ १६ ॥

ज्ञानाद्यलयेऽपि जिने मोहेऽपि स्याद् क्षुद् उद्भवेद् भुक्तिः ।
वचन-गमनादिवच्च प्रयोजनं स्व-पर्रासिद्धिः स्यात् ॥ १७ ॥

ध्यानस्य समुच्छिन्नक्रियस्य चरमक्षणे गते सिद्धिः ।
सा नेदानीमस्ति स्वस्य परेपां च कर्तव्या ॥ १८ ॥

रत्नत्रयेण मुक्तिर्न विना तेनाऽस्ति चरमदेहस्यँ ।
भुक्त्या तथा तनोः स्थितिरायुपि न त्वनपवर्त्येऽपि ॥ १९ ॥

आयुरिवाऽर्भ्यवहारो जीवनहेतुर्विनाऽभ्यवहृतेः ।
चेत् तिष्ठत्वनन्तवीर्ये विनाऽयुपा कालमपि तिष्ठेत् ॥ २० ॥

न ज्ञानवदुपयोगो वीर्ये कर्मक्षयेण लब्धिस्तु ।
तत्राऽऽयुरिवाऽऽहारोऽपेक्ष्येतँ न तत्र बाधाँऽस्ति ॥ २१ ॥

---

१ विगमा । २ नष्टविपाकः । ३ उदयं । ४ हीयन्ते । ५ न्तं । ६ द्धि । ७ स्या ८ । अत्यभ्यवहारो ।
त्त । १० बाधा ।

मासं वर्षं वाऽपि च तानि शरीराणि तेन भुक्तेन ।
तिष्ठन्ति[1] न चाऽऽकालं नान्यथा[2] पूर्वमपि भुक्तिः ॥ २२ ॥

असति क्षुद्बाधेऽङ्गे[3] लये न शक्तिक्षयो न संक्लेशः ।
आयुश्चानपवर्त्यं बाध-लयौ[4] प्रागवदधुनाऽपि ॥ २३ ॥

देशोनपूर्वकोटीविहरणमेवं सतीह केवलिनः ।
सूत्रोक्तमुपापादि न, भुक्तिश्च न नियतकाला स्यात् ॥ २४ ॥

अपवर्तहेत्वभावेऽनपवर्तनिमित्तसंपदायुष्कः[5] ।
स्याद् अनपवर्त इति तत् केवलिभुक्तिं समर्थयते ॥ २५ ॥

कायस्तथाविधोऽसौ जिनस्य यदभोजनस्थितिरितीदम्[6] ।
वाङ्मात्रं[7] नाऽत्रार्थे प्रमाणमाप्तागमोऽन्यद् वा ॥ २६ ॥

अस्वेदादि[8] प्रागपि सर्वाभिमुखादि तीर्थकरपुण्यात् ।
स्थितनखतादि सुरेभ्यो[9] न क्षुद् देशान्यता वाऽस्ति ॥ २७ ॥

भुक्तिर्दोषो[10] यदुपोष्यते, न दोषश्च भवति निर्दोषैः ।
इति निगदतो निपद्याऽर्हति न स्थान-योगादेः ॥२८ ॥

रोगादिवत् क्षुधो[11] न व्यभिचारो वेदनीयजन्मायाः ।
प्राणिनि "एकादश जिन" इति जिनसामान्यविषयं च ॥ २९ ॥

तद्धेतुकर्मभावात् परीषहोक्तिर्न जिन उपस्कार्यः ।
नश्चाऽभावासिद्धेरित्यादेर्न क्षुदादिगतिः ॥ ३० ॥

तैलक्षये न दीपो न जलागममन्तरेण[12] जलधारा ।
तिष्ठति[13] तथा तनोः स्थितिरपि न विनोऽऽहारयोगेन[14] ॥ ३१॥

परमावधेर्युक्तस्य[15] छद्मस्थस्येव नान्तरायोऽपि ।
सर्वार्थदर्शनेऽपि स्याद् न चान्यथा पूर्वमपि भुक्तिः ॥ ३२ ॥

इन्द्रियविषयप्राप्तौ यदभिनिवोधैर्मसञ्जनं[16] भुक्तौ ।
तच्छब्द-गन्ध-रूप-स्पर्शप्राप्त्या प्रतिव्यूढम् ॥ ३३ ॥

---

१ तिष्ठति । २ चान्यथा । ३ क्षुद्बाधेगे । ४ आतपवन्यं त्वाध- । ५ -यो । ६ प्को । ७ मात्रां । ८ दि
९ सुरेत्यो । १० दोपो । ११ क्षु । १२ मत्तरेण । १३ -ष्ठ- । १४ विता । १५ यु- १६ -वो- ।

छद्मस्थे तीर्थकरे विष्वणनानन्तरं च केवलिनि ।
चित्तामलप्रवृत्तौ व्यासैवाऽतापि भुक्तवति ॥ ३४ ॥

विग्रहगतिमापन्नाद्यागमवचनं च सर्वमेतास्मिन् ।
भुक्तिं ब्रवीति तस्माद् द्रष्टव्या केवलिनि भुक्तिः ॥ ३५ ॥

नाऽनाभोगाहारः सोऽपि[1] विशेषितो नाऽभूत् ।
शुक्त्याऽभेदे नाङ्गास्थिति-शुष्टि-क्षुच्छ्मास्तेन ॥ ३६ ॥

तस्य विशिष्टस्य स्थितिरभविष्यत् तेन सा विशिष्टेन ।
यद्यभविष्यादिहैषां [2]शाली-तरभोजनेनैव ॥ ३७ ॥

॥ इति केवलीभुक्तिप्रकरणं ॥

॥ इति स्त्रीनिर्वाण[3]-केवलीय[4]भुक्ति-प्रकरणम् ॥
॥ कृतिरियं भगवदाचार्य-शाकटायनभदन्त[5]पादानामिति ॥

---

१ सो । २ साली- । ३ श्रीनिर्वाण । ४ केवलीये । ५ भदन्त-

|| णमो समणस्स भगवओ महावीरस्स ||

सिरि-जिणभद्द-खमासमण-विरइओ

जीयकप्पो



कय-पवयण-प्पणामो वोच्छं पच्छित्तदाण-संखेवं ।
जीयव्ववहार-गयं जीवस्स विसोहणं परमं ॥ १ ॥
संवर-विणिज्जराओ मोक्खस्स पहो, तवो पहो तासिं ।
तवसो य पहाणंगं पच्छित्तं, जं च नाणस्स ॥ २ ॥
सारो चरणं, तस्स वि नेव्वाणं, चरण-सोहणत्थं च ।
पच्छित्तं, तेण तयं नेयं मोक्खत्थिणा'वस्सं ॥ ३ ॥
तं दसविहः—मालोयण १ पडिक्कमणोभय २-३ विवेग ४ वोस्सग्गे ५ ।
तव ६ छेय ७ मूल ८ अणवट्ठया ९ य पारञ्चिए १० चेव ॥ ४ ॥
१ करणिज्जा जे जोगा तेसु'वउत्तस्स निरइयारस्स ।
छउमत्थस्स विसोही जइणो आलोयणा भणिया ॥ ५ ॥
आहाराई-गहणे तह बहिया निग्गमेसु'णेगेसु ।
उच्चार-विहारावणि-चेइय-जइ-वन्दणा'ईसु ॥ ६ ॥
जं च'न्नं करणिज्जं जइणो हत्थ-सय-बाहिरायरियं ।
अवियडियम्मि असुद्धो, आलोएन्तो तयं सुद्धो ॥ ७ ॥
कारण-विणिग्गयस्स य स-गणाओ पर-गणा'गयस्स वि य ।
उवसंपया-विहारे आलोयणं अणइयारस्स ॥ ८ ॥
२ गुत्ती-समिइ-पमाए गुरुणो आसायणा विणय-भंगे ।
इच्छाईणमकरणे लहुस मुसा'दिन्न-मुच्छासु ॥ ९ ॥
अविहीय कासि-जंभिय-खुय-वायासंकिलिट्ठ-कम्मेसु ।
कन्दप्प-हास-विकहा-कसाय-विसयाणुसंगे य ॥१०॥
खलियस्स य सव्वत्थ वि हिंसमणावज्जओ जयन्तस्स ।
सहसा'णाभोगेण व मिच्छक्कारो पडिक्कमणं ॥ ११ ॥
आभोगेण वि तणुएसु नेह-भय-सोग-बाउसाईसु ।
कन्दप्प-हास-विकहा'ईए य नेयं पडिक्कमणं ॥ १२ ॥
३ संभम-भया'उरा'वइ सहस अणाभोग'णप्प-वसओ वा ।
सव्व-व्वयाइयारे तदुभयमासंकिए चेव ॥ १३ ॥
दुच्चिन्तिय दुब्भासिय दुच्चेट्ठिय एवमाइयं बहुसो ।

उवउत्तो वि न जाणइ जं देवसियाइ-अइयारं ॥ १४ ॥
सव्वेसु वि वीय-पए दंसण-नाण-चरणावराहेसु ।
आउत्तस्स तदुभयं सहसक्कारा'इणा चेव ॥ १५ ॥
४ पिण्डोवहि-सेज्जाई गहियं कडजोगिणोवउत्तेणं ।
पच्छा नायमसुद्धं, सुद्धो विहिणा विगिञ्चन्तो ॥ १६ ॥
काल'द्धाणाइच्छियं अणुग्गयत्थमिय-गहियमसढो उ ।
कारण-गहि'उव्वरियं भत्ताइ विगिञ्चियं सुद्धो ॥ १७ ॥
५ गमणागमण-विहारे सुयम्मि सावज्ज-सुविणयाईसु य ।
नावा-नइ-सन्तारे पायच्छित्तं विउस्सग्गो ॥ १८ ॥
भत्ते पाणे सयणासणे अरहन्त-समण-सेज्जासु ।
उच्चारे पासवणे पणुवीसं होन्ति ऊसासा ॥ १९ ॥
हत्थ-सय-वाहिराओ गमणा'गमणा'इएसु पणुवीसं ।
पाणवहाई-सुमिणे सय'मट्ठसयं चउत्थम्मि ॥ २० ॥
देसिय राइय पक्खिय चाउम्मास वरिसेसु परिमाणं ।
सयमद्धं तिन्नि सया पंच-सयट्ठुत्तरसहस्सं ॥ २१ ॥
उद्देस-समुद्देसे सत्तावीसं अणुन्नवणियाए ।
अट्ठेव य ऊसासा पट्ठवण-पडिक्कमण-माई ॥ २२ ॥
६ १ उद्देस'ज्झयण-सुयक्खन्धंगेसु कमसो पमाइस्स ।
कालाइक्कमणाइसु नाणायाराइयारेसु ॥ २३ ॥
निव्विगइय पुरिमड्ढे'गभत्तमायंबिलं चणागाढे ।
पुरिमाई खमणन्तं आगाढे, एवमत्थे वि ॥ २४ ॥
सामन्नं पुण सुत्ते मय'मायामं चउत्थम'त्थम्मि ।
अप्पत्तापत्तावत्त वायणुद्दे'सणा'इसु य ॥ २५ ॥
कालाविसज्जणा'इसु मण्डलि-वसुहा-'पमज्जणा'इसु य ।
निव्विइयं अ-करणे, अक्ख-निसेज्जा य'भत्तट्ठो ॥ २६ ॥
आगाढ-मणागाढे सव्व-भंगे य देस-भंगे य ।
जोगे छट्ठ-चउत्थं चउत्थ'मायम्बिलं कमसो ॥ २७ ॥
२ संका'इएसु देसे खमणं मिच्छोववूहणाए य ।
पुरिमाई खमणन्तं भिक्खु-प्पभिईण व चउण्हं ॥ २८ ॥
एवं चिय पत्तेयं उववूहाईणमकरण जईण ।
आयामन्तं निव्वीयगाइ पासत्थ-सड्ढेसु ॥ २९ ॥
परिवाराइ-निमित्तं ममत्त-परिपालणाएँ वच्छल्ले ।
साहम्मिओ त्ति संजम-हेउं वा सव्वहिं सुद्धो ॥ ३० ॥
३ एगिन्दियाण घट्टण'मगाढ-गाढ-परियावणुद्दवणे ।
निव्वीयं पुरिमड्ढं आसण'मायाममं कमसो ॥ ३१ ॥
पुरिमाई खमणन्तं अणन्त-विगलिन्दियाण पत्तेयं ।
पञ्चिन्दियम्मि एगासणाइ कल्लाणग'मह'गं ॥ ३२ ॥
मोसाइसु मेहुण-वज्जिएसु दव्वाइ-वत्थु-भिन्नेसु ।

हीणे मज्झ'कोसे आसण'मायाम-खमणाई ॥ ३३ ॥
लेवाडग-परिवासे'भत्तट्ठो सुक्क-सन्निहीए य ।
इयरीए छट्ठ-भत्तं, अट्ठमगं सेस निसिभत्ते ॥ ३४ ॥
१ उद्देसिय चरिम-तिगे कम्मे पासण्ड स-घर मीसे य ।
बायर-पाहुडियाए सपच्चवायाहडे लोभे ॥ ३५ ॥
अइरं अणन्त निक्खित्त पिहिय साहरिय मीसियाईसु ।
संजोग स-इंगाले दुविह-निमित्ते य खमणं तु ॥ ३६ ॥
२ कम्मुद्देसिय-मीसे धायाइ-पगासणाइएसुं च ।
पुर-पच्छकम्म कुच्छिय संसत्तालित्त-कर-मत्ते ॥ ३७ ॥
अइरं परित्त निक्खित्त पिहिय साहरिय मीसियाईसु ।
अइमाण-धूम-कारण विवज्जए विहिय'मायामं ॥ ३८ ॥
३ अज्झोयर कड पूइय माया'णन्ते परंपरगए य ।
मीसाणन्ताणन्तरगया'इए चे'गमासणयं ॥ ३९ ॥
४ ओह-विभागुद्देसोवगरण पूईय ठविय पागडिए ।
लो'उत्तर परियट्टिय पमिच्च परभावकीए य ॥ ४० ॥
सग्गामा'हड दद्दर जहन्न मालोहडे इरे पढमे ।
सुहुम-तिगिच्छा संथव तिग मक्खिय दायगो वहए ॥ ४१ ॥
पत्तेय परंपर ठविय पिहिय मीसे अणन्तराईसु
पुरिमड्ढं, संकाए जं संकइ तं समावज्जे ॥ ४२ ॥
५ इत्तर ठवियग सुहुम ससणिद्ध ससरक्ख मक्खिए चेव ।
मीस परंपर ठवियाइएसु बीएसु निव्विगई ॥ ४३ ॥
सहसा'णाभोगेणं जेसु पडिक्कमण'माहियं तेसु ।
आभोगओ'इबहुसो अइप्पमाणे य निव्विगई ॥ ४४ ॥
धावण डेवण संघरिस-गमण किड्डा कुहावणाईसु ।
उक्कुट्ठि गीय छेलिय जीवरुयाईसु य चउत्थं ॥ ४५ ॥
तिविहोवहिणो विच्चुय-विस्सरियापेहियानिवेयणए ।
निव्विइयं पुरिमे'गासणाइ, सव्वम्मि चा'यामं ॥ ४६ ॥
हारिय-धो'-उग्गमियानिवेयणादिन्न-भोग-दाणेसु ।
आसण'मायाम-चउत्थगाइ, सव्वम्मि छट्ठं तु ॥ ४७ ॥
मुहणन्तय रयहरणे फिडिए निव्वीइयं चउत्थं च ।
नासिय हारविए वा जयणा चउत्थ-छट्ठाई ॥ ४८ ॥
काल'द्धाणाईए निव्विइयं खमणमेव परिभोगे ।
अविहि-विगिंचणियाए भत्ताईणं तु पुरिमड्ढं ॥ ४९ ॥
पाणस्सासंवरणे भूमितिगापेहणे य निव्विगई ।
सव्वस्सासंवरणे अगहण भंगे य पुरिमड्ढं ॥ ५० ॥
एयं चिय सामन्नं नवपडिमा'भिग्गहाइयाणं पि ।
निव्वीयगाइ पक्खिय-पुरिसाइ-विभागओ नेयं ॥ ५१ ॥
फिडिए सयमुस्सारिय भग्गे वे'गाइ चन्दणुस्सग्गे ।

निव्वीइय-पुरिमे'गासणाइ, सव्वेसु चायामं ॥ ५२ ॥
अकपसुं पुरिमा'सणमायामं, सव्वसो चउत्थं च ।
पुव्वमपेहिय थण्डिल निसि वोसिरणे दिवा सुवणे ॥ ५३ ॥
कोहे बहुदेवसिए आसव-कक्कोलगाइएसुं च ।
लहसुणाइसु पुरिमड्ढं, तग्गाई-वंच-सुयणे य ॥ ५४ ॥
अज्झुसिर-तणेसु निव्वीइयं तु, सेस-पणएसु पुरिमड्ढं ।
अप्पडिलेहिय-पणए आसणयं तस-वहे जं च ॥ ५५ ॥
ठवणमणापुच्छाए निव्विसणे विरिय-गूहणाए य ।
जीयएणे'क्कासणयं, सेसिय-मायासु खमणं तु ॥ ५६ ॥
दप्पेणं पञ्चिन्दिय-वोरमणे संकिलिट्ठ-कम्मे य ।
दीह'द्धा'णासेविय गिलाण-कप्पावसाणे य ॥ ५७ ॥
सव्वोवहि-कप्पम्मि य पुरिमत्ता'पेहणे य चरमाए ।
चाउम्मासे वरिसे य सोहणं पञ्च-कल्लाणं ॥ ५८ ॥
छेयाइमसद्दहओ मिउणो परियाय-गव्वियस्स वि य ।
छेयाईए वि तवो जीएण गणाहिवइणो य ॥ ५९ ॥
जं जं न भणियमिहइं तस्सावत्तीय दाण-संखेवं ।
भिन्नाइयाय वोच्छं छम्मासन्ताण जीएणं ॥ ६० ॥
भिन्नो अविसिट्ठो च्चिय मासो चउरो य छच्च लहु-गुरुया ।
निव्वीइगाइ अट्ठमभत्तन्तं दाणमेएसिं ॥ ६१ ॥
इय सव्वावत्तीओ तवसो नाउं जह-क्कमं समए ।
जीएण देज्ज निव्वीइगाइ-दाणं जहाभिहियं ॥ ६२ ॥
एयं पुण सव्वं चिय पायं सामन्नओ विणिद्दिट्ठं ।
दाणं विभागओ पुण दव्वाइ-विसेसियं जाण ॥ ६३ ॥
दव्वं १ खेत्तं २ कालं ३ भावं ४ पुरिस ५ पडिसेवणाओ ६ य ।
नाउमियं चिय देज्जा तम्मत्तं हीणमहियं वा ॥ ६४ ॥
१ आहाराई-दव्वं बलियं सुलभं च नाउमहियं पि ।
देज्जा हि, दुब्बलं दुल्लभं च नाऊण हीणं पि ॥ ६५ ॥
२ लुक्खं सीयल साहारणं च खेत्त'महियं पि सीयम्मि ।
लुक्खम्मि हीणतरयं; ३ एवं काले वि तिविहम्मि ॥ ६६ ॥
गिम्ह-सिसिर-वासासुं देज्ज'ट्ठम-दसम-बारसन्ताई ।
नाउं विहिणा नवविह-सुयववहारोवएसेणं ॥ ६७ ॥
४ हट्ठ-गिलाणा भावम्मि; देज्ज हट्ठस्स, न उ गिलाणस्स ।
जावइयं वा विसहइ तं देज्ज, सहेज्ज वा कालं ॥ ६८ ॥
५ पुरिसा गीया'गीया सहा'सहा तह सढा'सढा केइ ।
परिणामा'परिणामा अइपरिणामा य वत्थूणं ॥ ६९ ॥
तह धिइ-संघयणोभय-संपन्ना तदुभएण हीणा य ।
आय-परोभय-नोभयतरगा तह अन्नतरगा य ॥ ७० ॥
कप्पट्ठियादओ वि य चउरो जे सेयरा समक्खाया ।

सावेक्खेयर-भेयाद्ओ वि जे ताण पुरिसाणं ॥ ७१ ॥
जो जह-सत्तो बहुतर-गुणो व्व तस्साहियं पि देज्जा हि ।
हीणस्स हीणतरगं, झोसेज्ज च सव्व-हीणस्स ॥ ७२ ॥
एत्थ पुण बहुतरा भिक्खुणो त्ति अकयकरणा'णभिगया य ।
जन्तेण जीय अट्ठमभत्तन्ते निव्वियाईयं ॥ ७३ ॥
६ आउट्टियाय दप्प-प्पमाय-कप्पेहिं वा निसेवेज्जा ।
दव्वं खेत्तं कालं भावं वा सेवओ पुरिसो ॥ ७४ ॥
जं जीय-दाणमुत्तं एयं पायं पमायसहियस्स ।
एत्तो च्चिय ठाणन्तरमेगं वड्ढेज्ज दप्पवओ ॥ ७५ ॥
आउट्टियाएँ ठाणन्तरं च, सट्ठाणमेव वा देज्जा ।
कप्पेण पडिक्कमणं तदुभयमहवा विणिद्दिट्ठं ॥ ७६ ॥
आलोयण-कालम्मि वि संकेस-विसोहि-भावओ नाउं ।
हीणं वा अहियं वा तम्मत्तं वा वि देज्जा हि ॥ ७७ ॥
इति दव्वाइ-बहु-गुणे गुरु-सेवाए य बहुत्तरं देज्जा ।
हीणतरे हीणतरं, हीणतरे जाव झोस त्ति ॥ ७८ ॥
झोसिज्जइ सुबहुं पि हु जीएण'न्नं तवारिहं वहओ ।
वेयावच्चकरस्स य दिज्जइ साणुग्गहतरं वा ॥ ७९ ॥
७ तव-गव्विओ तवस्स य असमत्थो तवमसद्दहन्तो य ।
तवसा य जो न दम्मइ अइपरिणामप्पसंगी य ॥ ८० ॥
सुबहु'त्तर-गुण-भंसी छेयावत्तिसु पसज्जमाणो य ।
पासत्थाई जो वि य जईण पडितप्पिओ बहुसो ॥ ८१ ॥
उक्कोसं तव-भूमिं समईओ सावसेस चरणो य ।
छेयं पणगाईयं पावइ जा धरइ परियाओ ॥ ८२ ॥
८ आउट्टियाएँ पञ्चिन्दिय-घाए, मेहुणे य दप्पेण ।
सेसेसु'क्कोसाभिक्ख-सेवणाईसु तीसुं पि ॥ ८३ ॥
तवगव्वियाइएसु य मूलुत्तर-दोस-वइयर-गएसु ।
दंसण-चरित्तवन्ते चियत्त-किच्चे य सेहे य॥ ८४ ॥
अच्चन्तोसन्नेसु य परलिंग-दुवे य मूलकम्मे य ।
भिक्खुम्मि य विहिय-तवे'णवट्ठ-पारञ्चियं पत्ते ॥ ८५ ॥
छेएणं परियाए'णवट्ठ-पारञ्चियावसाणेसु ।
मूलं मूलावत्तिसु बहुसो य पसज्जणे भणियं ॥ ८६ ॥
९ उक्कोसं बहुसो वा पउट्ठ-चित्तो व्व तेणियं कुणइ ।
पहरइ य जो स-पक्खे निरवेक्खो घोर-परिणामो ॥ ८७ ॥
अभिसेओ सव्वेसु वि बहुसो पारञ्चियावराहेसु ।
अणवट्ठप्पावत्तिसु पसज्जमाणो य'णेगासु ॥ ८८ ॥
कीरइ अणवट्ठप्पो, सो लिंग १. क्खेत्त २. कालओ ३. तवओ ४. ।
१. लिंगेण दव्व भावे भणिओ पव्वावणाणरिहो ॥ ८९ ॥
अप्पडिविरओ'सन्नो न भावलिंगारिहो'णवट्ठप्पो ।
२. जो जेण जत्थ दूसइ पडिसिद्धो तत्थ सो खेत्ते ॥ ९० ॥

३. जत्तिय-मेत्तं कालं; ४. तवसा उ जहन्नएण छम्मासा।
संवच्छरमुक्कोसं आसाइ जो जिणाईणं ॥ ९१ ॥
वासं बारस वासा पडिसेवी, कारणे य सव्वो वि।
थोवं थोवतरं वा वहेज्ज, मुंचेज्ज वा सव्वं ॥ ९२ ॥
वन्दइ न य वन्दिज्जइ, परिहार-तवं सुदुच्चरं चरइ।
संवासो से कप्पइ, ना'लवणाईणि सेसाण ॥ ९३ ॥
तित्थगर पवयण सुयं आयरियं गणहरं महिड्ढियं।
आसायन्तो बहुसो आभिणिवेसेण पारंची ॥ ९४ ॥
जो य स-लिंगे दुट्ठो कसाय-लिंगेहि राय वहगो य।
राय'ग्गमहिसि-पडिसेवओ य बहुसो पगासो य ॥ ९५ ॥
थीणद्धि-महादोसो अन्नो'न्नासेवणापसत्तो य।
चरिमट्ठाणावत्तिसु बहुसो य पसज्जए जो उ ॥ ९६ ॥
सो कीरइ पारञ्ची लिंगओ १. खेत्त २. कालओ ३. तवओ ४.।
१. संपागड-पडिसेवी लिंगाओ थीणगिद्धी य ॥ ९७ ॥
२. वसहि-निवेसण वाडग साहि निओय पुर देस रज्जाओ।
खेत्ताओ पारञ्ची कुल-गण-संघा'लयाओ वा ॥ ९८ ॥
जत्थु'प्पन्नो दोसो उप्पज्जिस्सइ य जत्थ नाऊणं।
तत्तो तत्तो कीरइ खेत्ताओ खेत्त-पारञ्ची ॥ ९९ ॥
३. जत्तिय-मेत्तं कालं; ४. तवसा पारञ्चियस्स उ स एव।
कालो दु-विकप्पस्स वि अणवट्ठप्पस्स जो'भिहिओ ॥ १०० ॥
एगागी खेत्त-बहिं कुणइ तवं सु-विउलं महासत्तो।
अवलोयणमायरिओ पइ-दिणमेगो कुणइ तस्स ॥ १०१ ॥
अणवट्ठप्पो तवसा तव-पारञ्ची य दो वि विच्छिन्ना।
चोद्दस-पुव्वधरम्मी, धरन्ति सेसा सया कालं ॥ १०२ ॥
इय एस जीयकप्पो समासओ सुविहियाणुकम्पाए।
कहिओ, देओ सो पुण पत्तेसु परिच्छिय-गुणेसु ॥ १०३ ॥

॥ इय सिरि-जिणभद्द-खमासमण-विरइओ जीय-ववहार-कप्पो समत्तो ॥